

भणवानुं ठेकाणुं :

Published by:

श्री. अ. बा. श्री. स्थानकुवासी
नेन शास्त्रोद्धार समिति,
ठे. गरेडियाकुवा रोड, श्रीन लाँज
पासे राजकोट (सौराष्ट्र)

Shri Akhil Bharat S. S.
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road, RAJKOT
(Saurashtra) W Ry, India.



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोद्धारं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्द

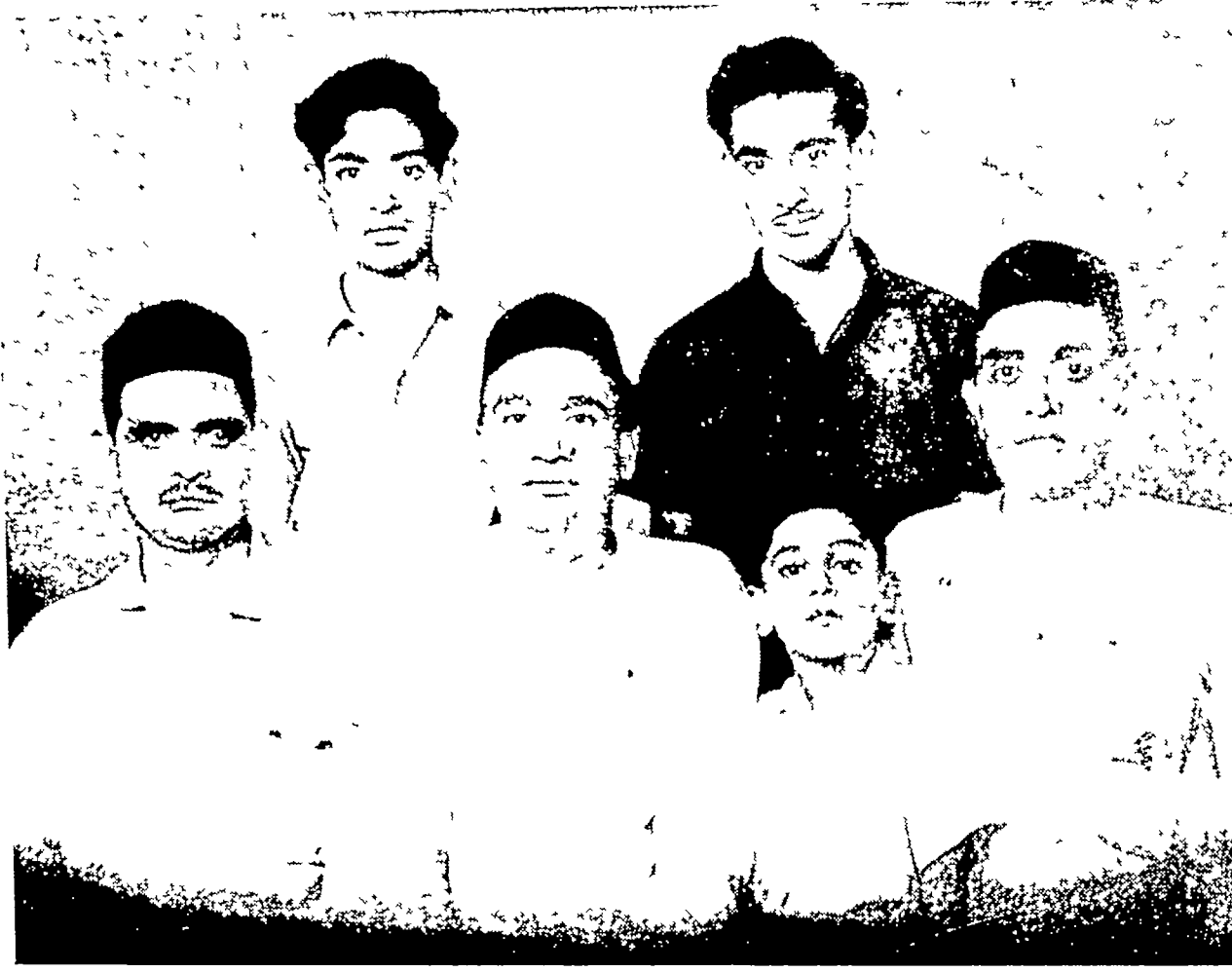


करते अवज्ञा जो हमारीं यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

मूल्या ३१. २०-००

प्रथम आवृत्ति : प्रत १२००
वीर संवत् : २४६२
विक्रम संवत् २०२२
धसिबीसन १९६६

: मुद्रक :
आदयल मोहनदास शाह
नीलकमल प्रीन्टरी, धीकांटाशेड
अमहावाह.



श्रीमान् मेठ सा. चीमनलालजी सा. ऋषभचंदजी सा. अजीतवाले (सपरिवार)

श्रीमान् सेठ साहब चिमनलालजी-रिखवचन्दजी 'जीराबलाका' परिचय

भारतीय संस्कृति के निर्माण में ओसवाल जाति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इस जाति की बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, श्रवीरता और आत्मबलिदान के कारण भारत के उज्ज्वल इतिहास का निर्माण हुआ है। भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम में भी इस जाति ने असाधारण योग प्रदान किया है। उदयपुर, जोधपुर बीकानेर सिरोही, किसनगढ़ आदि रियासतों के इतिहास इस जाति द्वारा प्रदर्शित दूरदर्शिता, राजनीतिज्ञता और वीरता से भरी हुई गाथाओं से ओतप्रोत है। इस जाति के वीरोंने अपने देश समाज और धर्म के प्रति जिस भक्ति का परिचय दिया है वह इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षर से अंकित है! अपने देश और स्वामी के प्रति वफादार रहनेवाले और उनके लिए सर्वस्व अर्पण करनेवाले व्यक्तियों की नामावली में सर्व प्रथम नाम भामाशाह का आता है। इस जैनमंत्री की विपुल सम्पत्ति की सहायताने महाराणा प्रताप को नया जीवन प्रदान किया था, और मेवाड़ के गौरव की रक्षा की थी।

इसी गौरव पूर्ण जाति में श्रीमान् चिमनलालजी एवं रिखवचन्दजी का जन्म हुआ। आप प्रसिद्ध दोसी परिवार के हैं। दोसी यह ओसवाल जाति का एक गोत्र है। कहा जाता है कि वि. संवत् ११९७ में विक्रमपुर में सोनागरा राजपूत हरिसेन रहता था। आचार्य श्री जिनदत्तस्वरिने इसे जैन-धर्म का प्रतिबोध देकर ओसवाल जाति में मिलाया और दोसी गोत्र की स्थापना की। इस गोत्र के नाम को समुज्ज्वल करने वाले अनेक नररत्न हो गये हैं। दोसी परिवार में श्रीमान् भिवखुजी बड़े प्रसिद्ध हुए। आपने महाराणा राजसिंहजी (प्रथम) का प्रधानपद सम्भाला था। आपकी निगरानी में उदयपुर का मशहूर राजसमुद्र नामक तालाब का काम जारी हुआ एवं पूर्ण हुआ। इस तालाब के बनवाने में १०५०७६०८ रुपये खर्च हुए। इस तालाब का पूर्ण होने पर महाराणाराजसिंहजी ने राजसमुद्र के उद्घाटन उत्सव के अवसर पर दोसी भिवखुजी को एक हाथी और सिरोपाच प्रदान कर उनका सम्मान बढ़ाया था। दोसी पञ्चोजी ने धर्मस्थानों का उद्धार किया था। बादशाह के फरमान

में उल्लेख है। कहने का सारांश यह है कि दोसी परिवार पहले से ही धार्मिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय कार्यों में उदारतापूर्वक तन, मन, धन से सेवा करता आ रहा है। श्रीमान् सेठ चिमनलालजी एवं रिखवचन्दजी सा. को इसी गौरवशाली गोत्र में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इन सीधे सादे दोनों भाईयों को देखकर यह कभी अनुमान नहीं लगाया जा सकेगा कि ये—एक बड़े श्रीमन्त हांगे। तथा श्रीमन्ताई के साथ बड़े दानवीर भी होंगे। मारवाड के इस दानी परिवार की प्रसिद्धि अन्य श्रीमन्तों की तरह चाहे न हो पाइ हो पर सेठ साहब चिमनलालजी एवं रिखवचन्दजी जैन समाज के 'गुदडी में छिपेलाल' है। अपनी सम्पत्ति का उपयोग परोपकारी कार्यों के करने में परम उदार है।

श्रीमान् चिमनलालजी सा० के पूर्वजां का राजघराने के साथ अच्छा सम्बन्ध रहा है। आप के दादा श्रीमान् गुलाबचन्दजी जोधपुर के रूमिप सिवाना तहसील के कोठडी नामक गांव में रहते थे। आप ठिकाने के कोठार के काम को सम्भालते थे, राजकीय जिम्मेदारी के पद पर रहते हुए भी धार्मिक व सामाजिक जनसेवा के कार्यों में भी पूर्ण सहयोग प्रदान करते रहते थे। आपकी राजघराने में एवं समाज में अच्छी प्रतिष्ठा थी। आप 'जीरावला' के उपनाम से प्रसिद्ध थे। आप बड़े मधुरभाषी एवं मिलनसार प्रकृत के उदारचेता सज्जन थे। आपको एक पुत्र हुआ जिसका नाम प्रेमचन्द रखा। प्रेमचन्दजी की उम्र अभी कोई ज्यादा नहीं हुई थी कि पिताजी की मृत्यु हो गई। पिताजी के अचानक स्वर्गवास से इनपर सारे परिवार के निर्वाह की जिम्मेदारी आ पड़ी। ये बड़े बहादूर थे। पिता के परंपरानुसार चलने वाले कुशल व्यापारी थे। इन्होंने अल्प समय में ही पिता की जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त करली और कोठार का काम भी सम्भाल लिया। वि. सं. १९६४ में इनका शुभलग्न जूनाडा निवासी श्रीमान् सायबलालजी की सुपुत्री खेतुवाई के साथ सम्पन्न हुआ। खेतुवाई एक आदर्श महिला एवं स्ती साध्वी स्त्री है। खेतुवाई जैसी आदर्श पत्नी को पाकर श्रीमान् प्रेमचन्दजी बड़े सुखी थे। इनके दो पुत्र हुए श्री चिमनलालजी और रिखवचन्दजी। किन्तु इस सुख को विधाता नहीं देख सका जब चिमनलालजी पांच वर्ष के थे एवं श्री रिखवचन्दजी १॥ डेढ़ वर्ष के थे तब अचानक ही प्रेमचन्दजी साहब का स्वर्गवास हो गया। इनके स्वर्गवास से

सारा परिवार शोक निमग्न हो गया। बालक और परिवार के सदस्य विलाव विलाव कर रोने लगे। श्रीमती खेतुवाई पर पति त्रियोग का वज्रपात हुआ। ऐसे भयंकर संकट के समय खेतुवाईने असाधारण धैर्य का परिचय दिया। रोने देने में अपना बहुमूल्य समय नष्ट न कर दोनों बालकों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने का विचार करने लगी। इधर पति के मृत्यु से आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। कोठार के काम से जो थोड़ी बहुत आमदनी होती थी वह भी अब समाप्त हो गई। कर्म की गति बड़ी गहन है। एक आपत्ति का अन्त नहीं हुआ था कि यह दूसरी आपत्ति का आरंभ हो गया। ऐसी विकट स्थिति में भी खेतुवाईने हिम्मत न छोड़ी किन्तु बड़े लाड प्यार से बच्चों का लालनपालन करने लगी। अपने चन्द्र जैसे आनंदप्रद बच्चों को देख कर अपना सारा दुःख भूल जाती थी। यह अपने का अपने बच्चों के सुनहरे स्वप्न में खोजती थी।

ये दोनों बालक बड़े होते जा रहे थे। माता की ये ही आशा थी। बच्चों का पढ़ना लिखना भी परिस्थिति के अनुकूलतानुरूप होता था। जब श्रीमान् चिमनलालजी दस वर्ष के हुए तब इन्हें अपने पारिवारिक जीवन का भान हो आया। इन्होंने माता के इस बोझ को हलका करने का विचार किया। कोठडी एक छोटा गांव है इसलिये इसमें व्यापार की कोई गुंजाइश नहीं थी। अतः बालक चिमनलालने बाहर जा कर अर्थ उपार्जन का निश्चय किया। माता की आज्ञा प्राप्त कर दस वर्ष के चिमनलाल जी अपने सम्बन्धियों के साथ व्यापार करने के लिए चल पड़े। ये कर्णाटक के 'हिराकेरी' गांव में पहुंचे। इतनी छोटी उम्र में माता का वात्सल्य को छोड़कर अकेले ही अनजाने प्रदेश में पहुंच जाना कम हिम्मत का काम नहीं है। ये वहां की कन्नडी भाषा से अनभिज्ञ थे। बात बात पर मुश्किले आती थीं किन्तु इन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी अल्प समय में ही इन्होंने स्थानीय कन्नडी भाषा सीख ली। नोकरी से व्यापार में लगे खूब श्रम किया किन्तु भाग्यदेवताने इनका साथ नहीं दिया अन्ततः निराश होकर अपने गांव कोठडी चले आये। यहां भी आपने कम परिश्रम नहीं किया। कई तरह के व्यापार करने पर भी आप पल्ले असफलता ही पडी। अशुभ कर्म का अभी उदय था। अन्त में हार थक कर पुनः कर्णाटक के हलगेरी नामक गांव में जाकर कपडे की दुकान करली। इस दुकान से आपको लाभ नहीं मिला। कमाने के स्थान में आपको लाभ में

आपकी दैनिक जीवनचर्या में सामायिक प्रतिक्रमण व्रत, पञ्चवखाण मुनिदर्शन आदि आवश्यक अंग हैं। इन कामों में आप कभी प्रमाद नहीं करते। प्रतिवर्ष बाहर जाकर मुनिदर्शन का भी समय पर लाभ लेते रहते हैं। आपकी उदारता सर्वतोमुखी है। आप अपनी जन्मभूमि कोठडी में निजी खर्च से अस्पताल बनाकर सरकार को अर्पण करने की भी उत्कट इच्छा रखते हैं। आपका इस समय निवास मारवाड में अजित गांव जि. जोधपुर में है। आपने वि.सं. २०१३ की साल में कोठडी छोड़ दिया था। आपकी धार्मिक भावना इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती रहे यही शुभ कामना है।



આધમુરખીશ્રીઓ



શેઠશ્રી શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી શામજીભાઈ વેલજીભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી ઇગનલાલ શામળદાસ ભાવસાર-અમદાવાદ.



શેઠશ્રી રામજીભાઈ શામજીભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



વચ્ચે ખેડેલા
લાલાજી કિશનચંદ્ર મા. જોહરી
ઉમેલા સુપુત્ર ચિ. મહેતાખચજી સા. જૈન
નાના-અનિલકૃમાર જૈન (દીયતા)

આધ્યક્ષશ્રીઓ



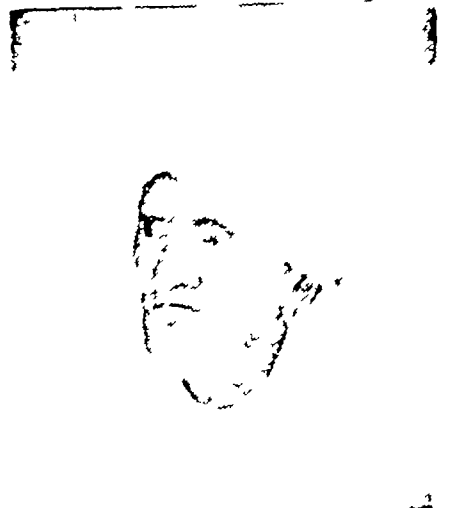
શ્રી વ્રજલાલ દુર્લભજી પારેખ
રાજકોટ.



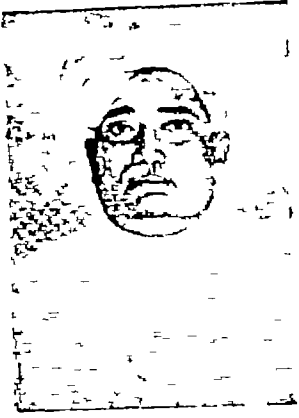
કેશરી હરગોવિંદ નેચંભાઈ
રાજકોટ.



શેઠશ્રી મિશ્રીલાલજી લાલચંદજી સા. લુણિયા
તથા શેઠશ્રી જીવંતરાજજી લાલચંદ સા.



આધમુરખીશ્રીઓ



(સ્વ.) શેઠશ્રી હુરખચ દ કાલીદાસ વારિઆ
ભાણુવડ.



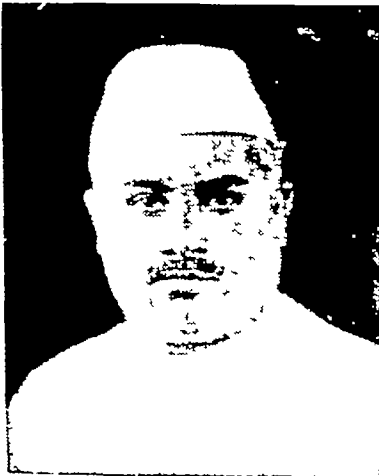
(સ્વ.) શેઠ રંગજીભાઈ મોહનલાલ શાહ
અમદાવાદ.



શ્રી વિનોદકુમાર વીરાણી
રાજકોટ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી દિનેશભાઈ કાંતિલાલ શાહ
અમદાવાદ.



શેઠશ્રી નેસિંગભાઈ પાચાલાલભાઈ
અમદાવાદ.

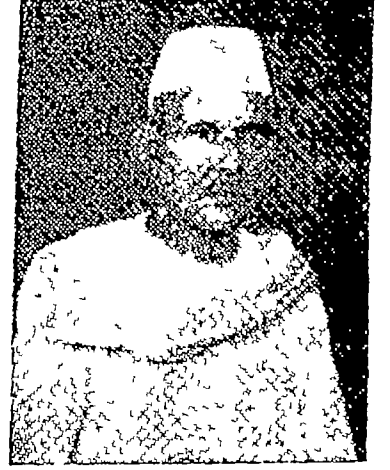


સ્વ. શેઠશ્રી આત્મારામ માહેષ્ટ
અમદાવાદ.

આધ્યમુરખીશ્રીઓ



સ્વ. શેઠશ્રી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ
ખંભાત.



સ્વ. શેઠ તારાચંદજી સાહેબ ગેલડા
મદ્રાસ.



૧ વચ્ચે બેઠેલા મોટાભાઈ શ્રીમાન મૃલચંદ્ર
જવાહીરલાલજી અરડિયા
૨ ખાલ્તમાં બેઠેલા ભાઈ મિશ્રીલાલજી અરડિયા
૩ ડાહ્યા કોથી નાનાભાઈ પૂનમચંદ અરડિયા



શ્રીમાન શેઠશ્રી
સ્વીમગજજી મા. ચોગડિયા

राजप्रश्नीय सूत्र भाग दूसरे की
विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
१	सूर्याभदेव के देवर्द्धि के संबन्ध में गौतमस्वामी का प्रश्न	१-४
२	सूर्याभदेव के ऋद्धि के संबन्ध में भगवान् का उत्तररूप कथनमें सूर्याभदेव के पूर्वभवजीव प्रदेशी राजा का वर्णन... ..	५-३८३
३	सूर्याभदेव का आगामिभवका वर्णन... ..	३८३-४४९

॥ समाप्त ॥



शुद्धि पत्र

सुज्ञ पाठकगण,

सविनय निवेदन है कि शास्त्रों में ग्रुफ और प्रिंटिंग सम्बन्धी कई गलतीयां होना संभवित है, जो सुज्ञ वाचकवृन्द नीरक्षीरन्याय से समझ कर पढलेगे, पर जो शास्त्रीय गलती रह गई है जो देखने में अगर सुज्ञ वाचकजन द्वारा दृष्टिगोचर हुई हैं, इनका शुद्धिपत्र देने में आता है।

सूत्र का नाम	पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
समवायङ्ग सूत्र	१६४	५	रामः खलु बलदेवो द्वादशवर्ष सहस्रा- णि सर्वायुषं	रामः खलु बलदेवो द्वादशवषशतानि सर्वायुषं
”	”	१६	बारह हजार वर्ष	बार सौ वर्ष
”	”	२८	५१२ ७५२ वर्ष	५१२० वर्ष
ज्ञातधर्मकथाङ्ग—२६१ सूत्र भा. २	”	१	पहली पंक्ति पूरी होने पर	‘त्रैमासिकीं’ पद छूट गया है सो ‘त्रैमासिकीं’ यह पद बढाके पढें
”	”	११		आठवीं भिक्षु प्रतिमा के अनन्तर ‘प्रथम सात दिनरात प्रमाणवाली नववीं भिक्षु प्र- तिमा’ यह पाठ छूटा है सो ‘नववीं भिक्षु पडिमा’ वहां इतना झोड के पढें
ज्ञातधर्मकथाङ्गसूत्रभा. ३,	३९७	१७	प्रवचनसिद्ध	प्रवचनविरुद्ध
”	”	२१	प्रवचनसिद्ध	प्रवचन विरुद्ध
ज्ञातधर्मकथाङ्गसूत्रभा. २	१४७	१७	मद्यपान में आसक्त—	निद्राजनक द्रव्य में आसक्त
”	”	२६	मद्यपानमां आसक्त	निद्राजनक द्रव्य मां आसक्त
ज्ञातधर्मकथाङ्गसूत्रभा-३	३३४	३	भगवताऽऽवश्यके—	भगवताऽऽनुयोगद्वारे
”	”	१७	आवश्यक सूत्रमें—	अनुयोगद्वारसूत्रमें
”	”	१६	आवश्यक सूत्रमां—	अनुयोगद्वार सूत्रमां

अन्तकृदशास्त्र	२९५	१० दसदस	दसअट्ट
"		११	'सत्तमवग्गे तेरसउडेसगा'
			इतना पाठ छूट गया है सो वहां समझ लेवे
आचारङ्गसूत्रभा. २	१२२	८ नेत्तपरिण्णाणा अपरिहीणा फरस परिण्णाणा अपरि- हीणा	नेत्तपरिण्णाणा अपरि- हीणा जीहपरिण्णाणा अप- रिहीणा फरिस परिण्णाणा अपरिहीणा
आचाराङ्गसूत्रभा-२	२८१	१४ निन्यानवे	अट्टानवे
"		२६ न०वाणु	अट्टाणु
दशाश्रुतस्कथ	४३०	२० कालकर के ग्रैवेयक— आदि	कालकरके देवलोकमें से
"		२६ डालकरीने ग्रैवेयक आदि—	डालकरीने देवलोकमांन
ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रभा. २	७३०	२१ गुणुशिलक सैत्य (निन हेरासर)	गुणुशिलक सैत्य (उधान षगीश्या)
उत्तराध्ययनसूत्रभा. ३	१८०	१-२ ...तृतीय देवलोके— गतः ततश्चुतो महा- विदेहे केवलिभूत्वा सिद्धिगतिं गमिष्यति	मोक्षं गतः
"		१२, १४, १५...वे चक्रवर्ती तृतीयदेव लोकमें गये वहांसे चक्रवर्त महाविदेहमें केवलीहोकर सिद्धि पदको प्राप्त करेंगे	वे चक्रवर्ती मोक्ष गये
"		२३-२४.. ते अकवतीं भरीने त्रीण देवलोकमां गया अने त्यांतु आयुष्य पुर्ण करी त्यानी चवी ने महावि देहमा केवला थधने सिद्धि पद प्राप्त कर्युं	ते अकवतीं मोक्षमा गया
उत्तराध्ययनसूत्रभा. ४	९२	१४ संयमयोगोंका उल्लंघन होताहै—	संयम योगों का उल्लंघन नहीं होता है
"		२४ संयम योगोनु उल्लंघन थाय छे	संयम योगोनु उल्लंघन थतुं नथी

भगवतीसूत्रभा.३	८९९	३	त्रिभागोन	त्रिभागोन
"	"	३-४	पल्योपमं	पल्योपमद्वयं
"	"	१३	तृतीयभागकम एक पल्योपम की	तृतीयभाग कम दो पल्योपम की
"	"	२८	...ओङ् पल्योपम करतां	तृतीय लाग उम ये
"	"		त्रिभाग न्यून छे	पल्योपमनी छे
भगवतीसूत्रभा.३	८९९	२६	ये पल्योपम करतां त्रिभाग अधिः	तृतीय लाग अधि ये पल्योपम
उत्तमाध्ययन	४४८	२	...तपःकृत्वा तृतीय- भवे मुक्ति गतः	तपः कृत्वा तस्मिन्नेव भवे मुक्ति गतः।
"	"	१३	तृतीय भव में मुक्ति लाभ किया	उसी भव में मुक्ति लाभ किया
"	"	२५	त्रीण लवमां मुक्ति ने लाल करेद छे	तेज लवमा मुक्ति ने लाल करेद छे.
दशाश्रुतस्कन्ध	१७४	२	यतस्तै रत्कृष्टार्द्ध पुद्गल	यतस्तैरत्कृष्टदेशो- नार्धपुद्गल
"	१७४	१२	देशजन पुद्गल	देशजन अर्ध पुद्गल
"	१७४	१२	देशजन पुद्गल	देशजन अध'पुद्गल

दशाश्रुत स्कन्ध के दसवें अध्ययनमें हिंदी एवं गुजराती में दशों निदानों के प्रकरण में जहां-जहां त्रैवेयक शब्द है वहां वहां 'सौधर्म' ऐसा पाठ सुधारकर पढ़ना चाहिए.

राजप्रश्नीयसूत्र भा. २ दूसरेका शुद्धि पत्रक

	शुद्ध	पेज	पार्क
अशुद्ध	शुद्ध		
मडंबसि	मडंबसि	१	१२
कर्वटे	कर्वटे	२	२
बेने	बेनी	२	२७
वस्तीम	वस्तीमां	२	२८
देवज्जूई	देवज्जूई	३	१३
भग्यतामुपगता	भोग्यतामुपगता	४	३
कबट	कर्वटे	४	९
सबन्धिकं	संम्बन्धिकं	४	१७
अमंतेत्ता	आमंतेत्ता	४	२२
जणयए	जणवए	५	१
नयरा	नयरी	५	१
सेयावयाए	सेयवियाए	५	२
दुप्पयच्चउप्पय मियपपसु	दुप्पयचउप्पयमियपसु	५	१२
भगवतम्	भगवंतम्	५	१५
केशिवामी	केशिस्वामी	६	७
निवास्थानभूत	निवासस्थानभूत	६	११
चडे	चंडे	८	२४
अपड	आ	८	२६
उत्कोच-लांच	उत्कोचन	९	४
उत्कोच लाच	उत्कोचन	९	१६
पटं जइ	पउंजइ	१०	१९
वहवेन	बहुत्वेन	११	२
व्यापारस्तेन	व्यापारस्तेन	१२	३
इष्टान्	इष्टान्	१२	२५
तस्स ण	तस्स णं	१२	२९
अनुरद्धा	अनुरक्ता	१३	७
प्रमयुत्ता	प्रेमयुक्ता	१३	७
पुत्त	पुत्ते	१३	११
यावत् शब्द प्रकट	यावत् शब्द यह प्रकट	१४	१३

अ तपुरनुं	अंतःपुरनुं	१५	२६
शास्त्रामति	शास्त्रेहामति	१०	१
कर्मण	कर्मण	१०	२६
निश्चयोम	निश्चयोमां	१७	३१
कार्या में	कार्यों में	१८	१०
कथा	कथा	१८	१७
निःश कपण्डे	निःश कपण्डे	१८	२५
सकलार्थने	सकलार्थने	१६	२५
आवागप्रयोगः	आयोगप्रयोगः	२०	२
संप्रयुक्तः	संप्रयुक्तः	२०	४
भोजनावशिष्ट	भोजनावशिष्टे	२०	५
शुश्रूषादि	शुश्रूषादि	२१	१७
अदृष्ट	अदृष्ट	२१	२५
तेण	तेण	२२	१
समृद्धं	समृद्ध	२२	१८
जितशत्रुं नास्ति	जितशत्रुर्नाम	२३	२
उत्तरपौरस्त्ये	उत्तरपौरस्त्ये	२३	१०
जियसत्	जियसत्त	२३	१७
जितशत्रु	जितशत्रु	२३	१९
जसा	जैसा	२३	२१
अन्तेवासाव	अन्तेवासीष	२४	१
जियसत्तस्स	जियसत्तस्स	२४	८
सुत्रार्थ—	सुत्रार्थ	२४	१८
जितशत्रोः	जितशत्रोः	२५	२
राजकज्जाणिक	राजकज्जाणिय	२५	२०
वयासा	वयासी	२६	८
पञ्चप्पिणहा	पञ्चाप्पिणह	२६	१०
महत्थं जाव	महत्थं जाव	२७	८
अब्भितरिया	अब्भितरिया	२७	८
त महत्थं	तं महत्थं	२७	११
चाउग्घंट	चाउग्घंट	२८	१६
अनेक	अनेक	३०	२५
परम सौमनस्थित	परम सौमनस्थित	३२	२५

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पंङ्क्ति
काटुम्बक पुरुषान्	कौटुम्बिकपुरुषान्	३३	२
सकङ्कटावतंसकं	सकङ्कटावतंसकं	३३	८
शरशतद्वात्रिंशत्तूण	शरशतद्वात्रिंशत्तण	३३	२०
दोनों और	दोनों ओर	३४	३०
स तारणवर युक्त	स तोरणवरयुक्त	३४	१
सा है	ऐसा है	३५	२
यादे	न्यादे	३५	१४
दृध्यक्षत दर्वाङ्गरादीनि	दृध्यक्षतदुर्वाङ्गरादीनि	३५	२४
आरापण क्रिया	आरोपण क्रिया	६६	२
आयुध दसे	आयुध पदसे	३६	११
यत्रैत्रे	यत्रैव	३७	१३
केकयाद्ध	केकयाद्ध	३८	३
जितश	जितशत्रू	३८	१३
जियसत्तस्स	जियसत्तुस्स	३८	२१
सावत्थाए	सावत्थीए	३९	४
०/१०६	विहरइ स्र०	३९	६
स्य	तस्य	४०	१४
श्रावत्स्या	श्रवत्स्या	४०	१
उपांग ति	उपागच्छति	४०	४
आद	आदि	४०	५
कुशल प्रश्नादि	कुशलप्रश्नादि	४०	६
सारहि	सारहिं	४०	८
चउग्घंटं	चाउग्घंटं	४०	२१
जिमितभुक्तात्तराग	जिमितभुक्तोत्तराग	४१	२
प्रतोच्छति	प्रतीच्छति	४२	२२
एवं	एव	४२	२२
टीकार्थं	टीकार्थं	४२	२२
पञ्चविधन्	पञ्चविधान्	४३	३१
जियस	जियमाए	४३	३
जेणव	जेणेव	४३	९
			१७

ओयसी	ओयंसी	४४	१२
विद्या धानो	विद्याप्रधानो	४५	२
श्रावस्ती गरी	श्रावस्तीनगरी	४५	५
यत्रव	यत्रैव	४५	६
क्षान्तिप्रधान	क्षान्तिप्रधान	४५	९
सत्यप्रधान	सत्यप्रधान	४	१३
सुहेणं	सुहेणं	४५	३०
तृको	पैतृको	४६	८
श्रावती	श्रावस्ती	४६	१२
तथ	तथा	४७	७
निकपटः	निष्कपटः	४८	१
वय	वयं	४९	८
लेपरहित्यं	लेपराहित्यं	५१	७
व्य	द्रव्य	५१	३१
शौच छे	शौच छे	५१	३२
सिंघाडग	सिंघाडग	५४	६
उदयावस्था	उदयावस्था	५४	२१
धादिकेने	कोधादिकेने	५४	२३
महापथपथेषु	महापथपथेषु	५५	१२
जनात्कलिकेति वा	जनोत्कलिकेति वा	५५	१३
जनोर्मिरिति वा	जनोर्मिरिति वा	५५	१४
सारथि तं	सारथिस्तं	५६	१
लगां के	लगां के	५६	७
निभि	निभिन्ते	५७	२८
महद्भिर्महद्भि	महद्भिर्महद्भि	५८	१
चतुष्पथ	चतुष्पथ	५९	११
मनुष्यां	मनुष्यों	५९	२०
लाग्ये	लाग्ये	५९	२०
इत्यारभ्य	इत्यारभ्य	६०	१
पंजलि	पंजलि	६०	१२
गतोग्रेषु	गतोग्रेषु	६१	४

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पाङ्क
वदाविदएहिं	वंदावंदएहिं	६४	४
करतलपरिगृहीतं	करतलपरिगृहीतं	६४	१०
श्रावत्यां	श्रावस्त्यां	६४	११
देवनुप्रिय !	देवानुप्रिय !	६५	२
व्गारख्यातपायमिति	व्याख्यातप्रायमिति	७०	२
सव्व ओ	सव्वाओ	७०	६
दिसि	दिसिं	७०	८
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१८
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१८
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१९
सव्वओ	सव्वाओ	७०	१९
श्रुत्वा	श्रुत्त्वा	७२	६
अवितहमेय	अवितहमेयं	७३	३
धन्न	धन्नं	७३	८
चत्त सारही	चित्ते सारही	७३	१७
केशिन	केशिनं	७३	२२
गिहिधम्म	गिहिधम्मं	७३	१६
पाव्वयणं	पावयणं	७४	२९
विच्छर्ध	विच्छर्ध	७६	१
शक्कोमि	शक्कोमि	७६	३
मैं ता	मैं तो	७६	१७
सात्त शिक्षा	सात् शिक्षा	७६	१८
न्देहरारत्तम्	सन्देहसहितम्	७९	१
एव	एवं	७९	१०
अश्वदिको	अश्वादिको	७९	१९
परिस्थिति	परिस्थिति	८०	१८
प देशाशिक	देशावकाशिक	८१	१३
प्राण्णातिपातथी	प्राण्णातिपातथी	८१	२२
ध०छा परारभाषु	ध०छा परिभाषु	८१	२३
अश्वरथस्त व	अश्वरथस्तत्रव	८२	१०

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पङ्क्ति
गधन्व	गंधन्व	८२	२
अट्टिमजपेमाणु-	अट्टिमिज्जपेमाणु-	८२	१०
अय	अयं	८२	११
षुछणेणं	पुंछणेणं	८२	१५
जियसत्तणा	जियसत्तुणा	८२	१७
श्रमणापासको	श्रमणोपासको	८३	१
गथुं	गथुं	८३	२६
षावथणाआ	पावयणाओ	८३	२८
निअत्थ	निअंथ	८४	२६
परिपुष्णं	परिपुष्णं	८५	१३
फासुएसाणिज्जेणं	फासुएसणिज्जेणं	८५	२७
पौषधोपयासैः	पौषधोपवासैः	८६	१
काडूक्षारहितः	काडूक्षारहितः	८८	६
चतुर्दश्यष्टमी पौणमास्यः	चतुर्दश्यष्टमी पौर्णमास्यः	८८	३
पौषध	पौषध	९१	१८
मुहुर्मुहुरवलाकयन्	मुहूर्मुहुरवलोकयन्	९२	६
विहरात	विहरति	९२	६
कयाइ	कयाइं	९२	७
सारहा	सारही	९२	११
छत्तेणं	छत्तेणं	९२	१६
अ भंते	अहं भंते !	९३	१६
पसिस्स	पएसिस्स	९३	१९
पाउग्गहणं	पाउग्गहणं	९४	२०
पुरिसवग्गु	पुरिसवग्गु	९५	५
पहिले	पहिले-	९७	१७
महत्य	महत्थं	९९	५
हता	हंता	९९	१०
अभिगमणिज्ज	अभिगमणिज्जे	९९	१०-११
परिवसति	परिवसंति	९९	१२
महार्थं	महार्थं	१००	२

अढाइ	आढाइ	१००	७
ष्येसिस्म	पएसिस्स	१००	१२
योग	योग्य	१०१	१३
	हंता	१०१	२६
हे चित्ते	हे चित्र	१०२	१०
रीसृपों	सरीसृपों	१०२	११
सो सग्गे	सोपसग्गे	१०२	१४
अलिभमनाय	अलिभमनीय	१०२	२३
	बहूनां द्विपदचतुष्पद—		
	मृगपशुपक्षिसरीसृपाणाम्	१०४	१
	द्विपदादयः	१०४	१
पक्षसरीसृपाणा	पक्षिसरीसृपाणां	१०४	७
तद्वनप्रवेशरूपाऽर्थः	तद्वनप्रवेशरूपोऽर्थः	१०४	१०
कुमारसमणं	कुमारसमणं	१०४	२०
पज्जुवासिस्सति	पज्जुवासिस्संति	१०४	२३
उधामिष्ठः	अधामिष्ठः	१०४	२८
पीठलगसेज्जासंफ	पीठफलकसेज्जासं	१०५	१
युमकं	युष्माकं	१०५	५
नमंसि यण्यंति	नमंसिण्यंति	१०५	७
प्रतिहारिकेण	प्रातिहारिकेण	१०५	८
त्तुभं	त्तुभं	१०५	१२
त	तत्र	१०६	१२
सम्मानयियन्ति	सम्मानयिष्यन्ति	१०६	२९
खाद्यं खाद्यं	खाद्यं स्वाद्यं	१०७	३
मज्झ	मज्झ	१०७	१५
यत्रैव	यत्रैव	१०८	६
कुमारमणस्स	कुमारसमणस्स	१०८	२३
डेक्कयाद्धमा	डेक्कयाद्धमा	१०९	२९
दुइज्जमाणे	दूइज्जमाणे	११०	६
पडिहारिणं	पाडिहारिणं	११०	२७
इत्यादि	इत्यादि	१११	१

मृगवगम्	मृगवनम्	१११	१३
विणयेणं	विणएणं	१११	२६
नयरि	नयरिं	११२	१४
यत्रव	यत्रैव	११५	१
वरतरनी संपउत्तेहिं	वरतरुणी संपउत्तेहिं	११५	१८
गह	गिहे	११५	२४
वरतरणी संपउत्तेहिं	वरतरुणी संपउत्तेहिं	११५	३०
तत्रव	तत्रैव	११६	२
श्रावस्ती	श्रावस्तीं	११६	३
समापात्	सभीपात्	११७	१
ससुपविष्टः	ससुपविष्टः	११७	१२
	कामभोगान्	११७	१७
	प्रत्यनुभवन्	११७	१७
सावत्थाआ	सावत्थीओ	११८	२
केशीकुमार मणः	केशीकुमारश्रमणः	११८	७
वस्त्या	श्रावस्त्या	११८	८
श्वेताविका	श्वेतविका	११८	९
कंसिकुमारसमणे	केसिकुमारसमणे	११८	२१
डो०४४	डे०४४	११८	२४
कुमार मणो	कुमार श्रमणो	११९	४
व्याख्या	व्याख्या	११९	१८
केशाकुमार श्रमण	केशीकुमारश्रमण	११९	१८
डे०४५	डे०४५	११९	२२
श्रङ्गाटक	श्रङ्गाटक	१२०	१४
णामं गायं	णामं गोयं	१२१	१४
अवकमंति	अवकमंति	१२१	१४
पूर्वानुपूर्वी	पूर्वानुपूर्वी	१२३	४
जसणं	जस्सणं	१२३	१५
विहरइ	विहरइ	१२३	२९
विउल	विउलं	१२४	९
जुत्तपेव	जुत्तपेव	१२४	११

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पार्ङ्क
सज्जय	सज्जयं	१२४	१३
प्रा दपीठा	प्रासादपीठा	१२५	२
पण	पग	१२५	१८
हुदयभा	हुदयभां	१२५	२३
हु०४	हु०२	१२५	२४
पडिविसज्जे	पडिविसज्जेइ	१२६	१८
भृगवनोयधान	भृअवनोयधान	१२६	२५
उलं जीवियारिहं	विषुलं जीवियारिहं	१२६	३०
उ सने	उसने	१२७	७
पच्चाप्पिणेह	पच्चप्पिणेह	१२७	१०
घंटोवाले	घंटोवाले	१२७	१४
हिजए	हियए	१२७	३०
घंटोवाला	घंटोवाला	१२८	१२
हु०८	हु०८	१२८	२०
क्यं	क्युं	१२८	८
वहुणं	वहूणं	१३०	१३
परमसौमनस्थितः	परमसामनस्थितः	१३०	१९
वहुगणतरम्	वहुगुणतरम्	१३१	१०
आरामगय वा	आरामगयं वा	१३२	३
त चेव	तं चेव	१३२	८
ना लभइ	नो लभइ	१३२	१२
केवलपन्नत धम्म	केवलपन्नतं धम्मं	१३२	२१
केवलपन्नत	केवलपन्नतं	१३२	२३
वाद्यस्वाधेन	खाद्यस्वाधेन	१३५	१
छत्तण	छत्तेण	१३५	१८
महणं	माहणं	१३५	२१
ण	णं	१३५	२९
आरामगत	आरामगतं	१३६	२
उवस्सगयं	उवस्सगयं	१३६	१९
प्रयुत्तासना	प्रयुत्तासना	१३६	२५

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पङ्क्ति
अर्थो	अर्थो	१३७	२७
विजानाहि	विजानीहि	१३८	३
त्र	तत्र	१३८	५
जीवा जावादि	जीवा जीवादि	१३९	९
पदार्थो	पदार्थो	१३९	१७
श्रमण	श्रमण	१४०	१३
दैवत	दैवत	१४१	१
महानेन	माहनेन	१४१	८
उसका	उसकी	१४१	१३
मरणतायै	श्रवणतायै	१४२	१
चित्त	चित्ते	१४३	१२
टीकार्थ	टीकार्थ-	१४३	२८
चाउगघटे	चाउगघंटे	१४४	४५
दिसि	दिसि	१४४	५
मानेप्याम	मानेप्यामि	१४४	१०
प्रदेशी	प्रदेशी	१४५	११
सारहि	सारहि	१४५	१२
धम्मणाइकरवमाण	धम्ममाइकरवमाण	१४५	१९
अयइय	अवइय	१४७	१९
नि सस्थाने	निवासस्थाने	१४७	२७
एयमाणत्तिय	एवमाणत्तियं	१४८	१-२
ए होउ	एवं होउ	१४८	१२
एत खलु	एतत्खलु	१४९	५
तं एहणं	तं एएणं	१४९	१८
तं आसे	ते आसे	१४९	१८
तं एइणं	तं एएण	१४९	३०
तं आमे	ते आसे	१४९	३०
रा किं	रात्रिकं	१५३	१०
राणि	रात्रिक	१५३	१९
दव्व	दव्वं	१५३	२९

शुद्धप्रावे । १-	शुद्धप्रावेश्यानि	१५४	१६
चि सारथी	चित्र सारथी	१५४	२०
गथे।	गथे।	१५४	३०
ख स	खलु स	१५५	२
अत्रय	अत्रैव	१५५	१०
अङ्गत्थिए	अङ्गत्थिए	१५७	३१
निर्विण्णाणा	निर्विण्णाणा	१५८	२७
निर्विण्णाणं	निर्विण्णाणं	१५८	२७
चि सारथिमेव	चित्रसारथिमेव	१५९	३
मूर्वा	चित्रसारथिमेव	१६२	४
हाता है	हाता है	१६२	८
जा	जो	१६२	१४
भस्तर वाणा	भस्तरवाणा	१६२	२७
करेति	करोति	१६३	६
जढ	जडू	१६४	१६
पथ	पथे	१६४	२४
पहीसी राया	पएसी राया	१६५	१४
खल	खलु	१६६	२
पुरि	पुरिसं	१६६	१७
अण्ण जवियत्तं	अण्ण जीवियत्तं	१६६	२१
जीत्तं	जीवितं	१६७	३
अन्नजीवितत्वम्	अन्नजीवितत्वं	१६७	११
पवि चयं	परिचयं	१६७	१५
जड ङ्गुपवासट्ठि	जडं पङ्गुवासति	१६८	२
केशा	केशी	१६८	५
एसे	एसे	१६८	१४
केसा कुमारसमणे	केसी कुमारसमणे	१६८	१८
प्रासुकैपणीयान्नमात्र विनः	प्रासुकैपणीयान्न मात्र जीविनः	१७०	५
श्रुतज्ञान	श्रुतज्ञान	१७२	१३
प्ररार	प्रकार	१७४	६१
केवलवाणे	केवलवाणे	१७४	१८

तथा	तद्यथा	१७५	११
आभिनिवो ज्ञानम्	आभिनिवोधिकज्ञानम्	१७६	४
अ विष्टम्	अङ्गप्रविष्टम्	१७६	५
श्रुतज्ञान विषयक	श्रुतज्ञानविषयकं	१७६	५
प्रज्ञप्तं	प्रज्ञप्तं	१७६	९
भिनिवोधिक ज्ञान	आभिनिवोधिक ज्ञान	१७६	१३
अवधि न	अवधिज्ञान	१७६	१९
क्षायोपशमिह	क्षायोपशमिह	१७६	२६
श्रुतज्ञानम्	श्रुतज्ञानम्	१७७	४
तत्	तत्	१७७	६
एतद्रूपं	एतद्रूपं	१७७	८
उधविसामि	उधविसामि	१७८	१३
चित्तण	चित्तेण	१७८	२७
हेतुः	हेतुः	१७९	२
केसीकुमारश्रम	केशीकुमारश्रमण	१८०	१५
मनाऽमः	मनोऽम	१८५	१
करभरवृत्ति	करभरवृत्ति	१८५	५
त	तं	१८६	२२
अध ए	अधम्मिए	१८६	२२
स्वभ्यापि	स्वभ्यापि	१८७	१०
शरार	शरीर	१८७	२२
सरीर	सरीरं	१८७	२९
ना	नो	१८८	१३
मनाऽम	मनोऽम	१८८	१७
विशेषणावशिष्टे	विशेषण विशिष्टो	१८९	५
खल	खलु	१८९	६
पएसि	पएसि	१८९	१४
राय	रायं	१८९	१४
एव	एवं	१८९	१४
सूरियकता	सूरियकता	१८९	१६
तुम	तुमं	१८९	१५

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पङ्क्ति
ण्हाय	ण्हायं	१८९	१६
च्छित्त	च्छित्तं	१८९	१७
सञ्चालंकार भूसिय	सञ्चालंकार भूसियं	१८९	१७
तुम	तुमं	१९०	२
पाग्यणं	परियणं	१९०	४
त	तं	१९०	६
सम्	सम्मं	१९०	११
ण	णं	१९०	१२
लागं	लोगं	१९१	५
पएसि	पएसिं	१९१	१३
पएसि	पएसिं	१९१	१५
देवि	देविं	१९१	१७
प्रदेशन्	प्रदेशिन्	१९२	४
हंडं	डंडं	१९२	१०
हत्थविन्नगं	हत्थ भिन्नगं	१९२	२५
व्यपरापय	व्यपरोपयेत्	१९३	१
शक्रोति	शक्रोति	१९४	६
शाघ्रमागन्तुं	शीघ्रमागन्तुं	१९५	१
शक्राति	शक्रोति	१९५	१
शक्राति	शक्रोति	१९६	३
”	”	”	५
तुम सवात्	तुम इम वात	१९६	१२
सूर्यकाता देवा	सूर्यकान्ता देवी	१९८	१
नि क	निजक	१९९	४
मगर्यामथामिको	नगर्या मथार्मिको	२००	२
करभरवृत्ति	करभरवृत्ति	२००	३
ना शक्राति	नो शक्रोति	२००	८
शरारम्भा	शरीरयो -	२०१	१
वयासा	वयासी	२०१	५
अह	अहं	२०१	१३

अशुद्ध	शुद्ध	पेज	पङ्क्ति
आज्जया	अज्जिया	२०२	४
सरीर	सरीरं	२०२	६
आगतु	आगतुं	२०२	६
अन्न	अन्नं	२०२	८
ना	नो	२०२	१४
वृत्त	वृत्ति	२०४	१
सा काभवादति	सा काभवदिति	२०६	७
इत्यात्राह	इत्यत्राह	२०८	३
वौच	पौत्र	२०८	७
वृत्ति	वृत्ति	२०८	९
"	"	"	१३
त माद्	तस्मात्	२०९	३
दिव्वेहि	दिव्वेहिं	२१०	१४
कामभोगेहि	कामभोगेहिं	"	१४
"	"	"	१७
अज्झाववणो	अज्झोववणो	२१०	१७
गधे	गंधे	२११	५
ठाणेहि	ठाणेहिं	२११	७
भिगार कडुच्छुय	भिगार कडुच्छुय	२११	१९
धार्मिकी	धार्मिको	२१२	२०
पडिसुणेज्जाहि	पडिसुणेज्जासि	२१२	२५
शीघ्रमागन्तम्	शीघ्रमागन्तुम्	२१३	३
विशेषणोसे	विशेषणोसे	२१३	७
देवलाक	देवलोक	२१३	११
हुणोववन्नए	अहुणोववण्णए	२१३	३०
उहे	उन्हे	२१४	१४
दिव्वेहि	दिव्वेहिं	२१४	१८
शक्काति	शक्कोति	२१५	२
अधुनापपन्नक	अधुनोपपन्नक	२१६	२
केश	केशी	२१७	१४

लामं	लेगं	२१७	१७
सधिवालेहिं	संधिवालेहिं	२१९	१२
जीवित	जीवितं	२१९	१४
णगगए	णिगगए	२१९	२२
अन्न	अन्नं	२१९	२३
भते	भंते	२२०	१
अउकुभीए	अउकुंभिए	२२०	१
अन्न	अन्नं	”	३
अयामयेन	अयामयेन	२२१	३
ौवारिक	दौवारिक	२२०	८
किचित्	किंचित्	२२२	२
जओ ण	जओ णं	२२२	१२
अवादित्	अवादीत्	२२२	५
रोएज्जा	रोएज्जा	२२२	२२
समपन्नाः	सम्पन्नाः	२२४	३
माडम्बक	माडम्बिक	२२४	१५
प्रवाच	प्रवाल	२२४	१८
पोयषु	पोषु	२२४	२७
नाभ्त	नास्ति	२२८	१
काञ्चत्	किञ्चित्	२२८	१
सुण्टु	सुण्टु	२२८	३
भेरिच	भेरिं च	२२९	२६
से तेणं	से णूणं	२३०	२८
वहया	वहिया	२३०	२८
वा जाई	जाव राई	२३०	३१
अंकुष्ठितगतिः	अकुष्ठितगतिः	२३१	१६
सद्दहाहि	सद्दहाहि	२३१	२७
सरीर	सरीरं	२३२	१७
ऐ ।	ऐसा	२३३	६
भते	भंते !	२३३	११
जीवयाओ	जावियाओ	२३२	१५

तामयस्कुम्भी	तामयस्कुम्भीं	२३४	१
कृमि कुम्भीं मिच	कृमि कुम्भी मिच	२३४	१
जण्हाणं	जम्हाणं	२३४	३०
पश्यमि	पश्यामि	२३६	४
प्रतज्ञा	प्रतिज्ञा	२३६	१३
सु तिष्ठि	सुप्रतिष्ठिता	२३६	१३
केसकु रसमणं	केसिकुमारसमणं	२३९	२३
सादृश्यम्	सादृश्यम्	२४१	२४१
अचर्मैष्टक दुदुघण	अचर्मैष्टकद्रुघण	२४३	१६
ता पभू	हंता पभू	२४४	४
अपः जत्तो	अपज्जतत्तो	२४४	८
नायमर्थसः मर्थः	नायमर्थः समर्थः	२४५	३
ोरिल्लएणं	कोरिल्लएण	२४५	२४
जैसे	जैसे	२४६	१३
एग	एगं	२४९	९
प्रज्ञा	प्रज्ञा	२४९	१८
गथी	नथी	२४६	२६
मं	महं	"	२७
परिह्वत्तए	परिवहित्तए	२५०	३२
जएणं	जइणं	२५१	२४
उथर	उथन	२५१	३०
प्रभु	प्रभुः	२५२	९
जैसा	जैसा	२५२	१७
पएसि	पएसि	२५३	१९
तरुणा	तरुणो	२५५	१
शिल्पापगतः	शिल्पोपगतः	२५५	१
ना	नो	२५६	२
रोजामम्	राजानम्	२५७	२
वाहयायामुपस्थानशालाया	वाहयायामुपस्थानशालायां	२६२	१६
वाहयायामुखस्थानशालायां	वाहयायामुपस्थानशालायां	२६२	२८
पएस	पएसिं	२६३	१७

		पेज	पङ्क्ति
अशुद्ध	शुद्ध		
जीयस्स	जीवस्स	२६३	२१
खल	खलु	२६५	२
पएसा	पएसी	२६६	१
एव	एवं	२६६	१
वयासा	वयासी	२६६	१
पदाना	पदानां	२६८	७
अम्ह	अम्हं	२६९	१०
पा इ	पासइ	२७०	४
तसि	तंसि	"	९
एगत	एगंते	२७०	११
सकपो	संकप्पे	२७०	१३
संकप्प	संकप्पं	२७०	१५
झियायमाण	झियायमाणं	२७१	१
तेसि	तेसिं	२७१	१
उवएमलद्धे	उवएसलद्धे	२७१	१
खाइम	खाइमं	२७१	९
राथं	राथं	२७१	२२
कच्चित्	केच्चित्	२७२	१
वनापजीविन !	वनोपजीविन !	२७२	१
ज्यातिश्च	ज्योतिश्च	२७२	२
ज्यातिर्भाजनं च	ज्योतिर्भाजनं च	२७२	२
केइ पुरिसो	केइ पुरिसा	२७२	८
विज्झवेत्त	विज्झवेत्ता	२७३	६
झियाइ	झियायइ	२७५	१२
वधइ	बंधइ	२७८	१६
कराति	करोति	२७९	१
अरणि	अरणिं	२७९	१
आर	और	२७९	७
तएण	तएणं	२७९	१४
"	"	२७९	२६

त्वाणच्छसि	त्वमिच्छसि	२८०	५
अग्निपात्	अग्निपात्रे	२८२	१६
पारकरं	परिकरं	२८५	१५
पि वेशयति	परिवेशयति	२८६	२
परिषो	परिषदो	२८७	४
मञ्जे	मज्जे	२८७	१५
वर्तव्यावर्तव्यनिर्णायिकानां-	कर्तव्याकर्तव्यनिर्णायिकानां	२८८	३
वक्तुम्	वक्तुम्	२८८	९
अवहेलहितुम्	अवहेलयितुम्	२८८	१०
योग्याऽग्नि	योग्योऽस्मि	२८८	१२
भा :	भावः	२८८	१३
जाणाम	जाणामि	२८८	१९
अवरज्ज्	अवरज्ज्इ	२८८	१९
पाडलोमं	पडिलोमं	२८९	१०
वामवामेन	वामं वामेन	२९२	१
अनष्ट	अनिष्ट	२९२	९
स्य	यस्य	२९३	४
ऋपपरिषदि	ऋपि परिषदि	२९३	१९
विरुद्धेनेत्यर्थः	विरुद्धेनेत्यर्थः	२९३	२९
त	तं	२९४	७
अयमे द्रूफ	अयमेतद्रूफ	२९४	११
यात्	यावत्	२९५	१
काणेन	कारणेन	२९५	३-४
यावच्छे न	यावच्छब्देन	२९६	४
प्रतिलोम प्रतिलोमेन	प्रतिलोम प्रतिलोमेन	२९६	५
भङ्गत्रयाक्त	भङ्गत्रयोक्त	२९९	१३
कि	किं	३०३	२
पणसा	पणसी	३०३	१६
व्यजने	व्यजते	३०४	३
हुस्ताभलक्ष	हुस्ताभलक्षत्	३१२	२३
नातिनिपुणाः	नीतिनिपुणाः	३०८	३

शुक्लं	शुक्लं	३१२	२३
हस्ती	हस्ती	३१३	१
णिच्छिड्हाइ	णिच्छिड्हाइं	३१४	८
सर	सतर	३१८	१२
कार शालाथाः	कार शालायाः	३१९	३
काट शालायाः	कार शालायाः	३१९	७
त	तं	३२१	१
अह	अहं	३२१	१
एव	एवं	३२१	३
मोक्ष्यामि	मोक्ष्यामि	३२१	७
समासरणं	समोसरणं	३२१	२७
एव	एवं	३२३	४
अङ्गाढबंधणवद्धे	अङ्गाढबंधणवद्धे	३२३	१९
करोति	करंति	३२४	५
तए ण	तए णं	३२५	७
विस्तारवली	विस्तारवाली	३२६	१३
पासति	पासंति	३२७	२५
जाघ	जाव	३२७	२८
सुवहं	सुवहुं	३२८	८
पडिसुणेति	पडिसुणेति	३२८	१०
तउययारं	तउयभारं	३२८	१३
तत्थण	तत्थणं	३२८	१४
बंध चए	बंधित्तए	३२८	१५
बहुह	बहुहि	३२९	३१
प्रारंभ	प्रारंभ	३३०	१०
दासीदासगामहिगवेलकं	दासीदासगोमडिसगवेलकं	३३१	१
प्रायश्चित्ताः	प्रायश्चित्ताः	३३१	२
मानुप्यकान्	मानुप्यकान्	३३१	४
पंचविहे	पंचविहे	३३१	३०
लाह	लोह	३३२	५
उ गच्छाइ	उवागच्छइ	३३२	१९

प,२थे।	पा२थे।	३३३	२४
अग्राभिकायाः	अग्रभिकायाः	३३५	३
सर्मापि	समीपे	३३६	५
सङ् हो	सङ्गहो	३३६	११
वर्णन	वर्णनं	३३७	५
प्रासादावन्तंसकान्	प्रासादावतंसकान्	३३७	१२
प्रा श्रित्ताः	प्रायश्रित्ताः	३३७	१६
घृतदध्यक्षताः	घृतदध्यक्षताः	३३७	१६
विलास्यमानाः	विलास्यमानाः	३३७	२२
प्रत्यनुभवता	प्रत्यनुभवन्तो	३३७	२३
अल्पमल्ये	अल्पमूल्ये	३३७	२६
द्वात्रिंशद्द्वैः	द्वात्रिंशद्द्वैः	३३७	३०
तित्मयः	विस्मयः	३३८	२
दुष्टा सानम्	दुष्टावसानम्	३३८	५
अहममि	अहममि	३३८	६
तमाद्धेतोः	तस्माद्धेतोः	३३८	११
अन्तराक्तः	अनन्तरोक्तः	३३८	१३
न	तं	३३८	१७
इच्छाम	इच्छामि	३३८	१७
देवानुग्रि णामन्तिके	देवानुग्रियानामन्तिके	३३९	१
णमंसेज्जा	णमंसेज्जा	३३९	९
सत् र	सत्कार	३३९	१२
त्र णामाचार्याणां	त्रयाणामाचार्याणां	३४२	२
जनामि	जानामि	३४२	२
वृत्ति	वृत्ति कल्पयेत्	३४२	५
मदन	मर्दन	३४२	१५
अक्षमत्वा	अक्षमयित्वा	३४२	४
णमंसेज्जा	णमंसेज्जा	३४२	९
सत् र	सत्कार	३४२	१२
केशिकुमारश्रमणः	केशीकुमारश्रमणः	३४४	१
प्रदेशा	प्रदेशी	३४४	१

कीदृशी	कीदृशी	३४४	७
खादिमेन	स्वादिमेन	३४५	३
केसि	केसिं	३४५	१३
ए	एवं	३४६	१
कनलं	कल्लं	३४६	२५
अंतेउर	अंतेउर	३४८	७
परिणनो	परिणतो	३४९	२
म सि	मनसि	३४९	३
इ थमेव	इत्थमेव	३४९	३
प्रिलोम	प्रतिलोम	३४९	६
व्यारु ।	व्याख्या	३४९	७
श्रे :	श्रेयः	३४९	७
शयन नन्तरं	शयनानन्तरं	३५०	४
िशुक	किंशुकः	३५०	७
सौमस्यितः	सौमनस्यितः	३५१	१०
बोधमिति	बोधमिति	३५१	१३
स्वकृत तिकूल	स्वकृत प्रतिकूल	३५१	२२
महातिमहालायां	महाति महालायायां	३५२	११
यङ्ग	सङ्ग	३५२	१५
उपदेय	उपदेश	३५२	२२
सुरिकं प मुहाणं	सुरिकंतप्पमुहाणं	३५२	२८
पएसिराय	पएसिरायं	३५३	२५
पहातरेथ	पहारेत्थ	३५३	२५
उवसोभेमाणा	उवसोभेमाणा	३५४	४
हासज्जड	हसिज्जड	३५४	७
भदन्द	भदन्त	३५५	२
णट्टसरलाइवा	णट्टंमालाइवा	३५५	२२
रमणिज्जे	ग्मणिज्जे	३५५	२३
वनपण्डा	वनपण्डो	३५६	१
ना	नो	३५६	६
ना फन्टिए	नो फन्टिए	३५६	८

णा	णो	३५६	८
उवसोममाणे	उवसोभमाणे	३५६	९
तयाण	तयाणं	३५६	१६
”	”	”	२८
जयाण	जयाणं	३५६	२९
तयाण	तयाणं	३५७	२५
तजा	तया	३५७	२६
पुाव्व	पुर्व्वि	३५८	२९
केशाने	केशीने	३५९	९
हरितक । ज्य	हरितकराराज्य	२५९	२५
जनेक	अनेक	३६१	१६
खादिमं	स्त्रादिमं	३६३	१०
अतेउरं च	अंतेउरं च	३६४	८
खल्ल	खलु	३६५	२
विमक्त,नि	विमक्तानि	३६६	१
यद्देनारभ्य	यद्दिनारभ्य	३६६	८
अतेउरं	अंतेउरं	३६६	१३
रज्ज	रज्जे	३६६	१६
रायं	राज्यं	३६७	१२
जपभियं	जप्पभियं	३६७	२४
केणि सत्थ	केणविसत्थ	३६७	१९
राज्यश्रिय	राज्यश्रियं	३६८	२
सेय	सेयं	३६९	७
विषय	विप	३६९	११
पूर्व्वमूत्रे	पूर्व्वमूत्रे	३७०	७
न सव	इन सव	३७०	१७
पडेजागरमाणी	पडिजागरमाणी	३७०	२२
अज्झत्थिए	अज्झत्थिए	३७०	२९
वलं= न्यं	वलं=सैन्यं	३७१	१
घा य थापनगृहम्	घान्यस्थापनगृहम्	३७१	२
विहरते	विहरति	३७१	४

शस्त्र योगेन	शस्त्रप्रयोगेन	३७१	६
मारयित्वा	मारयित्वा	३७१	७
स्थापयेत्वा	स्थापयित्वा	३७१	८
कार नया	कारयन्त्या	३७१	९
कोष	कोषं	३७१	२३
जनपद	जनपदं	३७२	१
आ मगतो	आत्मगतो	३७२	९
पाल तो	पालयतो	३७२	४
सुरियकं । देवी	सुरियकंता देवी	३७३	९
निठुरा	निठुरा	३७४	६
दाहकं ते	दाहकते	३७४	७
विहइ	विहइ	३७४	७
दुरघ स	दुरध्यास	३७४	१७
पाउम्भू ।	पाउम्भूया	३७४	१८
वित्तज्जर परिगयसरीरे	पित्तज्जर परिगयसरीरे	३७४	२०
डुया	कडुया	३७४	१९
ि हरइ	विहरइ	३७४	२०
करिंमश्चित्	कस्मिश्चित्	३७४	२
तस्य	तस्य	३७५	७
नमो थुणं	नमोत्थुणं	३७७	१२
त थ यं	तथ गयं	३७७	१४
संपलियंकनिसने	संपलियंक निसन्ने	३७७	२२
अ तिए	अंतिए	३७७	३२
त सेव	तस्सेव	३७८	७
प्रा ।तिपात	प्राणातिपात	३७८	८
उण	उष्ण	३७८	१७
परिया	परित्याग	३७८	१९
त ड णिं	तं ड्याणिं	३७८	२१
प्र याख्यान	प्रत्याख्यान	३७९	१२
उ हें	उन्हें	३७९	१२
सतारक	संस्तारक	३७९	२१

सपल्यङ्	संपल्यक	८०	१
श न	शब्देन	३८०	३
नमस्	नमस्कार	३८०	१६
भवान्	भगवान्	३८०	१६
र्वे	सर्वे	३८१	३
समत	समस्त	३८१	१२
याव िव	यावज्जीव	३८१	१७
अतिचा ाः	अतिचाराः	३८३	२
सामाधिकः	सामायिकः	३८३	४
सूर्याभे	सूर्याभे	३८३	४
देव वेन	देवत्वेन	३८३	५
माप्तम्	समाप्तम्	३८३	६
अधुनपपेन्नक	अधुनोपपन्नक	३८३	१३
भाषाननः पर्याप्त्या	भाषामनः पर्याप्त्या	३८४	१
सूर्याभदेवेन	सूर्याभदेवेन	३८४	८
उपार्जितः	उपार्जितः	३८४	१०
इंदि पज्जत्तीए	इंदियपज्जत्तीए	३८४	१२
इन्द्रय	इन्द्रिय	३८४	१३
भते	भंते	३८५	१
सेण	से णं	३८५	१८
ण	णं	३८५	२१
सूर्याभ स	सूर्याभस्स	३८५	२२
भवन्त	भवन्ति	३८६	१
आयोगप्रयोगसं युक्तानि	आयोगप्रयोगसंप्रयुक्तानि	३८६	३
िच्छिर्दित	विच्छिर्दित	३८६	३
अन् मस्मिन्	अन्यतमस्मिन्	३८६	४
कुञ्चणि	कुलाणि	३८६	८
अङ्काड	अङ्काड	३८६	८
दिच्चाड	दिच्चाड	३८६	८
आ योग	आयोग	३८६	१४
चा	चार	३८७	१३

गन्धगयंसि	गन्धगयंसि	३८९	३
विहकृताणं	विहकृताणं	३८९	६
सुकुमाल पाणपाय	सुकुमालपाणिपाय	३८९	६
पियदंसण	पियदंसणं	३८९	८
दारय	दारयं	३८९	८
भविष त	भविष्यति	३८९	१०
व्यतिक्रातेषु	व्यतिक्रान्तेषु	३८९	११
दारगोसि	दारगंसि	३८९	१५
दारगस	दारगस्स	३८९	१८
दिवसे	दिवसे	३९०	६
त	तं	३९१	१
मित्तणाइ	मित्तणाइ	३९१	३
मंगल	मंगल	३९२	२७
भोगणमंडवसि	भोगणमंडवंसि	३९३	९
करेगे	करेंगे	३९३	१२
परिभुजेमाणा	परिभुंजेमाणा	३९३	२७
परमसुइभू ।	परमसुइभूया	३९३	३१
वन्धि परिजनस्य	सम्बन्धिपरिजनस्य	३९४	१
मित्र-ज्ञात	मित्र-ज्ञाति	३९४	११
त सेव	तस्सेव	३९४	१०
धम्मे	धम्मे	३९४	२५
करिसति	करिस्संति	३९५	२७
संप्राप्ते	संप्राप्ते	३९६	४
फिरने	फिर वे	३९६	२०
।यश्चित्तौ	प्रायश्चित्तौ	३९७	१
म आस्वादन्तौ	आस्वादयन्तौ	३९७	१०
आद	आदि	३९७	१५
इ रेके	दूसरे के	३९७	२०
वधयतः	वधयिष्यतः	३९८	८
जिनप्ररूपिते	जिनप्ररूपिते	३९८	१०
दृढ प्रतिज्ञ	दृढप्रतिज्ञस्य	३९८	२१

वेल	वे लोग	३९८	२१
वगृहात्	स्वगृहान्	३९९	२
वडभियाह	वडभियाहिं	४००	२
पदिभुजमाणे	परिभु जेमाणे	४००	९
परां गज्जमाणे	परंगिज्जमाणे	४००	१२
खीर धाड ए	खीरधाड ए	४००	२३
वर्वरीभः	वर्वरीभिः	४०१	२
वकुशिका भः	वकुशिकाभिः	४०१	२
हे-वहलीहिं	वहलीहिं	४०१	२७
ध कञ्चुकि	धरकञ्चुकि	४०२	२
अवपाहिज्जमाणे	अवयासिज्जमाणे	४०२	२७
रिक्षिप्तः	परिक्षिप्तः	४०३	२
वहुप्रकाराभिः	बहुप्रकाराभिः	४०३	८
गिरिकंदरमल्लीण	गिरिकंदरमल्लीणे	४०३	२६
युवति मूहः	युवति समूहः	४०४	८
ह ताड्	हम्तात्	४०४	१२
अन्यया	अन्यस्या	४०४	१४
	गिरिकन्दरालीनः	४०५	२
पाडचारे	पडिचारं	४०६	१
वृह	वृहं	४०६	१
दढप्रतिज्ञं	द्रढप्रतिज्ञं	४०६	८
दढपड्ढणं	दढपड्ढणं	४०६	११
दढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४०६	१२
तिहिकरणकूखत्त	तिहिकरणकूखत्त	४०६	२३
नेष्ट :	नेप्यतः	४०७	१
दृरकं	दारकं	४०७	१
कणतश्च	कणतश्च	४०७	२
नण	नणं	४०७	८
गणि र हाणाओ	गणियप्पहाणाओ	४०७	९
वयवीहिं	वन्युवीहिं	४०७	३०
वयुि ज्जं	वन्युविज्जं	४०८	१४

दृढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४०९	१६
तथाहि	तथाहि	४१२	८
नगरमानम्	नगरमानम्	४१५	२
दृढ िज्ञं	दृढप्रतिज्ञं	४१८	२
संमाणेस्संति	सम्माणिस्संति	४१९	२२
"	"	"	३०
ज्जोव्वणगमणुपत्ते	जोव्वणगमणुपत्ते	४२०	२
परिपक्क	परिपक्कं	४२२	३
उम्मुक्कवालभाव	उम्मुक्कवालभावं	४२४	१४
खडयं	खाडयं	४२५	१७
पद्मात्पलमिति	पद्मोत्पलमिति	४२६	३
दृढप्रतिज्ञ	द्रढप्रतिज्ञ	४२६	९
पउमेइवा	पउमेइवा	४२६	२५
भेत्स यत्ते	भोत्स यत्ते	४२७	१
अ गारिर्तां	अनगारिर्तां	४२७	२
ईय्यां मिता	इय्यां समितो	४२७	२
तगा । ओ	अगाराओ	४२७	९
आजं वसे	आजि वसे	४२७	१७
वद्धित	वर्द्धित	४२७	१९
भग्गेणं	भग्गेणं	४२७	२९
दृढ कुमार	द्रढकुमार	४२८	१०
भणवयण कायजोगे	भणवयण कायजोगे	४२८	३०
वस्त्रभोगेष	वस्त्रभोगेषु	४२९	२
मविप्यति	भविप्यति	४२९	४
ना	नो	४२९	४
श सहस्र	शतशहस्र	४२९	४
ने पलिप्तं	नोपलिप्तं	४३०	१
सच्चआ	सच्चओ	४३१	४
वृती ।	वृतीया	४३२	८
सवथा	सर्वथा	४३३	२
कायात्सर्ग	कायोत्सर्ग	४३३	२१

कायगुप्तिनिगद्यते	कायगुप्तिनिगद्यते	४३३	३३
हांगे	होंगे	४३५	१२
दोनां	दोनां	४३५	१५
समुपपादके	समुपादके	४३७	२
नहीं	नहीं	४३९	१७
कृञ्जर	कुञ्जर	४३९	१०
अर्थात् ईष	अर्थात्—कपाय	४३९	१७
निरवसानम्	निरवसानम्	४४०	८
तजनाः	तर्जनाः	४४३	३
जस्मद्वाए	जस्मद्वाए	४४३	२१
वेयचेरत्रासे	वंभचेरत्रासे	४४३	२२
चरिमेहिं	चरिमेहिं	४४३	३३
आमनः	आत्मनः	४४४	३
कदेगे	कादेगे	४४४	१७
इत्यादिकवचनरूपा	इत्यादि वचनरूपा	४४५	७
यस्य कृते	यस्य कृते	४४६	३
सेव भंते !	सेवं भंते !	४४७	१
माग	मार्ग	४४८	१०

॥ समाप्त ॥

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल
व्रतिविरचितया सुबोधिन्याख्यया व्याख्यया
समलङ्कृतम् ।

श्री राजप्रश्रीयसूत्रम्

(द्वितीयो भागः)

गौतमस्वामी पुनः पृच्छति—

मूलम्—सूरियाभेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविद्धी सा दिव्वा देव
ज्जुई किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता ? किण्णा अभिसमन्नागया ?, पुव्व-
भवे के आसी ? किं नामए वा किं गोत्ते वा ? कयरंसि वा गामसि वा
नगरंसि वा निगमंसि वा रायहाणीए वा खेडंसि वा कव्वडंसि वा
मडंवसि वा पट्टणंसि वा दोणमुहसि वा आगरंसि वा आसमंसि वा
सवाहसि वा संनिवेसंसि वा किवा, दच्चा, कि वा भोच्चा, कि वा
किच्चा, किं वा समोयरित्ता कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माह-
णस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सुच्चा निसम्म
सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्वा देविद्धि दिव्वा देवज्जुई लद्धा पत्ता
अभिसमण्णागया ? ॥ सू० १८ ॥

छाया—सूर्याभेण भदन्त ! देवेन सा दिव्या देवर्द्धिः सा दिव्या देव-
द्युतिः कथं लब्धा कथं प्राप्ता कथम् अभिसमन्नागता ? पूर्वभवे क आमोत्त ?

‘सूरियाभेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविद्धी सा दिव्वा इत्यादि ।

मन्त्रार्थ—(सूरियाभेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविद्धि सा दिव्वा
देवज्जुई किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता, किण्णा अभिसमन्नागया ?) हे भदन्त !

सूरियाभेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविद्धी सा दिव्वा इत्यादि

मन्त्रार्थ—(सूरियाभेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविद्धी सा दिव्वा
देवज्जुई किण्णा लद्धा ? किण्णा पत्ता, किण्णा अभिसमन्नागया ?) हे भदन्त !

किन्नामको वा ? किं गोत्रो वा ? कनमग्निन् वा ग्रामे वा नगरे वा निगमे वा राजधान्यां वा खेटे वा कर्बटे वा मडम्बे वा पत्तने वा द्रोणमुखे वा आकरे वा आश्रमे वा संवाहे वा सन्निवेशे वा किं वा दत्त्वा; किं वा

सूर्याभदेवने वह दिव्यदेवर्द्धि वह दिव्य देवधुति, कैसे लब्ध की, कैसे प्राप्त की, अर्थात् किस प्रकार से उपार्जित की ? किम प्रकार से उपार्जित की गई वह उमने अपने आधीन को, और कैसे उसने अपने आधीन होने के बाद उसे अपने भोग के योग्य बनाया ? (पुर्वभवे के आसी ? किना मए वा ? किं गोत्रे वा ? कयरंसि वा गामंसि वा ? नगरंसि वा निगमंसि वा रायहाणीए वा खेडंसि वा कब्बडसि वा मडंबंसि वा पट्टणंसि वा द्रोणमुहंसि वा आगरंसि वा आसमंसि वा संवाहंसि वा) तथा पूर्वभव में वह किस जाति का था ? क्या इसका नाम था ? गोत्र से वह कौन था ? तथा किस ग्राम में—वृत्तिवेष्टितस्थान में, किस नगर में—अष्टादशकरवर्जितवस्ती में, किसनिगम में—प्रभून्तर वणिग्जननिवासस्थान में, किस राजधानी में—राजाके निवास से युक्त स्थान में किस खेट में धूलिप्राकारपरिवेष्टितस्थान में किस कर्बट में क्षुल्लकप्राकारपरिवेष्टितस्थान में, किस मडम्ब में सार्द्धक्रोशद्वयान्तर्ग्रामान्तररहित स्थान में, किस पत्तन में जलमार्गयुक्तस्थान में, किस द्रोणमुख में—जलस्थलमार्गोपेत जननिवास में, किस आकर में—सुवर्णरत्ना

सूर्याभदेवे ते दिव्य देवर्द्धि ते दिव्य देवधुति डेवी रीते उपार्जित करीने तेने पोताने अधीन बनावी. अने स्वाधीन भनेली दिव्यदेवर्द्धि वगेरेने तेणु लोग योग्य डेवी रीते बनावी ? (पुर्व भवे के आसी ? किं नामए वा ? किं गोत्रे वा ? कयरंसि गामंसि वा नगरंसि वा निगमंसि वा रायहाणीए वा खेडंसि वा कब्बडसि वा मडम्बसि वा पट्टणंसि वा द्रोणमुहंसि वा आगरंसि वा आसमंसि वा संवाहंसि वा) अने पूर्वभवमां ते कथं जतिनेो हुते ? तेतु शुं नाम हुतुं ? तेतुं गोत्र शुं हुतुं ? ते कथा गाममां—वृत्ति वेष्टित स्थानमा, कथा नगरमां—अष्टादशकर जेमां देवामां आवे नडि ते वस्तिमा, कथा निगममां—वणिग् लोके जेमां वधारे संध्यामां रडेता होय ते नवासस्थानमां, कथं राजधानीमां—राज जे नगरमां रडेता होय अने शासन यथावतो होय ते स्थानमां, कथा जेटमां माटीनी दीवाल जेने आभेरे भनेली छे तेवी वस्तीमा, कथा कर्बटमां—नानी दीवालथी परिवृत्त स्थानमां, अठि गाठ सुधी हर हर णीए डेअ वस्ती होय नडीं तेवा स्थानमां कथा पट्टनमां—जलमार्ग युक्त स्थानमा, कथा द्रोणमुखमां जलस्थल मार्गोपेतजन-

भुक्त्वा, किं वा कृत्वा, किं वा समाचर्य कस्य वा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माह्वनस्य वा अन्तिके एवमपि आर्य धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा निशम्य सूर्याभेण देवेन सा दिव्यः देवर्द्धिः दिव्या देवर्द्धितः लब्धा प्राप्ता अभिसमन्वागता? ॥ सू० १८ ॥

‘सूर्याभेण’ इत्यादि।

टीका--हे भदन्त ! सूर्याभेण देवेन सा दिव्या=देवसम्बन्धिनी देवर्द्धिः=देवसम्बन्धिनी सातिशयविमानादि ऋद्धिः कथं=केन प्रकारेण लब्धा=

दिक की उत्पत्तिवाले स्थान में. किस आश्रम में-तापसनिवास स्थान में, किस संवाह में-किसानों द्वारा धान्य की रक्षा के निमित्त निर्मित दुर्गभूमिस्थान में, अथवा किस संनिवेश में-समागतसार्थवाहादि के निवासस्थानमें, किं वा दद्या. किं वा भोज्या, किं वा विज्ञा, किं वा समापरिज्ञा कस्य समणस्स वा तहास्वस्स माह्वणस्स वा अन्ति ए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोन्वा निस्सम्म सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्या देविर्द्धी दिव्या देवर्द्धि, लब्धा. प्राप्ता. अभिसमणायया) अभयदान, सुपात्रदान, कम्णादानादिकों में से कौन से दान को देकर, आचाम्ल आदि तपों में अथवा अन्य किसी समय में कौन से अरस चिरस आदि आहार को खाकरके, प्रतिक्रमण, प्रमार्जन आदि किस कृत्यको करके अथवा किस प्रकार के शीलादिक का समाचरण करके किस तथारूप श्रमण-निर्यन्थ साधु के, अथवा किस छादश-व्रतधारी श्रावक के, पास में एक भी तीर्थकर प्रतिपादित पापनिवृत्ति-निरवध वचन सुनकरके एव उन वचनों को आदेयरूप मानकर हृदय में

निवसमा. इया आश्रमा-सुवर्णवृत्त-वज्रेरे व्याधी नीष्टणे छे तेवा स्थानमा, इया आश्रमा-तापस निवास स्थानमा, संवाहमा-धान्यनी रक्षा भाटे भेत्तुनाये ते स्थान विशेष पर दुर्गं व्यता इती होय ते वन्तीमा, अथवा इया संनिवेशमा-सार्थवाहा इया आर्याने रहे ते स्थान विशेषेना. (किंवा दद्या. किंवा भोज्या. किंवा विज्ञा किंवा समापरिज्ञा कस्य वा तहास्वस्स समणस्स वा माह्वणस्स वा अन्ति ए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोन्वा निस्सम्म सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्या देविर्द्धी दिव्या देवर्द्धि, लब्धा. प्राप्ता अभिसमणायया)

उपार्जिता? कथं=केन प्रकारेण प्राप्ता=उपार्जिता सती स्वायत्ती भूता! कथं=केन हेतुना अभिसमन्वागता अभिमुख्येन सम्=साङ्गत्येन अनु=पश्चात्-स्वायत्ती भवनानन्तरम् आगता=भोग्यतामुपगता?, तथा-सा दिव्या देव-द्युतिः=देवसम्बन्धिनी शरीराभरणादिकान्तः कथं लब्धा? कथं प्राप्ता? कथम् अभिसमन्वागता?, तथा-पूर्वभवे=पूर्वजन्मनि स कः=किञ्जानीय आसीत्? किन्नामको वा स आसीत्? किं गोत्रः=गोत्रेण वा स क आसीत्? तथा--कतमस्मिन् वा ग्रामे-वृत्तिवेष्टिते नगरे-अष्टादशरवर्जिते, निगमे-प्रभूतर वणिगुजननिवासस्थाने राजधान्याम्=राज्ञो निवासोपलक्षिते स्थाने वा खेटे-धूलिप्राकारपरिवेष्टिते, कबटे-क्षुल्लपाकारपरिवेष्टिते, मडम्बे-सार्द्धक्रोशद्वयान्तर्ग्रामान्तररहिते, पत्तने,-जलमार्गयुक्ते स्थाने, द्रोणमुखे-जलस्थलमार्गोपेत्ये जननिवासे. आकरे=सुवर्णरत्नार्द्युत्पत्तिस्थाने, आश्रमे तापसनिवासस्थाने, संवाहे-कृषीवलैर्धान्यरक्षार्थं निर्मिते दुर्गभूमिस्थाने, सन्निवेशे-समागतसार्थवाहादिनिवासस्थाने, किं वा-अभयदानसुपात्रदानकरुणादानादिकं दत्त्वा, किं वा आचामाम्लादितपस्सु अन्यममयेऽपि च अरसविरसादिकं भुत्त्वा, किं वा-पौषधप्रतिक्रमणप्रमार्जनादिकं कृत्वा, किं वा-शीलादिकं समाचर्य=विनाय, कस्य वा तथारूपस्य श्रमणस्य=निग्रन्थमाधो वा माहनस्य=द्वादशव्रतधारिश्रावकस्य वा अन्तिके=ममीपे एकमपि आर्यम्=आर्यसबन्धिकं-तीर्थकरप्रतिपादितमित्यर्थः, सुवचनं=पापनिवृत्तिरूप निरवद्यवचनं श्रुत्वा=आकर्ष्य, निशम्य=तद्वाक्यमादेयनया हृद्यवधार्य सूर्याभेण देवेन सा दिव्या देवर्द्धि दिव्या देवद्युतिर्लब्धा प्राप्ता अभिसमन्वागता? इति ॥ सू. ९८

मूलम्—‘गोयमाइ’ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं अमंतेत्ता एवं वयासी

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे केयइअद्धे नामे जणवए होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे। तत्थ णं

धारण करके इस सूर्याभदेव ने वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति उपार्जित कि हैं? अपने आधीन की है? और अपने भोग के योग्य बनाई है? ॥

टीकार्थ इसका स्पष्ट है ॥ सू० ९८ ॥

आदेयइपथी स्वीकारीने हृद्यमां धारण करीने सूर्याभदेवे, ते दिव्य देवर्द्धि दिव्य देव-द्युति भेणवी छे? पोताने आधीन बनावी छे? अपने पोताना साटे लोग थेअथ बनावी छे.” टीकार्थः—आनेो स्पष्ट छे. ॥ ९८ ॥

केय इअच्छे जणयए सेयवियाणोसं नयरा होत्था, रिद्धत्थिमियसमिच्छा
जाव पडिरूवा । तीसे णं सेयावयाए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे
दिसीभाए एत्थणं मिगवणे णाम उज्जाणे होत्था सव्वोउग्रपु-
प्फफलसमिद्धे रम्मो नदणंवणणप्पगासे सायलाए सुभसुरभितीय-
लाए छायाए सव्वओचेव समणुवई पासाईए जाव पडिरूवे । तत्थ
णं सेयवियाए णगरीए पएसी णासं राया होत्था, महया हिमवंत जाव
विहरइ । अधम्मिए अधम्मिट्ठे अधम्मक्खाई अधम्माणुए अधम्म-
पलोई अधम्मपजणणे अधम्मसीलसमुयायारे अधम्मेण चेव वित्तिं
क्प्पेमाणे 'हणछिद्धिंदि'—पवत्तए लोहियपाणी पावे चंडे रुद खुद्धे
साहसिए उक्कचण—वंचण—माया—नियडि—कूड—कवड—साड संप-
ओगवहूले निस्सोले निव्वए निग्गुणे निम्मरे निपच्चक्खाणपोसहो-
ववासे वहुणं दुप्पयचउप्पयमियपसुपक्खीसिरिसवाणघायाए वहाए
उच्छेयणयाए अधम्मकेऊ समट्टिए, गुरूणं णो अच्चुट्टेइ. णो विणयं
पउंजइ, सयस्स वि यणं जणवयस्स णो सत्तं करभरवित्ति पवत्तेइ । सू. १. १।

छाया—गौतम ! इति श्रमणो भगवान महावीरो भगवतं गौतमम्
आमन्त्र्य एवमवादीत्—

'गोयमाइ' समणे भगवं महावीरे भगव गोयमं आमन्तेत्ता' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(गोयमाइ समणे भगवं महावीरे भगव गोयम आमन्तेत्ता
एवं एवासी) हे गौतम ! इस प्रकार मैं श्रमण भगवान महावीरने भग
वान गौतम को संबोधित करके इस प्रकार कहा—(एवं एवत्तु गोयमा !

'गोयमाइ' समणे भगवं महावीरे भगव गोयमं आमन्तेत्ता' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(गोयमाइ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमन्तेत्ता एवं
एवासी) हे गौतम ! इस प्रकार मैं श्रमण भगवान महावीरने भग
वान गौतम को संबोधित करके इस प्रकार कहा—(एवं एवत्तु गोयमा !

तस्या खलु श्वेतविकाया नगर्या वहिः उत्तमपौरस्त्ये दिग्भागे अत्र खलु
मृगवनं नाम उद्यानम् आसीत्-सर्वत्रैकं पुष्पफलमसृद्धं रम्यं नन्दनवनप्रकाश-
शुभसुरभिशीतलया छायाया सर्वत्र एव समनुवद्ध प्रामादीयं यावत् प्रति-
रूपम् । तत्र खलु श्वेतविकाया नगर्या प्रदेशी नाम राजा आसीत्-महाहि-
मवद-यावद् विहरति । अधार्मिकः अधर्मिष्ठः अधर्मसुयातिः अधर्मानुगः

उत्तरपुरस्थिते द्वितीयाभागे पन्थ नं मिगवणे णामं उज्जाणे होत्था) उम श्वेत
विका नगरा के ईजान कोने में मृगवन नामका उद्यान था (सन्ध्वो उयपुष्फ-
फलममिद्धे रम्ये, नंदनवनपगामे सुभ सुरभिशीयलाए छायाए सर्वत्रो चैव
समणुवद्धे पासार्डेण जाव पहिरुवे) यह उद्यान छहों ऋतुओं के पुष्पों एवं
फलों से युक्त था. अतः मनोरम था नन्दनवन के जैसा था. शुभ-सुखावद
होने से अच्छी, एवं सुरभि-मनोज्ञ एवं शीतस्पर्शवाली ऐसी छाया से
सर्वत्र यह समनुवद्ध-युक्त था. प्रामादीय था यावत् प्रतिरूप था (सन्ध ए
सैयत्रियाए णगरीण पणमी णाम राया होत्था) उम श्वेतविका नगरी
में प्रदेशी नामका राजा था. (महया हिमवन जाव विहरत्) उममें
महाहिमवान, महामलय, मन्दर-(मेरुपर्वत) एवं महेन्द्र के जैसा था
(अधम्मिण, अधम्मिट्टे, अधम्मकवाट्टे, अधम्मणुण अधम्मपलोई, अधम्म
पजणणे अधम्मसीलममुयायारे, अधम्मणे चैव वित्ति कप्पेमाणे) परन्तु यह
धार्मिक नहीं था अधर्माचारी था, अतिशय रूप से अधर्माचरणशील था,
अतएव अधर्माद्वारा ही यह जगत में प्रसिद्ध हुआ था अधर्मानुयायी

नगरीए वाहया उत्तरपुरस्थिते द्वितीयाभागे पन्थ नं मिगवणे णाम उज्जाणे
होत्था) ते येतनजरीना उद्यान होत्था मृगवन नाम उद्यान इत्तं. (सन्ध्वो उय
पुष्फ.फलममिद्धे रम्ये. नंदनवनपगामे सुभसुरभिशीयलाए छायाए सर्वत्रो
चैव समणुवद्धे पासार्डेण जाव पहिरुवे) एव उद्यान पश्कतुओना पुष्पो तेभ-
इत्येयी मसृद्ध इत्तु. रम्येयी नन्दनवन केवुं मनोरम इत्तुं. शुभ-सुखावद होवा गच्छ
आदी, रम्ये सुन्धि-मनोज्ञ-एवं शीतस्पर्शवाली छायायी ते सर्वत्र समनुवद्ध-युक्त
इत्तुं. प्रामादीय इत्तु. यावत् प्रतिरूप इत्तु. (सन्ध नं सैयत्रियाए णगरीण पणमी
णाम राया होत्था) ते येतन्नि नगर्यां प्रदेशी नामे राजा इतो. (महया हिमवन
जाव विहरत्) एते महाहिमवान, महामलय, मंदर (मेरुपर्वत) एते महेन्द्र
एते अधम्मिण, अधम्मिट्टे, अधम्मकवाट्टे, अधम्मणुए, अधम्मपलोई,
अधम्मपजणणे, अधम्मसीलममुयायारे, अधम्मणे चैव वित्ति कप्पेमाणे
ए ते पण्डिते इमे नहि अधर्माचारी इतो, पूजन् अधर्माचरन्तुमा प्रवृत्त-इते

अधर्मप्रलोकी अधर्मप्रजननः अधर्मशीलसमुदाचारः अधर्मैवैव वृत्तिकल्पयन्
 'जहि छिन्धि भिन्धि' प्रवर्त्तकः लोहितपाणिः पापः चण्डो रौद्र क्षुद्रः साहसिकः
 उत्कञ्चन-वञ्चन-माया-निकृति-कूटकपटसतिसम्प्रयोगबहुशो निश्शीलो
 निर्वृतो निर्गुणो निर्मर्यादो निष्प्रत्याख्यानपौषधोपवासो बहूनां द्विपदचतु-

था, अधर्म का ही निरन्तर चिन्तवन किया करता था, प्रजाजनों में भी वह
 केवल प्रकर्षरूप से अपने उपदेशों द्वारा अधर्म को ही भरा करना था,
 उसे ही प्रोत्साहित किया करता था, कूटर कर इसके स्वभाव में अधर्म
 भाव भरा हुआ था, और कार्य भी यह इसी प्रकार के कियो जाता था—
 यहाँतक कि यह अपनी जीविका भी अधर्म से ही चलाया करता था, तथा
 ('हण-छिंद-भिंद'-पवत्तए लोहितपाणी पावे चडे, रुदै, खुदै, साहसिए, उक्कञ्चण,
 वञ्चण, माया-नियडि-कूड-कवड-साइ संपओगबहुले, निस्सीले, निव्वए,
 निर्गुणे, निम्मेरे, निष्पच्चक्खाणपोसहोववासे बहूणं) मारो, काटो, दो टुकडे
 करदो इत्यादि वाक्यों द्वारा जीवों के हिसादिक कार्यों में अपने आश्रित
 जनों को प्रवृत्तिशील बनाया करता था, इसके साथ सदा रक्त से भरे
 रहते थे, यह साक्षात् पापका अवतार था, क्यों कि पापकर्म में यह सदा
 परायण बना रहता था, यह बहुत अधिक क्रोधी था, रौद्र-क्रूररूप होने
 से भयानक था, तुच्छ बुद्धिवाला होने से क्षुद्र था, सहस्राकर्मकरणशील

होता, जैसी ते अधर्मीना इपमां न जगतमा प्रसिद्ध थई गयो हुतो, ते अधर्मा-
 नुयायी हुतो ते रातदिवस अधर्मनुं न चिंतन कर्यां करतो हुतो, प्रजानी सामे पणु
 ते अधर्माचरण तरइ प्रवृत्त थवाना उपदेशो आपतो रहेतो हुतो, ते अधर्मने न
 प्रोत्साहित करतो रहेतो हुतो, तेना अणु अणुमां अधर्म न व्यापइ थई रही
 हुतो, तेना अथा कार्यो पणु अधर्मथी प्रेशधने थतां हुतां ते पोतानुं लरणु
 पोषणु अणु अधर्मना आधारे न करतो हुतो, तेमण ("हणछिंद भिंद
 पवत्तए लोहितपाणी पावे चडे, रुदै, खुदै साहसिए, उक्कञ्चण, वञ्चण,
 मायानियडि-कूड-कवडे साइसंपओगबहुले, निस्सीले, निव्वए, निर्गुणे, निम्मेरे,
 निष्पच्चक्खाणपोसहोववासे बहूणं) मारो, कापो, जे कडा करी नापो वगेरे वाक्यो
 वडे ते एवोना हुसा वगेरे कार्योना पोताना आश्रितोने प्रवृत्तिशील राथतो
 हुतो, तेना हाथो सदा रक्तथी भरडायेला रहेता हुता, ते साक्षात् पापने अवतार
 हुतो, डेभडे ते सदा पाप परायण न रहेतो हुतो, अपड अणुन क्रोधी हुतो, रौद्र-
 क्रूररूप होवाथी लयानक हुतो, तुच्छबुद्धिवाणो होवाथी क्षुद्र हुतो, सहस्राकर्मकरणशील

मृगपशुपक्षिमरीचपाणां घाताय दधाय उच्छेदनाय अधर्मकेतुः समुत्थितः,
गां नो अभ्युत्तिष्ठति नो वितयं प्रयुङ्क्ते, रयकस्यापि च जनपदस्य नो
रक करमरुष्टिं प्रदर्शयति ॥ मृ० ११ ॥

से अर्थात् विना विचारे कार्य करनेवाला होने से माहस्मिन् था, उन्कोच-
व, वंचन-परप्रतारण, माया-परवंचनबुद्धि, निकृतिगृहमाया, कूट-गूढमाया
ढंकरने के लिये अन्यमाया करना, कपट-वेष भाषा आदिको बदलना-
रीत बना लेना, इन सब का जो सानिसंप्रयोग-प्रकर्षरूप से व्यापार
व्यापार से यह व्याप्त था, तथा, निःशील-शीलवर्जित था, निर्द्वंद्व-
नादिककुक्कृत्यरूप पापों से विरति का अभाववाला होने से व्रतरहित था,
दृष्टि-क्षान्त्यादिक गुणों के अभाव से युक्त होने के कारण निर्गुण था,
मर्यादाः-मर्यादा रहित था, परस्त्री वर्जनादिरूप मर्यादा से रहित होने के
कारण निर्मर्याद था, मत्याख्यान, पीपथ और उपवास इनसे रहित था,
अनेक (दुत्पयचउत्पयमियपसुपवस्वी स्तिरिस्त्राणघायाए यहाए उच्छेद-
याए, अधम्मकेऊ नमट्टिण) द्विपद-मनुष्य वगैरह, चतुष्पद-मृगादि वगैरह
प्रायः की गाय वगैरह, सरीसृप-भुजपरिसर्प एवं उरःपरिसर्प-नकु
र्ष आदि इन सब की हत्या करने, इन्हें मारने में-चोट पहुँचाने
और प्राण रहित करने के लिये अधर्मरूप केतुग्रह के जैसा उत्पन्न
मा था, अर्थात् केतुग्रह के उदित होने पर लोक में जिस प्रकार से

'गोयक्षा !-इति--

टीका--गौतमस्वामिनः प्रश्नं श्रुत्वा श्रमणो भगवान् महावीरो भगवन्तं गौतमस्वामिनं 'गौतम' इति आम्बन्ध्य=सम्बोधय एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्-हे गौतम ! एवं खलु त्वम् जानीहि-तस्मिन् काले=अस्या अवसर्पिण्याश्वतुर्यारिकलक्षणे काले, तस्मिन् समये केशिस्वामि विहरणोपलक्षिते समये इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे=मध्यजम्बूद्वीपे भारते वर्षे=भरतक्षेत्रे केकयाद्वं नाम जनपदो=देश आसीत् । अत्रेदं बोध्यम्-केकयदेशस्य अर्द्धम् आर्यजननिवासस्थानम्, अथ च अनार्यजननिवासस्थानम् । आर्यानार्ययोर्निवासभूतत्वात् केकयस्य अर्द्धद्वयं पृथक्पृथग्जनपदत्वेन विवक्षितमिति । स केकयाद्वं जनपदऋद्धस्तिमितसमृद्धः-तत्र-ऋद्धःनभःस्पर्शिवहुलप्रासादयुक्तो-बहुलजनसंकुलश्च, स्तिमितः स्वचक्रपगचक्रभयरहितः, समृद्धः=धनधान्यादिपरिपूर्णा, पदत्रयस्य कर्मधारयः । तत्र खलु केकयाद्वं-जनपदे श्वेतविका नाम नगरी आसीत् । सा नगरी ऋद्धस्तिमितसमृद्धा यावत्-प्रतिरूपा । यावत्पदेन-औपसर्पातिकसूत्रोक्तचम्पानगरीवर्णनपरः पदसमूहोऽत्रापि बोध्यः । प्रतिरूपा=सर्वात्मना च आसीत् । तस्याः खलु श्वेतविकायाः नगर्या बहिः बाह्यप्रदेशे उत्तरपौरस्त्ये द्विग्भागे=ईशानकोणे अत्र खलु सुगवन् नाम उद्यानम् आसीत् । तत्र उद्यानं सर्वर्तुकपुष्पफलसमृद्धम्=पङ्कजसम्बन्धिपुष्पफलसमन्वितं रम्यं=

अनेक विप्लव (उपद्रव) होते हैं, उसीप्रकार से इस राजा के शासन होने पर देशभर में त्रास था, (गुरुणां णो अब्भुद्धेइ, णो विणय-पउजइ, सयस्स वि य णं जणवयस्स णो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेइ) आते हुए मातापितादिरूप गुरुजनों को देखकर यह उनका आदर करने के लिये खंडों नहीं होता था, उनके विषय में वह विनययुक्त नहीं होता था, अर्थात् अपने जनपद केकयाद्वं जनपद के प्रजाजनों की कर लेकर भी पालनरूपवृत्ति यथार्थरूप से नहीं करता था ।

विप्लवो (उपद्रवो) थाय छे, तेमञ्ज आ राजना शासनकाणमां समस्तं देशमां त्रासं अने अशांतिनुं वातावरणु प्रसरी रह्युं इतुं (गुरुणां णो अब्भुद्धेइ, णो विणय-पउजइ, सयस्स वि य णं जणवयस्स णो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेइ) मातापिता वंजरे गुरुजनोने आवता लोधने पणु ते तेमने आदर करवा भाटे उलो थतो न उतो. तेमनी सामे ते विनयशील थधने रहेतो न उतो तेमञ्ज पोताना जनपदं केकयाद्वं जनपदनी प्रण पासेथी टेकस लधने पणु ते सरस रीते तेमनु पालनं रक्षणु करतो न उतो.

मनोरम नन्दनननपकाश = नन्दनवननमदृश, शुभसुरभिजीतक्या शुभा = सुखा
 वहन्वेत शुभासुरभिः = मनोज्ञा शीतला = शीतस्पर्शयुक्ता, पदत्रयस्य कर्मधारयः
 तथाभूतया छायाया सर्वत एव = सर्वप्रदेशाप्रच्छेदेनैव समनुवद्धा = युक्ता प्रासा-
 दीयां यावत् प्रतिरूपां चासीत् । तत्र खलु श्वेतदिकार्या नगर्या प्रदेशी
 नाम राजा आसीत् । न प्रदेशी राजा महाद्विमवन्महागलयमन्दरमहेन्द्रसारो
 यावद् विहरति । प्रदेशीराजस्य सकलं वर्णनमौपपातिकसुतोक्तकृणिक-
 राजवद् बोध्यम् । स प्रदेशी राजा तु - अधार्मिकः - धर्मेण चरति धार्मिकः, न
 धार्मिकोऽधार्मिकः - अधर्माचारी, अधार्मिकस्तु सामान्यधर्माचरणेनापि भवति,
 अत आह - अधर्मिष्ठ इति । अधर्मिष्ठः = स्नातिजयाधर्माचरणशीलः,
 अधर्मक्यातिः - अधर्मेण ख्यातिर्यस्य स तथा अधर्मद्वारेण जगति
 प्रसिद्धिं गतः, अधर्मनुगः - अधर्मम् अनुगच्छतीति - अधर्मानुगः - अधर्मानु-
 यायी, अधर्मप्रलोकी - अधर्ममेव प्रलोकते = निरन्तर विचारयति यः सः - अधर्म-
 चिपयकविचारपरायणः, अधर्मप्रजननः - अधर्ममेव प्रकृतेण जनयति = उत्पा-
 दयति लोकेषु यः सः प्रजास्वपि अधर्मभावोत्पादक इत्यर्थः, तथा अधर्मशील
 समुदाचारः - अधर्म एव शील = स्वभावः समुदाचारः = अनुष्ठानं च यस्य
 स तथा अधर्ममयस्वभावयुक्तः अधर्मानुष्ठानपरायणश्चेत्यर्थः, तथा - अधर्मे-
 णैव वृत्तिं = भीतिं कल्पयन् = कुर्वन्, तथा - जीवान प्रति जहि = मारय, छिन्धि =
 विदारय भिन्यि = विधाकुम् इत्यादि सारथैः प्रवर्त्तकः = प्राथितान जनान प्रवर्त्त-
 यिता, धनपत्र - लोहितपाणिः = रक्तखरष्टितम्नः, पापः = पापम्यम्नः - सर्वदा
 पापपरायणत्वान्, चण्डः = चण्डम्यम्नः - तीव्रतरकोपावेमान् शत्रुः = भयानकः = क्रूररूप-
 न्यान्, भुद्रः = तुच्छपट्टित्वात् नाशिनः = यस्या काम करणशीलः - अधर्माश्रित
 कारित्वान्, तथा - उरुधन - धन - गाय - निरुति - अट - वासट - नातिमप्रयोग
 पट्टलः - तट - उ कानम् = उन्कोचयत्पम्, 'उन्कोच' - 'नाश' इति भाषा

टीकार्थ - इत्यादि, सूर्यार्थ - जेता ती है - श्वेतदिकार्या नगरी का
 वर्णन औपपातिकस्य से वर्णित नवानगरी जेसा ती नानना नाशिये-
 यती घात यथा इत्यदि से प्रकट है यह है तथा प्रदेशी राजा का भी वर्णन
 औपपातिकस्य से वर्णित हुए वर्णित राजा से जेसा ती वर्णनना ॥ छ. ९५ ॥

सूर्य
 १६
 ०१

प्रसिद्धः । वञ्चनं=परप्रतारणं नाया=परवञ्चनबुद्धिः, निकृतिः=गूढमाया, कूटम्=गूढमायाच्छादनार्थं मन्यसायाकरणम्, कपटं=वेषभापाविपर्ययकरणम्, एषां यः सातिसम्पयोगः=प्रकर्षेण व्यापारतेन बहुलः-व्याप्तः, तथा-निश्शीलः=शीलवर्जितो ब्रह्मचर्यरहितत्वात्, निर्वृतः=व्रतरहितो हिंसादिविरत्यभावात्, निर्गुणः=गुणरहितः-क्षान्त्यादिगुणाभावात्, निर्मर्यादः=मर्यादारहितः-परस्त्री-परिवर्जनादिरूप मर्यादारहितत्वात्, निष्प्रत्याख्यानपौषधोपवासः=प्रत्याख्यान-पौषधोपवास वर्जितः, तथा-बहूनां द्विपद-चतुष्पदमृगपशुपक्षिसरीसृपाणां, तत्र-द्विपदाः=मनुष्या-दासीदासादयः, चतुष्पदाः ये मृगाः=आरण्याः, पशवो=प्राभ्या गवादयश्च ते-चतुष्पदमृगपशवः, पक्षिणः-प्रसिद्धाः, सरीसृपाः=भुजोरुभ्यां सर्पण शीलां गोधादयः, एषां पदानामितरेतरयोगद्वन्द्वः, तेषां घाताय=विनाशनाय षधाय=ताडनाय उच्छेदनाय=निर्मलनाय अधर्मकेतुः=अधर्मरूपकेतुग्रह इव समुत्थितः=समुद्गतः। केतुग्रहे समुदिते सति लोके विप्लवो भवति, तथैवास्मिन् नृपतौ शासके सति जनपदे त्रासो वर्तते । तथा-स गुरुणां नो अभ्युत्तिष्ठति=आगच्छतो गुरुन्=मातापित्रादीन् दृष्ट्वा तेषामादरं कर्तुं न अभ्युत्थाता भवति, तेषु=पित्रादिगुरुजनेषु विनयं नो प्रयुङ्क्ते=विनययुक्तो न भवति. तथा-स प्रदेशी राजा स्वकस्यापि च जनपदस्य=केकयाद्जनपदस्य खलु करभरवृत्तिं-करात्=करंगृहीत्वा यो भरः प्रजानां पालनं तद्रूपा या वृत्तिस्तां सम्यक्=याथातथ्येन न प्रवर्त्तयति=न विदधाति । स्वजनपदस्यापि रक्षणकर्मणि समुद्युक्तो न भवतीत्यर्थः ॥सू० ९९॥

मूलम्—तस्स णं पएसिस्स रन्नो सूरियकन्ता नाम देवी होत्था, सुकुमालपाणिपाया धारिणी वण्णओ । पएसिणा रन्ना सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सहे ख्वे जाव विहरइ ॥ सू० १०० ॥

छाया--तस्य खलु प्रदेशिनो राज्ञः सूर्यकान्ता नाम देवी आसीत्, सुकुमालपाणिपादा धारिणीवर्णकः । प्रदेशिना राज्ञा सार्द्धम् अनुरक्ता अविरक्ता इष्टान् शब्दान् रूपाणि यावद् विहरति ॥ सू० १०० ॥

‘तस्स णं पएसिस्स रन्नो’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ--(तस्स णं पएसिस्स रन्नो) उस प्रदेशी राजा की (सूरियकन्ता नाम देवी होत्था) सूर्यकान्ता नामकी रानी थी (सुकुमालपाणिपाया

‘तस्स णं पएसिस्स रन्नो’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ,--(तस्स णं पएसिस्स रन्नो) ते प्रदेशी राजनी (सूरियकन्ता नाम देवी होत्था) सूर्यकान्ता नामे राणी હતી. (सुकुमालपाणिपाया धारिणीवर्णओ)

टीका-‘तस्य णं’ इत्यादि—

तस्य=सूर्योक्तस्य खलु प्रदेशिनो राज सूर्यकान्ता नाम देवी=राज्ञी
 आसीत् । सा सूर्यकान्ता देवी सुकुमालपाणिपादा-सुकुमालं=मातिशयकोमलं
 पाणिपादं=हस्तौ पादौ च यस्याः सा तथाभूताऽऽसीत् । सूर्यकान्तायाः सर्व
 वर्णनं धारिणीवद् बोध्यम् । एतदेव सूचयितुमाह=धारिणीवणओ’ इति
 औपपानिकग्रन्थोक्तधारिणीवद् बोध्यम् । सा सूर्यकान्ता देवी प्रदेशिना राज्ञा
 स्मार्द्धं=सह अनुगृह्णा=मानिशयप्रेमयुक्ता अविरक्ता=प्रातिकूल्यं गतेऽपि पत्यो
 स्वयं सदा ममन्नवदना सती इष्यन्=अभिलषितान्, शब्दान् रूपाणि यावद्=
 गन्धान् रसान् स्पर्शाश्चेति पञ्चविधान् मनुष्यान्=मनुष्यमस्वन्धिनः
 कामभोगान् पत्यनुभवन्ती=उपभुञ्जाना विहरति ॥सू० १००॥

मूलम्—तस्स णं पणसिस्स रण्णो जेट्ठे पुत्त सूरियकंताए देवीए
 अत्तए सूरियकंते नामं कुमारे होत्था. सुकुमालपाणिपाए जाव पडि
 रूपे । मे णं सूरियकंते कुमारे जुवराया वि होत्था, पणसिस्स रन्तो

धारिणीवणओ) इसके साथ पैर आदि अथवा बड़े ही सुकुमार थे. इसका
 पूर्णवर्णन धारिणी रानी के जैसा ही है. धारिणी का वर्णन औपपानिक
 सूत्र में दिया गया है। (पणमिणा रन्तो सद्धि अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे महे
 रूपे जाव विहर) प्रदेशी राजा के साथ यह मानिशय प्रेम युक्त बने
 होकर अभिलषित मनुष्य मंत्रयि कामभोगों को भोगती थी, यदि राजा
 कभी प्रतिश्ल भी हो जाता तो उस समय यह उसने प्रतिश्ल नहीं
 बनती. पत्युन सदा ममन्नवदन ली रहती. वहां ‘शब्दरूप’ से रूप गंध, रस
 और स्पर्श ये पांच प्रकार के कामभोग गृहीत हुए हैं।

टीकार्थ स्पष्ट है ॥ सू० १०० ॥

रजं च रट्टं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्टागारं च पुरं च अंते
 उरं च सयमेव पञ्चवेक्खमाणे पञ्चवेक्खमाणे विहरइ ॥सू० १०१॥

श्याया—तस्य खलु प्रदेशिनो राज्ञो ज्येष्ठः पुत्रः सूर्यकान्ताया देव्याः
 आत्मजः सूर्यकान्तो नाम कुमार आसीत्, सुकुमालपाणिपादो यावत् प्रति-
 रूपः । स खलु सूर्यकान्तः कुमारो युवराजोऽप्यासीत्, प्रदेशिनो राज्ञो राज्यं
 च राष्ट्रं च वाहनं च बलं च कोसं च कोट्टागारं च पुरं च अन्तःपुरं च
 स्वयमेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणः प्रत्युत्प्रेक्षमाणो विहरति ॥ १०१ ॥

‘त एणं पएस्सिस्स रण्णो’ इत्यादि ।
 सूत्रार्थ—(त एणं पएस्सिस्स रण्णो जेट्ठे पुत्ते सूरियकंताए देवीए अत्तए
 सूरियकंते नामं कुमारे होत्था) उस प्रदेशी राजा के पुत्र था, जिसका नाम
 सूर्यकान्त था यह सूर्यकान्तादेवी से उत्पन्न हुआ था (सुकुमालपाणिपाए
 जाव पडिरुवे) इसके हाथ-पग बडेही सुकुमार थे. यावत् यह प्रतिरूप-सर्वोत्तम
 था. यहां यावत् शब्द प्रकट करने के लिये प्रयुक्त हुआ है कि औपपातिक
 सूत्रोक्त धारिणी के वर्णन में आगत पदसमूह में पुल्लिङ्ग की विभक्तियों
 लगाकर सूर्यकान्त का वर्णन करना चाहिये. (से णं सूरियकंते कुमारे
 वि होत्था) यह सूर्यकान्त कुमार युवराज भी था. अतः वह पएस्सिस्स रन्नो
 रजं च रट्टं च बलं च वाहणं च कोट्टागारं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव पञ्चु-
 वेक्खमाणेर विहरइ) प्रदेशी राजा के राष्ट्रादिसमुदायरूप राज्यका, जनप-
 दरूप (देश राष्ट्रका, सैन्यरूप बल का, हस्त्यादि एवं शिविकादिरूप वाहन

‘त एणं पएस्सिस्स रण्णो’ इत्यादि ।
 सूत्रार्थ—(त एणं पएस्सिस्स रण्णो जेट्ठे पुत्ते सूरियकंताए देवीए
 अत्तए सूरियकंते नामं कुमारे होत्था) (ते प्रदेशी राजने पुत्र इतो. सूर्यकान्त
 नाम इतुं. ते सूर्यकान्ता देवीना गर्भ्थी-उत्पन्न थये इतो. (सुकुमालपाणिपाए
 जाव पडिरुवे) तेनां हाथ पंग णडुण सुकामण इतां. यावत् ते प्रतिरूप-सर्वोत्तम
 इतो. अहीं यावत् शब्दने प्रयोग अटला भाटे करवाभां आव्थे छे के औपपातिक
 सूत्रना धारिणीना वर्णनमां ने पढे आव्थां छे तेमां पुल्लिङ्गनी विलक्षित्ता लगाडीने
 सूर्यकान्तं वर्णन समञ्जु लेधये. (से णं सूरियकंते कुमारे जुवराया वि होत्था)
 ये सूर्यकान्त कुमार युवराज पणु इतो अथी (पएस्सिस्स रन्नो रजं च रट्टं च
 बलं च वाहणं च कोसं च कोट्टागारं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव पञ्चु
 वेक्खमाणे र विहरइ) प्रदेशी राजना राष्ट्रादि समुदायरूप राज्यतुं, जनपदरूप
 राष्ट्रतुं, सैन्यरूप णणतुं, इस्ति वगेरे अने शिणिका वगेरे विडनतुं, लांटागाररूप

टीका—'नमस्य णं इत्यादि—

नस्य न्वलृ पूर्वोक्तस्य प्रदेशिनो राजो ज्येष्ठः पुत्रः सूर्यकान्तायाः
देव्या आत्मजः=अद्वजातः स्वर्गान्तो नागकुमार आसीत्, स कुमारः सुकुः
मानपाणिपादो वाचस्पतिरूपश्च आसीत् । वाचस्पतेन औपपत्तिकमुत्रोक्त-
धारिणीवर्णकग्रन्थः पृष्टिद्वन्द्वेन विपणिमन्त्राच्च ग्राह्य इति । स न्वलृ सूर्य-
कान्तकुमारो युवराजोऽपि आसीत् । स सूर्यकान्तो युवराजः प्रदेशिनो
राजो राज्यं=राष्ट्रादिगमुदायान्मकं च, राष्ट्र=जनपद, वलं=सैन्यं, वाहन=
हस्त्यादिकं शिविकादिकं च, कोश=भाण्डागारं शोथानार=शान्यगृहं पुरं=
नगरं, अन्तःपुरं च स्वयमेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणः प्रत्युत्प्रेक्षमाणः निरीक्षमाणो
विहरति-राज्यगणादि सर्वव्यवस्थां पश्यतीत्यर्थः ॥ मू० १०१ ॥

मूलम्—'नस्य णं पणसिस्स रन्तो जेट्टु भाउयवयंसए चित्ते णांमं
सारही होत्था अहे जाव बहुजणस्स अपरिभूए नाम-दंड भंय उव-
प्पयाणअत्थसत्थ ईहामइविसारए उप्पनियाए वेणइयाए कम्मयाए
पारिणामियाए चउव्विहाए वुद्धीए उव्वेए. पणसिस्स रणो बहुसु-
कज्जेसु य कारणेसु य कइंयेसु य संतेसु य गुज्जेसु य रहस्सेसु य
निच्छणसु य चवहारेसु य आपुच्छणिजे पडिपुच्छणिज्जे मेढीपमाणं
आहारे आलंघणभए चक्रवुभए सव्वट्टाण सव्वभनियानु लहयच्चए
विइणणविचारे रउजधुराचिन्ताए चावि होत्था ॥ मू० १०० ॥

टीका—'नस्य णं प्रदेशिनो राजो ज्येष्ठः पुत्रः सूर्यकान्तायाः देव्या आत्मि-
जस्योत् । अत्र वा वाचस्पतिरूपेण वर्णितः । नाम-दण्डेणैकीपण्डानार्थं

कतः भाण्डागारं च शोथानार इत्यादि । सूर्यकान्तो नागकुमार इति । स कुमारः सुकुः
मानपाणिपादो वाचस्पतिरूपश्च आसीत् । वाचस्पतेन औपपत्तिकमुत्रोक्त-
धारिणीवर्णकग्रन्थः पृष्टिद्वन्द्वेन विपणिमन्त्राच्च ग्राह्य इति । स न्वलृ सूर्य-
कान्तकुमारो युवराजोऽपि आसीत् । स सूर्यकान्तो युवराजः प्रदेशिनो
राजो राज्यं=राष्ट्रादिगमुदायान्मकं च, राष्ट्र=जनपद, वलं=सैन्यं, वाहन=
हस्त्यादिकं शिविकादिकं च, कोश=भाण्डागारं शोथानार=शान्यगृहं पुरं=
नगरं, अन्तःपुरं च स्वयमेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणः प्रत्युत्प्रेक्षमाणः निरीक्षमाणो
विहरति-राज्यगणादि सर्वव्यवस्थां पश्यतीत्यर्थः ॥ मू० १०१ ॥

टीका—'नस्य णं पणसिस्स रन्तो जेट्टु भाउयवयंसए चित्ते णांमं

सारही होत्था अहे जाव बहुजणस्स अपरिभूए नाम-दंड भंय उव-
प्पयाणअत्थसत्थ ईहामइविसारए उप्पनियाए वेणइयाए कम्मयाए
पारिणामियाए चउव्विहाए वुद्धीए उव्वेए. पणसिस्स रणो बहुसु-
कज्जेसु य कारणेसु य कइंयेसु य संतेसु य गुज्जेसु य रहस्सेसु य
निच्छणसु य चवहारेसु य आपुच्छणिजे पडिपुच्छणिज्जे मेढीपमाणं
आहारे आलंघणभए चक्रवुभए सव्वट्टाण सव्वभनियानु लहयच्चए
विइणणविचारे रउजधुराचिन्ताए चावि होत्था ॥ मू० १०० ॥

राजा का जेष्ठ भाइ के जैसां एवं अधिक उमरवाला (चित्तो नामं सारही होत्या) चित्र नाम का सारथी था. (अड्डे जात्र बहुजणस्स अपरिभूए साम-दंड-भेय-उवत्पयाण अत्थसत्थ ईहा मइविस्सारए) यह चित्र सारथी आढ्य-समृद्ध था. यावत् बहुजनों द्वारा भी अपरिभूत था. वहां यावत् शब्द से 'दित्ते वित्थिण्णविउल-सयणासण जाण-इण्णे, बहुधण-बहुजायरुव-रयए, आओगसंपओगसंपउत्ते, विच्छड्डियविउलभत्तपाणे, बहुदासीदासगोमहिसगवेलयप्पभूए' इसपाठ का संग्रह हुआ है इसका अर्थ इस प्रकार से है- यह चित्र सारथि दीप्त-तेजस्वी था, इसके बडे २ अनेक मकान थे, बडे २ अनेक तल्प (शय्या) थे, बडे २ अनेक पीठकादिक आसन थे शकटप्रभृति (गाडी वगैरह) यान थे, अश्वदिकों से यह सदा आकीर्ण-युक्त बना हुआ था, विपुल धन का-गणिम आदि द्रव्य का, यह स्वामी था. इसके पास त्रिपुल स्वर्ण था, तथा रजत-चांदी थी. आयोगप्रयोग से यह संप्रयुक्त था, द्विगुणादिलाभके लिये रूपया आदि को कर्ज लेने वालों के लिये देना इसका नाम आयोग है, और इसका उपाय चिन्तन करना सो प्रयोग है. अथवा अपने द्रव्य को दूसा आदि करने की लिप्सा से अधमर्ण-कर्ज लेने वालों को उसे देना इसका नाम आयोगप्रयोग संप्रयुक्त है. यह चित्र सारथि इस अधिक द्रव्यों

मोटाभाष नेवे उभरमां तेना करतां वधारे (चित्तो नामं सारही होत्या) चित्र नाम सारथि હતો. (अड्डे जात्र बहुजणस्स अपरिभूए साम-दंड-भेय उवत्पयाणं अत्थ सत्थ ईहा मइ विस्सारए) એ ચિત્ર સારથિ આઢ્ય-સમૃદ્ધ-હતો. યાવત્ અનેક લોકેથી અપરિભૂત હતો, અહીં યાવત્ શબ્દથી "દિત્તે" વિત્થિણ્ણવિઉલસયણાસણ જાણ-વાહણા-इण्णे. बहुधण-बहु जाय-रुव-रयय, आओगसंपओगसंप उत्ते, विच्छड्डियविउलभत्तपाणे, बहुदासीदासगोमहिसगवेलयप्पभूए' આ પાઠનું ગ્રહણ થયું છે આનો અર્થ આ પ્રમાણે છે કે તે ચિત્ર સારથિ દીપ્ત-તેજસ્વી હતો, ઘણાં મોટા મોટા તેને મકાનો હતાં. મોટી મોટી અनेक शय्याઓ (તલ્પ) હતી. પીઠક વગેરે મોટા મોટા ઘણા આસનો હતાં. શકટ-ગાડી વગેરે ઘણાં વાહનો હતા. હુય-ઘોડાઓ-વગેરેથી તે સદા પરિવેષિત રહેતો હતો. વિપુલ ધનનો-ગણિમ વગેરે દ્રવ્યનો એ સ્વામી હતો. તેની પાસે પુષ્કળ સ્વર્ણ હતું, અને ચાંદી પણ હતી. આયોગ પ્રયોગથી એ સંપ્રયુક્ત હતો, બમણા લાભની અપેક્ષાએ જે રૂપિયા વગેરે સિદ્ધાઓ ખીનતને વ્યાજે આપવામાં આવે તેને આયોગ કહે છે અને એના માટે જે યુક્તિ પ્રયુક્તિઓનું ચિંતન કરવામાં આવે છે તેને પ્રયોગ કહે છે અથવા તે પોતાના ધનને બમણું વગેરે કરવાની ઇચ્છાથી અધમર્ણ-કર્જ લેનારને આપણું તેનું નામ આયોગ પ્રયોગ સંપ્રયુક્ત છે. એ ચિત્ર સારથિ અધિક દ્રવ્યોપાજ્ઞનરૂપ ક્રિયામાં

शास्त्रोत्तमनिश्चयः औत्पत्तय्या वेनपियया कर्मजया पाणिगामिण्या चतु
 विधया बुद्ध्या उपपेतः प्रदेशिनो राज्ञे बहुषु कार्येषु च कारणेषु च कुटु
 म्बेषु च मन्त्रेषु च गुह्येषु च रहस्येषु च निश्चलेषु च व्यवहारेषु च आपन्न
 नीयः प्रतिपन्ननीयो वेदिः प्रमाणम् आधारआलम्बनभूतश्चभृत्तः सर्व
 भूमिकासु लब्धप्रत्ययो विनिर्णयि-चारो राज्यधुरान्वितकथापि आसीत् ॥१००॥

पार्श्वरूप प्रिया मे प्रवृत्त था. तथा-द्विपुत्र माद्रा में इसके महा भोजन
 पान आदिने पर थी तथा रहता था दान्ती, दास, गो, मदिप एवं गवेलक
 मेप ये सब इसके यहां प्रचुरमन्त्र्या मे थे. तथा यह विप्र नारथि नाम,
 दांड, भेद और दान इन चार राजनीतियों मे अर्थदासि के साधनों का
 प्रतिपादन करने वाले ज्ञान् मे एवं ईहापधान बुद्धि में, त्रिशास्त्र निपुण
 था (उत्पत्तियाण, वेणड्याण, पाणिगामियाण, बहुविन्हाण बुद्धिण उपवेण)
 औत्पत्तिकी-स्याभारिक, वेनगिक्की, कर्मता तथा पाणिगामिनी अवस्था इन चार
 प्रकार की बुद्धियों मे युक्त था (पणमिम्म रण्णो बहुसु कल्लेसु य कारणेसु य,
 कुटुम्बेसु य, मन्त्रेसु य, गुह्येसु य, रहस्येसु य, निश्चलेसु य, व्यवहारेसु य
 आपन्नणिज्जे, पटिपुत्तणिज्जे) प्रदेशी राजा के अनेक कार्यो मे. कार्य
 सपादक हेतुओं मे. कुटुम्ब के विषय मे, कर्तव्यनिधायार्थ गमसंभ्रगाभा
 मे. गुणों मे-रज्जा से गोपनीय मामों मे. रहस्यों मे प्रकृत्यव्यवहारों मे.
 एवं निधियों मे-पूर्णनिर्णयों मे. एवं व्यवहारों मे-पान्यवादिनों द्वारा समा-
 चरित पौरुषिरीत आदिप्रियाओं के पायधिनो मे अन्ती तरह से यह

राजा का जेष्ठ भाइ के जैसां एवं अधिक उमरवाला (चित्तो नामं सारही होत्या) चित्र नाम का सारथी था. (अड्डे जात्र बहुजणस्स अपरिभूए साम-दंड-भेय-उवत्पयाण अत्थसत्थ ईहा मइविस्तारए) यह चित्र सारथी आढ्य-समृद्ध था, यावत् बहुजनों द्वारा भी अपरिभूत था. वहां यावत् शब्द से 'दित्ते वित्थिण्णविउल-सयणासण जाण-इण्णे, बहुधण-बहुजायरूव-रयए, आओगसंपओगसंपउत्ते, विच्छड्डियविउलभत्तपाणे, बहुदासीदासगोमहिस-गवेलंयप्पभूए' इस्पाठ का संग्रह हुआ है इसका अर्थ इस प्रकार से है- यह चित्र सारथि दीप्त-तेजस्वी था, इसके बडे २ अनेक मकान थे, बडे २ अनेक तल्प (शय्या) थे, बडे २ अनेक पीठकादिक आसन थे शकटप्रभृति (गाडी वगैरह) यान थे, अश्वादिकों से यह सदा आकीर्ण-युक्त बना हुआ था, विपुल धन का-गणिम आदि द्रव्य कां, यह स्वामी था. इसके पास त्रिपुल स्वर्ण था, तथा रजत-चांदी थी. आयोगप्रयोग से यह संप्रयुक्त था, द्विगुणोदिलाभके लिये रूपया आदि को कर्ज लेने वालों के लिये देना इसका नाम आयोग है, और इसका उपाय चिन्तन करना सो प्रयोग है. अथवा अपने द्रव्य को दत्ता आदि करने की लिप्सा से अधमर्ण-कर्जलेने वालों को उसे देना इसका नाम आयोगप्रयोग संप्रयुक्त है. यह चित्र सारथि इस अधिक द्रव्यों

मोटाबाध नेयो उभरमां तेना उरतां नधारे (चित्तो नामं सारही होत्या) चित्र नामं सारथि होतो. (अड्डे जात्र बहुजणस्स अपरिभूए साम-दंड-भेय उवत्पयाणं अत्थ सत्थ ईहा मइ विस्तारए) ये चित्र सारथि आढ्य-समृद्ध-होतो. यावत् अनेक दोकेशी-अपरिभूत होतो, अडीं यावत् शब्दथी "दित्ते" वित्थिण्णविउलसयणासण जाण-वाहणा-इण्णे. बहुधण-बहु जाय-रूव-रयय, आओगसंपओगसंप उत्ते, विच्छड्डियविउलभत्तपाणे, बहुदासीदासगोमहिसगवेलंयप्पभूए' आ पाठतुं अड्डु थयुं छे आनो अर्थ आ प्रमाणे छे के ते चित्र सारथि दीप्त-तेजस्वी होतो, धणुं मोटा मोटा तेने भकानो हतां. मोटीमोटी अनेक शय्याओ (तल्प) होती. पीठक वगेरे मोटा मोटा धणु आसनो हतां. शकट-गाडी वगेरे धणुं वाहनो होता. उय-घोडाओ-वगेरेथी ते सहा परिवेष्टित रहते होतो. विपुल धननो-गणिम वगेरे द्रव्यनो ये स्वामी होतो. तेनी पास पुष्कण स्वर्णुं हुतुं, अने चांदी पणुं होती. आयोग प्रयोगथी ये संप्रयुक्त होतो, भमणु लालनी अपेक्षाओ ने इचिया वगेरे सिद्धाओ णीणने व्याले आपवानां आवे तेने आयोग कडे छे अने अना भाटे ने युक्ति प्रयुक्तिओतुं चिंतन करवामा आवे छे तेने प्रयोग कडे छे. अथवा तो पोताना धनने भमणुं वगेरे करवानी धणुथी अधमर्ण-कणुं देनारने आपवुं तहुं नाम आयोग प्रयोग संप्रयुक्त छे. ये चित्र सारथि अधिक द्रव्योपाणं नइय क्रियाभां

शास्त्रोत्पत्तिविशारदः औत्पत्तिक्या वैनयिक्या कर्मजया पारिणामिक्या चतुर्विध्या बुद्ध्या उपपेतः, प्रदेशिनो राज्ञो बहुषु कार्येषु च कारणेषु च कुडम्बेषु च मन्त्रेषु च गुह्येषु च रहस्येषु च निश्चयेषु च व्यवहारेषु च आपच्छनीयः प्रतिप्रच्छनीयो मेदिः प्रमाणम् आधारआलम्बनभूतश्चक्षुर्भूतः सर्वभूमिकासु लब्धप्रत्ययो वित्तीर्णविचारो राज्यधुराचिन्तकश्चापि आसीत् ॥१०२॥

पार्जनरूप क्रिया में प्रवृत्त था. तथा-त्रिपुल मात्रा में इसके. यहा भोजन पान खालेने पर भी बचा रहता था. दासी, दास, गो, मदिष एवं गवेलक-मेष ये सब इसके यहां प्रचुरसंख्या में थे. तथा यह चित्र सारथि साम, दंड, भेद और दान इन चार राजनीतियों में अर्थप्राप्ति के साधनों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र में एवं ईहाप्रधान बुद्धि में, विशारद निपुण था (उत्पत्तियाए, वेणडयाए, पारिणामियाए, चहुव्विहाए बुद्धिए उववेए) औत्पत्तिकी-स्वाभाविक, वैनयिकी, कर्मजा तथा पारिणामिकी अवस्था इन चार प्रकार की बुद्धियों से युक्त था (पएसिस्स रण्णो बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य, कुडुवेसु य, मंतेसु य, गुज्जेसु य, रहस्सेसु य, निच्छएसु य, ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे) प्रदेशी राजा के अनेक कार्यों में, कार्य संपादक हेतुओं में, कुडुम्ब के विषय में, कर्तव्यनिश्चयार्थं गुप्तमंत्रणाओं में, गुह्यों में-लज्जा से गोपनीय कामों में, रहस्यों में प्रच्छन्नव्यवहारों में, एवं निश्चयों में-पूर्णनिर्णयों में, एवं व्यवहारों में-वान्धवादिकों द्वारा समाचरित लोकविपरीत आदिक्रियाओं के प्रायश्चित्तों में अच्छी तरह से यह

प्रवृत्त हुतो. तेभज्जे अने त्यां पुष्कण भाणुमा ढोके लोअन-पान करता हुतां छताअे लोअन सामथी भूण पडी रहेती हुती. दासी, दास, गाय मदिष अने गवेलक-मेष आ अथा अनेत्या प्रचुर सअ्यामा हुता. अे अित्र सारथि साम. दंड, लेद अने दानआ आरे आर राजनीति-अेभा, अर्थ प्राप्तिना साधनेसुं प्रतिपादन कर-नारा शास्त्रोभां अने छडा प्रधान बुद्धिमा विशारद-निपुणुहुतो. (उत्पत्तियाए, वेण डयाए. पारिणामियाए, चउव्विहाए बुद्धिए उववेए) औत्पत्तिकी-स्वाभाविक, वैन-यिकी, कर्मज अने पारिणामिकी आ आर प्रकारनी बुद्धिअेथी. ते युक्त हुतो. (पएसि-स्सिस्स रण्णो बहुसु कज्जेसु य कारणेसुय, कुडुवेसु य, मंतेसु य. गुज्जेसु य, रहस्सेसु य, निच्छएसु य, ववहारेसु य, आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे) प्रदेशी राजना अनेक कार्योंमा, कार्य संपादक हेतुअेमा, कुटुंबनी आणतमा, कर्तव्य निश्चयार्थं गुप्त मंत्रणाअेमा, गुह्योमाअंशअने लीधे गोपनीय कामोभां, अहुअेमा-प्रच्छन्न-व्यवहारोभां अने निश्चयोम पर्णुं निणुअेमां अने व्यवहारोभां आंधयो वगेरे वडे ढोक विपरीत आदिक्रियां करवा अदल तेभने प्रायश्चित्त कराववामा. वारेघडीअे

टीका—‘तस्स ण’ इत्यादि—

तस्य खलु प्रदेशिनो राज्ञो ज्येष्ठभ्रातृव्यस्यकः=ज्येष्ठभ्रातृत्व्यो व्य-
स्यकः स्वस्य परमादरणीयत्वात् चित्रो नाम=चित्रनामा सारथिः आसीत् । स
चित्रसारथिः आढ्यः=समृद्धः ‘जाव-यावत्-यावत्पदेन-दित्ते विन्धिण
विउल-सयणासण-जाण-वाहणाइणो बहुधण-बहुजायख्व-रयए आभोग-
संपभोगमपउत्ते विच्छड्डिय विउलभत्तपाणे बहुदासोदामगोमहिसगवेलय-

वार वार पूजा जाता था-शेषरूप से पूजा जाता था (मेढीपमाणं आहारे
आलंबणभूए, चक्खुभूए, सब्बडाणसव्वभूमियासु लद्धपच्चए विइणविगारे
रज्जधुराचिंतए यावि होत्था) निम्न प्रकार भेष को आश्रित करके वैल
घूमते हैं उसी प्रकार उसे आश्रित करके मंत्रिमंडल मंत्रकरनेरूप कार्या
में प्रवृत्त होता था. अतः वह मंत्रोरूप था, तथा प्रत्यक्षादिक प्रमाणों की
तरह वह हेयोपादेय पदार्थों में प्रवृत्तिनिवृत्तिशाली होने के कारण संशय-
रहित होकर पदार्थों का परिच्छेदक था. इसलिये वह प्रमाणरूप था. आधार-
भूतपदार्थों की तरह वह सब का आश्रयदाता था. रज्जु स्तंभादिकों की
तरह वह विपत्तिरूप रूप में पतित जनों का उद्धारक होने के कारण
अवलम्बनरूप था. यहां यह शंका हो सकती है आधार और अव-
लम्बन में क्या भेद है ! इस का उत्तर कि जिसके सहारे से
मनुष्य अपनी उन्नति करता है या स्वरूपावस्थ होता है उसका नाम आधार
है तथा जिसके अवलम्बन से विपत्तियां दूर होती है उसका नाम अवल-

म्बनी साथे मंत्रणा करवामां आवती इती. अने सविशेष रूपमा अने पूछवामां
आवतुं इतुं. (मेढीपमाणं आहारे आलंबणभूए, सब्बडाणसव्वभूमियासु
लद्धपच्चए विइणविगारे रज्जधुराचिंतए यावि होत्था) मेढिना आधारे जेम
अणह इरे छे तेम अने आधार मानीने मंत्रिमंडल मंत्रणा वगेरे अर्थोमां प्रवृत्त
यतुं इतुं. अथी ते मेढीइय इतो. प्रत्यक्षादिक प्रमाणोनी जेम ते हेयोपादेय पदा-
र्थोमां प्रवृत्ति निवृत्तिशाली होवा अणह पदार्थोनी ते निश्चयणे परिच्छेदक इतो.
अथी ते प्रमाणइय इतो. आधारभूत पदार्थोनी जेम ते सौ केअनी आश्रयदाता इतो.
रज्जु स्तंभादिकोनी जेम विपत्तिइय रूपमां पडेलाओनुं रक्षणु करनार होवाथी ते
अवलंबनइय इतो. अही आधार अने अवलंबनना अर्थ विषे शंका उत्पन्न थई
शके छे के ओओ अन्नेमां शे तक्षवत छे ? तो स्पष्टीकरण आ प्रमाणे छे के जेना
रे-आश्रये भाषुस उन्नति करे छे के स्वरूपावस्थ होय छे तनुं नाम आधार
मंत्र जेना अवलंबनथी विपत्ति दूर थाय छे.

‘व्यभूए’ छाया—दीप्तो विस्तीर्णात्रिपुलशयनामनयानवाहनाकीर्णो बहुधन-
 बहुजानरूप-रजतआयोगसंप्रयोगसंप्रयुक्त विच्छर्दितविपुलभक्तपानो बहु
 दामीदाम गोमहिष गवेलकप्रभूतः इतिसंग्राह्यम्, तत्र-दीप्तः=तेजस्वी विस्तीर्ण
 विपुलभवनशयनासनयानवाहनामीर्णः—विस्तीर्णानि=विस्तृतानि -त्रिपुलानि
 बहूनि भवनानि=गृहाः, शयनानि=तल्पानि आसनानि=पीठकादीनि, यानानि=
 शकटप्रभृतीनि, वाहनानि=इयादयस्तैराकणे=व्याप्तःपसुपेनो वा, बहुधन बहु-
 जानरूपरजत-बहु=त्रिपुलं धनं=गणिमप्रभृति यस्य स बहुधनः, बहु=विपुलं
 जानरूपं=सुवर्णं रजतं=रूप्यं च यस्य स बहु जातरूपरजतः-बहुधनश्चासौ
 बहुजातरूप रज-श्चैत-बहुधनबहुजातरूपरजाः, तथा आयोगसंप्रयोग-
 संप्रयुक्तः आममन्ताद् योजनं=द्विगुणादिलाभाथं रूप्यादीनामधमर्णा-

म्बन है। नेत्र जैसे अपने विषयभूत होने योग्य पदार्थों का प्रदर्शक
 होता है उसी प्रकार से यह सब सबके लिये सकलार्थ का प्रदर्शक था यदुक्तम्—
 “मेधिः प्रमाणं आधारः, आलम्बनं चक्षुः”

इस बात की स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिये उपमावाचक भूतशब्द इनके साथ
 जोड़ कर सूत्रकार ने पुनः इनकी इस प्रकार से आवृत्ति की है—यह मेधि
 भूत, प्रमाणभूत, आधारभूत एवं चक्षुभूत था अतः सर्वस्थानों में—सन्धि,
 त्रिग्रह आदिरूप सब जगहों में एतं मन्त्रि-आमात्यादि स्थानरूप सर्वभूमिकाओं
 में यह यथार्थवादीरूप से माना जाता था और राजा ने भी इसी कारण
 अन्त पुरादि जैसे स्थानों में आने जाने को इसे छूट देरखी थी. इसतरह
 राजा का अतिविश्वास मात्र बना हुआ यह चित्रसारार्थ सकल राज्यकार्य
 का प्रेक्षक भी बन गया था.

तेनुं नाम अवलोकनं छे नेत्र नेम पोताने विषयभूत थवा योज्य पदार्थोने प्रदर्शक
 छेय छे तेमञ्ज ते पणु सौ भाटे सङ्गलार्थोने प्रदर्शक छेते.
 नेमके—“मेधिः प्रमाणं आधारः, अलम्बनं चक्षुः”

ये न वातने वधारे स्पष्ट करवा भाटे सूत्रकारे उपमावाचक ‘भूत’ शब्द येमने
 लगादीने इरी आ शब्दोनी आ प्रमाणे आवृत्ति इरी छे—ये मेदिभूत, प्रमाणभूत
 आधारभूत, अने चक्षुभूत छेते येथी णधे-संधि, त्रिग्रह वगेरे उप मधी न्याये
 अने मन्त्रि अमात्यादि स्थानरूप सर्वभूमिअयोमा ते साथी मलाड आवनार गणुते
 छेते. येथी मलये पणु अंत पुर नेवा स्थानोमा पणु तेने प्रवेशवानी छूट आपी
 दीधी छेती मलने अतिविश्वासपात्र भनेडे ये चित्र सारधि आम सभरत नान्य-
 कार्योने प्रेक्षक पणु णनी गये छेते

दिश्यो नियोजनमायोगः, नस्य प्रयोगः-प्र=प्रकर्षेण योजनम्=उपायचिन्तनम्, आयोगप्रयोगः, यद्वा-आयोगेन=द्विगुणादिलिप्तया प्रयोगः=अधमर्णानां सविधे द्रव्यस्य वितरणम् आयोगप्रयोगः, स प्रयुक्तः=प्रवर्तितो येन, तस्मिन् वा सप्रयुक्तः=संलग्नो यः स आयोगप्रयोगसप्रयुक्तः=द्रव्योपार्जनप्रवृत्त इत्यर्थः, तथा-विच्छर्दितविपुलभक्तपानः-विच्छर्दिते वि=विशेषेण छर्दिते=भोजनावशिष्टे भक्तपाने=भक्तं च पानं च यस्य सः, तथा-बहुदासीदामगोमहिषगवेलक-प्रभृतः-दास्यश्च दासाश्च गावश्च महिषाश्च गवेलकाः=उरभ्राश्चेति-दासीदाम-गोमहिषगवेलकाः, बहवः=प्रचुरा दासीदामगोमहिषगवेलका यस्य सः, तथा-बहुजनस्य=जातिविवक्षयैकवचनं संबन्धसामान्ये पण्ठी, तेन बहुजनैरित्यर्थो-बोधयः, अत्र अपीत्यध्याहाराद् बहुजनैरपि अपरिभृतः=पराभव रहितश्चासीत्। तथा-स चित्रसारथिः-सामदण्डभेदोपप्रदानार्थं शास्त्रेहामतिविशारदः-तत्र-साम=सान्त्व, दण्डो=दमः, भेदो=द्वैधीकरणम्, उपप्रदानं=दानम्-इत्येतास्तु चतसृषु राजनीतिषु तथा-अर्थशास्त्रे=अर्थप्राप्तिसाधनप्रतिपादके शास्त्रे, ईहा-मतौ ईहा=विमर्शस्तत्प्रधाना मतिः=बुद्धिस्तस्यां च विशारदः=निपुणः, तथा औत्पत्ति कया=स्वाभाविकया-अदृष्टाश्रुताननुभूतविषयया स्वतः समुत्पन्नया, वैतयिकया=गुरुसमाराधनसंप्राप्तशास्त्रार्थसंजनितया कर्मजया=कृषिवाणिज्यादिकर्मसंप्राप्तया, पारिणामिकया=वयःपरिणामजनितया चेति चतुर्विधया=चतुष्प्रकारया बुद्धया उपपेतो=युक्तश्च आसीत्। तथा-स चित्र सारथिःप्रदेशिनो राज्ञो बहुषु कार्येषु=कर्तव्येषु प्रयोजनेष्विति यावत्, कारणेषु=कार्यजातसम्पादकहेतुषु कुटुम्बेषु=कुटुम्बविषये मन्त्रेषु=कर्तव्यनिश्चयार्थं गुप्तविचारेषु गुह्येषु=लज्जया गोपनीयेषु व्यवहारेषु रहस्येषु=रहसि=एकान्ते भवा रहस्यास्तेषु प्रच्छन्न-व्यवहारेष्विति यावत्, निश्चयेषु=पूर्णनिर्णयेषु, व्यवहारेषु=व्यवहारप्रवृत्तयेषु, यद्वा-बान्धवादि समाचरितलोकविपगतादिक्रिया प्रायश्चित्तेषु च आपच्छनीयः-आ=ईषत् सकृत् प्रच्छनीयः=प्रष्टव्यः, परिप्रच्छनीयः-परि-सर्वतोभावेन असकृत् प्रच्छनीयः=प्रष्टव्यः, तथा स चित्रसारथिः-मेधिः=यथा मेधिमाश्रित्य गोमण्डलं भ्रमति, तथैव तमाश्रित्य सकलं मन्त्रिमण्डलं मन्त्रकार्येषु प्रवर्तते, अतः स मेधिः, तथा-प्रमाणम्=प्रत्यक्षादिप्रमाणवद्वेयोपादेयप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपतया संश-यराहित्येन पदार्थ परिच्छेदकः, आधारः=आधारवत्सर्वेषामाश्रयभूतः, आलम्बनं=रज्जुस्तम्भादिवद् विपत्कूपेपतज्जनोद्धारकतयाऽवलम्बनम् । ननु-आधारालम्बनयोः को भेदः ? इति चेत्, यमधिष्ठाय जन उन्नतिं गच्छति रूपावस्थो वा भवति स आधारः, यदवलम्बनेन च विपदो विनिवर्तते

तदालम्बनम्—इति भेदगृहाण । चक्षुः=चक्षते=पश्यन्त्यनेनेति चक्षुः=नेत्रं, तद्वत् सर्वेषां सकलार्थप्रदर्शकः । यदुक्तम्—

“मेधिः प्रमाणम् आधारः आलम्बनं चक्षुः” इति, तदेव स्पष्टप्रतिपत्तये औपम्यत्रावि-भूतशब्दसम्प्लेनेन पुनरावर्तयति—‘मेधिभूतः प्रमाणभूतः आधारभूतः आलम्बनभूतः चक्षुभूतश्चास्ति : तथा—स चित्रमरथिः सर्वं स्थानमसर्वभूमिकासु—सर्वस्थानानि=सन्धिग्रिग्रहादिरूपाणि सकलकार्याणि च सर्वभूमिकाः=मन्त्रमात्यादिस्थानरूपाश्च तासु लब्धः उपलब्धः प्रत्ययः=प्रतीति यथार्थवादितया येन स तथाभूतः, तथा—त्रितीर्णविचारः—त्रितीर्णः=राजा प्रदत्तः विचारः=विचरणम् अन्तःपुरादिषु सर्वत्र यस्मै स तथा राज्ञोऽन विश्वासपात्रमित्यर्थाः, तथा—राज्यधुराचिन्तकः=सकलराज्यकार्यप्रेक्षकश्चापि आसीत् ॥सू० १०२॥

इसकी टीका का अर्थ इसी मूलार्थ के साथ कर दिया गया है. फिर भी जिन पदों का अर्थ मूलार्थ में नहीं किया गया है—उनका अर्थ इस प्रकार से है—विमर्शप्रधान मति का नाम ईहामति है. स्वाभाविकबुद्धि का नाम कि—जो अदृष्ट अननुभूत, अश्रुत आदि पदार्थों को विषय करती है और उनमें स्वयं ही उत्पन्न हो जाती है वह औत्पत्तिकी बुद्धि है । इसका नाम “हाजिर जवाची” भी है. गुरुजनो की सेवा शुश्रूषादि करने से प्राप्त शास्त्रार्थ के चिन्तन से जो बुद्धि प्राप्त होती है उसका नाम वैतयिकी बुद्धि है । कृषिवाणिज्य आदिकर्म करतेर जो बुद्धि प्राप्त होती है उमका नाम कर्मजा बुद्धि है । जैसे उमर बढ़ती जाती है वैसे जो बुद्धि प्राप्त होती है उसका नाम पारिणामिकी बुद्धि है । अर्थात् वयः परिणाम जनित बुद्धि का नाम ही पारिणामिकी बुद्धि है ॥सू०१०२॥

आने टीकार्थ मूलार्थभा ७ स्पष्ट इश्यामा आव्ये छे. छताये डेटलाड पदोने अर्थ मूलार्थभा स्पष्ट धये नधी तेमने अर्थ स्पष्ट इश्यामा आवे छे विमर्श प्रधानमतिनु नाम ईहामति छे. अदृष्ट, अननुभूत, अश्रुत वगेरे पदार्थोने विषयभूत अनावनादी अने तेमा पोतानी मेणे ७ उत्पन्न धनादी स्वाभाविक बुद्धिनु नाम औत्पत्तिकी बुद्धि छे आने ‘हाजिर जवाची’ पण इहे छे गुरुजनोनी सेवा शुश्रूषा वगेरेधी प्राप्त धयेली अने शास्त्रार्थ चिंतनधी प्राप्त धयेली बुद्धिवैतयिकी इहेवाथ छे. कृषि वाणिज्य वगेरे कर्मो कृता इरता ने बुद्धि प्राप्त थाय छे तेनु नाम कर्मजा बुद्धि छे. आयुष्यनी वृद्धि साथे साथे ने बुद्धि प्राप्त थाय छे ते पारिणामिकी बुद्धि छे. येठडे डे वय परिणाम जनित बुद्धिनु नाम ७ पारिणामिकी बुद्धि छे. ॥सू०१०२॥

मूलम्—तेण कालेणं तेणं समएणं कुणाला नामं जणवए
 होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे । तत्थ णं कुणालाए जणवए सावत्थी नाम
 नगरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव पडिहवा । तिसे णं साव-
 त्थीए णगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए कोट्टए नाम चेइए
 होत्था, पुराणे जाव पासाईए ४ । तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पए-
 सिस्स रन्नो अंतेवासी जियसत्तू नाम राया होत्था, महया हिम-
 वंत जाव विहरइ ॥ सू० १०३ ॥

छाया—अस्मिन् काले तस्मिन् सममे कुणाला नाम जनपद आसोत्,
 ऋद्धस्तिमितसमृद्धः । तत्र खलु कुणालाया जनपदे श्रावस्ती नाम नगरी आसोत्
 ऋद्धस्तिमितसमृद्धा यावत् प्रतिहवा । तस्याः खलु श्रावस्त्या नगर्याः बहिरु-

‘तेणं कालेण तेणं समएणं’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उक्तं कालं मे—अवसरिणी के
 चौथे आरे में और केशिस्वामी के विहार से उपलक्षित उस समय में
 (कुणालानामं जणवए होत्था) कुणाला इस नामका देश था (रिद्धत्थि-
 मियसमिद्धे) यह देश ऋद्ध, स्तिमित एवं समृद्ध था यावत् प्रतिरूप
 -सर्वोत्तम था (तत्थ णं कुणालाए जणवए सावत्थी नाम नयरी होत्था) उस
 कुणालादेश में श्रावस्ती नामकी नगरी थी (रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव
 पडिहवा) यह नगरी भी ऋद्ध स्तिमित एवं समृद्ध थी और यावत् प्रति
 रूप थी (तीसे णं सावत्थीए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए
 कोट्टए नाम चेइए होत्था) उसश्रावस्ती नगरी के बाहिर में ईशानकोनेमें

“तेणं कालेणं तेणं समएणं” इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले—अवसरिणीना यथा
 आरामां अने केशिस्वामीना विहारना समये (कुणाला नाम जणवए होत्था)
 कुणाला नामे देश इतो (रिद्धत्थिमियसमिद्धे) आ देश ऋद्ध स्तिमित अने समृद्ध
 इतो यावत् प्रतिरूप-सर्वोत्तम इतो (तत्थ णं कुणालाए जणवए सावत्थी नाम
 नयरी होत्था) ते कुणालदेशमां श्रावस्ती नामे नगरी इती. (रिद्धत्थिमियस
 मिद्धा जाव पडिहवा) आ नगरी पणु ऋद्ध स्तिमित अने समृद्ध इती अने
 यावत् प्रतिरूप इती. (तीसे णं सावत्थीए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसी
 भाए कोट्टए नाम चेइए होत्था) ते श्रावस्ती नगरीनी अहार धशान ओणुमां

उत्तरपीररन्ध्रे दिग्भागे कोण्ठको नाम चैत्यमासीत्, पुराणं यावत् प्रासादीयम्
४ । तत्र खलु श्रावस्त्यां नगर्यां प्रदेशिनो राज्ञोऽन्तेवासी जितशत्रुं नाम
राजा आसीत् महाहिमवद् विहरति ॥ सू०. १०३ ॥

टीका—'तेषां कालेण' इत्यादि—

तस्मिन् काले=अस्या अवसर्पिण्याश्रतुर्थारकलक्षणे काले तस्मिन् समये=
केशिस्वामिविहरणोपलक्षिते समये कुणाला नाम जनपदः=कुणालाभिधो
आसीत् । स जनपद ऋद्धस्तिमितसमृद्धः आसीत् । तत्र खलु कुणालायां जन-
पदे श्रावस्ती नाम नगरी आसीत् । सा नगरी ऋद्धस्तिमितसमृद्धा यावत्
प्रतिरूपा चासीत् । यावत्पदेनात्र-औपपातिकसूत्रोक्तचम्पानगरीवर्णनं सर्वं
संग्राह्यम् । तस्याः खलु श्रावस्त्या नगर्याः च हः=प्रदेशे उत्तरपीररन्ध्रे उत्तर
पूर्वघोरन्तराले दिग्भागे=ईशानकोणे कोण्ठका नाम चैत्यमासीत्, तच्चैत्य
पुराणं यावत् प्रासादीयं दर्शनोपयुक्तं अभिरूपं प्रतिरूपं चासीत् । यावत्प-
देनात्र-औपपातिकसूत्रोक्तसर्वमनुसन्धेयम् । तत्र खलु श्रावस्त्यां नगर्यां
प्रदेशिनो राज्ञः अन्तेवासी अन्ते=समीपे वसतीत्येव शीलोऽन्तेवासी=

कोण्ठक नामका चैत्य ५ (पुराणे जाव प्रासादीय ४) यद् चैत्य प्राचीनं था
यावत् प्रासादीयं था, दर्शनीयं था, अभिरूपं था और प्रतिरूपं था (तन्धणं
सावन्धीए नगरीए पश्चिमिस्सरन्ध्रे अन्तेवासी जितशत्रु नाम राजा होत्या, महाया
हिमवत् जाव विहरइ) उस श्रावस्ती नगरी में प्रदेशी राजा का अन्तेवासी
जितशत्रु नाम का राजा था, जो महाहिमवान् आदि के जैसा बलवाला था ।

टीकार्थ इसका स्पष्ट है—श्रावस्ती नामकी नगरी का वर्णन औप-
पातिक सूत्र में कथित चम्पानगरी के वर्णन जैसा है, चैत्य-उद्यान के वर्णन में
भी औपपातिक सूत्रोक्त वर्णन यहाँ पर ग्रहण करना चाहिये, अन्तेवासी

कोण्ठक नामे चैत्य इत्तुं (पुराणे जाव प्रासादीय ४) आ चैत्य प्राचीनं इत्तुं यावत्
प्रासादीय इत्तुं, दर्शनीय इत्तुं, अभिरूप इत्तु अन्ते प्रतिरूप इत्तुं । (तन्धणं सावन्धीए,
नगरीए पश्चिमिस्सरन्ध्रे अन्तेवासी जितशत्रु नाम राजा होत्या, महाया
हिमवत् जाव विहरइ) ते श्रावस्ती नगरीमा प्रदेशी राजानो अन्तेवासी जितशत्रु
नामे राजा इतो, ते महाहिमवान् वगेरे लोयो अणवान् इतो ।

टीकार्थ—आ सूत्रने टीकार्थ स्पष्ट न हे, औपपातिक सूत्रमां चम्पानगरीतुं ले
प्रभाते वर्णन इत्तुमां आच्युं छे तेमज श्रावस्ती नगरीतुं वर्णन पद्युं समन्वुं
नेच्छे, चैत्यतुं वर्णन पद्युं औपपातिक सूत्रना वर्णननी लेम समन्वुं नेच्छे

शिष्य अन्तेवासी-अन्तेवासी-सम्यगाज्ञापालक इति भावः, तथा भूतो
 तिनशत्रु नाम राजा आसीत्। स जितशत्रु राजा महाहिमवद्-न्यावद्
 विहरति। 'जितशत्रो राज्ञः सर्व' वर्णनमौपपातिकमूत्रोक्तकृणिकराजवद्
 बाध्यमिति ॥सू० १०३॥

मूलम्--तएणं से पएसी राया अन्नया कयाइं महत्थं महग्धं
 महरिह विउल रायारिह पाहुडं सज्जावेइ सज्जावित्ता चित्तं सारहि
 सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छ णं चित्ता ! तुम सावन्थि नगरिं
 जियसत्तस्स रणणे इमं महत्थं जाव पाहुडं उवणेहि जाइं तत्थ
 रायकज्जाणि य रायकिच्चाणि य रायनिईओ य रायववहारा य ताइं
 त्रियसत्तु ॥ सद्धि सयमेव पच्चुवेक्खमाणे विहराहित्ति कट्टु विस
 जए ॥ सू० १०४ ॥

छाया—ततः खलु य प्रदेशी राजा अन्यदा कदाचित महार्थं महार्थं
 महार्थं विपुलं राजार्हं प्राभूतं सज्जयति, सज्जयित्वा चित्रं सारथि शब्द-

शब्द क अर्थ शिष्य है. वह अन्तेवासी के समान अन्तेवासी था अर्थात्
 उसकी आज्ञा का अच्छी तरह से पालक था. जितशत्रु राजा का सर्ववर्णन
 औपपानिक मूत्रोक्त कृणिक राजाकी तरह से है ऐसा जानना चाहिये ॥सू० १०३॥

'तएणं से पएसी राया' इत्यादि ।

मूर्त्ति—(तएणं से पएसी राया अन्नया कयाइं महत्थं महग्धं मह-
 रिहं विउलं रायारिह पाहुडं सज्जावेइ) एक दिन की बात है कि प्रदेशी
 राजा ने महार्थ-विपुल प्रयोजनवाला-सातिशयप्रयोजनयुक्त, महार्थ-बहुमूल्य,
 महार्ह-अतिशोभायुक्त, विपुल-बहुत बडा ऐसा राजा के योग्य प्राभूत-भेट

अन्तेवासी शब्दनेो अर्थ शिष्य छ. ते अन्तेवासीनी जेम अन्तेवासी डतो अटवे के
 ते सरसःरीते तेनी आज्ञातुं पालन करते डतो. जितशु राजतुं अधु-वर्षन-औप-
 पातिक सूत्रोक्त कृणिक राजनी जेमज समज्जुं जेछये. ॥ सू० १०३॥

'त एणं से पएमी राया' इत्यादि ।

सत्रार्थ—(त एणं से पएसी राया अन्नया कयाइं महत्थं महग्धं म-
 हरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं सज्जावेइ) ते प्रदेशी राजये अेक द्विसे महार्थ
 विपुल प्रयोजनवाणी-सातिशय प्रयोजन युक्त, महार्थ-अहुमूल्यवाणी, महार्ड अति-
 शोभायुक्त, विपुल-युष्ण प्रमाणमा राजयोना भाटे योअ्य अेवी लेट (प्राभूत) तैथार करी.

यति, शब्दयित्वा एवमवादीत-गच्छ खलु चित्र ! त्वं श्रावस्तीं नगरीं जित-
शत्रोः राज्ञ इदं महार्थं यावत् प्राभृतम् उपनय, यानि तत्र राजकार्याणि च
राजकृत्यानि च राजनीतयश्च राजव्यवहाराश्च तानि जितशत्रुणा साद्धं स्वय-
मेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणो विहरेति कृत्वा विसर्जितः ॥मू० १०४॥

टीका— 'तएणं इत्यादि--

ततः खलु स प्रदेशो राजा अन्यदा कदाचित्=अन्यस्मिन्=कस्मि-
श्चित् समये महार्थं-महान्=विपुलः अर्थः=प्रयोजनं यस्य स तथा तत्-
सातिशयप्रयोजनयुक्तम् महार्थं=बहुमूल्यं महार्हम्=अतिशोभनं विपुलं=
बृहत् राजर्हं=नृपयोग्यं प्राभृतम्=उपहारम् सज्जयति=कल्पयति, सज्जयित्वा
चित्रं सारथिं शब्दयति=आह्वयति, शब्दयित्वा एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण
अवादीत-हे चित्र ! त्वं खलु श्रावस्तीं नगरीं गच्छ, तत्र-जितशत्रोः राज्ञः
कृते इदं महार्थं यावत् प्राभृतम् उपनय=प्रापय यानि तत्र=श्रावत्यां राज
कार्याणि=राज्ञो राज्य सम्बन्धीनि कर्त्तव्यानि राजकृत्यानि=राज्ञःस्वविषयाणि
प्रतिदिवससम्बन्धिकर्त्तव्यानि, राजनीतयः=साम-दण्ड-भेदोपप्रदानरूपाः राज-

सजाया (सज्जावित्ता चित्तं सारहिं सदावेड) सजाकर फिर उसने चित्र
सारथि को बुलाया (सदावित्ता एव वयासी) बुलाकर उससे ऐसा कहा
(गच्छणं चित्ता ! तुमं सारथि नयरिं जियसत्तुस्स रण्णो इमं महत्थं जाव
पाहुडं उवणेहि) हे चित्र ! तुम श्रावस्तीनगरी में जाओ वहां जितशत्रु के
लिये यह महाप्रयोजन साधक यावत् भेंट दे आओ तथा (जाइं तत्थ राय-
कज्जाण य रायकिच्चाणि य रायनीइओ य रायववहारा य ताइं जियसत्तुणा
सद्धिं सयमेव पच्चुवेक्खमाणे विहराहि त्ति कट्ठे विसज्जिए) जो वहां पर
राजा के राजसंबंधी कर्तव्य हैं राजा के अपने प्रतिदिवस के कर्तव्य
हो, राजनीति साम, दण्ड, भेद एव उपप्रदानरूप हों एवं राजव्यवहार हों

(सज्जावित्ता चित्तं सारहिं सदावेड) तैयार धरीने तेले चित्र सारथीने भोलाव्यो
(सदावित्ता एव वयासी) भोलावीन तेने आ प्रभाले इहं, (गच्छ णं चित्ता !
तुमं सारथि नयरिं जियसत्तुस्स रण्णो इमं महत्थं जाव पाहुडं उवणेहि)
हे चित्र ! तमे श्रावस्तीनगरीमा तयो अने जितशत्रुने आ महाप्रयोजन साधक
यावत् लेट आपी आवो, तथा (जाइं तत्थ रायकज्जाणि य रायकिच्चाणि य
रायनीइओ य रायववहारा य ताइ जियसत्तुणा सद्धिं सयमेव पच्चुवेक्खमा-
माणे विहराहि त्ति कट्ठे विसज्जिए) त्या राजनीति साम, दण्ड, भेद अने उपप्रदान रूप-भावता होय, राजव्यव

व्यवहाराः=राजकृतन्यायाश्च भवन्ति, तानि सर्वाणि जितशत्रुणा नृपेण सार्द्धं स्वयमेव प्रत्युत्प्रेक्षमाणो=निरीक्षमाणो विहर=तिष्ठ इति कृत्वा=इत्युक्त्वा स चित्रसारथिस्तेन विसर्जितः ॥ सू० १०४ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही पएसिणा रणणा एवं वुत्ते समाणे हट्टु—जाव पडिसुणेत्ता तं महत्थं जाव पाहुडं गेणहइ, पएसिस्स रणणो अंतियाओ पडिणिक्खमइ, सेयविया नयरीए मज्झं-मज्झेण जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव पाहुडं ठवेइ, कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासा खिप्पामेय भो देवाणुप्पिया ! सच्छत्तं जाव जुद्धसज्जं चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह जाव पच्चप्पिणहा तएणं ते कोडुंबियपुरिसा तहेव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सच्छत्तं जाव जुद्धसज्जं चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेति, तामाणत्तियं पच्चप्पिणंति । तएणं से चित्ते सारही कोडुंबिय-पुरिसाण अंतिए एयमट्ट जाव हियए पहाए कयवलिकम्मि कयकोउयसंगलपायच्छित्ते सन्नद्धबद्धवम्मिय-कवए उप्पालियसरासणपट्टिए पिणद्धगेविज्जविमलवरचिघपट्टे गहिया-उहप्पहरणे तं महत्थं जाव पाहुडं गेणहइ, जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घटं आसरहं दुरुहेइ, बहुहि पुरिसेहिं सन्नद्ध-जाव गहियाउहपहरणेहिं सद्धिं संपरिवुडे सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं

राजकृत न्याय हों, उन सब का जिनशत्रु राजा के साथ निरीक्षण करते रहो, इस प्रकार कहकर चित्रसारथि को उसने विसर्जित कर दिया । टीकार्थ स्पष्ट है ॥सू०१०४॥

न्याय डोय आ अधानुं जितशत्रु राजनी पासि रडीने तमे निरीक्षण करता रडो, आ प्रभाणे डडीने तेणे चित्रं सारथिने नयानी आसा करी, आ सूत्रेनो टीकार्थ स्पष्ट छे, ॥१०४॥

धरेज्जमाणेणं महया—भडचडगररहपहकरविदुपरिक्खित्ते साओ
 गिहाओ णिग्गच्छइ, सेयवियाए नयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ,
 सुहेहिं वासेहिं पायरासेहिं नाइविकिट्ठेहिं अतरावासेहिं वसमाणे
 वसमाणे केइयदस्स जणवयस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव कुणाला जण-
 वए जेणेव सावत्थी नयरी तेणेव उवागच्छइ, सावत्थीए नयरीए
 मज्झं मज्झेणं अणुपविसइ, जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो गिहे जेणेव
 दाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तुरए णिगिण्हइ, रहं
 ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तं महत्थ जाव पाहुडं गिण्हइ, जेणेव अविभ-
 तरिया उवट्टाणसाला जेणेव जियसत्तु राया तेणेव उवागच्छइ, जिय-
 सत्तु राय करयलपरिग्गहिय जाव कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ,
 त महत्थ जाव पाहुडं उवणेइ ॥ सू० १०५ ॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राजा एवमुक्तः सन्
 दृष्ट यावत् प्रतिश्रुत्य तत् महार्थं यावत् प्राभृतं गृह्णाति, प्रदेशिनो राज्ञो
 ऽन्तिकात् प्रतिनिष्कामति, श्वेतविकाया नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव स्वक

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चित्ते सारही) उस चित्र सारथिने
 जब (पएसिणा रण्णा) प्रदेशी राजाने एवं बुत्ते समाणे) उसने ऐसा कदा-
 तब वह (दृष्ट जाव) बहुत प्रसन्न हुआ यावत् (पडिसुणेत्ता त महत्थं जाव
 पाहुडं गेण्हः) उमकी आज्ञा के वचनों को स्वीकार करके उम महार्थ-
 माधक यावत्—प्राभृतको लिया (पएसिस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमह)
 और लेकर—वह प्रदेशी राजा के पास से निकला (सेयविया नयरीए मज्झं-
 मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) और श्वेतविका नगरी के

सुत्रार्थ—(तएणं) त्थार पडी (से चित्ते सारही) ते चित्र सारथिने त्थादे
 (पएसिणा रण्णा) प्रदेशी नालये (एवं बुत्ते समाणे) आ प्रभाते आना थरी त्थादे
 ते (दृष्ट जाव) अत्यंत प्रसन्न थये यावत् (पडिसुणेत्ता तं महत्थं जाव पाहुडं
 गेण्हः) तेनी आज्ञाना वचनाने स्वीकरी ने तेते ते महार्थमाधक यावत् लेने एथ
 डीधी. (पएसिस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमह) अने एथनेते प्रदेशी नालनी
 पासधी एवे। एथने एथार नाळ्या, (सेयविया नयरीए मज्झं-मज्झेणं जेणेव सए

गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत् महार्थं यावत् प्राभृतं स्थापयति, कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमत्रादिपुः क्षिप्रमेव भो देवानु प्रियाः ! सच्छत्रं यावत् युद्धसज्जं चातुर्घण्टम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयत यावत् प्रत्यर्पयत । ततः खड्गं ते कौटुम्बिकपुरुषाः तथैव प्रतिश्रुत्य क्षिप्रमेव सच्छत्रं यावत् युद्धसज्जं चातुर्घण्टम् अश्वरथयुक्तमेव उपस्थापयन्ति,

बीचों बीच से होता हुआ जहाँ अपना गृह था वहाँ पर आया (उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव पाहुड ठवेह) वहाँ आकर के उमने उन महार्थ-महाप्रयोजनसाधक यावत् प्राभृत को एक तरफ रख दिया (कौटुम्बिकपुरिसे सदावेह) और अपने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया (सदावित्ता एवं वयासी) उनसे, ऐसा कहा (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सच्छत्रं जाव जुद्धसज्जं चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह, जाव पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही रथ को घोड़ा जोतकर तैयार करके यहाँ ले आओ, उसे चार घंटाओं से सज्जित करना. यावत् फिर हमारी इस आज्ञा को हमें वापिस करना—उस पर छत्र भी लगाना यावत् उसे युद्ध के योग्य सज्जित करना. (तएणं ते कौटुम्बिकपुरिसा तहेव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सच्छत्रं जाव जुद्धसज्जं चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेति) चित्र सारथि के इस प्रकार बचन सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुत ही जल्दी छत्रयुक्त करके यावत् चार घंटोंवाले उस अश्वरथ को तैयार

गिहे तेणेव उवागच्छइ) अने श्वेतविडानगरीनी पन्थे थधने जथां पोतानुं धर इतु त्यां गथे (उवागच्छित्ता तं महत्थं जाव पाहुडं ठवेह) त्यां जधने तेणे ते महार्थं साधक महाप्रयोजन साधक यावत् लेटने अेक तरफ भूमीदीधी, (कौटुम्बिकपुरिसे सदावेह) अने पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने ओलाव्या, (सदावित्ता एवं वयासी) ओलावीने तेमने धुं, (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सच्छत्रं जाव जुद्धसज्जं चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह जाव पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तमे घोडा जोतरिने शीघ्र रथ तैयार करे, अने अडीं लावे, रथने चार घंटाओथी सज्जित करे यावत् आज्ञा प्रमाणे काम पुरुं करिने अमने अणर आपो, रथनी उपर छत्र डोवुं लेधये यावत् अधी रीते युद्धना भाटे योअ्य होय तेम सज्जित करणे, (तएणं कौटुम्बिकपुरिसा तहेव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सच्छत्रं जाव जुद्धसज्जं चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेति) चित्र सारथिना आ प्रमाणे वयन सांखणीने ते कौटुम्बिक पुरुषोअे अेकदम त्वराथी छत्रयुक्त यावत् चार घंटोथी सुस-

तामात्रसिकां प्रत्यर्पयन्ति । नतः जलु स चित्रः सारथिः कौटुम्बिकपुरुषाणाम्
अन्तिके एतमर्थं यावत् हृदयः स्नानः कृतवत्कर्म कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः
सन्नद्धवद्धवर्मितकवचः उत्पीडितशामनपट्टिकः पिण्डद्वयैवयविमलवरचिह्नपट्टो
गृहीतायुधप्रहरणस्तन्महार्थं यावत् प्राभृतं गृह्णाति, यत्रैव चातुर्घण्टः अश्व
रथस्तत्रैव उपागच्छति, चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति, बहुभिः पुरुषैः सन्नद्ध-

कर उपस्थित कर दिया (तमाणत्तिः पञ्चपिणत्ति) और चित्र सारथि के
पास रथ को तैयार हो जाने को खबर भेज दी. (तएणं से चित्ते सारथी
कोट्टु वियपुरिसाणं अंतिण एयमट्ट सोच्चा जाव हियण ष्हाए कयवल्लिक्कम्मे
कयकोउयम गलपायाच्छित्ते सन्नद्धवद्धवर्मियकवए, उत्पीलियसरासणपट्टिए,
पिणद्धगेविज्ज, विमलवरचिह्नपट्टे गहियाउहप्पहरणे त महत्थं जाव पाहुडं गेण्हइ)
कौटुम्बिक पुरुषों से की गई खबर को सुनकर वह चित्र सारथि बहुत ही
अधिक आनंदित एवं संतुष्ट चित्त हुआ-उसने उसी समय उठकर स्नान किया.
वल्किकर्म (काकआदि को अन्नभाग देनेरूप) किया, कौतुक मंगल एवं प्रायश्चित्त
किये अच्छी तरह से बांधकर कवच पहिरा, प्रत्यंचा चढाकर धनुष को नम्रीभूत
किया, श्रोत्रा में हार पहिरा, तथा सुन्दर चित्रों से चिह्नित निर्मल वस्त्र धारण
किये और खड्गादिक आयुधों को साथ में लिए. इस प्रकार से अच्छी
तरह से सज्जित होकर उसने उस महार्थसाधक यावत् प्राभृत को हाथ
में लिया और (जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छह

सज्जित करीने अश्वरथने उपस्थित कर्यो. (तमाणत्तिय पञ्च पिणत्ति) अने रथ तैयार
धरं बनानी भणर चित्र सारथिनी पाने पढोयाडी. (तएणं से चित्ते सारथी
कोट्टु वियपुरिसाणं अंतिण एयमट्ट सोच्चा जाव हियण ष्हाए कयवल्लिक्कम्मे
कयकोउयम गलपायाच्छित्ते सन्नद्धवद्धवर्मियकवए, उत्पीलियसरासणपट्टिए,
पिणद्धगेविज्ज विमलवरचिह्नपट्टे गहियाउहप्पहरणे त महत्थं जाव
पाहुडं गेण्हइ) कौटुम्बिक पुरुषोनी काम पूर्ण धरं बनानी भणर सावणीने ने चित्र
सारथि भूषण स्नानदित अने संतुष्ट चित्त बयो. तेहे तरतर स्नान थ्युं, वलि
धरं थ्युं. कौतुक मंगल अने प्रायश्चित्त थ्यां. अन्न दीते करीने कवच पहरेथुं, प्रत्यंचा
चढावीने धनुषने नम्र बनाव्युं गणामा हार पहरेथो. सुंदर सुंदर चित्रोथी चिह्नित
निर्मल वस्त्रो धारलु थ्यो अने ष्हाण वगेरे आउधो अने प्रहण्णो साथे लीधो अण प्रभयत्तो
सरस दीते सज्जित थधने तेहे ते महार्थसाधक यावत् लिट्ठने हाथमां लीधो अने
(जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छह, चाउग्घटे आसरहे इमहेइ)
उधने ते वथां चातुर्घण्ट अश्वरथ तेथान् हुतो त्या गये। त्या वद्धने ते अश्व उबर

यावद्-गृहीतायुधप्रहरणैः साद्धं सम्परिवृतः सकोरिष्टमाल्यदाम्ना छत्रेण
 ध्रियमाणेन महाभटवटकररथपहकरवृन्दपरिक्षिप्तः स्वाद् गृहाद् निर्गच्छति,
 श्वेतत्रिकाया नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, सुखैः वासैः प्रातराशैः नाति-
 विकृष्टैः अन्तरावासैः वसद् वसन् केकयाद्धस्य जनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव
 कुणाला जनपदो यत्रैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, श्रावस्त्यां

चाउघटं आसरहं दुरुहेइ) लेकर जहां वह चातुर्घट
 अश्वरथ तैयार खडा था वहां पर आया-वहां आकरके फिर
 वह रथ पर चढ़ा (बहुहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणेहिं सद्धिं
 संपरिवुडे सकोरिष्टमल्लदामेण छत्रेण धरिज्जमाणेणं महया भडचडगररहपग-
 करविंदपरिवस्वत्तो साओ गिहाओ णिग्गच्छइ) तव सन्नद्ध यावत् गृहीत आयुध
 प्रहरणवाले ऐसे अनेक पुरुषों से धिर गया, छत्रधारी द्वारा ध्रियमाण
 एवं कोरिष्टपुष्पमाला से विभूषित ऐसा छत्र उसके ऊपर तान दिया गया,
 महाभटों के विस्तृत समूह के वृन्दने उसे आकर घेर लिया. इस प्रकार
 की परिस्थिति से युक्त हुआ वह अपने घर से निकला (सेयत्रियाए णयरीए
 मज्झमज्जेणं णिग्गच्छइ) और निकलकर वह श्वेतत्रिका नगरी के बीचो-
 बीच से होकर चला-(सुहेहिं वासेहिं पयरासेहिं नाइविकिट्टेहिं अंतरावासेहिं
 वसमाणेरे केइयद्धस्स जणवयस्स मज्झमज्जेणं जेणेव कुणाला जणवए जेणेव
 सावत्थी नयरी तेणेव उवागच्छइ) इस प्रकार घर से निकला हुआ वह
 सुखकर रात्रिनिवासों से, प्रातःकालिकलघु भोजनों से-कलेवग्गों से, तथा
 अतिदूर के नहीं ऐसे अन्तरावासों से पडावों से-मध्याह्नकालिक विश्राम-
 स्थानों से जगहर ठहरतार केकयाद्धजनपद के मध्य मध्य से होता हुआ

सवार थयो. (बहुहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणेहिं सद्धिं संपरिवुडे
 सकोरिष्टमल्लदामेणं छत्रेण धरेज्जमाणेणं महया-भडचडगररहपगकरविंद
 परिवस्वत्तो साओ गिहाओ णिग्गच्छइ) न्यारे सन्नद्ध यावत् जेमना हाथोमां
 आयुधो छे ओवा अनेत पुरुषोथी परिवेष्टित थधने तथा डेरंट पुष्पभाणाथी विभू-
 षित अने छत्रधारी वडे धारणु करेडुं छत्र तेनी उपर ताणुवामां आव्युं त्यारे तेने
 मडालटोना विशाल समूह वृन्दे आवीने प्रविष्ट करी लीधा. आम ते पोताना धरथी
 रवाना थयो. (सुहेहिं वासेहिं पयरासेहिं नाइ विकिट्टेहिं अंतरावासेहिं वसमाणे रे
 केइयद्धस्स जणवयस्स मज्झमज्जेणं जेणेव कुणाला जणवए जेणेव सावत्थी नयरी
 तेणेव उवागच्छइ) आ प्रमाणे घेरथी रवाना थधने ते सुखकर रात्रिनिवासो, प्रातः
 क्षतिक लघुभोजनो, अति दूर नडि अेटवे डे नल्लकनल्लकना अन्तरावासो, (मुकामो)
 मध्याह्नकालिक विश्रामो अने स्थान स्थान पर मुकाम करते ते डेकयाद्धं जनपदनी

नगर्यां मध्यमध्येन अनुप्रविशति, यत्रैव जितशत्रो राज्ञोगृहं यत्रैव वाद्या उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथान् प्रत्यवरोहति, तत् महार्थं यावत् प्राप्तं गृह्णाति यत्रैव आभ्यन्तरिकी उपस्थानशाला यत्रैव जितशत्रु राजा तत्रैव उपागच्छति, जितशत्रुं राजानं करतलपरिगृहीतं यावत् कृत्वा जयेन विजयेन वर्द्धयति, तन्महार्थं यावत् प्राप्तम् उपनयति ॥ सू० १०५ ॥

जहां कुणाला जनपद-(देश) था, और जहां उसमें श्रावस्ती नगरी थी वहां पर आ पहुँचा, (सावन्धीए नगरीए मज्झमज्झेणं अणुप्रविमिह. जेणेव जिय सत्तुस्स रण्णो गिहे जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) वहां आकर वह ठीक बीचोंबीच से होकर उस श्रावस्ती नगरी में प्रविष्ट हुआ और जहां जितशत्रु राजा का प्रासाद था, जहां वाद्य उपस्थानशाला थी वहां आया (तुरए णिगिण्हइ, रहं ठवेइ, रहओ पचोरुहइ, तं महत्थ जाव पाहुइं गिण्हइ) वहां आकर उसने घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया और फिर उस रथ में से वह नीचे उतरा और उसमें से उसने महार्थ सायक उभ प्राप्त को लिया (जेणेव अविमतरिया उवट्टाणसाला. जेणेव जियसत्तु राया, तेणेव उवागच्छइ. जियसत्तु रायं करतलपरिगहियं जाव कइ जणं विजणं वट्ठावेइ तं महत्थं जाव पाहुइं उवणेइ) और उठकर जहां आभ्यन्तरिकी उपस्थानशाला थी, जहां जितशत्रु राजा था वहां पर आया. वहां आकर के उसने जितशत्रु राजा को दोनों हाथों को अंजलि घनाकर एवं उसे मस्तक पर रखकर जयविजय शब्दों का उच्चारण करते

मध्यमा धर्मे न्या दुर्वाधनी देश इति अने तेमा पणु न्या श्रावस्ती नगरी इती त्या पडोव्थी. (सावन्धीए नगरीए मज्झमज्झेणं अणुप्रविमिह. जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो गिहे जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) त्या पडोव्थीने ते ठीक मध्यमार्गधी पसाव धर्मे ते श्रावस्ती नगरीमा प्रविष्ट धये अने न्यां जितशत्रु राजानो प्रासाद (महेल) इतो न्या वाद्य उपस्थान शाला इती त्या जये (तुरए णिगिण्हइ रहं ठवेइ. रहओ पचोरुहइ. तं महत्थ जाव पाहुइं गिण्हइ) त्या पडोव्थीने तेले घोड्याने रोका. अने उठे नथ्ये अने न्यमाधी नीचे उतरांने तेले ते महार्थ सायक लेट लीधी (जेणेव अविमतरिया उवट्टाणसाला. जेणेव जियसत्तु राया, तेणेव उवागच्छइ. जियसत्तु रायं करतलपरिगहियं जाव कइ जणं विजणं वट्ठावेइ. तं महत्थं जाव पाहुइं उवणेइ. अने उठेने ते न्या आभ्यन्तरिकी उपस्थानशाला इती न्या जितशत्रु राजा इतो त्या जये त्या जयेने तो जितशत्रु-राजाने अने इथेही मस्तक पर रखेने अने तेने

टीका—‘तएण से’ इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण उक्तः सन् हृष्ट यावत्-यावत्पदेन-हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो हर्षवशविसर्पद्वयः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिर आवर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवं देवस्तथेति आज्ञाया विनयेन वचनं प्रतिभृणोति’-इति संग्राहम् । अस्य वाक्यस्यार्थाऽस्यैव सूत्रस्य पञ्चमसूत्र टीकातोऽवगम्य इति प्रतिश्रुत्य तत् महार्थं यावत् प्राभृत गृह्णाति=उपादत्ते, गृहीत्वा प्रदेशिनो राज्ञः अन्निकात्=समोपात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य श्वेतविकाया नगर्या मध्य-

हुए बधाया, और बधाकर उस महाप्रयोजनसाधक यावत् प्राभृत को उन्हे दिया, अर्थात् राजा को भेट किया ।

टीकार्थ—प्रदेशी राजोने जब अपने चित्र सारथि से ऐसा कहा तब हृष्ट हुआ, तुष्ट हुआ एवं चित्त में आनन्दित हुआ-प्रीतियुक्त मनवाला हुआ, परमसौमनस्यित हुआ हर्ष के वश से उसका हृदयहर्षित होने लग गया. उसी समय उसने करतलपरिगृहीत, दशनखसंयुक्त एवं शिर पर आवर्त्तवाली ऐसी अंजलि करके “हे देव ! आप जैसे कहते हैं सो मुझे प्रमाण है” इस प्रकार कह कर उनकी आज्ञा को बड़े विनय के साथ स्वीकार किया, हृष्ट तुष्ट आदि पदों का अर्थ इस सूत्र के पांचवें सूत्र की टीका से जानना चाहिये । इस प्रकार अपने स्वामी की आज्ञा स्वीकार करके उसने उस महाप्रयोजन साधक यावत् प्राभृत (भेट) को अपने हाथ में ले लिया और लेकर वह प्रदेशी राजा के पास से चला आया और श्वेतविका नगरी के मध्यभाग से होकर अपने घर पर आ गया. वहाँ आकरके

मस्तके भूङ्गी ते ज्यविज्य शब्दोनुं उभ्याश्च कस्तां वधामणी आपी अने त्थारपथी ते मडाप्रयोजन साधक यावत् लेटने राजनी सामे भूङ्गी-राजने ते लेट अर्पित करी.

टीकार्थ—प्रदेशी राजने ज्यारे पोताना चित्र सारथिने आ प्रमाणे कहुं त्थारे हृष्ट, तुष्ट, चित्तमा आनन्दित अने प्रीतियुक्त मनवाणे थयेले तथा परमसौमनस्यित थयेले ते हर्षातिरेकथी अतीव हर्षित थध गये. तेणे तरत ज करतल परिगृहीत दशनखसंयुक्त अने मस्तक पर अंजलि ईरवीने कहुं—“हे देव ! जे आप आज्ञा करे छे ते मारा भाटे प्रमाणरूप छे. आ प्रमाणे कडीने तेणे राजनी आज्ञाने स्वीकारी लीधी हृष्ट तुष्ट वगेरे पढेनो अर्थ आ सूत्रनी पांचवें सूत्रनी टीकासां स्पष्ट करवामा आव्ये छे. आ रीते पोताना स्वामीनी आज्ञाने स्वीकारी तेणे मडाप्रयोजन साधक यावत् लेटने हाथमां लीधी अने लधने ते प्रदेशी राज पासथी आवतो रधो अने श्वेतविकानगरीना मध्यभागमां थधने पोताने घेर गये. त्यां पहंन्थीने तेणे ते

मन्त्रेण व्यतिव्रजन् यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत् महार्थं यावत् प्राभृतं स्थापयति, स्थापयित्वा कौटुम्बिकपुरुषोत्तमभृत्यपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत=उक्तवान्-सो देवानुप्रियाः। ययं क्षिप्रमेव=शीघ्रमेव सच्छत्रं यावत्-यावत्पदेन-मध्वजं सघण्टं सपताकं मतोरणवरं मनन्दिघोषं मन्दिङ्गिणीहेमजालपरिक्षिप्तं हैमवतचित्रतिनिशकनकनिर्युक्तदारुकं मुमंपिनद्धचक्रमण्डलधुराकं कालायसमुकृतनेमियन्त्रकर्माणम् आकीर्णवरतुरगमुसंपयुक्तं कुशलनरच्छेकमारथिमुसंपरिगृहीतं शरशतद्वित्रिशतचक्रपरिमण्डितं मरुद्गुटावतमकं मचापप्रहरणावरणभृतयोधयुद्धसज्जम् इति संप्राप्तम्, अर्थस्त्वेषां पदानां त्रिपण्डितममुत्रतो द्वितीयाविभक्तिव्यत्ययेना-

उमने उम महाप्रयोजन साधक यावत् प्राभृत को रख दिया, रक्वकरक फिर उमने नोकरचाकररूप कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उमने उम प्रकार कहा-हे देवानुप्रियों ! आपलोग शीघ्र ही छत्रसहित यावत्-ध्वजामहित, घण्टासहित, पताकामहित, उतमतोरणमहित, नन्दिघोषसहित, मन्दिङ्गिणीमहित, इत्यादि ६२वें सूत्रोक्त विशेषणों से सहित रथको उपस्थित करो-६२वें सूत्र में उक्त पाठ जो यहा यावत् शब्द से गृहीत हुआ है द्वितीयाविभक्ति का व्यत्यय करके लिया गया है सो इस प्रकार से है—

“सध्वज, सघण्टं, सपताक, मतोरणवरं, मनन्दिघोषं, मन्दिङ्गिणीहेमजालपरिक्षिप्तं, हैमवतचित्रतिनिशकनकनिर्युक्तदारुकं, मुमंपिनद्धचक्रमण्डलधुराकं, कालायसमुकृतनेमियन्त्रकर्माणम्, आकीर्णवरतुरगमुसंपयुक्तं कुशलनरच्छेकमारथिमुसंपरिगृहीतं, शरशतद्वित्रिशतचक्रपरिमण्डितं, मरुद्गुटावतमकं, मचापप्रहरणावरणभृतयोधयुद्धसज्जम्” इत्य समस्त पाठका अर्थ

महाप्रयोजन साधक यावत् लेटने भरी दाधी नृधीने तेले नोकर-चाकर वगेरे शौटुं-जिक पुत्रोने जोलाव्या. अने जोलावीने तेमने आ प्रभाषे शत्रु-ए देवानुप्रियो ! तमे सो सत्तरे छत्रयुक्त यावत् ध्वज सहित, घंटा सहित वगेरे ६२ वा अत्रोक्त विशेषणोधी युक्त रथने उपस्थित करो. ६२ वा सूत्रने पाठ ले करी यावत् शब्द वदे गृहीत थयो छ ते जीउ विलकितने व्यत्यय (व्यतिक्रम) धनीने ब्रह्म धनयो छ ते आ प्रभाषे छ—

“सध्वज सघण्टं, सपताक, मतोरणवरं, मनन्दिघोषं, मन्दिङ्गिणीहेमजालपरिक्षिप्तं, हैमवतचित्रतिनिशकनकनिर्युक्तदारुकं, मुमंपिनद्धचक्रमण्डलधुराकं, कालायसमुकृतनेमियन्त्रकर्माणम् आकीर्णवरतुरगमुसंपयुक्तं, कुशलनरच्छेकमारथिमुसंपरिगृहीतं शरशतद्वित्रिशतचक्रपरिमण्डितं, मरुद्गुटावतमकं, मचापप्रहरणावरणभृतयोधयुद्धसज्जम्” इत्य समस्त पाठका अर्थ

इसप्रकार से हे-सध्वज-ध्वजा से युक्त है सघण्ट-दोनो और घण्टासहित है, सपताक-पताका सहित है, सताणवरयुक्त-प्रधानतोरण सहित है, सनन्दिघोष-द्वादशप्रकार के बाजों से युक्त है, सकिङ्किणी हेमजालपरिक्षिप्त-क्षुद्र घंटिकावाले हेमजाल से परिवेष्टित है, हेमवतचित्रतिनिशकनकनिर्युक्त दारुक-हिमालय पर्वत पर उत्पन्न हुई तथा विस्मयकारक ऐसी तिनिशवृक्षाविशेषी सुवर्ण शोभित लकड़ी से जो बनाने में आया है, सुसंपिन्दककमण्डलधुराक-अच्छी तरह से जिसमें ककमण्डल एवं धुरा बांधे गये हैं, कालायस सुकृतनेमियन्त्रकर्मा-उत्तमजाति के कृष्ण लोह से जिसमें नेमियन्त्र कर्मकी रचना की गई है-अर्थात् चक्रान्तभूस्पर्शिभाग की संघर्षण से रक्षा करने के लिये अरवों के ऊपर फल ककमण्डलरूप आवरण जिसमें लगाया गया है, आकीर्ण चतुरगसुसंप्रयुक्त-आकीर्णजातिके उत्तम थोडे जिसमें जुते हैं, कुशलनरच्छेकसारथिसुसंपरिगृहीतनिपुणपुरुषों में भी चतुरम्भारथीद्वारा अच्छी तरह से जो परिगृहीत हो रहा है, शरशत द्वात्रिंशत्तूणपरिमंडित-शतसंख्यक शरों के ३२ संख्यक बाणकोषों से जो परिमण्डित है, सचापशरप्रहरणाऽऽवरण भृतयोधयुद्धसज्ज-धनुषसहित बाणों से, कुन्त, तोमर, परशु आदि शास्त्रों से. एवं कवच आदि उपकरणों से जो परिपूर्ण है. युद्धकारी घोडाओं के संग्राम के लिये

सध्वज-ध्वजा सहित छे, सघण्ट-दोनो तरङ्ग घण्टाओ छे, सपताक-पताकासहित छे, सतोरणवर युक्त-प्रधान तोरण सहित छे, सनन्दिघोष-गार् प्रकरना वालओथी युक्त छे. सकिङ्किणी हेमजाल परिक्षिप्त-क्षुद्र (नानी), घण्टिकावाण, हेमजालधी परिवेष्टित छे, हेमवत चित्रतिनिशकनकनिर्युक्त दारुक-हिमालय पर्वत पर उत्पन्न थयेली, विस्मय कारक तिनिशवृक्ष विशेषनी सुवर्ण मंडित लकड़ीथी जे तैयार करवामां आव्ये छे सुसंपिन्दककमण्डल धुराक जेमां यकमण्डल अने धुराओ, सुसंयुद्ध छे, कालायस सुकृत नेमियन्त्रकर्मा-उत्तम जातिना कृष्ण लोहथी जेना नेमियन्त्रनी रचना करवामां आवी छे. अटले के यकने जे लाग भूस्पर्श करे छे तेने संघर्षथी रक्षवा माटे कृष्ण लोहनी पाटी जेना पर लगाडवामां आवी छे. आकीर्णवर चतुरगसुसंप्रयुक्त-आकीर्ण जातिना उत्तम घोडाओ जेमां जेतरेला छे, कुशलनरच्छेक सारथि सुसंपरिगृहीत-निपुणपुरुषोमां यणु अतिनिपुण सारथि वडे जे सारी रीते हांकवामां आवी रह्यो छे, शरशत द्वात्रिंशत्तूणपरिमंडित-सो शरो अने गत्रीश जेटला त्रिंशथी जे परिमंडित छे, सचापशरप्रहरणाऽऽवरण भृतयोध युद्ध सज्ज-धनुष सहित शरोथी, कुन्त, तोमर, परशु वगेरे शास्त्री, अने कवच वगेरे उपकरणथी जे परिपूर्ण छे, युद्ध जेतनाराओ

ऽवसेय इति । एवविधं चातुर्घण्ट = चतसृभिर्घण्टाभिः शोभितम् अश्वरथं युक्तमेव = योजितं कृत्वैव उपस्थापयत, यावत् प्रत्यर्पयन् = मदीय निर्देशानुसारेण सर्वं प्रकल्प्य मां सूचयत । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः तथैव = यथा चित्र सारथिना समाह्वयन्तं तथैव तदीयवचनं प्रतिश्रुत्य = स्वीकृत्य क्षिप्रमेव सच्छत्रं यावत् युद्धसज्जं चातुर्घण्टम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयन्ति, ताम् आज्ञा-
प्तिकाम् प्रत्यर्पयन्ति = 'भवन्निदेशानुसारेण सर्वमस्माभिः सम्पादित' - मिति चित्रसारथये निवेदयन्ति । ततः खलु स चित्रसारथिः कौटुम्बिकपुरुषाणाम् अन्तिके = समीपे एतमर्थं = 'रथोऽस्माभिः सज्जीकृतः' इत्येतद्रूपम् अथ यावद् हृदयः अत्रेदं सगृह्यते, तथाहि - 'श्रुत्वा निशम्य हृष्टतृष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो हर्षवशविमर्षद्वयः' इति । अर्पस्त्वेवामुक्त एव, एतादृशः यन् स्नानः = विहितस्नानः कृतवल्किर्मा = स्नाने कृते पशुपक्ष्या-
द्यर्थं कृतान्नभागः, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव

जो सज्ज-उद्यतोक्त है, चातुर्घण्ट का अर्थ "चार घटाओं से शोभित" ऐसा है तथा युक्त शब्द का अर्थ "घोड़ों ऐसे जुता हुआ" सा है । जब तुम लोग मेरी आज्ञा के अनुसार सब काम कर लो तो हमें इसकी पीछे शीघ्र ही सूचना दो, इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषों ने जैसा कि चित्र सारथि ने उन्हें कार्य करने के लिये आज्ञापित किया था वैसा काम यथा शीघ्र करके उसे सूचना दे दो. "आपकी आज्ञा के अनुसार हमने सब काम कर लिया है", इस प्रकार से दी गई सूचना को गृह्य चित्र सारथि "हृष्ट तृष्ट चित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यितः, हर्षवशविमर्ष-
द्वयः" इन यावत् पदगृहीत विशेषणों वाला हो गया, इन पदों का अर्थ कहा जा चुका है । उसने स्नान किया, वल्किर्मकिया-पशु पक्षी

प्रायश्चित्तानि-दुःस्वप्नादिविघातार्थमवश्यकरणीयत्वाद् येन स तथा, तत् कौतुकानि-मपीतिलकादीनि, मङ्गलानि तु सिद्धार्थदूध्यक्षतदूर्वाङ्कुरादीनि । तथा-सन्नद्धवद्धवर्मितकवचः-सन्नद्धं शरीरे आरोपणात्. बद्धं-गाढतरबन्धनेन बन्धनात्, वर्मितम् अङ्गरक्षार्थं सुदुतया परिहितं कवचं येन सः, तथा-उत्पीडितशरासनपट्टिकः-उत्पीडिता=प्रत्यञ्चारोपणेन नम्रीकृता शरासनपट्टिका धनुर्दण्डो येन सः, अथवा-उत्पीडिता=स्कन्धे स्थायिता शरासनपट्टिका=धनु

आदिकों के लिये अन्न का भाग किया, दुःस्वप्न आदिकों को नष्ट करने के लिये अवश्यकरणीय होने से कौतुक मङ्गलरूप प्रायश्चित्त किये मषी तिलक आदिकों का नाम कौतुक, सिद्धार्थ सरसों, दही. अक्षत दूर्वाङ्कुर आदिकों का नाम मंगल है। बाद में उसने सन्नद्ध, बद्ध, वर्मित कवच को पहिरा, पहिले उसे शरीर पर आरोपण किया. इसलिये वह कवच सन्नद्ध हुआ, बाद में वह गाढतर बंधन से जकड़कर कस दिया गया. इससे बद्ध हुआ, तथा अङ्गरक्षा के निमित्त ही यह धारण किया गया था. अतः वर्मित हुआ "उत्पीडितशरासनपट्टिकः" से यह प्रकट किया गया है कि वह शरासन पट्टिका-धनुर्दण्ड जब प्रत्यंचा पर आरोपित किया गया तब झुका गया. अथवा उत्पीडित शब्द का अर्थ 'कंधे पर रखना भी है। तथाच प्रत्यंचा आरोपित की जाने से झुका दिया है, धनुष दण्ड जिसने अथवा स्कन्ध पर आरोपित किया है धनुर्दण्ड जिसने, ऐसा वह चित्रसारथी हो गया तात्पर्य कहनेका यही है कि उस चित्रसारथीने अपने धनुष पर प्रत्यञ्चा आरोपित करली, अथवा उसे हाथ में न लेकर कंधे पर टांग लिया. अपने कंधे

करवा भाटे अवश्यकरणीय मंगलरूप प्रायश्चित्तो कर्त्वा मषीतिलक वगैरेने कौतुक, सिद्धार्थ-सरसप, दही, अक्षत दुर्वाङ्कुर वगैरेने मंगल कहे छे त्यारपणी तेणे सन्नद्ध, बद्ध, वर्मित कवच पहियुं पहिला ते कवचनुं तेणे शरीर पर आरोपणु क्युं. अथी ते कवच सन्नद्ध थयुं त्यारपणी गाढतर बंधनवडे कसवामां आव्युं अथी ते बद्ध थयुं. अने अंगव्यक्त भाटे तेने धारणु करवामां आव्यु. इतुं अथी ते वर्मित थयुं. "उत्पीडितशरासनपट्टिकः" अथी आ स्पष्ट करवामां आव्युं छे छे ते शरासनपट्टिका (धनुर्दण्ड) पर व्याजे प्रत्यंचा बढाववामा आवी ते शरासन पट्टिका नमी गळ इती. अथवा उत्पीडित शब्दने अर्थ 'भलापर मृकवु' पणु थाय छे. प्रत्यंचा बढाववाधी तेणे धनुर्दण्डने नभावी दीया छे अथवा भलापर लेणे धनुर्दण्ड धारणु क्यो छे अथवा ते शरासन पट्टिका शरासनपट्टिका जाल्या. मतलब आ छे छे ते चित्र सारथीने पोताना धनुष पर प्रत्यंचा बढाववा दीया इती. अथवा ते धनुषने हाथमाथी भलापर लेरवी दीया

दण्डो येन सः, तथा-पिनद्ध्रैवेय विमलरविद्वपट्टः-पिनद्ध्रं=परिहित ग्रैवेयं=
 ग्रीवाभूषण विमलरविद्वपट्टं, येन सः, तथा-गृहीतायुधप्रहरणः-गृहीतानि
 आयुधानि=यनुगादीनि प्रहरणानि=वह्नादीनि च येन स तथा-वृतशस्त्रात्
 हत्यर्थः, एवम्भूतः सन् तत् महोयं यावत् प्राभृतं गृह्णाति. गृहीत्वा यत्रैव
 चातुर्वर्ण्यः अश्वरथस्तत्रैव उपागच्छति उपागत्य चातुर्वर्ण्यम् अश्वरथं दूरो
 हति=आरोहति । ततः सः मन्नद्ध यावद् गृहीतायुधप्रहरणैः बहुभिःपुरुषैः
 माद्धे=मह संपरिवृतः=संवेष्टितः सकोरण्टमाल्यदाम्ना=कोरण्टपुष्पमालादिभूषितेन-
 छत्रेण धियमाणेन मह महाभटचटकरप्रकरवृन्दप रक्षितः-महाभटानां ये चटकर
 प्रकराः=विस्तृतममृहास्तेषां यद् वृन्दं तेन परि क्षप्तः=परिवेष्टितःमन स्वात्=
 स्वकीयाद् गृहाद् निर्गच्छति=निस्मरति, निगच्छ श्वेतविकाया नगर्यां मध्य-
 मध्येन निर्गच्छति । इत्थं निर्गतःसमुच्चैः=सुन्व ऊरैःवासैः=रात्रिनिशमे. पा १

मे उमने ग्रीवा का आभूषणरूप ग्रैवेय द्वार पहिरा और सुन्दर २ चित्रों से
 सुशोभित सुन्दर वस्त्र भी पहिरे. धनुष आदिकों को यहां आयुध द से
 और तलवार आदिकों को प्रहरण पद से गृहीत किया गया है. उप त-
 उमने आयुध और प्रहरणों को अपने साथ ले लिया. उप प्रकार मय तरह
 से तैयार होकर वह प्राभृत को साथ में लेकर के जहां चातुर्वर्ण्य अश्वरथ
 था वहां पर गया, वहां आकर वह उस रथ पर बैठ गया. रथ में बैठने
 ही यह मन्नद्ध हुए यावत् गृहीतायुधप्रहरणवाले अनेक पुरुषों से संपरि-
 वृत हो गया. छत्रधारी पुरुषने उमके ऊपर काण्डपुष्पों की मालाओं
 से सुशोभित छत्र तान दिया. इस तरह महासुभटों के विस्तृत ममृह के
 वृन्द से परिवेष्टित होकर वह अपने घर से चला. एवं श्वेतविकानगरी
 के ठीक मध्यभाग से होना दया निकला. अनेक सुन्व ऊरवाओं से

राशैः=पातःकालिकलघुभोजनैः, तथा-ना तत्रिकृष्टैः=नातिददैः अन्तरावासैः
 मध्याह्नकालिकविश्रामस्थानैः वसन् वसन् केकयाद्धस्य जनपदस्य मध्यमध्येन
 यत्रैव कुणाला जनपदो यत्रैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, श्रावस्त्यां
 नगर्यां मध्यमध्येन अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव जितशत्रो राज्ञो गृहं
 यत्रैव बाह्य उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगान्=अश्वान् विनिगृह्णाति=निरुणद्धि, रथं स्थापयति, रथात् प्रत्यवरोहति=अवतरति तत् महार्थं
 यावत् प्राभृतं गृहीत्वा यत्रैव आभ्यन्तरिको उपस्थानशाला, यत्रैव जितश
 राजा तत्रैव उपागच्छति जितशत्रु राजाः कान्तलपरिगृहीतं यावत् कृत्वा
 जयन विजयेन वर्द्धयति, तद् महार्थं यावत् प्राभृतम् उपनयति=तस्मै
 प्रयच्छति ॥मृ० १०५॥

रात्रियों में ठहरने से प्रातराशों से-पातःकालिक लघुभोजनरूप कलेवा
 से तथा बहुत अधिक दूर के नहीं ऐसे मध्याह्नकालिक विश्रामों से युक्त
 हुआ वह जगह २ ठहरता-केकयाद्ध जनपद के पास आगया, उसके
 मध्य मध्य से होकर वह निकला और जहाँ कुणाला जनपद-देश था,
 और उसमें भी जहाँ श्रावस्ती नगरी थी वहाँ आकर वह उसके ठीक
 बीचों बीच से होकर उसमें प्रविष्ट हुआ. प्रविष्ट होकर फिर वह वहाँ
 गया जहाँ जितशत्रु राजा का राजमहल था, और उसमें भी जहाँ बाह्य
 उपस्थानशाला थी. वहाँ पहुँचने ही उसने घोड़ों को खड़ा कर दिया
 और रथ को चलने से रोक दिया. बादमें वह उस रथ से नीचे उतरा
 और प्राभृत को साथ लेकर वह आभ्यन्तरिको उपस्थानशाला में जहाँ
 जितशत्रु राजा थे. वहाँ पर पहुँचा, वहाँ पहुँचते ही उसने जितशत्रु राजा
 को दोनों हाथ जोड़कर बड़े विनय प्रणाम किया और जय विजय

शक्ति अक्षयिभोजनो, (नास्ताभ्यो) तथा वधादे इर नडि यशु नलुक नलुक न मध्या-
 ह्नकालिकविश्रामो इरतो इरतो स्थान स्थान पर पडाव नाभतो ते डेकयाद्ध जनपदनी नलुक
 पडावयो. अने त्वापरछी ते जनपदनी मध्यमां थधने ज्यां कुणाला देश डतो अने
 ज्या श्रावस्तीनगरी डती त्या नधने ते ठीक नगरीना मध्यमार्गथी ज्यां जितशत्रु
 राजना राजमहल डतो अने तेमां यशु ज्यां बाह्य उपस्थानशाणा डती त्यां
 यत्रैवो अने पडिअता न तेणे चोडाअने उभा राण्या अने रथने आगण नवाथी
 यत्रैवो त्वापरछी ते मध्यमांथी नीचे उतथी अने लेटने लधने आभ्यन्तरिकी उपस्थान
 शाला न ज्यां जितशत्रु राजा डतो त्यां गथे त्यां पडाव्यीने तेणे जितशत्रु
 राजा अने जय विजय देदीने प्रणाम कर्था अने नयविजय शब्दोत्तुं उच्यारणु करीने

मूलम्—तएणं से जियसतू राया चित्तहस सारहिस्स तं महत्थं जाव पाहुडं पडिच्छइ, चित्तं सारहिं सकारेइ सम्माणेइ पडिविस-ज्जेइ, रायमग्गमोगाढं च संवासं दलयइ । तए णं से चित्त सारही विसज्जिए समाणे जियसतूस्स अतियाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवाग-च्छइ, चाउग्घट आसरहं दुरुहइ. सावत्थाए णयरीए मज्झं मज्झेणं जेणेव रायमग्गमोगाढं आवासे तेणेव उवागच्छइ, तुरए निगिण्हइ. रहं ठवेइ, रहाओ पञ्चोरुहइ, ण्हाए कयवलिकम्मि कयकोउयसंगल पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइ मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्प-महग्घाभरणालंक्रियसरीरे जिमियभुत्तारागए वियणं समाणे पुव्वावरण्हकालसमयंसि गंधव्वेहि य णाडगेहि य उवनच्चिज्जमाणे उवनचिज्जमाणे २ उवलालिज्जमाणे २ इट्ठे सइ-फरिस-रस-रुव-गंधे-पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे दिव्वे ॥ सू० १०६

छाया—ततः खलु स जितशत्रू राजा चित्रस्य सारथेऽन्मन्मार्थं गान्त प्राभुतं प्रतीच्छति चित्रं सारथि मन्धारयति सम्मानयति प्रतिगिन्वर्जयति, शब्दों का उच्चारण करते हुए उन्हें श्याइ दी, बाद में लाने हुए उस मन्मार्थ आदि विशेषणों वाले प्राभुत को उनके लिये अर्पण किया । सू. १०५। 'तए णं से जियसतूराया' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से जियसतू राया चित्तहस सारहिस्स तं महत्थं जाव पाहुडं पडिच्छइ) तब जितशत्रू राजाने चित्र सारथि से दिये गये मन्मार्थ को दे कर लाने की आशा की, लाने की तब मन्मार्थ लाने के लिये विशेषणों वाले प्राभुत को अर्पित किया । सू. १०५।

'तए णं से जियसतू राया' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से जियसतू राया चित्तहस सारहिस्स तं महत्थं जाव पाहुडं पडिच्छइ) तब जितशत्रू राजाने चित्र सारथि से दिये गये मन्मार्थ को दे कर लाने की आशा की, लाने की तब मन्मार्थ लाने के लिये विशेषणों वाले प्राभुत को अर्पित किया । सू. १०५।

राजमार्गावगाढं च यस्य आवासं ददाति । ततः खलु स चित्रः सारथिः विसर्जितः सन्न जितशत्रोः अन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति, यत्रैव वाह्या उपस्थानशाला यत्रैव चातुर्घटः अश्वरथम्नत्रैव उपागच्छति चातुर्घटम् अश्वरथं दुरोहति श्रावस्त्या नगर्यां मध्यमध्येन यत्रैव राजमार्गावगाढ आवासस्तत्रैव उपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथात् प्रत्यवरोहति, स्नातः

आद विशेषणों वाले प्राश्रुत को जो कि प्रदेशी राजाने प्रेषित किया था. ले लिया. (चित्तं सारहिं सकारेइ, सम्माणेइ, पडिविसज्जेइ) फिर कुशलपभ्रादि पूछकर उसका सत्कार किया, आमन आदि देकर उसका सम्मान किया और बाद में उसे विमर्जित कर दिया, अर्थात् विश्राम करने के निमित्त भेज दिया. (रायमग्गमोगाढं च संवासं दलयइ) उसे राजमार्ग के पास स्थित गृह में ठहराया गया (तए णं से चित्ते साही विसज्जिए समणे जियसत्तुस्स अंतियाओ पडिनिकखमइ-जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) अतः वह चित्र सारथि जितशत्रु राजा द्वारा विसर्जित किया गया होकर उनके पास से चला आया. और जहां वाह्य उपस्थानशाला थी, जहां चातुर्घट अश्वरथ था. वहां आकर वह (चाउग्घंटे आसरहं दुरुहइ) उस चातुर्घट रथ पर सवार हो गया (सावत्थीए णयरीए मज्झं मज्झेणं जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ) और श्रावस्ती नगरी के बीचो बीच से होता हुआ जहां राजमार्ग पर स्थित आवास-गृह था वहां पर आया. (तुरए

विशेषणोवाणी लेटने-डे नेने प्रदेशी राजाने भोडली हुती-स्वीकारी दीधी. (चित्तं सारहिं सकारेइ, सम्माणेइ, पडिविसज्जेइ) त्थारपणी कुशलता विषे समायारे पृथीने तेने अकार कर्यो आसन वगेरे आपीने तेनु सम्मान क्युं अने त्थारपणी तेने विसर्जित करी दीधी अेटवे डे विश्राम करवा भाटे भोडली दीधी. (रायमग्गमोगाढं च संवासं दलयइ) तेने राजमार्गानी पासैना घरमां उताये आप्ये. (तए णं से चित्ते सारही विसज्जिए समणे जियसत्तुस्स अंतियाओ पडिनिकखमइ-जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) त्थारपणी जितशत्रु राजा पासैथी विसर्जित करायेवो ते चित्रसारथी त्थायी रवाना थये अने नया आह्य उपस्थानशाला हुती, नया चातुर्घट अश्वरथ हुतो त्यां आव्ये त्यां आवीने ते (चाउग्घंटे आसरहं दुरुहइ) चातुर्घट रथ पर सवार थये. (सावत्थीए णयरीए मज्झं मज्झेणं जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ) अने श्रावस्तीनगरीना मध्यमां थधने नयां राजमार्ग पर स्थित आवास-गृह-हुतुं

कृतचलिकर्मा कृतकौतुकमद्ग्नप्राग श्रुतः शुद्धप्रवेश्यानि मङ्गल्यानि वस्त्राणि
 पञ्चपरिहितः अल्पमहर्षाभरणालङ्कृतशरीरो जिमित्तु-क-त्तरागतोऽपि च
 खलु कन् पूर्वपराङ्कालसमये गन्धर्वैश्च नाटकैश्च उपनर्त्यमान २ उपगीयमान
 उपगीयमान उपलाल्यमानः २ उष्टान् शब्द-स्पर्श-रस-रूपगन्धान् पञ्च
 विधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरति ॥ सू० १०६ ॥

निगिण्डः रहं ठवेड, रहाओ पञ्चोरुड) वहाँ आरुके उमने घोडोंको
 रोका रथ को खडा किया और फिर रथ से नीचे उतरा (पहाए कय-
 चलिकम्मे, रूपको उरमां शरायिउत्ते मुद्रप्रावेमाड मंगडाडं वत्थाहं
 पञ्चपरिहित) बाद में उमने भोजन किया. चलिकर्म-वायमादिकों के लिये
 अन्न का भाग दिया दुःखमों को नाश करने के लिये कौतुक,
 मंगलरूप प्राग श्रुत लिये. बाद में शुद्ध राजसभा में प्रवेश योग्य ऐसे
 माङ्गलिक वस्त्रों का रीति के अनुसार पहिरा (अल्पमहर्षाभरणालङ्किय-
 मरीरे) फिर अपने अल्प भागले बहुमूल्य आभरणों से अपने शरीर
 को आलकृत किया और (जिमियभुत्तरागए वियणं समाणे) जामने
 के बाद अर्थात् भोजन करके-फिर बाद उपवेशनस्थान में आ गया
 (पुन्वावरणकालममयंमि) वहा दिवस के तृतीय पहर में (गन्धर्वैर्लिय
 णाटगेटिय उवणच्चिज्जमाणे, उवणच्चिज्जमाणे उवगाडज्जमाणे २ उरलाटि-
 ज्जमाणे २) गीतों द्वारा और नाटकों द्वारा पार २ अपना २ विषय विस्वा-
 कर, अपना २ विषय सुनाकर चारणार रखाया गया, चारचार विद्याम्

‘तएणं से’ इत्यादि ।

टीका-ततः खलु स जितशत्रू राजा चित्रस्य सारथिः सकाशात् प्रदेशि
 राजप्रेषिनं तद् महार्थं यावत् प्राभृत पत्नीच्छति=गृह्णाति, चित्रं सारथिं सत्कार
 यति-कुशलप्रश्नादिना, सम्मानयति आमनप्रदानेन, ततस्तं प्रतिविसर्जयति=
 विश्रामार्थं संप्रेषयति, तथाच=राजमार्गावगाढं=राजमार्गसमीपस्थितम् आवास=
 गृहं तस्य=तस्मै ददाति । अत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । ततः खलु स चित्रः
 सारथिः जितशत्रुणा राज्ञा विसर्जितः सन् तस्य जितशत्रू राज्ञः अन्तिकात्
 =प्रतिनिष्क्रमति=निर्गच्छति, यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला, यत्रैव
 चातुर्घण्टः अश्वरथः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य चातुर्घण्टम् अश्वरथं
 दूरोहति=अरोहति, श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव राजमार्गावगाढ-आवासः,
 तत्रैव उपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति=निरुणद्धि, निगृह्य रथं स्थापयति,
 स्थापयित्वा रथात् प्रत्यवरोहति=अवतरति । ततः स्नातः=कृतस्नानः कृतव-
 लिकर्मा=स्नानेकृते पशुपक्ष्याद्यर्थं कृतान्नभागः, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः-
 कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानि=दुःस्वप्नादि विघातार्थमवश्यकरणी-
 यत्वाद् येन स तथा, तत्र-कौतुकानि=मपीतिलकानि, मङ्गलानि तु=सिद्धार्थ
 सर्पपदध्यक्षतदूर्वाङ्कुरादीनि । तथा=शुद्धप्रावेश्यानि=राजसभाप्रवेशार्हाणि मङ्ग-
 ल्यानि=माङ्गलिकानि वस्त्राणि प्रवरपरिहितः=यथारीतिपरिघृतः अल्पमहर्घा-
 अरणालङ्कृतशरीरं-अल्पानि=स्तोकभाराणि यानि महर्घाणि=बहुमूल्यानि आभ-
 रणानि तैः अलङ्कृतं=सुशोभितं शरीरं यस्य सः, तथा=जिमितभुक्तोत्तरा-
 गतः जिमितः=कृतभोजनः, सचासौ भुक्तोत्तरागतः=भोजनोत्तरकालम् उपवे-
 शनस्थाने समागतश्चेति तथाभूतोऽपि च खलु सन् पूर्वापराङ्कालसमये
 पूर्वश्चासौ अपराहश्चेति पूर्वापराहः, स एव कालसमयः-कालोपलक्षितः
 समयस्तस्मिन्-दिवसस्य तृतीये महरे गान्धर्वैश्च=गीतैश्च नाटकैश्च उपनत्य-

युक्त वनाया गया वह चित्र सारथि (इष्टे सह-फरिस-रस=रुच-गंधे पंचविहे
 माणुस्सए कामभोगे पञ्चणुभवमाणे विहरइ) । इष्ट-अभिलषित-शब्दः, स्पर्श
 रस, रूप गंध इन पांच प्रकार के मनुष्यभव संबंधी कामभागों को
 अनुभवित करने लगा । टीकार्थ इसका स्पष्ट है ॥ १०६ ॥

अशयेदो, बारंबार विश्वासयुक्त बनायेदो ते चित्र सारथि (इष्टे सह-फरिस-रस-
 रुच-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पञ्चणुभवमाणे विहरइ) इष्ट-अभिल-
 षित-शब्दः, स्पर्श, रस, रूप, गंध आ पांच जगत्ना मनुष्यत्वव संबंधी काम
 भोगेने भोगववा लाग्यो. टीकार्थः-आ सूत्रेण स्पष्ट छे. ॥१०६॥

मानः उपनर्त्यमानः=वृत्तं दृश्यमानो दृश्यमानः उपगीयमानः उपगीयमानः—
 गानं श्राव्यमाणः श्राव्यमाणः, अतएव-उपत्याल्यमानः२ विलास्यमानः२
 हृष्टान्=श्रमिलपितान् शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धान पञ्चविध न् मानुष्यमानः=
 मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान् प्रन्यनुभवन् विहरति ॥श्रु० १०६॥

मलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिजे केसी नाम
 कुमारसमणे जाइसंपणणे कुलसंपणणे बलसंपणणे रुवसंपणणे विणय-
 संपणणे नाणसंपणणे दंसणसंपणणे चरित्तसंपणणे लज्जासंपणणे ला-
 घवसंपणणे लज्जालाघवसंपणणे ओयंसी तेयसी वच्चंसी जससी
 जियकोहे जियमाणे जियमा . जियलोहे जियणिहे जिइदिण् जिय-
 परीसहे जीवियासमरणभयविप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे करण-
 प्पहाणे चरणप्पहाणे निग्गहप्पहाणे निच्छयप्पहाणे अज्जवप्पहाणे
 मदवप्पहाणे लाघवप्पहाणे खंतिप्पहाणे गुत्तिप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे
 विज्जप्पहाणे मंतप्पहाणे वंभप्पहाणे वेयप्पहाणे नयप्पहाणे नियम-
 पहाणे सच्चप्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दसणप्पहाणे चरित्त-
 प्पहाणे ओगले चउदसपुट्ठी चउणाणोवगण पचहि अणगाम्मत्ति
 सत्ति संपरिवुत्ते पुट्ठाणुपुट्ठिव चरमाणं गामाणुगोमं दृइजमाणं नुद-
 सुहेणं विरमाणे जेणव सावत्थी णवरी जेणव कोट्टण चेटण तेणेव
 उयागच्छइ. सावत्थी नयरीण चरिया कोट्टण चेटण अद्दापटिस्सव
 उग्गतं उग्गिणित्ता संजमेणं तवन्ता अप्पाणं भावेमाणे विहरइ म् १०७ ॥

साया—नस्मिन् काले तस्मिन् समये शार्गाप-धीवः केसिनासयमा-
 भसणे जातिभ-स्यनः इत्यस्यस्यो पत्यस्यस्यो इत्यस्यस्यो इत्यस्यस्यो

ज्ञानसंपन्नो दर्शनसंपन्नः चारित्र्यसंपन्नः लज्जासंपन्नो लाघवसंपन्नो लज्जा-
लाघवसंपन्न ओजस्वी तेजस्वी वर्चस्वी यशस्वी जितक्रोधो जितमानो जित
मायो जितलोभो जितनिद्रो जितेन्द्रियो जितरागो जो जिताशा मरणभयविप्रमुक्तः
तपःप्रधानो गुणप्रधानः करणप्रधानः चरणप्रधानो निग्रहप्रधानो निश्चयप्रधानः

में (पासावच्चिञ्जे) पार्श्वपत्नीय=भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा में
स्थित (केशी नाम कुमारसमणे) केशी नामके कुमार श्रमण-जो कि
कुमार अवस्था में ही दीक्षित हुए थे और जो (जाइसंपन्ने) जातिसंपन्न
थे, (कुलसंपण्णे) कुलसंपन्न थे, (बलसंपण्णे) बल संपन्न थे (रुवसंपन्ने)
रूप संपन्न थे, (विणयसंपन्ने) विनयसंपन्न थे (नाणसंपण्णे) ज्ञान
संपन्न थे, (दंसणसंपन्ने) दर्शन संपन्न थे (चरित्तसंपन्ने) चारित्र्य
संपन्न थे, (लज्जासंपन्ने) लज्जा संपन्न थे (लाघवसंपन्ने) लाघव
संपन्न थे (लज्जा लाघवसंपन्ने) लज्जा एवं लाघव से संपन्न थे (ओयसी,
तेयसी, वच्चंसी, जसंसी) ओजस्वी थे, तेजस्वी थे, वर्चस्वी थे, यशस्वी थे,
(जियमाणे) जितमान थे (जियमाणे) जितमाय थे (जियलोहे, जियणिहे जिइंदिए)
जित क्रोध थे, जितनिद्र थे, जित इन्द्रिय थे, (जियपरीसहे, जीवियासम
रणभयविप्रमुक्के) जीने की आशा से और मरण के भय से विप्रमुक्त थे
(तपप्पहाणे गुणप्पहाणे) तपप्रधान थे, गुणप्रधान थे (करणप्पहाणे चरणप्पहाणे
निग्रहप्पहाणे, निच्छयप्पहाणे, अज्जवप्पहाणे, महवप्पहाणे, लाघवप्पहाणे

वच्चिञ्जे) पार्श्वपत्नीय-भगवान् पार्श्वनाथनी शिष्य परंपरा में स्थित (केशी नाम
कुमारसमणे) केशी नामके कुमार श्रमण के लिये कुमार अवस्था में ही दीक्षित तथा
जाता-अने लो (जाइसंपन्ने) जातिसंपन्न होता। (कुलसंपण्णे) कुल संपन्न होता।
(बलसंपण्णे) बल संपन्न होता। (रुवसंपण्णे) रूपसंपन्न होता। (विणयसंपन्ने)
विनय संपन्न होता (नाणसंपण्णे) ज्ञान संपन्न होता। (दंसणसंपन्ने) दर्शन
संपन्न होता। (चरित्तसंपण्णे) चारित्र्य संपन्न होता (लज्जासंपण्णे) लज्जा
संपन्न होता (लाघवसंपण्णे) लाघव संपन्न होता (लज्जालाघवसंपन्ने)
लज्जा एवं लाघव संपन्न होता। (ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी, जसंसी) ओज
स्वी होता, तेजस्वी होता, वर्चस्वी होता, यशस्वी होता। (जियकोहे) जित क्रोधी होता।
(जियमाणे) जितमान होता। (जियमाणे) जितमाय होता। (जियलोहे जियणिहे जिइंदिए)
जित क्रोध होता, जितनिद्र होता, जितेन्द्रिय होता। (जियपरीसहे, जीवियासमरण-
भयविप्रमुक्के) जीने की आशा अने मरण का लयथी विप्रमुक्त होता। (तप
प्पहाणे गुणप्पहाणे) तप प्रधान होता, गुण प्रधान होता। (करणप्पहाणे, चरणप्प

आर्जवप्रधानो मां वानां लायव धनः क्षान्तिप्रधानो गुप्तप्रधानो मुक्ति-
 प्रधानो विद्या प्रधानो मन्त्रप्रधानो ब्रह्मप्रधानो वेदप्रधानो नयप्रधानो नियम-
 प्रधानः सत्यप्रधानः शौचप्रधानो जनप्रधानो दर्शनप्रधानः चाग्निप्रधानः
 उदारः चतुर्दशसूचीचतुर्जानोपगतः श्रमिः अनगारशतैः सार्द्धं सपरिवृतः
 पूर्वानुपूर्व्या चरन् ग्रामानुग्रामं द्रुतं सृष्ट्वेन विहरन् त्रैव श्रावस्ती गरी
 यत्र कोष्ठकं चैत्यं तत्रैव उपसन्ततः श्रावस्तीनगरी बहिः कोष्ठके

स्वल्पप्रधाने, मुक्तिप्रधाने गुप्तप्रधाने ब्रह्मप्रधाने मन्त्रप्रधाने, वेद-
 प्रधाने) करणप्रधान थे, चरण प्रधान थे, निग्रह प्रधान थे निश्चयप्रधान
 थे आर्जवप्रधान थे, मार्दव प्रधान थे, लायवप्रधान थे, क्षान्तिप्रधान थे
 मुक्तिप्रधान थे, गुप्तिप्रधान थे, विद्या प्रधान थे, मन्त्रप्रधान थे, ब्रह्मप्रधान
 थे, वेद प्रधान थे. (नयप्रधाने नियमप्रधाने, सच्चप्रधाने, सोयप्रधाने,
 नागप्रधाने, दंभप्रधाने चरितप्रधाने जोगले चउत्सवपुत्री चउणाणो-
 चगण) नयप्रधान थे नियमप्रधान थे, सत्यप्रधान थे, शौचप्रधान थे, जन
 प्रधान थे, दर्शन प्रधान थे, चाग्नि प्रधान थे, उदार थे चौदह पूर्वके
 धारी थे, और मणिजान आदि चार जानवाले थे (पर्वति अणगासणहिं
 संपरिवृते) पांचमी अनगारी के साथ (गुणानुसृष्टि चरमाणे गामाणुगामं
 दृष्ट्वा जमाणे सृष्ट सृष्टेणं विहरमाणे जेणेव सा त्पी णयगी, जेणेव कोष्ठक
 चैत्यं, तंणेव उपसन्तत) तीर्थ कर परम्परा में अनुया विद्या करने हुए,

रणे, निग्रहप्रधाने, निन्दप्रधाने, अउजप्रधाने, महप्रधाने, लायवप्र-
 णे, स्वल्पप्रधाने, मुक्तिप्रधाने, गुप्तप्रधाने ब्रह्मप्रधाने, मन्त्रप्रधाने
 वेदप्रधाने) करण प्रधान होता, चरण प्रधान होता, निग्रह प्रधान होता, निश्चय
 प्रधान होता आर्जव प्रधान होता, मार्दव प्रधान होता, लायव प्रधान होता, क्षान्ति
 प्रधान होता, मुक्ति प्रधान होता, गुप्ति प्रधान होता, विद्या प्रधान होता, मन्त्र प्रधान
 होता, ब्रह्म प्रधान होता, वेद प्रधान होता (नयप्रधाने, नियमप्रधाने, सच्चप्रधाने
 सोयप्रधाने, नागप्रधाने, दंभप्रधाने, चरितप्रधाने, जोगले चउत्सवपुत्री
 चउणाणोचगण) नय प्रधान होता, नियम प्रधान होता, सत्य प्रधान होता, शौच
 प्रधान होता, जन प्रधान होता, दर्शन प्रधान होता, चाग्नि प्रधान होता, उदार
 चौदह पूर्वके धारी हुए उनके परिवार को वे जानवाले थे (पर्वति अण
 गासणहिं सति सपरिवृते) पांचमी अनगारी के साथ (गुणानुसृष्टि चरमाणे
 गामाणुगामं दृष्ट्वा जमाणे सृष्ट सृष्टेणं विहरमाणे जेणेव सा त्पी णयगी, जेणेव
 कोष्ठक चैत्यं, तंणेव उपसन्तत) तीर्थ कर परम्परा में अनुया विद्या करने हुए

चैत्ये यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन्
विहरन्ति ॥ सू० १०७ ॥

टीका—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि—

‘तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वपत्नीयः=भगवतः पार्श्वनाथस्य
शिष्यपरम्परायां स्थितः केशीनामकुमारश्रमणः—कुमारश्यामौ श्रमणश्चेति,
कौमार्यवस्थायां प्रव्रजित इत्यर्थः, स कीदृशः? इत्याह—जातिसम्पन्नः—जातिः=मातृ
पक्षः—तेन सम्पन्नो=युक्तः—उत्तममातृपक्ष सम्पन्न इत्यर्थः, तथा कुलसम्पन्नः—
कुलः=पैतृको वंशः, तेन सम्पन्नः—उत्तमपितृपक्षसम्पन्न इत्यर्थः, तथा—वल

एकं ग्राम से दूसरे ग्राम में होते हुए आनन्द के साथ जहां श्रावस्ती
नगरी थी और जहां कोष्ठक चैत्य था, वहां पर आये. (सावत्थीनघ-
रीए बहिया कोट्टए चेइए अहापडिख्वं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा
अप्पाण भावेमाणे विहरइ) जहां आकर वे श्रावस्ती नगरी के बाहर
प्रदेश में स्थित कोष्ठक चैत्य में यथाप्रतिरूप अवग्रह प्राप्तकर संयम
और तपसे आत्मा को भावित करते हुए ठहर गये. ।

टीकार्थ—उस काल और उम समय में पार्श्वपत्नीय भगवान् पार्श्व-
नाथकी शिष्य परंपरा में स्थित केशीकुमार श्रमण जिन्होंने कौमार्य-बाल्य
अवस्था में प्रव्रज्या धारण करली थी. तीर्थंकर परंपरा के अनुसार विहार
करते हुए कोष्ठक चैत्य में आकर ठहरे, ये जाति सम्पन्न थे मातृपक्षका
नाम जाति है, उससे ये युक्त थे अर्थात् उत्तम मातृपक्षवाले थे, पैतृक
वंशका नाम कुल है, उससे भी ये युक्त थे अर्थात् उत्तम पितृपक्षवाले थे विशिष्ट

एक गाभथी नीजे गाभ विहार करता करता आनन्दनी साथे न्यां श्रावस्ती नगरीं इती
अने न्या कोष्ठक चैत्य (उद्यान) इतुं त्या आव्या. (सावत्थी नयरीएबहिया
कोट्टए चेइए अहापडिख्वं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाण
भावेमाणे विहरइ) त्यां नधने तेणो श्रावस्ती नगरीनी अहार-कोष्ठक चैत्यमा यथा-
प्रतिरूप अवग्रह प्राप्त करीने संयम अने तपथी आत्माने भावित करतां रोकाया.

टीकार्थ—ते काले अने ते समये पार्श्वपत्नीय भगवान्-पार्श्वनाथनी शिष्य
परंपरामा स्थित केशीकुमार श्रमण-के नेमणे कौमार्य अवस्थां प्रव्रज्या धारण
करी इती. तीर्थंकर परंपरा मुज्ज विहार करतां करता कोष्ठक चैत्यमा आवीने
रोकाया ऐणो नति सम्पन्न इता. मातृपक्षतुं नाम नति छे ऐनाथी ऐणो युक्त
इता ऐटवे छे उत्तममातृपक्षवाणा इता. पैतृकवंशतुं नाम कुण छे, ऐनाथी ऐणो
इत इता ऐटवे छे ऐणो उत्तमपितृपक्षवाणा इता. विशिष्ट संडुननथी समुत्थ-

सम्पन्नः—बलं=विशिष्टमहनममुत्था शक्तिः, तेन सम्पन्नः, रूपसम्पन्नः—
 रूपम्=सर्वोत्कृष्ट शरीरं सौंदर्यं तेन सम्पन्नः, विनयसम्पन्नः—विनय.प्रसिद्धः,
 तेन सम्पन्नः, तथा ज्ञानसम्पन्नः=मत्यादिज्ञानयुक्तः, दर्शनसम्पन्नः=सम्यक्त्व-
 युक्तः, चारित्रसम्पन्नः=चारित्र्यं=सयमः तेन संपन्नो=युक्तः, लज्जासम्पन्नः—
 लज्जा=अनुचितानुष्ठानमंत्रणान्मिकरूपाः, तथा सम्पन्नः=युक्तः. लाघव
 सम्पन्नः=लाघवं=द्रव्यतोऽल्पोपदिष्टं, भावतो गौरवत्यागः, ताभ्यां सम्पन्नः,
 लज्जालाघवसम्पन्नः=लज्जया लाघवेन च स मन्तमेव सम्पन्नः । तथ—
 ओजस्वी—ओजः=आत्मिकतेजः, तदस्ति यस्य स तथा, आत्मिकतेज
 सम्पन्न इत्यर्थः, तेजस्वी—तेजःशरीरप्रभा. तदग्नि यस्य तथा अनुपमशरीर-
 प्रभाविशिष्ट इत्यर्थः, तथा वर्चस्वी=प्रभाववान्, 'वचस्वी'—इतिन्द्रियापक्षे-
 प्रशस्तवचनयुक्त इत्यर्थः, तथा—जितक्रोधः=क्रोधजेता, जितमानःमानजेता—

सहनन से समुत्थ शक्ति का नाम बल है, इस बल से ये युक्त थे, सर्वो
 उत्कृष्ट शारीरिक सौन्दर्य का नाम रूप है. इस रूप से ये सम्पन्न थे, विनय
 सम्पन्न थे, मन्यादि ज्ञानों से सम्पन्न थे. सम्पन्नच से युक्त थे, सम्यक् रूप
 चारित्र से युक्त थे, लज्जा से युक्त थे अर्थात् अनुचित काम करने से सदा दूर रहत
 थे. लाघव से युक्त थे, लाघव द्रव्य और भाव की अपेक्षा से दो प्रकार का कहा गया
 है अन्य उपधिरखना यह द्रव्य की अपेक्षा लाघव है तथा गौरव का त्याग करना
 यह भाव की अपेक्षा लाघव ही लज्जा और लाघव इन दोनों से ये युक्त थे. उनमें
 आत्मिक तेज परास्व से भरा हुआ था अतः ओजस्वी थे. शरीर
 प्रभा का नाम तेज है. यह शारीरिक तेज इन्द्रा अनुपम था. इस-
 लिये ये तेजस्वी थे. प्रभाववान् थे इत्यन्तिरे वर्चस्वी थे अथवा प्रशस्तवचन
 से युक्त थे. इत्यर्थे वर्चस्वी थे. चार के शिरोनाम अतः जित — च थे.

मानापमानयोस्तुल्य इत्यर्थः, जितमायः=सर्वथा निष्कपटः, जितशोभः=शोभजेता,
 जितनिद्रः=वशोऽकृतनिद्रः, जितेन्द्रियः=निगृहीतसकलेन्द्रियः, जितपरीषहः=
 परीषहजेता, तथा-जोवित शमरणभयविप्रमुक्तः-जीवितस्य=जीवनस्य या
 आशा तस्याः, तथा-मरणस्य=प्राणत्रियोगस्य यद् भयं तत्र विप्रमुक्तः=
 रक्षितः जीवनमरणयोः समभावयुक्त इत्यर्थः तथा तपःप्रधानः=तपसा प्रधानः=
 सकलमुनीनां मध्ये प्रधानत्वं प्राप्तः, अथवा-तपः=तपस्या प्रधानं यस्य स
 मदानपस्वीत्यर्थः, गुणप्रधानः-गुणैः=क्षान्त्यादिकुणैः प्रधानः=श्रेष्ठः । 'तपः
 प्रधानगुणप्रधाने' इति विशेषणद्वयेन तपसः पूर्ववद्द्रव्यकर्मणो निर्जराहेतुत्वेन
 संयमस्य चाभिनवकर्मणोऽनुपादेयत्वेन मोक्षापात्त्वान्मोक्षार्थिभिस्तावद्वय

मान के विजेता थे अतः जितमान थे, तात्पर्य मान अपमान में सम थे
 सर्वथा निष्कपट थे, अतः जितमायः थे, शोभ के जेता थे अतः जितशोभ
 थे, निद्रा को वश में कर लिया था इसलिये जितनिद्र थे, समस्त
 इन्द्रियों के निग्रहकर्ता थे-इसलिये जितेन्द्रिय थे-परीषहों पर विजय
 पा लिया था इसलिये जितपरीषह थे, जीने की आशा से एवं मरण
 के भय से बिल्कुल विप्रमुक्त थे-इसलिये 'जीवन मरण में समभाव
 शाली थे, तपसे सकल मुनिजनों में प्रधानता प्राप्त करने के कारण ये
 तपःप्रधान थे, अथवा तपस्या प्रधान थे, महातपस्वी थे, इसलिये तपः
 प्रधान थे, क्षान्त्यादिक गुणों से श्रेष्ठ होने के कारण गुणप्रधान थे "तपः-
 प्रधान एवं गुणप्रधान" इन दो विशेषणों से यह सूचित किया गया है
 कि तप पूर्ववद्द्रव्यकर्मों की निर्जरा का हेतु होता है एवं संयम नवीन
 कर्मों की अनुपादेयता का हेतु होता है अर्थात् नवीन कर्मों के आगमन

होता, अर्थात् मान अपमान करने शोभना भाटे संरक्षा होता, शोभो संपूर्णत,
 निष्कपट होता श्रेष्ठ जितमान होता, दोलने अतनार होता श्रेष्ठ जितदोली होता,
 शोभो निद्रावश करी होती श्रेष्ठ शोभो जितानिद्र होता, अधी छन्द्रीयोने शोभो
 वशमा करी राणी होती, श्रेष्ठ शोभो जितेन्द्रिय होता, परीषहो पर शोभो विजय
 शोभो होता श्रेष्ठ शोभो जित परीषह होता, एवानी आशाथी अने मरणना
 शयथी शोभो श्रेष्ठम विप्रमुक्त होता, श्रेष्ठ एवन मरणमां शोभो समलवर्था
 होता, सकल मुनियोमां तपनी अपेक्षाये प्रधान होवाथी श्रेष्ठ शोभो तपःप्रधान होता,
 अर्थात् महातपस्वी होता क्षान्त्यादिक श्रेष्ठ गुणोथी युक्त होवा अहल श्रेष्ठो गुण
 प्रधान होता "तपःप्रधान अने गुणप्रधान" आ जे विशेषणोथी श्रेष्ठ वात सूचित
 होता आवाथी श्रेष्ठ तप शोभो शोभोनी निर्जराहेतुत्वेन संयम अने संयम

मेत्रोपानव्यावृत्ति सूचितम् । सामान्यतो गुणप्रधान्यमुक्त्वा सम्प्रति विशेषत
स्तदाह-तथाहि-करणप्रधानः-करणं=पिण्डविशुद्ध्यादिमानतिविधम्, तदुक्तम्
'पिण्डत्रिसोही (७) सप्तिई (५) भावण (१२) पडिमा (१२) य इन्द्रियनिरोहो (५)।
पडिलेहण (२५) गुत्तोओ (३) अभिग्रहो (१) चैव करणं तु ॥१॥
छाया—पिण्डविशोधः सप्तिति भावना-प्रतिमा च इन्द्रियनिरोधः ।
प्रतिलेखना गुप्तयः अभिग्रहाश्चैव करणं तु ॥ इति ॥

तत्प्रधानं यस्य स तथा, चरणप्रधानः-चरणं=महाव्रतादि सप्ततिविधम्,
तदुक्तम्--वय (५) संमणधम्म (१०) संजम (१७) वेयावच्च (१०) च वंभ-
गुत्तोओ (५) णाणाइति (३) तव (१२) कोह निग्रहाई (४) चरणमेयं ।
छाया--व्रतं श्रमणधर्मः संयमो वेयावृत्त्य च ब्रह्मगुप्तयः ।
ज्ञानादिविक्रं तपः क्रोध निग्रहादिः चरणमेतत् ॥ इति ॥

तत् प्रधानं यस्य स तथा, निर्ग्रहप्रधानः-निग्रहः=असदाचारप्रवृत्तिनिषेधः स प्रधानं
यस्य स तथा, निश्चयप्रधानः=निश्चयैः=तत्त्वानां निर्णयो विहितानुष्ठानानामव-
श्यमभ्युपगमो वा, स प्रधानं यस्य स तथा आर्जवप्रधानः=आर्जवं=ऋजुता माया-

को रोकनेवाला होता है- इसलिये ये दोनों मोक्ष के उपायभूत होते हैं
अत मोक्षार्थियों को इन्हे अवश्य प्राप्त करना चाहिये ।

अब सामान्यरूप से गुणप्रधानता कहकर विशेषरूप से उसका प्रति-
पादन करने के लिये कहा गया है-करण प्रधान इत्यादि पिण्डविशु-
द्ध्यादि सात प्रकारका है-कहा भी है 'पिण्डत्रिसोही' इत्यादि, इन गुणों से ये
युक्त थे अतः ये करण प्रधान कहे गये हैं । महाव्रतादि रूप चरण ७०
प्रकार का कहा गया है-जैसे 'वय' इत्यादि यह चरण इनमें प्रधान था,
अतः ये चरण प्रधान थे, असदाचारप्रवृत्ति के निषेध का नाम निग्रह है
यह निग्रह इनमें प्रधान था, अतः इन्हे निग्रह प्रधान कहा गया है ।
तत्त्वों का निर्णय करनेरूप निश्चय अथवा विहित अनुष्ठानों का अवश्य

कर्मोनी अनुपादेयतानो हेतु होय छे अटखे के नवीन कर्मोने शकनार होय छे,
अधी न् अथो अन्ने मोक्ष भाटे उपायभूत कहेवाय छे, अधी भुञ्जुकोडेने भाटे
अे अन्ने अवस्थ आदर्श्वीय छे,

इवे सामान्यरूपथी गुणप्रधानताने करीने विशेषरूपथी तेनुं प्रतिपादन करवा
भाटे कहे छे के-करणप्रधान इत्यादि पिण्डविशुद्ध वगेरे इय ने करण छे तेना आत
प्रकाशे छे कहुं छे-'पिण्ड त्रिसोही' वगेरे, आ करण अेमनामा प्रधानरूपे इतु
अधी अथो करणप्रधान कहेवाय छे महाव्रतादिइय यरणुना ७० प्रकारे कहेवाय छे,
नेभके वय इत्यादि आ यरणु पणु अेमनामा प्रधानरूपे इतु अधी अथो यणु
प्रधान इता असदाचारनी प्रवृत्तिना निषेधतुं नाम निग्रह छे आ निग्रह अेमनामा
प्रधानरूपे इतो अधी न् अेमने निग्रह प्रधान कहेवाभां आव्या छे त-वेन, निर्णय
भाटे ने निश्चयात्मक हठ वृत्ति अथवा विहित अनुष्ठानोने स्वीकारणरूप ने निश्चय

निग्रहः, तत्प्रधानं यस्य स तथा, मार्दवप्रधानः-मार्दवं=मृदुता-नम्रता तत्
 प्रधानं यस्य स तथा, लाघवप्रधानः-लाघवं=लघुता-द्रव्यभावलघुता तत्प्र-
 धानं यस्य स तथा, क्षान्तिप्रधानः-क्षान्तिः=क्रोधनिग्रहः, सा प्रधानं यस्य
 स तथा, गुप्तिप्रधानः-गुप्तिः=मनोगुप्त्यादिका, सा प्रधानं यस्य स तथा,
 मुक्तिप्रधानः-मुक्तिः=निर्लोभता, सा प्रधानं यस्य स तथा, सर्वथा निर्लोभ इत्यर्थः
 विद्याप्रधानः-विद्याः=रोहिणीप्रज्ञप्त्यादिदेवताधिष्ठिताः वर्णानुपूर्वीरूपाः ताः
 प्रधानानि यस्य स तथा मन्त्रप्रधानः-मन्त्राः-हरिणैगमैत्यादिदेवाधिष्ठिताः
 ते प्रधानानि यस्य स तथा, ब्रह्मप्रधानः-ब्रह्म=ब्रह्मचर्यं मैथुनविरमणलक्षण

स्वीकार करनेरूप निश्चय इनमें था, इसलिये ये निश्चयप्रधान थे।
 आर्जव नाम ऋजुता (सरलता) का है और यह माया निग्रहरूप
 होती है। यह इनकी प्रधान थी। अतः ये आर्जवप्रधान थे मार्दव-
 प्रधान इसलिये थे कि इनमें मृदुता-नम्रता प्रधानरूप से थी।
 लाघवप्रधान थे इसलिये थे कि इनमें द्रव्यभावरूप लघुता (हलकापन) प्रधा-
 नरूप से थी क्षान्तिप्रधान थे इसलिये थे कि इनमें क्रोध को निग्रह कर-
 नेरूप परिणति प्रधान थी, गुप्तिप्रधान ये इसलिये थे कि इनमें मनोगुप्ति
 वचनगुप्ति, एवं कायगुप्ति ये तीन गुप्तियां प्रधान थीं मुक्तिप्रधान ये इस
 लिये थे कि इनमें निर्लोभता प्रधानरूप में थी, विद्याप्रधान ये इसलिये
 थे कि रोहिणी प्रज्ञप्त्यादिक देवताधिष्ठित वर्णानुपूर्वीरूप विद्याएं इनमें
 प्रधान थीं मन्त्रप्रधान ये इसलिये थे कि इनमें हरिणैगमेषी आदि देवाधिष्ठित
 मन्त्रप्रधान थे, मैथुनविरमणरूप ब्रह्मचर्य का नाम ब्रह्म है, अथवा सर्व ही

साव होय छे ऐ पणु ऐभनामां हुतो, ऐथी ऐओ निश्चय प्रधान हुता, आर्जव ऋजुता
 (सरलता)तुं नाम छे, अने मायानिग्रहरूप प्रवृत्ति होय छे, ऐ पणु ऐभनामां प्रधानरूपे
 हुती ऐथी ऐओ आर्जव प्रधान हुता, मार्दव प्रधान ऐओ ऐटला भाटे हुता छे
 ऐभनामां मृदुता-विनम्रता-प्रधानरूपे हुती ऐभनामां द्रव्यभाव लघुता प्रधानरूपे
 हुती ऐथी न ऐओ लाघवप्रधान हुता, क्रोधने निग्रह करवा रूप परिणति ऐभनामां
 प्रधान हुती ऐथी ऐओ क्षान्ति प्रधान हुता ऐभनामां मनोगुप्ति, वचनगुप्ति अने
 कायगुप्ति ऐ त्रणे गुप्तिओ प्रधान हुती ऐथी ऐओ गुप्ति प्रधान हुता, ऐभनामां
 निर्लोभता प्रधानरूपे हुती ऐथी ऐओ मुक्तिप्रधान हुता ऐभनामां रोहिणी प्रज्ञ-
 प्त्यादिक देवताधिष्ठित वर्णानुपूर्वीरूप विद्याओ प्रधान हुती ऐथी न ऐओ विद्याप्रधान
 हुता, ऐभनामां हरिणैगमेषी वर्गेदे देवाधिष्ठित मन्त्रप्रधान हुता ऐथी ऐओ मन्त्र-
 प्रधान हुता, मैथुन विरमणरूप ब्रह्मचर्यतुं नाम ब्रह्म छे अथवा सर्वकुशल अतु-

मिति सर्वमेव वा कुशलानुष्ठानं, तत्प्रधानं यस्य स तथा, वेदप्रधानः—वेदः= आगमः—लौकिक—लोकोत्तरकुप्पावचनिकभेदेन त्रिविधः, स प्रधानं यस्य स तथा, स्वसमयपरसमयज्ञानसम्पन्न इत्यर्थः, नयप्रधानः—नयाः=नैगमादयःसप्त त एव भेदप्रभेदतः सप्तशतविधाः, ते प्रधानानि यस्य स तथा विचित्राभिग्रहधारीत्यर्थः; सत्यप्रधानः—सत्यं=सकलप्राणिनामत्यन्तहितकरं वचनम्, तत् प्रधानं यस्य स तथा—हितमितप्रियवचनयुक्त इत्यर्थः, शौचप्रधानः—शौचं=द्रव्यतो लेपरहित्यं भावतो निरवधाचरणं, तत् प्रधानं यस्य स तथा, ज्ञानप्रधानः—ज्ञानं=मत्यादिकं तत् प्रधानं यस्य स तथा, दर्शनप्रधानः

कुशल अनुष्ठानों का नाम ब्रह्म है इस ब्रह्मप्रधानता वाले वे थे. इसलिये इन्हे ब्रह्मप्रधान कहा गया है। आगम का नाम वेद है. यह लौकिक, लोकोत्तर, और कुप्पावचनिक के भेद से तीन प्रकार का है, यह वेद इनमें प्रधान था. अतः इन्हे वेदप्रधान कहा गया है। तात्पर्य यह कि ये स्वसमय के और परसमय के ज्ञान से संपन्न थे नैगम, सग्रह आदि जो सात नय है ये नय ही भेदप्रभेद की अपेक्षा ७०० हो जाते हैं ये नय इनमें प्रधान थे अर्थात् ये बहुत ही मृक्षमरूप से नयों के विशेषज्ञाता थे इसलिये इन्हे नयप्रधान कहा गया है। अभिग्रहविशेषों का नाम नियम है अर्थात् ये विचित्र अभिग्रहों के धारी थे सकलप्राणियों के एकान्तरूप से हितकर्ता जो वचन होते हैं उनका नाम सत्य है इस सत्यप्रधान ये थे अर्थात् ये हित, मित, प्रिय वचन बोलते थे। द्रव्य और भाव की अपेक्षा से शौच दो प्रकार का है—लेपरहित होना यह द्रव्य की अपेक्षा शौच है

धानोक्तं नाम ब्रह्म छि. ऐञ्चो आ ब्रह्म प्रधानताथी युक्त इता ऐधी न ऐञ्चो ब्रह्म प्रधान कहेवाता इता, आगमनु नाम वेद लौकिक, लोकोत्तर अने कुप्पावचनिक आभ त्रण प्रकारनो छि, आ वेद ऐभनाभा प्रधान इतो ऐधी ऐञ्चो वेदप्रधान कहेवाता मतलभ आ छि के ऐञ्चो स्वसमयना अने परसमयना जानथी संपन्न इता, नैगम, संग्रह वगेरे ने सात नयो छि ते नयो लेद प्रलेदनी अपेक्षाये ७०० धध नय छि, ऐ नय पणु ऐभनाभा प्रधान इता ऐटवे के ऐञ्चो भूष न नयना सूक्ष्मज्ञाता इता, ऐधी न ऐञ्चो नयप्रधान कहेवाय छि, अलिग्रह विशेषतुं नाम नियम छि, ऐटवे के ऐञ्चो विचित्र अलिग्रहाने धारणु करनारा इता, ऐकनिष्ठ धधने ने सकल प्राणीञ्चोना हित भाटे वचने कहेवाय छि ते सत्य छि, ऐञ्चो सत्यप्रधान इता, ऐटवे के ऐञ्चो हित, मित अने प्रिय वचन बोदनारा इता व्य अने लावनी अपेक्षाये शौचना ये प्रकारे छि, लेपरहित यषुं ऐ द्रव्यनी अपेक्षाये शौच छि, अने निरवधा आचरणु करुं ऐ लावनी अपे-

दर्शनं=सम्यक्त्वं, तत्प्रधानं यस्य स. तथा, चारित्रप्रधानं=चारित्रं=क्रिया,
 तत्प्रधानं यस्य स तथा, उदारः=ऋज्वाशयः, तथात्र-‘घोरे घोरगुणे घोर-
 तपस्वी घोरब्रह्मचर्यावासी उच्छृङ्खलशरीरे’ छाया—घोरो घोरगुणो घोरतप-
 स्वी घोरब्रह्मचर्यावासी उच्छृङ्खलशरीरः’ इति संग्राहम्
 तत्र-घोरः=सातिशयदीप्तियुक्तः, घोरगुणः=सर्वोत्कृष्टगुणयुक्तः. घोरतपस्वी=
 कातरजनदुष्करतपःकारकः, घोरब्रह्मचारी=अल्पसत्त्वान्तु’ठेयब्रह्मचर्य-
 युक्तः, उच्छृङ्खलशरीरः-उच्छृङ्खलम्=उज्झितमिष संस्कारपरित्यागात् शरीर-
 येन सः, सर्वथा शरीरसंस्कारपरिवर्जित इत्यर्थः । तथा-चतुर्दशपूर्वी-चतु-
 र्दशपूर्वधारकः-तथा-चतुर्ज्ञानोपगतः=मति-श्रुतावधिभनःपर्यवेति ज्ञान-

और निरवध आचरण करना यह भाव की अपेक्षा शौच है, इस प्रकारके शौच प्रधान
 थे, मत्यादिक ज्ञानों से प्रधान होने के कारण ये ज्ञानप्रधान थे, सम्य-
 क्त्वरूप दर्शन से प्रधान होने के कारण दर्शनप्रधान थे, क्रियारूप चारित्र से
 प्रधान होने के कारण चारित्रप्रधान थे, ऋज्वाशयरूप उदारभाव से प्रधान
 होने के कारण ये उदार थे, यहाँ ‘घोरे’ इत्यादि । सातिशयदीप्ति से युक्त
 होने के कारण ये घोरगुण वाले थे, कातर-कायर जन जिन तपों को नहीं कर
 सकते थे-ऐसे कठिन तपों को करने के कारण ये घोरतपस्वी थे, हीन-
 शक्तिवाले जीव जिस ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते थे, उस ब्रह्म
 चर्यव्रत को ये धारण करते थे, इसलिये घोर ब्रह्मचारी थे, अपने शरीर
 का संस्कार करना इन्होंने छोड़ रखा था इसलिये ये उच्छृङ्खलशरीर थे,
 चौदह पूर्व के पूर्णरूप से पाठी थे, इसलिये ये चतुर्दशपूर्व धारक थे, मतिज्ञान,
 श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान इन चार ज्ञानों से सहित थे इस-

शब्दों शौच छे. ऐशो शौचप्रधान हुता, मति वगेरे ज्ञानप्रधान होवाथी ऐशो
 ज्ञानप्रधान हुता सम्यक्त्वउप प्रधान होवाथी ऐशो दर्शनप्रधान हुता. क्रिया, रूप
 चारित्र प्रधान होवाथी ऐशो चारित्र्य प्रधान हुता ऋज्वाशयउप उदारभावप्रधान होवाथी
 ऐशो उदार हुता अरी घोरे वगेरे सातिशय दीप्ति युक्त होवा णदल ऐशो
 घोरगुणवाणा हुता कातर होके ने तपो आचरी शके नहि ते कठिन तपोतुं ऐशो
 घोरतपस्वु करता हुता ऐथी ऐशो घोर तपस्वी हुता. दुर्गण लुयो ने नतना
 अन्नचर्यनु पालन करी शके नहि ते अन्नचर्यव्रतने ऐशो धाणु करता हुता ऐथी
 नैतना घोर अन्नचरी हुता पालना शरीरना अन्नचरनी अथी क्रियाऐशोने अभोजे
 नतनर न्यान कये हुते ऐथी ऐशो उच्छृङ्खल शरीर हुता. चौद पूर्वना पूर्णपाठी
 हुता. नैथी नैथी चतुर्दशपूर्वधारक हुता मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अने मन.

चतुष्टययुक्तः । एवविधः मनः पञ्चभिरनगारशतैः = पञ्चशतसंख्यकैरनगारैः ।
 सार्द्धं = सह सपरिवृतः = स वेष्टितः पूर्वानुपूर्वी चरन् = तीर्थकरपरम्परया विहर-
 माणः । ग्रामानुग्रामम् = एकस्माद् ग्रामाद् ग्रामान्तरं द्रवन् = गच्छन् सुखसुखेन
 विहरन्, यत्रैव - श्रावस्ती नगरी, यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं, तत्रैव उपागच्छति,
 श्रावस्ती-नगर्या वहिः = श्रावस्ती नगरी वहिः प्रदेशे स्थिते कोष्ठके चैत्ये
 यथाप्रतिरूपं = साधुकल्पानुसारम् अवग्रहम् = वनपालाज्ञाम् - अवगृह्य = गृहीत्वा
 संयमेन = सप्तदशविधेन तपसा = द्वादशविधेन च आत्मानं भावयन् = वामयन्
 विहरतीति । इदमत्रबोध्यम् - आर्जवादीनां चरणकरणान्तर्गतत्वेऽपि यत्पुन-
 रूपादानं तत् आर्जवादीनां प्राधान्यख्यापनार्थमिति । जितक्रोधत्वादीनाम्
 आर्जवादीनां चायं विशेषो बोध्यः - जितक्रोधादिपदैः उदयावधामाप्तानां

लिये चतुर्ज्ञानोपगत थे, इनके साथ पाँच सौ अनगार थ, अकेले नहीं थे,
 तीर्थकरपरंपरा के अनुसार ये विहार करने में रत थे - अनः उसी परंपरा
 के अनुसार ये विहार करते, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में चडे यतना से
 धर्मोपदेश की वरसा करते जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, और उममे भा
 जहा वह कोष्ठक चैत्य था वहाँ पर आये, वहाँ आकर वे उम नगरा
 के बाहर बने हुए उस कोष्ठक चैत्य में साधुकल्प के अनुसार वनपाल की
 आज्ञा लेकर १७ प्रकार के संयम से और १२ प्रकार के तप से आत्मा
 को वासित करते हुए ठहर गये. यहा ऐसा समझना चाहिये - आर्जव
 आदि यद्यपि चरण और करण के अन्तर्गत है - फिर भी यहा जो स्वतन्त्र
 रूप से उनका उपादान किया गया है - वह उनमे प्रधानता प्रदर्शित करने
 के लिये किया गया है। जितक्रोधत्व आदि मे और आर्जव आदि में

पर्यायज्ञान ये आरेखार ज्ञानेथी ऐथो युक्त हुता ऐथी चतुर्ज्ञानोपगत हुता ऐमनी
 साधे पायसे अनगार हुता, ऐथो ऐकला हुता नडि. तीर्थकर परंपरा मुज्ज
 विहार करवामा ऐथो रत हुता आम ऐथो तीर्थकर परंपरा मुज्ज विहार हुता
 हुता ऐक गामथी भीन गाम भूण न निष्ठाथी धर्मोपदेशनी वषा हुता हुता न्या
 श्रावस्ती नगरी हुती अने तेमा पथु न्या ते कोष्ठक चैत्य हुतु न्या आग्या. त्या
 आवीने ते नगरीनी गहारनां ते कोष्ठक चैत्यमां साधु इत्य मुज्ज वनपालनी आने
 मेणवीने १७ प्रकारना संयमथी अने १२ प्रकारना तपथी पोताना आत्माने वासित
 हुता तेथो त्या शक्येला आर्जव वगेरेना जे हे चरण अने करणमां समावेश
 थाय छे हुता ये अही जे स्वतन्त्रपथी ऐमनुं अद्यु हुता छे ते तेगतामा
 प्रधानता प्रदर्शित हुवा माटे न छे तेम नमज्जु जितक्रोधत्व वगेरेमां =

क्रोधादीनां विफलीकरणं सूचितं, मार्दवप्रधानादिपदैस्तेषामुदयनिरोधः सूचितः । अथवा-यत्-एव जितक्रोधादिः, अत एव-क्षमादिप्रधान इति हेतु हेतुमद्भावाद् विशेषो बोध्य इति ; तथा-‘ज्ञानसम्पन्नः’ इत्यादिपदैः ज्ञानादिष्वप्यत्र सूचितम् । ‘ज्ञानप्रधानः’ इत्यादिपदैस्तु ज्ञानादिप्राधान्यं सूचित-
स्त्विति ॥ सू० १०७ ॥

मूलम्—तएणं सावत्थीए नयरीए सिघाडग—तिय—चउक—
चच्चर—चउम्मुह—महापहपहेसु महया जणसहेइ वा जणबृहेइ वा
जणओलेइ वा जणुम्मीइ वा जणुकलियाइ वा जणसंनिवाएइ वा
जाव परिसा पञ्चवासइ ।

तएणं तस्स चित्तस्स सारहिस्स तं महयाजणसहे च जाव
जणसंनिवायं च सुणेत्ता य पासित्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए
जाव समुप्पज्जित्था किणं अज्ज सावत्थीए णयरीए इंदमहेइ वा

यह अन्तर हैं कि जो जितक्रोधादि होता है वह उदयावस्थाप्राप्त क्रोधा-
दिकों को विफल बना देता है, और जो मार्दवप्रधानादि पदों वाला होता
है वह क्रोधादिकों के उदय का निरोध कर देता है। यही बात सूचित
करने के लिये इन पदों को भिन्नरूप में रखा गया है। जिस कारण
वह जितक्रोधादि होता है, उसी से वह क्षमादिप्रधान होता है—इस तरह
हेतुहेतुमद्भाव को लेकर इनमें विशेषता जाननी चाहिये, तथा ‘ज्ञानसंपन्न’
इत्यादि-पदों द्वारा सिर्फ ज्ञानादियुक्तता सूचित की गई है और ‘ज्ञान-
प्रधान’ इत्यादि पदों द्वारा उनमें प्रधानता प्रकट की गई है ॥ सू. १०७ ॥

आण्व वगेरेमा आ तक्षवत छे के ने जितक्रोधी वगेरे होय छे ते उदयावस्था
प्राप्त क्रोधादिकोने अक्षण बनावी भूके छे. अने ने मार्दन प्रधानादिपदोवाणा होय
छे ते क्रोधादिकोना उदयने निरोध करे छे. ये बातने सूचित करवा भाटे न आ
‘हेतु’, सिन्न सिन्न रूपमां अक्षु करायुं छे. नेने लधने ते जितक्रोधादि होय छे,
तेने लधने न ते क्षमादिप्रधान होय छे. आ प्रमाणे हेतु हेतुमद्भावावने लधने अम-
नामां विशेषता लक्षणवी लधने तेमन “ज्ञानसंपन्न” वगेरे पदो वडे कृत ज्ञानादि
तता सूचित उदयामां आवी छे अने “ज्ञानप्रधान” वगेरे पदो वडे तेमनामां
ता प्रकट करवामां आवी छे. ॥१०७॥

खंदमहेइ वा एवं रुदमहेइ मउंदमहेइ वा वेसमणमहेइ वा नाग-
महेइ वा भूयमहेइ वा जक्खमहेइ वा थूममहेइ वा चेइयमहेइ वा
रुक्खमहेइ वा गिरिमहेइ वा दरिमहेइ वा अगडमहेइ वा नईमहेइ
वा सरमहेइ वा सागरमहेइ वा, जं णं इमे वहवे उग्गा उग्गपुत्ता
भोगा भोगपुत्ता राइन्ना इक्खगा णाया कोरव्वा जहा उववाइए
तहेव अप्पेगइया ह्यगया जाव अप्पेगइया पायचारविहारेणं महया
महया वंदावंदएहिं निग्गच्छंति ? । एवं सपेहेइ संपेहिता कंचुइज्ज-
पुरिसं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी किं णं देवाणुप्पिया ! अज्ज
सावत्थीए नयरीए इंदमहेइ वा जाव सागरमहेइ वा जेणं इमे वहवे
उग्गा जाव णिग्गच्छंति ॥ सू० १०८ ॥

छाया—ततः खलु श्रावस्त्या नगर्याः शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-
चसुमुख-महापथपथषु महान् जनशब्द इति वा जनव्यूह इति वा जनवीज
इति वा जनकल कल इति वा जनोर्मिरित वा जनात्कलिकेति वा जनसन्निपात
इति वा यावत् परिपत् पर्युपास्ते ।

‘तए णं सावत्थीए नयरीए’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (सावत्थीए नयरीए) श्रावस्ती नगरी के
(सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापटपट्टेसु महया जणमहेइ वा
जणवृहेइ वा, जणयोलेइ वा जणकलकलेइ वा जणुम्मीइ वा जणुक्कलि-
याइ वा, जणसंनिवाएइ वा, जाव परिसा पज्जुवासइ) शृङ्गाटक में त्रिक में,
चतुष्क में, चत्वर में, चतुर्मुख में, महापथ में एवं पथ में मिलित मनुष्योंका पर-

‘तए णं सावत्थीए नयरीए’ इत्यादि ।

सूत्रार्थः—(तए णं) श्रावस्ती (सावत्थीए नयरीए) श्रावस्ती नगरीना (सिं-
घाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापटपट्टेसु महया जणमहेइ वा जण
वृहेइवा, जणयोलेइवा जणकलकलेइ वा जणुम्मीइ वा जणुक्कलियाइ वा
जणसंनिवाएइ वा जाव परिसा पज्जुवासइ) शृङ्गाटोभां, त्रिकोभां, चतुष्को
भा, चत्वरोभां, चतुर्मुखोभां, महापथोभां अने पथोभां अने

ततः खलु तस्य चित्रस्य सारधात महान्तं जनशब्दं च यावत् जन-
संनिपातं च श्रुत्वा च दृष्ट्वा च अयमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् समुदपद्यत,
किं खलु अद्य श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा स्कन्दमह इति वा एव
रुद्रमह इति वा सुकुन्दमह इति वा वैश्रवणमह इति वा नागमह इति वा
भूतमह इति वा यक्षमह इति वा स्तूपमह इति वा चैत्यमह इति वा वृक्षमह-

स्पर्शमें आलाप प्रचुररूप से होने लगा और लोक भी इकट्ठे हुवे थे परस्पर
में अव्यक्तवर्ण वाली ध्वनि भी लोगों के मुख से निकलने लगी, कोलाहल
जैसा मच गया. लोगों में अपार भीड़ होने से एक-दूसरे का संघर्ष भी
होने लग गया, कहीं-कहीं मनुष्यों को थोड़ी भीड़ छूटकर खड़ी हो गई,
अन्य अन्य स्थानों से आकर उसमें मिलने लगे. यावत् परिपदा
उनकी पर्युपासना करने लगी, ।

(तएणं तस्म चित्तस्स सारहिस्स तं महया जणसहं च जाव जण-
संनिपायं च सुणेत्ता य पासित्ता य इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्प-
ज्जित्था) इसके बाद उस महान् जनशब्द को यावत् जनसंनिपात को
सुनकर एवं देखकर उस चित्र सारधि को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक
यावत् मनोगत विचार उत्पन्न हुआ, (किं णं अज्ज सावत्थीए णरीए इंदमहेइ
वा खंदमहेइ वा एवं रुद्रमहेइ वा-मउंदमहेइ वा वेसमणमहेइ वा, नाग-
महेइ वा, भूयमहेइ वा, जक्खमहेइ वा) क्या आज श्रावस्ती नगरी में

करना। लोकोमा परस्पर प्रचुररूपमा आलाप थवा भाडयो-वार्तालाप प्रारंभ थयो-
लोको-वर्धारे संघ्यामां अेकत्र थवा लाप्या, परस्पर अस्कुट्ठ ध्वनिमां पणु लोकोमां
वातत्थीत थवा लागी. परिणामे धाघाट जेणुं वातावरणु थछ गथुं. त्यां अपार लीड
थवा भीडी अने तेथी अेक णीणथी सघर्षित थछने ज लोको अवरजवर करीशकता
हुता. अेवी परिस्थिति उत्पन्न थछ गछ. डेटलाक स्थानो पर थोडां भाणुसो टोणाना
आकारमां अेकत्र थछ गया. अने णीण लोको पणु तेमनी पासि इकाववा लाग्या, यावत्
परिषेतेमनी पर्युपासना करवा लागी.

(त एणं तस्स चित्तस्स सारहिस्स तं महया जणसहं च जाव जण
संनिपायं च सुणेत्ता य पासित्ता य इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था)
त्यारणाह ते महान् जनशब्दने यावत् जनसंनिपातने सांलणीने अने जेछने ते
चित्रसारथीने आ जतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत विचार उत्पन्न थयो डे
(किं णं अज्ज सावत्थीए णरीए इंदमहेइ वा, खंदमहे वा एवं रुद्रमहेइ वा
मउंदमहेइ वा वेसमणमहेइ वा, नागमहेइ वा, भूयमहेइ वा, जक्खमहेइ वा)

इति वा गिरिमह इति वा दरिमह इति वा अबदमह इति वा नदीमह इति वा सरोमह इति वा सागरमह इति वा, यत्कलु इमे बहव उग्रा उग्रपुत्रा भोगा भोगपुत्रा राजन्याः इक्ष्वाकवो ज्ञानाः क्रौरव्याः यथा औपपातिके तथैव

इन्द्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या रुद्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या सुकुन्द को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या वैश्रवण को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या नाग को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या भूतको निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या उश्व को निमित्त करके उत्सव हो रहा है (धूममहेड वा, चेइयमहेड वा, रुक्त्वमहेड वा, गिरिमहेड वा, दरिमहेड वा, अगडमहेड वा, नईमहेड वा, सरमहेड वा, सागरमहेड वा,) या किसी स्तूप को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी चैत्य-उद्यान को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी वृक्ष को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी पर्वत को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी गुफा को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी-- अवट-कूप को लेकर के उत्सव हो रहा है, या किसी नदी को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी तालाब को निमित्त करके उत्सव हो रहा है, या किसी समुद्र को निमित्त करके उत्सव हो रहा है? (जेणं इमे बहवे उग्रा उग्रपुत्रा, भोगा भोगपुत्रा, राजन्ना, रुक्त्वा, णाया, क्रौरवा.

शुं आन्ते श्रावस्ती नगरीमा धन्द्रना निमित्ते डोड उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, रुद्रना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे रुद्रना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे सुकुन्दना निमित्ते डोड उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे वैश्रवणुना निमित्ते डोड उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे नाग निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे भूतना निमित्ते डोड उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे डे यक्षना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे. (धूममहेड वा, चेइयमहेड वा, रुक्त्वमहेड वा, गिरिमहेड वा, दरिमहेड वा, अगडमहेड वा, नईमहेड वा, सरमहेड वा, सागरमहेड वा) डे डोड स्तूपना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे चैत्यना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, वृक्षना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे पर्वतना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, गुफा निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे डोड-अवटकूपना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे डोड नदीना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे तालाबना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे, डे डोड समुद्रना निमित्ते उत्सव उग्रावर्ध रह्यो छे. उग्रा उग्रपुत्रा, भोगा भोगपुत्रा, राजन्ना, रुक्त्वा, णाया, क्रौरवा.

अप्येकके हयगता यांश्चत् अप्येकके पादचार विहारेण महर्द्धिमहर्द्धिर्द्वन्द्व
वृन्दैर्निर्गच्छन्ति?, एवं संपेक्षते संपेक्ष्य कञ्चुकीयपुरुषं गव्दयति, गव्दयित्वा
एवमवादीत्—किं खलु देवानुप्रियाः ! अथ श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा
यावत् सागरमह इति वा, यत्खलु इमे बहव उग्रा यावत् निर्गच्छन्ति? । १०८।
'तएण' इत्यादि—

टीका—ततः खलु श्रावस्त्या नगर्यां शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर चतुर्मुख
-महापथपथेषु-तत्र-शृङ्गाटकं=शृङ्गाटकाकृतिकस्त्रिकोणो मार्गः, त्रिकं=त्रिपथं
जहा उववाइए तहेव अप्पेगइया हयगया) जो ये बहुत से उग्रवंश के मनुष्य,
उग्रवंश के पुत्र, भोगवंश के मनुष्य, भोगवंश के पुत्र, राजन्यवंश के
मनुष्य, इक्ष्वाकुवंश के मनुष्य, ज्ञातवंश के मनुष्य, कुरुवंश के मनुष्य,
जैसा कि इसके आगे औपपातिक सूत्र में कहा गया है उसके अनुसार
कितनेक घोड़ों पर चढ़ कर (जाव अप्पेगइया पायचारविहारेण महयार
वंदावदएहिं निर्गच्छन्ति) यावत् कितनेक पैदल ही भिन्नर समूह में
होकर निकल रहे हैं। (एवं संपेहेइ) ऐसा उसने विचार किया—(संपे
हिता कञ्चुइज्जपुरिसं सदावेइ) ऐसा विचार करके उसने कञ्चुकीयपुरुष को
बुलाया (सदाचित्ता एवं वयासी) बुलाकर उससे कहा—(किं णं देवाणुप्पिया !
अज्ज सावत्थीए नयरीए इदमहेइ वा, जाव सागरमहेइ वा जे णं इमे बहवे
उग्गा, जाव निर्गच्छन्ति) हे देवानुप्रिय ! क्या आज श्रावस्ती नगरी में इन्द्र महो-
त्सव है या यावत् सागर महोत्सव है कि जिससे ये उग्रवंश के मनुष्य यावत् जा रहे हैं?

उववाइए तहेव अप्पेगइया हयगया) के जेथी घणु उग्रवंशना पुत्रो, लोण-
वंशना भाणुसो, लोणवंशना पुत्रो, राजन्यवंशना भाणुसो, इक्ष्वाकुवंशना भाणुसो,
ज्ञातवंशना भाणुसो. कुरुवंशना भाणुसो—पडेदां औपपातिक सूत्रमां जे प्रमाणे वरुण
करवामा आण्युं छे ते मुण्ण डेटलाड घोडाओ पर सवार थधने (जाव अप्पेगइया
पायचारविहारेण महयार वंदावदएहिं निर्गच्छन्ति) यावत् डेटलाड पगपाणां
ज्जुहा ज्जुहा समूहोमां ओकर थधने ज्जु रखा छे. (एवं संपेहेइ) आ जतने
तेणु विचार कर्यो. (संपेहिता कञ्चुइज्जपुरिसं सदावेइ) आ प्रमाणे विचार करीने
तेणु कञ्चुकीय पुरुषने ओलाओयो. (सदाचित्ता) एवं वयासी) ओलावीने तेने कछुं.
किं णं देवाणुप्पिया ! अज्ज सावत्थीए नयरीए इदमहेइ वा, जाव सागर-
महे वा जेणं इमे बहवे उग्गा, जाव निर्गच्छन्ति) हे देवानुप्रिय ! शुं आजे
श्रावस्ती नगरीमा इन्द्रमहोत्सव छे के यावत् सागर महोत्सव छे के जेथी उग्रवंशना
भाणुसो यावत् ज्जु रखा छे ?

यत्र त्रयो मार्गाः सम्मिलन्ति तत् चतुष्कम्=चतुष्पथं यत्र चत्वारो मार्गा
मिलि रास्तत्, चत्वरम्=अनेकमार्गसंगमस्थानम्, चतुर्मुखं=यत्रश्चतसृष्वपि
दिक्षु पन्थानो निस्सरन्ति तत्, महापथः=राजमार्गः, पन्थाः=सामान्यमार्गः,
एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, तेषु तथोक्तेषु, महान्=प्रचुरः जनशब्द इति वा=
जनानां परस्परालापारूपः, जनव्यूहः=जनबोलः=जनानामव्यक्तवर्णा ध्वनिः,
जनकलकलः=जनानां,कोलाहलध्वनिः, तत्र-बोलकलकलयोरय विशेषः =बोल=
अविभाव्यमानवचनविभागः कलकलम्तु विभाव्यमानवचनविभाग इति,
जनोर्मिः=जनसम्वाधः, जनोत्कलिका=जनानां लघुतरः संघातः, जनसन्निपातः=
जनानाम् अन्योन्यस्थानेभ्य एकत्र मीलनम्, थावत्-परपत्=उग्रोर्ध्वपुत्रादिरूपा

टीकार्थ—तव श्रावस्ती नगरी के शृंगाटक-सिंघाटे की आकृति जैसे
त्रिकोणवाले मार्ग में, त्रिक-तीनमार्ग से मिले हुए मार्ग में, चतुष्पथमें
चार मार्गों से मिले हुए मार्ग में, चत्वर में-अनेक मार्गों के संगमवाते
स्थान में, चतुर्मुख जहांसे चारों दिशाओं में मार्ग निकलने हैं, ऐसे रास्ते में, महा
पथ राजमार्ग में, और पथ-सामान्य मार्ग में प्रचुर मात्रा में जनशब्द हुआ,
आपस में बातचीत करने की आवाज निकली, जनव्यूह-जनसमुदाय-आकर
इकट्ठा होने लगा, जनबोल-मनुष्यों की अव्यक्त वर्णवाली ध्वनि होने लगी
जनकलकल-जनों की कोलाहल रूप ध्वनि होने लगी। बोल में और कल-
कल में अन्तर इतना ही है, कि बोल में वचनविभाग अविभाव्यमान (अलग) होता
है और कलकल में वचनविभाग विभाव्यमान (अव्यक्त ध्वनि) होता है, जनसम्वा-
धजनों के जमघट में होने वाले पारस्परिकविमर्द का नाम जनोर्मि है तथा मनुष्यों
का जो लघुतर संघात है वह जनोत्कलिका है, अन्योन्यस्थानों से आगत

पर्युपास्ते । अत्र वाक्छब्दे- 'बहुजणो अन्नमन्नस्स' इत्यारभ्य 'अभिमुहा विण्णणं पंजलिउडा' इत्यन्तःसर्वोऽपि पाठ औपपातिकसूत्रोक्तचम्पानगरीगत श्री महावीरस्वास्तिव्यागलनपठितः तत्रोऽप्यत्र वाच्यः, नवरम्-अत्र छत्रादयस्तीर्थकरातिशेषाः न वाच्याः । तथा- 'समणे भगवं महावीरे' इत्यादि भगवन्नाम स्थाने 'पासावच्चिज्जे केसी नामं कुमारसमणे जाइसपण्णे' इत्यादि वाच्यम् । अत्र 'जन शब्द इति वा' इत्यादौ इति शब्दो वाक्यालङ्कारे 'वा' शब्दः समुच्चये इति ।

'तए णं तरस्स चित्तस्स' इत्यादि-ततः खलु तस्य चित्रस्य सारथिः तं महान्तं जनशब्दं च यावत् जनसंनिपातं च श्रुत्वा=आकर्ष्य तं महान्तं

मनुष्यों का जो एक जगह मिलान होता है उसका नाम जनसंनिपात है। यावत् उग्र, उग्रपुत्र आदि कौं कौं परिपदाने पर्युपासना ही यहाँ यावत् शब्द से 'बहुजणो अण्णमणस्स' यहाँ से लेकर 'अभिमुहा विण्णणं पंजलि उडा' यहाँ तक का सब पाठ जो कि औपपातिक सूत्र में ३८ वे सूत्र में चम्पानगरीगत श्रीमहावीर रत्नायी के आगमन के पाठ में लिखा जा चुका है, ग्रहण किया गया है। उस पाठ गत छत्रादिक जो कि तीर्थकर प्रकृति के अतिशयरूप हैं यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिये-तथा 'समणे भगवं-महावीरे' इत्यादि भगवन्नाम के स्थान में 'पासावच्चिज्जे केसी नामं कुमारसमणे जाइसपण्णे' ऐसा पाठ कहना चाहिये, 'जनशब्द इति वा' इत्यादिपाठ में आगत इति शब्द वाक्यालङ्कार में और 'वा' शब्द समुच्चय में आया है।

'तए णं तरस्स चित्तस्स' इत्यादि इसके बाद उस चित्र सारथि को उस ओड़ स्थाने जथा ओड़त्र थाय छे तेनुं नाम जनसंनिपात छे. यावत् उग्र, उग्रपुत्र वगेरेनी परिपदाओ पर्युपासना करी अडी यावत् शब्दथी 'बहुजणो अण्णमणस्स' अडीथी भांडीने "अभिमुहा विण्णणं पंजलिउडा" सुधीना औपपातिक सूत्रना उट भा सूत्र सुजण चं पानगरी गत श्री महावीर रत्नायीना आगमनपाठमां जे वरुंन करवामां आव्युं छे-ते वधुं अडीं अडणु समज्जु. ते पाठमां जे छत्रादिक के जे तीर्थकर प्रकृतिना अतिशयरूप छे- तेमनुं अडणु अडीं करवुं नडि. तेमज 'समणे भगवं महावीरे' वगेरे लगवानना नामोनी जव्याओ "पासावच्चिज्जे केसी नामं कुमारसमणे जाइसपण्णे" आ जतना पाठनुं अडणु समज्जु. "जन-शब्द इति वा" वगेरे पाठमा आवेल 'इति' शब्द वाक्यालङ्कारमां अने 'वा' शब्द समुच्चयना रूपमां छे

'तए णं तरस्स चित्तस्स' इत्यादि, त्वारथी ते अत्र सारथीने ते भडान

जनसमुदायं दृष्ट्वा च अयमेतद्रूपः आध्यात्मिको यावत् समुद्रपथतः=समु-
त्पन्नः। यावच्छब्देन 'चिन्तितः, कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः'
इति पदसमूहः व्यशीतितममत्रवद् बोध्यः। अर्थोऽप्येषां तत एव गम्य
इति। सम्प्रति मनोगतसंकल्पस्वरूपमाह—'किं ण' इत्यादि। किं खलु 'किम्'
इति वितर्के, 'खलु' इति वाक्यालङ्कारे, अथ श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमहः—
इन्द्रः=शक्रः तन्निमित्तो महः=उत्सवः= इति वा, एवम्=स्कन्दमहः' इत्यारभ्य
'सागरमहः' इत्यन्तानां पदानामपि अर्थोऽनुसन्धेयः। नवरम्-स्कन्दः=कार्ति-

महान् जनशब्द को यावत् जनसंपत्तको चुन करके और देव करके इस
प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ। यहाँ यावत् शब्द
से 'चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत' ये विशेषण संकल्प के ग्रहण
किये गये हैं। इनका अर्थ ८३वे सूत्र में स्पष्ट किया गया है। अतः वही
से वह जानना चाहिये। 'किं ण' इत्यादि 'किं' शब्द वितर्क में और
'खलु' शब्द वाक्यालंकार में आया है। चित्र सारथी को जो संकल्प उत्पन्न
हुआ है वही इन शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है—यथा आज श्रावस्ती
नगरी में इन्द्रमह है? इन्द्र नाम शक्र का है। इस शक्र को निमित्त करके
किया गया मह-उत्सव वह इन्द्रमह है। 'स्कन्दमह' से लेकर 'सागरमह'
तक के पदों का अर्थ भी इसी प्रकार से जानना चाहिये। स्कन्द नाम कार्तिकेय

केयः, रुद्रः=शिवः मुकुन्दः=नारायणः, वैश्रवणः=कुबेरः, नागो=भवनपतिविशेषः, भूतयक्षौ व्यन्तरविशेषौ, स्तूपः चैत्यस्तूपः शिखर वा, चैत्यं=चितास्थितं स्मारकचिह्नम्, वृक्षः=अश्वत्थादिः, दरी=गुहा, गिरिः=पर्वतः, अवटः=गर्तः, नदी, सरः=सागराः=समुद्राः। 'इति' शब्दः सर्वत्र स्वरूपनिर्देशपरः। 'वा' शब्दः समुच्चये। ततश्च इन्द्रमहादिषु कश्चिन्महोऽस्ति, यत्खलु इमे बहवः उग्राः=भगवता आदिनाथेन आरक्षकपदस्थापितानां वंशजाताः, उग्रपुत्राः=कुमारावस्थोपेता उग्राएव उग्रपुत्राः, भोगाः=आदिनाथेन गुरुपदे स्थापितानां वंशजाताः, भोगपुत्राः-तेषां पुत्रा एव, राजन्याः=भगवताऽऽदिनाथेन वयस्यपदे स्थापि-

का है, रुद्र नाम महादेव का है मुकुन्द नाम नारायण का है, वैश्रवण नाम कुबेर का है, भवनपतिविशेष का नाम नाग है, भूत और यक्ष ये व्यन्तर विशेष हैं। स्तूप का नाम चैत्य स्तूप अथवा शिखर है, चितास्थित स्मारक चिह्न का नाम चैत्य है, पीपल वगैरह के झाड़ का नाम वृक्ष है, गिरि नाम पर्वत का है, गुफा का नाम दरी है, अवट का नाम गर्त, नदी, सर-तालाव और सागर ये सब अर्थतः प्रतीत ही हैं। इति शब्द यहाँ सब जगह स्वरूप-निर्देशपरक है 'वा' शब्द समुच्चय में है। इस तरह से उसने विचार किया कि क्या इन्द्रमहादिकों में से आज कोई मह-उत्सव है कि जिसमें ये अनेक उग्र-भगवान् आदिनाथ द्वारा जिन्हें आरक्षक के पद पर स्थापित किया गया है, उनके वंश के लोग-जा रहे हैं। ये अनेक उग्रपुत्र-कुमारावस्थोपेत उग्ररूप उग्रपुत्र जा रहे हैं, ये भोग आदिनाथ भगवान् जिन्हें गुरु के पद पर स्थापित किया उनके वंशके लोग जा रहे हैं, भोगपुत्र-उनके कुमारावस्थापन्न लडके जा रहे हैं, ये राजन्य-आदिनाथ

कार्तिडेयतुं नाम छे, रुद्र महादेवतुं नाम छे, मुकुन्द तुं नाम छे, नारायण वैश्रवण कुबेरतुं नाम छे, भवनपति विशेषतुं नाम नाग छे, भूत अने यक्ष येयो व्यन्तरविशेष छे, स्तूप नाम चैत्यस्तूप अथवा शिखरतुं छे, चितास्थित स्मारकचिह्नतुं नाम चैत्य छे, पीपल वगैरे आडतुं नाम वृक्ष छे, गुहातुं नाम दरी छे, गिरि पर्वततुं नाम अवट गर्त छे, नदी सर-तालाव अने सागर आ अधाना अर्थो स्पष्ट न छे, इति शब्द अडीं स्वरुप निर्देशपरक छे "वा" शब्द समुच्चय भाटे उपरयो छे, आ प्रमाणे विचार कर्यो क शु आने इन्द्र महादिकोमाथी कोष महोत्सव छे ? के नेथी येयो घण्टा उग्र-भगवान् आदिनाथ वडे नेमने आरक्षकपदे प्रतिष्ठित करवामां आव्या छे तेमना वंशना लोको नथ रह्या छे, येयो घण्टा उग्रपुत्रो-कुमारावस्थोपेत उग्ररूप उग्रपुत्रो नथ रह्या छे, ये लोग-आदिनाथ भगवाने नेमने गुरुपदे प्रतिष्ठित कर्या छे तेमना वंशना लोको नथ रह्या छे, ये लोगपुत्रो तेमना कुमारावस्थापन्न पुत्रो नथ रह्या छे, ये

तानां व शजाताः, इक्ष्वाकुवः=इक्ष्वाकुवंशीयः, ज्ञाताः=ज्ञानवशीयाः, कौरव्याः=कुरुवंशीयः, 'जहा उवाहृण तहेव' इतोऽग्रे 'खत्तिया माहणा' इत्यारभ्य 'चंदणोलित्तगायसरीरा' इतिपर्यन्तः सर्वोऽपि पाठ औपपानिकसूत्रोक्त-श्री महावीरस्वामि वन्दनार्थगतोग्रप्रपु दिवद् विजेयः। अप्येकके ह्यगताः=अश्वारूढाः, यावत् अप्येकके गजगताः=गजारूढाः, अप्येकके पादचारविहारेण महद्भिः=अतिविशालैः वृन्दवृन्दैः=पृथक् पृथक् समूहभूतैर्निर्गच्छन्ति=निस्सरन्ति-इति। एवम्=अनेन प्रकारेण संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कञ्चुकीयपुरुषं शब्दयति, शब्दयित्वा एवम् अवादीत=उक्तवान्-किं खलु देवानुमियाः। अथ श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा यावत् मागरमह इति वा चर्त्तते यत् खलु इमे बहव उग्रा यावद् निर्गच्छन्ति? इति ॥ मू० १०८॥

ने जिन्हे मित्रपद पर स्थापित किया उनके वंशके लोग जा रहे हैं, ये इक्ष्वाकुवंश के लोग जा रहे हैं, ज्ञातवंशीयजन जा रहे हैं, ये कुरुवंशीय जन जा रहे हैं, 'जहा उवाहृण तहेव' यहां से आगे 'खत्तिया माहणा' से लेकर 'चंदणोलित्तगायसरीरा' यहां तकका समस्त पाठ जो कि औपपानिक सूत्र में कहा गया है उस समय, जब कि श्रीमहावीर स्वामी की वन्दना के लिये उग्र-उग्रपुत्रादि कहे गये हैं यहां ग्रहण करना चाहिये. इनमें से कितनेक अश्वपर चढ़ कर, कितनेक हाथोपर चढ़ कर और कितनेक पैदल ही चलकर तथा कितनेक अपना २ विनाल समुदाय बना कर पृथक् २ रूप से निकल रहे हैं।

इस प्रकार विचार कर फिर उसने कञ्चुकीयपुरुष नामक से बुलाया और बुलाकर उससे ऐसा कहा-हे देवानुमिय ! आज क्या श्रावस्ती नगरी में

मूलम्—तएणं से कंचुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स आ-
गमणगहियविणिच्छए चित्त सारहि करयलपरिग्गहियं जाव वद्धावेत्ता
एवं वयासी-णो खल्ल देवाणुप्पिया ! अज्ज सावत्थिए णयरीए इंदम
हेइ वा जाव सागरमहेइ वा जे णं इमे बहवे जाव वदावदएहिं
निग्गच्छंति, एवं खल्ल भो देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्ज केसी नामं
कुमारसमणे जाइसंपन्ने जाव दुइज्जमाणे इहमागए जाव विहरइ ।
ते णं अज्ज सावत्थीए नयरीए बहवे उग्गा जाव अप्पेगइया वंदण-
वत्तियाए जाव महया महया वंदावंदएहिं णिग्गच्छंति ॥सू० १०९॥

छाया—ततःखलु स कञ्चुकिपुरुषः केशिनः कुमारश्रमणस्य आग
मनगृहीतविनिश्चयः चित्रं सारथिं करतलपरिगृहीतं यावत् वर्द्धयित्वा एवमवादीत-
नो खल्ल देवानुप्रिय! अद्य श्राव त्यां नगर्याम् इन्द्रमह इति वा यावत्सा-

इन्द्रमह यावत् सागरमह है ? जो ये बहुत से उग्र, उग्रपुत्र आदि सबके
सब अपने २ घर से निकल कर जा रहे है ? ॥ १०८ ॥

‘तएणं से कंचुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद उस कंचुको पुरुषने (केसिस्स कुमार-
समण०) केजी कुमारश्रमण के आगमन का गृहीत निश्चयवाला होकर चित्तं
सारहिं करयलपरिग्गहियं जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी) चित्रसारथी से बड़े
विनय से दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे मस्तक पर घुमाकर एवं
जयविजय शब्दों द्वारा उसे बधाई देकर इस प्रकार कहा—(णो खल्ल देवा-

सागरमह छे ? हे नेथी ये गधा उग्र, उग्रपुत्र वगेरे सौ पोतपोताना बेश्थी
नीइणीने वल्ल व्वा छे ? ॥ १०८ ॥

“त एणं से कंचुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स” इत्यादि.

सूत्रार्थ—(त एण) त्थार पथी ते कंचुई पुरुषे (केसिस्स कुमारसमण०)
इशीकुमार श्रमण्णी आगमननी वात मनमां विग्यारीने (चित्तं सारहिं करयल
परिग्गहियं जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी) चित्र सारथिनी आमे विनम्रतापूर्वक
पन्ने दावेनी अंजलि बनावने अने तेने मस्तक पर इश्वरीने अने जयविजय
शब्द वदे तेनेने बधाभाषी आपीने आ प्रमाणे इधुं—(णो खल्ल देवाणुप्पिया !

गरमह इति वा यत् खलु इमे यद्वो यावद् वृन्दवृन्दैर्निर्गच्छन्ति, एवं खलु भो देव तुषिय ! पार्श्वीपत्तीयः केशी नाम कुमारश्रमणो जातिसंपन्नो यावत् द्रवन् उग्रानो यावत् विहरति । तत् खलु अथ श्रावस्त्यां नगर्यां बहव उग्रा यावत् अध्येकके इन्दनवृत्तितायै यावत् महद्भिर्महद्भिर्वृन्दवृन्दैर्निर्गच्छन्ति ॥१०९॥

टीका-तएण मे इत्यादि ततः खलु स कञ्चुकिपुरुषः केशिनः कुमारश्रमणस्य आगमनगृहीतविनिश्चया--आगमनस्य गृहीतः निश्चयो येन स तथा-ज्ञात केशिकुमारागमनवृत्तान्तः सन् चित्रं सारथिं करतलपरिगृहीतं यावद् वद्वयित्वा एवम्-मवादीत् हे देवानुषिय ! अथ खलु श्रावस्त्यां नगर्याम् इन्द्रमहादि सागरमहान्तेषु कश्चिद् महो=उत्सवो नास्ति, यत् खलु इमे उग्रादयो यावद् वृन्दवृन्दैर्निर्गच्छन्ति । एवं खलु भो देवानुषिय ! भवान् जानातु यद्य खलु पार्श्वीपत्तीयः केशीनाम् कुमारश्रमणो जातिसम्पन्नो यावत् द्रवन् इह=श्राव-

णुषिया ! अज्ज सावत्थीण नगरीए इदमहेइ वा, जाव सागरमहेइ वा "हे देवा तुषिय ! आज श्रावस्ती नगरी मे न इन्द्र उत्सव हे अथवा यावत् न सागर उत्सव हे (जेणं इमे बहवे जाव विदाविदणं निर्गच्छन्ति, एवं खलु भो देवाणुषिया ! पामावच्चिज्जकेसी नाम कुमारश्रमणे जाइसंपन्ने जाव दृइज्जमाणे इहमागए जाव विहरइ) परन्तु जो ये बहव से उग्र उग्रपुत्रादिक अनेक विशाख सप्तदायरूप मे होथर निकल रहे हैं-सो उसका कारण यह है कि पार्श्वीपत्तीय केशी नाम के कुमारश्रमण जो कि जातिसम्पन्न आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाले हैं तीर्थसर परम्परा के अनुसार विहार करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में धर्मोपदेश करते हुए यदा पधारे हैं यावत् कोष्ठक सैन्य में विराजते हैं। (जेणं अज्ज सावत्थीण नगरीए बहवे उग्रा, जाव अप्पेणइया वदणवत्थियाण जाव महया महया वदावदणं निर्गच्छन्ति)-

(अज्ज सावत्थीण नगरीए इदमहेइ वा, जाव सागरमहेइ वा) हे देवानुषिय ! आज श्रावस्ती नगरी मे न इन्द्र उत्सव हे अथवा यावत् न सागर उत्सव हे. (जेणं इमे बहवे जाव विदाविदणं निर्गच्छन्ति, एवं खलु भो देवाणुषिया ! पामावच्चिज्जकेसीनाम् कुमारश्रमणे जातिसम्पन्ने जाव दृइज्जमाणे इह-

स्तथा नगर्याः कोष्ठके चैत्ये आगतो यावद् तत् खलु अथ श्रावस्त्यां नगर्यां
बहव उग्रा यावत् इभ्यपुत्रा अप्येकके वन्दनवृत्तितायै वन्दननिमित्तं यावद् मह
द्भिर्महद्भिर्वन्दनैर्निर्गच्छन्तीति ॥ सू० १०९ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही कंचुइपुरिसस्स अंतिए एय-
सट्टं सोच्चा निसस्स हट्टुट्टु—जाव—हियए कोडुंबियपुरिसे सदावेइ-
सदावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आस-
रहं जुत्तामेव उवट्टुवेह जाव सच्छत्तं उवट्टुवेति । तएणं से चित्ते सा-
रही णहाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं
मंगलाइं वंथाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घामरणालंकियसरीरे जेणेव
चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आस-
रहं दुरुहइ, सकोरिंटमह्छदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भडचड-
गरविंदपरिखित्ते सावत्थी नयरीए मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ निग्ग-
च्छित्ता जेणेव कोट्टुए चेइए जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्तो केसिकुमारसमणस्स अदूरसामंते तुरए णिगि
णहइ रहं ठवेइ य, ठवित्ता पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव केसिकुमार-
समणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता केसिकुमारसमणं तिक्खुत्तो
आयाहिण—पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता
णच्चासणणे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे पंजलिउडे
विणएणं पज्जुवासइ ॥ सू० ११० ॥

इस कारण आज श्रावस्ती नगरी में अनेक उग्र यावत् इभ्यपुत्रवन्दना
करने के निमित्त यावत् विशालसमुदाय के रूप में होकर निकल रहे हैं । १०९।

वंदयति जिगच्छति) अर्थात् आगे श्रावस्ती नगरीमाथी घण्टा उग्र यावत् इभ्य-
पुत्रो वंदना करवा भाटे यावत् विशाल समुदायना रूपमां अत्र यधने बरह रह्या छे । १०९।

छाया—तत खलु स चित्रः सारथिः कञ्चुकिपुरुषस्य अन्तिके गतमर्थं भुक्त्वा निशम्य हृष्टतुष्ट-यावद् हृदयः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा, एवमवादीत-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! चातुर्घण्टम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयत यावत्स-च्छत्रम् उपस्थापयन्ति । ततः खलु स चित्रः सारथिः स्नातः कृतवलिकर्मा कृतकौतुकमद्गलपायश्चित्तः शुद्धप्रवेश्यानि मद्गल्यानि वस्त्राणि प्रवरप-

‘तएणं से चित्ते सारही कञ्चुईपुरिसस्स अंतिण एयमट्टं’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अंतिण एयमट्टं) सोचा निसम्म हृष्टतुष्ट जाव हियण कौटुं वियपुरिसे महावेड) इसके बाद जब कि कञ्चुकी के मुख से इस अर्थ को सुना और उसका हृदय में विचार किया तब हृष्ट यावत् हृदय वाले होकर उस चित्रसारथिने कौटुम्बिकपुरुषों-आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाया, (महाविक्ता एवं घयासी) बुलाकर उसने ऐसा क्रदा (खिण्णामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ट-वेह) हे देवानुप्रियो ! आप लोग चातुर्घट-(चारघंटोवाले) अश्वरथ को घोड़ों से युक्त करके शीघ्र ही उपस्थित करो (जाव मच्छत्तं उवट्टवेत्ति) अपने स्वामी की इस प्रकार आज्ञा के बचन सुनकर यावत् उत्तम उद्यम सहित अश्वरथ को उन्होंने लाकर उपस्थित कर दिया. (तएणं से चित्ते सारही णाए कययलिकम्मै, कयकोउयम गलपायश्चित्ते) रथ को उपस्थित हुआ जानकर चित्र सारथिने स्नान किया, वलिकर्म किया अर्थात् काक

‘त एणं से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अंतिण एयमट्टं’ इत्यादि.

सूत्रार्थ—(त एणं से चित्ते सारही कञ्चुइपुरिसस्स अंतिण एयमट्टं) सोचा निसम्म हृष्टतुष्ट जाव हियण कौटुं विय पुरिसे महावेड) क्या है कञ्चुकी का मुख से आ बधी विगत सालणी त्यां तेत्ते मतभा विद्यां इयां अने हृष्ट यावत् हृदयवाणे यधने ते चित्रसारथीभि धीटुंभिश्च पुड्याने-आनाडानी पुड्याने देवाणुप्पिया (सरारिणा एव घयासी) बुलावने तेभने आ प्रभाणु इ. (खिण्णामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घट आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह) हे देवानुप्रियो ! आप लोग चातुर्घट (चार घंटोवाले) अश्वरथ को घोड़ों से युक्त करके शीघ्र ही उपस्थित करो (जाव मच्छत्तं उवट्टवेत्ति) अपने स्वामी की इस प्रकार आज्ञा के बचन सुनकर यावत् उत्तम उद्यम सहित अश्वरथ को उन्होंने लाकर उपस्थित कर दिया.

(त एणं से चित्ते सारही णाए कययलिकम्मै, कयकोउयम गलपायश्चित्ते) रथ को उपस्थित हुआ जानकर चित्र सारथिने स्नान किया, वलिकर्म किया अर्थात् काक

रिहितः, अल्पसहाय्यभरणालङ्कृतशरीरो यत्रैव चातुर्घण्टो अश्वरथस्तत्रैव उपा-
गच्छति, उपागत्य चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति, संकोण्टमालयं दग्ध्नां छत्रिणं
धियमाणेन महाभट-चटकरवृन्दपरिक्षिप्तः श्रावस्तीनगर्याः मध्यमध्वेने
निगच्छति, निर्गत्य यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं यत्रैव केशिकुमारश्रमणस्तत्रैव
उपागच्छति, उपागत्य केशिकुमारश्रमणं त्रिकूत्वं आदक्षिणपदक्षिणं करोति,

आदि को अन्न का भाग दिया एवं दुःस्वप्न को विनाश
करने के लिये कौतुक, मंगलरूप प्रायश्चित्त क्रिया, (सुद्रपावे-
साइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंक्रियसरीरे जेणेव
चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) बाद में उसने शुद्ध, परिपदा में
प्रवेशयोग्य, मांगलिक, वस्त्रों को अच्छी तरह से पहिरा एवं विशिष्ट कीम-
तवाले तथा अल्प वजनवाले ऐसे भाभूषणों से अपने शरीर को अलङ्कृत
क्रिया. (जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता चाउग्घंटे
आसरहं दुरुहइ) बाद में वह जहाँ चारघंटों वाला अश्वरथ खड़ा था वहाँ
पर आया—वहाँ आकर वह उस चातुर्घट अश्व रथ पर बैठ गया (संको-
रिंमल्लदामेणं छत्तेण धरिज्जमाणेणं महया भउचडगरविंदपरिक्खत्ते साव-
त्थीए मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ) छत्रधारण करने वालेने उसके ऊपर कोरंट-
पुष्पों की मालाओं से सुशोभित छत्र तान दिया, विशाल झट्टो का समूह
उसके आसपास आकर खड़ा हो गया. इस प्रकार होकर फिर वह श्रावस्ती
नगरी के बीचों बीच से होता हुआ निकला (निग्गच्छिता जेणेव कोट्टए

प्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंक्रियसरीरे चा-
उग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) त्यारिंथाइं सिण्णुं सारी रीते शुद्धं, सुनिपरि-
पदाभां प्रवेश योग्य, मांगलिक वस्त्रो धारणुं कर्था. तथा गहुं डिंमती अने अल्प-
संखवाणा आलूषणो पहरेरीने पोताना शरीरने अलङ्कृत कर्था. (जेणेव चाउग्घंटे
आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता चाउग्घंटे आसरहं दुरुहइ)
त्यारिंथाइं न्यां थारं घंटेवाणो अश्वरथं उतो त्यां गथो त्यां न्धने ते चातुर्घंटे
रथे परं सेवारं थयो. (संकोरिंमल्लदामेणं छत्तेण धरिज्जमाणेणं महया भउ
चडगरविंदपरिक्खत्ते सावत्थीए नयरीए मज्झमज्जेणं निग्गच्छइ) छत्र
धारणुं करनारथे तेमना उपरं कोरंट पुष्पोनी भाणोआथी सुशोभित छत्र ताण्युं
विशाण लटोना समूहो आवीने तेनी आसपास थोमेर विटणाध गया. आ प्रभाण्णे
ते श्रावस्तीना नगरीनी पदये थधने नीकण्यो (निग्गच्छिता जेणेव कोट्टए चेइए

कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा नात्वा मन्ने नातिदरे शुभ्रपमाणा
नमस्यन् अभिसुखे प्राञ्जलिपुटो विलयेन पर्युपासने ॥११०॥

चेइए केसिकुमारस्मरणे तेणेव उवागच्छइ) निकलकर वह जहा कोष्ठरु
चैय था और उसमें भी जहा देशीकुमारश्रमण थे वहां पहुँचा (उवाग-
च्छित्ता केसिकुमारस्मरणम् अदृशाम ते तुगण णिगिण्हइ) वहा पहुँच कर
उसने केशिकुमारश्रमण के स्थान से कुछ थोड़ी दूर पर घोडा को खडा
कर दिया (रह ठवेइ) रथको खडा कर दिया (ठवित्ता पञ्चोहइ) खडा करके
फिर वह उसमें नीचे उतरा (पञ्चोहत्ता जेणेव केसिकुमारस्मरणे तेणेव
उवागच्छइ) नीचे उतर कर वह जहां देशीकुमार श्रमण थे वहां पर गया
(उवागच्छित्ता केसिकुमारस्मरणं तिवहुत्तो आयादिणपयादिणं करेइ) वहां
जाकर उसने केशीकुमार श्रमण को तीनवार प्रदक्षिणा की (करित्ता वदट,
नमंसइ) प्रदक्षिणा करके फिर उसने उनको वन्दना की, नमस्कार किया (वन्दित्ता
नमंसित्ता णचासणे णाइदूरे सुस्सममाणे णसंगत्ताणे अभिसुखे पंजन्डित्ते
घिणणं पज्जुवास्इ) वन्दना नमस्कार करके फिर वह न अधिक दूर और
न अधिक पार, ऐसे उचित स्थान पर धर्मोद्देश सुनने की इच्छा से बैठ गया, यहाँ
वैठे ही उसने उनके समक्ष विलय से दोनों हाथ जोड़ कर उनकी पर्युपासना की।!

श्रीतार्थ इमरा स्पष्ट है ॥११०॥

केसिकुमारस्मरणे तेणेव उवागच्छइ) निकलकर वह जहा कोष्ठरु

‘तएणं से’ इत्यादि—

टीका—एतत्सूत्रस्थपदानां व्याख्या पूर्वंगता, अतद्वदं व्याख्यातपायमिति। सू. ११०।

सूत्रम्—तएणं से केसिकुमारसमणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे महइमहालयाए परिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ, तं जहा—
सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं,
सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं
तएणं सा महइमहालिया परिसा केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्मं
सोच्चा निसम्म जामेव दिस्सि पाउब्भया तामेव दिस्सि पडिगया। सू. १११।

छाया—ततः खलु म केशिकुमारश्रमणः चित्राय सारथ्ये तस्यां महा-
तिमहालयायां परिषदि चातुर्यामं धर्मं परि कथयति, तद्यथा—सर्वस्मात् प्राणातिपा-
ताद् विरमणम्?, सर्वस्मात् मृषावादाद् विरमणम्२, सर्वस्मात् अदत्तादानाद्
विरमणम्३, सर्वस्माद्बहिर्गदानाद् विरमणम्४। ततः खलु सा महातिम-

‘तएणं से केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से केसिकुमारसमणे) इसके बाद (केसिकुमारसमणे)
केशिकुमार श्रमणने (चित्तस्स सारहिस्स) चित्र सारथि के लिये
(तीसे महइमहालयाए) उभ अति विशाल (परिसाए) परिषदा में (चाउ
ज्जामं धम्मं परिकहेइ) चातुर्याम धर्म का (परिकहेइ) प्ररूपण क्रिया—उपदेश
दिया (त जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओमुसावायाओ वेरमणं,
सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं)
वे चातुर्याम ये हैं—१ समस्त प्राणातिपात से विरक्त (निवृत्त) होना, २

‘तएणं से केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थः—(तएणं से केसिकुमारसमणे) त्पार पक्षी केशिकुमार श्रमणे
(चित्तस्स सारहिस्स) चित्र सारथि भाटे (तीसे महइमहालयाए) ते अति विशाल
(परिसाए) परिषदां (चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ) चातुर्याम धर्मनी (परिकहेइ)
प्रप्रथ्वा करी. अट्ठे के उपदेश ध्ये (तं जहा सव्वाओ पाणाइवायाओ
वेरमणं, सव्वाओ, मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ आदिन्नादाणाओ वेरमणं,
सव्वाओ वहिद्धादाणाओ वेरमणं) ते चातुर्याम धर्मनी विशेष विगत आ प्रभाणे
छे—(१) समस्त प्राणातिपातथी विरक्त (निवृत्त) थवुं. (२) समस्त मृषावादथी विर-

हालया परिपत् केजिनः कुमारश्रमणस्यान्तिके धर्मं श्रुत्वा निगम्य यस्या एव दिशः प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता ॥ सू० १११ ॥

टीका—‘तणं’ से इत्यादि—ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्राय मारथये=चित्रं सारथिमृद्धिय तस्यां महातिमहालयायाम्=अतिविशालायां परिपदि चातुर्यामं चतुर्णाम्=चतुःसंख्यकानां यामानां=यमा एव यामास्तेषां समाधारश्चतुर्यामं, तदेव चातुर्यामं, तदस्ति यस्मिन् स चातुर्यामस्तं धर्मं परिकथयति=व्याख्याति, तथा—सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमण=सकलप्राणिप्राणवियोजनानुकूलव्यापारतो विनिवृत्तिः, सर्वस्माद् मृषावादाद् विरमणम्=सर्वविधाऽमत्यभाषणाद् विनिवृत्तिः, तथा—सर्वस्मात्

समस्त मृषावाद से विरक्त होना, ३ समस्त अज्ञान से विरक्त होना और समस्त बहिरादान से विरक्त होना (तणं सा महिमहालिषा परिगता केमिस्म कुमारश्रमणस्म अतिग धर्मं येषा निगम्य इदृनुदृ० जामेव दिशि पाउब्धया तामेव दिशि पडिगया) इस तरह केशिकुमार श्रमण ने चातुर्याम धर्मका उपदेश सुनकर और हृदय में उसे धारण कर वह अतिविशाल पारंगदा हृष्ट तुष्ट यावत् हृदयवाली होती हुई जहाँ से आई थी वहाँ पर पीड़ी चली गई.

टीकार्थ मूलार्थ के ही अनुरूप है. चातुर्याम धर्मका उपदेश क्रिया-वाक्य इमया तात्पर्य ऐसा है कि चातुर्याम वाक्ये धर्म का उपदेश दिया. सकल प्राणियों के प्राणों को वियोजन (अलग) करने के अनुकूल व्यापार से रहित होना इसका नाम प्राणातिपात विरमण है. इसी तरह समस्त प्रकार के अत्यभाषण करने से दूर रहना-उमका न्याय करना इसका नाम मृषावाद-विनिवृत्ति है. (३) अज्ञान अज्ञानात् नशी विनिवृत्ति इव अज्ञान अज्ञानात् नशी विनिवृत्ति इव. (तणं सा महिमहालिषा परिगता केमिस्म कुमारश्रमणस्म अतिग धर्मं येषा निगम्य इदृनुदृ जामेव दिशि पाउब्धया तामेव दिशि पडिगया)

अदत्तादानात्=सकलविधाश्रौचाद् विरमण=विनिवृत्तिः, तथा—सर्वस्माद् बहि-
रादानाद्=धर्मोपकरणातिरिक्तपरिग्रहोपादानाद् विरमणम् । मैथुनविरमणस्य
परिग्रहे स्वान्तर्भावः, नहि-अपरिगृहीता स्त्री परिभुज्यतेऽनो मैथुन-विर-
मणरूपं सहाव्रत-न पृथगुपात्तमिति । उपलक्षणाद् अगारधर्ममपि परिक-
थयन्ति-ततः खलु सा महातिमहालया परिपत केशिनःकुमारश्रमणस्य
अन्तिके=समीपे-धर्मं श्रुत्वा सामान्यतः, निशम्य=विशेषतो हृद्यवधार्य यस्या
एव दिशः प्रादुर्भूता, तामेव-दिशं प्रतिगता ॥सू० १११॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए
धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ट जाव-हियए उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता केसि-
कुमारसमणं तिकुत्तो आयाहिणवयाहिणं करेइ वंदइ, नमंसइ,
वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-सहामि णं भंते । णिग्गथ पावयणं,

विरमण है। समस्तप्रकार के अदत्तादान से—चौर्यकर्म से दूर रहना उसका
त्याग करना इसका नाम अदत्तादानविरमण है, तथा धर्मोपकरण से अतिरिक्त
परिग्रह का त्याग कना इसका नाम बहिरादान विरमण है। मैथुन विर-
मण को यहां स्वतंत्ररूप से व्रत नहीं माना गया है। क्यों कि उसका
अन्तर्भाव परिग्रह में ही हो जाता है। क्यों कि जो स्त्री भोग के काम
आती है वह अपरिगृहीत हुई नहीं आती है किन्तु परिगृहीत हुई ही आती
है। उपलक्षणा से उन्होंने आगारधर्म का भी कथन किया। इस तरह केशि-
कुमार श्रमण के पास धर्म का उपदेश सामान्यरूप से सुनकर और उसे
विशेषरूप से हृदयमें धारण करके वह अतिविशाल परिषदा जहा से आई थी
वही पर पीछी चली गई ॥ १११ ॥

समस्त प्रकारना अदत्तादानथी-चौर्यकर्मथी हर रडेवु-ते कर्मने त्याग करयो-ते अद-
त्तादान विरमणु छे. तेमज धर्मोपकरणतिरिक्त परिग्रहने त्याग ते अदिरादान विरमणु
छे मैथुन विरमणुने अही स्वतंत्रपणे व्रतपे निर्देश कर्यो नथी केमके तेने। परि-
ग्रहमा ज अन्तर्भाव करवामा आव्यो छे. केमके छे स्त्री-लोग भाटे आवे छे ते
अपरिगृहीत थये ने नाहु पणु परिगृहीतना रूपमा आवे छे. उपलक्षणथी तेयो-
श्रीओ अगार धर्मनु पणु कथन क्यु छे. आ प्रमाणु सामान्यरूपथी केशिकुमार श्रमणु
पात्तथी धर्मोपदेश सामान्यने अने तेने विशेषरूपमा हृदयमा धारण करीने ते अति
वशण परिषदा जयाथी आवी इती त्या पाछी जती रही. ॥१११॥

रोयामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं, अब्भुट्टेमि णं भंते । निग्गंथं
 पावयणं, एवमेयं भंते ! निग्गंथे पावयणे, तहमेयं भंते ! निग्गंथे
 पावयणे अत्रितहमेयं निग्गंथे पावयणे, असदिच्चमेयं भंते ! निग्गंथे
 पावयणं, इच्छियमेयं भंते ! निग्गंथे पावयणे, पडिच्छियमेयं भंते !
 निग्गंथे, पावयणे, इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! निग्गंथे पावयणे, ज
 णं तुब्भे वदहत्तिकट्टे वदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी
 -जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा जाव इब्भा
 इब्भपुत्ता चिच्चा हिरणं चिच्चा सुवणं, एवं धणं धन्नं बलवाहणं
 कोसं कोट्टागारं पुरं अंतेउरं, चिच्चा विउलं धणकणगरयणमणि-
 मोत्तियसंखसिलप्पवालसंतसारसावएज्जं, विच्छड्डित्ता विगोवइत्ता
 दाणं दाइत्ता परिभाइत्ता मुंडा भवित्ता अगारोओ अणगारियं पव्व-
 यंति, णो खलु अहं ता संचाएमि चिच्चा हिरणं तं चैव जाव पव्व-
 इत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खा-
 वइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए । अहासुहं देवाणुप्पिया!
 मा पडिवंधं करेहि । तएणं मे चित्तं सारहा केसिकुमारसमणस्स
 अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्म उवसंपजित्ता णं विहरइ । तएणं
 मे चत्ते सारही केसिकुमारसमणं वदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता
 जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, चाउग्घंटे आसरहं
 दुहरइ, जामेव दिस्सि पाउब्भूए तामेव दिस्सि पडिगए ॥ सू० ११२ ॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिके
 धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्ट यावद्—हृदयः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिनं

कुमारश्रमणं त्रिकृत्वा आदक्षिण-प्रदक्षिणं करोति, वन्दते नमस्यति, वंदित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—श्रद्धामि अलु भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, प्रत्येमि, खलु भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, रोचयामि खलु भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, अभ्युत्तिष्ठे खलु भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, एवमेतद् भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, तथैवैतद् भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, अवितथमेतद् भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, असन्दिग्धमेतद् भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, इष्टमेतद्

‘तएणं से चित्ते सारही इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चित्ते सारही) वह चित्र सारथि (केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म) केशीकुमारश्रमण के पास धर्म को सुनकर और उसे हृदय में अवधृतकर (हट्ट जाव हियए) हर्षित हुआ संतुष्ट हुआ यावत् (उट्टाए उट्टेइ) अपने आप उठा—(उट्टिता केसिं कुमारसमणं तिवखुत्तो आयाह्णिणपयाह्णिणं करेइ) और उठकर उसने केशिकुमारश्रमण की तीन आदक्षिणप्रदक्षिणा की (वंदइ नमसइ) वन्दना की नमस्कार किया (वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी) वंदना नमस्कार कर फिर वह इस प्रकार बोला—(सद्धामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं रोयामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं एवमेयं भंते ! निग्गंथं पावयणं असंदिद्धमेयं भंते ! निग्गंथं पावयणं) हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन की श्रद्धा करता हूँ हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन की प्रतीति करता हूँ, हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अपनी रुचि का

‘त एणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एणं) त्थार पछी (से चित्ते सारही) ते चित्र सारथि (केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म) केशीकुमार श्रमणुनी प्रासेथी धर्म सांलणीने अने तेने हृदयभां धारणु करीने (हट्टजाव हियए) हर्षित थयो. संतुष्ट थयो यावत् (उट्टाए उट्टेइ) पोतानी भेणे उलो थयो (उट्टिता केसिं कुमारसमणं तिवखुत्तो आयाह्णिणपयाह्णिणं करेइ) अने उलो थधने तेले केशीकुमार श्रमणुनी तएण वार आदक्षिणु प्रदक्षिणा करी. (वंदइ नमसइ) वंदना करी नमस्कार थयो. (वंदित्ता, नमसित्ता एवं वयासी) वंदना करीने ते आ प्रभाले उडेवा लाग्यो—(सद्धामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं रोयामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं एवमेयं भंते ! निग्गंथं पावयणं असंदिद्धमेयं भंते ! निग्गंथं पावयणं) हे भदन्त ! हे निर्ग्रन्थ प्रवचनभां श्रद्धा राणुं पं. हे भदन्त ! हे निर्ग्रन्थ प्रवचनभां प्रतीति राणुं छं, हे भदन्त ! हे निर्ग्रन्थ प्रवचनने

भदन्त ! निर्ग्रन्थं प्रवचनम्, प्रतीष्टमेतद् भदन्त ! निर्ग्रन्थं प्रवचनम् इष्ट-
प्रतीष्टमेतद् भदन्त ! निर्ग्रन्थं प्रवचनम् यत् खलु यूयं वदथेति कृत्वा वन्दते
नमस्यति, वन्दत्वा नमस्थित्वा एवमवादीत्—यथा खलु देवानुप्रियाणाम्
अन्तिके बहव उग्रा भोगा यावत् इभ्या इभ्यपुत्रास्त्यक्त्वा हिरण्यं त्यक्त्वा सुवर्णम्
एवं धनं धान्यं बलं वाहनं कोशं कोष्ठागारं पुरम् अन्तःपुरं, त्यक्त्वा

विषय बनाता हूं. हे भदन्त ! मैं इस निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार करता
हूं. हे भदन्त ! आप जैसा इस निर्ग्रन्थ प्रवचन का प्रतिपादन करते हैं,
वह वैसाही है. हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है. हे भदन्त !
यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सन्देह रहित है। (इच्छियमेयं भंते ! निगंथे पावयणे,
पडिच्छियमेयं भंते निगंथे पावयणे) हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्ट है,—
हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन प्रतीष्ट है। (इच्छियपाडिच्छियमेयं भंते !
निगंथे पावयणे) हे भदन्त ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्टप्रतीष्ट दोनोंरूप है.
(जं णं तुब्भे वदह, त्ति कट्टे वंदइ, नमंसइ) जैसा कि आप कहते हैं इस
प्रकार कहकर उसने उसको वन्दना की नमस्कार किया. (वंदिता नमंसित्ता
एवं वयासी) वन्दना नमस्कार कर फिर उसने ऐसा कहा (जहाणं देवानु-
प्रियाणं अत्तिए बहवे उग्गा, भोगा जाव इब्भा इब्भपुत्ता चिच्चा हिरण्यं,
चिच्चा सुवर्णं, एवं धणं धन्नं बलं वाहणं कोसं कोष्ठागारं पुरं अन्ते
उरं) आप देवानुप्रिय के पास जिस प्रकार अनेक उग्र भोग यावत् इभ्य

पोतानी रुचिने विषय बनाछुं. हे लढंत!हुं आ निर्ग्रन्थप्रवचनने स्वीकाइ छुं.
हे लढत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचननुं आप श्री ने प्रभाणे प्रतिपादन करी रखा छे.
अक्षरथः यथावत् छे. हे लढंत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य छे, हे लढंत ! आ
निर्ग्रन्थ प्रवचन सदेह रहित छे. (इच्छियमेयं भंते ! निगंथे पावयणे, पडि-
च्छियमेयं भंते निगंथे पावयणे) हे लढंत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्ट छे, हे
लढंत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन प्रतीष्ट छे. (इच्छियपाडिच्छियमेयं भंते ! निगंथे
पावयणे) हे लढत ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन इष्ट अने प्रतीष्ट अन्ने छे. (जं णं
तुब्भे वदह, त्ति कट्टे वंदइ नमंसइ) ने प्रभाणे आपश्री कही रखा छे ते प्रभाणे
ने छे. आभ कहीने तेणे वंदना तेभजे नमस्कार कर्यां. (वंदिता नमंसित्ता एवं-
वयासीं) वदना तेभजे नमस्कार करीने तेणे तेआश्रीने आ प्रभाणे कहुं—(जहाणं
देवानुप्रियाणं अत्तिए बहवे उग्गा, भोगा जाव इब्भा इब्भपुत्ता चिच्चा
हिरण्यं. चिच्चा सुवर्णं. एवं धणं धन्नं बलं वाहणं कोसं कोष्ठागारं पुरं
अन्ते उरं) आप देवानुप्रियनी पासे नेभे उग्र, भोग यावत् इभ्य अने इभ्य

विपुल— धनकनकरत्नमणिमौक्तिकशङ्खशिलाप्रवालसत्सारस्वापतेयं—विच्छर्ध-
विगोप्य दानं दत्त्वा, परिभाज्य मुण्डां भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव-
र्जन्ति, नो खलु अहं तावत् शक्नोमि त्यक्त्वा हिरण्यं तदेव यावत् प्रवर्जितुम् अहं
खलु देवानुप्रियाणाम् अन्तिके पञ्चाणुव्रतिकं सप्तशिक्षाव्रतिकं द्वादशविधं
गृहिधर्मं प्रतिपत्तुम् । यथासुखं देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्धं कुरु । ततः

और इन्ध पुत्र हिरण्य को छोड़कर, सुवर्णको छोड़कर एवं धन धान्य,
बल, वाहन, कोश, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर को (चिच्चा) छोड़कर
(विउलं धनकणगरयणमणिमोत्तियसंखमिलप्पवालसत्सारसावएज्जं, विउ-
डिज्जा, विगोवइत्ता, दाणं दाइत्ता) तथा विपुल, धन, कनक, रत्न मौक्तिक
शंख शिलाप्रवाल एवं सत्सारस्वापतेय को छोड़कर तथा उन सबको
विशाल प्रमाण में दीन दरिद्र आदिकों के लिये विनरित कर (परिभाइत्ता)
पुत्रादिकोंमें विभक्त (विभाग) कर (मुंडा भविता अगाराओ अणगारियं पव्वयति)
वाद में मुडित होकर के अगार अवस्था को धारण करते हैं (नो खलु
अहं ता संचामि, चिच्चा हिरण्यं तं चेव जाव पव्वइत्तए) वैसा मैं
हिरण्य आदि को छोड़कर दीक्षा धारण करने के लिये समर्थ नहीं हूँ,
(अहंणं देवानुप्पियाणं अन्तिके पञ्चाणुव्वइयं, सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं
गिहिधम्मं पडिवज्जितए) मैं तो आप देवानुप्रिय के पास पांच अणुव्रत-
वाले एवं सातशिक्षा व्रतवाले इस तरह १२ प्रकार के गृहस्थ धर्म को
धारण कर सकता हूँ-। (अहामुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि) आप

द्विरण्येनो त्याग करीने अने धन, धान्य, णण, वाहन, कोश, कोष्ठागार, पुर - अने
अ त.पुर-रणवास (चिच्चा) ने त्याग करीने (विउलधनकणगरयणमणिमोत्तिय-
संखमिलप्पवालसत्सारसावएज्जं, विच्छडिज्जा, विगोवइत्ता, दाणं दाइत्ता
तेमए विपुल धन, कनक, रत्न, मौक्तिक शंख शिला प्रवाल अने सत्सार स्वापतेय
ने त्याग करीने तेम ए पुण्ण, प्रमाणुमां दीनदरिद्र वगेरे लोकोने आपीने
(परिभाइत्ता) पुत्रादिकोमां वडेचीने (मुंडा भविता अगाराओ अणगारियं
पव्वयति) त्याग पाद मुडित थरने अगार अवस्थाभांथी अनगार अवस्थाने धारण
करे छे (नो खलु अहं ता संचामि, चिच्चा हिरण्यं तं चेव जाव पव्वइत्तए)
तेम ए द्विरण्य वगेरेने त्याग करीने दीक्षा धारण करवाभां असमर्थ छुं. (अहं णं
देवानुप्पियाणं अन्तिके पञ्चाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहि-
धम्मं पडिवज्जितए) आपथी पायेथी एुं तो इत पांच अणुव्रतवाणा अने
अने सात शिक्षाव्रतवाणा आमा १२ प्रकारना गृहस्थ धर्मने स्वीकारी थरुं छुं.
अहामुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि) आप देवानुप्रियने ए-कार्यमां

खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके पञ्चाणुव्रतिकं यावद्
गृहिधर्मम् उपसम्पद्य खलु विहरति । ततः खलु स चित्रः सारथिः केशि-
कुमारश्रमणं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव चातुर्घण्टः अश्व-
रथस्तत्रैव प्राधारयद् गमनाय, चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति, यस्या एव
दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ सू० ११२ ॥-

टीका--'त एणं से' इत्यादि--

ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिके=

देवानुप्रिय को जिस प्रकार से सुख हो वैसा करो—परन्तु विलम्ब मत
करो. (तएणं से चित्तं सारही केशिकुमारसमणस्स अन्तिके पञ्चाणुव्वइयं
जाव गिहिधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ) इसके बाद उस चित्र सारथि
ने केशिकुमार श्रमण के पास पांच अणुव्रतों वाले एवं सात शिक्षाव्रतों
वाले गृहस्थ धर्मको अंगीकार कर लिया (तएणं से चित्तं सारही केशि-
कुमार समणं वंदइ, नमसइ वदित्ता नमसित्ता जेणेव चाउग्घंटे आसरहे
तेणेव पहारेत्थ गमणाए, चाउग्घट आसरहं दुरुहइ) इसके बाद उस
चित्र सारथिने केशिकुमार श्रमण को वन्दना की नमस्कार क्रिया, वन्दना
नमस्कार कर उसने जहां चातुर्घट अश्वरथ रखा था उस ओर जाने का
निश्चय किया. वहां जाकर वह उस पर चढ़ गया. (जामेव दिस्सिं पाउ
वभूए, तामेव दिस्सिं पडिगए) और जिस दिशा से होकर आया था
उसी दिशा तरफ चला गया।

टीकार्थ--इसके बाद चित्र सारथी केशीकुमार श्रमण के पास

सुण थाय ते कुरो. पणु विलंभ-न कुरो. (त एणं से चित्तं सारही केशिकुमार-
समणस्स अन्तिके पञ्चाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ)
त्यार पछी ते चित्र सारथिये केशिकुमार श्रमण पासेथी पाय आणुव्रतोवाणा अने
सात शिक्षाव्रतोवाणा गृहस्थधर्मने स्वीकारी लीथी. (त एणं से चित्तं सारही
केशिकुमारसमणं वंदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता जेणेव चाउग्घंटे आस-
रहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, चाउग्घटं आसरहं दुरुहइ)त्यार भाद ते चित्र
सारथिये केशिकुमार श्रमणने वंदना करी, नमस्कार करी, वंदना तेमज नमस्कार करीने
तेणे न्या आतुंघट अश्वरथं उतो ते तरइ जवानो निश्चय करीं त्यां जधने ते रथ
पर सवार थध गथो. (जामेव दिस्सिं पाउवभूए. तामेव दिस्सिं पडिगए) अने
जे दिशा तरइ थधने ते आव्यो उतो ते ज दिशा तरइ पाछो जतो रह्यो.

टीकार्थ--त्यार भाद चित्रसारथि केशिकुमार श्रमणनी पासे धर्म साधणीने-

समीपे धर्मं श्रुत्वा सामान्यतः, निश्चयः=विशेषतो हृद्यवधार्यं हृष्टयावदहृद्यः= हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यतः हर्षवशविसर्पदहृद्यः उत्थया=उत्थानशक्त्या उत्तिष्ठति. उत्थाय केशिनं कुमारश्रमणं त्रिकृत्वः= वारत्रयम् आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्-हे भदन्त ! खलु=निश्चयेन श्रद्धाभिः=इदमेवमेवास्तीति श्रद्धानविषयीकरोमि नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, हे भदन्त ! पत्येमि=प्रतीतिविषयीकरोमि खलु नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, हे भदन्त ! रोचयामि =रुचिविषयीकरोमि खलु नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, हे भदन्त ! अभ्युत्तिष्ठे=अभ्युपगच्छामि खलु नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, हे भदन्त ! यथा खलु भवद्भिः प्रतिपादितम्, एतद् नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, एवमेव, हे भदन्त ! यथा भवन्तः प्रतिपादयन्ति, एतद् नैर्ग्रन्थं प्रवचनं तथैव=तद्रूपमेवास्ति, हे भदन्त ! एतद् नैर्ग्रन्थं प्रवचनम् अवितथं=सन्यम् अत एव हे भदन्त ! एतद् नैर्ग्रन्थं प्र-

धर्मं सुनकर और उसे विशेषरूप से अपने हृदय में धारण कर हृष्ट तुष्ट और चित्त में आनन्द संपन्न हुआ उसके मनमें गाढ़ प्रीति जग गई, वह परम सौमनस्यत हो गया. हृदय अपार हर्ष के कारण उसका हर्षित होने लगा. वह उसी समय खड़ा हुआ, और केशिकुमार श्रमण को उसने तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण पूर्वक वन्दना की नमस्कार किया. वन्दना नमस्कार कर फिर उसने ऐसा कहा-हे भदन्त मैं इस निर्ग्रन्थ प्रवचनको यह ऐसा ही है, इस रूपसे अपनी श्रद्धा का विषय बनाता हूं, हे भदन्त ! मैं इस निर्ग्रन्थप्रवचन को अपनी प्रतीति में लाता हूं. हे भदन्त ! मैं इस निर्ग्रन्थ प्रवचनको अपनी रुचि में आकृष्ट करता हूं और मैं हे भदन्त ! इसे स्वीकार भी करता हूं। हे भदन्त ! जैसा आपने कहा है यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ऐसा ही है। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन अवितथ-सर्वथा सत्यरूप है,

अने तेने विशेषरूपथी हृद्यमां अवधारित करीने हृष्टतुष्टथयो अने तेष्टुं चित्त अतीव आनन्दित थयुं. तेना मनमां तीव्र प्रीति उत्पन्न थथ. ते परमसौमनस्यत थथ गयो. तेष्टुं हृद्य अपार हर्षथी तरणोण थथ गयुं. ते तरतज उलो थयो अने केशिकुमार श्रमणनी तेष्टे आदक्षिण प्रदक्षिणापूर्वक वन्दना करी नमस्कार कर्या वन्दना तेमज नमस्कार करीने पछी तेष्टे आ प्रमाणे कहुं-“हे भदन्त ! हुं आ निर्ग्रन्थ प्रवचन पर जे जेवु न छे” आ इपमां श्रद्धाशील थाठिं छु. हे भदन्त ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन पर हुं संपूर्णपण्णे प्रतीति धराउं छुं. हे भदन्त ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचनने हुं पोतानी रुचि तरङ्ग सङ्ग लावे आकृष्ट करिं छुं अने हे भदन्त ! आने हुं स्वीकारिं पण्णु छु हे भदन्त ! आपश्रीजे जे प्रमाणे कहुं छे ते प्रमाणे न आ निर्ग्रन्थ प्रवचन छे. आ निर्ग्रन्थ प्रवचन अवितथ-सर्वथा-सत्यरूप छे, जेथी न जे

चनम्, असन्दिग्धम्= न्देहरहित खलु भदन्त ! एतद् नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, तथा-हे भदन्त ! एतत् खलु इष्ट प्रताष्टम् अभिलषितम् प्रतीष्टम्=आभि-
मुख्येन सम्यक् प्रतिपन्नमेतत्, इष्टप्रतीष्टम्=सर्वथाऽतिशयेनाभिलषितं हे भदन्त ! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम्, यत् खलु यूयं वदथ-इति कृत्वा=इत्युक्त्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्, हे भदन्त ! देवानुप्रियाणाम्=भवताम् अन्तिके=समीपे यथा=येन प्रकारेण खलु चहव उग्रा भोगा यावत् इभ्या इभ्यपुत्रा हिरण्यं=रजतम् त्यक्त्वा, एवम्-
अमुनैवप्रकारेण धनं=रूप्यादि, धान्यं=शाल्यादि, बलं=सैन्यं, वाहनम्= अश्वदिरूपम्, कोशं-प्रसिद्धम्, कोष्ठागारं=धान्यगृहं, पुरं=नगरम्, अन्तःपुरं= स्त्रीनिवासभूतस्थानं च त्यक्त्वा, तथा-विपुलं=प्रचुरं धनकनकरत्नमणि मौक्तिकशङ्खशिलाप्रवालसत्सारस्वापतेयं,-तत्र धनं=रूप्यादिकनकं=घटितमघ-

इसीलिये यह सन्देह रहित है। इष्ट है और प्रतीष्ट है। अर्थात् इसे भव्यजीवों ने अपने जीवनमें उतारा है। अतः यह सर्वथा अतिशयरूप से अभिलषित सिद्ध हुआ है ऐसा कह कर उस चित्र सारथिने केशिकुमार श्रमण की भक्ति के वशवर्ती होकर पुनः वन्दना की नमस्कार किया। और फिर उसने उनसे ऐसा कहा-हे भदन्त ! आप देवानुप्रिय के पास जिस प्रकार से अनेक उग्रोंने उग्रपुत्रोंने भोगोंने यावत् इभ्योंने एव इभ्यपुत्रोंने हिरण्य-रजत को-छोड़कर, सुवर्ण को छोड़कर, इसी प्रकार, से धन-रूप्यादिकों को, धान्य-शाल्यादिकों को, बल-सैन्य को वाहन-अश्वदिकों को, कोश को, कोष्ठागार-धान्यगृह को, पुर नगर को, अन्तःपुर स्त्रीनिवास भूतस्थानको, छोड़कर, तथा विपुल प्रचुर धन-रूप्यादिकों को कनक घटित अघटित (घड़ा हुआ और बिना घड़ा)

सन्देह रहित छे. इष्ट छे अने प्रतीष्ट छे. अटवे के लव्य लुयोअे आने पोताना लुवनमा उतायुं छे. अथी न अे सर्वथा अतिशयइपथी अलिलषित सिद्ध थयुं छे." आ प्रभाणे कडीने ते चित्र सारथिअे लकितवथ थछेने केशिकुमार श्रमणनी इरी वन्दना करी तेअने नमस्कार कया अने पछी तेले तेअोश्रीने आ प्रभाणे कछु-
"हे लहत ! आप देवानुप्रिय पासेथी नेम घण्टा उत्रोअे, उग्रपुत्रोअे लोगोअे यावत् धनोअे अने धन्यपुत्रोअे हिरण्य-सुवर्णने त्यलने, रजत-यांहीने त्यलने, आ प्रभाणे धन-इभ्या वगेरेने, धान्य-शालि वगेरेने, बल-सैन्यने, वाहन-अश्व वगेरेने कोशने कोष्ठागार-धान्यगृहने, पुर-नगरने, अन्तपुर-रणुवाअने त्यलने तेअे विपुल प्रचुर धन इभ्य वगेरेने कनक-घटित अघटित अने प्रकारना सुवर्णने, कडेदन गे

टितं चेति द्विविधं सुवर्णम्, रत्नं-कर्केतनादिकम्, मणिः=पद्मरागादिकरूपं, मौक्तिकं=मुक्ताफल, शङ्खः-रत्नविशेषः, शिलाप्रवालः=विद्रुमः, सत्सार-स्वापतेयसद्=पितृपितामहादिपरम्परारूपेण विद्यमान सारं=प्रधानं यत्, स्वापतेयं=मणिरत्नादिकं द्रव्यं तत् एतेषां समाहारस्तत्, धनधान्यादि सत्सार-स्वापतेयान्तं सर्वं विच्छर्द्यं=भावतः परित्यज्य, विगोप्यं=तानि सर्वाणि प्रकटीकृत्य दान दत्त्वा=दीनदरिद्रादिभ्यो वित्तीयं, परिभाज्यं=पुत्रादिषु विभज्य, सुण्डा भूत्वा अगारात् अगारितां प्रव्रजन्ति=दीक्षां गृह्णन्ति, नो खलु भदन्त ! अहं यावत् शक्नोमि=समर्थोऽस्मि त्यक्त्वा हिरण्यं, तदेव यावत्=सुवर्णादिकं सर्वं त्यक्त्वा-इत्यर्थः, प्रव्रजितुम्=दीक्षां ग्रहीतुम् । अहं खलु देवानुमिषाणाम् अन्तिके=समीपे पञ्चाणुव्रतिक-पञ्च=पञ्चसंख्यकानि अनुव्रतानि=स्थूलात् प्राणातिपाताद् विरमणम् १, स्थूलाद् मृषावादाद् विरमणम् २, स्थूलात्

दोनों प्रकार के सुवर्ण को, कर्केतनादिक रत्नको, पद्मरागादिकरूप मणियों को, मुक्ताफलों को, रत्नविशेषरूप शङ्खको, शिलाप्रवालविद्रुम को, सत्-पिता पितामह आदिकों की परम्परारूप से विद्यमान सारप्रधान मणिरत्नादिकरूप स्वापतेय को, भावतः छोड़ करके, तथा प्रत्यक्षरूप में इन सबको दीन दरिद्रादिकों को दान देकर, एवं पुत्रादिकों में इन्हें विभक्त करके अर्थात् पुत्रादिकों को धन आदिका भाग देकर मुंडित होकर अगारावस्था से परे हो दीक्षा धारण करते हैं, मैं इस प्रकार की परिस्थिति से युक्त हो कर-अर्थात् सुवर्णादिक सब का परित्याग कर भागवती दीक्षा धारण करने में अपने आपको शक्ति संपन्न नहीं मान रहा हूँ-असमर्थमान रहा हूँ अतः आप देवानुमिष के पास मैं श्रावक व्रतों को धारण करना चाहता हूँ-वश ऐसी ही इस समय मुझ में शक्ति है, अर्थात्-१स्थूल प्राणातिपात

रत्नने, पद्मराग वगैरे ३५ मणियोंने, मुक्ताइलोने रत्न विशेष शङ्खने, शिलाप्रवाल-विद्रुमने सत्-पिता पितामह वगैरेनी परंपराशी विद्यमान सार प्रधान-मणिरत्न वगैरे ३५ स्वापतेयने, भावात् (अन्तरनी धर्याथी न) त्यज्जने तेमन प्रत्यक्षरूपमां दीन दरिद्र-वगैरेने दानेमां आपीने अने पुत्रादिकोंमां विभाजित करीने अटवे के पुत्रादिकोंने धन वगैरेना भाग आपीने मुंडित थधने-अगारावस्थाथी पर अवी भागवती दीक्षा धारणु करे छे. हुं पोतानी नतने आवी परिस्थितिथी युक्त थधने अटवे के अणु वगैरे णधी वस्तुओंनी त्याग करीने भागवती दीक्षा धारणु करवाभा हुं असमर्थता अनुभवी रह्यो छुं अथी आप देवानुमिष पासैथी हुं श्रावक व्रतोंने धारणु करवा धर्युं छुं. हुमणा भारमा आटवी न शक्ति छे. अटवे के नेमां (१) स्थूल

त्तादानाद् विरमणम् ३, स्वदारसन्तोषः ४, ईच्छापरिमाणः ५, इति पञ्चा-
 नानि तानि सन्ति यस्मिंस्तम्, तथा-सप्तशिक्षाव्रतिकं-स-
 षोक्षाव्रतानि यस्मिन्-दिग्रतम्, १ उभोगपरिभोगपरिमाणम् २, अनर्थदण्डविर-
 मणम् ३, सामायिकम् ४, देशावकाशिकम् ५, पौषधोपवासः ६,
 अतिथिसंविभागः, ७ इति सप्तशिक्षाव्रतानि तानि सन्ति यस्मिंस्तम्,
 येन द्वादशविध गृहिधर्मं प्रतिपत्तुं=स्वीकर्तुं शक्नोमि। इत्थं
 वप्रसारयेवचनं श्रुत्वा केशिकुमारश्रमणः प्राह-हे देवानुप्रिय !
 या ते सुखं भवेत्तथा कुरु, अत्र अवश्यकर्तव्ये कार्ये प्रतिबन्ध=विलम्ब-
 न कुरु-इति ! ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके
 षाणुव्रतिकं यावद् गृहिधर्मम् उपसम्पद्य=स्वीकृत्य विहरति। ततः खलु

विरमण, २ स्थूलमृषावाद से विरमण, ३स्थूलअदत्तादान से विरमण,
 स्वदारसन्तोष, और ५इच्छापरिमाण ये पांच अणुव्रत हैं जिसमें ऐसे तथा
 दिग्रत, २उभोगपरिभोगपरिमाण, ३अनर्थदण्डविरमण, ४सामायिक, ५देशा-
 शक, ६पौषधोवकापवास, ७अतिथि संविभाग, एवं ये सातशिक्षाव्रत है जिसमें
 से गृहिधर्म को स्वीकार करने की मुझ में शक्ति है इसलिये इसे ही मैं
 रण करना चाहता हूँ-इसका विशेष वर्णन औपपातिक-सूत्र में आनन्द
 वाक के प्रकरण में देवना चाहिये। इस प्रकार चित्र सारथि के वचन-
 धन को सुनकर के केशिश्रमणने उससे कहा-हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें
 स्व हो-वैसा करो परन्तु इस अवश्यकर्तव्य कार्य में ढील मत करो इस
 कार केशिकुमारश्रमण का हितविधायक वचन सुनकर चित्र सारथिने
 नके पास पांच अणुव्रतोंवाले एवं सातशिक्षा व्रतों वाले गृहिधर्म को स्वीकार

प्राप्तपातथी विरमण, (२) स्थूल मृषावादथी विरमण (३) स्थूल अदत्तादानथी विरमण
 (४) ईच्छा परारमाण आ पाथे अणुव्रतो तेभ्य (१) दिग्रत, (२) उपलोग परि-
 भोगपरिमाण, (३) सामायिक (४) देशावकाशिक (५) पौषधोपवास, (६) अतिथि-
 विभाग अने (७) अनर्थ दण्ड विरमण आ सात शिक्षाव्रतो छयेवा गृहिधर्मने
 स्वीकारवा भाटे हुं तैयार छुं. आतुं विशेष वर्णन औपपातिक सूत्रना आनन्द
 वाक प्रकरणमा करवामां आव्युं छे. आ प्रमाणे चित्रसारथीतुं धन सांभलीने
 शिकुमार श्रमणु तेने कहुं-‘हे देवानुप्रिय ! तमने नेमां सुख थाय तेभ करे. पणु
 आ आवश्यक कर्तव्यमां हवे वार करे नहि.’ आ प्रमाणे केशिकुमार श्रमणुतुं हित
 विधायक वचन सांभलीने चित्र सारथिये तेज्याश्री पासेथी पाथे अणुव्रतोवाणा तेभ्य
 सातशिक्षा व्रतवाणा गृहिधर्मने स्वीकारी लीघे। त्पारभात चित्रसारथिये तेकेशिकुमार

स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमण वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्वित्वा
 यत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथ स्तैव प्राधारयद्=निश्चयमकरोद् गमनाय=गन्तुमिति।
 च गत्वा चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति, दूरुह्य यस्यादिशः प्रादुर्भूतः, तामेव
 दिशं प्रतिगत इति ॥सू० ११२।

मूलम--तएणं से चित्ते सारही समणोवासए जाए अहिगय-
 जीवाजीवे उवलद्धपुण्णपावे आसवसंवरनिज्जरकिरियाहिगरणबंध
 मोक्खकुसले असहिजे देवासुरणागजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगल्ल
 गधव्वमहोरगाईहिं देवगहेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ जणइकमणि
 ज्जे, निग्गंथे पावयणे णिस्सकिए णिकंखिए णिव्वितिगिच्छे लद्धट्ठे
 गहियट्ठे पुच्छियट्ठे अहिगयट्ठे विणिच्छियट्ठे अट्ठिमजपेमाणुरागरत्ते
 अयमाउसो ! णिग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे
 कुसियफलिहे अवंगुयदुवारे चियतंतेउरप्पवेसे चाउइसट्ठमुद्धट्ठपुण्ण
 मासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे णिग्गंथे फासु
 ए सणिज्जेणं असणणणखाइमसाइमेणं पीठफलगसेज्जासथारेणं वत्थ-
 पडिग्गहकवलपायपुच्छणेणं ओसहभेसज्जेणं पडिलाभेमाणे, बहुहिं-
 स्सोलव्वयगुणवेरमणपोसहोव्ववासेहिय अप्पाणं भावेमाणे जाइं
 तत्थं रायकज्जाणि य जाव राजव्वहाराणि य ताइं जियसत्तणा
 सण्णा, सुद्धिं सयमेव पच्चवेक्खमाणे पच्चवेक्खमाणे विहरइ ॥सू० ११३॥

फिर लिया। इसके बाद चित्रसारथिने उन केशिकुमारश्रमण को वन्दना की-
 नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके फिर वह जहाँ चातुर्घण्ट अश्वरथ
 रखा हुआ था वहाँ पर आया वहाँ आकर वह उरापर बैठ गया और इस
 प्रकार यह जहाँ से आया था वहीं से होकर वापिस चला गया ॥ सू. ११३ ॥
 श्रमणनी वन्दना करी नमस्कार करी। वन्दना नमस्कार करीने पछी ते जयां चातुर्घण्ट
 अश्वरथ हुतो त्या गयो। त्यां पछोथीने ते तेमा जेसी गयो अने आठ प्रमाणे
 जयांथी आंवेही हुतो त्या ज जाये जतो रह्यो ॥सू० ११३॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः श्रमणोपासको जातः अभिगत
जीवाजीव उपलब्धपुण्यपाप आस्रवसंवरनिर्जराक्रियाऽधिकरणबन्धमोक्षकुशलः
असाहाय्यो देवासुरनागयक्षराक्षसकिन्नरकिम्पुरुषगरुडगन्धर्वमहोरगादिभिः
देवगणैः निर्ग्रन्थात् प्रवचनात् अनतिक्रमणीयः, निर्ग्रन्थे प्रवचने
निश्शङ्कितो निष्कारिङ्कितो निर्विचिकित्सो लब्धार्थो गृहीतार्थः पृष्टार्थः अधि-

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि।

सूत्रार्थ—(तएण से चित्ते सारही समणोवासए जाए) अब वह चित्र
सारथि श्रमणोपासक हो गया. (अहिगय जीवाजीवे, उपलब्धपुण्यपाप, आस्र-
वसंवरनिज्जरकिरियाहिगरणबंधमोक्षकुसले) जीव और अजीव तत्त्व
के वह ज्ञाता बन गये, पुण्य एव पाप के स्वरूप को जानने लगे, आस्रव-
संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध और मोक्ष इनमें कुशल हो गये.
अर्थात् इनके स्वरूप का उसे बोध हो गया. (असहिज्जे) कुतीर्थिकों के
कुतर्क के खण्डन में पर की सहायता की अपेक्षा वाला नहीं रहा (देवा-
सुरणागजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाईहि देवगहेहि-
निग्गथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, निग्गथे पावयणे निस्सकिए) देवों
से असुरों से नागों से, यक्षों से राक्षसों से, किंपुरुषों से, गरुडों से,
गंधर्वों से, महोरगों से—इन सब देवगणों से—वह निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा
आदि से, अनतिक्रमणीय हो गया अर्थात् ये सब देवगण भी उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन
से थोड़ा सा भी विचलित करने के लिये समर्थ नहीं हो सके. वह (निग्गथे—पाव-

‘तए णं से चित्ते सारही’ इत्यादि।

सूत्रार्थ—(तए णं से चित्ते सारही समणोवासए जाए) पूर्व चित्र
सारथि श्रमणोपासक थय गये। (अहिगयजीवाजीवे, उपलब्धपुण्यपाप,
आस्रवसंवरनिज्जरकिरियाहिगरणबंधमोक्षकुसले) एव अने अए (तत्त्वने ते
ज्ञाता थय गये) पुण्य अने पापना स्वइपने ते ज्ञातुवा लाये, आस्रव,
संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध अने मोक्षमा ते दुशण थय गये। अट्ठे
के आ अधाना स्वइपनु ज्ञान तेने थय गथुं (असहिज्जे) कुतीर्थिकाना कुतर्कना
अंडवमां तेने जणित्ती महहनी अपेक्षा न रडी. (देवासुरणागजक्खरक्खसकिन्नर-
किंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाईहि देवगहेहि निग्गथाओ पावयणाओ-
अणइक्कमणिज्जे, निग्गथे पावयणे निस्सकिए) देवथी, असुरेथी, नागेथी,
यक्षेथी राक्षसेथी किन्नरेथी किंपुसेथी गरुडेथी गंधर्वेथी महोरगेथी—आ अधा
देवगणेथी ते निग्रन्थ प्रवचन पर अतीव श्रद्धाने लीये—अनतिक्रमणीय थय गये।
अट्ठे के आ जया देवगणे पणु तेने निग्रन्थ प्रवचन परधी जराये विचलित करी

गनार्थो विनिश्चितार्थः अस्थिमज्जाप्रेमानुरागरक्तः—'इदम् आयुष्मन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचनम् अर्थः, अयं परमार्थः, शेषम् अनर्थः' उच्छ्रित-स्फाटिकः अपा वृत्तद्वारः प्रीतिकरान्तःपुरगृहप्रवेशः चतुर्दशयष्ट्युष्टिष्टपौर्णमासीषु प्रतिपूर्ण

यणे णिस्संकिण्ण) ऐसा निर्ग्रन्थप्रवचन में निःशंकितगुण से युक्त हो गया (णिक्खिण्ण)अन्यमत की कांक्षा उसके चित्त में थोड़ी सी भी नहीं रही ऐसा निष्कांक्षितगुण वाला वह हो गया. (णिन्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, भहियट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिभिज्जेपेमाणुरागरत्ते) फलके प्रति संदेह उसका जाता रहा ऐसा वह निर्विचिकित्स गुण-संपन्न हो गया. इसी कारण उसने गुर्वादिकों से यथार्थ निर्ग्रन्थप्रवचन का अर्थ प्राप्त कर लिया, और इसी कारण वह पराभिप्राय के ग्रहण से अवधारित (निश्चित) अर्थतत्त्ववाला बन गया. पृष्ठार्थ हो गया. निर्णीतार्थ हो गया, अधिगतार्थ हो गया, विनिश्चितार्थ हो गया, तथा उसकी अस्थि और मज्जा ये दोनो निर्ग्रन्थ प्रवचनविषयक प्रेमरूपी रंजन द्रव्य से खूब रंग गये. अर्थात् रंग रंग में उसके निर्ग्रन्थप्रवचन का अनुराग भर गया. (अयमाउसो ! निग्गथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे, सेसं अणट्ठे, ऊसियफलिहे, अवंगुयदुवारे, चियत्तंतेउरघरत्पवेसे) हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन ही वास्तविक अर्थ से युक्त है क्योंकि यह मोक्ष का हेतु है. यही परमार्थ है क्योंकि जीवों का

शक्या नडि. ते (निग्गथे पावयणे णिस्संकिण्ण) आ प्रभाण्णे निग्रन्थ प्रवचनमां निःशंकित गुणयुक्त थछ गथे (णिक्खिण्ण) तेना मनमां षीण्ण भत भाटे लगीरे थच्छा शेष न रडी. आ प्रभाण्णे ते निष्कांक्षित गुणयुक्त थछ गथे. (णिन्वितिगिच्छे लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अहियट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिभिज्जेपेमाणुरागरत्ते) इण प्रत्ये तेना मनमां संदेह रड्यो नडि, आ प्रभाण्णे ते निर्विचिकित्स गुण संपन्न थछ गथे. अथी न तेण्णे गुरे वगेरे पासथी यथार्थ निग्रन्थ प्रवचनतो अर्थ लक्ष्णी लीधो इतो. अथी न ते पराभिप्रायना ग्रहणुथी अवधारित अर्थ तत्त्ववाणे थछ गथे, पृष्ठार्थ थछ गथे निर्णीतार्थ थछ गथे. अधिगतार्थ थछ गथे, विनिश्चितार्थ थछ गथे अने तेना अस्थि अने मज्जा अने निग्रन्थ प्रवचन विषयक प्रेमरूपी रंजन द्रव्यथी पूषण्ण रंजित थछ गया अट्ठे के तेना शरीरना आण्णुअे आण्णुमां निग्रन्थ प्रवचन प्रत्येनी प्रीति व्याप्त थछ गथ. (अयमाउसो ! निग्गथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे, सेसं अणट्ठे, ऊसियफलिहे, अवंगुयदुवारे, चियत्तंतेउरघरत्पवेसे) हे आयुष्मन् ! आ निग्रन्थ प्रवचन न वास्तविक अर्थ युक्त छे केमके अे मोक्ष भाटे हेतुइप कडेवाय छे. अेन परमार्थ छे केमके अेवोतं

पौषधं सम्प्रकृ अनुपालयन् श्रमणान् निर्ग्रन्थान् प्रासुकेषणीयेन अशनपान-
खादिम-स्वादिमेन पीठ--फलक शय्या-संस्तारेण वस्त्र--प्रतिग्रह-कम्बलपाद-
प्रोच्छनेन औषधभैषज्येन प्रतिलाभयन् बहुभिः शीघ्रव्रतगुणविरमणपौष-

प्रयोजन इसीसे सिद्ध होता है. इसके अतिरिक्त अन्यतीर्थिक कुप्रवचनदिक
कृगतिप्रापक होने से अनर्थरूप है, इस तरहसे वह अपने पुत्रादिकों को
शिक्षा देने लगा. निर्ग्रन्थप्रवचन को प्रतिपत्ति से उसका अन्तःकरण
असद्विचारों से रहित हो जाने के कारण स्फटिक की तरह निर्मल हो
गया, भिक्षुक आदिकों का भिक्षाके निमित्त गृह में प्रवेश सरलता से हो
जावे इस ख्याल से वह अपने गृहप्रवेश द्वार को मदा अर्गला से रहित
रखने लगा. अर्थात् दानादि के लिये खुले दरवाजे रखे। राजा के अन्तः
पुर में भी उसका प्रवेश शंका रहित होने से प्रीति का जनक बन गया.
अर्थात् अतिधार्मिक होने से वह परस्त्री सहोदर (भाई) बन कर रहने लग गया.
(चाउइसदृमुद्दिद्वपुणमासिणीसु पडिपुणं पोसहं सम्म अणुपालेमाणे समणे
निगंथे फामुएसणिज्जेणं असणपाणखाइम-साइमेणं पीठफलगसेज्जासंधारेणं
वत्थपडिगहकंबलपायपुच्छणेणं ओसहभैसज्जेणं पडिलाभेमाणे) चतुर्दशी,
अष्टमी, उद्दिष्ट-अभावस्था, एवं पूर्णिमा इन चार तिथियों में अहोरात्र
पौषध का पालन करता हुआ, तथा प्रासुक एषणीय-अचित्त और साधुजन
को करणीय ऐसे अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चतुर्विध आहार से,

प्रयोजन येना वडे न सिद्ध थाय छ. णाडीना णधां-अन्यतीर्थिक कुप्रवचन वगेरे
कृगति प्रापक होवा पहल अनर्थ रूप छ. आ प्रभाणे ते पोताना पुत्रो वगेरेने
उपदेश आपवा लाग्ये, निर्ग्रंथ प्रवचननी प्रतिपत्तिथी तेहं हृदय असद्व विव्वाशेथी
रहित थधं गयुं छतुं अटला भाटे स्फटिकनी नेम निर्माण थधं गयुं छतुं. भिक्षुक
वगेरे भिक्षा भाटे आवे त्यारे सरलतापूर्वक धरमां तेओ प्रवेश भेणवी शक्ये ते भाटे
ते पोताना धरतु भारणुं भुट्टु न राणवा लाग्ये। गन्तना राजभहेलमा पधु तेना
प्रवेश नि-शंकपणे थवा लाग्ये अटले छे ते अतिधार्मिक थधं गये छतो अंधी ते
परस्त्री सहोदर अनीने रहेवा लाग्ये। (चाउइसदृ, मुद्दिद्वपुणमासिणीसु पडि-
पुणं पोसहं सम्म अणुपालेमाणे समणे- निगंथे फामुएसणिज्जेणं
असणपाणखाइमसाइमेणं पीठफलगसेज्जासंधारेण वत्थपरिगह
कंबलपायपुच्छणेण ओसहभैसज्जेण पडिलाभेमाणे)
चतुर्दशी अष्टमी, उद्दिष्ट अभावस्था अने पूर्णिमा ये आरेया निधिओना दि-
अहोरात्र सुधी पौषधनु पालन करतो छतो तेमन प्रासुक एषणीय अचित्त
साधुजन भाटे करणीय येवा अशन, पान, आदिम, स्वादिमइय चतुर्विध आहार

धोपयासैः आत्मानं भावयन् यानि तत्र राजकार्याणि च यावत् राजव्यवहाराश्च
तानि जितशत्रुणा राज्ञा सार्द्धं स्वयमेव प्रत्युत्पेक्षमाणः प्रत्युत्पेक्षमाणो
विरहति ॥ सू० ११३ ॥

टीका—‘तण्णं से’ इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः सारथिःश्रमणोपासको जातः सन् अभिगत-जीवा-
जीवः-अभिगतौ=सम्यक् अवगतौ=ज्ञातौ जीवाजीवौ=जीवतस्वम् अजीवतस्व-
च येन स तथा-जीवतस्वाजीवतस्वविषयकसकलज्ञानसम्पन्नः, उपलब्धपुण्य-

पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक से, वस्त्र पात्र कम्बल, पादप्रोच्छन, से,
(घरण को साफ करने का वस्त्रविशेष) एवं औषध भैषज्य से श्रमण
निग्रन्थों को प्रतिलाभित करता हुआ (बहूहिं सीलव्ययगुणवेरमण
पोसहोववासेहिं य अप्पाणं भावेमाणे जाहं तत्थ राजकज्जाणि य
जाव राजववहाराणि य ताहं जियसत्तुणा रण्णा सद्धिं सयमेव पच्चुवे
क्खमाणेर विहरइ) एवं अनेक शीलव्रतों, गुणव्रतों, मिथ्यात्व से निर्वर्तन,
मर्यादुघान और पौषधों से आत्मा को भावित करता हुआ वह जितने
भी उस भावस्ती नगरी में राजकार्य थे यावत् जितने वहाँ राजव्यवहार थे
उन सब का जितशत्रु राजा के साथ वारंवार अवलोकन करता हुआ रहने लगा।

टीकार्थ—गृहिधर्म के पालन करने से वह चित्र सारथि श्रमणोपासक
बन गया जीव-अजीव तस्व विषयक सकलज्ञान से वह सम्पन्न हो गया।

पीठ इलक, शय्या संस्तारकथी वस्त्र पात्र, कंभल, पाद प्रोच्छनथी अने औषध भैषज्यथी
श्रमण्य निग्रन्थोने प्रतिलाभित करतो (बहूहिं सीलव्ययगुणवेरमणपोसहोव-
वासेहिं य अप्पाणं भावेमाणे जाहं तत्थ राजकज्जाणि य जाव राजवव-
हाराणि य ताहं जियसत्तुणा रण्णा सद्धिं सयमेव पच्चुवेक्खमाणेर विहरइ)
अने अनेक शीलव्रतो, गुणव्रतो, मिथ्यात्वथी निवर्तन, प्रत्याख्यात अने पौषधावडे
पोताना आत्माने भावित करतो ते भावस्ती नगरीना सर्व राजकार्योत्तु संख्यालन
करतो जितशत्रु राजानी साथे रहने वारंवार राज्यकार्योत्तु अवलोकन करतो पोताना
दिवसे पसार करवा लाये।

टीकार्थ—गृहिधर्मना पालनथी ते चित्रसारथि श्रमणोपासक थछ गये। एव,
एव तस्व विषयक सकल ज्ञानथी ते सम्पन्न थछ गये। पुण्य अने पापना यथा-

पापः-उपलब्धे=याथातथ्येन विज्ञाते पुण्यपापे=पुण्यलक्षणं पापलक्षणं च येन स तथा-पुण्यपापयोः यथावस्थितस्वरूपज्ञायकः, तथा-आस्रवसंवर-निर्जरा क्रियाऽधिकरणबन्धमोक्षकुशलः-तत्र-आस्रवः=प्राणातिपातादिः, संवरः=प्राणातिपातविरमणादिः, निर्जरा=कर्मणां देशतो निर्जरणं, क्रिया=कायि-वयादिरूपा, अधिकरणम्, खडादिकम्, बन्धः=कर्मपुद्गलजीवप्रदेशयोः दुग्ध-जलवत् एकीभावः, मोक्षः=जीवप्रदेशेभ्यः सर्वात्मना कर्मणामपगमनम्, एते षामितरेतरयोगद्वन्द्वः, तेषु कुशलः=चतुरः-आस्रवादिस्वरूपाभिज्ञ-इत्यर्थः, तथा-भसाहाय्यः=नास्ति साहाय्यं=सहायता यस्य स तथा-कुतीर्थिककृतक-खण्डने परसाहायानपेक्ष इति भावः, तथा-देवानुरनागयक्षराक्षमकिन्नर-किम्पुरुषगरुडगन्धर्वमहोरगादिभिः=तत्र-देवाः=वैमानिकाः, असुराः=असुर-कुमाराः, नागाः=नागकुमाराः असुरा नागाः, इमे उभये भवनपतयः, यक्षाः,

पुण्य और पाप के यथावस्थित स्वरूप का वह ज्ञाता ही गया, तथा प्राणाति पातादिरूप आस्रव, प्राणातिपातादिविरमणरूप संवर, कर्मों का एकदेश से क्षय होनेरूप निर्जरा, कायिकी आदिरूप क्रिया खडादिरूप अधिकरण, दुग्धजल की तरह कर्मपुद्गलों का और जीवप्रदेशों का एक क्षेत्रावगाहरूप बंध, जीवप्रदेशों से सर्वात्मना कर्मों का अपगमरूप मोक्ष इन सब में वह चतुर बन गया, अर्थात् जीव आदि के स्वरूप का वह अभिज्ञ हो गया, कुतीर्थिकजनों के कृतक खण्डन में वह किमी की भी सहायता नहीं लेता ऐसा समझदार हो गया, तथा जिनप्रवचन के प्रति उसकी ऐसी अगाध श्रद्धा बढ़ गई कि जिससे वह देव, असुर, नाग, यक्ष राक्षम, किन्नर, किम्पुरुष आदिकों द्वारा भी उससे किञ्चित् भी चलायमान नहीं किया जासका. वैमानिक देव यहां देवपद से, असुरकुमार जाति के भवनपति असुरकुमारपद

वस्थित स्वउपने ते नल्लुवा लाग्ये तेमन् प्र.णातिपात वगेरे आस्रव, प्राणाति-पातादि विरमणुइप संवर, कर्मोना अेकदेशथी क्षय थवा इप निर्जरा, कायिकी वगेरे इप क्रिया अडुग वगेरे इप अधिकरण, दुग्धजलनी नेम कर्मपुद्गलोनु अने एव प्रदेशोनु अेकक्षेत्रावगाहनइप बंध, एव प्रदेशोनी सर्वात्मना कर्मोनु अपगमनइप मोक्ष आ अधामां ते अतुर इतो अेटले के आस्रव वगेरेना स्वउपने ते नल्लुकार थर्ष गथे इतो ते अयेो अतुर धर्ष गथे इतो के कुतीर्थिणानु कुतर्षणंउनमां ते टाडनी पणु महड लेतो नहुतो तेमन् जिनप्रवचन प्रत्ये तेना भनमा अेवी अगाध श्रद्धा लागी गध इती के नेथी ते देव, असुर, नाग यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष वगेरे वडे ते लग्ये विथलित करी श्छाय तेम नहोतो. वैमानिक देव अेदी देवपदथी, असुरकुमार जातिना भवनपति असुरकुमार पदथी, नागकुमार जातिना भवन

राक्षसाः, किन्नराः किम्पुरुषाः, एते चत्वारोऽव्यन्तरविशेषाः, गरुडाः=गरुड-
 ध्वजाः सुपर्णकुमाराः भवनपतिविशेषाः, गन्धर्वा महोरगाश्च व्यन्तरविशेषाः,
 तत्प्रभृतिभिरपि देवगणैः निर्ग्रन्थात् प्रवचनान्त अनतिक्रमणीयः=अचालनीयः
 निर्ग्रन्धप्रवचनात्तं चालयितुं देवादयोऽसमर्था इति भावः । तथा-निर्ग्रन्धे
 प्रवचने निःशक्तिः=अन्यदर्शनापेक्षया श्रेष्ठमिदं न वेति शङ्कारहितः, अत
 एव-निष्काङ्क्षितः=काङ्क्षारहितः-परमतकाङ्क्षारहितः निर्विचिकित्सः-फलं
 प्रति सन्देहरहितः, अत एव-लब्धार्थः-लब्धः=मासः अर्थो गुर्वादीनां सका-
 शाद् येन स तथा-उपलब्धपदार्थ इत्यर्थः, गृहीतार्थः- हीतः=स्वीकृतोऽर्थो
 येन स तथा-पराभिप्रायग्रहणतोऽवधारितार्थतत्त्व इत्यर्थः, पृष्ठार्थः-पृष्ठोऽर्थो

से, नागकुमार जाति के भवनपति देव नाग शब्द से, तथा यक्ष, राक्षस,
 किन्नर, एवं किंपुरुष इन पदों से व्यन्तर जाति के इस २ नामके देव-
 गृहीत हुए हैं। गरुड शब्द से गरुडध्वजवाले सुपर्णकुमार जो कि भवन-
 पति जाति के देव विशेष हैं। गृहीत हुए हैं। गन्धर्व और महोरग ये
 व्यन्तरविशेष हैं। उसके मनमें ऐसी संका कि यह निर्ग्रन्धप्रवचन अन्य
 दर्शनों की अपेक्षा श्रेष्ठ है की नहीं है ककी नहीं उत्पन्न हुई इसलिये
 यह उसके प्रति निःशक्ति था. परमत की कांक्षा का अभाव इसके चित्त
 में सर्वथा हो गया था-इसलिये यह निष्काङ्क्षित था, फल के प्रति सन्देह
 से यह रहित था. इसलिये निर्विचिकित्स था. इसी कारण इसने गुर्वादिकों
 के पास से प्रवचनगदित अर्थ को अच्छी तरह से जान लिया था. इसलिये
 यह लब्धार्थ था, उसे अच्छी तरह से स्वीकार कर लिया था. इसलिये
 ये गृहीतार्थ था. संदेहयुक्त स्थल में परस्पर प्रश्न करने से वह अर्थ

पतिदेव नाग शब्दार्थी तेभ्यो यक्ष, राक्षस, किन्नर अने किंपुरुष आ पदोर्थी व्यन्तर
 जातिना देवोत्तं श्रेष्ठं यथुं छे. गरुड शब्दार्थी गरुडध्वजवाणा सुपर्णकुमार-के जेभ्यो
 भवनपति जातिना देव विशेष छे तेत्तं श्रेष्ठं यथुं छे गन्धर्व अने महोरग अने अने
 व्यन्तरविशेष छे. ते चित्रसारथिना मनमां निर्ग्रन्ध प्रवचनने लभने अथी श्रेष्ठं
 हिवसे शका उत्पन्न यथ नहोती के आ निर्ग्रन्ध प्रवचन नीज दर्शने कर्तां श्रेष्ठं
 छे के केम ? अथी ते ते प्रति निःशक्ति छतो. परमत प्रत्ये तेना मनमां लगीरे
 कांक्षा उत्पन्न यथ नहोती अथी ते निष्काङ्क्षित छतो इण प्रत्ये ते सन्देह रहित छतो.
 अथी ते निर्विचिकित्स छतो. तेभ्यो शुरु वगेरे पांसोर्थी प्रवचन वगेरे अर्थने सारी
 येठे लक्ष्मी लीधां छतां. अथी ते लब्धार्थ छतो. ते अर्थने तेभ्यो सारी येठे स्वीकार
 करी लीधां छते. अथी ते गृहीतार्थ छतो. सांशयिक स्थल विषे परस्पर प्रश्नो कर-

येन स तथा-सांशयिकस्थले परस्परं प्रश्नकरणेन निर्णीतार्थः, अधिगतार्थः-
 अधिगतः=सर्वथा उपलब्धः अर्थो येन स तथा-सर्वप्रकारेणोपलब्धार्थः, अत
 एव-विनिश्चितार्थः-वि=विशेषेण निश्चितः=निर्णीतोऽर्थो येन स तथा-ज्ञात-
 वास्तविकार्थ इत्यर्थः, क्षमा-अस्थिमज्जाप्रेमानुरागरक्तः-अस्थिमज्जे मसिद्धे
 ते प्रेमानुरागेण-निर्ग्रन्थप्रवचनविषयकं यत् प्रेम तद्रूपो योऽनुरागो=रञ्जन-
 द्रव्यं तेन रक्ते इव रक्ते यस्य स तथाभूतः सन् "हे आयुष्मन् ! इदं
 निर्ग्रन्थं प्रवचनमेव अर्थ=वास्तविकार्थयुक्तः-मोक्षहेतुत्वात्, शेषम्=इतो
 भिन्नम् अन्यतीर्थिकुप्रभावनादिरुम् अनर्थः-कुगतिप्रापकत्वात्"-इत्येव
 पुत्रादिरुमनुशासत्, तथा उच्छ्रितस्फाटिकः-स्फटिकमिव स्फाटिकम् अन्तः
 करणम्, उच्छ्रितम्=उद्गतस्फाटिक यस्य स तथा-निर्ग्रन्थप्रवचन
 प्रतिपत्त्या, असद्विचारशून्यत्वात्स्फटिकवन्निर्मलान्तःकरण इत्यर्थः, अथवा-
 'उच्छ्रितपरिघः' इति छाया, एतत्पक्षेः उच्छ्रितः=तत्स्थानादपनीय ऊर्ध्वी

का निर्णेता बन गया था, इसलिये पृष्ठार्थ था, सर्वप्रकार से अर्थ का
 ग्रहण करने वाला बन गया था, इसलिये ये लब्धार्थ था, वास्तविक अर्थका
 ज्ञाता बन गया था, इसलिये ये विनिश्चयार्थ था, निर्ग्रन्थप्रवचनविषयक प्रेम-
 उसकी रोमर में समा गया था, इसलिये ये अस्थिमज्जाप्रेमानुराग रक्त था, वह
 अपने पुत्र पौत्रादिकों से यही कहता था कि हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ
 प्रवचन ही मोक्ष हेतु होने से वास्तविक अर्थ से युक्त है अन्य कुवादियाँ के
 प्रवचन ऐसे नहीं हैं क्यों कि वे दुर्गति के प्राप्त कराने वाले हैं, निर्ग्रन्थप्रवचन
 की प्रतिपत्ति से उसका हृदय स्फटिकमणि के जैसा निर्मल हो गया था
 'उसीयफलिहे' की छाया जब 'उच्छ्रितपरिघः' ऐसी की जाती है तब
 इसका अर्थ ऐसा होता है कि इसने घरके द्वार के किवाड़ों में,
 बाथी ते अर्थने निरुता भनी गयो हतो अर्थी ते पृष्ठार्थ हतो, ते सर्व रीते
 अर्थने अलुषु करनार भनी गयो हतो, अर्थी ते लब्धार्थ हतो, ते वास्तविक अर्थने
 ज्ञाता थछ गयो हतो अर्थी ते विनिश्चयार्थ हतो, निर्ग्रन्थ प्रवचन विषयक प्रेम
 तेना अलुषु अलुमा रमी गयो हतो, अर्थी ते अस्थिमज्जाप्रेमानुरागी हतो, ते
 पोताना पुत्र पौत्र वगेरेने आ प्रमले व डहेतो हतो हे हे आयुष्मन् ! आ
 निर्ग्रन्थ प्रवचन व मोक्षना हेतु होवा भदल वास्तविक अर्थधी युक्त छ भिन्न कुवादि-
 ओना प्रवचने आवा नथी, डारणुके ते कुगति तरङ्ग होरनारा छे, निर्ग्रन्थ प्रवचननी
 प्रतिपत्तिधी तेतुं हृदय स्फटिकमणि नेम निर्मल थछ गयुं हतुं, 'उसीयफलिहे'
 नी छाया न्यारे 'उच्छ्रितपरिघः', आ प्रमले करवाभां आवे छे त्यारे तेने अर्थ
 आ प्रमले होय छे हे तेले गृहप्रवेशद्वारना डमारोभां अर्गला भूडवाना स्थाननी

कृतो न तु तिरश्चीनः कृतः परिघः=अर्गला येन स तथा
 'भिक्षुकादीनां सौकर्येण भिक्षार्थं गृहे प्रवेशो भवतु इति हेतोः कपाट-
 पश्चाद्भागादपनीतागर्गल इत्यर्थः । अथवा-उच्छिन्नः=अपगतः परिघः=अर्गला
 गृहद्वारे यस्यासौ तथा-औदार्याधिक्यादतिशयदानदातृत्वाद् भिक्षुकप्रवेशार्थ-
 मनर्गलितगृहद्वार इत्यर्थः । एतावदेव न किन्तु अप्रावृतद्वारः=भिक्षुकादि-
 प्रवेशार्थं कपाटानामपि पश्चात्करणात् सर्वथा समुद्राटितद्वारइत्यर्थः । यद्वा-
 सम्यग्दर्शनलाभे सति कुतश्चिदपि पाखण्डिकाद् भयाभावेन शोभनमार्गपरि-
 ग्रहेण च सर्वदा समुद्राटिनशिरास्निष्ठतोति भावः, तथा-पीत्रिकान्तःपुरः

अर्गला को उसके रखने के स्थान से ऊपर कर दिया था, तिरछा नहीं किया
 था. अर्थात् प्रवेशद्वार के किवाड़ों में इसने अर्गला नहीं लगाई किन्तु वह
 ऊँची ही रही सो उसका कारण यह था भिक्षुक आदि जनों का प्रवेश
 घर में भिक्षा के निमित्त सरलता पूर्वक होता रहे। अथवा उच्छिन्न शब्द
 का अर्थ 'इसने अर्गला बिलकुल नहीं लगाई' ऐसा भी होता है क्यों
 कि यह उदारता वाला था, तथा अतिशय दान देने वाला था. इसलिये भिक्षुका-
 दिकों के प्रवेश के लिये इसने अपने घर-के द्वार को अर्गला से
 रहित ही कर दिया था उतना ही नहीं किन्तु उसने गृह द्वारके
 कपाटों को खुलाकर दिया इसीलिये वह 'अप्रावृतद्वारः' ऐसा कहा है
 अर्थात् वह सर्वथा समुद्राटित द्वार वाला प्रकट किया है। अर्थात् दान पुण्य-
 के लिये उनके घरके द्वार सदा खुले थे यद्वा--सम्यग्दर्शन के
 लाभ होने पर किसी भी पाखण्डिक से उसे भय नहीं था सो इससे

उपरञ्च राभी. त्रांसी भूडी न हुती अेटवे डे प्रवेशद्वारना कमाडोमां तेणे
 सांकेण लगाडी न हुती पणु तेने उंची न राभी हुती अेनी पाछण आ डेतु छे
 डे भिक्षुक वगेरे भिक्षा माटे आवे त्यारे सहेलाधथी घरमां प्रवेशी शके.
 अथवा उच्छिन्न शब्दनेो अर्थ आ प्रमाणे पणु थाय छे डे तेणे
 अर्गला लगाडी न नहोती. ते उदार, तेमञ्च अतिशय दानदाता हुतो अेथी भिक्षुक
 वगेरेना प्रवेश माटे पोताना घरने तेणे अर्गला वगर न राभ्युं हुतुं. आ
 प्रमाणे अर्थ करतां आपणे अेम कडी शक्तीअे डे तेणे अर्गलाने तेना
 स्थान परथी उंची पणु नहोती करी. अेटला माटे 'अप्रावृतद्वारः' पदथी
 सूत्रधारे तेने सर्वथा समुद्राटितद्वारवाणे प्रकट कर्यो छे. अने सम्यग् दर्शनना लाभ
 धी हुवे डोड पणु पाखण्डिकथी ते लयलीत नहोते थते: अेथी अने शोभनमार्गना

गृहप्रवेशः=प्रीतिकरः प्रीत्युत्पादकः अन्तःपुरगृहे=राज्ञोऽन्तःपुरे प्रवेशो=ग्रम्य
 स तथा, प्रीतिकरोऽतिधार्मिकतया सर्वत्रानाशङ्कनीय इति भावः, तथा-
 चतुर्दश्याष्टम्युद्दिष्टौर्णमासीषु तत्र-चतुर्दश्याष्टमीपौर्णमास्यः प्रसिद्धाः, 'उद्दिष्टम्
 इत्यमावास्या, एतासु चतसृष्वपि तिथिषु प्रतिपूर्णं=सकलम्-अहोरात्र पौषधं
 सम्यक् अनुपालयन्, तथा-प्रासुकैपणीयेन=अचित्तेन साधुजनकल्पनीयेन च
 अशनपानखादिमस्वादिमेन=अशनादिचतुर्विधेनादारेण पीठफलकशय्यासंस्तार-
 केण, वस्त्रप्रतिग्रहकम्बलपादप्रोच्छनेन-तत्र-वस्त्रं=वसनं, प्रतिग्रहः=भक्त-
 पानादिपात्रं, कम्बलः-प्रसिद्धः, पादप्रोच्छनं=पादप्रोच्छनार्थं वस्त्रम्, एतेषां
 समाहारः, तेन, तथा-औषधभैषज्येन=औषधम्=एकद्रव्यनिष्पादितं, भैषज्यम्=
 अनेकद्रव्यनिष्पादितम्, उभयोः समाहारस्तेन च श्रमणान् निर्ग्रन्थान्
 प्रतिलम्भयन् प्रतिलम्भयन्, तथा-बहुभिः=अनेकसंख्यकैः शीलव्रतगुण-
 विरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासैः तत्र-शीलव्रतानि=स्थूलप्राणातिपातविरमणा-

और शोभनमार्ग के परिग्रह से वह सर्वदा समुद्घाटित शिरवाला बना रहता
 था अर्थात् मन्थर्माभिमान वाला है-तथा वह प्रीतिकरान्तःपुरगृहप्रवेश वाला था,
 अर्थात् राजा के अन्तःपुररूप घर में इसका प्रवेश प्रीत्युत्पादक था अर्थात्
 यह अतिधार्मिक था इसलिये प्रीतिकर सर्वत्र अनाशङ्कनीय था तथा
 चतुर्दशी अष्टमी अमावास्या और पूर्णिमा इन चारों पर्वतिथियों
 में यह अहोरात्र का पौषध करता था प्रासुकैपणीय-
 अचित्त-एवं साधुजन कल्पनीय ऐसे अशनपान आदिरूप चार प्रकार के
 आहार से, पीठ, फलक, शय्या एवं संस्तारक से, वस्त्र, प्रतिग्रह—
 भक्तपानादिपात्र, कम्बल, एवं पादप्रोच्छनार्थ वस्त्र से, एकद्रव्यनिष्पादित
 औषध से तथा अनेक द्रव्य निष्पादित भैषज्य से यह श्रमणनिर्ग्रन्थों को
 प्रतिलाभित करता था, इस तरह अनेकसंख्यक शीलव्रतों से-स्थूलप्राणा-
 तिपातविरमण आदिकों से, दिग्ब्रत आदिरूप गुणव्रतों से, मिथ्यात्व-

परिग्रहधी ने सर्वदा समुद्घाटित शिरवाला बंधने रहतेो हुतो. ते प्रीतिकरान्त
 पुरगृहप्रवेशवाणेो हुतो. अेटवे के राजना रणवासमां तेने प्रवेश प्रीत्युत्पादक
 हुतो अेटवे के ते अतिधार्मिक हुतो अेथी प्रीतिकर अने सर्वत्र अनाशङ्कनीय हुतो.
 चतुर्दशी वगेरे आरे आर पर्वतिथिओमां ते अहोरात्र पौषध करतो हुतो प्रासुक
 अेषणीय अचित्त अने साधुजन कल्पनीय अेवा अशनपान वगेरे इय आर प्रकारना
 आहारथी पीठ, फलक, शय्या. अने संस्तारकथी वस्त्र, प्रतिग्रह-लक्षतपान वगेरे पात्र,
 कंभल अने पादप्रोच्छनार्थ वस्त्रथी अेक द्रव्य निष्पादित औषधथी ते श्रमण
 निर्ग्रन्थाने प्रतिलाभित करतो हुतो आ प्रभाणे धरुं शीलव्रतोधी-स्थूल प्राणातिपात
 विरमण वगेरेधी, दिग्ब्रति वगेरे शुद्धव्रतोधी, मिथ्यात्व निवर्तनरूप विरमणधी,

दीनि पञ्च, गुणाः=गुणव्रतानि-दिग्रतादीनि, विरमणं=मिथ्यात्वा-निवर्त्तनम्, प्रत्याख्यानं=पर्वदिनेषु हरितकायादीनां परित्यागः, पौषधोपवासः=चतुर्दश्यादिपर्वतिथिषु आहारत्यागः, एषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, तैश्च आत्मानं भावयन्=वासयन्, यानि तत्र=श्रावस्त्यां नगर्यां राजकार्याणि च यावद् राजव्यवहाराश्च तानि सर्वाणि जितशत्रुणा राज्ञा स्मार्द्धं स्वयमेव प्रत्युपेक्षमाणः प्रत्युपेक्षमाणः=मुहुर्मुहुर्बलाकयन् विहरात् ॥सू० ११३॥

मूलम्—तएणं से जियसत्तु राया अणण्या कयाइ महत्थं जाव

पाहुडं सज्जेइ, सज्जित्ता चित्तं सारहि सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी गच्छहि णं तुमं चित्ता ! मेयं वियानयरिं, पएा सस्स रन्नो इमं महत्थं जाव पाहुडं उवणेहि, मम पाउग्गहणं जहा भणियं अवितहमसं-दिद्धं वयणं विन्नवेहित्तिकट्टु विसज्जिए । तएणं से चित्ते सारहा जियसत्तुणा रन्ना विसज्जिए समाणे त महत्थं जाव गिण्हइ, जिय-सत्तुस्स रण्णो अंतियोओ पडिणिकखमइ, सावत्थीए नयरीए मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे, तेणेव उवाग-च्छइ, तं महत्थं जाव ठवेइ, ण्हाए जाव सरीरे सकोरिटमल्लदामेणं छत्तणं धरिज्जमाणेणं महया भडचडगरविदपरिक्खित्ते पायचारविहारेण महया पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ते रायमग्गमोगाढाओ आवासाओ निग्गच्छइ, सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झे णं निग्गच्छइ, जेणेव कोट्टुए

निवर्त्तनरूप विरमण से, पर्वदिनों में हरितकायादिकों के परित्याग से, चतुर्दश्यादिपर्वतिथियों में, आहारत्याग से आत्मा को वासित करता हुआ वह श्रावस्ती नगरी में जितने भी राजकार्य थे यावत्-राजव्यवहार थे उन सब का जितशत्रु राजा के साथ स्वतः बार बार निरीक्षण करता हुआ रहने लगा । सू० ११३

पर्वना द्विसोभां हरितकाय वगेरेनां परित्यागथी, चतुर्दशी वगेरे तिथिओभां आहार त्यागथी आत्माने वासित करतो, ते श्रावस्ती नगरीमां नेटला राजकार्यो हुतां यावत् राजव्यवहार हुता ते सर्वन्तु जितशत्रु राजनी साथे पोते बारंवार निरीक्षण करतो रहेवा लाग्यो. ॥सू० ११३॥

चेइए जेणैव केसीकुमारसमणे तेणैव उवागच्छइ, केसिकुमारसमणस्स
 अंतए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्टु जाव उट्टाए जाव एवं वयासी-
 एवं खलु अ भंते ! जियसत्तुणा पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव
 उवणेहि त्ति कट्टु विसज्जिए, तं गच्छामि णं अह भंते ! सेयंविंयं
 नयरि ! पासादीया णं भंते ! सेयंविंया णयरी, एवं दरिसणिज्जा
 णं भंते ! सेयंविंया णयरी, अभिरूवा णं भंते ! सेयंविंया णयरी
 पडिरूवा णं भंते ! सेयंविंया णयरी, समोसरह णं भंते ! तुब्भे
 सेयंविंयं णयरि ॥सू० ११४॥

छाया—ततः खलु स जिनशत्रु राजा अन्यदा कदाचित् महार्थं यावत्
 प्राभृतं सज्जयति, चित्रं सारथि शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत् गच्छ
 खलु त्वं चित्र ! श्वेतविक्रां नगरीम्, प्रदेशिनो राज्ञ इदं महार्थं यावत्
 प्राभृतम् उपनय, मम पादग्रहणं यथा भणितम् अवितथम् असन्दिग्धम्, वचनं

‘तएणं से जियसत्तू राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं से) इसके बाद उस (जियसत्तू राया) जिनशत्रु राजाने
 (अन्नया कयाइ) किसी एक समय (महत्थं जाव पाहुडं सज्जेइ) महाप्र-
 योजनसाधक यावत् प्राभृत को सजाया, (सज्जिता चित्तं सारथिं सदावेइ)
 सजाकर फिर उसने चित्र सारथि को बुलाया. (सदावित्ता एव वयासी)
 बुलाकर उससे ऐसा कहा—(गच्छहि णं तुमंचित्ता । सेयंविंयानयरिं पए
 पसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव पाहुडं उवणेहि) हे चित्र ! तुम जाओ और
 श्वेतांबिका नगरी में प्रदेशी राजा के पास इस महाप्रयोजन साधक यावत्

‘त एणं से जियसत्तूरिया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एणं से) त्पार पछी ते (जियसत्तू राया) जिनशत्रु राजाने (अन्नया
 कयाइ) को थोड़ा थोड़ा वधते (महत्थं जाव पाहुडं सज्जेइ) महाप्रयोजन साधक
 यावत् लेट (प्राभृत) तैयार करी. (सज्जिता चित्तं सारथिं सदावेइ) तैयार करीने
 तेले चित्र सारथीने बोलाव्ये। (सदावित्ता एव, वयामी) बोलाव्येने तेले आ प्रभावे इत्थं
 (गच्छहि णं तुमंचित्ता ! सेयंविंया नयरिं पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव
 पाहुडं उवणेहि) हे चित्र ! तबे श्वेतविक्रां नगरीमें प्रदेशी राजाने पास आ

विज्ञापयेति कृत्वा विसर्जितः । ततः खलु स चित्रः सारथिर्जितशत्रुणा राज्ञा विसर्जितः सन् तत् महार्थं यावद् गृह्णाति, जितशत्रो राज्ञोऽन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति, श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन निगच्छति, यत्रैव राजमार्ग-मवगाढ आवासः, तत्रैव उवागच्छति, तन्महार्थं यावत् स्थापयति, स्नातो यावच्छरीरः सकोरण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन महाभटचटकरवृन्दपरि-श्लिप्तः पादचारविहारेण महापुरुषवागुरापरिक्षिप्तो राजमार्गमवगाढान् आवा

प्राभृत को ले जाओ (मम पाउग्गहणं जहा भणियं अविनथमसंदिद्धं वयणं विन्नवेहि त्तिकट्टु विसज्जिए) और उनसे मेरा प्रणाम कहो, तथा मेरी और से यथोक्त अविनथ असंदिग्ध वचन कइो, इस प्रकार कइ कर उसे विसर्जित कर दिया. (तएणं से चित्तो सारही जियसहुणा रणा विसज्जिए समाणे तं महत्थं जाव गिण्हइ-जियसत्तुस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ) इसके बाद जितशत्रु राजा द्वारा विमर्जित किये गये चित्र सारथि ने उस महाप्रयोजन साधक यावत् प्राभृत को उठा लिया और जितशत्रु राजा के पास से चला आया. (सावत्थीए नयरीए मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ) एवं श्रावस्ती नगरी के ठीक बीचों बीच के मार्ग से होकर निकला (जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ) निकलकर वह जहां राजमार्ग पर स्थित आवासस्थान था, वहां पर आया (तं महत्थं जाव ठवेइ) वहां आकरके उसने उस प्राभृत को एक ओर रख दिया. (ण्हाए जाव सरीरे सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भटचट्टगरविंद-

महाप्रयोजन साधक यावत् लेट लई लब्धो. (मम पाउग्गहणं जहा भणियं अवि तहमसंदिद्धं वयणं विन्नवेहित्तिकट्टु विसज्जिए) अने तेभने भारा प्रणाम कइथे। अने भारवती यथोक्त अविनथ असंदिग्ध वचन कइथे। (त्तिकट्टु विसज्जिए) आ प्रभाणे कइीने तेने त्यांथी ज्वानी आज्ञा करी. (तएणं से चित्तो सारही जिय सत्तुणा रणा विसज्जिए समाणे तं महत्थं जाव गिण्हइ जियसत्तुस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ) त्थारपणी जितशत्रु राजा पासैथी आज्ञापित थइने ते चित्र सारथीअे ते महाप्रयोजन साधक यावत् लेटने लई लीधी अने जितशत्रु राजा पासैथी आवतो रह्यो (सावत्थीए नयरीए मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ) अने श्रावस्ती नगरीना अशेअर मध्यमार्गथी थइने (जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ) ते ज्थां राजमार्ग पर पोताहुं निवासस्थान हुतुं त्यां आव्यो. (तं महत्थं जाव ठवेइ) त्यां आवीने तेणे ते लेटने अेक तरइ भूकी दीधी. (ण्हाए जाव सरीरे सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया महया

सात् निर्गच्छति, श्रावस्त्या नगर्या मध्य मध्येन निर्गच्छति
 यत्रैव कोष्ठक चैत्यं यत्रैव केशी कुमारश्रमणः तत्रैव
 उपागच्छति, केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा हृष्ट यावत् उत्थया
 यावदेवमवादीत्—एवं खलु अह भदन्त ! जितशत्रुणा राज्ञा प्रदेशिने राज्ञे

परिक्लिप्ते पायचारविहारेण महया पुरमवगुरायपरिक्लिप्ते रायमगमोगाढाओ
 आवासाओ निर्गच्छइ) स्नान क्रिया यावत् बहुमूल्यवेश एवं अलम्भावाले
 आभूषणो से अपने शरीर को अलंकृत किया. पश्चात् छत्रधारी द्वारा ताने
 गये एवं कोरंटपुष्पो की माश से विभूषित ऐसे छत्र से युक्त हुआ वह
 चित्र सारथि विशाल भटों के विस्तृत समूह से युक्त होकर उस राजमार्ग
 स्थित आवास से पैदल ही निकला साथ में विशाल जनमेदिनी भी थी
 (सावस्थीए नयरीए मज्झ मज्झेण निर्गच्छइ) इन सब से धिरा वह चित्र
 सारथि श्रावस्ती नगरीके बीचो बीच मार्ग से होकर चला (जेणेव कोट्टए
 चेइए जेणेव केशिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ) चलतेर वह वहां पहुंचा जहां
 कोष्ठक चैत्य और उसमें भी जहां केशिकुमारश्रमण थे (केशिकुमार-
 समणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्टुट्ट जाव उट्टाए एवं वयासी
 वहां पहुंचकर उसने केशिकुमार श्रमण से धर्मका उपदेश सुना और उसे
 हृदय में धारण किया सुनकर और हृदय में धारण कर वह आनंद से
 मफुल्लित बन गया, और संतुष्ट चित्त हो गया यावत् उसका हृदय प्रमोद से

भडवडगरविदपरिक्लिप्ते पायचारविहारेण महया पुरिस वगुरायपरिक्लिप्ते
 रायमगमोगाढाओ आवासाओ निर्गच्छइ) स्नान कथुं यावत् णडु किंमतवाणा अने
 अल्पसारवाणां आभूषणो वडे तेणु पोताना शरीरने अलंकृत कथुं. त्थारपछी कोरंट
 पुष्प वडे शोभतुं छत्र छत्रधारीणो वडे तेना उपर ताणुवाभा आवुं. आ प्रभाणु ते
 चित्र सारथि विशाण लटोना समुदायथी परिवेष्टित थाने ते राजमार्गपर स्थित
 आवास स्थानथी पगपाणा व रवाना थयो. तेनी साथे विशाण मानवसमूह पद्यु इतो.
 (सावस्थीए नयरीए मज्झ मज्झेण निर्गच्छइ) आ सर्वथी वीटणाथेत्ते ते
 सारथि श्रावस्ती नगरीना मध्यमार्ग पर धंने नीकण्यो. (जेणेव कोट्टए चेइए
 जेणेव केशिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ) नीकणाने ते न्या ठांठ चैत्य
 इतु अने तेमा पद्यु न्या केशिकुमार श्रमणु इता त्यां पहाण्यो (केशिकुमार-
 समणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्टुट्ट जाव उट्टाए जाव एवं वयासी)
 त्या पहाण्योने तेणु केशिकुमार श्रमणु पासैवा धर्मोपदेशं कालण्यो अने तेने इत्थं
 धारणु कथो. धर्मोपदेशं कालणीने अने हृदयमा धारणु नीने ते आनंदविलसं थुं
 गयो अने संतुष्ट चित्तणो धं गये. यावत् संतु हृदय प्रसन्नतायां उभयं

इदं महार्थं यावत् उपनय इति कृत्वा विसर्जितः तद् गच्छामि खलु अहं भदन्त ! श्वेतविकां नगरीम् । प्रासादीया खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी एवं दर्शनीया खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी, अभिरूपा खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी, प्रतिरूपा खलु भदन्त ! श्वेतविका नगरी, ममवसरत खलु भदन्त ! यूयं श्वेतविकां नगरीम् ॥मू० ११४॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि—

ततः खलु स जितशत्रू राजा अन्यदा कदाचित् महार्थं यावत्—यावत्पदेन ‘महार्थं महाहं विपुलं राजार्हम्’ इति संग्रहते अर्थस्त्वेपां पूर्ववद्

भक्त होकर उछलने लगा यावत् वह स्वतः उठा और उठकर यावत् उसने इस प्रकार कहा—(एवं खलु अहं भंते ! जियसत्तुणा पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव उवणेहि त्ति कट्टु विसज्जिए तं गच्छामि णं अहं भंते ! सेयं वियं नयरिं) हे भदन्त ! मुझे जितशत्रु राजाने ‘प्रदेशी राजा के पास हे चित्र ! तुम इस महाप्रयोजन साधक यावत् प्राप्त को ले जाओ’ ऐसा कह कर विसर्जित किया है सो हे भदन्त ! मैं श्वेतांबिका नगरी को जा रहा हूँ। (प्रासादीया णं भंते ! सेयं विया नयरी, एवं दरिसणिज्जाणं भंते ! सेयं विया नयरी, अभिरूवाणं भंते ! सेयं विया नयरी, पडिरूवाणं भंते ! सेयं विया णयरी, समोसरह णं भंते ! तुब्भे सेयं वियं नयरिं) हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी प्रासादीया है—हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी दर्शनीया है, हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी अभिरूप है, हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी प्रतिरूपा है अतः हे भदन्त ! आप उस श्वेतांबिका नगरी में पधारें।

यावत् ते जते उलो थयो अने उलो थधने यावत् तेणे आ प्रभाणे क्खुं—(एवं खलु अहं भंते ! जियसत्तुणा पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं जाव उवणेहि त्ति कट्टु विसज्जिए तं गच्छामि णं अहं भंते ! सेयं वियं नयरिं) हे भदन्त ! मने जितशत्रु राजाने प्रदेशी राजानी पाधे आभ क्खीने जवा आसा करी छे के छे चित्र तमे आ महाप्रयोजन साधक यावत् प्राप्तने प्रदेशीराज पासो दध जवो’ तो हे भदन्त ! इदं श्वेतांबिका नगरी तरक्ष जेध रह्यो छुं : (प्रासादीया णं भंते ! सेयं विया नयरी एवं दरिसणिज्जा णं भंते ! सेयं विया नयरी, अभिरूवाणं भंते ! सेयं विया नगरी, पडिरूवाणं भंते ! सेयं विया णयरी, समोसरह णं भंते ! तुब्भे सेयं वियं नगरिं) हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी अभिरूपा छे, हे भदन्त ! श्वेतांबिका नगरी प्रतिरूपा छे, भाटे हे भदन्त ! तमे श्वेतांबिका नगरीमां पधारो।

बोध्य इति, एतादृशं सज्जयति=कल्पयति, सज्जयित्वा चित्रं सारथिं शब्द-
यति, शब्दयित्वा एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण अत्रादीत=उक्तवान्-त्वं खलु हे
चित्र ! श्वेतविकां नगरीं गच्छ, प्रदेशिनो राज्ञः समीपे इदं महार्थं यावत्
प्राभृतम् उपनय=प्रापय, मम=मत्कर्तृक पादग्रहणं=प्रणामं यथा भणितं=यथो-
क्तम्-अवितथम्=यथार्थम् असंदिग्धम्=सुस्पष्टं वचनं च विज्ञापय=निवेदय,
इति कृत्वा=इत्युक्तवा विसर्जितः । तत् खलु स चित्रः सारथिः जितशत्रुणा
राज्ञा विसर्जितः=प्रदेशिराजसमीपे गन्तुम् आज्ञप्तः सन् महार्थं यावत्=महा-
र्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं गृह्णाति जितशत्रो राज्ञः अन्तिकात्=समीपात्
प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति,
निर्गत्य यत्रैव राजमार्गमवगाढः=राजमार्गस्थितआ वासः=प्रासादः तत्रैव उपा-
गच्छति, तत् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं स्थापयति,
स्थापयित्वा स्नातो यावच्छरीरः-‘यावच्छरीर’-पदेन ‘कृतवलिकर्मा कृतकौतुक-
मङ्गलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्थाभरणालङ्कृतशरीरः’ इति संगृह्यते, अर्थस्त्वेपां
पूर्ववद् बोध्यः. तथा-सकोरुटमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन युक्तः महा-
भटचटकरवृन्दपरिक्षिप्तो महापुरुषवागुरापगिक्षिप्तश्च सन् राजमार्गमवगाढात्
आवासात् निर्गच्छति । ‘सकोरुट’-इत्यादि-पदानामर्थः पूर्ववद् बोध्यः ।
ततः श्रावस्त्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं

टीकार्थ--इस सूत्र का मूलार्थ के ही अनुरूप है,—नवरं—‘महत्थं जाव पाहुड’ में जो यावत् पद आया है उससे ‘महत्थं’, ‘महार्हं’, ‘विपुलं’, ‘राजाहं’ इन पदों का संग्रह हुआ है। इन पदों का अर्थ यथास्थान लिखा जा चुका है—अतः वैसा ही समझना चाहिये. ‘हाण जाव सरीरे’ में जो यावत् पद आया है—उससे ‘कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकम गलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्थाभरणालङ्कृत’ इन पूर्वोक्त पदों का संग्रह हुआ है. इनका अर्थ पहिले के जैसा ही जानना चाहिये, इदं जाव’ में जो यावत् पद आया है उससे ‘तुष्टचित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौ-

टीकार्थ—आ सूत्रने टीकार्थ प्रमाणे न छे. “नवरं महत्थं जाव पाहुड” भा ने यावत् पद छे तेथी ‘महत्थं’, ‘महार्हं’, ‘विपुलं’, ‘राजाहं’ आ पदोने संग्रह धये छे. आ पदोने अर्थ यथास्थाने स्पष्ट करवाभा आये छे. ‘हाण जाव सरीरे’ भा ने यावत् पद तेथी ‘कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकम गलप्रायश्चित्तः अल्पमहार्थाभरणालङ्कृत’ आ पदोने संग्रह धये छे आ पदोने अर्थ पहिले के जैसा न भयो तेथी. ‘इदं जाव’ भा ने यावत् पद छे तेथी “तुष्टचित्तानन्दित”

यत्रैव केशीकुमारश्रमणस्तत्रैव उपागच्छति, केशिकुमारश्रमणस्य अन्तिके
 =समीपे धर्मं श्रुत्वा=सामान्यत आकर्ष्य, निशाम्य=चिन्तोपनो ह्यत्रधार्य हृष्टः
 यावत्-हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो-हर्षवशविसर्पद्दहृदयः अर्थ
 स्त्वेषां पूर्ववद् बोध्यः, उत्थया=उत्थानशक्त्या यावत् यावत्पदेन-उत्तिष्ठति, उत्थाय
 केशिन कुमारश्रमणं त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, वन्दते न नस्यति, वन्दित्वा
 नमस्यित्वा'-इति संग्राह्यम्, एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्-
 'एवं खलु अहं भदन्त ! जितशत्रुणा राज्ञा' 'प्रदेशिनो राज्ञः समीपे इदं
 महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतम् उपनय' इति कृत्वा=
 इत्युत्तवा विस्सर्जितः । तत्=तस्मात् कारणात् खलु भदन्त ! गच्छाम्यह
 श्वेतविकां नगरीम् । हे भदन्त ! श्वेतविका नगरी खलु प्रासादीया=दर्शक-
 जनानां मनःप्रमोदजनिकाऽस्ति ! एवम्=तथा हे भदन्त ! श्वेतविका नगरी
 खलु दर्शनीया=प्रोक्षणीयाऽस्ति । हे भदन्त ! श्वेतविका नगरी खलु अभि-
 रूपा=सर्वकालरमणीयाऽस्ति । हे भदन्त ! श्वेतविका नगरी खलु प्रति-
 रूपा=सर्वोत्तमाऽस्ति । अतो हे भदन्त ! यूयं श्वेतविकां नगरीं समवलरत=
 आगच्छत-इति ॥ सू० ११४ ॥

मनस्यितो, हर्षवशविसर्पद्दहृदयः' इन पदों का संग्रह हुआ है। इनका अर्थ
 षहिले जैसा ही जानना चाहिये, 'उट्टाए जाव' में आगत यावत्पद से उत्ति-
 ष्ठति, उत्थाय केशिनं कुमारश्रमणं त्रिकृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं-करोति,
 वन्दते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा' इस पाठ का संग्रह हुआ है।
 दर्शकजनों के मन में प्रमोदजनक है यह प्रासादीय शब्द का अर्थ है।
 देखने योग्य है, यह दर्शनीय शब्द का अर्थ है-सर्वकाल रमणीय है वह
 अभिरूप शब्द का अर्थ है-सर्वोत्तम है यह प्रतिरूप शब्द का अर्थ है। सू० ११४।

प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यितो, हर्षवश विसर्पद्दहृदयः' आ पढेनो संग्रह
 थयो छे आ पढेनो अर्थ पढेलांनी जेमज्य समज्यो जेधज्ये. 'उट्टाए जाव' भा
 जे यावत् पद आवेलुं छे तेथी "उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिन कुमारश्रमणं त्रिकृत्व
 आदक्षिण प्रदक्षिणं करोति वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा' आ पाठेनो
 संग्रह थयो छे. दर्शके भाटे जे प्रमोदजनक छे-जेवो प्रासादीय शब्दने अर्थ थाय छे.
 दर्शनीय शब्दने अर्थ छे. जेवा थोज्य. अभिरूप शब्दने अर्थ थाय छे जे सर्व-
 क्षण रमणीय छे ते प्रतिरूप शब्दने अर्थ सर्वोत्तम थाय छे. ॥सू० ११४॥

मूलम्—तएणं से केसी कुमारसमणे चित्तेणं सारहिणा एवं
 वुत्ते समाणे चित्तस्स च्चारहिस्स एयमड्डं णो आढाइ णो परिजाणाइ
 तुसिणीए संचिट्ठइ । तएण से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं दो-
 च्चंपि तच्चंपि एवं वयासी—एवं खलु अहं भंते ! जियसत्तुणा रण्णा
 पएसिस्स रण्णो इमं महत्थ जाव त्रिसज्जिए, तं चेव जाव समो-
 सरह णं भंते ! तुब्भे सेयंवियं णयरिं । तएणं से केसीकुमारसमणे
 चित्तेण सारहिणा दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे चित्तं सारहिं
 एव वयासी—चित्ता । से जहानामए वणसंडए सिया किण्हे किण्हो
 भासे जाव पडिरूवे । से णूणं चित्ता ! से वणसंडे वहूणं दुपयच-
 उप्पयमियपसुपक्खीसरीसिवाणं अभिगमणिज्जे ? हता ! अभिग-
 मणिज्ज । तंति च णं चित्ता ! वणसंडंसि वहवे भिल्लूगा नाम
 पावसउणा परिवसत्ति, जेणं तेसिं वहूण दुपयचउप्पयमियपसु-
 पक्खीसरीसिवाणं ठियाणं चेव मंससोणियं आहारेंति ! से णूणं
 चित्ता ! से वणसंडे तेसि णं वहूणं दुपय जाव सरीसिवाणं अभि-
 गमणिज्जे ? णो इणट्ठे समट्ठे ! कम्हा ? भंते ! सोवसग्गे । एवामेव
 चित्ता ! तुज्झंपि सेयंवियाए णयरीए पएसी नामं राया परिवसड्,
 अहम्मिए जाव णो सम्म करभरवित्तिं पवत्तइ । तं कहंणं अहं
 चित्ता ! सेयंवियाए नयरीए समोसरिस्तामि ? ॥सू० ११५॥

भाषा—ततःखलु न केसीकुमारश्रमणः चित्रेण मार्धिना एवमुक्तः
 एन चित्रस्य नारथेरेतमर्थं नो आद्रियते नो परिजानन्ति. नृपीकः मन्दिष्टने।
 ततः खलु न चित्रः नारथिः केजिहुमारश्रमणं छिन्तीयमपि नचीयमपि

एवमवादीत्—एवं खलु अहं भदन्त ! जितशत्रुणा राजा प्रदेशिनो राज-
इदं महार्थं यावद् विसर्जितः, तदेव यावत् रमदसरत खलु भदन्त ! ग्र्यं श्वेत-
विकां नगरीम् । ततः खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रेण सारथिना द्वितीय-

‘तएणं से केशी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (से केशीकुमारसमणे) उन केशिकुमार
श्रमणसे जब चित्र सारथी ने ऐसा कहा—नव (चित्तस्स सारहिस्स) चित्र
सारथी का (एयमट्ठं णो अढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीए संचिट्ठइ) इन
अर्थको आदर नहीं दिया, उसे विचार का विषय नहीं बनाया. किन्तु
चुपचाप ही रहे (तएणं से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं दोच्चपि तच्चपि
एवं वयासी) इसके बाद चित्र सारथीने पुनःदुवारा भी और तिचारा भी
उन केशिकुमारश्रमण से ऐसा ही कहा कि (एवं खलु अहं भन्ते ! जिप-
सत्तुणा रण्णा पयसिस्स रणो इमं महत्थं जाव विसज्जिए तं चैवं जाव
समोसरह णं भन्ते ! तुव्भे सेयवियं नयरिं) हे भदन्त ! जितशत्रु
राजा के द्वारा मैं ऐसा कहा गया हूँ कि हे चित्र ! तुम इस महार्थादि विशेष-
णों वाले प्राभृत (भेट) को लेकर प्रदेशीराजा के पास जाओ सो मैं वहाँ जा
रहा हूँ—वह श्वेतांबिका नगरी दर्शनीय आदि विशेषणों वाली है अतः वहाँ
पधारे (तएणं से केशीकुमारसमणे चित्तेण सारहिणा दोच्चपि तच्चपि एव

‘त एणं से केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एणं) त्पार पधी (से केशीकुमारसमणे) ते केशिकुमार
श्रमणुने न्यारे चित्रसारथ्ये आ प्रमाणे क्खुं त्पारे (चित्तस्स सारहिस्स) चित्र
सारथिना (एयमट्ठं णो अढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीए संचिट्ठइ) आ अर्थने
आदर आये नहि. तेना कथन पर केअ पणु नतने विचार कर्यो नहि, तेयो आ
पधुं सालणीने भौन न रखा. (तएणं से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं
दोच्चपि तच्चपि एवं वयासी) त्पार आइ चित्र सारथ्ये भीण वभत अने
त्रीण वभत पणु केशिकुमार श्रमणुने आ प्रमाणे न क्खुं के (एवं खलु अहं भन्ते !
जिपसत्तुणा रण्णा पयसिस्स रणो इमं महत्थं जाव विसज्जिए तं चैवं जाव
समोसरह णं भन्ते ! तुव्भे सेयवियं नयरिं) हे भदन्त ! जितशत्रु
राजसे मने आ प्रमाणे क्खुं छे के हे चित्र ! तमे आ महार्थादि विशेषणोवाणी
लेटने लधने प्रदेशी राजनी पासो लयो. जेथी हुं त्यां न्छ रखोछुं. ते श्वेतांबिका
नगरी दर्शनीय वगेरे विशेषणोवाणी छे तेथी तमे पणु त्यां वधारे. (त एणं से
केशिकुमारसमणे चित्तेण सारहिणा दोच्चपि तच्चपि एवंवुत्ते समणे

मपि तृतीयमपि एवमुक्तः सन चित्र सारथिम् एवमवादीत्-चित्र ! स यथा-
 नामको वनषण्डः स्यात् कृष्णः कृष्णावभासो यावत्प्रतिरूपः। अथ नून चित्र !
 स वनषण्डो बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशुपक्षिसरीसृपाणाम् अभिगमनीय ?
 हन्त ! अभिगमनीयः । तस्मिंश्च खलु चित्र ! वनषण्डे बहवो भिल्लका नाम
 पापशाकुनिकाः परिवसन्ति । ये खलु बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशुपक्षिसरी
 सृपाणां स्थितानामेव मांसशोणितम् आहारयन्ति । अथ नूनं चित्र ! स

वुत्ते समाणे चित्तं सारहिं एव वयासी) तत्र इस प्रकार दुबारा त्रिवारा भी चित्र
 सारथी के द्वारा विनन्ति किये जानेपर केजिकुमार श्रमणने उन चित्र सारथी से
 ऐसा कहा (चित्ता ! से जहानामए वणसंडए सिया किणहे किणहोभासे जात्र
 पडिरुवे) हे चित्र ! जैसे कोई एक वनषण्ड हो और वह कृष्ण-कृष्ण वर्णवाला
 हो, तथा कृष्ण जैसा दिखता हो (से पूणं चित्ता से वणसडे बहूणं दुप-
 यचउप्पयमियपसुपवखीसरीसिवाणं अभिगमणिज्जे) तो हे चित्ते ! कहो वह
 अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु पक्षी और सरीसृप सर्प इन सबके गमन के योग
 होता है न ? (हता अभिगमणिज्जे) हां भदन्त ! वह इनके गमन क
 योग्य होता है. (तस्मिंश्च वणं चित्ता वणसंडमि बहवे भिल्लगा पावसउणा
 परिवसन्ति) यदि उस वनखण्ड में हे चित्र ! अनेक पापिष्ठ मील लोग जो
 कि पारधी होते हैं रहते हैं (जे वणं तेस्मिं बहूणं दुपयचउप्पयमियप
 सुपविखमरीसिवाणं ठियाणं चैव मससोणियं आहारति) जो कि घहा रहे हुए
 उन बहूनां से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरीसृपों के मांस शोणित

चित्तं सारहिं एव वयासी) त्वादे ते प्रभाणु गीठ वणत अने त्रीठ वणत
 डडेली चित्रसारधिनी वात सालणीने तेने आ प्रभाणु डडु (चित्ता ! से जहानामए
 वणसंडए सिया वणहे किणहोभासे जात्र पडिरुवे) हे चित्र ! जेभ डेड वन-
 षण्ड डेय अने ते वृषुवर्षुवाणे डेय, तेभन् वृषु लवे लागतो डेय (से पूण
 चित्ता से वणसंडे बहूणं दुपयचउप्पयमियपसुपवखीसरीसिवाणं अभि-
 गमणिज्जे) तो हे चित्र ! डडे ते वन वणु द्विपदे, चतुष्पदे, मृगा, पशु, पक्षी
 पक्षीओ अने सरीसृपो आ गधाना भाटे गमन डेवा योग्य डेय डे नहि ?

अभिगमणिज्जे) हा लहत ! ते तेभना भाटे गमन योग्य गाए थ हे (तस्मिंश्च
 वणं चित्ता वणसंडमि बहवे भिल्लगा पावसउणा परिवसन्ति) अने ते वनषण्ड
 हे चित्र ! जे वणु पापिष्ठ शिकारी लडिने भेता डेय (जे वणं तेस्मिं बहूणं दुपय
 चउप्पयमियपसुपविखमरीसिवाणं ठियाणं चैव मससोणियं आहारति) अने तेभो
 त्या जहाना ते वणु द्विपदे, चतुष्पदे, मृगा, पशु, पक्षी अने सरीसृपों

वनषण्डस्तेपां खलु वहूनां द्विपद यावत्-सरोमृपाणाप् अभिगमनीयः ? नो अयमर्थः समर्थः । कम्मात् ? भदन्त ! सोपमर्गः ? एवमेव चित्र ! युमा-कमपि श्वेतविकायां नगर्यां प्रदेशी नाम राजा परिव्रमति, अधार्मिको यावत्, नो सम्यक्करभरवृत्तिं प्रवर्त्तयति । तत् कथं खलु अहं चित्र ! श्वेतविकायां नगर्यां भ्रमवसरिष्यामि ॥मृ० १.१५॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि—

ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्रेण मारयिना एवम्=उक्त-प्रकारेण उक्तः सत चित्रम्य सारथेः एतमर्थं=‘युयं श्वेतविकायां नगर्यां

का आहार करते हों, क्या ऐसी स्थिति में (ये पूरा चित्ता ! से वण-संढे तेसिं वहूणं दुपय जाव सरिसिवाणं अभिगमणिज्जे ? हे चित्र ! वह वनषण्ड उन अनेक द्विपद यावत् : सरोमृपा के लिये अभिगमनीय हो सकता है ? (नो इण्हे समंढे) हे भदन्त ! ऐसी स्थिति में वह उनके लिये अभिगमनीय नहीं हो सकता है। (कम्हा) हे चित्र ! वह उनके लिये अभिगमनीय-प्रवेश के योग्य-क्यों नहीं हो सकता है ? (नो समंढे) क्यों कि हे भदन्त ! वह वनषण्ड विघ्नसहित है। (एवमेव चित्ता ! तुज्जं पि सेय वियाए णयरीये पएसी नामं राया परिव्रमत्, अहम्मि ए जाव णो सम्मं कभरवृत्तिं पवत्तइ--तं कथं चित्ता सेय वियाए नयरीए समोसरिस्तामि) इसी तरह से हे चित्र ! तुम्हारे लिये श्वेतांगिका नगरी में प्रदेशी राजा रहता है वह अधार्मिक है यावत् प्रजाजनों से कर-टेकसलेकर भी उनका अच्छी तरह से पालन पोषण नहीं करता है। तो हे चित्र ! उस श्वेतांगिका नगरी में हम लोग कैसे आवें

भास अने शोषितनो आहार करता होय तो शु अेवी परिस्थितिमा (से पूणं चित्ता ! से वणसंढे तेसिं वहूणं दुपय जाव सरिसिवाणं अभिगमणिज्जे ?) हे चित्र ! ते वनषण्ड ते धणां द्विपदो यावत् सरिसिवाणं भाटे अलिगमनीय अर्थात् विचरणु करवा योग्य-कड़ी शक्य ? (नो इण्हे समंढे) हे भदन्त ! अेवी स्थितिमा ते तेमना भाटे अलिगमनीय थछ थके तेम नथी. (कम्हा) हे चित्र ! ते तेमना भाटे अलिगमनीय-विचरणु करवा योग्य-कठिन नथी ? (सोवसग्गे) कम्हे हे भदन्त ! ते वनषण्ड विघ्न सहित छे. (एवमेव चित्ता ! तुज्जं पि सेय वियाए णयरीए पएसी नामं राया परिव्रमत्, अहम्मि ए जाव णो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तइ तं कथं णं अहं चित्ता सेय वियाए नयरीए समोसरिस्तामि) आ प्रमाणे न्हे चित्र ! तम्हारे भाटे श्वेतांगिका नगरीमा प्रदेशीराज रह्ये छे. ते अधार्मिक छे यावत् प्रजापासेथी कर-टेकस लेखने पणु तेमनुं पालन-रक्षणु सारी रीते करते थी. तो अेवी स्थितिमा हुं श्वेतांगिका नगरीमा केवी रीते न्छे थकुं छुं. ?

समवसरत'—इत्थ रूपम् अर्थम् नो आद्वियते=नो आदरत्रिपयत्वेन हृदिकरोति।
 अतएव--नो परिजानाति=विचारत्रिपयत्वेन एतमर्थं न स्वीकरोति, तत
 एव तृष्णीकः=अवलम्बितमौनभावः सन् सन्तिष्ठते। ततः खलु स चित्रः
 सारथिः केशिकुमारश्रमणं द्वितीयमपि तृतीयमपि द्वित्रिवारम् एवम् अवादीत्
 -एवं खलु अहं भदन्त ! जितशत्रूणां राज्ञा-इत्यादि-समवसरत खलु भदन्त !
 यूयं श्वेतविकां नगरीम् इत्यन्तम् । वाक्यं पूर्वसूत्रे गतम्-अस्यार्थरतत एव
 बोध्यः-इति । ततः खलु केशीकुमारश्रमण. चित्रेण सारथिना द्वितीय-
 मपि तृतीयमपि=द्विकृत्वोऽपि त्रिकृत्वोऽपि एवमुक्तः सन् चित्रं सारथिम्-
 एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्-स यथानामको वनपण्डः स्यात्,
 कृष्णः=कृष्णवर्णः कृष्णावभासः-कृष्ण इव अवभासते न तु वस्तुतः कृष्ण-
 एव । यावत्-यावत्पदेन-नीलो नीलावभासो हरितो हरितावभासः शीतः
 शीतावभासः स्निग्धः स्निग्धावभासः तीव्रः तीव्रावभासः कृष्णः कृष्णच्छायो
 नीलो नीलच्छायो हरितो हरितच्छायः शीतः शीतच्छायः स्निग्धः स्निग्धच्छायः
 तीव्रः तीव्रच्छायः घनकटितकटच्छायो रम्यो महामेघनिगुरस्वभृतः प्रासादीयो
 दर्शनीयः अभिरूपः' इति संग्राहम् । तथा-प्रतिह्वयः। अर्थस्त्वेवामौपातिक-
 सुत्रस्यास्मत्कृतायां पौयूपवर्षिणीटीकायामवलोकनीयः। अथ नूनं चित्रा वनपण्डो

टीकार्थं इसका इमं मूलार्थं के जैसा ही है-नवर-किण्ठोभामे जाव पडिस्वे)मे आया हुआ यावत् पद से यहा 'नीलो, नीलावभासो, हरितो, हरितावभासः, शीतः, शीतावभासः स्निग्ध स्निग्धावभासः, तीव्रः, तीव्रावभासः, कृष्णः, कृष्णच्छायो, नीलो, नीलच्छायो, हरितो, हरितच्छायः, शीतः, शीतच्छायः, स्निग्धः स्निग्धच्छायः, तीव्रः, तीव्रच्छायः, घनकटितकटच्छायो, रम्यो, महामेघनिगुरस्वभृतः प्रासादीयो, दर्शनीयः अभिरूपः' यह पाठ संगृहीत हुआ है। इन पदों का अर्थ औपपातिकसुत्र की पायूपवर्षिणी टीका में हमने स्पष्ट किया है अतः वही से जान लेना

टीकार्थं —आने। मूलार्थं प्रभावे न के 'नवरं' 'किण्ठोभामे जाव पडिस्वे' भ' के यावत् पद आवेष्टु के तथी अर्थात् 'नीलो, नीलावभासो, हरितो, हरितावभासः, शीतः शीतावभासः, स्निग्धः, स्निग्धावभासः, तीव्रः, तीव्रावभासः, कृष्णः, कृष्णच्छायो, नीलो, नीलच्छायो, हरितो, हरितच्छायः, शीतः, शीतच्छायः स्निग्धः स्निग्धच्छायः, तीव्रः तीव्रच्छायः, घनकटितकटच्छायो, रम्यो, महामेघनिगुरस्वभृतः प्रासादीयो, दर्शनीयः अभिरूपः' का अर्थ है कि इन पदों का अर्थ अनेक अर्थों से सूचनीय है।

बहूनां द्विपदचतुष्पदद्विपदाद्यः पाठ्याख्यानाः, तेषाम् अभिगमनीयः=गन्तुं योग्यो भवेत्?, इत्थं केशिकुमारश्रमणस्य वचनं श्रुत्वा चित्रः प्राह-हन्त! अभिगमनीयः=गन्तुं योग्यो भवेत्स वनपण्ड इति पुनः केशिकुमारश्रमणः पृच्छति-हे चित्र! तस्मिन्=पूर्वोक्ते च खलु वनपण्डे बहवो भिल्लका=भिल्लजानीयाः 'नाम' इति संभावनायां पापशाकृनिकाः=पापिष्ठाः व्याधाः परिवसन्ति, ये खलु तेषां बहूनां द्विपदचतुष्पदद्विपदपशु-पक्षरसृष्टाणां स्थितानामेव मासजोनिनं=मांसानि शोणितानि च आहारयन्ति=भुञ्जते। अथ नूनं चित्र! स वनपण्डः तेषां खलु बहूनां द्विपद-यावत् सरोसृष्टाणाम् सर्पाणाम् अभिगमनीयो भवेत्? चित्रः प्राह-अयमर्थः=द्विपदादीनां तद्वनपण्डेशरूपोऽर्थः नो अयमर्थः=न योग्यः, स वनपण्डस्तेषां प्रवेष्टुं न योग्य इति भावः। केशी पृच्छति-कस्मात्=कस्मात् कारणात् स वनपण्डः प्रवेष्टुं न योग्यः? चित्रः प्राह-हे भदन्त! स वनपण्डः=विघ्नसहितः। ततः केशी प्राह-हे चित्र! यथा स वनपण्डस्तेषां द्विपदादीनां प्रवेष्टुं न योग्यः, -एवमेव=अनेन प्रकारेणैव श्वेतविका नगर्याणि प्रवेष्टुं न योग्या। तत्र श्वेतविकायां नगर्यां युष्माकं प्रदेशो नाम राजा परिवसति, अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रवर्त्तयति। यावत्पदेन-अधर्मिष्ठः अधर्मानुगः' इत्यादि पदानि संग्राह्याणि, तानि च-एकशतनमसूत्रे विलोकनीयानि। अर्थोऽपि तत्रैव विलोकनीयः। तत् कथं खलु अहं चित्र! श्वेतविकायां नगर्यां समवसरि-त्यामि=आगमिष्यामि? ॥ सू० ११५ ॥

मूलम्--तएणं से चित्ते सारही केशिं कुगारसमणं एवं वयासी किं णं भते! तुब्भ पएसिणा रन्ना कायव्वं? अरिथि णं भते! सेय-वियाए नगरीए अन्ने बहवे ईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिइयो जे णं देवाणुप्पियं वंद्दिस्संति जाव पज्जुवासिस्सति विउलं असणं पाणं

चाहिये. 'अहम्मिणं जाव' में भाषा हुआ यावत् पदसे 'अधर्मिष्ठः. अधर्मानुगः' इत्यादि पदों का संग्रह किया गया है। इन पदोंका अर्थ १०१ सूत्र में लिखा गया है ॥ सू० ११५ ॥

येथी निशासुओओ त्थांथी अर्थं न्णणी देवो, न्नेध्थि. "अहम्मिणं जाव" भा न्ने यावत् पद छे तेथी "अधर्मिष्ठः, अधर्मानुगः" वगेरे पढोने। स अत्थ थये छे. आपढोने अर्थं १०१मा सूत्रमा स्पष्ट करवाभा आओये छे. ॥११५॥

खाइमं साइमं पडिलाभिस्सति, पाडिहारिणं पीठलगसेज्जासंफ-
थारणं उवनिमंतिस्सति । तएणं से केसिकुमारस्समणे चित्तं सारहिं
एवं वयासी अविआइं चित्ता । जाणिस्सामो ॥ सू० ११६ ॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः केजिनं कुमारश्रमणमेवमवा-
दीत्—किं खलु भदन्त ! युष्माकं प्रदेशिना राजा कर्तव्यम् ? सन्नि खलु
भदन्त ! श्वेतविकायां नगर्याम् अन्वे वहव ईश्वरतलवर—यावत्सार्थवाहप्रभृ-
तयः, ये खलु देवानुप्रियं वन्दिष्यन्ति नमस्करिष्यन्ति यावत् पशुपासिष्य-
न्ते, विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं प्रतिलाभयिष्यन्ति, प्रतिहारिकेण पीठ

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएण) इसके बाद (से चित्ते सारही केसिकुमारस्समणं एवं
वयासी) उस चित्र सारथिने केसिकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(किं णं
मंते ! तुभं पएसिणा रन्ना कायव्व) हे भदन्त ! आपको प्रदेशी राजा
से क्या तात्पर्य है (सेयंविद्याए नयरीए अन्ने वहवे ईश्वरतलवर जाव सत्थवाहप-
भिईओ जे ण देवाणुप्पियं वदिस्संति णमंसिस्संति जाव पज्जुवास्सिंति,
विउलं असणं पणं खाइमं साइमं पडिलाभिस्संति) श्वेतांधिका नगरी में
और भी बहुत से ईश्वर तलवर यावत् सार्थवाह आदि हैं जो आप देवानुप्रिय को
वन्दना करेंगे, नमस्कार करेंगे यावत् पशुपासना करेंगे एवं विपुल, अशन
से पान से खादिम से और स्वादिम से आप को प्रतिलाभित करेंगे ।
(पडिहारेणं पीठलगसेज्जासंथारणं उवनिमंतिस्सति) एवं समर्पणीय

‘तए ण से चित्ते सारही’ इत्यादि.

सुत्रार्थ—(तए ण) त्थार पथी (से चित्ते सारही केसिं कुमारस्समणं एवं
वयासी) ते चित्र सारथिणे केसिकुमार श्रमणुने आ प्रमाणे उल्लु के (किं णं मंते !
तुभं पएसिणा रन्ना कायव्व) हे भदन्त ! आपश्रीने प्रदेशी राजा साथे शी
निष्पत्त छे ? (सेयंविद्याए नयरीए अन्ने वहवे ईश्वरतलवरजाव सत्थवा
हपभिईओ जे णं देवाणुप्पियं वदिस्संति णमंसिस्संति जाव पज्जुवास्सिं-
स्संति विउलं असणं पणं खाइमं साइमं पडिलाभिस्सति) श्वेतांधिका
नगरीमा भीज्ज धण्णा ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाहो वगेरे छे के ने आप देवानु-
प्रियने वंदन करशे नमस्कार करशे यावत् पशुपासना करशे. अने विपुल अशनथी,
पानथी, भाहीमथी अने स्वादिमथी आपश्रीने प्रतिलाभित करशे. (पडिहारेणं पीठ-
फलगसेज्जासंथारणं उवनिमंतिस्सति) अने समर्पणीय पीठ इलकं थ

फलकशय्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयिष्यान्ते । ततः खलु स केशीकुमारश्रमण-
चित्रं सारथिमेवमवादीत्—अपि च चित्र । ज्ञास्यामः ॥ मृ० ११६ ॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि—

टीका— ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनं कुमारश्रमणम् एवम्=
वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=उक्तवान्—किं खलु भदन्त । युष्माकं प्रदेशिना राज्ञा
कर्त्तव्यम्=प्रदेशिनो राज्ञः सकाशाद् भवतां नास्ति किञ्चिन् प्रयोजनमित्यर्थः ॥
हे भदन्त । श्वेतविकार्या नगर्यां खलु अन्ये बहवः ईश्वरतल्लवर यावत्सार्थ-
वाहप्रभृतयः सन्ति । अत्र ‘यावत्’—पदेन— ‘माडम्बिककौटुम्बिकेभ्यश्रेष्ठि-
सेनापति—’ इति संग्राह्यम् । ये ईश्वरादयः खलु देवानुप्रियं वन्दिष्यन्ते=
स्तोष्यन्ति नमष्यन्ति=प्रणता भविष्यन्ति, यावत् यावत्पदेन—‘सत्कारयि-
ष्यन्ति सम्मानयिष्यन्ति, कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यम्—इति संग्राह्यम् ।
त —सत्कारयिष्यन्ति अभिमुखगमनादिना, सम्मानयिष्यन्ति—वसतिप्र-
दानादिना, तथा—‘कल्याणं=कल्याणस्वरूपम्, मङ्गलं=मङ्गलस्वरूपम् दैवतम्—

पीठफलकशय्यासंस्तारक ग्रहण करने के लिये आपसे प्रार्थना करेंगे । (तएणं
से केशीकुमारश्रमणे चित्रं सारथिं एवं वयासी) तत्र केशीकुमारश्रमणे चित्र-
सारथीसे इस प्रकार कहा (अवि आहं चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र । विचार करेंगे।

टीकार्थ स्पष्ट है. नवरं ‘तल्लवर जाव सत्थवाह’ में आगत यावत् पदसे
यहां ‘माडंम्बिक-कौटुम्बिकेभ्यश्रेष्ठिसेनापति’ पाठ का ग्रहण हुआ है ।
‘णमंस्सिस्संति जाव पज्जुवासंति’ में आगत यावत् पद से ‘सत्कारयिष्यन्ति.
सम्मानयिष्यन्ति, कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यम्’ इस पाठ का संग्रह हुआ है।
अभिमुखगमनादि द्वारा जो सम्मान प्रदर्शित किया जाता है उसका नाम
सत्कार है, वसति आदि के देने से जो भक्ति प्रदर्शित की जाती है उसका

संस्तारक अहुणु करवा आपने विनती करथे (त एणं से केशीकुमारश्रमणे चित्रं
सारथिं एवं वयासी) त्थारे केशिकुमार श्रमणे चित्र सारथिने आ प्रमणे ष्णुं ष
(अविआहं चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र ! विचार करीश ।

टीकार्थ.—स्पष्ट ७ छे. नवरं “तल्लवर जाव सत्थवाह” भां ७े यावत् पद
आवेळु छे, तेथी अही ‘ माडंम्बिककौटुम्बिकेभ्यश्रेष्ठिसेनापति ’ पाठने संग्रह
थये छे ‘णमंस्सिस्संति जाव पज्जुवासिस्संति’ भां आवेला यावत् पदथी ‘सत्कार
यिष्यन्ति. सम्मानयिष्यन्ति, कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यम्’ आ पाठने
संग्रह थये छे. अभिमुख गमन-वगेरे वडे ७े सम्मान आपवामा आवे छे तेथं
नाम सत्कार छे. निवास भादे स्थान वगेरे आपीने ७े भक्ति प्रदर्शित करवामां आवे

धर्मदेवस्वरूपम्, चैत्यं=चित्तिः=विशिष्टज्ञानं, तथा युक्तं सर्वथा विशिष्टज्ञानयन्त-
मित्यर्थः, इति बुद्ध्या पर्युपामित्यन्ते=सेविष्यन्ते । तथा-त्रिपुलं=मञ्जुम् अशनः
पानं खाद्यं खाद्यं प्रतिलम्भयिष्यन्ति=प्रदास्यन्ति । तथा-गातिहारिकेण=पुनः-
समर्पणीयेन पीठफलकशय्यासंस्कारकेण-पीठफलकादयः प्राग्ग्याख्याताः, तेषां
समाहारस्तेन उपनिमन्त्रयिष्यन्ति-प्रातिहारिकं पीठफलकशय्यासंस्कारकं च
प्रहीतुं भवन्तं प्रार्थयिष्यन्ति-इति । ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्र सार-
यिम् एवम्=भनेन प्रकारेण अवादीत=उक्तवान्-'अविआइ'-अपि च चित्र ।
ज्ञास्यामः=निचारयिष्यामः इति ॥ सू० ११६ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं वंदइ
नमंसइ, केसिएस कुमारसमणएस अंतियाओ कोट्टयाओ चेइयाओ
पडिणिक्खमइ, जेणेव सावत्थी णयरी जेणेव रायमग्गसोगाढेआवासे
तेणेव उवागच्छइ, कोडुबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-
खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह,
जहा सेयंवियाए णयरीए णिग्गच्छइ तहेव जाव वसमाणे
कुणालाजणवयएस मज्झं मज्झेणं जेणेव केइयअद्धे जेणेव
सेयविया णयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ,
उज्जाणपालए सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी- जया णं
देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे पुठ्ठा-
णुपुठ्ठि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागच्छिज्जा तथा णं
तुब्भे देवाणुप्पिया ! केसिकुमारसमणं वंदिज्जाह नमंसिज्जाह वदित्ता
नमसित्ता अहापडि रूवं उग्गहं अणुजाणेज्जाह, पडिहारिएणं पीठ-
फलग जाव उवनिम तिज्जाह, एयमोणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणेज्जाह।

नामसन्मान है. श्वेतांबिका नगरी के लोग आप कल्याणस्वरूप हैं, मंगस्वरूप है धर्म-
देवस्वरूप हैं तथा चैत्य विशिष्ट ज्ञानवान् ऐसा मानकर आपकी सेवा करेंगे । सू. ११६।

छ तेह नाम सन्मान छ श्वेताम्बिका नगरीना लोक आपश्री ते कल्याण स्वरूप,
मंगलस्वरूप तेमण चैत्यविशिष्ट ज्ञानवान् भानीने आपनी सेवा करथे. ॥सू. ११६॥

तएणं ते उजाणपालगा चित्तेणं सारहिणा एवं वुत्ता समाणा हट्ट-
तुट्टु जाव हियथो करयलपरिगहियं जाव एवं वयासी-तहत्ति
अणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति ॥सू० ११७॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणं वन्दते नम-
स्यति केजिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिकात् कोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्कामति,
यत्रैव श्रावस्ती नगरी यत्रैव राजमार्गमवगाढः आवासस्तत्रैव उपागच्छति,
कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-क्षिपमेव भो देवानु-
प्रियाः ! चानुर्घटम् अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापयत, यथा श्वे तविकाया-

(‘तएणं’) इसके बाद (से चित्त सारही) उस चित्र सारथीने (केसि
कुमारसमणं वंदइ नमंसइ) केशीकुमार श्रमण को वन्दना की और नमस्कार
किया (केसिस्स कुमारसमणस्स अंतियाओ कोट्टयाओ चेहयाओ पडिनिक्खमइ)
पश्चात् में वह केशीकुमार श्रमण के पास से और उस कोष्ठक चैत्य से चला
आया. (जेणेव श्रावस्ती नगरी जेणेव रायसग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवा-
गच्छइ) आकर वह जहाँ श्रावस्ती नगरी थी एवं उसमें जिस तरफ राज-
मार्गपर स्थित आवास था वहाँ पर आया. (कौटुम्बियपुरिसे सदावेइ) वहाँ
आकर के उसने कौटुम्बिक-आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाया (सदाविता एवं
वयासी) घुटाकर उनसे ऐसा कहा-(खिप्पासैव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घटं
आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेह) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र चार घंटों
वाले अश्वरथ को तैयार करके ले आओ, (जहा खेयं चियाए नयरीए निग्गच्छइ,

त एण से चित्ते ! सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एणं) त्थार पथी (से चित्त सारही) ते चित्रसारथीजे
(केसिकुमारसमणं वंदइ नमंसइ) केशीकुमार श्रमणने वंदन तेमज्ज नमस्कार क्यो.
(केसिस्स कुमारसमणस्स अंतियाओ-कोट्टयाओ चेहयाओ पडिनिक्खमइ) त्थार
पथी ते केशीकुमार श्रमण पसेथी अने ते कोट्ट चैत्यमांथी गह्कार आवी गयो.
(जेणेव श्रावस्ती नगरी जेणेव रायसग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ)
आवीने ते त्थार श्रावस्ती नगरी उती अने तेमा पणु त्थार राजमार्ग पर स्थित
निवासस्थान उतु त्थार गयो (कौटुम्बियपुरिसे सदावेइ) त्थार पडिनिक्खने तेजे
कौटुम्बिक पुरुषोने-आज्ञाकारी पुरुषोने आवासा (सदाविता एवं वयासी) आवा-
वीने तेमने एग प्रमाणे उतु (खिप्पासैव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घटं आसरहं
जुत्तामेव उवट्टवेह) हे देवानुप्रियो ! तूमे खोटा अश्वरथ चार घंटोमांथी युत्त

नगर्यां निर्गच्छति तत्रैव यावद् वसन् कुणालाजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव
केकयाद् यत्रैव श्वेतांबिका नगरी यत्रैव मृगवनम् उद्यानं तत्रैव उपाग-
गच्छति, उद्यानपालकान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-यदा खलु देवा-
नुप्रियाः । पार्श्वापत्नीयः केशीनामकुमारभ्रमणः पूर्वानुपूर्व्यां चरन् ग्रामा-
नुग्रामद्रवन् इहोगच्छेत्, तदा खलु यूयं देवानुप्रियाः । केशिकुमारभ्रमणं

तदेव जाव वसमाणे कुणाला जणवयस्स मज्झमञ्छेणं जेणेव केइयअदे
जेणेव सेयंविद्या णयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) यहाँ
से आगे चित्र सारथी जिस प्रकार श्वेतांबिका नगरी से निकल कर कुणाला
जनपद (देश) में स्थित श्रावस्ती नगरी आया, उसी प्रकार वह श्रावस्ती नगरी
से भी निकलकर केकयाद् जनपद में स्थित श्वेतांबिका नगरी में पहुँचा.
इसलिये यहाँ पर पूर्वकी तरह से ही समग्र पाठ संगृहीत करना चाहिये.
इसी बात को सूचित करने के लिये 'जहा सेयंविद्याए णयरीए णिगगच्छइ'
इत्यादि यह पाठ कहा गया है. अर्थात् वह चित्रसारथि जिस प्रकार से
श्वेतांबिका नगरी से निकलता है, उसी प्रकार से यावत् मार्गमें पडाव डालता
हुआ वह कुणाला जनपद के मध्यमध्य से होता हुआ जहाँ केकयाद् था
और जहाँ श्वेतांबिका नगरी थी और उस में भी जहाँ मृगवन नाम का
उद्यान था वहाँ आया (उज्जाणपालए सदावेइ) वहाँ आकर के उसने उद्या-
नपालों को बुलाया. (सदावित्ता एव वयासी) वहाँ आकर के उसने ऐसा
कहा-(जया णं देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे पुब्बा-

अर्थ तैयार करिने लावे. (जहा सेयंविद्याए णरीए णिगगच्छइ. तदेव जाव
वसमाणे कुणाला जणवयस्स मज्झमञ्छेणं जेणेव केइय अदे जेणेव
सेयंविद्या णयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) अर्थात् ते
चित्रसारथी पडेलां जेभ ते श्वेतांबिकानगरीथी नीकणीने कुणाला जनपदमां स्थित
श्रावस्ती नगरीमां आव्यो हुतो, तेमए ते श्रावस्ती नगरीथी अहार नीकणीने केकयाद्
जनपदमा स्थित श्वेतांबिका नगरीमा पडोव्यो. अर्थात् ते प्रमाणे ज वर्युंन सम
लेवुं जेधये. ये बातने अनाववा माटे ज 'जहा सेयंविद्याए णयरीए णिगगच्छइ'
वगेरे पाठने उद्वेण करवामा आव्यो छे. अटके छे ते चित्र सारथि जेभ श्वेतां-
ंबिका नगरीथी नीकणे छे, ते प्रमाणे ज यावत् मुकाम करतो ते कुणाला जनपदमा
अेकम मध्यमा पसार थधने जयां केकयाद्मा श्वेतांबिका नगरी हुती अने तेमां
पथु जया मृगवन नामे उद्यान हुतु त्या आव्यो (उज्जाणपालए सदावेइ) त्यां
आवीने तेणे उद्यान पालने जोलाव्यो. (सदावित्ता एव वयासी) जोलावीने आ
प्रमाणे छुं. (जया णं देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे

वन्दध्वं नमस्यत, वन्दित्वा नमस्यित्वा यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अनुज्ञा-
पयत, प्रातिहारिकेण पीठ-फलक-यावत् उपनिमन्त्रयत, एनामाज्ञप्तिकां
क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयत-! ततः खलु ते उद्यानपालकाः चित्रेण स्मार्थिता
एवमुक्ताः सन्तो हृष्टतुष्ट यावद्देयाः करतलपरिगृहीतं यावत् पवनवादीत-
तथेति, आज्ञाया विनयेन वचनं प्रतिश्रुतन्ति ॥ सु० ११७ ॥

शुभ्रि चरमाणे, गामाणुगामं दुःज्जमाणे इहमागच्छिज्जा. तयाणं तुभ्मे देवा
णुप्पिया! केसिकुमारमणं वदिज्जह) हे देवानुप्रियो! जब पार्श्वनाथ भगवान्
परंपरा में विचरने वाले केशी नामके कुमारश्रमण प्रमाधु परंपरा के
अनुभार विचरते हुए तथा एक ग्राम से दूसरे ग्राम में चितार करते हुए
यहाँ पर पधारे, तब तुम हे देवानुप्रियो! केशिकुमार श्रमण को वन्दना करना
(नमंसिज्जाह) नमस्कार करना. (वदिता नमंसिता अहापडिक्खं उग्गहं
अणुज्जाणेज्जाह) वंदना नमस्कार कर फिर तुम उन्हें जाधु क्लानुमार वसति में
निवास करने के लिये आज्ञा दे देना (पडिहारिणं पीठफलग जाव
उवनिमंतिज्जाह) और समर्पणीय पीठफलक आदि जैसा. वे चाहे वैसा
तुम उन्हें देने की प्रार्थना करना. (एयमाणत्तियं खिण्णायोव पच्चप्पिणेज्जाह)
बाद में मेरी इस आज्ञा को जब पीछे शीघ्र लौटाना-अर्थात् जब केशि-
कुमार श्रमण आ जावे-तब तुम उनके आज्ञादि के वृत्तान्त की हमें
शीघ्र ही खबर देना. (तएणं ते उज्जाणपालगा चित्तेण सारहिणा एवं वुत्ता
समाणा हृष्टतुष्ट जाव हियया करयलपरिगहियं जाव एवं वयासी-तहत्ति

शुभ्रि चरमाणे, गामाणुगामं दुःज्जमाणे इहमागच्छिज्जा,
तयाणं तुभ्मे देवाणुप्पिया! केसिकुमारमणं वदिज्जह) हे देवानुप्रियो!
पार्श्वनाथ भगवान्नी परंपराभां विचरणु करनारा केशी नामे श्रमणु
प्रमाधु परंपरा सुभ्रण विचरणु करतां करतां तेमणु अक गामथीणीने गामगां विंडार
करतां, करतां अडी पधारे त्तारे हे देवानुप्रियो! तमे सौ केशिकुमार श्रमणुने वंदन करणे.
(नमंसिज्जाह) नमस्कार करणे (वदिता नमंसिता अहापडिक्खं उग्गहं
अणुज्जाणेज्जाह) वंदना तेमणु नमस्कार करीने तमे तेमने साधु क्लानुमार
वसतीभां निवास करवानी आज्ञा आपशा. (पडिहारिणं पीठफलग जाव उव
निमंतिज्जाह) अने समर्पणीय पीठफलक वजेरे ने वस्तुनी तेओश्री
मार्गणी करे ते वस्तु तमे तेमने नअपणु सभपित करणे. (एयमाणात्तियं खिण्ण
मेव पच्चप्पिणेज्जाह) अने ज्यारे आ णधुं थध जय त्तारे तमे मने-केशिकुमार
श्रमणुनी-अडी पधारेवानी णयर आपणे (तएणं ते उज्जाणपालगा चित्तेणं
सारहिणा एवं वुत्ता समाणा हृष्टतुष्ट जाव हियया-करयलपरिगहियं जाव

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि—ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा केशिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिकं त समीपात्, तदटुकोष्ठत्वाच्चैत्याच्च प्रतिनिष्क्रामति=निस्सरति, प्रतिनिष्क्राम्य यत्रैव श्रावस्ती नगरी यत्रैव च राजमार्गमवगाढः आवासः, तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य कौटुम्बिकपुरुषान्=भृत्यान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—भो देवानुपियाः ! चातुर्घण्टं=चतुर्घण्टविभूषितम् अश्वरथं युक्तमेव=योजिताश्वमेव उपस्थापयत=उपस्थितं कुरुत । इतोऽर्घ्यं यथाश्वे तविकायां नगर्यां निरसृत्य चित्रः सारथिः कुणाला जनपदे श्रावस्त्यां नगर्यां गतः, तथैव स श्रावस्त्या नगर्या अपि निरसृत्य केकयाद्धजनपदे श्वेतविकायां नगर्यां च गतः । अतोऽत्र पूर्ववदेव समग्रः पाठः संग्राह्यः । अमुमेवार्थमूच्यितुमाह—‘यथा श्वेतविकाया नगर्यां निर्गच्छति, तथैव यावत् वसनकुणाला जनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव केकयाद्धं यत्रैव श्वेतविका नगरी यत्रैव मृगवने उद्यानं तत्रैव उपागच्छतीति । तत्र मृगवने उद्याने उपागत्य स उद्यानपालकान् शब्दयति=आह्वयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—भो देवानुपियाः ! यदा खलु पार्श्वीपत्तीयः=पार्श्वनाथतीर्थकरपरम्परायां स जातः केशी नाम कुमारश्रमणः पूर्वानुपूर्व्या=पूर्वसाधुपरम्परया चरन्=विचरन् ग्रामानुग्रामस्य=एकस्माद् ग्रामादनन्तरस्थितं ग्रामं द्रवन्=क्रमेण गच्छन् इह=श्वेतविकायां नगर्याम् आगच्छेत्=आयात्, तदा खलु यूयं देवानुपियाः केशिकुमारश्रमणं वन्दध्व नमस्यत वन्दित्वा नमस्यित्वा, यथापतिरूपां=साधुकल्पानुमारस्य अन्ग्रहं=वसतौ निवासार्थमाज्ञां अनुज्ञापयत=अर्पयत,

आणाए विणएणं वयण पडिसुणे ति) चित्र सारथी के द्वारा इस प्रकार कहे गये वे उद्यानपाल हृष्टुष्ट यावत् हृद्य ह्रुए और दोनों हाथ जोडकर बडे विनय के साथ यावत् इस प्रकार से बोले—हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा हसें प्रमाण है अर्थात् आपने कहा है हम वैसा ही करेंगे इस प्रकार अपनी ओर से स्वीकृति के वचन कहकर उन्होंने चित्र सारथी की आज्ञा के वचनों को स्वीकार कर लिया।

एव वयासी—तर्हान आणाए विणयेणं वयणं पडिसुणे। त) चित्रसारथीवडे आ प्रभाणे आज्ञापित थयेला ते उद्यानपालके हृष्ट-तुष्ट यावत् हृद्यवाणा थया अने अन्ने हाथ जोडीने विनयतापूर्वक आ प्रभाणे कडेवा लाग्या डे डे स्वामिन् ! आप श्रीनी आज्ञा मारा माटे प्रभाणुइप छे अटवे डे आपश्रीजे ने प्रभाणे आज्ञा करी छे अमे यथा समय तेमज् आचरीशुं. आ प्रभाणे पोताना तरइथी स्वीकृतिना वयने, कडीने तेमणे चित्रसारथिनी आज्ञाने स्वीकारी लीधी.

तथा-प्रतिहारिकेण=पुनः समर्पणीयेन पीठफलक यावत्=पीठफलकशय्या-
संस्तारकेण उपनिमन्त्रयत्. मातिहारिकं पीठफलकादिकं यथा स गृह्णीयात्
तथा तं केशिकुमारश्रमणं मार्थयतेत्यर्थः । एवं कृत्वा एताम् आज्ञासिकां
क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयत्=केशिकुमारश्रमणस्य आगमनादिवृत्तान्तं मद्यं क्षिप्रमेव
सूचयतेति । ततः खलु ते उद्यानपालकाः चित्रेण सारथिना एवमुक्ताः
सन्तः हृष्टतृष्टयावर्द्धयाः=हृष्टतृष्टचित्तानन्दिताः प्रीतिमनसः परमसौमनस्यिताः
हर्षवशविसर्पद्धृदयाः, करतलपरिगृहीतं यावत्-यावत्पदेन-‘दशनखं शिर
आवर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा’ इति संग्राह्यम्, हृष्टतृष्टेत्यादिपदानां कर-
तलेत्यादिपदानां चार्थः पूर्ववद् बोध्यः, एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=
उक्तवान्-तथेति=हे देवानुमिये ! यथा गृयमाज्ञापयन्ति तथैव समाचरिष्यामः
इति । एवं स्वीकारवचनमुक्त्वा ते उद्यानपालकास्तस्य चित्रसारथेः आज्ञाया
वचनं विनयेन प्रतिभृण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति-इति ॥सू० ११७॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही जेणेव सेयंविया णयरी तेणेव
उवागच्छइ, सेयवियं नयरि मज्झमज्झेणं अणुपविसइ, जेणेव पए-
सिस्स रण्णो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ,
तुरगे णिगिण्हइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तं महत्थं जाव
गेण्हइ, जेणेव पएसी राया तेणेव उवागच्छइ, पएसिं रायं करयल-

टीकाथं मूलार्थं के अनुरूप ही है, नवरं ‘हृष्टतृष्ट जाव हियया’ में
जो यावत् पद आया है उमसे यहां ‘हृष्टतृष्टचित्तानन्दिताः, प्रीति मनसः,
परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्धृदयाः’ यह पाठ गृहीत हुआ है, तथा
‘करतलपरिगृहीतं’ के यावत्पद से ‘दशनखं शिर आवर्त्तं मस्तके अञ्जलिं
कृत्वा’ इस पाठ का ग्रहण हुआ है, इन पाठों के पदों का पहिले अर्थ
कहे हुवे अर्थ के अनुसार ही है ॥ ११७ ॥

टीकाथं—आ सूत्रेणो मूलार्थं प्रमाणे न्ने छे. ‘नवरं’ “हृष्टतृष्ट जाव हियया”
मां न्ने यावत् पठ आवेळुं छे तेथी “हृष्टतृष्टचित्तानन्दिताः, प्रीतिमनसः
परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्धृदयाः” आ पाठेणो संग्रह थये छे. तेमन्
“करतलपरिगृहीतं” ना यावत् पठथी “दशनखं शिर आवर्त्तं मस्तके अञ्जलिं
कृत्वा” आ पाठेणुं संग्रह थयुं छे आ पाठेणो पठेणो अर्थ पठेला न्ने प्रमाणे
इयत्त करवामां आण्ये छे ते प्रमाणे न्ने अर्ही समन्वये न्नेअथे. ॥सू० ११७॥

जाव वद्धावेत्ता तं महत्थं जात्र उवणेइ । तएणं से पएसी राया
चित्तस्स सारहिस्स तं सहत्थं जाव पडिच्छइ, चित्तं सारहिं सकारेइ
सम्माणेइ प'डविसजेइ । तएणं से चित्ते सारही पएसिणा रण्णा
विसज्जिए सम्माणे हट्टुजाव हियए पएसिस्स रन्नो अंतियाओ पडि-
णिवखमइ, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंटं
आसरह दूरुहइ, सेयवियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे
तेणेव उवागच्छइ, तुरगे णिगिण्हइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ,
पहाए जाव उट्पि पालायवरगए फुट्टमाणेहिं सुइंगमत्थएहिं वत्ती-
सइवद्धएहिं नाडएहिं वरतरुणीसपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे उवगा-
इज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सदफरिस्स जाव विहरइ ॥सू० ११८॥

छाया-ततः खलु म चित्रः सारथिः यत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव उपागच्छति,
श्वेताशिकां नगरीं मध्यमध्येन अनुप्रविशति, यत्रैव प्रदेशिनः राज्ञः गृहं यत्रैव बाह्या
उपस्थान शाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथात् प्रत्य-

‘तएणं ते चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चित्ते सारही जेणेव सेयं विया णयरी
तेणेव उवागच्छइ) वह चित्र सारथि जहां श्वेतांशिका नगरी थी—वहां गया
(सेयं वियं नयरीं मज्झं मज्झेणं अणुपविसइ) वह उस नगरी में बीचों
बीच के मार्ग से होकर प्रविष्ट हुआ (जेणेव पएसिस्स रण्णे गिहे जेणेव
वाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ) प्रविष्ट होकर वह
वहां गया जहां कि प्रदेशी राजा का घर था और जहां
प्रदेशी राजा की बाह्य उपस्थानशाला थी (तुरगे निगिण्हइ) वहां पहुंच

‘त एणं ते चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एणं) त्थार पधी (से चित्ते सारही जेणेव सेयं विया णयरी तेणेव
उवागच्छइ) ते चित्र सारथि न्यां श्वेतांशिकानगरी इती त्या गथे. (सेयं वियं नयरीं
मज्झं मज्झे ण अणुपविसइ) ते ते नगरीना मध्यमार्गधी यधने प्रविष्ट थये.
(जेणेव पएसिस्स रण्णे गिहे जेणेव वाहिरिया उवट्ठाण साला तेणेव उवागच्छइ)
प्रविष्ट थधने ते त्या गथे न्या प्रदेशी राजानुं घर इत्तुं अने न्या प्रदेशी, राजनी आद्य.

धरोदति, तद् महार्थं यावद् गृह्णाति, यत्रैव प्रदेशो राजा तत्रैव उपागच्छति, प्रदेशिनं राजानं करतल यावद् बद्धयित्वा तन्महार्थं यावत् उपनयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रस्य सारथेस्तन्महार्थं यावत् प्रतीच्छति चित्रं सारथिं सत्कारयति सम्मानयति प्रतिविसर्जयति ! ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा विसर्जितः सन्न हृष्टः यावद् हृदयः प्रदेशिनो राज्ञः

कर उसने घोड़ों को रोक (रहं ठवेइ) और रथ को खड़ा किया। (रहाओ पञ्चोरुहइ) फिर वह उस रथ से नीचे उतरा (तं महत्थं जाव गेणइ) नीचे उतर कर उसने उस महार्थ आदि विशेषणों वाले प्राभृत को हाथ में लिया (जेजेव पएसी राया तेजेव उवागच्छइ) और जहाँ प्रदेशी राजा था वहाँ गया (पएसीरायं करयल जाव बद्धावेत्ता तं महत्थं जाव उवणेइ) वहाँ जाकर के उसने प्रदेशी राजा को दोनों हाथों की अंजलि बनाकर एवं उसे मस्तकपर से जुनावन नमस्कार किया और जयविजय शब्दों का उच्चारण करते हुए उसे बधाई देकर फिर उसने उसके समक्ष लाने हुए पारितोषिक-भेट अर्पण किया (तएणं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पडिच्छइ) प्रदेशी राजाने चित्र सारथी के उस महार्थ आदि विशेषणों वाले प्राभृत को अंगीकार कर लिया (चित्तं सारहिं सत्कारेइ, सम्माणेइ पडिविसज्जेइ) और चित्र सारथी का सत्कार किया एवं सम्मान किया, बाद में उसे विसर्जित कर दिया, (तएणं से चित्रे सारही

उपस्थान थाणा डती (तुरगे निगिणइ) त्या पछोन्थिने तेणु बोडाम्भाने उवा राभ्भा, (रहं ठवेइ) अने रथने थालाव्ये, (रहाओ पञ्चोरुहइ) त्थार पछी ते रथमां नीचे उतर्ये, (तं महत्थं जाव गेणइ) नीचे उतरिने तेणु ते महार्थं वगेरे विशेषणोवाणी भेट पोताना हाथमां लीधी, (जेजेव राया तेजेव उवागच्छइ) अने जयां प्रदेशी राजा डतो त्यां गये (पएसीं राय करयल जाव बद्धावेत्ता तं महत्थं जाव उवणेइ) त्यां जधने तेणु प्रदेशी राजाने अन्ने डथेनी अंजलि बनावीने तेने मस्तक पर हेरवने नमस्कार कर्या अने जयविजय शब्दोत्तं उच्चारण करीने तेने बधामणी आपी, त्थार पछी तेणु पोतानी साथे लावेदी भेटने राजाने अर्पित करी, (तएणं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पडिच्छइ) प्रदेशी राजाने चित्रसारथिनी ते महार्थं वगेरे विशेषणोवाणी भेटने स्वीकारी लीधी, (चित्तं सारहिं सत्कारेइ, सम्माणेइ पडिविसज्जेइ) अने चित्रसारथीने सत्कार तेमज सम्मान करीने पछी तेने त्यांथी विसर्जित कर्ये, (तएणं से चित्रे सारही पएसिणा रण्णा विसज्जिए सम्माणे इइ जाव

अन्निकात् प्रतिनिष्क्रामति, यत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथस्तत्रैव उपागच्छति, चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति, श्वेतविकाया नगर्यां मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागच्छति. तुरगान् निगृह्णाति, रथं स्थापयति, रथात् प्रस्यं-वरोहति, स्नातो यावत् उपरि प्रासादमरगतः स्फुटद्विर्द्वद्वयस्तकैर्द्वीत्रिशब्द-द्वकैर्नाटकैर्वरतरणीसंपयुक्तैः उपनर्त्यमानः उपगायमानः उपलाव्यमान इष्टान् शब्दस्पर्श-यावद् विहरति ॥ सू० ११८ ॥

पएसिणा रण्णा विसर्जिए समाणे ऋष्ट जाव हियए पएसिस्स रन्नो अंति-याओ पडिनिक्खमइ जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) इस प्रकार प्रदेशी राजा द्वारा विसर्जित किया गया वह चित्र सारथि हृष्ट यावत् हृदय वाला होकर प्रदेशी राजा के पास से चला आया और जहाँ चातुर्घट अश्वरथ था वहाँ पर आ गया (चाउग्घंटे आसरहं दुरुहइ, सेय वियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) वहाँ आकर वह उस चार घटेवाले अश्वरथ पर सवार हो गया और श्वेतांबिका नगरी के ठीक मध्यमार्ग से होता हुआ अपने भवन की ओर चल दिया, (तुरगे णिगिण्हइ, रहं ठवेइ रहाओ पच्चोरुहइ, ण्हाए जाव उप्पि पासायवरगए) वहाँ आकर के उसने घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया, फिर रथ से नीचे उतरा, स्नान किया यावत् उत्तम प्रासाद के उपरिभाग में जाकर बैठ गया, (फुटमाणेहिं मुइ गमत्थएहिं वत्तीसइवद्धएहिं वरतरणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणेउ उवगाइज्जमाणेउ उवलालिज्जमाणेउ इहे सइफरिस्स जाव विहरइ) वहाँ पर

हियए पएसिस्स रन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) आ प्रमाणे प्रदेशी राजा वडे विसर्जित करायेवो ते चित्र-सारथि हृष्ट यावत् हृदयवाणो यधने प्रदेशी राजानी पासिथी आवतो रद्धो अने अथां-यातुर्घंटे अश्वरथ हुतो त्यां आण्यो. (चाउग्घट आसरह दुरुहइ, सेयं वियाए नय-रीए मज्झंमज्झे णं जेणेव सए गहे तेणेव उवागच्छइ) त्या आवीने ते यातुर्घंटावाणा अश्वरथ पर सवार थये अने श्वेतांबिका नगरीना ठीक मध्य मार्गमांथी पसार थधने पोताना लवन तरइ रवाना थयो. (तुरगे णिगिण्हइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ ण्हाए जाव उप्पि पासायवरगए) त्या आवीने तेणे घोडांयाने उला राध्या, रथ थोला-ये अने त्थारपछी रथमाथी नीचे उतर्यो. स्नान करुं यावत् उत्तम प्रासादना उपरिभागमां अधने जेसी गयो. (फुटमाणेहिं मुइ गमत्थएहिं वत्तीसइवद्धएहिं नाडएहिं वरतरणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणेउ उवगाइज्जमाणेउ उवलालिज्जमाणेउ इहे सइ

टीका—‘तएणं’ इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः सारथिः यत्रैव श्वेतविकानगरी तत्रैव उपागच्छति, श्वेतविकां नगरीं मध्यामध्येन=अनिश्चयमध्यदेशस्थितधामेण आवर्त्ती नगरीम् अनुप्रविशति, यत्रैव व्याह्या उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, तुरगान्=अश्वान् निगृह्णाति=निरुणद्धि, रथं स्थापयति, रथस्तु प्रत्यवरोहति=अवतरति, तद् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतं गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव प्रदेशी राजा तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य प्रदेशिनं राजानं करतल यावत्= करतलपरिगृहीतं दशनस्यं शिर आवर्त्त वस्त्रके अञ्जलिं कृत्वा वर्द्धयति, वर्द्धयित्वा तद् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतम् उपनयति= प्रदेशिने राज्ञे समर्पयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रस्य सारथेः सकाशात् तद् महार्थं यावत्=महार्थत्वादिविशेषणविशिष्टं प्राभृतम् प्रतीच्छति= गृह्णाति, चित्रं सारथिं सत्कारपति-आसनप्रदानादिना, सम्मानयति-वस्त्राभूषणादिप्रदानेन, ततः प्रतिविसर्जयति=गन्तुमादिशति । ततः खलु स चित्रःसारथिः प्रदेशिना राज्ञा विवर्जितः सन् हृष्ट-यावद् हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः

रहते हुए यह बजते हुए मृदङ्गों को ध्वनिपूर्वक ३२ पात्रों द्वारा अभिनीत किये नाटक को धारंवार देखकर और गानों को सुनकर एवं ललितकलाओं द्वारा हर्षित होकर अभिलषित शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध इन पांच प्रकार के कामभोगों को भोगते हुए अपने समय को निकालने लगा ।

टीकार्थ मूलार्थ के ही अनुरूप है. परन्तु जहां पर विशेषता है वह इस प्रकार से है-आसनप्रदान आदि द्वारा प्रदेशी राजाने उस चित्र सारथि का सत्कार किया, एवं वस्त्राभूषण आदि प्रदान द्वारा उसका सम्मान किया, विसर्जित किया का तात्पर्य है, जाने के लिये आज्ञा दिया. ‘हृष्ट जाव हियए’ में आगत इस यावत्पद से हृष्ट तुष्टचित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसौमनस्यतः, हर्षवश-

फरिस जाव विहरइ) त्यां रडीने तेणे मृदंगोनी ध्वनि साथे उर पात्रो द्वारा अबिनीत करायेला नाटकने वारंवार नेधने अने गीतो सांलणीने अने ललितोवडे हर्षित थधने अबिलषित शब्द, स्पर्श, रूप, रसगंध आ पांच प्रकारना कामलोगोने लोगतो पोताना समयने पसार करवा लाग्यो.

टीकार्थ—आ सूत्रने मूलार्थ प्रमाणे न छे. पणु ज्यां विशेषता छे ते आ प्रमाणे छे आसन वगेरे आपीने प्रदेशी राजाने ते चित्रसारथिने सत्कार क्यो अने वस्त्राभूषण आपीने तेहुं सम्मान क्युं विसर्जित शब्दने अर्थ छे नवा माटे आज्ञा आपी ‘हृष्ट जाव हियए’ भां आवेला यावत्. पठ्ठी “हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः

परमसौमनस्यितो हर्षवशावसर्पद्धृदयः प्रदेशेना राज्ञः आन्तेकात्=मस्यापात्
 प्रतिनिष्कामति=निर्गच्छति, यत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथः तत्रैव उपागच्छति,
 उपागत्य चातुर्घण्टम् अश्वरथं दूरोहति=आरोहति, दूरुह्य श्वेतविकाया नगर्या
 मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं=स्वकीयं गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तुरगान्
 निगृह्णाति, निगृह्य रथं स्थापयति, रथात् पत्यवतरति । ततः
 स्नातः=कृतस्नानविधिः यावत् 'यावत्'-पदेन-'कृतवलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गल
 प्रायश्चित्तः सर्वालङ्कारविभूषितः' इति सग्राह्यम् । तत्र-कृतवलिकर्मा=काका-
 दिभ्यो वितीर्णान्नभागः, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः-कृतानि=विहितानि कौतु-
 कानि=मपीतिलकादीनि मङ्गलानि==मङ्गलकराणि दुःस्वप्नादिकलनिवारणार्थं
 दध्यक्षतादीनि तान्येव प्रायश्चित्तानि-अवश्यकरणीयत्वाद् येन सः, तथा-मर्वा
 लङ्कारविभूषितः समस्ताभरणभूषितशरीरः सन् उपरिग्रामादवरगतः=उत्तमप्रा
 सादोपरिभागे समुपविष्टः स्फुटद्विः=अतिरममास्फालनात् स्फुटद्विरिव मृदङ्गम-
 स्तकैः=मृदङ्गमुखपुटैः, तथा-वरतरुणीसम्प्रयुक्तैः=अतिसुन्दरयुवतीभिरभिनीतैः
 द्वात्रिंशद्दकैः=द्वात्रिंशत्संख्यकपात्रनिबद्धैः नाटकैः उपनर्त्यमानः=स्वचरित्राभिनयपूर्व
 मभिनीयमानः, उपगीयमानः=स्वगुणगानपूर्वक गीयमानः, उपलार्यमानः=
 ललितकलाभिः प्रमोद्यमानः इष्टान्=अभिलषितान् शब्दस्पर्शयावत्=शब्दस्पर्शरूप-
 रसगन्धान् रसविधान् कामभोगान् प्रपनुषान् विहरतीति ॥ सू० ११८ ॥

विसर्पद्धृदयः' इन पदों का ग्रहण किया गया है। 'पहाए जाव उर्पि' में आगत
 यावत् पद से 'कृतवलिकर्मा, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः, सर्वालङ्कारविभू-
 षितः' इन पदों का संग्रह हुआ है। 'कृतवलिकर्मादि पदों का तात्पर्य है
 काकादिकों के लिये उसने अन्नभाग वितीर्ण किया तथा दुःस्वप्नादिकलों
 के निवारण के लिये मषीतिलक आदिरूप कौतुक तथा मङ्गलकर दध्यक्ष-
 तादिकरूप प्रायश्चित्त-अवश्य करणीय होने से किये। इनसे नीचे के पदों
 का अर्थ मूलार्थ में लिख दिया गया है ॥ सू० ११८ ॥

भीतिमनाः परमसौमनस्यितः, हर्षवशाविसर्पद्धृदयः' आ पहेलु अडलु डरवामां
 आ०थुं छे. "पहाए जाव उर्पि" भा आवेला यावत् पदथी "कृतवलिकर्मा, कृत
 कौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः सर्वालङ्कारविभूषितः' आ पहेलेना संग्रह थये छे. कृत-
 वलिकर्मादि पहेलेना अर्थ छे डगडा वगेरेने अन्न लाग अर्पये तेमज्ज दु स्वप्न वगेरे
 ने निवारणु डरवा माटे मपी तिलक वगेरे इप कौतुक तेमज्ज मङ्गलकर हडी' अक्षत
 वगेरे इप प्रायश्चित्त-अवश्यकरणीय होवाथी कथीं. येना पछीना पहेलेना अर्थी मूलार्थ
 भा ज लभवामां आ०या छे. ॥सू० ११८॥

मूलम्--तएणं से केशीकुमारसमणे अणया कयाइं पाडिहारियं पीठफलकसेज्जासंधारगं पच्चप्पिणइ । सावत्थाओ णयरीओ कोट्टगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पंचहिं अणगारसएहिं जाव विहरमाणे जेणेव केयइअद्धे जणवए, जेणेव सेयंबिया नयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, अहो पडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥सू० ११९॥

छाया-ततः खलु स केशीकुमार 'मणः अन्यदा कदाचित् प्रातिहारिक पीठफलक शय्यासंस्तारकं प्रत्यर्पयति । श्रावस्थ्या नगर्या कोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति पठच्चभिरनगारशतैर्यावत् विहरन् यत्रैव केकयाद्धं जनपदः यत्रैव श्वेताविका

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केशीकुमारसमणे अणया कयाइ पाडिहारियं पीठफलकसेज्जासंधारगं पच्चप्पिणइ) इसके बाद केशीकुमारश्रमणने किमी एक समय अर्पणीय पीठफलकशय्यासंस्तारक को वापिस कर दिया अर्थात् जहां वे कोष्ठक चैत्य- उद्यान में ठहरे हुए थे-वहां के पुरुषों को उन्होंने संभला दिया. (सावत्थीओ णयरीओ कोट्टगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ) इसके बाद वे श्रावस्ती नगरी से एवं कोष्ठकचैत्य से निकले (पंचहिं अणगारसएहिं जाव विहरमाणे जेणेव केयइअद्धे जणवए जेणेव सेयंबिया नयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) पांच सौ अनगार इनके साथ थे. अतः उनके साथ तीर्थंकर परम्परा के अनुसार विचरण करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केशीकुमारसमणे अणया कयाइं पाडिहारियं पीठफलकसेज्जासंधारगं पच्चप्पिणइ) त्थारपथी केशीकुमार श्रमणे कोष्ठक वणते अर्पणीय पीठफलक शय्या संस्कारकने पाछा आपी हीघां ओटवे के तेओश्री ने कोष्ठक चैत्यमा मुकाम कर्णे इतो. त्यांना श्येवाणने ते वस्तुओ आपी हीघी. (सावत्थीओ णयरीओ कोट्टगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ) त्थारपथी ते केशिकुमार श्रमणे ते श्रावस्ती नगरीथी अने कोष्ठक चैत्यमांथी नीकल्या. ओटवे के विहार कर्णे. (पंचहिं अणगारसएहिं जाव विहरमाणे जेणेव केयइअद्धे जणवए जेणेव सेयंबिया नयरी जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) पांचसो अनगार तेओश्रीनी साथे इता. आम तेओश्री आ अधानी साथे तीर्थंकर परंपरा

नगरी यत्रैव मृगवनमुद्यान तत्रैव उपागच्छति, यथाप्रतिरूपमवग्रहपवग्रहय संयमेन तपसा आत्मान आवयन् विहरति ॥ सू० ११९ ॥

टीका--'तएगं केसी इत्यादि—व्याख्या निगदसिद्धा नवरम्-केशी कुमारमणो मृगवनोद्यानस्थितस्य कस्यचित् पुरुषस्य स्तोककालिकमवग्रहमव ग्रहय तिष्ठति । वनपालावग्रहादीनामग्रे चक्ष्यमाणत्वात् ॥ सू० ११९ ॥

मूलम्--तएणं सेयंविद्याए नयरीए सिंघाडगं सहया जणसहेइ वा० परिसा निगगच्छइ । तएणं ते उज्जाणपालगा इभीसे कहाए लड्डुा समाणा हट्टुतुडु जाव हियया जेणेव केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छंति केसि कुमारसमणं- वंदंति नमंसंति अहापडिख्वं उगगह अणुजाणांति, पाडिहा- रिणं जाव संथारणं उवनिमंतंति णामं गोयं पुच्छति ओधा- रेति एगं तं अवक्कमंति अन्नमन्नं एवंवयासी-जस्स णं देवाणु-

विहार करते हुए क्रमशः वहां आये जहां के कयाद्धं जनपद-देश था, उसमें भी जहां वह श्वेतांनिका नगरी थी और उसमें भी जहां वह मृगवन नामका उद्यान था (अहापडिख्वं उगगहं उगिणित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) वहां आकर वे यथाप्रतिरूप अवग्रह प्राप्त--करके संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

व्याख्या स्पष्ट है-नवरम्-केशीकुमारश्रमण मृगवनोद्यानस्थित किसी पुरुष की कुछ समयतक ठहरने के लिये आज्ञा प्राप्त कर ठहर गये, वन-पाल एवं अवग्रहादिकों के विषय में सूत्रकार आगे कथन करेंगे ॥ सू० ११९ ॥

मुज्जम विचरथु करतां अेकं गामथी भीजे गाम विहार करतां अत्रुक्कमे न्या धेक्थाद्धं जनपद-देश विशेष इतो अने तेभा पथु न्या धेता- भिका नगरी इती अने तेभा पथु न्या मृगवन नामे उद्यान इतुं त्या पडोअ्या. (अहापडिख्वं उगगहं उगिणित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) त्या पडोअ्याने तेओश्रीअे तथा प्रतिइय अवग्रह प्राप्त करीने संभम अने तपथी पोताना आत्माने लावित करता विचरथु करवा लाग्या.

आ सूत्रने टीकाथे स्पष्ट छे 'नवरम्' केशीकुमार श्रमण मृगवन उद्यान पादकनी पासेथी रडेवानी आज्ञा भेणवीने त्यां देशां गया. व नपाल अने अवग्रह वगेरेनी आभतभां सूत्रकार इवे पछी कडेशे ॥ सू० ११९ ॥

पिया । चित्ते सारही दंसणं कंखेइ, दंसणं पत्थेइ, दंसणं पीहेइ,
 दंसणं अभिलभेइ, जस्स णं णामगोयस्सवि सवणयाए हट्टुत्तु
 जाव हियए भवइ से णं एस केसीकुमारसमणे पुठ्वाणुपुठ्ठि चरमाणे
 गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इहसंपत्ते इह समोसठे इहेव सेयंबियाए
 णधरीए वहिया उज्जाणे अहापडिरुव्वं जाव विहरइ, तं गच्छामो णं
 देवाणुपिया ! चित्तस्स सारहिस्स एयगट्ठं निवेदेमो पियं से भवउ ।
 अणमणस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणंति, जेणेव सेयंबिया णयरी,
 जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव उवाग-
 च्छंति, चित्तं सारहिं करयल जाव वद्धावेति, एवं वयासी-जस्स णं
 देवाणुपिया । दंसणं कंखंति जाव अभिलसंति, जस्स णं णामगो-
 यस्सवि सवणयाए हट्टु जाव भवंति, से णं अयं केसीकुमारसमणे पुठ्वा-
 णुपुठ्ठि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे
 समोसठे जाव विहरइ ॥ सू० १२० ॥

छाया—ततः खलु श्वेतविकाषां नगर्यां शृङ्गाटक० महान् जनशब्द
 इति षा० परिषद् निर्गच्छति । ततः खलु ते उद्यानपालका अस्याः कथाया

‘तएण सेयंबियाए नयरीए’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं सेयंबियाए नयरीए सिंघाडग० महया जणसइइ षा०
 परिस्ता निगच्छइ) इसके बाद श्वेतांबिका नगरी में शृङ्गाटक आदि मार्गों
 के ऊपर उपस्थित हुई अपार जनमेदिनी से परस्पर बातचीत आदि हुई।
 परिषदा निकली (तएणं ते उज्जाणपालगा इमीसे कहाए लद्धट्टा समाणा

‘त एणं’ सेयंबियाए नयरीए’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं सेयंबियाए नयरीए सिंघाडग० महया जणसइइ षा०
 परिस्ता निगच्छइ) त्थार पछी श्वेतांबिका नगरीमां शृङ्गाटक वगेरे भांगी पर
 येकत्र थयेला मानवसमाजमां परस्पर-वातचीत वगेरे प्रारंभ थछ परिषदा नीकणी.
 (त एणं ते उज्जाणपालगा इमीसे कहाए लद्धट्टा समाणा हट्टुत्तु जाव हियया

लब्धार्थाः सन्तः हृष्टतुष्ट यावद् हृदया यत्रैव केशीकुमारश्रमणः तत्रैव
उपागच्छन्ति केशिनं कुमारश्रमणं वन्दन्ति नमसन्ति यथाप्रतिरूपमवग्रह-
मनुजानन्ति, प्रातिहारिकेण यावत् संस्तारकेण उपनिमन्त्रयन्ति, नामगोत्रं
पृच्छन्ति, अवधारयन्ति, एकान्तमपक्रामन्ति, अन्योन्यमेवमवादिषुः—यस्य
खलु देवानुप्रियाः? चित्रः सारथिः दर्शनं काङ्क्षति, दर्शनं प्रार्थयति, दर्शनं
स्पृहयति, दर्शनमभिलषति, यस्य खलु नामगोत्रस्यापि श्रवणतया हृष्टतुष्ट-

हृष्टतुष्ट जाव हियया जेणेव केशीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छति) इसके बाद वे
उद्यानपाल जब इस बात से निश्चितमतिवाले हो गये. तब हृष्ट तुष्ट यावत्
हृदयवाले होते हुए वे जहां केशीकुमारश्रमण थे—वहां पर आये. (केशि-
कुमारसमणं वंदन्ति, नमसन्ति, अहापडिरुव उगगहं अणुजाणति) वहां आकर
उन्होंने केशीकुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार- किया एवं यथारूप अवग्रह
आज्ञा उन्होंने दिया. (पाडिहारिणं जाव संधारणं उवनिमन्तति) तथा
समर्पणोय (प्रातिहारिक) यावत् संस्तारक आदि से उन्हें उपनिमन्त्रित
किया. (णाम गोयं पुच्छति ओधारंति, एगं तं अवक्कमंति, अन्नमन्नं एव वयासी)
नामगोत्र पूछा। उसे हृदय में धारण किया। फिर वे एकान्त में गये और वहां जाकर
उन्होंने आपस में इस प्रकार से बातचीत की (जस्स णं देवाणुप्पिया। चित्ते
सारही दंसणं कखेइ दंसणं पीहेइ, दंसणं अभिलसेइ) हे देवानुप्रियो ! जिनके
दर्शन चित्र सारथि चाहता है, जिनके दर्शन की वह प्रार्थना करता है,
जिनके दर्शन की वह स्पृहा रखना है, जिनके दर्शन की वह अभिजावावाञ्छा

जेणेव केशीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छति) त्थार पछी ते उद्यानवाले ज्यारे
आ भावतमा निश्चित मतिवाणा थया त्थारे तेज्जे हृष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाणा थधने
ज्या केशीकुमार श्रमणु उता त्या आव्या°(केशिं कुमारसमणं वंदन्ति, नमसन्ति,
अहापडिरुव उगगहं अणुजाणति) त्या आवीने तेमणु केशीकुमार श्रमणुने
वदना करी नमस्कार कर्था अने यथा कल्पनीय वस्तुज्जे तेज्जे श्रीने आपी. (पाडिहा
रिणं जाव संधारणं उवनिमन्तति) - तेमज्ज समर्पणीय यावत् संस्तारक
वगेरे अपीने तेज्जे श्रीने उपनिमन्त्रित कर्था. (णाम गोयं पुच्छति ओधारंति,
एगं तं - अवक्कमंति, अन्नमन्नं - एव वयासी) नाम-गोत्र पूछ्यां अने तेने
हृदयमा धारणु कर्था. त्थारपछी ते सर्वे ज्जेकतमा गया त्या जधने तेमणु परस्पर
आ अभाणु वातचीत करी डे (जस्स णं देवाणुप्पिया ! चित्ते सारही दंसणं
क खेइ, दंसणं पत्थेइ, - दंसणं पीहेइ, दंसणं अभिलसेइ) हे देवानुप्रियो !
चित्रसारथी जेज्जे श्रीना दर्शनोनी छच्छा धरावे छे, जेज्जे श्रीना दर्शनोनी भाटे तेज्जे
प्रार्थना करे छे, जेज्जे श्रीना दर्शनोनी ते स्पृहा धरावे छे, जेज्जे श्रीना दर्शनोनी

यावद्दहदयो भवति स खलु एष केशीकुमारश्रमणः पूर्वाणुपूर्वी चरन् ग्रामानु-
ग्रामं द्रवन् इहागतः, इहसंपाप्तः, इह समवसृतः, इहैव श्वेतविकाया नगर्या
बहिर्मृगवने उद्याने यथाप्रतिरूपं यावद् विहरति, तद् गच्छामः खलु देवा-
नुप्रियाः ! चित्रस्य सारथेः एतमर्थं प्रियं निवेदयामः, प्रियं तस्य भवतु ।
अन्योन्यस्यान्तिके एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, यत्रैव श्वेतविका नगरी यत्रैव चित्रस्य

हे. (जस्स णं णामगोयस्स वि. सवणयाए हट्टतुट्ट जाव हिथए भवइ) तथा
जिनके नामगोत्र के भी श्रवण से जो हट्टतुष्ट यावत् हृदयवाला होता है
(से णं एस केशीकुमारसमणे पुव्वाणुपुण्वि चरमाणे गामाणुगामं इहज्जमाणे
इहमागए) वे ये केशीकुमारश्रमण तीर्थंकर परम्परा के अनुसार चिचरते
हुए एवं एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करते हुए यहां आये हैं ।
(इह संपत्ते) यहां प्राप्त हुए हैं । (इहसमोसठे) यहां समवसृत हुए हैं ।
(इहैव सेयवियाए णयरीए बहिया उज्जाणे अहापडिस्सु जाव विहरइ)
इसी श्वेतांविका नगरी के बाहर उद्यान में यथाप्रतिरूप अवग्रह प्राप्तकर
यावत् विराजते हैं । (तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया । चित्तस्स सारहिस्स
एयमट्ठं पियं निवेदामो पियं से भवउ) तो हे देवानुप्रियों ! चले और
चित्र सारथि के इस प्रिय अर्थ का उनसे निवेदन करें, हमारा यह निवे-
दन उन्हें बड़ा ही प्रिय लगेगा (अणमणस्स अतिए एयमट्ठ पडिसुणेति)

ने अलिखापा राणे छे. (जस्सण णामगोयस्स वि सवणयाए हट्टतुट्ट जाव हिथए
भवइ) तेमण् लोओश्रीना नाम गोत्रना श्रवणुथी ञ् ञे हट्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाणे
थं णय छे. (से णं एस केशीकुमारसमणे पुव्वाणुपुण्वि चरमाणे गामाणु-
गामं इहज्जमाणे इहमागए) तेओश्री केशीकुमार श्रमणु तीर्थंकर परंपरा
मुण्ण विचरणु करता अने ओइ गामथी णीणे गाम विहार करता अडीं पधार्या छे.
(इह संपत्ते) अडीं प्राप्त थया छे (इह समोसठे) अडीं समवसृत थया छे.
(इहैव सेयवियाए णयरीए बहिया उज्जाणे अहापडिस्सु जाव विहरइ)
आ श्वेताणिका नगरीनी उद्यानमा उद्यानमा यथाप्रतिरूप अवग्रह प्राप्त करीने यावत्
विजते छे. (तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! चित्तस्स सारहिस्स एयमट्ठं पियं
निवेदामो पियं से भवउ) त्थारे हे देवानुप्रियो ! आपणे चित्र सारथिनी पासे
अर्थे आ प्रिय अभाचार विषे तेमने अणर आपीओ, अभाडी आ अणर तेमने
अणर अमर्थे, (अणमणस्स अतिए एयमट्ठं पडिसुणेति) आ प्रभाणे तेओ
अथा अणरपर केइ णीणरती वातने ओइमत अर्थे स्वीकारी वे छे. त्थार पथी (जेणेव

सारथेर्गृहं यत्रैव चित्रः सारथिस्तत्रैवोपागच्छन्ति चित्रं सारथिं करतल-
यावद् वर्द्धयन्ति, एवमवादिषुः- यस्य ग्वञ्जु देवानुप्रियाः दर्शनं कार्ष्णिन्ति,
यावत्-अभिलषन्ति, यस्य खलु नामगोत्रस्यापि श्रवणतया हृष्ट यावद् भवन्ति
स खल्वयं केशीकुमारश्रमणः पूर्वानुपूर्विं चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् इहैव
उद्याने मृगवने समवसतः यावद् विहरति ॥ सू० १२० ॥

टीका-‘तएणं सेयवियाए’ इत्यादि। व्याख्या निगदसिद्धा ॥मृ. १२०॥

इस प्रकार की बातचीत को वे स्वीकार कर लेते हैं। बाद में (जेणेव सेयंबिया
णयरी, जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव उवागच्छंति)
वे जहां श्वेतांबिका नगरी थी और उसमें भी जहां चित्र सारथि का गृह
था एवं वहां पर भी जहां चित्र सारथी था वहां पर आये (चित्तं सारहिं कर-
यल जाव वद्धावेंति, एवं वयासी) वहां आकर के उन्होंने चित्र सारथि के
प्रति बड़े दिनय के साथ अपने दोनों हाथों को अंजलि बनाकर उसे
मस्तक पर से छुमाते हुए नमस्कार किया। तथा जयविजय शब्दों का
उच्चारण कर उसे बधाई दी और फिर ऐसा कहा-‘जस्स णं देवाणुप्पिया !
दंसणं कंखंति, जाव अभिलसंति, जस्स णं नामगोयस्स वि सवणयाए
हट्ट जाव भवति, से णं अयं केशीकुमारसमणे पुब्बाणुपुर्विं चरमाणे गामा-
नुगामं दूडज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे समोसढे जाव विहरइ’ हे देवानुप्रिया!
आप जिसके दर्शन की चाहना रखते हैं, यावत् अभिलाषा रखते हैं तथा
जिसके नामगोत्र के भी श्रवण से भी आप हृष्टतुष्ट यावत् हृदय वाले
हो जाते हैं वे ये केशीकुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वीं से विचरते हुए, एक ग्राम से

सेयविया णयरी, जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे जेणेव चित्ते सारही तेणेव
उवागच्छंति) तेणो ञ्था श्वेताणिका नगरी इती अने तेमा पणु ञ्था चित्रसारथी
इती त्या ञ्था (चित्तं सारहिं करयल जाव वद्धावेंति, एवं वयासी) त्या पडोचीने
तेमणु चित्रसारथिने ञ्हुण नअपणु अन्ने इथेनी अंजलि ण्णावीने अने तेने
मस्तक पर इस्वीने नमस्कार कर्यां तेमणु ञ्थविजय शब्दोत्तुं उच्चारणु करीने तेने
वधाभणी आथी. अने पछी तेने आ प्रभाणु इधु. (जस्सणं देवाणुप्पिया ! दंसण
कखति. जाव अभिलसति, जस्स णं नामगोयस्स वि सवणयाए हट्ट जाव
भवति, से णं अयं केशीकुमारसमणे पुब्बाणुपुर्विं चरमाणे गामानुगामं
दूडज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे समोसढे जाव विहरइ’) हे देवानुप्रिय !
तमे ञ्जेणोश्रीना दर्शनोनी छच्छा धरावता इता, यावत् अभिलाषा राधता इता
तेमणु ञ्जेणोश्रीना नामगोत्रना श्रवणु मात्रथी ञ् तमे हृष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवा

मूलम्--तएणं से चित्ते सारही तेसि उजाणपालगाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म हट्टुट्टु जाव आसणाओ अब्भुट्टेइ पायपीढाओ पच्चो-
रुहइ, पाउयाओ ओमुयइ, एगलाडियं उत्तरासंगं करेइ, अंजलिम-
उलियग्गहत्थे--केसिकुमारसमणाभिमुहे सत्तट्टुपयाइं अ गुगच्छइ, क-
यलपरिग्गहियं सिरसावत्तं सत्थए अंजलिकट्टु एवं वयासी-नमोऽत्थुणं
अरहंताणं जाव संपत्ताणं, नमोऽत्थुणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम
धम्मोयरियस्स धम्मोवदेसगस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए,
पासउ मे तत्थगए इहगयं तिकट्टु वंदइ नमंसइ, ते उजाणपोलए विउ-
लेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ विउल जीवियारिहं
पीइदाणं दलयइ पडिविसज्जेइ । कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, एवं वयासी
-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घट आसरहं जुत्तमेव उवट्टुवेह
जाव पच्चप्पिणह । तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जाव खिप्पामेव सच्छत्त
संज्झय जाव उवट्टुवित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति तएणंसे चित्ते सारही
कोडुंबियपुरिसाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुट्टु जाव हियए
पहाए कयबलिकम्मे जाव सरीरे जेणेव चाउग्घंटे जाव दुरूहिता
सकोरंठ० महया भडचडगर० तं चेव जाव पज्जुवासइधम्मकहा ।सू, १२१।

दूसरे ग्राम में विहार करते हुए यहां मृगवन नामके उद्यान में आये हुए
हैं यावत् तपे और संयम से आत्माको भावित करते हुए ठहरे हैं।

इसकी व्याख्या मूलार्थ के जैसी ही है ॥ १२० ॥

यद्य नन्वो छे तेन्नोश्री केशीकुमारश्रमणु पूर्वानुपूर्वीथी विचरणु करतां ओक गाभथी
णीने गाभ विहार करतां अहीं मृगवन नामना उद्यानमां पधारेत्ता छे. यावत् तप
अने संयमथी पोताना आत्माने भावित करता विराने छे.

आ सूत्रनी व्याख्या मूलार्थ प्रमाणे न छे. ॥१२०॥

छाया--ततः खलु स चित्रः सारथिः तेषामुद्यानपालकानामन्तिके एत
मर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टं तुष्टं यावद् आसनाद् अभ्युत्तिष्ठति प्रापादपीठा
त्प्रत्यवरोहति पादुके अवमुञ्चति एकशाटिकमुत्तरासङ्गं करोति, अञ्जलिमु-
कुलिताग्रहस्तः केशिकुमारश्रमणाभिमुखः सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति करतल
परिगृहीतं शिरसावत्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्-नमोऽस्तु खलु

‘तएण से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं से चित्ते सारही तेमि उज्जाणपालगाणं अंतिए
एयमट्टं) इसके बाद वह चित्र सारथि उन उद्यानपालको के पास से इस
अर्थ में—वृत्तान्त को (सोच्चा निसम्म हट्टतुट्टं जाव आमणाओ अब्भुट्टेइ)
चुनकर एवं उसे हृदय में धारण कर बहुत अधिक हृष्ट एवं संतुष्ट
चित्त हुआ यावत् वह अपने आसन से उठा. (पायपीठाओ पच्चोरुहइ)
और पादपीठ—(चरण रखने का आसन) के उपर पग रखकर वह नीचे उतरा
(पाउयाओ ओमुघइ) पादुकाएं उसने उतार दी (एगसाडिय उत्तरासंगं करेइ)
एकशाटिक उत्तरासंग किया। (अंजलिमउलियग्गहत्थे केशिकुमारसमणा
भिहे सत्तट्टपयाइ अणुगच्छइ) फिर उसने अपने दोनों हाथों को जोड़कर
अंजलिरूप में परिवर्तित किया और केशीकुमारश्रमण के अभिमुख होकर
अर्थात् जिस ओर केशीकुमार श्रमण विराजमान थे उस ओर सात आठ
पण तक आगे जाकर (करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु
एवं वयासी) वहां जाकर उसने अपने दोनों हाथों की बड़े विनय के साथ

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एण) से चित्ते सारही तेमि उज्जाणपालगाणं अंतिए
एयमट्टं) त्थार पछी ते चित्रसारथि ते उद्यानपालकाना मुण्णथी आ अर्थने वृत्तान्तं
(सोच्चा निसम्म हट्टतुट्टं जाव आमणाओ अब्भुट्टेइ) सालणीने अने तेने उद्दयमा
धावणु करीने पृथग्ग उध अने स तुष्ट चित्तवाणो थयो यावत् ते पोताना आसन परथी उल्लो थयो
(पायपीठाओ पच्चोरुहइ) अने पादपीठ (पग भूक्खात्तु आसन विशेष) पर पग भूक्खीने नीचे उतरा
(पाउयाओ ओमुघइ) अने पगमा पड़ेरेवी पावडीयो उतारी दीधी (एगसाडिय उत्तरा-
संगं करेइ) एकशाटिक उत्तरासंग करी (अंजलिमउलियग्गहत्थे केशिकुमार
समणाभिमुहे सत्तट्टपयाइ अणुगच्छइ) त्थार पछी तेणु पोताना अने उधो
लेडीने अणुलि अनावी अने केशीकुमारश्रमणनी सामे मुण्ण करीने अट्ठे के ले
दिशा तरइ केशीकुमार श्रमण विराजमान उता ते तरइ सात आठ पण सुधी सामे
गया. (करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी)

अर्हद्भ्यो यावत्-सम्प्राप्तेभ्यः, नमोऽस्तु खलु केशिने कुमारश्रमणाय मम धर्माचार्याय धर्मोपदेशकाय, वन्दे खलु भगवन्तं तत्रगतमिहगतः पश्यतु मे तत्रगत इहगतम्. इति कृत्वा वन्दने नमस्यति, तान् उद्यानपालकान् विपुलेन वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण सत्करोति संमानयति विपुल जीवितार्हं प्रीतिदानं ददाति प्रतिविसर्जयति। कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, एवमवासीत्-

अंजलि बनाई और उसे मस्तक पर से तीन बार घुनाकर इस प्रकार पाठ पढ़ने लगा—(नमोऽस्तुभ्यं अरहंताणं जाव संपत्ताणं, नमोऽस्तुभ्यं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए) अर्हन्त भगवन्तो को नमस्कार हो यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए हैं. मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक केशीकुमारश्रमण को नमस्कार हो. यहां रहा हुआ मैं यहां पर भृगवनीयान में विराजमान आपको नमस्कार करता ह। (पासउ में तत्थगए इहगयं त्तिक्कहु वंदइ नमंसइ) वहां रहे हुए वे भगवान् यहां रहे हुए मुझे देखे इस प्रकार कहकर उसने वन्दना की, नमस्कार किया, (ते उज्जाणपालए विउलेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ) इस तरह परोक्षविनय करके फिर उसने उन उद्यानपालकों का विपुल वस्त्र गंध, मालाएवं अलंकारों से सत्कार किया (सम्माणेइ) सम्मान किया. (विउलं जीवियारिहं पीईदाणं दलयइ) और अन्त में उनके लिये विपुल मात्रा में जीविकायोग्य प्रीतिदान दिया (पडिविसज्जेइ) फिर

त्यां जन्ने तेणु पोताना जन्ने डथिनी षण्ण नअपणु अंजलि जनावी अने तेने मस्तक पर त्रणु वथत हेरवीने आ प्रमाणु ते पाठतुं उच्यारणु करवा लाग्ये— (नमोऽस्तुभ्यं अरहंताणं जाव संपत्ताणं, नमोऽस्तुभ्यं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए) अर्हन्त भगवन्ताने मारा नमस्कार छे डे जेओश्रीओ यावत् सिद्धिगति नामकस्थानने प्राप्त कथुं छे. मारा धर्माचार्य धर्मोपदेशक केशीकुमारश्रमणने नमस्कार छे. अहीथी ज हुं त्या भृगवनीयधामा विराजमान आपश्रीने नमस्कार कइं थुं. (पासउ में तत्थगए इहगयं त्तिक्कहु वंदइ नमंसइ) त्यां विराजमान ते भगवान् अहीं विधमान भने जुअे आ प्रमाणु अहीने तेणु वंदना करी नमस्कार- कथी. (ते उज्जाणपालए विउलेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ) आ प्रमाणु परोक्ष विनय करीने तेणु ते उद्यानपालकेने विपुल वस्त्र, गंध, मालाओ अने अलंकारे वडे सत्कार कथी. (सम्माणेइ) सम्मान कथुं. (विउलं जीवियारिहं पीईदाणं दलयइ) अने छवटे तेभने विपुल मात्राभां लिविकायोग्य प्रीतिदान आप्थु. (पडिविसज्जेइ)

क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! चतुर्घण्टमश्वरथ युक्तमेव उपस्थापयन् यावत् प्रत्यर्पयत । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषा यावत् क्षिप्रमेव सच्छत्र मध्वजं यावत् उपस्थापयित्वा तामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति । ततः खलु स चित्रः सारथिः कौटुम्बिकपुरुषाणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निगम्य हृष्टतुष्ट यावद् हृदयः म्नातः कृन्बलिर्मर्मा यावत्-शरीरः यत्रैव चातुर्घण्टो यावद् दूरुह्य सकोरण्टं महता भटचडकरं तदेव यावत् पयुपास्ते धर्मकथा ॥मृ० १२१ ॥

विसर्जित कर दिया (कौटुम्बिकपुरिसे सदावेइ) तदनन्तर सने अपने आज्ञकारी सेवकों को बुलाया (सदावित्ता एव वयासी) बुलाकर उनसे ऐसा कथा (खिप्पामेव भो देवानुप्रिया ! चाउग्रघटं आसरहं जुत्तामेव उवद्वेह जाव पञ्चपिणह) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही चार घटों वाले अश्वरथ को घोडाओं से युक्त करके उपस्थित करो, यावत् फिर हमें इसकी खबर दो (तएणं ते कौटुम्बिकपुरिसा जाव खिप्पामेव सच्छत्त सज्जयं जाव उवद्वित्ता तमाणत्तियं पञ्चपिणत्ति) इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषोंने यावत् बहुत ही शीघ्र छत्र एव ध्वजा से युक्त करके उस चार घटोंवाले अश्वरथ को घोडाओं से युक्त कर उपस्थित कर दिया और पीछे इस खबा को उसके पास दिया. (तएणं से चित्ते सारथी कौटुम्बिकपुरिसाणं अतिण ण्यमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुट्ट जाव हिजए ण्हाए कयवन्निकम्मे जाव सरीरे चाउग्रघटे आसरहे जाव दुरुहित्ता सकोरण्टं महया भडचडगरं तं चेव जाव पज्जुवासइ धम्मकहा) तब उस चित्र सारथिने कौटुम्बिक

त्यार पछी तेभने (विसर्जित कर्या (कौटुम्बिकपुरिसे सदावेइ) त्यार भाद तेणु पोत्तान्ना आसाडारी सेवकेने भोलाव्या (सदावित्ता एव वयासी) भोलावीने तेभने आ प्रमाणे कथु. (खिप्पामेव भो देवानुप्रिया ! चाउग्रघट आसरहं जुत्तामेव उवद्वेह जाव पञ्चपिणह) हे देवानुप्रियो ! तमे बोडे सत्वरे चार घटोवाणा अश्वरथने घोडाओथी सन्न करीने अही उपस्थित करो, यावत् पछी अमने ण्णर आपो. (तएणं ते कौटुम्बिकपुरिसा जाव खिप्पामेव सच्छत्त सज्जयं जाव उवद्वित्ता तमाणत्तियं पञ्चपिणत्ति) त्यार पछी ते कौटुम्बिक पुरुषोंने यावत् शीघ्र छत्र अने ध्वजाथी सुसन्नित करीने ते चार घटाओवाणा अश्वरथने घोडाओथी युक्त करीने उपस्थित करीने अने तेनी अणर पथु तेनी पास पटोवाडी दीधी. (तएणं से चित्ते सारथी कौटुम्बिकपुरिसाणं अतिण ण्यमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टुट्ट जाव हिजए ण्हाए कयवन्निकम्मे जाव सरीरे चाउग्रघटे आसरहे जाव दुरुहित्ता सकोरण्टं महया भडचडगरं तं चेव जाव पज्जुवासइ धम्मकहा) ते चित्र सारथिने कौटुम्बिक पुरुषोंना मुअथी अश्वरथ तोथां थयं ववानी

‘तएणं से चित्ते’ इत्यादि ।—व्याख्या निगदमिद्धा । नवरम्-चित्र
सारथिगमनवर्णनमेकादशाधिकशततमसूत्रे, विलोकनीयम् ॥ १२१ ॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही केशिकुमारसमणस्स अंतिए
धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुत्तुं तहेव वयासी—एवं खलु भंते ! अम्मं
पएसी राया अधम्मिए जाव सयस्स वि णं जणवयस्स नो सम्मं कर-
भरवित्ति पवत्तेइ, तं जइणं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइ-
क्खेज्जा बहुगुणतरं खलु होज्जा पएसिस्स रण्णो तेसिं गं च बहूणं दुपय
चउप्पयमियपसुपक्खिसारिसावाणं, तेसिं च बहूणं समणमाहण-

पुरुषों के मुख से अश्वरथ के तैयार हो जाने की बात सुनकर और
उसे हृदय में धारण कर हृष्टतुष्ट यावत् हृदय होते हुए स्नान किया,
बालिकर्म-अर्थात्-काकआदि पक्षियों के लिये अन्न का भाग दिया यावत्
बहुमूल्य अल्पभारवाले आभूषणों से अलंकृत शरीर होकर जहा चार घटों-
वाला अश्वरथ था वहाँ आया. यावत् उस पर वह बैठ गया. उसके बैठते
ही छत्रधारीने उस पर कोरण्टपुष्पों की माला से युक्त छत्र तान दिया,
विशाल षटों की भीड़ आकर उसके दोनों ओर उपस्थित हो गई. वहाँ
पहिले का अवशिष्ट ओर सब कथन करना चाहिये, यावत् उसने केशि-
कुमारश्रमण की पर्युपासना की. केशिकुमारश्रमणने धर्मोपदेश दिया ।

टीकार्थ—इसही व्याख्या स्पष्ट है । नवरं-चित्रसारथी के गमन का
वर्णन १११वे सूत्र में देखना चाहिये ॥ सू. १२१ ॥

वात सालणीने अने हृदयमा धारणु करीने उष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाणे थधने स्नान
कथुं . अलिकर्म अटवे के कागडा वगेरे पक्षीओने भाटे अन्न लाग अर्पित कथो.
यावत् बहुमूल्य अल्पभारवाणा आभूषणोथी पोताना शरीरने अलंकृत कथुं अने
त्यार पछी ते ज्यां थारधटोवाणे अश्वरथ हुतो त्या आव्यो. यावत् तेमां जेसी गयो.
ते जेठो तारे छत्रधारीओजे केरट पुष्पोनी भाणाथी युक्त छत्र तेनी उपर ताण्युं.
ते वधते विशाण थोद्धाओनी लीड तेनी आसपास आवीने जेकडी थध गध. अही
पडेलां न' जेमज अधुं कथन समजवु जेधजे यावत् तेने केशिकुमारश्रमणुनी पर्यु-
पासना करी, केशिकुमारश्रमणे धर्मोपदेश आव्यो.

टीकार्थ—आ सूत्रनो स्पष्ट न नवरं-चित्रसारथीनुं गमननु वर्णन १११ भा
सूत्र प्रमाणे समजवुं जेधजे ॥ १२१ ॥

भिक्रपुयाणं तं जडं देवाणुप्पिया। पएसिस्स बहुगुणत्तरं होज्जा,
सयस्स वि णं जणवयस्स ॥ सू. १२२ ॥

छाया--ततः खलु अ चित्रः सारथिः केगिनः कुमारश्रमणस्यान्तिके
धर्मं श्रुत्वा निश्चयं हृष्टतुष्टं तथैव एवमवादीत्-एव खलु भदन्त! अस्माकं
प्रदेशी राजा अधार्मिकः यावत् स्वकर्म्यापि खलु जनपदस्य नो सम्यक्
करभरवृत्तिं प्रवर्त्तयति तद् यदि खलु देवानु प्रिय ! प्रदेशिने राज्ञे धर्ममा-
रुग्यायात् (तदा) बहुगुणतरं खलु भवेत्, प्रदेशिनो राजस्तेषां च बहूनां
द्विपद्मदुष्पदमृगपशुरक्षित्रीसृष्टाणां, तेषां च बहूनां श्रमणमाहनभिक्षुका-

‘तए णं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ--(तए णं) इसके बाद (से चित्ते सारही) उस चित्र सारथिने
(केसिस्स कुमारसमणस्स) केशीकुमारश्रमण के (अतिए) पास धम्मं सोच्चा
निसम्म हृष्टतुष्टं तथैव एवं वयासी) धर्मका उपदेश सुनकर और उसे हृदय में
धारण कर हृष्टतुष्टचित्त वाला हुआ एवं आनंद से विभोर होकर प्रीतिमनवाला
हुआ. इस तरह परमसौमनस्यित होकर वह बोला (एवं खलु भंते ! अम्हं
पएसी राया अहम्मिए जाव सयस्स वि णं जणवयस्स नो सम्मं करभरवृत्तिं
पवत्तेइ) हे भदन्त ! हमारा प्रदेशी राजा अधार्मिक है यावत् वह अपने
देशके प्राप्त कर से भरणपोषणरूप व्यवहार को ठीक तरह से नहीं चलता है-
(तं जडं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइवखेज्जा बहुगुणत्तरं होज्जा,
पएसिस्स रण्णो तेषिं च बहूणं दुपयचउत्पयमियपसुपक्खिसरीसवाण) तो

‘तए णं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ--(तए णं) त्थार पछी (से चित्ते सारही) ते चित्र सारथीअ
(केसिस्स कुमारसमणस्स) केशीकुमार श्रमणनी (अतिए) पासैथी (धम्मं सोच्चा
निसम्म हृष्टतुष्टं तथैव एवं वयासी) धर्म विषे उपदेश सांभणीने अने तेन
उदयसा धारणु करीने उष्ट-तुष्ट चित्तवाणे थथे अने आनंदित थथेने प्रीतिथुकतमनवाणे
थथे. आ प्रमाणे परमसौमनास्थित थथेने ते ओढ्ये. (एवं खलु भंते ! अम्हं
पएणी राया अहम्मिए जाव सयस्स वि णं जणवयस्स नो सम्मं करभर-
वृत्तिं पवत्तेइ) हे भदन्त ! हमारे प्रदेशी राजा अधार्मिक छे यावत् ते पोताना
देशना बोधे पासैथी कर भेणवीने पणु प्रणत्तुं लरणु-पोपणु-तेमज् रक्षणु करतो नथी.
(तं जडं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइवखेज्जा बहुगुणत्तरं होज्जा,
पएसिस्स रण्णो तेषिं च बहूणं दुपयचउत्पयमियपसुपक्खिसरीसवाण)

णाम् । तद् यदि खलु देवानुप्रिय ! प्रदेशिनो बहुगुणतरं भवेत्, स्वक-
स्यापि च खलु जनपदस्य ॥ सू० १२२ ॥

टीका—‘तए णं से चित्ते’ इत्यादि—ततः=तदनन्तर खलु स चित्रः
सारथिः केजिनः कुमारश्रमणस्य अन्तिके=जमीने धर्मं जिनोक्तं श्रुत्वा=कर्णं
गोचरीकृत्य निशम्य=हृद्यवधार्य हृष्टतुष्ट तथैव=पूर्ववदेव हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः
प्रीतिमनाः परमसोमनस्थितः हर्षवशाद्विसर्पद्दहृदयः, इति संग्राह्यम् ।
अर्थस्तु पूर्व गतः । एवमवादीत्—किमवादीत् ? इत्याह—एवं खलु यत् हे भगवन्
अस्माकं प्रदेशी राजा अधार्मिकः यावत्—यावत्पदेन—अधर्मिष्ठादीनि सर्वाणि-
विशेषणानि एकशततमप्रत्रोक्तानि मञ्जुह्याणि, एषामर्थोऽपि तत्रैव विशेषो-

यदि आप हे देवानुप्रिय ! उस प्रदेशी राजा को जिनप्ररूपित धर्म का उप-
देश देवे तो वह उस प्रदेशी राजा के लिये और परलोक में बहुत गुण-
कारी होगा, तथा अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी एवं सरीसृप-
सर्प आदिकों का हितवाह होगा (तेसिं च बहुणं समणमाहणमिक्खु-
याणं) और उन अनेक श्रमण माहण, भिक्षुका के लिये बहुत ही अधिक
आमदायक होगा (त जइ णं देवाणुप्पिया ! पणस्सिस्स बहुगुणतरं होजा,
सयस्स चि य णं जणवयस्स) यदि वह धर्मो देश प्रदेशी राजा का हित-
कारक हो जाना है तो उसका जनपद—देश का इससे बड़ा भरा होगा ।

टीकार्थ इसको स्पष्ट है । ‘हृष्टतुष्ट तथैव एव वयासी’ में ‘तथैव’ पद
से ‘हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः, प्रीतिमनाः, परमसोमनस्थितः, हर्षवशाद्विसर्पद्दहृदयः’
इस पाठ का ग्रहण हुआ है, इन पदों का अर्थ पहिले लिखा जा चुका है ।
‘अधर्मिण जाव’ में आगत पद से ‘अधर्मिष्ठ’ आदिक विशेषणों का ग्रहण

जे आप देवानुप्रिय ते प्रदेशी राजने जिन प्ररूपित धर्मो देश आपो तो ते
प्रदेशी राजने आ बोध अने पबोध अतीव गुणकारी थाय अने धणां द्विपद, चतु-
ष्पद, मृग, पशु, पक्षी अने सरीसृप अटवे डे आप वगेरेना माटे पणु हितवाह थाय.
(तेसिं च बहुणं समणमाहणमिक्खुयाणं) अने ते धणां श्रमण माहणु भिक्षुकेना माटे
पणु अतीव हितवाह अर्थ थाय. (तं जइ णं देवाणुप्पिया ! पणस्सिस्स बहुगुणतरं

होजा, समस्स चि य णं जणवयस्स) जे आपने धर्मोपदेश प्रदेशी राज पोताना
अने ते तेनं पोतानुं अने तेना जनपद—देशतुं पाणु तेनाथी धणुं इथ्याणु थाय तमं छे.

आ अने धर्मो अर्थ स्पष्ट छे “हृष्ट तुष्ट तथैव वयासी ‘आ’ तथैव”
अर्थ “हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसोमनस्थितः, हर्षवशा-
द्विसर्पद्दहृदयः” अर्थ अने अर्थ धर्मो के आ अर्थ पदोना अर्थ पहिले स्पष्ट
अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ ‘अधर्मिण जाव’ आ आयेह यावत् पदोनी ‘अधर्मिष्ठः’

कनोयः, स स्वकस्यापि जनपदस्य=देशस्य करभरवृत्ति-करेण भरः-भरण-पोषणं, तद्रूपां वृत्तिं=व्यवहारं नो सम्यक् प्रवर्त्तयति, तद् यदि खलु हे देवानुप्रिय । प्रदेशिने राज्ञे भवान् धर्मं जिनप्ररूपितम् आख्यायात्-कथयेत् तदा प्रदेशिनो राज्ञः बहुगुणतरम्-दृहलोकपरलोकसफलीकरणलक्षणं दयादानादिरूपं वाऽत्यन्तगुणं भवेत् ! तथा बहूनां द्विपदचतुष्पदपशुपक्षिसरीसृपाणाम्-तत्र-द्विपदा =दासीदासादयः चतुष्पदाः ये मृगाः=आरण्याः, पशवः=ग्राम्या गोमहिष्यादयः, सरीसृपाः=भुजपरिसर्पाः-गोधादयः उरःपरिसर्पाश्च सर्पादयः, तेषां बहुगुणतरं=पालनरक्षणरूपं भवेत् तथा-श्रमणमाहनभिक्षुकाणाम्-तत्र-श्रमणाः=शाक्यादयः, माहनाः=ब्राह्मणाः, भिक्षुकाः=भिक्षाजीविनः तेषां च बहुगुणतरम्=भिक्षालाभरक्षणादिरूपमतिशयगुणं भवेत् । तत् यदि खलु भदन्त । प्रदेशिनो राज्ञो बहुगुणतरं भवेत् तदा तस्य स्वकस्यापि जनपदस्य=देशस्य बहुगुणतरं योगक्षेमलक्षणं भवेदिति ॥ सू० १२२ ॥

हुआ है। ये सब विशेषण १०१ सूत्र में कहे जा चुके हैं। वहीं पर उनका अर्थ भी लिख दिया है। 'बहुगुणतरम्' का तात्पर्य उस प्रदेशी राजा को इस लोक एवं परलोक को सफल करनेरूप बहुगुण वाला अथवा दयादानादिरूप अत्यन्तगुणवाला होगा। दासीदास आदि द्विपद से, भृगादि चतुष्पद से, ग्राम्य गोमहिष आदि पशुपद से, भुजपरिसर्प गोधादिक, एवं उरःपरिसर्प सर्पादिक, सरीसृप पद से गृहीत हुए हैं। इन द्विपदादिकों का पालन रक्षणरूप बहुगुणतरगुणवाला वह धर्मोपदेश होगा। शाक्यादिक श्रमण शब्द से ब्राह्मण माहन शब्द से, तथा भिक्षाजीवी भिक्षु पद से लिये गये हैं। इन सबके लिये भिक्षालाभ एवं संरक्षणादिरूप अतिशय गुणवाला वह धर्मोपदेश होगा ॥सू. १२२॥

वगेरे विशेषणानुं अडणु समन्वुं नेधये आ अथा विशेषणो १०१ मा सूत्रमा आवेला छे. येनो अर्थ पणु ते सूत्रमा न स्पष्ट करवामा आये छे. 'बहुगुणतरम्' नो अर्थ आ प्रमाणे छे के ते धर्मोपदेश ते प्रदेशी राजाना माटे आ लोकने तेमज परलोकने सक्षण अनाववा इप अहुगुणवाणो थशे अथवा तो दया दान वगेरे इप अत्यन्त गुणवाणो थशे. द्विपदथी दासी दास वगेरे चतुष्पदथी मृग वगेरे, पशुपदथी ग्राम्य गोमहिष वगेरे, सरिसृप पदथी भुजपरिसर्प गोधादिक अने उरःपरिसर्प-सर्पादिकनु 'सरीसृपा पदथी अडणु थयुं छे आ द्विपद वगेरेना माटे पालन रक्षणरूप अहुतर गुणवाणो ते धर्मोपदेश थशे श्रमण शब्दथी शाक्य वगेरे, माहन शब्दथी ब्राह्मण तेमज भिक्षुपदथी भिक्षालाभानुं अडणु करवामा आयु छे आ सर्वना माटे संरक्षण तेमज भिक्षा लाभ वगेरेथी अधर्मोपदेश अतिशय गुणवाणो थशे. ॥सू० १२२॥

मूलम्—तएणं से केसीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयाली-
 एवं खलु चउहिं ठाणेहि चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभेजा,
 सवणयाए, तं जहा— आरामगयं वा उज्जाणगयं वा समणं वा
 माहणं वा णो अभिगच्छइ णो वंदइ णो णमंसइ णो सक्कारेइ णो
 सम्माणेइ णो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेइ, नो अट्टाइं
 हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छेइ, एएणं ठाणेणं चित्ता !
 जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए । (१) उवस्सयगयं
 समणं वा तं चेव जाव एएणवि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं
 धम्मं नो लभइ सवणयाए । (२) गोयरग्गयं समणं वा माहणं
 वा नो जाव पज्जुवासइ, नो विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडि-
 लाभइ० नो अट्टाइं जाव पुच्छइं, एएणं ठाणेणं चित्ता । जीवे केवलि-
 पन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए । (३) जत्थं वि णं समणेणं वा
 माहणेणं वा सद्धिं अभिसमागच्छइं तत्थं वि णं हत्थेण वा वत्थेण
 वा छत्तेण वा अप्पाणं आवरित्ता चिट्ठइं, नो अट्टाइं जाव पुच्छइं,
 एएणवि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं णो
 लभइ सवणयाए, (४) एएहिं च णं चित्ता ! चउहिं
 ठाणेहिं जीवे नो लभइ केवलपन्नत्तं धम्मं सवणयाए ।
 चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं लभइ सवण-
 याए, तं जहा—(१) आरामगयं वा उज्जाणगयं वा समणं वा माहणं
 वा वंदइ नमंसइ जाव पज्जुवासइ अट्टाइं जाव पुच्छइं, एएण ठाणेणं
 चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए । एवं [२] उव-
 स्सगयं० [३] गोयरग्गयं समणं वा जाव पज्जुवासइ, विउलेणं जाव

पडिलाभेइ अट्टाइं जाव पुच्छइ, एएण वि० (४) जत्थ वि य णं समणेण
 वा० अभिसमागच्छइ तत्थवि य णं णो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता
 चिट्ठेइ, एएणवि ठाणेणो चित्ता ! जाव केवल्लिपन्नत धम्मं लभइ
 सवणयाए । तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगयं वा तंचेव
 संब्वं भाणियव्व आइल्लएणं गमएणं ज'व अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ
 तं कहं णं चित्ता ! पएसिस्स रन्नो धम्मसोइक्खिस्सामो ? ॥सू०१२३॥

छाया-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिम् एवमवादीत्-एवं खलु
 चतुर्भिः स्थानैः चित्र ! जीवः केवल्लिपन्नत धर्मं नो लभने श्रवणनायै, तद्यथा-
 (१) आरामगत वा उद्यानगत वा श्रमणं वा माहन वा नो अभिगच्छति, नो
 वन्दते, नो नमस्यति, नो सत्करोति, नो सम्मानयति, नो कल्याणं मङ्गलं
 देवतं चैत्यं पर्युपास्ते, अर्थान् हेतून् प्रश्नान् कारणानि व्याकरणानि पृच्छति

‘तए णं से केशीकुमारमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ- (तए णं से) इसके बाद (केशीकुमारमणे) केशीकुमारश्रमणने
 (चित्तं सारहिं) चित्र सारथि से (एवं वयासी) ऐसा कहा- (एवं खलु चउहिं
 ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवल्लिपन्नतं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए) हे चित्र !
 जीव चार कारणों से केवल्लिपन्नत धर्म को सुन नहीं सकता है । (तं जहा-
 आरामगयं वा उज्जाणगयं वा, समणं वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो
 णमंसइ, णो सकारेइ, णो सम्माणेइ, कल्लण मंगल देवय चेइयं पज्जुवासइ)
 जैसे-आराम में आये हुए या उद्यान में आये हुए श्रमण के वा माहन के

‘तए णं से केशीकुमारमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थः- (तए णं) त्वा २५७ (केशीकुमारमणे) केशीकुमारश्रमणे चित्र
 सारहिं) चित्रसारथिने (एवं वयासी) आ प्रभाणे उल्लु (एवं खलु चउहिं
 ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवल्लिपन्नत धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए) हे चित्र !
 एव चार कारणेने लीधे केवली प्रजस धर्मतु श्रमणु इगी शकतो नथी (तं जहा-
 आरामगयं वा उज्जाणगयं वा, समणं वा माहनं वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो
 णमंसइ, णो सकारेइ, णो सम्माणेइ, णो कल्लणं मंगलं देवयं चेइयं
 पज्जुवासइ) जैसे आराममा पधारेलो हे उद्यानमा पधारेलो श्रमणु हे सवणया

एतेन स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्तं धर्मं नो लभते श्रवणतयै । (२)
उपाश्रयगतं श्रमणं वा तदेव यावत् एतेनापि स्थानेन चित्र ! जीवःकेवलि
प्रज्ञप्तं धर्मं नो लभते श्रवणतयै । (३) गोवराश्रयगतं श्रमणं वा माहनं वा

सन्मुख सत्कार आदि करने के निमित्त जो नहीं जाता है, मधुर वचनों से जो सुखशातादि प्रश्नपूर्वक उनकी स्तुति नहीं करता है, उनके समक्ष अपने मस्तक को जो नहीं झुकाता है, अभ्युत्थानादि द्वारा जो उनका सत्कार नहीं करता है, वसति आदि के देने से जो उनका सन्मान नहीं करता है, तथा कल्याणस्वरूप, मंगलस्वरूप, धर्मदेवस्वरूप मानकर एवं विशिष्टज्ञान वाला मानकर जो उनकी पर्युपासना नहीं करता है, (नो अद्वाइ, हेऊइं पसिणाइं, कारणाइं, वागरणाइं पुच्छेइं) अर्थ को—जीवाजीवादिक पदार्थों को, हेतुओं को—अन्यथानुपपत्तिरूप साधनों को, प्रश्नों को, कारणों को, व्याकरणों को, नहीं पूछता है, (एएणं ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइं सवणयाए) इस कारण से हे चित्र ! जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं सकता है। यह प्रथम कारण है। (१) (उवस्सययं समणं वा तं चेत्र, जाव एएणं वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइं सवणयाए) उपाश्रय में आये हुए श्रमण के सत्कार आदि करने के निमित्त जो उनके समक्ष नहीं जाता है यावत् उनसे व्याकरणों को नहीं पूछता है, ऐसा जीव इस द्वितीय कारण से भी केवल प्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं सकता है। (२)

सामे जे सत्कार वगेरे करवा भाटे जेतो नथी, मधुर वचनोथी सुखशातादि प्रश्नपूर्वक तेमनी स्तुति करतो नथी, तेमनी सामे पोतानुं मस्तक नम्र लावे नभावतो नथी, अभ्युत्थान वगेरे वडे जे तेमने सत्कारतो नथी, वसति वगेरेआपीने तेमनुं सन्मान करतो नथी तेमज्ज कल्याणु स्वरूप, मंगलस्वरूप, धर्मदेवस्वरूप मानीने अने विशिष्टज्ञान सपन्न मानीने जे तेमनी पर्युपासना करतो नथी (नो अद्वाइं, हेऊइं, पसिणाइं, कारणाइं वागरणाइं, पुच्छेइं) अर्थोने—एव अएव वगेरे पदार्थोने, हेतुओने अन्यथानुपपत्तिरूप साधनोने, प्रश्नोने कारणोने, व्याकरणोने पूछतो नथी, (एएणं ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइं सवणयाए) हे चित्र ! आ कारणुने लीधि जे एव केवल प्रज्ञप्त धर्मनुं श्रवणु करी शकतो नथी. आ पडेहुं कारणु छे (१) (उवस्सययं समणं वा तं चेत्र, जाव एएणं वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं नो लभइं सवणयाए) उपाश्रयमा पधारेला श्रमणु के भाडणुने सत्कार वगेरे करवा भाटे जे तेमनी सामे जेतो नथी. यावत् तेमने व्याकरणु विषे प्रश्न करतो नथी. आ जतने एव आ पीने कारणुथी पणु केवलप्रज्ञप्त धर्मनुं

नो यावत् पर्युपास्ते नो विपुलेन अशनपानवाद्यस्वाद्येन प्रतिलम्बयति०
 नो अर्थान् यावत् पृच्छति, रतेन स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञस
 धर्मं ना लभते श्रवणतायै । (४) यथापि खलु श्रमणेन
 वा माहनेन वा साद्विम्बु अभिपमागच्छति, यथापि खलु हन्तेन वा वस्त्रेण
 वा छत्रेण वा आत्मानमावृत्य तिष्ठति, नो अर्थान् यावत् पृच्छति एतेना-
 पि स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञस धर्मं नो लभते श्रवणतायै, एतश्च खलु
 चित्र ! चतुर्भिः स्थानैर्जीवः नो लभते केवलप्रज्ञस धर्मं श्रवणतायै ॥

(गोयरगगयं समणं वा माहणं वा नो जाव पञ्जुवासई, नो विउलेण
 असणपाणस्वाहमसाहमेणं पडिलाभइ० नो अट्टाडं जाव पुच्छइ
 एए णं ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं ने लभइ सवणयाए)
 गोचरी के लिये-भिक्षा के लिये-गाव में आये हुए श्रमण के या माहण
 का जो स्कार आदि करने के निमित्त उनके समक्ष नहीं जाता है, यावत्
 उनकी पर्युपासना नहीं करता है. तथा विपुत्र अशन, पान, स्वाद्य, स्वाद्यरूप चार
 प्रकार के आहार द्वारा जो उन्हें प्रतिश्रुति नहीं करता है, और जो
 अर्थ से लेकर व्याकरणक उनसे नहीं पूछता है वह जीव है चित्र ! इस
 तृतीय कारण से भी केवलप्रज्ञस धर्म को सुन नहीं सकता है (३)
 (जत्थ वि णं समणेणं वा साहणेणं वा सद्धिं अभिपमागच्छइ, तत्थ वि ण
 हत्थेण वा वत्थेण वा छत्तण वा, अप्पाणं आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्टाडं जाव
 पुच्छइ, एए णं ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं णो लभइ सवणयाए एएहिं
 च णं चित्ता ! चउहिं ठाणेहिं जीवे नो लभइ, केवलपन्नत्तं धम्मं सवणयाए) इसी

श्रवणु करी शक्तो नथी. (२) (गोयरगगयं समणं वा माहणं वा नो जाव पञ्जुवा-
 सह, नो विउलेणं असणपाणस्वाहमसाहमेण पडिलाभइ० नो अट्टाडं जाव
 पुच्छइ एए णं ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवल पन्नत्तं धम्मं लभइ
 सवणयाए) गोचरी भाटे-भिक्षा भाटे गावमा आवेला श्रमणु डे माहुणु वगेरेने
 सत्कार वगेरे करवा भाटे ने तेमनी सामे जतो नथी, यावत् तेमनी पर्युपासना करतो
 नथी, तेमने विपुल अशन, पान, आद्य, स्वाद्यउप चार प्रकारना आहारवडे ने तेमने
 प्रतिवासित करतो नथी अने ने अर्थथी भाडीने व्याकरणु सुधीना षधा विषयेना
 भाषतमा तेमने प्रश्नो पूछतो नथी हे चित्र ! ते एव आ त्रीणु श्रवणवडे पणु
 केवलि प्रज्ञस धर्मतुं श्रवणु करी शक्तो नथी (३) (जत्थ वि णं समणेणं वा
 साहणेणं वा सद्धिं अभिपमागच्छइ, तत्थ वि णं हत्थेण वा वत्थेण वा छत्तेण
 वा, अप्पाणं आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्टाडं जाव पुच्छइ, एए णं ठाणेणं
 चित्ता ! जीवः केवलपन्नत्तं धम्मं णो लभइ सवणयाए एएहिं च णं चित्ता !
 चउहिं ठाणेहिं जीवे नो लभइ, केवलपन्नत्तं धम्मं सवणयाए) आ प्रभाते

चतुर्भिः स्थानैः चित्र । जीवः केवलप्रज्ञप्त धर्मं लभते श्रवणतायै, तद्यथा
(१) आरामगत वा उद्यानगतं वा श्रमणं वा माहनं वा वन्दते नमस्यति यावत्
पर्युपास्ते, अर्थान् यावत् पृच्छति, एतेन स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्तं
धर्मं लभते श्रवणतायै, एवं (२) उपाश्रयगतम् । (३) गोचराप्रजनं श्रा। वा

प्रकार जो श्रमण अथवा माहन के साथ संगत हो जाता है वहा पर भी यह श्रमण
अथवा माहन मुझे पहिचान न ले इस हेतु से जो अपने आपको हाथसे
वा वस्त्र से या छत्र से आवृत कर लेता है एवं उनसे प्रश्नादि कुछभी
नहीं पूछता है हे चित्र ! इस चतुर्थ कारण से भी जीव केवलप्रज्ञप्त
धर्म को सुन नहीं पाता है. (४) इस प्रकार हे चित्र ! ये चार कारण हैं कि
जिनकी वजह से यह जीव केवली भगवान् द्वारा कहे गये धर्म को सुन नहीं
पाता (चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए)
हे चित्र ! चार कारणों से जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है (तं जहा-
आरामगयं वा उज्जागगयं वा समणं वा माहणं वा वंदइ, नमंसइ जाव
पज्जुवासइ) ये चार कारण इस प्रकार से हैं-आरामगत या उद्यानगत
श्रमण को या माहण को जो वंदना करता है नमस्कार करता है, यावत्
उनकी पर्युपासना करता है (अट्टाइ जाव पुच्छइ) अर्थों को यावत् पूछता है
(एएण ठाणेण चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए) इस
कारण को लेकर हे चित्र ! वह जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता (१)
है, एवं (उवस्सगयं०) इसी प्रकार जो जीव उपाश्रयों में आये हुए श्रमण

के श्रमण के माहणनी सामे आवी जतां ते श्रमण के माहण तेने ज्योणणी वे नडि
ते माटे के पोतानी जतने हाथवडे, के वस्त्र वडे के छत्रवडे छूपावी वे छे अने
तेमने प्रश्न वगेरे कुछ पूछतो नथी हे चित्र ! आ योथा कारणथी पणु एव केवलि
प्रज्ञप्त धर्मं तु श्रवणु करी शकतो नथी. (४) आ प्रमाणे हे चित्र ! आ चार कारणोने
लीधे ज एव केवलीभगवान वडे कहेला धर्मं तु श्रवणु करी शकतो नथी. (चउहिं
ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए) हेचित्र ! चार
कारणोथी एव केवलि-प्रज्ञप्त धर्मं तु श्रवणु करी शके छे. (तं जहा--आरामगयं वा
उज्जागगयं वा समणं वा माहणं वा, वंदइ, नमंसइ जाव पज्जुवामइ) ते
चार कारणो आ प्रमाणे छे-आराममां पधारेला के उद्यानमां पधारेला श्रमणुने के
माहणुने के वंदन करे छे नमस्कार करे छे, यावत् तेमनी पर्युपासना करे छे. (अट्टाइ
जाव पुच्छइ) अर्थोने यावत् पूछे छे. (एएण ठाणेण चित्ता ! जीवे केवलि
पन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए) आ कारणुने लीधे हे चित्र ! ते एव केवलि प्रज्ञप्त

यावत् पर्युपास्ते, विपुलेन यावत् प्रतिलम्भयति, अर्थात् यावत् पृच्छति, एतेनापि, (४) यत्रापि च खलु श्रमणेन वा० अभिसमागच्छति तत्रापि च खलु नो हस्तेन वा यावत् आवृत्य तिष्ठति, एतेनापि स्थानेन चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्त धर्मलभते श्रवणनायै, न च खलु चित्र ! प्रदेशी राजा आरामगत वा तदेव सर्वं भणितव्यम् आदिमेन गमकेन यावद् आत्मानमावृत्य तिष्ठति, तत्कथं खलु चित्र ! प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यास्यामः ? ॥ सू० १२३ ॥

से या माहण से उनको वन्दना करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, पर्युपासना करता हुआ अर्थों को यावत् पूछता है, ऐसा जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है, (२) (गोयरगगयं समणं वा जाव पञ्जुवासइ, विउलेणं जाव पडिलाभेइ, अट्टाइं जाव पुच्छइ, एणं वि०) इसी प्रकार जो जीव गोचरीगतश्रमण की या माहण की यावत् पर्युपासना करता है, विपुल आहार से उन्हे प्रतिशमित करना है, उनसे अर्थों को यावत् पूछता है— वह जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है, (३) (जत्थं वि य णं समणेण वा० अभिसमागच्छइ, तत्थं वि य णं गो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता चिट्ठेइ) जहां पर भी श्रमण या माहण के साथ संगत होता है वहां पर जो जीव अपने आप को हाथ से यावत् आवृत्य छुगता नहीं है ऐसा वह जीव इस चतुर्थ कारण को लेकर केवलप्रज्ञप्त निनधर्म का श्रवण कर सकता है (४) (तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगयं वा तं चैव सव्वं भाणियव्वं आइल्लएणं गमएणं जाव अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ तं कहं णं चित्ता !

धर्मनुं श्रवणु करी शके छे, (१) एव प्रभाणु (उवम्मयगय ०) आ प्रभाणु ने एव उपाश्रयोमा आवेला श्रमणुने के माहणोने वन्दन करतो, नमस्कार करतो, पर्युपासना करतो, अर्थेनि यावत् पूछे छे, एवो एव केवलप्रज्ञप्त धर्मनुं श्रवणु करी शके छे, (२) (गोयरगगयं समणं वा जाव पञ्जुवासइ, विउलेणं जाव पडिलाभेइ, अट्टाइं जाव पुच्छइ, एणं वि०) आ प्रभाणु ने एव गोचरी माटे नीकणेला श्रमणुनी के माहणुनी यावत् प्रयुपासना करे छे विपुल आहारथी तेमने प्रतिवासित करे छे तेमने अर्थो विषे यावत् पूछे छे ते एवकेवलप्रज्ञप्त धर्मनुं श्रवणु करे छे, (३) (जत्थं वि य णं समणेण वा अभिसमागच्छइ तत्थं वि य णं गो हत्थेण वा जाव आवरेत्ता चिट्ठेइ) श्रमणु के माहणु गमे त्या भणे ने एव तेओश्रीनेजेधने पोतानी नतने पोताना हाथो वडे यावत् आवृत्य करतो नथी एवो ते एव आ बोधा शस्त्रुने दीये केवलप्रज्ञप्त निनधर्मनुं श्रवणु करी शके छे (४) (तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगयं वा तं चैव सव्वं भाणियव्वं आइल्लएणं गमएणं जाव

टीका—'तएणं केशी' इत्यादि—

ततः खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिम् एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण
अवादीत्=उक्तवान्—हे चित्र ! एवं खलु त्वं विजानीहि, यत् चतुर्भिःस्थानैः
=कारणैः जीवःकेवलप्रज्ञप्तं=तीर्थकृदुपदिष्ट धर्मं श्रवणतायै=श्रोतुं नो लभते=
नो प्राप्नोति, तद्यथा—आरामगतम्—आरामः=विविधपुष्पजात्युपशोभितः, तत्र
गतं=प्राप्तं वा, उद्यानगतम्—उद्यानं=पुष्पफलोपेतवृक्षोपशोभितं बहुजनसेव्यम्
उद्यानिकास्थानं=तत्र गतं=प्राप्तं वा श्रमणं साधुं वा माहनं=त्रयधारितं
श्रावकं वा नो अभिगच्छति=सत्काराद्यर्थं नो अभिमुखं याति, नो वन्दते=

पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खस्सामो) हे चित्र ! तुम्हारा प्रदेशीराजा
आराम आदिगत श्रमण के या माहण के न सन्मुख आता है यावत् न
उनकी पर्युपासना वरता है, इत्यादि प्रथम गम से लेकर वह
चौथे गम तक युक्त बना हुआ है तो फिर मैं उसके लिये किस प्रकार
से केवलप्रज्ञप्त धर्म का उपदेश दूँ।

टीकार्थ—केशीकुमारश्रमणने चित्र सारथीसे जो कुछ कहा है वह
इस सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है—इसमें यह समझाया गया है कि कौन
जीव किन २ कारणों से केवलप्रज्ञप्त धर्म सुन सकता है और कौन जीव
किन २ हीं कारणों से उसे नहीं सुन सकता है, केवलप्रज्ञप्त धर्म की अप्राप्ति
में प्रथम कारण यह है कि श्रमण या माहण-१२ व्रतों का पालनकर्ता-
गृहस्थ जब किसी उद्यान में-विविध पुष्पों से या फलों से युक्त वृक्षों
से शोभित ऐसे अनेकजनसेव्य बगीचे में या आराम में-विविध प्रकार की

अप्यार्ण आवरेत्ता चिट्ठइ तं कहं णं चित्ता ! पएसिस्स रन्नो धम्ममाइ
क्खस्सामो) हे चित्र ! तमारे प्रदेशी राजा आराम के उद्यानमां आवेत्ता श्रमण
के माहणुनी सामे सत्कारवा जतो नथी यावत् तेमनी पर्युपासना पणु करतो नथी
अने आ प्रमाणे ते प्रथम गमथी मांडीने योथा गमथी युक्त अनेलो छे तो पछी
हुं तेने केवलप्रज्ञप्तधर्मनो उपदेश देवी रीते आयुं ?

टीकार्थ—केशीकुमार श्रमणे चित्रसारथीने जे कछ कह्यु छे ते आ सूत्र वडे स्पष्ट
करवामां आयुं छे, आ सूत्रवडे आ प्रमाणे समजववामां आयुं छे के क्यो एव
शा शा करणोने लीधे केवलप्रज्ञप्त धर्मनु श्रवणु करी शके छे अने क्यो एव शा
शा कारणोथी तेनुं श्रवणु करी शकतो नथी, केवलप्रज्ञप्त धर्मनी अप्राप्तिमां पडेड
कारणु अये भताववामां आयुं छे के श्रमणु के माहणु-१२ व्रतोनु पालन करार
गृहस्थ-ज्यारे गमे ते उद्यानमां-विविध पुष्पोथी के इणोथी युक्त वृक्षोथी शोभित
अनेके जनसेव्य बगीचां के आराममां-अनेके जतनी पुष्प नतिओथी युक्त

मधुरवचनैः सुखशातादिप्रश्नपूर्वकं नो स्तौति, नो नमस्यति=नतमस्तको न भवति, नो सत्कारयति=अभ्युत्थादिना, नो सम्मानयति=वसत्यादिप्रदानेन, 'कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यम्' तत्र-कल्याणं=कल्याणस्वरूपम्, मङ्गलं=मङ्गलस्वरूपम्, दैवतं=धर्मदेवस्वरूपम्, चैत्यं-चितिः=विशिष्टज्ञानं, तथायुक्तं विशिष्टज्ञानवन्तं मत्वा नो पर्युपास्ते=नो सेवते. अर्थान् हेतून् प्रश्नान् कारणानि व्याकरणानि नो पृच्छति । तत्र-अर्थान् जीवाजीवादिपदार्थान्, हेतून्=अन्यथानुपपत्तिरूपान्, जीवा देवादिगतिं कथं प्राप्नुवन्ति-इति स्वरूपान्. आत्मना सह कर्मणः कथं सम्बन्धो जायते? इति रूपान् वा, प्रश्नान्=संग्रहानोदार्थं जीवाजावादिस्वरूपप्रच्छनावेषयाम, कारणानि='जीवस्य ज्ञानादि त्रयं केन कारणेनोत्पद्यते?' इत्यादिरूपाणि, यद्वा-‘चतुर्गन्तिलक्षणसंसारभ्रमणं

पुष्पजाति से युक्त स्थान में आया हुआ हो, तब उस समय जो जीव उनकी सत्कृति निमित्त उनके सामने नहीं जाता है, मधुर वचनों से उनकी सुखशाता नहीं पूछता है, उनको स्तुति नहीं करता है, उनके पास नत-मस्तक नहीं होता है, अभ्युत्थान आदि क्रिया से उनका सत्कार नहीं करता है, वसति आदि प्रदान द्वारा कल्याणस्वरूप, मंगलस्वरूप, धर्मदेवस्वरूप, एवं विशिष्ट ज्ञानयुक्त उन्हें मानकर जो उनकी सेवा नहीं करता है. उनसे अर्थों को-जीवाजीवादि पदार्थों को, अन्यथानुपपत्तिरूप हेतु को, जैसे कि जीव देवादिगति में कैसे जाते हैं अथवा-आत्माके साथ कर्मों का संबंध होता है ऐसे हेतु को.-प्रश्नों को-संशयादिमें को दूर करने के लिये जीव अजीव आदि के स्वरूप को पूछनेरूप प्रश्नों को जीवको ज्ञानादित्रय किस कारण से उत्पन्न होते हैं इत्यादिरूप कारणों को, अथवा चतुर्गन्तिरूप संसारभ्रमण किम कारण से होता है? इत्यादिरूप कारणों को, पृष्टक-जीवादिक के स्वरूप में

स्थान-भा आवेला होय, त्यादे ते सभये जे एव तेमना सत्कार भाटे तेमनी सामे जतो नथी, मधुर वचने वडे तेमनी सुख शाता पृछतो नथी, तेमनी स्तुति करतो नथी, तेमनी सामे नम्रलावे मस्तक नभावतो नथी अल्युत्थान वगेदे क्रियाथी तेमने सत्कार करतो नथी, वसति वगेदे आपीने तेमने कल्याण स्वरूप, मंगलस्वरूप, धर्म-देवस्वरूप, अने विशिष्ट ज्ञानयुक्त भांनीने जे तेमनी सेवा करतो नथी, तेमने अर्थोने एवाएवादि पदार्थोने, अन्यथानुपपत्तिरूप हेतुने, जेभडे एव देवादि गति देवी रीते भेजवे छे के आत्मानी साथे कर्मोनी संबंध होय छे जेवा हेतुने, प्रश्नने-संशय-वगेदेने दूर करवा भाटे एव अएव वगेदेना स्वरूपने लखवा भाषतना प्रश्नोने ज्ञानादित्रय एवने देवी रीते प्राप्त थाय छे वगेदे उप शब्दोने, अथवा तो चतुर्गन्ति

केन कारणेन भवति' इत्यादि रूपाणि, व्याकरणानि=पृष्ठम्य जीवादिस्वरूपस्य उत्तरतया प्रश्नान्तरकरणरूपाणि, तानि नो पृच्छति-एतेन स्थानेन=कारणेन चित्र । जीवः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं श्रवणतायै=श्रोतुं नो लभते-इति प्रथमं स्थानम् । द्वितीयमाह-उपाश्रयगतम्-उपाश्रयो=वसतिः, तत्र गतं श्रमण वा, इतो ऽग्रे-'माहनं वा' इत्यारभ्य 'व्याकरणानि पृच्छति' इत्यन्तः सकलोऽपि पूर्वोक्तः पाठो ग्राह्यः अमूमेवार्थं सूचयितुमाह-तं चेव जाव' इति । हे चित्र ! एतेनाऽपि स्थानेन=कारणेन जीवः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं श्रवणतायै=श्रोतुं नो लभते इति द्वितीयं स्थानम् । तृतीयमाह-गोचराग्रगतं=भिक्षार्थं ग्रामाभ्यन्तरे प्रविष्टं श्रमणं वा माहनं वा नो 'यावत्' यावत्पदेन-'अभिगच्छति, नो वन्दते, नो

प्राप्त किये गये उत्तर में पुनः प्रश्नान्तर करनेरूप व्याकरणों को, नहीं पूछता है, इस कारण से जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं सकता है-इस प्रकार से यह प्रथम स्थान का निरूपण है। द्वितीयस्थान का कारण निरूपण इस प्रकार है-उपाश्रय-में जाकर श्रमण को, अथवा माहन को, जो जीव प्राप्त करके यावत् व्याकरणों को नहीं पूछता है, हे चित्र ! इस कारण से भी जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं पाता है, यहां 'तं चेव यावत्' पद से 'माहनं वा' यहां से लेकर 'व्याकरणानि पृच्छति' वहां तक का सम्पूर्ण पाठ ग्रहण किया गया है। इसी अर्थ की सूचना 'तं चेव जाव' पद से दी गई है। तृतीयस्थान इस प्रकार से है-श्रमण या माहन भिक्षा के लिये ग्राम के भीतर आया हो, परन्तु जो जीव उनके समक्ष नहीं जाता है, उनको वन्दना नहीं करता है उन्हें नमस्कार नहीं करता है, उनका

इय संसारभ्रमणु शा कारणुथी होय छि वगेरे इय कारणेने, पृष्ठ लुवादिङ्कना स्वइय विषे ने उत्तर आपवामां आवे ते विषे इरी सामे प्रश्नोत्तर करवा इय, व्याकरणेने पूछतो नथी, आ-कारणुथी एव केवलि प्रज्ञप्त धर्मनु श्रवणु करी शकतो नथी. आ-प्रमाणे आ प्रथमस्थाननुं निरूपणु छि. द्वितीयस्थानना कारणनुं निरूपणु आ-प्रमाणे छि. उपाश्रयमां वधने श्रमणुने के माहणुने प्राप्त करीने ने एव यावत् 'व्याकरणेने पूछतो नथी. हे-चित्र ! आ कारणुथी पणु एव केवलिप्रज्ञप्त धर्मनुं श्रवणु करी शकतो नथी. अही "तं चेव यावत्" पदथी 'माहनं वा' अहीथी मांडीने 'व्याकरणानि पृच्छति' अही सुधीने सम्पूर्ण पाठ ग्रहणु करवामां आव्ये छि अथ अर्थने 'तं चेव जाव' पदथी सूचित करवामां आव्ये छि. तृतीय स्थान आ-प्रमाणे छि.-श्रमणु के माहणु गोचरी माटे-भिक्षा माटे-गाममां आवेला होय अथी परि-स्थितिमां ने एव तेमनी सामे वतो नथी, तेमने वंदन करतो नथी तेमने नमस्कार

नमस्यति, नो सत्कारयति, नो म मानयति, नो कल्याणं मङ्गल दै।त चैन्यम्,
इति संग्राह्यम्, पर्युपास्ते, तथा-विपुलेन=प्रचुरेण अशनपानखाद्यस्वाद्येन=
अशनादिना चतुर्विधेनाहारेण नो प्रतिबन्धयति-अशनादिकं श्रमणाय माह-
नाय वा नो ददाति, अर्थात् यात्-यावत्पदेन-हेतून् प्रश्नान् कारणानि
व्याकरणानि' इति संग्राह्यम् नो पृच्छति। एतेन=उपर्युक्तन कारणेन हे
चित्र! जीवः केवलप्रज्ञप्तं धर्मं श्रवणतयै=श्रोतु नो लभते-इति तृतीयं
स्थानम् ३। चतुर्थस्थानमाह-यत्रापि=एस्मिन् कस्मिंश्चिदपि स्थाने खलु श्रम
णेन=साधुना वा महानेन=द्वादशव्रतधारिणा वा मर्द्धे=सह अभिनमागच्छति=
सगतो भवति, तत्रापि खलु 'अयं श्रमगो वा माहनो वा मां न परिचिनुयात्'
इति हेतुः आत्मानं=स्व हस्तेन वा वस्त्रेण वा छत्रेण वा आभृत्य=आच्छाद्य
तिष्ठति नो अर्मान् यावत् पृच्छति। एतेनापि स्थानेन=कारणेन चित्र! जीवः

सत्कार और सम्मान नहीं करता है, तथा कल्याणरूप, मंगलरूप, धर्मदेव-
रूप मानकर तथा विशिष्टज्ञानयुक्त मानकर उनको सेवा नहीं करता है,
तथा विपुल-प्रचुर-अशन, पान खाद्य, स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार से उन्हें
प्रतिबन्धित नहीं करता है, अर्थात् श्रमण के लिये माहन के लिये जो
चतुर्विध आहार नहीं देता है, एवं अर्थों को, हेतु को, प्रश्नों को, कारणों
को तथा व्याकरणों को उनसे नहीं पूछता है इस उपर्युक्त कारण से हे
चित्र! जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को नहीं सुन सकता है। चतुर्थस्थान
इस प्रकार से है-चाहे जिस किसी भी स्थान में साधु या
माहन-१२ व्रतधारी श्रावक के साथ संगत हो जावे-परन्तु वहाँ पर भी
वह जीव अपने आपको हाथ से, या वस्त्र से, या छत्र से, ढंक लेता है
इस ख्याल से कि महाराज मुझे पहचान न ले और न उनसे अर्थान्दिकों

करतो नथी, तेमनु सन्मान अने सत्कार करतो नथी तेमन् तेमनु इत्याणुत्पमगण-
त्प, धर्मदेव स्वत्प मानने तथा विशिष्ट ज्ञानयुक्त मानने तेमनी सेवा करतो नथी
तेमन् विपुलप्रचुर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यत्प अतुर्विध आहार वडे तेमने प्रतिबन्ध-
सित करतो नथी अटवे ३ श्रमणने डे माहणने वे अतुर्विध आहार आपतो नथी
तथा अधोने, हेतुअने प्रश्नने कारणने तथा व्याकरणने तेमने पूछतो नथी अ
उक्त कारणधी हे चित्र! एव केवलप्रज्ञप्त धर्मन् श्रवण करतो नथी अतुर्थ
स्थान आ प्रमाणे छ-गमे ते स्थाने साधु डे माहन-१२ व्रतधारी श्रावक भणे त्याडे
वे एव पोतानी वतने महानन् अभने योगणी डे नदि तेवा विचारधी आद्यवडे,
डे वस्त्रवडे, डे छत्रवडे मंताडी हे छे अने तेमने अर्थान्दिके विषे पणु पूछतो नथी

केवलप्रज्ञप्तं धर्मं मणतायै=श्रोतुं न लभते-इति चतुर्थं स्थानम् ४। सम्प्र-
श्युषमंहरन्नाह-एतैश्चतुर्भिः स्थानैः ग्वलु चित्र ! जीवः केवलप्रज्ञप्तं धर्म-
श्रवणतायै=श्रोतुं न लभते-इति ।

इत्थं केवलप्रज्ञप्तस्य धर्मस्यालाभे चतुर्विधं कारणमुक्तत्वात् सप्रति तत्राभे
चतुर्विधं कारणमाह—‘चउहिं’ इत्यादि ।

हे चित्र ! चतुर्भिः स्थानैः=कारणैः जीवः केवलप्रज्ञप्तं धर्मं श्रवण-
तायै=श्रोतुं लभते, तत्रथा—‘आरामगतं वा’ इत्यादि । केवलप्रज्ञप्तधर्मालाभे
यानि चत्वारि स्थानानि प्रोक्तानि, तान्येवात्र तद्विपरीत्येन विज्ञेयानीति ।

को पूछता है—तो ऐसा जीव इस कारण से भी केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुन
नहीं पाता है. अब केशीकुमारश्रमण उपसंहार करते हुए कहते हैं कि हे
चित्र ! जीवको धर्मलाभ होने में ये चार कारण बाधक हैं। इनके होने
से जीव को केवलप्रज्ञप्त धर्म की प्राप्ति नहीं होती है।

इस तरह केवलप्रज्ञप्त धर्म के अलाभ में चतुर्विध कारण कहकर
अब केशीकुमारश्रमण उसका लाभ होने में चार कारणों का कथन करते
हैं ‘चउहिं ठाणेहिं’ हे चित्र ! चार कारणों से जीव केवलप्रज्ञप्त धर्म को
सुनता है अर्थात् केवलप्रज्ञप्त धर्म के अलाभ में जो चार कारण प्रकट
किये गये हैं, वे ही चार कारण विपरीतरूप से आचरित होने पर जीव
के लिये धर्मलाभ के कारण हो जाते हैं यही बात ‘१ आरामगतं वा उज्जा-
णगतं वा’ इत्यादि चार सूत्रपाठ द्वारा प्रकटकिया है।

तो आ ज्ञतनो एव पणु आ कारणुथी— केवलप्रज्ञप्त धर्मनुं श्रवणु करी शकते
नथी उवे केशीकुमार श्रमणु उपसंहार करतां कडे छे उडे चित्र ! एवने धर्मलाभनी
प्राप्तिमा आ चार कारणुः विन्इपे नडे छे. आ सर्वाथी एवने केवलप्रज्ञप्त धर्मनी
प्राप्ति थती नथी.

आ प्रमाणे केवलप्रज्ञप्त धर्मना अलाभ संगंधी चार कारणुनुं विवेचन
करीने उवे केशीकुमार श्रमणु केवलप्रज्ञप्त धर्मना लाल भाटे ने चार कारणु छे तेमनुं
कथन करता कडे छे.—‘चउहिं ठाणेहिं’ छे चित्र ! चार कारणुथी एव केवलप्रज्ञप्त
धर्मनुं श्रवणु करे छे. अउडे के केवलप्रज्ञप्त धर्मना अलाभमा ने चार कारणु
अताववामां आण्यां छे, तेच चारचार कारणु विपरीत रूपमां आचरवामां आवे ते
तेच चार कारणु धर्मलाभ भाटे उपयोगी थथ नथ छे. अउवात “१ आरामगतं
वा उज्जाणगतं वा” वगेरे चार सूत्रो वडे प्रकट करवामां आवी छे.

इत्थं केवलप्रज्ञप्तधर्मलाभालाभयोः कारणान्युत्तवा सम्प्रति केवलप्रज्ञप्त-
धर्मलाभे यानि कारणानि सन्ति तद्विशिष्ट एव प्रदेशी राजाऽस्ति स कथ-
मया धर्मआख्येयः? इति केशिकुमारश्रमणश्चित्र सारथिमाह—तुञ्जं च
णं चित्ता! पएसी राया' इत्यादि। हे चित्र! तत्र=त्वदीयश्च खलु प्रदेशी
राजा आरामगतं वा, 'तं चेव सर्वं भाणियन्वं आइल्लएणं गमएणं जाव अप्पाणं
आवरेत्ता चिट्ठइ' इति पाठेन तदेव सर्वगमकजातं भणितव्यम् केन गमकेन!
इत्याह—'आइल्लएणं' इति आदिमेन गमकेन=आलापकेन 'उज्जाणगयं वा'
उद्यानगतं वा, इत्यारभ्य 'अप्पां आवरेत्ता चिट्ठइ' आन्मानमावृत्य तिष्ठति, इति
पर्यन्तं भणितव्यम्। एव विधस्त्वदीयः प्रदेशी राजाऽस्ति, तत्कथं=केन प्र-
कारेण खलु चित्र! एवंविधाय त्वदीयाय प्रदेशिने राजे त्वय धर्मम् आख्या-
स्यामः=उपदेक्ष्याम इति ॥ सू० १२३ ॥

मूलम्—तएणं से चित्त सारही केशिकुमारसमण' एवं वयासी एवं खलु-
भंते! अणया कयाइ कंबोएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया, ते
मए पएसिस्स रणो अन्नया, चेव उवणीया तं एएणं खलु भंते! कार-
णोणं अहं पएसिं रायं देवाणुप्पियाणं अतिए हव्वमाणेस्सामि, तं मा णं
देवाणुप्पिया! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाएज्जाह,

इस तरह धर्मअप्राप्ति और धर्मप्राप्ति के कारणों को कहकर अब
केशीकुमारश्रमण चित्र सारथी के प्रति यह प्रकट कर रहे हैं कि प्रदेशी
राजा केवलप्रज्ञप्त धर्म के अप्राप्ति के कारणों से विशिष्ट है अनः मैं
उसे किस प्रकार से धर्म का उपदेश दूँ, यही बात केशीकुमारश्रमण
चित्र सारथि से यहाँ से आगे कहते हैं. 'तुञ्जं च ण चित्ता। पणमी
राया' इत्यादि मूलार्थ में टीका के अनुसार ही इस सब पाठका अर्थ
लिख ही दिया गया है। अतःपुनः यहाँ नहीं लिखा है ॥सू० १२३॥

आ रीते धर्म अप्राप्ति अने धर्म प्राप्तिना कारणोनुं स्पष्टीकृत्य इतीने तुवं
देशीकुमार श्रमणु चित्रसारथीनी सामे आ वात इहे छे इ प्रदेशी गणत केवलप्रज्ञप्त
धर्मना अप्राप्तिना कारणोधी युक्त छे. ओधी हुं तेने देवा रीते धर्मनो उपदेश छे.
अने वात केशिकुमारश्रमणु चित्रसारथीने आ प्रभावे इहे छे—'तुञ्जं च णं चित्ता!
पएसी राया' वगेरे भूतार्थभांन टीकार्य प्रभावे न आ अधानुं विद्वेषयइ इन्वा-
भां भाणुं छे. ओधी अहीं इरी अर्थ लभवामां आण्ये नही ॥सू० १२३॥

अगिलाए णं भंते ! तुब्भे पएसिस्सरणो धम्ममाइक्खेज्जाह, छंद्देण भते ! तुब्भे पएसिस्सरणो धम्ममाइक्खेज्जाह । तएणं से केसी कुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी ओवीयाइ चित्ता ! जागिहसामो । तएणं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं वंदइ नमसइ जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घटं आसरहं दुरूहइ, जामेव दिस्सि पाउब्भूए तामेव दिस्सि पडिगए ॥ सू० १२४ ॥

छाया-ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्-एवं खलु भदन्त । अन्यदा कदाचित् काम्बोजैः चत्वारः अश्वाः उपनयमुपनीताः ते मया प्रदेशिने राज्ञे अन्यदैव उपनीताः, तद् एतेन खलु भदन्त ! कारणेन अहं प्रदेशिनं राजानं देवानुप्रियाणामन्तिके हव्यमानेष्यामि । तत् मा खलु देवानुप्रियाः ! यूयं प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यान्तो ग्लायत, अग्लानाः

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं) उसके बाद (से चित्ते सारही) वह चित्र सारथि (केशिकुमारसमणं एव वयासी) केशी कुमारश्रमण से ऐसा बोला (एव खलु भंते ! अण्णया कयाइं कंबोएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया) हे भदन्त ! किसी एक समय काम्बोजदेशवासियों ने चार घोड़े भेटरूप में भेजे थे (ते मए पएसिस्सरणो अण्णयाचेव उवणीया उसे मैंने प्रदेशी राजा के समक्ष भेट में उम्मी दिन दे दिया (तंएणं खलु भंते ! कारणेणं अहं पएसिं रायं देवानुप्रियाणं अन्तिके हव्यमाणेस्सामि) अतः इस कारण से हे भदन्त ! मैं प्रदेशी राजाको आप देवानुप्रिय के पाप बहुत ही शीघ्र

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं) त्थार पथी (से चित्ते सारही) ते चित्र सारथिओ (केशिकुमारसमणं एव वयासी) केशीकुमार श्रमणुने आ प्रमाणे विनंती करवां ध्युं—(एव खलु भंते ! अण्णया कयाइं कंबोएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया) हे भदन्त ! कुछ एक वपते कंबोज देशवासीओओओ आर घोडाओओ प्रदेशी राजाने लेट भोडल्या हुता (ते मए पएसिस्सरणो अण्णयाचेव उवणीया) ते घोडाओओने से प्रदेशी राजा सामे लेटइपमां अर्पित करी दीया छे. (तएणं खलु भंते ! कारणेणं अहं पएसिं रायं देवानुप्रियाणं अन्तिके हव्यमाणेस्सामि) ओथी हे भदन्त ! प्रदेशी राजाने आप देवानुप्रियनी पासे नदही न उपस्थित करीश.

खलु भदन्त ! यूयं प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यात, छन्देन भदन्त ! यूयं प्रदेशिने राज्ञे धर्ममाख्यात । ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिमेवमवादीत्—अपि च चित्र ! ज्ञास्यामः । ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनं कुमारश्रमणं वन्दते नमस्यति, यत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथः तत्रैवो

लाङ्गा (तं मा णं देवाणुप्पिया ! तुव्भे पएस्सिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाएज्जाह) तो आप हे देवानुप्रिय ! प्रदेशी राजा को जिनोक्त धर्म का उपदेश करते समय ग्लानि मत करना (अगिलाए णं भंते ! तुव्भे पएस्सिस्स धम्ममाइक्खेज्जाह) प्रत्युत अग्लानिभाव से ही हे भदन्त ! आप प्रदेशी राजा को धर्म का उपदेश करना (छंदेणं भंते ! तुव्भे पएस्सिस्स रणो धम्ममाइक्खेज्जाह) तथा आप अपनी इच्छा के अनुसार ही हे भदन्त ! प्रदेशी राजा को धर्म का उपदेश देना, उसकी इच्छा के अनुसार नहीं (तए णं से केशीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी) तब उन केशी-कुमारश्रमणने चित्र सारथि से ऐसा कहा—(अविघाडं चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र ! अवसर आने पर देखा जावेगा, आप के कथनानुसार उसे धर्मोपदेश देने का मेरा भाव तो है। (तए णं से चित्ते सारही केसिं कु-मारसमणं वदइ, नमंसइ, जेणेव चाउग्वटे आम्सरे तेणेव उवागच्छइ) इसके अनन्तर चित्र सारथिने केशीकुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार किया, और फिर वह जहाँ चार घंटोंवाला अश्वरथ था वहाँ पर आया

(त मा णं देवाणुप्पिया ! तुव्भे पएस्सिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाए ज्जाह) तो हे देवानुप्रिय ! आपश्री ते प्रदेशी राजने जिनोक्त धर्मने उपदेश करता ग्लानि अनुभवथो नहि (अगिलाए णं भंते ! तुव्भे पएस्सिस्स रन्नो धम्म-माइक्खेज्जाह) परंतु हे लहत ! आपश्री ते प्रदेशी राजने अग्लानिभावथी न धर्मोपदेश करथो. (छंदेणं भंते ! तुव्भे पएस्सिस्स रणो धम्ममाइक्खेज्जाह) तेमन हे लहत ! आपश्री पोतानी इच्छा मुज्जण न प्रदेशी राजने धर्मोपदेश करथो. तेनी इच्छा प्रभाणे नहि. (तए णं से केशीकुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी) त्थारे ते केशीकुमार श्रमणे ते चित्रसारथिने आ प्रभाणे इत्थु. (अविघाडं चित्ता जाणिस्सामो) हे चित्र ! उचित अवसर आवथे त्थारे तेथिं उच्छुं तमे उच्छो हो। ते मुज्जण भारी पणु तेमने उपदेश करवानी लावना छे न. (तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं वदइ, नमंसइ, जेणेव चाउग्वटे आम्सरे तेणेव उवागच्छइ) त्थार पछी चित्रसारथिने केशीकुमारश्रमणने वंदना करी नम-स्कार करथी अने पछी ते चार घंटोधी युक्त अश्वरथ उतो. त्था आवथे. (चाउग्वटं

पाणच्छति, चातुर्घण्टसश्वरथं दूरोहति, यामेव दिशं प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ सू० १२४ ॥

टीका—‘तए णं से चित्ते’ इत्यादि—ततःखलु स चित्रः सारथिः केशि कुमारश्रमणमेवमवादीत्—एवं खलु हे भदन्त । अन्यदा कदाचित्= कस्मिंश्चित् काले कश्चिजैः=कश्चिजदेशवासिभिः चत्वारः=चतुःसंख्यकाः अश्वाः उपनयं=प्राभृतस् उपनीताः=प्रापिताः, प्राभृतत्वेन दत्ता इत्यर्थः, ते मया अन्यदैव=तस्मिन्नेव काले प्रदेशिने राजे उपनीताः तदेतेन कारणेन खलु हे भदन्त ! अहं प्रदेशिन राजानं देवानुप्रियाणां=भवताम् अन्तिवे=समीपे हृद्य=शीघ्रम् आनेष्यामि, तत्-तदा हे देवानुप्रियाः । प्रदेशिने राजे धर्मं=जिनोक्तम् आख्यान्तः=कथयन्तः सन्तो गृह्यं सा ग्लायत=ग्लानिं मा भजत, एतावदेव न प्रत्युत छन्देन=स्वकीयाभिप्रायेण यथेच्छमित्यर्थः हे भदन्त ! यूयं प्रदेशिने राजे धर्मम् आख्यान=कथयत । ततः चित्रसारथेः कथना-

(चातुर्घट आसरह दुरुहह, जामेव दिशि पादुर्भूए तामेव दिशि पडिगए) वहां आकर वह उस चारघटों वाले अश्वरथपर सवार हो गया और जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया ।

टीकार्थ—चित्र सारथिने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा-हे भदन्त ! किसी एक समय मेरे पास कश्चिजदेशवासियों द्वारा भेजे गये ४ घोड़े प्रदेशी राजा के लिये भेंटरूप में आये थे सो मैंने उसी दिन वे घोड़े प्रदेशी राजाके लिये शिक्षित कर दिये. इस तरह हमारी उनकी परस्पर में प्रीति है. इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप उसे जिनप्रतिपादित धर्म का उपदेश देवें मैं उसे आपके पास शीघ्र ही ले आऊंगा, उपदेश देने में आप किसी भी प्रकार का संकोच न करें. अपनी इच्छा के अनुसार धर्म

आसरह दुरुहह जामेव दिशि पादुर्भूए तामेव दिशि पडिगए) त्या पडोशीने ते पोताना चार घटोवाणा अश्वरथ पर सवार थछ गयो अने ते दिशा तरक्षी ते आवेल हुतो तेज दिशा तरक्ष पाछा जतो रह्यो.

टीकार्थ—चित्रसारथिने केशीकुमारश्रमणने आ प्रमाणे कहु-हे भदन्त ! कुछ ओक वधने मारी पासे कश्चिज देशवासीओओ राजने लेटमां आपवा माटे घोडाओ मोठव्या हुता तेज दिवसे ते घोडाओने प्रदेशी राजने मे अर्पित करी हीधा. आम तेमनी अमारी साथे मित्रता छ ओथी ज हुं धृष्टं धुं के आपश्री तेमने जिन प्रतिपादित धर्मने उपदेश करे. तेमने हुं आपश्रीनी पासे जलही लावीश. उपदेश आपवामां आपश्री पोतानी धृष्टा मुज्ज धर्मनी वातो प्रदेशी राजने सलणावले

नन्तरं खलु केशीकुमारश्रमणः चित्रं सारथिम् एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण
 अवादीत्=अकथयत्—‘अत्रिआइ’ अपि च हे चित्र । ज्ञास्यामः=अवगमिष्यामः
 यथावसरं करिष्याम इत्यर्थः, त्वत्कथनालुसारेण करणस्य मम भावो वर्तत
 इत्याशयः । ततः खलु स चित्रः सारथिः केशिनं कुमारश्रमणं वदन्ते नमस्यति
 चातुर्घण्टाश्वरथसमीपे समागत्याश्वरथमारोहति, यामेवदिशं समाश्रित्य प्रादु-
 र्भूतः=समागतः तामेवदिशं प्रतिगतः=प्रस्थितः ॥म० १२४॥

मूलम्--तएणं मे चित्ते सारही कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लु-
 प्पलकमलकोमल्लुम्मिलियम्मि अहापंडुरे पभाए कयनियमावस्सए
 सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते साओ गिहाओ णिग्गच्छइ,
 जेणेव पएसिस्स रन्नो गिहे जेणेव पएसी राया तेणेव उवागच्छइ,
 पएस रायं करयल-जाव कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, एवंवयासी-
 एवं खलु देवाणुप्पियाणं कंवाएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया
 ते य मए देवाणुप्पियाणं अण्णया चेव विणइया, तं एएणं सामी !
 ते आसे आइड्डिए पासइ । तएणं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं
 वयासी-गच्छाहि णं तुमं चित्ता ! तेहिं चेव चउहि आसेहिं आसरहे
 जुत्तामेव उवट्टुवेहि जाव पच्चप्पिणाहि । तएणं से चित्ते सारही पए-

की बातें उसे सुनावें. चित्र सारथि का इस प्रकार कथन मुनिकर केशी-
 कुमारश्रमणने उससे ऐसा कहा-चित्र ! समय आने पर देखा जावेगा. मेरा
 भार अग्रहय ऐसा हुआ है कि मैं उसे जितेन्द्रप्रतिपादित धर्म का उपदेश
 दू । केशीकुमारश्रमण की इस प्रकार की भावना जानकर चित्र सारथिनं उनको
 वन्दनादिकिये अर फ़िर अपने रथ पर सवार होकर अपने स्थान पर
 वापस हो गया. ॥ म० १२४ ॥

चित्रसारथिनु आ प्रभाते उद्यत सागणीने देशीपुमर श्रमणे तेन मान इत्तुं उं हे
 चित्र । उचित अवसर आवश्ये त्वांरे वेडं लक्ष्णुं. मानं देवी इच्छा उं उं हे तेन
 जितेन्द्र प्रतिपादित धर्मने उपदेश इडं देशीपुमानं परलर्त्तां च। जतनी जतनी
 जतनीने चित्रसारथियो तेने वन्दत उयो अने त्यत्तुं येताना च्च यं यं च्च इत्तुं
 येताना नि ।सस्थाने भाटे वावते। नरे. ॥म० १२४॥

सिणा रन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्टुट्टु जाव-हियए उवट्टुवेइ एयमाण-
 त्तिय पच्चप्पिणइ । तएणं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स अंतिए
 एयमट्टं सोच्चा णिसस्म हट्टुट्टु-जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसगीरे
 साओ गिहाओ णिग्गच्छइ, जेणामेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव
 उवागच्छइ, चाउग्घंटे आसरहं दूरुहइ, सेयवियाए नयगीए मज्झं-
 मज्जेणं णिग्गच्छइ । तएणं से चित्ते सारही तं रह णेगाइ जोयणाइ
 उब्भामेइ । तएणं से पएसी राया उण्हेण य तण्हाए य रहवाएण य
 परिकिलंते समाणे चित्तं सारहि एवं वयासी-चित्ता ! परिकिलंते मे
 सरीरे परावत्तेहि रहं । तएणं से चित्ते सारही रहं परावत्तेइ जेणेव
 मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, पएसिं राय एवं वयासी-ए स णं
 सामी ! मियवणे उज्जाणे एत्थणं आसणं समं किलामं सम्मं अवणेमो ।
 तएणं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी-ए होउचित्ता । १२५।

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः कलयं प्रादुर्भवतायां रजन्त्यां
 फुल्लोत्फुल्लकमलकोमलोन्मीलिते अथाऽऽपण्डुरे पभा ने कृतनियमावश्यके सहस्र

‘तए णं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (से चित्ते सारही) वह चित्रसारथि
 (कल) पाउप्पभायाए रयणीए) दूसरे दिन जब कि प्रातःकाल के रूप में
 बदल गई और (फुल्लोत्फुल्लकमल कोमलुम्मिलियम्मि अहापंडुरे पभाए कयनि-
 यमावस्सए) कमल विकसित हो चुके तथा नियम और आवश्यक कृत्य
 निमित्त लौग कर चुके थे ऐसा पीतधवल प्रभात जब हो गया (सहस्र

‘तए णं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ.—(तए णं) त्पार पथी (से चित्ते सारही) ते चित्रसारथि-(कल्लं
 पाउप्पभायाए रयणीए) पीत द्विपसे न्याये रात्री प्रातःकालना रूपमां परिष्कृत थं
 थं अने (फुल्लोत्फुल्लकमलकोमलुम्मिलियम्मि अहापंडुरे पभाए कयनियमाव-
 स्सए) इभणे विद्वान् पाभ्यां तेभन् नियम अने आवश्यक कृत्यो नेमा दोषो वटे
 १२५ इत्यादि आख्या जेषुं पीतधवल प्रभात न्याये थयुं (सहस्रान्निसम्मि दिणयरे

रुमौ दिनकरे तेजसा ज्वलति स्वाद् गृहाद् निर्गच्छति, यनैव प्रदेशिनो राजो गृहं यत्रैव प्रदेशो राजा तत्रैवोपागच्छति प्रदेशिनं राजानं करतल-यावत् कृत्वा जयेन विजयेन वर्धयति, एवमवादीत्-एवं खलु देवानुप्रियाणां कम्बोजेषु चत्वारोऽश्वा उपनयस् उपनीता, ते च मया देवानुप्रियेभ्यः अन्यदा-चैव विनयिताः तद् एत खलु स्वामिन् ! तान् अश्वान् आत्मर्हिकाञ्च पश्यत । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रं सारथिस् एवमवादीत्-गच्छ खलु

रस्मिन् दिग्वरे तेजसा जलंते साओ गिहाओ गिरगच्छड) एय सहस्रकि-रणो वाला सूर्यं जव अपने तेज से चमकने लगा-अपने घर से निकला (जेणेव पणस्मिस् रणो गिहे जेणेव पणसी राया, तेणेव उवागच्छड) निकल कर वह वहां गया जहां प्रदेशी राजा का गृह था और उसमें भी जहा वह प्रदेशी राजा था (पण्तिराय करयल जाव कट्टु जणं विजणं वद्धावेड) वहां जाकर उसने प्रदेशी राजा को दोनों हाथ जोड़कर बड़े विनय के साथ प्रणाम किया और जय विजय गन्धो का उच्चारण करते हुए उसे बधाई दी (एवं वयामी) बधाई देकर फिर उसने उससे ऐसा कहा— (एवं खलु देवाणुप्पियाणं कंबोएहिं चत्तारि आमा उवणय उवणीया) कम्बो-जदेशवासियोंने चार घोड़े भेटरूप में आप देवानुप्रिय के लिये भेजे थे (ते य मए देवाणुप्पियाणं अणया चैव विणइया) उन्हे मैंने आपके लिये विनीत उमी दिन बना दिया है। अर्थात् शिक्षित कर दिया है। (तं एह णं वामी तं आसं आइं हिए पामड) अतः आप भाईये आग स्वीकृत्यपयस्वगतिति ओडि

तेजसा जलंते साओ गिहाओ गिरगच्छड) अने सडभ डिगोवाणो सूर्यं न्यादे पोताना तेजथी प्रक्षयित थवा दाग्या, पोताना धरेयी नीकथो। (जेणेव पणस्मिस् रणो गिहे जेणेव पणसी राया, तेणेव उवागच्छड) नीकणीने ते न्या प्रदेशी खलु गृह डतु अने तेमा पणु न्या ते प्रदेशी खलु डतो त्या गयो। (पण्ति राय करयल जाव कट्टु जणं विजणं वद्धावेड) त्या बधने तेणे प्रदेशी खलुने अन्ने हाथ जोडीने नम्रतापूर्वक प्रक्षाम थ्या अने न्यविनयना श्रुतेतु उच्यन्ते डरीने तेने वधामणी आपी। (एवं वयामी) वधामणी आपी तेणे तेने आप्रमणे थ्युं (एवं खलु देवाणुप्पियाणं कंबोएहिं चत्तारि आमा उवणय उवणीया) डिगोव देधना नागडिडोणे आप देवानुप्रिय भाटे चार गोश्वे भेट उपम भेटरूप के (ते य मए देवाणुप्पियाणं अणया चैव विणइया) ते वेधनेने तेने न्यविनय आपथीना भाटे थोअ्य चिहित बनानी दीवा थे (तं एह णं वामी तं आसं आइं हिए पामड) अथी आप वधारे अने स्वदी प्रयत्न अने वडेन श्रुतिने

त्वं चित्र ! तैरेव चतुर्भिरश्वैः अश्वरथं युक्तमेव उपस्थापय यावत् प्रत्यर्पय ।
ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा एवमुक्तः सन् हृष्ट तुष्ट-यावत्
हृदय उपस्थापयति, एतामाज्ञां शर्कां प्रत्यर्पयति । ततः खलु स प्रदेशी राज्ञा
चित्रस्य सारथेरन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशाम्य हृष्ट तुष्ट-यावद् अल्प-
सहाय्याभरणालङ्कृतशरीरः स्वाद् गृहाद् निर्गच्छति, यत्रैव चातुर्घण्टः अश्वरथ

शक्ति से युक्त हुए इन्हे देखिये। (तएणं से पएसी राया चित्तं सारहिं
एवं वयासी) तब उस प्रदेशी राजाने चित्र सारथि से ऐसा कहा—
(गच्छहि णं तुयं चित्ता ! तेहिं चैव चउहिं आसेहिं आसरहं जुतामे
उवडुवेहिं जाव पच्चप्पिणाहि) हे चित्र ! तुम जाओ और उन्हीं कम्बोज
से प्राप्त हुए चारों घोड़ों से युक्त करके अश्वरथ को तैयार
कर ले आओ। और उस बात की सुझे पीछे स्ववा दो
(तएणं से चित्ते सारही पएसिणा रन्ना एवं वुत्ते समाणे हडुतुडु जाव
हियए उवडुवेइ एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ) इस प्रकार से प्रदेशी राजा
द्वारा कहा गया वह चित्र सारथि बड़ा ही हृष्टतुष्ट यावत् हृदयवाला हुआ
और उसने चार घोड़ों से युक्त करके अश्वरथ को उपरिथत कर दिया, बाद
में प्रदेशी राजा को इसका निवेदन किया (तएणं से पएसी राया चित्तम्म
सारहिस्म अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हडुतुडु जाव अप्पमहग्घाभरणा-
लंकिगसररीरे साओ गिहाओ गिगच्छइ) इसके बाद प्रदेशी राजा चित्र

थी युक्त थयेला ते घोडाओनु निरीक्षणु करे। (तएणं से पएसी राया चित्त
सारहिं एव वयासी) तब ते प्रदेशी राजाने चित्रसारथिने आ प्रमाणे कळु.
(गच्छहि णं तुयं चित्ता ! तेहिं चैव चउहिं आसेहिं आसरहं जुतामेव
उवडुवेहिं जाव पच्चप्पिणाहि) हे चित्र ! तबे नओ अने ते कओवदेशना नाग-
रिडोथी प्राप्त थयेला तबेयार घोडाओने रथमा लेडीने ते अश्वरथ अहीं उपस्थित
करे। अने ते पछी भने आ वातनी भणर आये। (तएणं से चित्ते सारही
पएसिणा रन्ना एवं वुत्ते समाणे हडुतुडु जाव हियए उवडुवेइ एयमाण-
त्तियं पच्चप्पिणइ) आ प्रमाणे प्रदेशी राजा वडे आज्ञापित थयेला ते चित्रसारथि
भूअव इष्टतुष्ट हृदयवाणे थये अने तेषु तबेयार घोडाओथी सब करीने अश्वरथ
त्या रत्तनी सेवामा उपस्थित करी अने तब चरी तेनी भणर राजनी पास
पडेयाडी (तएणं से पएसी राया चित्तम्म सारहिस्म अंतिए एयमट्टं
सोच्चा निसम्म हडुतुडु जाव अप्पमहग्घाभरणा-लंकिगसररीरे साओ गिहाओ
गिगच्छइ) तबपछी प्रदेशी राजा चित्र सारथिनी अश्वरथ उपस्थित थय नवानी

स्तत्रैवोपागच्छति. चातुर्घण्टमश्वरथ दूरोर्हाति, श्वेतत्रिकाया नगर्या मध्य-
मध्येन निर्गच्छति । ततः खलुः स चित्रः सारथिस्त रथ नैकानि योचनानि
उद्भ्रामयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा उद्येन च तृष्णया च रथघातेन च
परिह्वान्तःस्वन् चित्रं सारथिमेवमवादीत्-चित्र ! परिह्वान्तं मे शरीरं, पग-

सारथि की अश्वरथ के तैयार हो जाने की बात को सुनकर और उसने
हृदय में धारण कर बड़ा ही अधिक दर्पित एवं तुष्ट चित्त हुआ. उसने उसी
समय अपने शरीर पर बहुमूल्य अल्पभार वाले आभूषणों को धारण किया
शीघ्र ही वह फिर अपने घर से बाहर निकला (जेणामेव चाउग्रघटे आप-
रहे तेणेव उवागच्छह) बाहर निकल कर वह वहां पर आया कि
जहा पर वह चार घटों वाला अश्वरथ तैयार किया गया खडा था (चाउग्रघट
आसरहं दुरुहह, सेयवियाए मज्जमज्जेणं णिग्गच्छह) वहा आकर वह
चार घटों वाले उस रथ पर बैठ गया. फिर वह श्वेतत्रिका नगरी के
ठीक मध्यमार्ग से होकर निकला (तए ण से चित्ते सारथी त रह णेगाड
जोगणाडं उवामेड) वाद में उस चित्र सारथिने उम रथको अनेक योजनो
तक बहुत तेज चाल से चलाया. (तए ण से पएसी राया उण्हेण य
तण्हाए य रहवाएण य परिक्किल्ले समाणे चित्तं सारथि एव वयामी) इन
कारण वह प्रदेशी राजा आतप से, प्यास से और रथन्युद्धव वायु से
ग्विन्न हो गया, अतः उसने चित्र सारथि से ऐसा कहा-(चित्र ! परिह्वान्तं

पात आभूषणानि अने तेने हृदयमा धारणु करीने णुग्गच्छह (परित अने तुष्ट चित्तवणो धयो
तेषु तेन क्षणु पोताना शरीर पर णुग्गच्छह तेमज्ज अल्पभारवाणा आभूषणो धारणु
ध्या अने नदही ते पोताना महेलथी णडा उ नीदण्यो (जेणामेव चाउग्रघटे आस-
रहे तेणेव उवागच्छह) णडा उ नीदण्यो ते त्या आव्यो हे त्या आर घटवाणो
अश्वरथ सुअन्न धरने उलो उतो. (चाउग्रघट आसरहं दुरुहह, सेयवियाए
नयरीए मज्जं मज्जेण णिग्गच्छह) त्या पंडाथीने ते आर घटवाणो ते अश्वरथ
पर भेसी गयो अने त्यापडी ते श्वेतत्रिका नगरीना ही उ मध्यवाणा मज्जमार्ग प-
दधने नीदण्यो (तए ण से चित्ते सारथी त रह णेगाडं जोगणाडं उवामेड)
त्यापडी ते चित्रसारथिसे ते अने घण्टा योजनो सुधी णुग्गच्छह नीदण्यो अलायं.
(तए ण से पएसी राया उण्हेण य तण्हाए य रहवाएणय परिक्किल्ले समाणे
चित्तं सारथि एव वयामी) तेषी ते प्रदेशी राजा तापथी तर्गथी अने अथी
तीमगतिने दीपि सामेथी अथरता पवनथी पिन्न थडं गयो अथी तं चित्र
सारथिने आ प्रभावे णु (चित्र ! परिक्किल्लं मे शरीरं पगवत्तेहि गं

वर्तय रथम् । ततः खलु स चित्रः सारथिः रथं परावर्तयति, यत्रैव मृग-
वनसुधानं तत्रैवोपागच्छति, प्रदेशं राजानमेवमवादीत्—एष खलु स्वामिन्
मृगवनसुधान, अत्र खलु अश्वानां श्रमं क्लामं सम्यग् अपनयामः । ततः
खलु स प्रदेशी राजा चित्रं सारथिमेवमवादीत्—एवं भवतु चित्र ! ॥सू० १२५॥

टीका—‘त एणं से चित्ते’ इत्यादि—ततः खलु स चित्रः सारथिः
कलये=आगाभिनिदिवसे प्रादुष्यभातायां=प्रादुः—प्रकाशितं प्रभातं यस्यां,
तस्यां रजन्यां=रात्रौ सत्याम्, निशावमाने इत्यर्थः, अथ=पुनःफुल्लोत्पलकमल-

लते मे सरीरे परावर्त्तेहि रह) हे चित्र ! मेरा शरीर थक रहा है, अतः तुम
रथ को वापिस लौटा लो (त एणं से चित्ते सारथी रह परावर्त्तेइ, जेणेव
मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) तब उस चित्र सारथिने रथको लौटा लिया
और जहाँ मृगवन नामका उद्यान था उस ओर चल दिया (पएसिं राय एव
वयासी) वहाँ पहुँच कर उसने प्रदेशो राजा से ऐसा कहा (एसण सामी मियवणे
उज्जाणे एत्थ णं आसाणं समं किलामं सम्मं अवणेमो) हे स्वामिन् !
यह मृगवन नामका उद्यान है यहाँ ठहरकर घोड़ों को श्रम को और गजानि
को मैं अच्छी तरह से दूर किये लेता हूँ। (त एणं से पएसिं राया
चित्तं सारहिं एव वयासी) तब वह प्रदेशी राजा चित्र सारथि से इस
प्रकार बोला (एव होउ चित्ता) हे चित्र ! भले तुम ऐसा करो।

टीकार्थ—इसके बाद दूसरे दिन चित्र सारथि प्रातः काल होते ही
रात्रिकी समाप्ति होते ही—अपने घर से निकला ऐसा संबंध यहाँ लगाना
चाहिये. जब यह घर से निकला उस समय तक कमल विकसित हो चुके

हे चित्र ! भाइ शरीर श्रमयुक्त थक गयुं छ, अथी तमे रथने पाछे वाणी दी.
(त एणं से चित्ते सारथी रह परावर्त्तेइ, जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव
उवागच्छइ) त्थारे ते चित्र सारथिअे रथने पाछे वाणी दीथे अने ज्यां मृगवन
नामे उद्यान उतु ते तरइ रथने डांकेथे. (पएसिं राय एव वयासी) त्यां पडोंथीने
तेण्णे प्रदेशी राजने आभ कथुं. (एसणं सामी मियवणे—उज्जाणे एत्थ ण
आसाणं समं किलामं सम्मं अवणेमो) हे स्वामिन् ! आ मृगवन नामे उद्यान
छे. अहीं रेकाधने हुं घोडाअेना थकने अने गिन्नताने सारी रीते मटाडी लठं छुं.
(त एणं से पएसिं राया चित्तं सारहिं एव वयासी) त्थारे प्रदेशी राजअे
चित्र सारथिने आ प्रभाण्णे कथुं. (एव होउ चित्ता) हे चित्र ! साइं तमे लठे आभ करे.

टीकार्थ—त्यारपछी णीण्ण दिवसे रात्री पुरी थता तेभज सवार थतां ज चित्र
सारथि पोताना घेरथी नीकण्णथे. अेवो अर्थ अहीं करवो घटे छे. ते ज्यथारे पोताना

कोमलोन्मीलिते-फुल्लोत्पल = विकसितकमलं, कमलो-हरिणविशेषश्च तयोः
कोमल = मृदु उन्मीलनम्-कमलदलानां विकसनं हरिणनेत्राणामुन्मेषणं च
यस्मिन्, कमलविकसनसमये हरिणनेत्रोन्मीलनसमये वेत्यर्थः तथाभूते आपा-
ण्डुरे-आ = समन्तात् पाण्डुरे = पीतधवल्ले, तथा-कृतनियमावश्यकै = नियमाः =
सचित्तादित्यागरूपाश्चतुर्दशसंख्यकाः,

उक्तञ्च-“सचित्तं १ दृक् २ विगङ्ग ३-वाणहृष्ट तबोल ५ वत्थ ६ कुसुमे सु ७ ।
वाहन ८ सयण ९ विलेपन १०, व भ ११ दिग्नि १२ ष्हाण १३ भक्ते सु १४ ॥ १ ॥
छाया--सचित्तं १ द्रव्य २ विकृत्यु ३ पान ४-ताम्बूल ५ वत्थ ६ कुसुमे सु ७ । वाहन ८
गयन ९ विलेपन १० ब्रह्म ११ दिक् १२ स्नान १३ भक्ते पु १४ ॥ इति,
आवश्यक = प्रतिक्रमण तच्चेह रां कं, तयोः समाहारे नियमावश्यकं, कृतं =
विहितं नियमावश्यकं यस्मिन् तत्तस्मिन् तादृशे प्रभाते = मातःकाले तथा-
सहस्ररश्मौ = सहस्रकिरणसम्पन्ने दिनकरे = सूर्ये तेजसा ज्वलति = दीप्यमाने सति
स्वात् = स्वकीयाद् गृहाद् निर्गच्छति, यत्रैव प्रदेशिनो राज्ञो गृहं = भवनं
यत्रैव च प्रदेशी राजा वृत्तं ते तत्रैव उपागच्छति = समागच्छति, प्रदेशिनं
राजानं करतल-यावत्-करतलपरिगृहीतं गिरावत्तं मन्तकेऽञ्जलिं कृत्वा
जयेन विजयेन वर्द्धयति, वर्द्धयित्वा एवमवादीत्-एवं खलु देवानुप्रियेभ्यः =

वे अथवा कमल और हरिणविशेषों को नेत्र निद्रा विगत हो जाने के कारण
उपलब्ध चुके थे, प्रभात का रंग पीत धवल हो चुका था लोगों ने-धार्मिक जनताने
१४ नियमों ले लिया था. और रात्रि प्रतिक्रमण भी कर
लिया था. वे १४ नियमों इस प्रकार से हैं—‘सचित्तं दृक् इत्यादि ।

तथा सहस्रकिरण सम्पन्न सूर्य भी अपने तेज से दीप्यमान हो चुका था. घर से
निकलकर वह प्रदेशी राजा को पास पहुँचा. वहाँ पहुँच कर उमने प्रदेशी राजा
को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया. उन्हें वहाँ दी और फिर ऐसा
कहा आप देवानुप्रिय के लिये जो कम्बोजवासियों ने चार घोड़े भेंट रूप

पेशी कीये तो वभते क्षणों विकसित धर्ष गंधा हुता अथवा क्षमल इन्द्रि (भृगु)
विशेषता नेत्रो निद्रा रहित धर्ष गंधा उधरी चूक्या हुता प्रभातना ००० पीतधवल
धर्ष चूक्या हुतो. षोडशे-धार्मिक भाष्ये-१४ नियमोन् पान्त् इनी दीधा हुता
अने रात्रि प्रतिभणु पणु इनी दीधुं हुतुं. ते १४ नियमोन् प्रभाते ई

‘सचित्तं दृक्’ इत्यादि.

तेभ्यः सहस्रकिणु सम्पन्न सूर्यं पणु पितृना तेवर्षी देहीभ्यः न चर्ष चूक्या
हुतो पेशी नक्षत्रिण्यः अर्षि प्रदेशी नक्षत्रिण्यः ५३३ ये ५३३ पेशी नक्षत्रिण्यः
५३३ ये ५३३ पेशी नक्षत्रिण्यः ५३३ ये ५३३ पेशी नक्षत्रिण्यः ५३३ ये ५३३ पेशी नक्षत्रिण्यः

भवद्भ्यः काम्बोजैश्वत्वारोऽश्वा उपनयमुपनीताः=प्राभृतत्वेन समानीताः ते च मया देवानुप्रियेभ्यः=भवतां कृते अन्यदेव=तदैव त्रिनयिताः=त्रिनयं प्रापिताः शिक्षिताः, तत्=तस्मात्कारणात् एत आगच्छत तान् आत्मद्विकान्=स्वकीय-प्रशस्तगत्यादिशक्तिसम्पन्नान् अश्वान् पश्यत । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रं सारथिमेवमवादीत्-गच्छ खलु त्वं चित्र ! तैरेव काम्बोजप्राप्तैश्चतुर्भिरश्वैः युक्तमेव=सज्जितमेव अश्वरथम् उपस्थापय यावत् प्रत्यर्पय, यावच्छब्देन उपस्थापय एतामाज्ञप्तिकां मम प्रत्यर्पय । ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिना राज्ञा एवम्=अनेन सज्जितरथोपस्थापनरूपेण प्रकारेण उक्तः=कथितः हृष्टतृष्ट यावद्दृहृदयः, यावच्छब्देन-हृष्टतृष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद्दृहृदयःसन् उपस्थापयति=तैश्चतुर्भिरेवाश्वैर्युक्तमेवाश्वरथमुपस्थितं करोति एतां=राजोक्ताम् आज्ञासिकाम्=आज्ञां प्रत्यर्पयति =‘युक्त एव रथो मयाऽऽनीतः’ इति सूचयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रस्य सारथेः अन्तिके=समीपे-युक्तरथोपस्थापनरूपम् अर्थं=वाक्यं श्रुत्वा कर्णगोचरीकृत्य, निशम्य=हृद्यवधार्य हृष्टतृष्ट यावत्-यावच्छब्देन-हृष्टतृष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितो हर्षवशाविसर्पद्दृहृदयःस्नातः कृतबलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः शुद्धप्रावेशे ॥१७ साङ्गल्यानि वस्त्राणि प्रचरपरिहितः, इति सङ्ग्राह्यम्, अल्पमहार्घाभरणालङ्कृतशरीरः एषामर्थस्तु प्रागुक्त एव, एतादृशः सन् स्वात्=स्वकीयाद् गृहाद् भवनात् निर्गच्छति=निस्सरति ।

में भेजे थे उन्हें मैंने उसी दिन आपके लिये सुशिक्षित कर दिया है, अतः आप आ करके उन्हें देख लेबे' इस प्रकार चि सारथी के कथन को सुनकर प्रदेशी राजाने उससे कहा-तुम शीघ्र ही उन्हें रथ में जोतकर यहाँ ले आओ चित्र सारथीने ऐसा ही किया. जब रथ तैयार हो जाने का वृत्तान्त प्रदेशी राजा को ज्ञात हुआ तब आकर वह उसमें बैठ गया उसके बैठते ही चित्र सारथीने उस रथ को श्वेतांविका नगरी के मध्यमार्ग से

कह्यु. के आप देवानुप्रिय भाटे कभोजदेशना नागरिकेभ्ये जे चार घोडाओ लेटइपमां मोकल्या हुता तेमने तेज दिवस आपश्री भाटे सुशिक्षित करी दीधा छ. ज्येथी आप पधारीने तेमनुं निरीक्षण करी वे। आ प्रमाणे चित्रसारथिनुं कथन सांभणीने प्रदेशी राजाओ तेने कह्युं. के तमे सत्वर ते घोडाओने रथमां जेतरीने अही उपस्थित करे। चित्र सारथिओ ते प्रमाणेज कामपुइं क्युं न्यारे रथ तैयार थछ जवानी जणर राजनी पासे पडोआउवामां आवी त्यारे ते राजा ते रथमां जेसी गथे। राजा न्यारे सवार थछ

ततः खलु स चित्रः सारथिगतं रथं नैकानि=अनेकानि बहूनि योजनानि उद्भ्रामयति=शीघ्रगत्या धावयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा उष्णेन=भातपेन च तृष्णया=पिपासया रथवातेन=रथगत्युद्भवेन वायुना च परिक्लान्तः=खिन्नः सन् चित्रं सारथिमेवमवादीत्-हे चित्र ! परिक्लान्तः=खिन्न मे-मम शरीरम् अतो रथं परावर्त्तय=निवर्त्तय । ततः खलु स चित्रः सारथिः रथं परावर्त्तयति, यत्रैव मृगवनमुद्यानं तत्रैवोपागच्छति, प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-एतत् खलु स्वामिन ! मृगवनमुद्यानमस्ति, अत्र=अस्मिन्मुद्याने स्थित्वा अश्वानां श्रम=खेदं क्लम=ग्लानिं च सम्यक्=समीचीनतया अपनयामः=दूरीकुर्मः॥ ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रं सारथिमेवमवादीत्-हे चित्र ! एव भवतु=यथा त्वया कथितं तथैव भवतु अत्रय तिष्ठाम इति भावः ॥सू० १२५॥

मूलम्—तएणं से चित्ते सारही जेणैव मियवणे उज्जाणे जेणैव केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरत्तामंते तेणैव उवागच्छइ, तुरए णिगिण्हइ रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तुरए मोएइ, पएसिं रायं-एवं

होकर चलाया, जब नगरी से वह रथ बाहर हो गया तब उसने कई योजनाँ तब उस रथको इतने अधिकरूप से चलाया कि प्रदेशी राजा परिक्लान्त हो गया, (थकगया) आतप, से तप गया और पिपासा की वेदना से व्याकुल हो उठा। तब सारथि से उसने उसी समय रथको लौटाने के लिये कहा, सारथिने आज्ञानुसार रथ को लौटा लिया और मृगवन उद्यान, की ओर ले चला। वहां पहुंच कर सारथिने घोड़ों को विश्रान्ति देने के निमित्त रथ खडा कर लिया और प्रदेशी राजा से वहां ठहर कर घोड़ोंको मार्गजन्य परिश्रमको दूर करने की बात कही प्रदेशी राजाने बातको मानलिया।सू. १२५।

गया त्पारे चित्र सारथिञ्जे ते रथने श्वेतांगिका नगरीनी मध्यभागमाथी थधने हांडथे आ प्रमाणे ते रथ ज्यारे श्वेतांगिका नगरीथी गडार नीडगी गथे त्पारे धणु थोञ्जे सुधी ते रथने तीव्र वेगथी यत्ताव्ये डे जेथी ते प्रदेशी राजा परिकलात थध गथे, तापथी तपी गथे अने तरसनी वेदनाथी व्याकुण थध गथे राजाञ्जे सारथिने तरत ज रथ पाछे वाणवानो आदेश आप्थे, सारथिञ्जे राजानी आज्ञा प्रमाणे रथने पाछे वाणी लीधे अने मृगवन उद्याननी तरइ ते रथने लध गथे, त्या पहांञ्चिने सारथिञ्जे घोडाञ्चोने विश्रान्त आपवा भाटे रथ ने उलो राख्यो अने प्रदेशी राजाने त्यां रोकाधने घोडाञ्चोना रस्ताना थाडने हर करवानी वात करी, प्रदेशी राजाञ्जे पणु तेनी वात भानी लीधी, ॥सू. १२५॥

वयासी एह णं सामी ! आसाणं मम किलामं सम्मं अवणेमो ! तएणं
 से पएसी राया रहाओ पच्चोरुहइ, चित्तेण सारहिणा सद्धिं आसाणं
 समं किलामं सम्मं अवणेमाणे पासइ, जत्थ केसिकुमारसमणं महइ-
 महालियाए परिसाए मज्झगयं महया सद्देणं धम्मसाइक्खमाणं पासि-
 ता इमेयाखुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जड्ढा खलु भो ! जड्ढं
 पज्जुवासंति, मुंडा खलु भो ! मुंडं पज्जुवासंति, मूढा खलु भो ! मूढं
 पज्जुवासंति, अपंडिया खलु भो अपंडियं पज्जुवासंति, निव्विण्णाणा
 खलु भो ! निव्विण्णाणं पज्जुवासंति, से केसणं एस पुरिसे जड्ढं मुंडे
 मुढे अपंडिए निव्विण्णाणे सिरीए हिरीए उवगए उत्तप्पसरीरे,
 एस णं पुरिसे किमाहरमाहारेइ ? किं परिणामेइ ? किं खायइ ?
 किं पियइ ? किं दलइ ? किं पयच्छइ ? जं णं एस एमहालियाए
 मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया सद्देणं बूयाइ ? एवं सपेहेइ,
 चित्तं सारहिं एवं वयासी—चित्ता ! जड्ढा खलु भो ! जड्ढं पज्जुवासंति
 जाव बूयाइ, साए वि णं उज्जाणभूमीए नो संचाएमि सम्मं
 पकामं पवियरित्तए ॥ सू० १२६ ॥

छाया-ततः खलु सचित्रः सारथिः यत्रैव मृगवनमुधानं यत्रैव केशिनः
 कुमारश्रमणस्य अदूरसामन्तं तत्रैवोपागच्छति, तुरगान् निगृह्णाति, रथं

‘तएणं से चित्ते सारही’ इत्यादि—

सूत्रार्थ—(तए णं से चित्ते सारही जेणेव मियवणे उज्जाणे जेणेव केसिस्स
 कुमारसमणस्स अदूरसाम ते तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद वह चित्रसारथि
 उस मृगवन उद्यान में स्थित केशिकुमारश्रमण के अदूर सामन्त स्थान पर

‘त एणं से चित्ते सारही’ इत्यादि ।

सूत्रार्थः—(त एणं से चित्ते सारही जेणेव मियवणे उज्जाणे, जेणेव
 केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसाम ते तेणेव उवागच्छइ) त्थार पथी ते
 चित्र सारथि ते मृगवन उद्यानमां स्थित केशिकुमारश्रमणुणी पासि रथने लभ गथो.

स्थापयति. रथात् प्रत्यवरोहति, तुरगान् मोचयति, प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-
अत्र खलु स्वामिन् ! अश्वानां श्रमं क्लामं सम्यक् अपनयामः । ततः
खलु स प्रदेशी राजा रथात् प्रत्यवरोहति, चित्रेण सारथिना स्वार्थम् अश्वानां
श्रमं क्लामं सम्यक् अपनयनं पश्यति यत्र केशिकुमारश्रमणं महातिमहालयायाः
परिषदो मध्यगतं महता जग्देन धर्ममाख्यानं दृष्ट्वा अयमेतद्रूप
भाष्यात्मिकः यावत् समुदपघत-जडाः खलु भो ! जड पर्युपासते, मुण्डाः

रथको लेकर गया (तुरए णिगिण्हइ) वहा पहुँचते ही उसने घोड़ों को
रोक लिया (रहं ठवेइ) और रथको खडा कर दिया (रहाओ पच्चोरुहइ)
रथ के खडे हो जाने पर वह रथ से नीचे उतरा (तुरए मोएइ) नीचे
उतर कर घोड़ों को रथ से खोल दिया (पएसिं रायं एवं वयासी) फिर
उसने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा-(एइ णं समं किलामं सम्मं अवणेमो)
हे स्वामिन् ! रथ खडा हो चुका है आप उतर आइये, मैं यहाँ पर घोड़ों
के श्रम को एवं उनकी मानसिक ग्लानि को ठीक तरह से दूर करलूँ
(तए णं से पएसी राया रहाओ पच्चोरुहइ) सारथि के इस कथन से वह
प्रदेशीराजारथ से नीचे उतरा (चित्तेण सारहिणासद्धिं आसाणं समं किलामं
सम्मं अवणेमाणे पासइ) नीचे उतर कर उसने चित्र सारथि के साथ वहाँ
घोड़ों का श्रम एवं क्लम (धकावट) अच्छी तरह से दूर करते हुए, एवं विश्राम
करते हुए उस ओर देखा (जत्थ केशिकुमारसमणं महइमहालियाए परि
साए मज्झगयं महया सद्देणं धम्ममाइक्खमाणं पासित्ता इमेयारुवे अज्झत्थिए

(तुरए णिगिण्हइ) त्या पडोअतां न तेणे घोडाअोने उला राअ्या. (रहं ठवेइ)
अने स्थने थोलाअ्यो (रहाओ पच्चोरुहइ) रथ अयारे उलो रडी गयो. त्यारे ते
स्थमाथी नीचे उतर्यो. (तुरए मोएइ) नीचे उतरने घोडाअोने स्थमाथी मुकत कयां.
(पएसिं रायं एवं वयासी) त्यार पछी तेणे प्रदेशी राजने आ प्रनांणे कथुं-
(एइ णं सामी ! आसाणं समं किलामं सम्मं अवणेमो) हे स्वामिन् ! रथ
उलो थयं चूक्यो छे. आप नीचे उतरा हु अडी घोडाअोना श्रमने अने तेमनी
मानसिक ग्लानि ने सारी रीते हर करी दउ (तए णं से पएसी राया रहाओ पच्चोरुहइ)
सारथिना आ कथनथी ते प्रदेशी राज स्थमाथी नीचे उतर्यो. (चित्तेण सारहिणा
सद्धिं आसाणं समं किलामं सम्मं अवणेमाणे पासइ) नीचे उतरने तेणे चित्रसार-
थिनी साथे त्या घोडाअोनां श्रम अने क्लम सारी रीते हर करतां तेमज्झ विश्राम
करतां ते तरक्षं जेथुं (जत्थ केशिकुमारसमणं महइमहालियाए परिसाए मज्झ-
गयं महया सद्देणं धम्ममाइक्खमाणं पासित्ता इमेयारुवे अज्झत्थिए जाव

खलु भो ! मुण्डं पर्युपासते, मूढाः खलु भो ! मूढं पर्युपासते, अपण्डिताः
खलु भो ! अपण्डितं पर्युपासते, निर्विज्ञानाः खलु भो ! निर्विज्ञानं पर्यु
पासते, स कीदृशः खलु एष पुरुषो जडो मुण्डो मूढोऽपण्डितो निर्विज्ञानः
श्रियो हिया उपगतः उत्तमशरीरः, एष खलु पुरुषः क्रमाहारमाहारयति ?

जाव समुत्पज्जित्था) कि जिस और एक बहुत बड़ी परिषदा के बीच में
बैठे हुए केशीकुमारश्चमण जोर २ से धर्म का व्याख्यान कर रहे थे. इस
प्रकार से उन्हें देखकर उसको इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत्
मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ (जड्हा खलु भो ! जडं पञ्जुवासंति, मुंडा
खलु भो मुण्डं पञ्जुवासंति) अरे ! जो जन जड होते हैं वे जडकी सेवा
करते हैं और जो जन मुण्ड होते हैं, वे मुण्ड की सेवा करते हैं (मूढा
खलु भो मूढं पञ्जुवासंति) तथा जो जन मूढ होते हैं, वे मूढ की
सेवा करते हैं। (अपण्डिया खलु भो अपण्डियं पञ्जुवासंति) जो अपण्डित
होते हैं वे अपण्डित जन की सेवा करते हैं, (निर्विण्णाणा खलु भो निर्वि
ण्णाणं पञ्जुवासंति) जो विशिष्टज्ञान से रहित होते हैं, वे विशिष्टज्ञान से
रहित की सेवा करते हैं। (से केसण एस पुरिसे जडे, मु डे, मूढे, अपण्डिए
निर्विण्णाणे सिरीए हिरीए अवगए उत्तप्पसरीरे) परन्तु यह कैसा पुरुष है
जो जड, मुण्ड, मूढ, अपण्डित, निर्विज्ञान होता हुआ भी श्री से और
ही से युक्त है (उत्तप्पसरीरे) शरीर की कान्ति से संपन्न है। (एस णं
पुरिसे किमाहारमाहारेइ) यह पुरुष क्या किस प्रकार का आहार करता है ?

समुत्पज्जित्था) के जे तरइ अेक विशाण परिषदानी वरये जेठेला केशीकुमारश्चमण
अहु भोटा स्वरे धर्मत्तु व्याख्यान करी रह्या हुता. आ प्रभाणे तेमने जेधने तेने
आ जेतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न थयो के (जड्हा खलु
भो ! जडं पञ्जुवासंति, मुंडा खलु भो मुण्डं पञ्जुवासंति) अरे ! जे बोधो
जड होय छे, तेओ जडने सेवे छे अने जे बोधो मुण्ड होय छे, तेओ मुण्डनी सेवा
करे छे (मूढा खलु भो मूढं पञ्जुवासंति) तेमज्ज जे बोधो मूढ होय छे तेओ
मूढनी सेवा करे छे. (अपण्डिया खलु भो अपण्डियं पञ्जुवासंति) जेओ अपं
डित होय छे तेओ अपण्डितने सेवे छे (निर्विण्णाणा खलु भो ! निर्विण्णाणं
पञ्जुवासंति) जेओ विशिष्ट ज्ञानथी रहित छे, ते विशिष्ट ज्ञान रहितने सेवे छे.
(से केस णं एस पुरिसे जड्हे, मु डे, मूढे, अपण्डिए, निर्विण्णाणे सिरीए
हिरीए अवगए उत्तप्पसरीरे) पण्ण आ डेयो पुरइ छे के जे जड, मुण्ड, मूढ,
अपण्डित, निर्विज्ञान होवा छता श्री तेमज्ज ही श्री युक्त छे. (उत्तप्पसरीरे)
शरीरनी कान्तिथी संपन्न छे (एस णं पुरिसे किमाहारमाहारेइ) आ पुरइ छे

किं परिणमयति ? किं स्वादति ? किं विचरि ? किं पयसि ? किं मण्डपे ?
 यत् खलु एष एतावन्महालयाय मनुष्यपरिणतो मण्डपे उच्यते तद्वद
 ब्रवीति ? एव संप्रोक्ष्यते, चि नारिसेपमहादी...
 ओ ! जहं पर्युपासते यावद् ब्रवीति, एव पामि खलु एव...
 शक्तोमि मभ्यङ् प्रकामं प्रविचरिन्म ॥३०॥ १२६॥

टीका—'तणं' से चिने' इत्यादि—

ततः खलु स चित्रः नारधिर्गर्वो मगन्तु...
 केशिनं कुमारश्चमज्ज अदरमामन्...
 (किं परिणामः) किम् प्रकार से जाने हुए मोक्ष को प्रोक्षण...
 (किं स्वायद्, किं पियद्, किं दलद्, किं पयच्छद्) केमी भविः कसु को प
 खाता है ? किम् प्रकार की कृतिर वस्तु का यह बात कहता है ? पर
 लोगों के लिये क्या देता है ? क्या विशेषरूप से यह उरें विचरिन् कर्मा
 है ? (जं णं एम ए महालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया स्वदेणं प्याह) जो यह पुरुष इतनी बड़ी विद्याय मनुष्य परिषदा के बीच स
 बैठ कर बड़े जोर से बोल रहा है ? (एव संप्रोक्ष्य) ऐसा उमने मिया
 क्रिया (चिने मारदि एव वयासी) इस प्रकार विचार करके फिर उमने
 चित्र मारथिसे ऐसा कहा—(चिन्ता ! जहं खलु भो जहं पञ्जुवासति,
 जाव वृयाह, साए वि यणं उज्जागभूमिण नो मम्मं पकामं पविचरिन्म) हे
 चित्र ! जह जह की पर्युपासना करते हैं यावन् यह बड़े जोर से बोल रहा है मैं भवनों
 भी उम उद्यानभूमि में इच्छानुसार अच्छी तरह से पूज नहीं पा रहा हूँ ।

जातनो आहार करे छ ? (किं परिणामेह) देवीशने आपिता भोजनं परिणामे छ ?
 (किं स्वायद्, किं पियद्, किं दलद्, किं पयच्छद्) छं जातनी इरिनी पणुतो
 आ आहार करे छ ? छं जातनी इरिनी व-पुठं आ पान करे छ ? लोकानं का
 थुं आपे छ ? विशेषरूपथी आ थुं लोकाना भाटे वितरित छे छ ? (जं णं एम
 ए महालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया स्वदेणं प्याह) ने छे का
 पुरथ आटली मोटी लोक परिषदानी वच्चे भेरीनि नः मोटा आटे भोजं छ ? (एव
 सपेहेह) आ प्रभाणे तेणे विचार करे (चिन्ता नारदि एव वयासी) आम
 विचार करेने पथी तेणे चित्र साग्धिने आ प्रभाणे थु—(चिन्ता ! जहं खलु भो
 जहं पञ्जुवासति, जाव वृयाह, साए वि यणं उज्जागभूमिण नो मम्मं
 पमि सम्म पकामं पविचरिन्म) हे चित्र ! जह जहने मेरे छ यावन् आ आट
 मोली रखी छे, हु पोते पणु आ उद्यानभूमिमा स्वस्थतापूर्वक मारी शिने...

जडोऽयमितिरूपः यावच्छब्देन-‘चिन्तितः=कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः’ इति स ग्राह्यम्, तत्र-चिन्तितः=पुनः पुनः स्मरणरूपो विचारः ‘मुण्डोऽय-’मितिलक्षणो द्विपत्रित इव, कल्पितः=स एव विचारः ‘मुण्डोऽय’मितिरूपः पल्लवितइव, प्रार्थितः, स एवेष्टरूपेण स्वीकृतः ‘निश्चयेनायमपण्डितः इतिरूपः पुष्पितइव मनोगतः संकल्पः मनसि दृढरूपेण निश्चयः ‘सत्यं निर्विज्ञानः’ इतिलक्षणः फलितइव समुदपद्यत=समुत्पन्नः। तदेव दर्शयति-‘जडु’ इत्यादि,

देखकर इसके मन में इस प्रकार का संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ. ‘यहां यावत् पद से संकल्प के आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, मनोगत ये विशेषण गृहीत हुए हैं. इनकी सार्थकता इस प्रकार से है, यह विचार उमकी आत्मा में पहिले अङ्कुर के रूप में जमा, अतः वह आध्यात्मिक हुआ बाद में वह पुनः पुनः स्मरणरूप होने के कारण चिन्तितरूप हो गया अर्थात् यह मुण्ड है यह मूढ है इस तरह वारं वार स्मृति में आने के कारण यह विचार द्विपत्रित अङ्कुर की तरह चिन्तितरूप बन गया-पुनः वही विचार यह मुण्डित ही है, और कोई नहीं है इसरूप से निश्चयापन्न होने के कारण पल्लवित हुए अङ्कुर की तरह प्रार्थित हो गया. ‘अयमपण्डित एव निश्चयेन’ फिर ऐसा निश्चय हो जाने से कि यह नियमतः अपण्डित ही है (पण्डित नहीं है) यह विचार पुष्पित अङ्कुर की तरह दृढरूप से स्वीकृत हो जाने के कारण पुष्पित हो गया. बाद में ‘यह विज्ञान रहित है’ इसरूप से मनमें दृढरूप से निश्चित हो जाने के कारण मनोगत हो गया. तात्पर्य कहने का

प्रश्नपूछा करता तो देशिकुमारश्रमण पर पडी. तेमने जेधने तेमना मनमा आ जातने। स कल्प-विचार-उद्भवयो. अडीं यावत् पद्यी संकल्पना आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत आ अथा विशेषणो अङ्कुर करवामा आव्या छे. आ अथा विशेषणो नी सार्थकता आ प्रमाणे समजवी. आ विचार तेना आत्माभां पडेला अङ्कुरना रूपमां जन्म्यो. तेथी ते आध्यात्मिक थयो. त्थारपथी ते वारवार स्मरणरूप होवा अदल चिन्तित रूप थछ गयो. अष्टले के आ मुण्ड छे, आ मूढ छे आ प्रमाणे वारंवार स्मृतिमां आववाथी आ विचार द्विपत्रित-अङ्कुरनी जेम चिन्तितरूप थछ गयो. पथी तेज विचार आ मुण्डित ज छे अन्य नडि, आ प्रमाणे निश्चयापन्न होवा अदल पल्लवित थयेला अङ्कुरनी जेम प्रार्थित थछ गयो. “अयमपण्डित एव निश्चयेन” त्थार पथी आ जातने निश्चय थछ जवाथी आ नियमतः अपण्डित ज छे आ विचार पुष्पित अङ्कुरनी जेम दृढ रूपी स्वीकृत थछ जवा अदल पुष्पित थछ गयो. त्थार आद ‘आ विज्ञान रहित छे.’ आ प्रमाणे मनमां दृढरूपमा निश्चित थछ जवाथी आ

जडोऽयमतिरूपः यावच्छब्देन-‘चिन्तितः=कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः’ इति संग्राह्यम्, तत्र-चिन्तितः=पुनः पुनः स्मरणरूपो विचारः ‘मुण्डोऽय-’मितिलक्षणो द्विपत्रित इव, कल्पितः=स एव विचारः ‘मुण्डोऽय-’मिति रूपः पल्लवितइव, प्रार्थितः, स एवेष्टरूपेण स्वीकृतः ‘निश्चयेनायमपण्डितः इतिरूपः पुष्पितइव मनोगतः संकल्पः मनसि दृढरूपेण निश्चयः ‘सत्यं निर्विज्ञानः’ इतिलक्षणः फलितइव समुदपद्यत=समुत्पन्नः। तदेव दर्शयति-‘जडुं’ इत्यादि,

देखकर इसके मन में इस प्रकार का संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ. ‘यहां यावत् पद से संकल्प के आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, मनोगत ये विशेषण गृहीत हुए हैं. इनकी सार्थकता इस प्रकार से है, यह विचार उमकी आत्मा में पहिले अंकुर के रूप में जमा, अतः वह आध्यात्मिक हुआ बाद में वह पुनः पुनः स्मरणरूप होने के कारण चिन्तितरूप हो गया अर्थात् यह मुड है यह मूढ है इस तरह वारं वार स्मृति में आने के कारण यह विचार द्विपत्रित अंकुर की तरह चिन्तितरूप बन गया-पुनः वही विचार यह मुण्डित ही है, और कोई नहीं है इसरूप से निश्चयापन्न होने के कारण पल्लवित हुए अंकुर की तरह प्रार्थित हो गया. ‘अयमपण्डित एव निश्चयेन’ फिर ऐसा निश्चय हो जाने से कि यह नियमतः अपण्डित ही है (पण्डित नहीं है) यह विचार पुष्पित अंकुर की तरह दृढरूप से स्वीकृत हो जाने के कारण पुष्पित हो गया. बाद में ‘यह विज्ञान रहित है’ इसरूप से मनमें दृढरूप से निश्चित हो जाने के कारण मनोगत हो गया. तात्पर्य कहने का

प्रश्नपुष्पा करता ते केशिकुमारश्रमण पर पडी. तेभने जेधने तेभनां मनमा आ जातने। संकल्प-विचार-उद्भवयो. आडी यावत् पद्यती संकल्पना आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत आ अथा विशेषणो अङ्गुलि करवाभां आव्या छे. आ अथा विशेषणो नी सार्थकता आ प्रमाणे समजवी. आ विचार तेना आत्माभां पडिला अङ्कुरना रूपमां जन्थे. तेथी ते आध्यात्मिक थये. त्थारपछी ते वारंवार स्मरणरूप होवा अदल चिन्तित रूप थय गये. अटले के आ मुड छे, आ मूढ छे आ प्रमाणे वारंवार स्मृतिमां आववाथी आ विचार द्विपत्रित-अङ्कुरनी जेम चिन्तितरूप थय गये. पछी तेज विचार आ मुण्डित ज छे अन्य नडि, आ प्रमाणे निश्चयापन्न होवा अदल पल्लवित थयेला अङ्कुरनी जेम प्रार्थित थय गये. “अयमपण्डित एव निश्चयेन” त्थार पछी आ जातने निश्चय थय जवाथी आ नियमत. अपण्डित ज छे आ विचार पुष्पित अङ्कुरनी जेम धृष्ट रूपथी स्वीकृत थय जवा अदल पुष्पित थय गये. त्थार आद ‘आ विज्ञान रहित छे’ आ प्रमाणे मनमां दृढरूपमा निश्चित थय जवाथी आ

जडोऽयमितिरूपः यावच्छब्देन-‘चिन्तितः=कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः संकल्पः’ इति संग्राह्यम्, तत्र-चिन्तितः=पुनः पुनः स्मरणरूपो विचारः ‘मुण्डोऽय-’मितिलक्षणो द्विपत्रित इव, कल्पितः=स एव विचारः ‘मुण्डोऽय’-मिति रूपः पल्लवितइव, प्रार्थितः, स एवेष्टरूपेण स्वीकृतः ‘निश्चयेनायमपण्डितः इतिरूपः पुष्पितइव मनोगतः संकल्पः मनसि दृढरूपेण निश्चयः ‘सत्यं निर्विज्ञानः’ इतिलक्षणः फलितइव समुदपद्यत=समुत्पन्नः। तदेव दर्शयति-‘जडो’ इत्यादि,

देखकर इसके मन में इस प्रकार का संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ. ‘यहां यावत् पद से संकल्प के आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, मनोगत ये विशेषण गृहीत हुए हैं. इनकी सार्थकता इस प्रकार से है, यह विचार उमकी आत्मा में पहिले अंकुर के रूप में जमा, अतः वह आध्यात्मिक हुआ बाद में वह पुनः पुनः स्मरणरूप होने के कारण चिन्तितरूप हो गया अर्थात् यह मुड है यह मूढ है इस तरह बार-बार स्मृति में आने के कारण यह विचार द्विपत्रित अंकुर की तरह चिन्तितरूप बन गया-पुनः वही विचार यह मुण्डित ही है, और कोई नहीं है इसरूप से निश्चयापन्न होने के कारण पल्लवित हुए अंकुर की तरह प्रार्थित हो गया. ‘अयमपण्डित एव निश्चयेन’ फिर ऐसा निश्चय हो जाने से कि यह नियमतः अपण्डित ही है (पण्डित नहीं है) यह विचार पुष्पित अंकुर की तरह इष्टरूप से स्वीकृत हो जाने के कारण पुष्पित हो गया. बाद में ‘यह विज्ञान रहित है’ इसरूप से मनमें दृढरूप से निश्चित हो जाने के कारण मनोगत हो गया. तात्पर्य कहने का

प्रश्नपुत्रा करता ते डेशिकुमारश्रमण पर पडी. तेमने जेधने तेमनां मनमां आ जातने संकल्प-विचार-उद्भवयो. अडीं यावत् पदथी संकल्पना आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत आ अथा विशेषणो अडणु करवाभां आव्यां छे. आ अथा विशेषणो नी सार्थकता आ प्रमाणे समजवी. आ विचार तेना आत्माभां पडेलां अंकुरना रूपमां जन्गयो. तेथी ते आध्यात्मिक थयो. त्पारपथी ते वारवार स्मरणरूप होवा अदल चिन्तित रूप थधं गयो. अटले डे आ मुड छे, आ मूढ छे आ प्रमाणे वारवार स्मृतिमां आववाथी आ विचार द्विपत्रित-अंकुरनी जेम चिन्तितरूप थधं गयो. पथी तेज विचार आ मुंडित ज छे अन्य नडि, आ प्रमाणे निश्चयपन्न होवा अदल पल्लवित थयेला अंकुरनी जेम प्रार्थित थधं गयो. “अयमपण्डित एव निश्चयेन” त्पार पथी आ जातने निश्चय थधं जवाथी आ नियमत. अपुंडित ज छे आ विचार पुष्पित अंकुरनी जेम धष्ट रूपथी स्वीकृत थधं जवा अदल पुष्पित थधं गयो. त्पार आद ‘आ विज्ञान रहित छे.’ आ प्रमाणे मनमां दृढरूपमा निश्चित थधं जवाथी आ

विशिष्टज्ञ.नरहिनाः बुद्धिहीनत्वात्, त एव निर्विज्ञान=सद्बोधरहितमेनं पर्यु-
पासते। स एष कीदृशः पुरुषः यो जडो मुण्डो मूढोऽपण्डितो :निर्विज्ञानोऽपि
श्रिया==महातिमहालयपरिषदादिशोभया, द्विया=लज्जया-कुचेष्टावर्जनरूपया
उपगतः=संपन्नः तथा-उत्तमशरीरः=शरीरकान्त्या दीप्यमानो वर्तते इति
किं कारणम् ? कारणं चिन्तयति-एष खलु पुरुषः कं=किम्प्रकारम् आहारं=
भोजनम् आहारयति=करं ति ? किं=केन प्रकारेण भुक्तं भोजनं परिणमयति=
परिणामं प्रापयति ?, किं=कीदृशं रुचिरं वस्तु खादति ? किं=कीदृशं रुचिरं
प्रपणकादिकं पिबति?, किं ददाति एभ्यो लोकेभ्यः, किं प्रयच्छति=विशेषेण
ददाति यत्=यस्मात्कारणात् खलु एष पुरुषः एतावन्महालयायाः=महत्याः
मनुष्यपरिषदो मध्यगतः=मध्योपविष्टःसन् महता शब्देन=उच्चैःस्वरेण ब्रवीति=
वदति ? । एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण संप्रोक्षने=विचारयति, चित्र सारथिमेवमवा-

सेवा करते हैं। यह कैसा पुरुष है ? जो जड, मुण्ड, मूढ़, अपण्डित एवं निर्वि-
ज्ञान हुआ भी महानिमहालय परिषदा-याने विशालसभा में शोभा से
एवं कुचेष्टावर्जनरूप लज्जा से संपन्न बना हुआ है। एवं शरीरकी कान्ति से
देदीप्यमान हो रहा है। इसमें कारण क्या है ? क्या यह इस प्रकार के
आहारको करता है जो इसके शरीर में ऐसी कान्ति प्रदान करता है-
यही बात वह 'क आहारं आहारयति' इत्यादि पदों द्वारा विचार करता
है। यह किस प्रकार वे आहारको लेता है ? तथा किस प्रकार से भुक्त भोजन को
यह परिणमाता है ? यह कैसी रुचिर वस्तु खाता है ? अगर कैसे रुचिरपान को ग्रहणीता
है ? यह इन लोको के लिये क्या दे रहा है ? क्या विशेषरूप से यह इन्हे प्रदान
कर रहा है ? जो यह इस बड़ी भारी मनुष्य परिषदा के बीच में बैठा
हुआ बड़े जोर से बोल रहा है। इस प्रकार से उसने विचार किया-

अडित छे डे ने नड, मुड, मूड, अपडित अने निर्विज्ञान होवा छता पछु महति-
महालय परिषदा ओठवे डे विशाल सभाभा शोभाथी अने कुचेष्टा वर्जनरूप लज्जार्थ
भुक्त थयेवे छे तेमज शरीरकान्तिथी दीप्यमान थछ रह्ये छे आतुं शुं धानु छे ?
शु ते आ नतने आहार करे छे डे ने अने शरीरभा अेवी धाति उत्पन्न करे
छे अेज वात ने 'क' आहारं आहारयति' वगेरे पढे पडे अतावे छे. अ थछ
नतने आहार अडु छे ? .तेमज थछ नतना भुक्त लोअनने आ परिष्ठाभावे छे ?
आ थछ नतनी रुचिर वस्तुने आहार करे छे ? देवा रुचिर पानपदार्थने आ पीवे
छे ? आ पुत्र आ अधाने शुं आपी न्ह्ये छे. ? विशेषउपधी आ अधा अेअत्र
धयेला होअने आ शुं आपी न्ह्ये छे ? डे ने आ अटु मोटी विद्याण पन्पिदानी
वन्चे पेअीने अटु मोटा वन्धी मोली न्ह्ये छे आ प्रभावे तेरे विचार अर्थो त्या-

ज्ञानोपगतः अधोऽवधिकः आन्नजीवितः । ततः खलु म प्रदेशी राजा चित्रं सारथिमेवमवादीत्—अधोऽवधिक्य खलु वदमि चित्र ! अन्नजीवितत्वं खलु

उम चित्र सारथिने प्रदेशी राजा से कहा—(ए मणं सामा ! पासावच्चिज्जे केसी नामं कुमारसमणे जाइसम्पण्णे जाव चउनाणोवगण) हे स्वामिन ! ये पुरोवर्ती केशीकुमारश्रमण हैं । जो कि पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा में उत्पन्न हुए हैं। इन्होंने कुमारावस्था में ही संयम ग्रहण किया है इसलिए इन्हे कुमारश्रमण कहा गया है। ये जातिसंपन्न है, यावत् कुलसंपन्न है, इत्यादि पूर्व में कहे गये विशेषणों वाले हैं। इन विशेषणों का अर्थ वहीं पर लिखा जा चुका है. अतः यहाँ पर पुनः नहीं लिखा है। ये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यवज्ञान के अधिपति है—चार ज्ञान के धारी हैं (अधोऽवहिण् अण्णजीविण्) इनका जो अवधिज्ञान है वह परमावधि से किञ्चित ही न्यून है। इनका जीवन प्रासुक एषणीय अन्नपान से है. अर्थात् ये प्रासुक एषणीय ही आहार लेते हैं, उद्गमादि दोष से दूषित आहार नहीं लेते हैं। (तण्णं से पहीसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी) तव प्रदेशी राजाने चित्र सारथि से ऐसा कहा—(आहोहियं णं वयासी चित्ता ! अण्णजीविण्ण वयासी चित्ता ?) हे चित्र ! जो तुम ऐसा कहते हो कि इनका अवधिज्ञान परमावधि से

चित्र सारथिने प्रदेशी राजाने आ प्रभाण्णे उल्लु (ए मणं सामी ! पासावच्चिज्जे केसी नामं कुमारसमणे जाइसम्पण्णे जाव चउनाणोवगण) हे स्वामिन ! आ आपणी सामे केशीकुमार श्रमणु छे. के जेओ पार्श्वनाथनी शिष्यपरपराभा उत्पन्न थया छे. जेभण्णे कुमारावस्थाभा न सयम ग्रहणु कर्यो छे जेथी न जेभने कुमारश्रमणु कडेवाभा आओया छे जेओ जतिसंपन्न छे, यावत् कुलसंपन्न छे, वजेरे पडेला कडेवायेलां विशेषणोथी युक्त छे आ जधा विशेषणोने अर्थ पडेलां नपट करवाभा आओया छे. तेथी अहीं इरी कडेवाभा आओया नथी, जेओ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अने मन पर्यवज्ञानना अधिपति छे, चार ज्ञानधारी छे. (अधोऽवहिण् अण्णजीविण्) जेभनु जे अवधिज्ञान छे ते परमावधिथी थोदु न उन छं. जेभनु एवन प्रासुक जेपणीय अन्नपानथी छे जेटवे के जे ओ प्रासुक जेपणीय आहार ग्रहणु करे छे उद्गम वगेरे दोषोथी दूषित आहार जेओ ग्रहणु करता नथी तण्णं से पहीसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी) त्वारे प्रदेशी राजाने चित्र सारथिने आ प्रभाण्णे उल्लु. (आहोहियं णं वयासी चित्ता ! अण्णजीविण्ण वयासी चित्ता ?) हे चित्र ! जो तने आ प्रभाण्णे उल्लु छे के जेभनु अवधिज्ञान परमावधि करता थोदुं न अल्प छे तेभन जेओ प्रासुक जेपणीय अण्ण

दीत्-प्रकटमवदत्-चित्र ! जडाः खलु जडं पर्युपासते, यावत्-यावच्छब्देन-
पूर्वोक्तं सर्वं ग्राह्यम्, व्रवीति=उच्चस्वरेण वदति येन कारणेनाहं स्वस्यामपि=
स्वकीयायामपि उद्यानभूमौ सम्यक्=सम्यक्प्रकारेण प्रकामम्-अतिशयं ।
प्रविचरितुं=मंचरितुं नो शक्नोमि=न समर्थो भवामि ॥सू० १२६॥

मूलम्—तएणं से चित्तं सारही पएसिरायं एवं वयासी-एसणं
सामी । पासावच्चिजे केसा नामं कुमारसमणे जाइसंपणणे जाव चउ-
नाणोवगए अधोऽवहिए अण्णजीविए । तएणं से पएसी राया चित्तं
सारहिं एवं वयासी-आहोहियं णं वयासि चित्ता ! अण्णजीवियत्तं
णं वयासि चित्ता ! ? हंता ! सामी ! आहोहियं णं वयामि अण्णजी-
वियत्तं णं वयामि । अभिगमणिज्जे णं चित्ता ! एस पुरिसे ? हंता !
सामी ! अभिगमणिज्जे । अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्हे एयं पुरिसं ?
हंता ! सामी ! अभिगच्छामो ॥सू० १२७॥

छाया—ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-एष खलु
स्वामिन् । पार्श्वीपत्नीयः केशीनामकुमारश्रमणः जानिसंघन्नः यावत् चतु-

वाद में यह चित्र सारथि से प्रकटरूप में इस तरह से कड़ने लगा-चित्र!
जड़ जड़ की उपासना करते हैं इत्यादि यहां यावत् शब्द से पूर्वोक्त सब
कथन जो यह जोर से इस मनुष्य परिषदा के बीच में बोल रहा है
यहां तक का ग्रहण हुआ है। इसी कारण मैं अपनी भी इस उद्यानभूमि
में ठीक तरह से घूम नहीं पा रहा हूं ॥सू० १२६॥

'तए णं से चित्तं सारही' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से चित्तं सारही पएसिरायं एवं वयासी) तव

पथी ते प्रकटइयमां चित्र सारथिने आ प्रभाणु कडेवा लाज्जे, के-डे चित्र । जड
जडनी उपासना करे छे वगेरे, अडीं यावत् शब्दथी पूर्वोक्त जडुं कथन-के जे आ
मोटा सादे मनुष्य परिषदानी वर जोखी रहं छे, अडीं सुधीउ प्रकृत करुं जेथजे,
येथी जे हुं-आ भारी जे उद्यान भूमिमां सारी रीते डरीकरी शकतो नथी, ॥सू० १२६॥

'तए णं से चित्तं सारही' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं से चित्तं सारही पएसिरायं एवं वयासी) त्वारे

ज्ञानोपगतः अधोऽवधिकः आन्नजीवितः । ततः खलु म प्रदेशी राजा चित्र सारथिमेवमवादीत्—अधोऽवधिक्यं खलु वदमि चित्र ! आन्नजीवितत्त खलु

उस चित्र सारथिने प्रदेशी राजा से कहा—(ए मणं मामा ! पामावच्चिज्जे केसी नामं कुमारमणणे जाइमपणणे जाव चउनाणोवगण) हे स्वामिन ! ये पुरोऽर्त्ती केशीकुमारश्रमण हैं । जो कि पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा में उत्पन्न हुए हैं। इन्होंने कुमारावस्था में ही मंगम ग्रहण किया है इसलिये इन्हें कुमारश्रमण कहा गया है। ये जातिसंपन्न हैं, यावत् कुलसंपन्न हैं, इत्यादि पूर्व में कहे गये विशेषणों वाले हैं। इन विशेषणों का अर्थ वहीं पर लिखा जा चुका है। अतः यहाँ पर पुनः नहीं लिखा है। ये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यवज्ञान के अधिपति हैं—चार ज्ञान के धारी हैं (अधोऽवद्विष्ट अणजीविष्ट) इनका जो अवधिज्ञान है वह परमावधि से क्लिप्त ही न्यून है। इनका जीवन प्रामुक्त एषणीय अन्नपान से है, अर्थात् ये प्रामुक्त एषणीय ही आहार लेते हैं, उद्गमादि दोष से दूषित आहार नहीं लेते हैं। (तण्णं से पहीमी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी) तव प्रदेशी राजाने चित्र सारथि से ऐसा कहा—(आहोहियं णं वयासी चित्ता ! अणजीविगत्त णं वयासी चित्ता ?) हे चित्र ! जो तुम ऐसा कहते हो कि इनका अवधिज्ञान परमारथि से

चित्र सारथिने प्रदेशी राजाने आ प्रभाणुं क्खु (ए मणं मामा ! पामावच्चिज्जे केसी नामं कुमारमणणे जाइसम्पणणे जाव चउनाणोवगण) हे स्वामिन् ! आ आपणी सामे केशीकुमार श्रमणुं छे. हे वेओ पार्श्वनाथनी शिष्यपरंपरामा उत्पन्न थया छे. ओमणुं कुमारावस्थामा न सयम अडुणुं उर्थो छे ओथी न ओमने कुमारश्रमणुं कडेवामा आव्या छे ओओ जतिसंपन्न छे, यावत् कुलसंपन्न छे, नरेर पडेला कडेवायेलां विशेषणोथी युक्त छे. आ अधा विशेषणोना अर्थ पडेला नपथ करवामा आव्यो छे. तेथी अडीं इरी कडेवामा आव्यो नथी, ओओ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अने मन पर्यवज्ञानना अधिपति छे, चार ज्ञानधारी छे. (अधोऽवद्विष्ट अणजीविष्ट) ओमनु ते अवधिज्ञान छे ते परमावधियी वेदुं न उन छे. ओमनु एवन प्रामुक्त एषणीय अन्नपानवी छे ओटवे दे ओओ प्रामुक्त एषणीय आहार प्रदुणुं करे छे. उद्गम वजेरे देपोथी दूषित आहार ओओ नदुं नता नथी तण्णं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी) तव प्रदेशी राजाने चित्र सारथिने आ प्रभाणुं क्खु. (आहोहियं णं वयासी चित्ता ! अणजीविगत्त णं वयासी चित्ता ?) हे चित्र ! जो तने आ प्रभाणुं क्खे छे हे मने अवधिज्ञान परमावधि करता ओदुं न नदुं छे तेनए ओओ प्रामुक्त आहार लेते

वदास चित्र ! ? । हन्त स्वामिन् ! आधोऽवधिव्य खलु वदामि अन्नजीवि
तत्त्व खलु वदामि । अभिगमनीयः खलु चित्र ! एष पुरुषः ? हन्त ! स्वामिन् !
अभिगमनीयः । अभिगच्छाम खलु चित्र ! वयं एत पुरुषम् ? हन्त ! स्वा
मिन् । अभिगच्छामः ॥ मृ० १२७ ॥

टीका—‘तएणं से चित्ते’ इत्यादि—ततः खलु स चित्रः सारथिः प्रदेशे
राजमेवमवादीत्—हे स्वामिन् ! एषः=अयं—पुरोवर्त्ती पार्श्वोपतीयः=पार्श्वस्वामि
शिष्यपरम्परासंज्ञातः केशी नाम कुमारश्रमणः=कुमारश्चासौ श्रमणश्च कुमार-
श्रमणः कुमारावस्थायामेव गृहीतसंयमः, कीदृशोऽयमित्याह-जातिसंपन्नः यावत्
यावच्छब्देन ‘कुलसंपन्नः’ इत्यादि विशेषणा न सर्वाणि पूर्वसूत्रोक्तानि संग्राह्याणि

किञ्चित् ही न्यून है तथा ये प्रासुक एषणीय ही आहार लेते है सो क्या
यह बात तुम सत्य कहते हो ? (हंता सामी ! आहोहियं णं वयामि, अण्णजी-
वियत्तं णं वयामि) हां, स्वामिन् ! मैं सत्य कहता हूं कि इनका अवधि-
ज्ञान परमावधि से किञ्चित् न्यून है और ये प्रासुक एषणीय ही आहार
लेते हैं । (अभिगमणिज्जे णं चित्ता ! एस पुरिसे) तो हे चित्र ! यह पुरुष
अभिगमनीय है. अर्थात् परिचय करने के योग्य है (हंता सामी ! ‘अभि-
गमणिज्जे) हां स्वामिन् । ये आपके लिये अभिगमनीय है अर्थात् परि-
चय करने के योग्य हैं । (अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्हं एयं पुरिसे)
तो हे चित्र ! मैं इनके साथ परिचय करलूं ? (हंता सामी ! अभिगच्छामो)
हां स्वामिन् ! आप इनके साथ परिचय करें ।

इसका टीकार्थ इस मूलार्थ के जैसा ही है । केवल विशेषता अण्ण
ज वियत्तं’ पद में है, इसका अर्थ तो मूलार्थ में लिखा जा चुका है—

७ अण्णु करे छे तो शुं आ वात साथी छे ? (हंता सामी ! आहोहियं णं वयामि
अण्णजीवियत्तं णं वयामी) हां स्वामिन् । हुं साथी वात कहुं छुं. अमत्तं
अवधिज्ञान परमावधि करतां थोहुं कम छे अने अओ प्रासुक एषणीय आहार
अण्णु करे छे. (अभिगमणिज्जे णं चित्ता ! एस पुरिसे) तो हे चित्र ! आ पुरुष
अभिगमनीय छे अटवे के ओणभाणु करवा योग्य छे. (हंता सामी ! अभिगमणिज्जे)
हां स्वामिन् ! अओ आपना भाटे अभिगमनीय छे अटवे के ओणभाणु करवा योग्य छे.
(अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्हं एयं पुरिसे) तो हे चित्र ! हुं अमनी साथे ओणभाणु करुं ?
(हंता सामी अभिगच्छामो) हां स्वामिन् तमे अमनी साथे ओणभाणु करी दो.

आ सूत्रनो टीकार्थं मूलार्थं प्रमाणे ७ छे. विशेषता इकत ‘अण्णजीवियत्तं’
भां छे. आनो अक अर्थ तो मूलार्थभां ७ लभवाभां आव्यो छे. अने जीने

अर्थोऽपि तत एव बोध्यः । चतुर्ज्ञानोपगतः=मत्यादिज्ञानचतुष्टयसंपन्नः
 अधोऽवधिकः=अधः=परमावधेरधोवर्ती अर्थाधः=य म तथा--परमावधेः किञ्च
 न्यूनावधियुक्तः अन्नजीवित =अन्नेन=प्रासुकैपणीयान्नमात्रेण जीतं=जीवन
 यस्य स तथा । तथा--'अन्यजीवित' इति वा छाया तत्र-अन्यःमै न तु
 स्वस्मै सर्वविरतिमत्त्वात् जीवनमरणाशंसाविप्रमुत्तत्वाद्वा जीवितं=जीवन
 यस्य स तथा, तादृशो वर्तते ! ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्र सारथि-
 मेमवादीत्-हे चित्र ! अस्य मुनेस्त्वम् अधोऽवधियस्यस्=अधोऽवधित्वं वदसि=
 मत्स्यं कथयसि? तथा-अन्नजीवितत्वम् अन्यजीवितत्वम् वाऽस्यमुनेः! हे चित्र !
 त्वं मत्स्यं कथयसि? इति पृच्छानन्तरं चित्र ! सारथिः प्राह-हे स्वामिन् !
 'हन्त ! इति स्वीकारे 'हे!' इति भाषायाम्, अस्य मुनेःहम् अधोऽवधिक्य
 खलु वदाभि मत्स्यं कथयामि, तथा अन्नजीवितत्वम् अन्यजीवितत्वम् वा वदामि=
 मत्स्यं कथयामि।पुनः प्रदेशी राजा प्राह-हे चित्र ! एष पुरुषःकिम् अस्माकम्
 अभिगमनीयः=परिचययोग्योऽस्ति? हन्त हे स्वामिन् ! एष मुनिः अभि-
 गमनीयोऽस्ति। पुनःप्रदेशी राजापृच्छति एवं तर्हि हे चित्र ! एत पुरुष वयम्
 अभिगच्छाम । अनेन सह परिचयं करवाम ? ! चित्रः सारथिः प्राह-हन्त हे
 स्वामिन् ! अभिगच्छाम=अनेन सह वयं परिचयं करवाम ॥मृ० १२७॥

मूलम्--तए णं से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं जेणेव
 केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, केसिस्स कुमारसमणस्स अदूर-
 सामंते ठिच्चा एव वयासी-तुब्भे णं भंते । आहोहिया अण-
 जीविया ? । तएणं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासा-
 पएसी ! से जहाणामए अंकवाणियाइवा संखवाणियाइवा दन-
 वाणियाइवा सुंक भसिउकामा णो सम्म पथ पुच्छति. एवामेव
 पएसी ! तुब्भेवि विणयं भंसेउकामो नो सम्मं पुच्छसि. ने णूणं तव

और दूसरा अर्थ 'अन्यजीवित' इस छायापक्ष में ऐसा होता है कि
 सर्वविरतियुक्त होने से अथवा जीवन मरण की आशंका से रहित होने
 से इनका जीवन दूसरों के लिये ही है अपने लिये नहीं ? ॥मृ १२७॥

अर्थ 'अन्यजीवित' का 'छायापक्ष' का अर्थ प्रकृत त्वं हे तव सर्वविरतियुक्त तु मत्स्यं
 अथवा अन्नमरुत्तुनी अथवायो रद्धिप इति वा । अन्नेन अन्नं अथवा अन्नेन अन्ने
 एव हे वेदाना माटे तदि. पृ १२७ ॥

पएसी ! ममं पासित्ता अयमेयारूमे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-
जडा खलु भो ! ज्जड जुपवासति जाव पवियरित्तए से णूणं पएसी !
अट्टे समत्थे ? हंता ! अत्थि ॥सू० १२८॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रेण सारथिना सार्धं यत्रैव
केशी कुमारश्रमणः तत्रैव उवागच्छति. केशिनः कुमारश्रमणस्य अदूरसा-
मन्ते स्थित्वा एवमवादीत्—यूयं खलु भदन्त ! अधोऽवधिकाः अन्नजी-
विताः । ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्—प्रदे-
शिन् ! तद्यथा नाम—अङ्कवणिज इति वा शङ्खाणिज इति वा दन्तवणिज-

‘तए णं से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (से पएसी राया चित्तेण सारहिणा
सद्धिं) वह प्रदेशी राजा चित्र सारथि के साथ (जेणेव केसिकुमारसमणे
तेणेव उवागच्छइ) जहा केशिकुमारश्रमण थे वहां पर गया (केसिस्स कुमा-
रसमणस्स अदूरसामते ठिच्चा एमं वयासी) वहां जाकर वह केशिकुमार
श्रमण से ‘से स्थान पर खडा रह गया कि जो स्थान न उनसे अधिक
दूर था और न अधिक पास था। वहीं से खड़े इमने उनसे ऐसा कहा—
(तुब्भे णं भंते ! आहोहिया अण्णजीविया) हे भदन्त ! आपका ज्ञान—व-
धिज्ञान परमावधि से किंचित् न्यून है, और आप प्रासुक्त एषणीय ही
आहार करते हैं ? (तए णं केसाकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी)
तब केशी कुमार श्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा— पएपी ! से तदा
णामए अक्काणि मड वा, दंताणि वाइ वा, सुंकां भंतिउं कामा णो पम

‘तए णं से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थारपणी (से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं)
त प्रदेशी राजा चित्र सारथिनी साथे (जेणेव केसि कुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ)
त्या देशिकुमार श्रमण हुता त्या गया. (केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसामते
ठिच्चा एवं वयासी) त्या बधने ते देशिकुमार श्रमणथी केवा स्थाने उला रखा
इ जे स्थान तेमनाथी वधादे इर पए नडि इतुं अने वधादे नएउक पए नडि इतुं
त्या उला उला न तेरे तेमने आ प्रभाहे उधुं. (तुब्भे णं भंते ! आहोहिया
अण्णजीविया) हे भदन्त ! आपतुं ज्ञान—परमावधि करता थोडुं कम छे ? अने
आप प्रासुक्त एषणीय आहार न प्रदएउ करे छे ? (तए णं केसीकुमारसमणे
पएसिं रायं एवं वयासी) त्थारे देशिकुमार श्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रभाहे उधुं

इति वा, शुक्रं भ्रंशयितुकामा नो सम्यक् पन्थानं पृच्छन्ति, एवमेव प्रदेशिन् । त्वमपि विनयं भ्रंशयितुकामा नो सम्यक् पृच्छसि, अथ नूनं तव प्रदेशिन् । मां दृष्ट्वा अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत-जडाः खलु भो ! जडं पर्युपासते यावत् प्रविचरितुं न नूनं प्रदेशिन् ! अर्थः समर्थः ? इन्त । अस्ति ॥ सू० १२८ ॥

पंथं पृच्छन्ति) हे प्रदेशिन् ! जैसे अंकरत्न के व्यापारी, अथवा गंखरत्न के व्यापारी, या दन्त के व्यापारी, -अर्थात् गंख शुभ भी होता है इसलिये उसको रत्न कहा है, राजदेय भाग को नहीं देने की इच्छा वाले होकर जाने के अच्छे मार्ग को नहीं पूछते हैं (एवामेव पपसी तुभे वि यणं भंसेउकामो नो सम्मं पुच्छसि) इसी प्रकार से हे प्रदेशिन् ! विनयरूप प्रतिपत्ति को नहीं करने की कामना वाले बने हुए तुमने भी यह अच्छेरूप से नहीं पूछा है. (मे णूणं तव पपसी ममं पानित्ता अयमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) हे प्रदेशिन् ! मुझे देखकर तुम्हें इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प हुआ है (जहुं खलु भो ! जहुं पज्जुवासन्ति जाव पवियरित्तए) जड पुरुष जड पुरुषकी पर्युपासना करते हैं यावत् मैं अपनी भी इस उद्यान भूमि में अच्छी तरह से घूम नहीं पा रहा हू (मे णूणं पपसी ! अट्टे समत्थे ?) हे प्रदेशिन् ! कहो मैं ठीक कह रहा हूँ न ? (हंता, अत्थि) हाँ, आप ठीक कह रहे हैं।

(पपसी ! से जहाणामए अंकवाणियाइ वा, मंग्ववाणियाइ वा, दंतवाणियाइ वा, सुंकं मसिउंकामा णो सम्मं पंथं पृच्छन्ति) हे प्रदेशिन् ! जेम अंकरत्नना वडेपारी, डे शंणरत्नना वडेपारी डे दन्तना वडेपारी (शंण शुभ पणु गणुय छे तेथी अडीं तेने रत्नइये उल्लेखवाभा आल्ये छे) रत्नकर आपवानी छच्छा न धरापता त्यांथी जवाना सारा भागो भाटे पूछपरछ डरता नथी (एवामेव पपसी तुभे वि वि यणं भंसेउकामो नो सम्मं पुच्छसि) आ प्रभाते हे प्रदेशिन् ! विनयरूप प्रतिपत्तिने न आचरता तमोत्थे पणु आ वाग शिष्टनावधी-नअत्थी-पूडी नथी. (मे णूणं तव पपसी ममं पानित्ता अयमेयारुवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) हे प्रदेशिन् मने जेइने तमने आ प्रभाते आध्यात्मिक धरत भनोएव संकल्प उत्पन्न थये छे डे (जहुं खलु भो ! जहुं पज्जुवासन्ति जाव पवियरित्तए) जड पुरुषो जडे मेरे छे यावत् हुं आनारीये लो उचन नू मेभा पणु सारी रीते आर नथी इरी शकता नथी (मे णूणं पपसी ! अट्टे समत्थे ?) हे प्रदेशिन् ! जेथे हं जन्कर इहुं हं ने ? (हंता, अत्थि) हाँ, आप ठीक कह रहे हैं।

टीका—‘तएणं से पण्णी’ इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशो राजा
 चित्रेण सारथिना सार्धं यत्रैव केशीकुमारश्रमणस्तत्रैवापागच्छति=समाग-
 च्छति, केशिनःकुमारश्रमणस्य अदूरसामन्ते=नातिदूरे नातिसमीपे स्थित्वा
 अनुपविश्यैव एवमवादीत्-युयं खलु हे भदन्त अधोऽवधिज्ञाः-अधोऽव-
 धिसम्पन्नाः ? अन्नजीविताः-प्रासुकैपणीयान्नभात्र विनः अन्यजीविनो वा?
 ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-हे प्रदेशिन् !
 तद्यथा इति दृष्टान्ते, नामेति वाक्यालङ्कारे, अङ्गवणिजः=अङ्गरत्नव्यापा-
 रिणः ‘इति’ वाक्यालङ्कारे ‘वा’ समुच्चये, शङ्खवणिजः=शङ्खरत्नव्यापारिणः,
 दन्तवणिजः=हस्तिदन्तव्यापारिणः उपलक्षणात्सर्वरत्नव्यापारिणः शुल्कं=
 राजदेयं भाग भ्रंशयितुकामाः=अदातुकामाः नो सम्यक्=समीचीनतया
 पश्यानं=गम्यमार्गं पृच्छन्ति, एवमेव=अनयैव रीत्या हे प्रदेशिन् ! त्वमपि
 विनय=प्रतिपत्तिरूपं भ्रंशयितुकामः=अकर्तुं काम नो सम्यक् पृच्छसि । अथ=
 वाक्यारम्भे नूनं=निश्चयेन हे प्रदेशिन् । तत्र मां दृष्ट्वा अयमेतद्रूपः=वक्ष्यमा-
 णप्रकारकः आध्यात्मिकः आत्मगतः यावत् कल्पितः प्रार्थित, चिन्तितः
 मनोगतः=मनः-स्थितः संकल्पः=विचारः समुपद्यत=समुत्पन्नः, तदेव दर्श-
 यति-जडाःखलु भो ! जडं पर्युपास्ते यावत् प्रविचर्षितुम्, यावत्पदसंग्राहः
 सर्वोऽपि पाठः पूर्वगतः, स तदर्थश्च तत एवावलोकनीयः । हे प्रदेशिन् !
 सौर्धः=मदुक्तस्त्वद्दहद्गतविचाररूपोऽर्थः नूनं=निश्चितं समर्थो=वास्तविको
 व्रत्ते ? प्रदेशी राजा प्राह—हन्त ! अस्ति=अद्यमर्थः समर्थाऽस्ति संत्य-
 मंस्तीति भावः ॥ सू० १२८ ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है. यहां ‘इति’ शब्द वाक्यालंकार में और ‘वा’
 शब्द समुच्चय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तथा ‘तद् यथा’ पद दृष्टान्त में
 आया है। उपलक्षण से यहां समस्त रत्न व्यापारी को ग्रहण करना चाहिये. ‘यावत्’
 पद से संकल्प के कल्पित, प्रार्थित, चिन्तित और मनोगत’ ये विशेषण
 ग्रहण किये गये हैं। तथा—‘षज्जुवासंति जाव’ के यावत् पद से पूर्वगत
 समस्त पाठ गृहीत हुआ है। यह पाठ १२६वे सूत्र में प्रकट किया गया है। सू० १२८।

टीकार्थ—आ सूत्रेनो टीकार्थ स्पष्ट न छे अडी ‘इति’ शब्द वाक्यालं-
 कारमां अने ‘वा’ शब्द समुच्चय अर्थमां वपान्येत्त छे. तेभ्य ‘तद् यथा’ पद
 दृष्टान्तमां आवेत्त छे. उपलक्षण्थी अडी गधा रत्नना वेपारीओत्तु अडथ
 समन्वुं नेधये. यावत् पदथी संकल्पना कल्पित, प्रार्थित, चिन्तित अने मनोगत
 ये विशेषणो अडथु करवा. नेधये ‘षज्जुवासंति जाव’ ना यावत् पदथी पूर्वगत
 समस्त पाठोत्तु अडथु समन्वुं नेधये आ पाठ १२६मा सूत्रमां आपेत्त छे. ॥सू० १२८॥

मूलम्--तएणं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी
मे केणं भंते ! तुज्झं नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्झे मम एयाखुंवं
अज्जत्थियं जाव संकप्पं समुप्पणं जाणह पासह ? तएणं से केसी
कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी--एवं खलु पएसि ! अहं सम-
णाणं निग्गंथाणं पंचविहे नाणे पणत्ते, तं जहा--आभिणिवोहिय-
णाणे ? सुयणाणे २ ओहिणाणे ३ मणपज्जवमाणे ४ केवलणाणे ५ ५ ।
से किं तं आभिणिवोहियनाणे ? आभिणिवोहियनाणे चउत्तिवहे पणत्ते,
तं जहा--उग्गहे ? ईहा २ अवाए ३ धारणा ४ । से किं तं उग्गहे ? उग्गहे
दुविहे पणत्ते, जहा नंदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिणिवो-
हियणाणे । से किं तं सुयनाणे ? सुयनाणे दुविहे पणत्ते--अंगप्रविट्ठं
च अंगवाहिरियं च, सव्व भाणियव्वं जाव दिट्ठिवाओ । ओहिणाणं
भवपच्चइयखाओवसमिय जहा नंदीए मणपज्जवनाणे दुविहे पणत्ते,
तं जहा--उज्जुमई य विउलमई य, तहेव केवलनाणं सव्व भाणि-
यव्वं । तत्थ णं जे से आभिणिवोहिनाणे, से णं मम अत्थि । तत्थ णं
जे से सुयणाणे से वि य ममं अत्थि । तत्थ ण जे से ओहिणाणे से
वि य ममं अत्थि । तत्थ णं जे से मणपज्जवनाणे से वि य ममं
अत्थि । तत्थ णं जे से केवलनाणे से णं नम नत्थि से णं अत्थि-
हंताणं भगवताणं । इज्जेण पएसी । अहं तव चउत्तिवहे-छाउ
सत्थिणं णाणेणं इमेयात्तं अज्जत्थियं जाव संकप्पं समुप्पणं
जाणाभि-पात्तामि ॥ सू. १२९ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत्—तर्कि खलु भदन्त ! युष्माकं ज्ञानं वा दर्शनं वा, येन यूयं मम एतद्रूपम् आध्यात्मिक यावत् संकल्पं समुत्पन्नं जानीथ पश्यथ ? ततः खलु स केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजान एवमवादीत् एवं खलु प्रदेशिन ! अस्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानां पञ्चविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानम् १, श्रतज्ञानम् २, अवधिज्ञानम् ३, मनःपर्यवज्ञानम् ४, केवलज्ञानम् ५ । अथ किं तद् आभिनिबोधिकज्ञानम् ? आभिनिबोधिकज्ञानं

‘त ए णं से पएसी राया’ इति’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त ए णं से पएसी राया केशिं कुमारसमणं एवं वयासी) पुनः उस प्रदेशी राजाने केशी कुमारश्रमण से ऐसा कहा—(से केणं भंते ! तुज्झे, नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्झे मम एयाख्वं अज्झत्थियं जाव संकल्पं समुत्पणं जाणह पासह ?) हे भदन्त ! ऐसा आपका वह कौनसा ज्ञान अथवा दर्शन है कि जिसके द्वारा आपने मेरे इस उत्पन्न हुए आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प को जाना है, और देखा है (त ए णं से केशी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) तब केशीकुमारश्रमणने उस प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(एवं खलु पएसी अमहं समणाणं णिग्गथाणं पंचविहे नाणे पणत्ते तं जहा—आभिनिबोदियनाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे केवलणाणे) हे प्रदेशिन ! हम श्रमण निर्ग्रन्थों के मत में पांच प्रकार के ज्ञान कहे गये हैं जैसे आभिनिबोधिकज्ञान,—मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान (से किं तं आभिनि-

‘त ए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त ए णं से पएसी राया केशिं कुमारसमणं एवं वयासी) श्री ते प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रमाणे उद्धं उ (से केणं भंते ! तुज्झे नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्झे मम एयाख्वं अज्झत्थियं जाव संकल्पं समुत्पणं जाणह पासह ?) हे भदन्त ! आपनी यासे अबुं उधं नतत्तं ज्ञानं उ दर्शनं उ उ नेनावडे आप भारमा उत्पन्न थयेत आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्पने लली गया छे. अने लेध गया छे. (त ए णं से केशीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) त्पारे केशीकुमार श्रमणे ते प्रदेशी राजाने आ प्रमाणे उद्धं (एवं खलु पएसी ! अमहं समणाणं णिग्गथाणं पंचविहे नाणे पणत्ते तं जहा—आभिनिबोदियनाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे, केवलणाणे) हे प्रदेशिन ! अमारा श्रमणु निर्ग्रन्थानां मतमा पाथ प्रधारना ज्ञान उडेवाभां आव्यां

चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अवग्रहः ? १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४।
अथ कोऽसौ अवग्रहः अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः यथा नन्द्या यावत् सैषा
धारणा, तदेतद्, आभिनिवोधिकज्ञानम्। अथ किं तत् श्रुतज्ञानम्? श्रुतज्ञानं
द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अङ्गप्रविष्टं च अङ्गवाह्यं च, सर्वं भणितव्यं यावत्-
दृष्टिवादः। अवधिज्ञानं भवप्रत्ययिकं क्षायोपशमिकं यथा नन्द्याम् (नं. पृ.

बोद्धियनाणे) हे भदन्त ! आभिनिवोधिकज्ञान का क्या स्वरूप है ? (आभिनि-
बोद्धियनाणे चउन्विहे पणत्ते) हे प्रदेशिन् ! आभिनिवोधिकज्ञान चार प्रकार
का कहा गया है। (तं जहा-उग्गहे ? ईहा २ अवाए ३ धारणा ४) जैसे-
अवग्रह. ईहा, अवाय और धारणा। (से किं तं उग्गहे) हे भदन्त ! अवग्रह
ज्ञान का क्या स्वरूप है। (जहानदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिनि
बोद्धियनाणे) अवग्रह से लेकर धारणापर्यन्त सब विवेचन नन्दीसूत्र में
कहा गया है, इस प्रकार वह आभिनिवोधिकज्ञान का स्वरूप है। (से किं
तं सुयनाणे) हे भदन्त ! श्रुतज्ञान का क्या स्वरूप है ? (सुयनाणे दुविहे-
पणत्ते) हे प्रदेशिन् ! श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। (तं जहा-
अङ्गप्रविष्टं च अङ्गवाहिरियं च) जैसे-अङ्गप्रविष्ट और अङ्गवाह्य (सर्व भाणि
यव्वं जाव दिट्ठिवाओ) इन दोनों श्रुतज्ञानों का वर्णन भी नन्दीसूत्र में कहा गया
है अतः दृष्टिवाद तक श्रुतज्ञान का समस्त वर्णन वहाँ से देखना चाहिये,
(ओहिनाणं भवपच्चइयं त्वओवसमियं जहा नदीए) अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक

छ. नेमके आलिनिबोधिज्ञान, भतिज्ञान, अविज्ञान, मन पर्यवज्ञान अने डेवज्ञान.
(से किं तं आभिनिबोद्धियनाणे) हे भदन्त ! आलिनिबोधिज्ञानचतुर्विधं स्वरूपं डेवुं
छे ? (आभिनिबोद्धियनाणे चउन्विहे पणत्ते) हे प्रदेशिन् ! आलिनिबोधिज्ञान
चार प्रकारचतुर्विधं डेववाय छे। (तं जहा-उग्गहे ? ईहा २ अवाए ३ धारणा ४) नेमके
अवग्रह १, ईहा २, अवाय ३, अने धारणा ४. (से किं तं उग्गहे) हे भदन्त ! अवग्रह
ज्ञानचतुर्विधं स्वरूपं डेवुं छे ? (उग्गहे दुविहे पणत्ते) हे प्रदेशिन् ! अवग्रह ज्ञान दो प्रकार
चतुर्विधं डेववाय छे। (जहा नदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिनिबोद्धियनाणे)
अवग्रहकी गारीने धारणा सुणीनु भदन्त विवेचन नन्दीसूत्र में कहा गया है।
अतः छे. आ प्रत्ययिकं क्षायोपशमिकं त्वओवसमियं से किं तं सुयनाणे)
हे भदन्त ! श्रुतज्ञानचतुर्विधं स्वरूपं डेवुं छे ? (सुयनाणे दुविहे पणत्ते) हे प्रदेशिन् !
श्रुतज्ञान दो प्रकारचतुर्विधं डेववाय छे। (तं जहा-अङ्गप्रविष्टं च अङ्गवाहिरियं च) जैसे-अङ्गप्रविष्ट
और अङ्गवाह्य (सर्व भाणि यव्वं जाव दिट्ठिवाओ) इन दोनों श्रुतज्ञानों का वर्णन भी नन्दीसूत्र में
कहा गया है अतः दृष्टिवाद तक श्रुतज्ञान का समस्त वर्णन वहाँ से देखना चाहिये,
(ओहिनाणं भवपच्चइयं त्वओवसमियं जहा नदीए) अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवा-
दीव—तर्कि खलु मदन्त ! युष्माकं ज्ञानं वा दर्शनं वा, येन यूयं मम
एतद्रूपम् आध्यात्मिकं यावत् संकल्पं समुत्पन्नं जानीथ पश्यथ ? ततः
खलु से केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानं एवमवादीव एवं खलु प्रदे-
शिन ! अस्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानां पञ्चविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-
आभिनिबोधिकज्ञानम् १, श्रतज्ञानम् २, अवधिज्ञानम् ३, मनःपर्यवज्ञानम् ४,
केवलज्ञानम् ५ । अथ किं तद् आभिनिबोधिकज्ञानम् ? आभिनिबोधिकज्ञानं

‘तए णं से पएसी राया’ इति’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केंसिं कुमारसमणं एवं वयासी)
पुनः उस प्रदेशी राजाने केशी कुमारश्रमण से एसा कहा—(से केव
भते ! तुज्जे, नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्जे मम एयारुव अज्ज
त्थियं जाव संकल्पं समुत्पणं जाणह पासह ?) हे मदन्त ! एसा आपका
बह कौनसा ज्ञान अथवा दर्शन है कि जिसके द्वारा आपने मेरे इस
उत्पन्न हुए आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प को जाना है, और देखा है
(तए णं से केशी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) तब केशीकुमार-
श्रमणने उस प्रदेशी राजा से एसा कहा—(एवं खलु पएसी अम्हं सम
णाणं णिग्गथाणं पंचविहे नाणे पणत्ते तं जहा—आभिनिबोहियनाणे, सुय
नाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे केवलणाणे)हे प्रदेशिन ! हम श्रमण निर्ग्रन्थों
के मत में पांच प्रकार के ज्ञान कहे गये हैं जैसे आभिनिबोधिकज्ञान,—मतिज्ञान
श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान (से किं तं आभिनि-

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केंसिं कुमारसमणं एवं वयासी) श्री
ते प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रमाणे क्खुं के (से केव
नाणे वा दंसणे वा जेणं तुज्जे मम एयारुव अज्जत्थियं जाव संकल्पं
समुत्पणं जाणह पासह ?) हे मदन्त ! आपका पाससे ओपुं क्खुं ज्ञान के
दर्शन के के नेनावडे आप भारामा उत्पन्न थयेद आध्यात्मिकयावत् मनोगत संकल्पने
लब्धी गया छे. अने लोभ गया छे. (तए णं से केशीकुमारसमणे पएसिं
रायं एवं वयासी) तब केशीकुमार श्रमणने ते प्रदेशी राजाने आ प्रमाणे क्खुं-
(एवं खलु पएसी ! अम्हं समणाणं णिग्गथाणं पंचविहे नाणे पणत्ते तं
जहा—आभिनिबोहियनाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे, केवलणाणे)
हे प्रदेशिन ! अमारा श्रमण निर्ग्रन्थाना मतमा पाथ प्रकारना ज्ञान क्खेवामां आव्यां

चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अवग्रहः ? १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४।
अथ कोऽसौ अवग्रहः अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः यथा नन्धां यावत् सैषा
धारणा, तदेतद्, आभिनिबोधिकज्ञानम्। अथ किं तत् श्रुतज्ञानम्? श्रुतज्ञानं
द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अङ्गप्रविष्टं च अङ्गबाह्यं च, सर्वं भणितव्यं यावत्-
दृष्टिवादः। अवधिज्ञानं भवप्रत्ययिकं क्षायोपशमिकं यथा नन्धाम् (नं, पृ.

बोहियनाणे) हे भदन्त ! आभिनिबोधिकज्ञान का क्या स्वरूप है ? (आभिणि-
बोहियनाणे चउन्विहे पणत्ते) हे प्रदेशिन् ! आभिनिबोधिकज्ञान चार प्रकार
का कहा गया है। (तं जहा-उग्गहे १ ईहा २ अवाए ३ धारणा ४) जैसे-
अवग्रह. ईहा, अवाय और धारणा। (से किं तं उग्गहे) हे भदन्त ! अवग्रह
ज्ञान का क्या स्वरूप है। (जहानदीए जाव से तं धारणा, से तं आभिणि
बोहियनाणे) अवग्रह से लेकर धारणापर्यन्त सब विवेचन नन्दीसूत्र में
कहा गया है, इस प्रकार वह आभिनिबोधिकज्ञान का स्वरूप है। (से किं
तं सुघनाणे) हे भदन्त ! श्रुतज्ञान का क्या स्वरूप है ? (सुघनाणे दुविहे-
पणत्ते) हे प्रदेशिन् ! श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है। (तं जहा-
अगपविट्ठं च अंगवाहिरियं च) जैसे-अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य (सन्धं भाणि
यव्वं जाव दिट्ठिवाओ) इन दोनों श्रुतज्ञानों का वर्णन भी नन्दीसूत्र में कहा गया
है अतः दृष्टिवाद तरु श्रुतज्ञान का समस्त वर्णन वहां से देखना चाहिये,
(ओहिनाणं भवपच्चइयं खओवसमियं जहा नदीए) अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक

छे. जेभडे आलिनिबोधिज्ञान, भतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान अने केवलज्ञान.
(से किं त आभिनिबोहियनाणे) छे लहतं। आलिनिबोधिज्ञानत्तुं स्वइयं डेवुं
छे ? (आभिनिबोहियनाणे चउन्विहे पणत्ते) छे प्रदेशिन् ! आलिनिबोधिज्ञान
चार प्रकारत्तुं छेवाय छे (तं जहा-उग्गहे १ ईहा २ अवाए ३ धारणा ४) जेभडे
अवग्रह १, छडा २, अवाय ३, अने धारणा ४, (से किं त उग्गहे) छे लहतं। अवग्रह
ज्ञानत्तुं स्वइयं डेवुं छे ? (उग्गहे दुविहे पणत्ते) छे प्रदेशिन् अवग्रह ज्ञान जे प्रकार
त्तुं छेवाय छे. (जहा नदीए जाव से त धारणा, से तं आभिनिबोहियनाणे)
अवग्रहत्थी भाडीने धारणा सुधीत्तुं समस्त विवेचन नन्दीसूत्रमा स्पष्ट करवामा
आत्थुं छे. आ प्रभाण्णे आ आलिनिबोधिज्ञानत्तुं स्वइयं छे ? (से किं त सुघनाणे)
छे लहतं। श्रुतज्ञानत्तुं स्वइयं डेवुं छे ? (सुघनाणे दुविहे पणत्ते) छे प्रदेशिन् !
श्रुतज्ञान जे प्रकारत्तुं छे. (तं जहा अगपविट्ठं च अगवाहिरियं च) जेभडे अंग
प्रविष्ट अंगबाह्य. (सन्धं भाणियव्वं जाव दिट्ठिवाओ) आ अन्ने श्रुतज्ञानत्तुं वल्लुं
पथुं नन्दीसूत्रमा करवामा आत्थुं छे तेथी दृष्टिवाद सुधी श्रुतज्ञानत्तुं अथुं वल्लुं
त्थाथी जे लल्लुं लेवुं जेधम्मे (ओहिनाणं भवपच्चइयं खओवसमियं जहा नदीए)

१६८ पं. ४) । मनःपर्यवज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च तथैव केवलज्ञानं सर्वं भागिनव्यम् । तत्र खलु यत्तत् आभिनिबोधिकज्ञानं तत्खलु ममास्ति? । तत्र खलु यत्तत् श्रुतज्ञानं तदपि च ममास्ति २ । तत्र खलु यत्तत् अवधिज्ञानं तदपि च ममास्ति ३ । तत्र-खलु यत्तत् मनःपर्यवज्ञानं तदपि च ममास्ति ४ । तत्र खलु यत्तत् केवलज्ञानं तत् खलु मम नास्ति, तत् खलु अर्हतां भगवताम् । इत्येतेन प्रदेशिन् ! अहं त्वं चतुर्विधेन छात्रस्थिकेन ज्ञानेन एतमेतद्रूपम् आभ्यात्मिकं यावत् संख्यं समुत्पन्नं जानामि पश्यामि । सू० १२९ ॥

और क्षाद्योपशमिकके भेद से दो प्रकार का कहा गया है । इसका भी वर्णन नन्दीसूत्र में किया गया है । (मणपज्जवनाणे दुविहे पणत्ते) मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार का कहा गया है (तं जहा-उज्जुमईयं विउलमईयं)-ऋजुमति और विपुलमति, (तद्देव केवलनाणं सर्वं भाणियव्वं) इसी प्रकार केवलज्ञान का वर्णन भी यहाँ पर करना चाहिये (तत्थ णं जे से आभिनिबोधियनाणे से णं मम अत्थि) इन पांच ज्ञानों में से मुझे मतिज्ञान रूप आभिनिबोधिकज्ञान है । (तत्थ णं जे से सुयनाणे से वि य ममं अत्थि) श्रुतज्ञान भी है (ओहियणाणे से वि य ममं अत्थि) अवधिज्ञान भी है । (तत्थ णं जे से मणपज्जवनाणे से वि य ममं अत्थि) और मुझे मनःपर्यवज्ञान भी है । (तत्थ णं जे से केवलनाणे से णं ममं नत्थि) केवलज्ञान मुझे नहीं है (से णं अरिहंताणं भगवताणं) यह केवलज्ञान अर्हन्त भगवन्तों के होता है (इच्चेएणं पएसी ! अहं त्वं चउव्विहेणं छात्रं

अवधिज्ञानं लवप्रत्ययिकं अने क्षाद्योपशमिकना लेदथी जे प्रकारतुं उडेवाय छे. आनु वरुणं पणु नन्दीसूत्रमां करवामां आणुं छे. (मणपज्जवनाणे, दुविहे पणत्ते) मनः पर्यवज्ञान जे प्रकारतुं उडेवाय छे. (तं जहा उज्जुमई य विउलमई य) जेभडे ऋजुमति अने विपुलमति (तद्देव केवलनाणं सर्वं भाणियव्वं) आ प्रमाणे जे केवलज्ञानतुं वरुणं पणु करवुं जेधये (तत्थ णं जे से आभिनिबोधियनाणे से णं मम अत्थि) आ पाय ज्ञानोमांथी अने मतिज्ञानइय आभिनिबोधिकज्ञान छे. (तत्थणं जे से सुयनाणे से वि य मम अत्थि) श्रुतज्ञान पणु छे. (ओहियणाणे से वि य मम अत्थि) अवधिज्ञान पणु छे. (तत्थ णं जे से मणपज्जवनाणे से वि य मम अत्थि) अने मनःपर्यवज्ञान पणु छे (तत्थ णं जे से केवलनाणे से णं ममं नत्थि) परतु मन केवलज्ञान नथी. (से णं अरिहंताणं भगवताणं, आ केवलज्ञान अर्हन्त भगवन्तोने होय छे. (इच्चेएणं पएसी ! अहं त्वं चउव्विहेणं छात्रं इमेयारु अज्झत्थियं जाव सकल्पं

टीका—'तएणं से पएसी' इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशी राजा
 केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत्-तत्र किम्=कीदृशं खलु हे भदन्त !
 युष्माकं ज्ञानं वा दर्शनं वा अस्ति येन ज्ञानेन वा दर्शनेन वा यूयं मम
 एतद्रूपं=पूर्वोक्तप्रकारम् आध्यात्मिकम्=आत्मगतविचारम् यावत् संकल्पम्,
 यावच्छब्देन-चिन्तितं, कल्पितं, प्रार्थितं मनोगतम्, इति संग्राह्यम्, संकल्पं=समु
 त्पन्नं=समुत्पन्नं जानीथ=ज्ञानविषयीकुरुथ पश्यथ=दर्शनविषयीकुरुथ। ततः=प्रदेशी
 राजमश्रानन्तरं खलु स केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवमवादीत्—
 एवं खलु हे प्रदेशिन ! अस्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानां पञ्चविधं ज्ञानं
 प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानम् १ श्रुतज्ञानम् २, अवधिज्ञानम् ३,
 मनःपर्यवज्ञानम् ४, केवलज्ञानम् ५। तत्र—आभिनिबोधिकज्ञानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं,
 तथा—अवग्रहः १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४। अथ कोऽसौ अवग्रहः !

स्थिएणं णाणेणं इमेयाखूबं अज्झत्थियं जाव संकप्पं समुत्पणं जाणामि पासामि)
 इस तरह से हे प्रदेशिन मैंने इन छात्रस्थिक चतुर्विधज्ञान के द्वारा तुम्हारे
 इस प्रकार के समुत्पन्न हुए इस संकल्प को जान लिया है और देख लिया है।

टीकार्थ—इसके बाद प्रदेशी राजाने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार
 कहा—हे भदन्त ? आपका ज्ञान दर्शन किस प्रकार का है कि जिससे आपने
 मेरे उत्पन्न हुए इस प्रकार के आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित
 एवं मनोगत इस संकल्प को जान लिया है, और देख लिया है ? इस
 प्रकार के प्रदेशी राजा के पूछने पर केशीकुमारश्रमणने उससे ऐसा
 कहा—हे प्रदेशिन ! श्रमणनिर्ग्रन्थों का ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है,
 अभिनिबोधिकज्ञान १, श्रुतज्ञान २, अवधिज्ञान ३, मनःपर्यवज्ञान ४, और
 केवलज्ञान ५. इनमें आभिनिबोधिकज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा के

समुत्पणं जाणामि पासामि) आ प्रमाणे ङे प्रदेशिनं । मे' आ छात्रस्थिक चार
 प्रकारना ज्ञानो वडे तमारामा समुत्पन्न थयेव संकल्पं ज्ञाणी'र्त्थो' छे अने जेठदीधो छे.

टीकार्थ—त्यारपणी प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमणने आ प्रमाणे कहुं के ङे
 लहतं । आपनु ज्ञानदर्शन कथं ज्ञातुं छे के जेथी आपे मारामा उत्पन्न थयेव
 आध्यात्मिक चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित अने मनोगत आ संकल्प ज्ञाणी जया छे
 अने जेठ गया छे ? आ प्रमाणे प्रदेशी राजाना प्रश्नने सांलणीने केशीकुमार श्रमणे
 तेमने आ शीते कहुं के 'ङे' प्रदेशिनं । श्रमणु निग्रथोतु ज्ञान पाच प्रकारतु डलेवाय
 छे. आभिनिबोधिकज्ञान १, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ३, मनःपर्यवज्ञान ४, अने केवलज्ञान
 ५, आमा आभिनिबोधिकज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय अने धारणा जेठदीधो चार

इति प्रश्ने आह-अवग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः यथा नन्द्यां यावत् सैषा धारणा= अवग्रहादारभ्य धारणापर्यन्तं सर्वभाभिनिबोधिकज्ञानविवरणं नन्दीसूत्रे विलोकनीयम् । अर्थस्तु नन्दीसूत्रस्य मत्कृतज्ञानचन्द्रिका टीकातो बोध्यः । तदेतद् आभिनिबोधिकज्ञानम् । अथ किं तत् श्रुतज्ञानम् ? श्रुतज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अङ्गप्रविष्टम् ? अङ्गबाह्यं च सर्वं=श्रुतज्ञानविषयकं सर्वं विवरणं भणितव्यं= नन्दीसूत्रोक्तमेवात्र पठितव्यं, यावत्-दृष्टिवादः=दृष्टिवादविवरणपर्यन्तमिति । अवधिज्ञानं-भवप्रत्ययिकं क्षायोपशमिकं चेति द्विविधं, यथा नन्द्यां=नन्दीसूत्रे यथाकथितं तथैव सर्वं विज्ञेयम् । अर्थोऽपि तत्रैव मत्कृतज्ञानचन्द्रिकाटीकायामवलोकनीयः । मनःपर्यवज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-

भेद से चार प्रकार का कहा गया है. अवग्रह का स्वरूप क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में केशिकुमारश्रमण ने कहा कि अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह के भेद से अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है. नन्दीसूत्र में अवग्रह से लेकर धारणा तकका पूर्णविषय अर्थाभिनिबोधिकज्ञान के विवरणप्रकरण में बहुत ही सुंदर ढंग से स्पष्ट किया गया है। नन्दीसूत्र के ऊपर हमने ज्ञानचन्द्रिका नाम की टीका लिखी है उसमें यह सब विषय स्पष्ट रूप से समझाया गया है. अतःविशेष जिज्ञासु इस विषय को वहां से देख लें। श्रुतज्ञान भी अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य के भेद से दो प्रकार का कहा गया है. इस विषय का भी स्पष्टीकरण नन्दीसूत्र में किया जा चुका है। भवप्रत्ययिक अवधि और क्षायोपशमिकअवधि इस प्रकार से अवधिज्ञान दो तरह का कहा गया है। इनका भी वर्णन वहीं पर किया गया है। ऋजु-

प्रकारतुं कडेवाय छे अवग्रहतुं स्वरूप डेवुं छे ? आ ज्ञातना प्रश्नना उत्तरमां डेशि-कुमार श्रमणु कहुं डे अर्थावग्रह अने व्यञ्जनावग्रहना लेहथी अवग्रहना जे प्रकारे कडेवाय छे; नन्दीसूत्रमां अवग्रहथी भांडीने धारणु सुधीनी संपूर्णु विगत आभिनिबोधिकज्ञानना विवरणु प्रकरणमां भूषण सारी रीते रणू करवामां आवी छे. नन्दीसूत्रती असोअे 'ज्ञानचन्द्रिका' नामे टीका लणी छे तेमां आ अधी जायतेतुं सविस्तार स्पष्टीकरणु करवामां आव्युं छे. तेथी विशेष जिज्ञासु सज्जनो त्यांथी ज वांचवा यत्न करे, श्रुतज्ञान पणु अंग प्रविष्ट अने अंग बाह्यना लेहथी जे प्रकारतुं कडेवाय छे. आ जायतेतु स्पष्टीकरणु पणु नन्दीसूत्रमां करवामां आव्युं छे. भव प्रत्ययिक अवधि अने क्षायोपशमिक अवधि आ प्रमाणु अवधिज्ञान जे प्रकारतुं कडेवाय छे. आ विषेतुं वषुंन पणु त्याज करवामां आव्युं छे. ऋजुमति अने विपुलमतिना लेहथी मनःपर्यवज्ञान जे प्रकारतुं कडेवाय छे आ विषेतुं समस्त विवरणु नन्दीसूत्रमांथी लणी

कृजुमतिश्च । विपुलमतिश्च । अत्यापि सर्वं विवरणं नन्दीसूत्रे द्रष्टव्यम् ।
 तथैव=नन्दीसूत्रोक्तप्रकारेणैव केवलज्ञानं=केवलज्ञानविवरणं सर्वं भणितव्यम् ।
 तत्र=तेषु पञ्चसु ज्ञानेषु खलु यत्तद् आभिनिवोधिकज्ञानं तत् खलु ममास्ति ।
 एवं श्रुतज्ञानम्, अवधिज्ञानम्, मनःपर्यवज्ञानं ४ चेति ज्ञान-
 चतुष्टयं ममास्ति । तत्र=तेषु पञ्चसु ज्ञानेषु यत्तत् केवलज्ञानं तत् मम नास्ति=
 न विद्यते तत्=केवलज्ञानं खलु अर्हतां भगवतां भवति नान्येषामिति । इत्ये-
 तेन=पूर्वोक्तेन कारणेन हे प्रदेशिन् ! राजन् ! अहं चतुर्विधेन=चतुष्टयप्रकारकेण-
 छागस्थिकेन=छागस्थसम्बन्धिना ज्ञानेन तव एतन् एतत्पं=त्वदन्तःकरणस्थम्-
 आध्यात्मिकं यावत् संकल्पं=मनोगतं संकल्पं सद्युत्पन्नं जानामि पश्यामि सू. १२९ ।

मूलम्—स ए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी-

अहं णं भंते ! इहं उवविसामि ? पएसी ! साए उज्जाणभूमीए तुमंसी
 चेव जाणए, तए णं से पयसी राया चित्ते णं सारहिणा सद्धि केसि-
 स्स कुमारसमणस्स अदूरसामंतै उवविसइ, केसिकुमारसमणं एवं
 वयासी तुब्भे णं भंते ! समणाणं णिगंथाणं एसा सण्णा एसा पइ-
 ण्णा एसा दिट्ठी एसा रुई एस हेऊ एस उवएसे संकप्पे एसा

मति और विपुलमति के भेद से मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार का कहा गया
 है। इसका समस्त विवरण नन्दीसूत्र से जानने योग्य है। इसी प्रकार
 केवलज्ञानविषयक समस्त कथन भी वहीं से जानना चाहिये। इन प्रदर्शित पांच
 ज्ञानों में से मुझे चारज्ञान प्राप्त हैं, आभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि-
 ज्ञान, एवं मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान मुझे नहीं है, यह ज्ञान अर्हन्त भग-
 वतों को ही होता है। अतः हे प्रदेशिन् ! मैं इन चार छागस्थिक ज्ञान
 से उत्पन्न हुए इस तुम्हारे अन्तःकरणस्थ आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प
 को जान गया हूँ और देख चुका हूँ ॥ सू० १२९ ॥

वेषुं नेधञ्जे. आ प्रभाणु केवलज्ञान विषयक समस्त कथन पणु त्याथी न् न्णाणी वेषुं
 नेधञ्जे. उपर न्णाणवेद पांच ज्ञानोभांथी भने चार ज्ञान प्राप्त थयेल छे. अलिनि-
 वोधिकज्ञान, (मतिज्ञान) श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अने मन पर्यवज्ञान भने केवलज्ञान
 प्राप्त थयेल नथी. आ ज्ञान अर्हन्त भगवतोने न् हुये छे. अथी छे प्रदेशिन् !
 इ आ चार छागस्थिक ज्ञानथी उत्पन्न थयेल तभारा आ अन्तःकरणस्थ आध्यात्मिक
 यावत् मनोगत संकल्पने न्णाणी गये छुं अने नेध गये छु. ॥ सू. १२९ ॥

तुला एव माणे एव पमाणे एव समोसरणे जहा अणो जीवो-
अणं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं? तएणं केसीकुमारसमणे पएसी
रायं एवं वयासी- पएसी! अहं समणाणे णिग्गंथाणं एसा
सण्णा जाव एव समोसरणे जहा अणो जीवो अणं सरीरं
णो तं जीवो तं सरीरं ॥ सू० १३० ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्
अहं खलु भदन्त ! इह उपविशामि ? प्रदेशिन् ? एतस्या उद्यानभूमिमेस्त्वमसि
एव ज्ञायकः, ततः खलु स प्रदेशी राजा चित्रेण सारथिना साद्धं केशिनः
कुमारश्रमणस्य अदूरसामन्ते उपविशति, केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्—युष्माकं

‘तए ण से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केसि कुमारसमणं एवं वयासी) इसके
बाद, केशीकुमारश्रमण से उस प्रदेशी राजाने ऐसा कहा (अहं णं भंते!
इहं उवविसामि) हे भदन्त ! मैं इस स्थान में बैठ जाऊं ? (पएसी ! साए
उज्जाणभूमिए तुमंसि चेव जाणए) तब केशीकुमारश्रमणने उससे कहा
हे प्रदेशिन् ! इस उद्यानभूमि के तुम ही ज्ञायक हो—अर्थात् उपवेशन के
विषय में या अनुपवेशन के विषय में मैं क्या कहूँ—यह तो स्वयं ही
जानो । (तए णं से पएसी राया चित्रेण सारहिणा सद्धिं केसिस्स कुमार
समणस्स अदूरसामन्ते उवविसइ) इसके बाद वह प्रदेशी राजा चित्र सारथि
के साथ केशीकुमारश्रमण के समीप—न अधिक दूर और न अधिक

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केसि कुमारसमणं एवं वयासी)
त्यारपथी केशीकुमारश्रमणने ते प्रदेशी राजाने आ प्रमाणे कहुं—(अहं णं भंते!
इहं उवविसामि) हे भदन्त ! मैं इस स्थान में बैठूँ ? (पएसी ! साए उज्जाण
भूमिए तुमंसि चेव जाणए) तब केशीकुमारश्रमणने ते राजाने आ प्रमाणे
कहुं के हे प्रदेशिन् ! आ उद्यानभूमिना तमे न न पक छे अट्टे के उपवेशन भाटे
के अनुपवेशन भाटे तमे कहेवुं ते अमार साधुकवथी गडार छे अथी ते
भाटे तमे पोतेव विचारी वे। (तए णं से पएसी राया चित्रेण सारहिणा
सद्धिं केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसामन्ते उवविसइ) तब पथी ते प्रदेशी
राज चित्रसारथिनी साथे केशिकुमारश्रमणनी पास—वधारे दूर पणु नडि-
तेमन वधारे नलक पणु नडि—जोवा स्थाने गेसी गयो (केसिकुमारसमण एवं

खलु भदन्त ! श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् एषा संज्ञा एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः
 एषा रुचिः एष हेतुः एष उपदेशः एष संकल्पः एषा तुला एतत् मानम् एतत्
 समवसरणम् यथा—अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो तत् जीवः तत् शरी-
 रम् ? ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्—प्रदेशिन्
 अस्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् एषा संज्ञा यावत् एतत् समवसरणं यथा—
 अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो तत् जीवः स शरीरम् ॥ सू० १३० ॥

पास के स्थान में बैठ गया (केशिकुमारसमणं एवं वयासी) और केशि
 कुमारश्रमण से इस प्रकार बोला—(तुम्हे णं भंते ! समणाणं निर्गन्थाणं एसा
 सण्णा एसा पइण्णा एसा दिट्ठी, एसा रुई एस हेऊ) हे भदन्त ! आप
 श्रमण निर्ग्रन्थों की यह संज्ञा है, यह प्रतिज्ञा है, (पदार्थ के स्वरूपका
 निश्चय ज्ञानरूप) यह दृष्टि है, यह रुचि है, यह हेतु है (एस उवएसे एस
 संकप्पे एसा तुला, एस माणे, एस पमाणे, एस समोसरणे) यह उपदेश
 है, यह संकल्प है, यह तुला है, यह मान है, यह प्रमाण है, यह समव-
 सरण है (जहा अण्णो जीवो, अण्णं सरीरं) कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है,
 (णो तं जीवो तं सरीरं) न जीव शरीररूप है और न शरीर जीवरूप है। (तए
 णं केशीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) तब केशी कुमारश्रमणने प्रदेशी
 राजा से ऐसा कहा—(पएसी ? अम्हं समणाणं निर्गन्थाणं एसा सण्णा जाव
 एस समवसरणे जहा अण्णो जीवो, अण्णं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं)

एसासी) अने केशिकुमार श्रमणने आ प्रभाण्णे उल्लुं—(तुम्हे णं भंते ! समणाणं
 निर्गन्थाणं एसा सण्णा एसा पइण्णा एसा दिट्ठी, एसा रुई, एस हेऊ)
 हे भदन्त ! आप श्रमण निर्ग्रन्थोनी आ संज्ञा छि, आ प्रतिज्ञा छि, आ दृष्टि छि,
 आ रुचि छि, आ हेतु छि, (एस उवएसे, एस संकप्पे एसा तुला, एस माणे,
 एस पमाणे, एस समोसरणे) आ उपदेश छि, आ संकल्प छि, आ तुला छि, आ
 माणु छि, आ प्रमाणु छि, आ समवसरणु छि (जहा अण्णो जीवो, अण्णं सरीरं,
 णो तं जीवो, तं सरीरं) हे एव अने शरीर बुदाबुदा छि, न एव शरीर रूप
 छि अने न शरीर एव रूप छि. (तए णं केशीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं
 वयासी) तब केशीकुमार श्रमणने प्रदेशी राजने आ प्रभाण्णे उल्लुं हे (पएसी ! अम्हं
 समणाणं निर्गन्थाणं एसा सण्णा जाव एस समवसरणे जहा अण्णो जीवो
 अण्णं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं) हे प्रदेशिन् ! श्रमण निर्ग्रन्थोनी आ

ટીકા-- 'તણ્ણં સે પાપ્પી રાયા' इत्यादि-ततः खलु स प्रदेशी-
 राजा केशिनं कुमारश्रमणं एवम्-अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत्-
 हे भदन्त! अहं खलु इह-अग्निमन म्थाने उपविशामि? ततः केशीकुमार-
 श्रमण आह-हे प्रदेशिन्! एतस्याः उद्यानभूमिः त्वमेव ज्ञायकः असि एषा
 उद्यानभूमिस्तवनिश्चिता, नाम्माकमुपवेगनामुपवेगानविषये वक्तुं कल्पते, त्वमेव
 जानासीति भावः। ततः खलु अ प्रदेशी राजा चित्रेण सारथिना सार्द्ध-
 केशिनः कुमारश्रमणस्य अहरसामन्ते-नातिदूरे नातिसमीपे उपविशति, उप-
 विश्य स केशिकुमारश्रमणम् एवम्-अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत्-हे
 भदन्त! युष्माकं खलु श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम्, एषा इयं संज्ञा-सम्य-
 ज्ञानम् अस्ति एवमग्रेऽपि क्रिया, एषा प्रतिज्ञा-निश्चयरूपा स्वीकारः, एषा
 दृष्टिः-दर्शनं-स्वतत्त्वम्, एषा रुचिः-श्रद्धापूर्वकोऽभिलाषः, एष इतुः-

हे प्रदेशिन् हम श्रमण निर्ग्रन्थों की यह संज्ञा है, यावत् यह समयसरण है कि जीव
 भिन्न है और शरीरभिन्न है, जीव शरीररूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है।

ટીકાર્થ--મૂલાર્થ કે જૈસા હી છે. પરન્તુ માધાર્થ ઇસકા ઇસ પ્રસંગ
 સે છે-કેશી કુમારશ્રમ કી ણ્ણં પ્રદેશી રાજા કી વાતચીત કે ઇસ પ્રસંગ
 મેં જબ પ્રદેશી રાજાને અપને બૈઠને કી વાત પૂછી તબ ઇસમેં અપની અનુ-
 મતિ દેના સાધુકલ્પ કે અનુકૂલ નહીં છે, અર્થાત્ તુમ બૈઠો-ઉઠો ઇત્યાદિ
 કહના સાધુઓં કો કલ્પતા નહીં હોને સે અધોગ્ય પ્રકટ કિયે, તબ પ્રદેશી રાજા
 ચિત્ર સારથિ કે સાથ વહાં બૈઠ ગયા. ફિર ડસને કેશી કુમારશ્રમણ
 સે ઈસા પૂછા કિ હે ભદન્ત! આપ કી ઈસી જો સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ સંજ્ઞા છે.
 ઈસી આપકી તત્ત્વનિશ્ચયરૂપ જો પ્રતિજ્ઞા છે, ઈસી આપકી દર્શનરૂપ દૃષ્ટિ-

સંજ્ઞા છે, યાવત્ આ સમયસરણ છે કે એવ અને શરીર બુદ્ધાંબુદ્ધાં છે. એવ શરીર
 રૂપ નથી અને શરીર એવરૂપ નથી.

ટીકાર્થ--મૂલાર્થ પ્રમાણે જ છે પણ ભાવાર્થ આ મુજબ છે. કેશીકુમાર શ્રમણ
 અને પ્રદેશી રાજાના વાર્તાલાપમાં જ્યારે પ્રદેશી રાજાએ કેશીકુમાર શ્રમણને ત્યાં બેસ-
 વાની વાત પૂછી ત્યારે રીતે કહેવું તે અમારા સાધુકલ્પથી બહાર છે. જેથી તે
 બાબતમાં તમોસ્વયં નિર્ણય કરો તેમ કહી. તેમની ઇચ્છા પર જ છાડી ત્યાર
 પછી પ્રદેશી રાજા પોતાના ઉચિત સ્થાન પર ચિત્રસારથિની પાસે બેસી ગયો. અને
 ત્યાં બેસીને કેશીકુમાર શ્રમણને આ પ્રમાણે કહ્યું કે હું ભદન્ત! આપની જે આ
 બાતની સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ સંજ્ઞા છે, તત્ત્વ-નિશ્ચયરૂપ જે પ્રતિજ્ઞા છે, દર્શનરૂપ દૃષ્ટિ સ્વતત્ત્વ

सर्वस्यापि दर्शनप्रतिपाद्यार्थस्य—एतत्कारणम्—युष्माकं दर्शनम्, एष उपदेशः—
शिक्षावचनम् एष संकल्पः—सर्वदैव भवतां तात्त्विकोऽध्यवसायः, एषा तुला-
तुल्येव तव स्वीकारः, तत्र तुलासादृश्यं च मेघपदार्थपरिच्छेदकत्वेन, एवम्
एतत् मानम्—प्रस्थादिमानसदृशस्तवस्वीकारः, मानसादृश्यमपि मेघपदार्थ
परिच्छेदकत्वेन, एतत् प्रमाणप्रत्यक्षादिप्रमाणसदृशस्त्वव स्वीकारः, प्रत्यक्षादि
सादृश्यं च स्वीकारे दृष्टेष्टाविरोधित्वेन, यथा प्रत्यक्षादिप्रमाणं दृष्टेष्टं न
विरुणद्धि तथा तवस्वीकारोऽपि । एतत् समवसरणं—बहूनामेकत्रमिलनम्
तद्वत् तव स्वीकारः, यथा समवसरणे बहवो जना आगत्य मिलन्ति तथैव
तव स्वीकारे सर्वाणि तत्त्वानि समाविशन्ति तत्स्वीकारस्वरूपमाह—यथा अन्यो
जीवः अन्यत् शरीरमिति—जीवः—उपयोगलक्षणः, अन्यः—शरीराद् भिन्नोऽस्ति,
एवं शरीरम् अन्यत्—जीवाद्भिन्नमस्ति, इत्येवं जीवशरीरयोः पार्थक्यमन्वय-

स्वतत्त्व है, ऐसी जो आपकी श्रद्धापूर्वक अभिलाषरूप रुचि है, ऐसा जो दर्शन
प्रतिपाद्य समस्त भी अर्थका आपका दर्शन कारणरूप हेतु है, ऐसा जो आपका
शिक्षा वचनरूप उपदेश है, ऐसा जो आपका संकल्प है. सर्वदा आपका
तात्त्विक अध्यवसाय है, तुला के जैसी मेघपदार्थ की परिच्छेदक होने से
ऐसी जो आपकी मान्यता है, प्रस्थादिमान के जैसी आपकी ऐसी जो
स्वीकृति—दृढधारणा है, आपका ऐसा जो दृष्ट—प्रत्यक्ष एवं दृष्ट अनुमान
से अविरोधी होने के कारण प्रत्यक्षादि प्रमाण स्वरूप जैसा मन्तव्य है,
आपकी ऐसी जो कथनी समवसरणरूप है (अर्थात् समवसरण में जैसे
अनेक जन आकर के मिलते हैं उसी प्रकार से तुम्हारे स्वीकाररूप सिद्धान्त
में समस्ततत्त्व अन्तर्हित हो जाते हैं, अतः यह समवसरणरूप है) कि-
उपयोगलक्षणवाला जीव अन्य है—शरीर से भिन्न है—भिन्न स्वरूपवाला

छे, श्रद्धापूर्वक अभिलाष रुचि छे, दर्शनप्रतिपाद्य समस्त अर्थतुं आपतु दर्शन
कारणरूप हेतु छे, शिक्षा वाचनरूप उपदेश छे, संकल्प छे, सर्वदा तात्त्विक अध्यवसाय छे,
तुलानी जेभ मेघपदार्थनी परिच्छेदक होवाथी जेवीन आपनी मान्यता छे, प्रस्थादि-
मान जेवी आपनी दृढधारणा छे, दृष्टप्रत्यक्ष अने दृष्ट अनुमानथी अविरोधी होवा
अदल प्रत्यक्ष वगेरे प्रमाणरूप आपतु मन्तव्य छे, आपनी जेवी जे कथनी समव-
सरणरूप छे (जेटले के समवसरणमा जेभ घण्टा होको आवीने जेकर धाय छे तेमज
तमारा स्वीकाररूप सिद्धान्तमा अथा तत्त्वो अन्तर्हित थछ जय
सरण छे.) के उपयोग लक्षणवाणे छेव अन्य छे. शरीर कराना र

मुखेनोक्तत्वा व्यतिरेकमुखेन तदेवाऽऽह-‘णो त’ इत्यादि-तत्=शरीरं जीवो च जीवश्च शरीरं न. ‘णो-त’ इति वाक्ये उभावपि तच्छब्दावव्ययम् । ततः खलु केशीकुमारश्चमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-अस्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् एषा संज्ञा यावद् एतत् समवसरण यथा अन्यो जीवः अन्यत् शरीरं, नो तत् जीवो नो स शरीरम् ॥मृ० १३०॥

मूलम्--तए णं से पएसी राजा केशिं कुमारसमणं एवं वयासी-जइ णं भंते ! तुब्भं समणाणं णिग्गंथाणं एसा सण्णा जाव समो-सरणे-जहा अण्णो जीवो अण्णं सरीरं णो तं जीवो तं सरीरं, एवं खलु ममं अज्जए होत्था, इहेव जंबूदीवे दीक्षे सेयवियाए णयरीए अधम्मिए जाव सथस्स वि य णं जणवयस्स नो सम्भं करभरवित्ति पवत्तेइ, से णं तुब्भं वत्तव्वयाए सुवहुं पावं कम्म कलिकलुसं सम-ज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उव-वण्णे । तस्स णं अज्जगस्स अह णत्तुए होत्था-इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए रथणकरंडगसमाणे जीवि उस्सविए हिययणंदणिजे-उंबरपुप्फं पिव दुल्लभे सवणायाए, किमंग

है, और शरीर उससे भिन्न है (यह अन्वयसुख से कथन है)। शरीर जीव-रूप नहीं है (यह व्यतिरेकमुख से कथन है) सो यह सत्य है न? इस प्रकार प्रदेशी राजा के कृत् इस प्रश्न को सुनकर केशीकुमारश्चमणने उससे कहा-हां, प्रदेशिन् । हम् श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी ही संज्ञा यावत् सम-वसरण है कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है. जीव शरीररूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है इस प्रकार से दोनों में सर्वथा पृथक्ता है। मृ. १३०।

वाणो छे अने शरीर तेनाथी णुहु छे (आ अन्वयमुपथी कथन छे) शरीर एवइय नथी. एव शरीरइय नथी (आ व्यतिरेक मुपथी कथन छे.) तो आ णधु सत्य छे ? आ जतना प्रदेशी राजाना प्रश्नने सालणीने केशीकुमार श्रमण्णे तेने कलु के हां प्रदेशिन् । अमारा जेवा श्रमण्णे निर्ग्रन्थेनी जेवी ज संज्ञा यावत् समवसरण्णे छे के एव णुदो छे अने शरीर णुहु छे. एव शरीरइय नथी अने शरीर एवइय नथी. आ प्रमाण्णे णन्ते साव णुदा णुदा छे. ॥ सू० १३० ॥

पुण पासाणयाए ? तं जइ णं से । अज्जए णं मम आगंतुं वएज्जा-
 एव खलु नत्तया ! अहं तव अज्जए होत्था, इहेव सेयवियाए नयरीए
 अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेमि, तएणं अहं सुबहुं
 पावं कम्मं कलिकलुस समज्जिणित्ता नएसु उववण्णे तं माणं
 नत्तया ! तुमपि भवाहि अधम्मिए जाव णो सम्मं करभरवित्तिं
 पवत्तेहि, माणं तुमपि एव चेव सुबहुं पावकम्म जाव उववज्जिहिसि,
 तं जइ णं से अज्जए मम आगंतुं वएज्जा तो णं अह सदहेज्जा पत्ति-
 एज्जा रोएज्जा जहा अन्नो जीवोअन्न सरीरं णो तं जीवो णो तं सरीरं,
 जम्हा णं से अज्जए मम आगंतुं नो एवं वयासी तम्हा सुपइट्ठिया
 मम पइन्ना समणाउसो ! जहा तज्जीवो त सरीर ॥ सू० १३१ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत् यदि खलु
 भदन्त ! युष्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानामेषा संज्ञा यावत् समवसरण यथा—अन्यो
 जीवः अन्यत् शरीरम् न तत् जीवः स शरीरम् एवं खलु मम आर्यकोऽभवत्, इहेव

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं से पएसी राया केशिकुमार समणं एवं वयासी)
 तव उस प्रदेशीराजाने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(जइ णं भंते !
 तुब्भं समणाणं निर्ग्रन्थाणं एसा सणा जाव समोसरणे) हे भदन्त ! यदि
 आप श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी संज्ञा यावत् समवसरण है कि (अण्णो
 नीवो अण्णं सरीर) जीव अन्य है और शरीर अन्य है (णो तं जीवो तं

‘त एणं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एणं से पएसी राया केशिकुमारसमणं एवं वयासी)
 त्वारे ते प्रदेशी राज्ञे केशीकुमार श्रमणेन आ प्रभाष्ये कलुं हे (जइ णं भंते !
 तुब्भं समणाणं निर्ग्रन्थाण एसा सणा जाव समोसरणे) हे भदन्त ! मे आप
 नेवा श्रमण निर्ग्रन्थानी येवी संज्ञा यावत् समवसरण्ये हे (अण्णो नीवो अण्णं सरीर)
 एव अन्ये हे अने शरीर अन्ये हे (णो तं जीवो तं सरीरं) एव शरीर

जम्बूद्वीपे द्वीपे श्वेतविकायां नगर्याम् अधार्मिकः यावत् स्वकस्यापि च खलु जनपदस्य नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयत्, स खलु युष्माकं वक्तव्यतया सुबहु पापं कर्म कलिकलुषं समज्यं कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु नरकेषु नैरयिकतया उपपन्नः । तस्य खलु आर्यकस्य अहं नष्टकः अमवम्, इष्टः

सरीर') जीव शरीररूप नहीं है. शरीर जीवरूप नहीं है. (एवं खलु ममं अस्मिन् होत्था—इहेव जंबूद्वीपे दीपे सेयं वियाए णयरीए अधस्मिन् जाव सयस्स वि य णं जणवयस्स नो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेइ) तो इस बातको यदि मेरे पितामह आकर के पुष्ट करें—मुझ से कहे—तो मैं आपके इस कथन पर विश्वास कर सकता हूँ ऐसा संबंध यहाँ लगाना चाहिये, इसी बात को वह इस आगे के सूत्रपाठ से प्रदर्शित करता है—वह कहता है कि इसी जम्बूद्वीप नामके द्वीप में स्थित इस श्वेतांविका नगरी में मेरे पितामह—दादा थे. ये अधार्मिक थे, यावत् अपने प्रजाजनों का टेकम लेकर भी उनका पोषण अच्छी तरह से नहीं करते थे. (से णं तुब्भं वत्तव्वयाए सुबहुं पापं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उववण्णे) वे आप के कथनानुसार बहुत पापी थे. अतिमलिन बहुत से पापकर्मों का उपार्जन करके वे कालमास में काल करके किसी एक नरक में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं। (तस्स

नभी. शरीर एवम् नभी. (एवं खलु ममं अस्मिन् होत्था इहेव जंबूद्वीपे दीपे सेयं वियाए णयरीए अधस्मिन् जाव सयस्स वि य णं जणवयस्स नो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेइ) तो आ बात को भास पितामह आनीने भने कहे तो हुं आयना कथन पर विश्वास भूझी शकुं तेम धुं. ओवो संबंध अहीं लगाववो जेधये. ओवो बातने ते आ सूत्रपाठके प्रदर्शित करतां कहे छे के आण जंबूद्वीप नामना द्वीपमा स्थित श्वेतांविका नगरीमां भास पितामह हुता. तेओ अधार्मिक हुता यावत् पोताना अण्णयो पापेथी कर वसूल करीने यणु तेमनुं सरस रीते लरथु पोषणु तेमण रक्षणु करता न हुता. (से णं तुब्भं वत्तव्वयाए सुबहुं पापं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उववण्णे) आपश्रीना कथन सुण्ण तेओ षडु मोटा पापी हुता. आतमलिन धणुं पापकर्मोनुं उपाणंन करीने तेओ कालमासमा काल करीने कथ ओक नरकमां नैरयिकनी

कान्तः प्रियः मनोज्ञः मनोऽमः स्थैर्यः वैश्वासिकः संमतः बहुमतः अनुमतः
रत्नकरण्डकसमानः जीवितोन्मविक्रः हृदयानन्दिजननः, उदुम्बरपुष्पमिव दुर्लभः
श्रवणतया किमद्ग पुनः दर्शनतया ? तद् यदि खलु स आर्यकः मम आग-
त्य वदेत्-एवं खलु नत्क ! अहं तव आर्यकोऽभवम्, इहैव श्वेतविकायां
नगर्याम् अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयम्, ततः खलु

णं अज्जगम्म अहं णत्तुए होत्था, इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे
वेसासिए संमए बहुमए रयणकरंडगसमाणे जीविउत्सविए) उन अर्यक का
मैं पौत्र हूं मैं उन्हें अभिलषित था. कान्त था, प्रिय था, मनोज्ञ था मनो-
गम्य था, स्थैर्यरूप था, विश्वासपात्र था, सन्मानपात्र था, प्रचुर मानपात्र
था, हृदयप्रिय था, रत्नकरण्डक के जैसा था, जीवन के उत्सवरूप था.
(हिययणंदिजणणे उंवरपुष्पंविच दुल्लभे सवणयाए, किमंगपुण पामणयाए)
उनके हृदय के आनन्द जनक था, उदुम्बरपुष्प के समान मैं उन्हें सुनने के
लिये दुर्लभ था-देखनेकी बात तो क्या कहनो (तं जइ णं से अज्जए
णं ममं आगंतुं वएज्जा) तो यदि वे आर्यक आकर के मुझसे ऐसा कहे
(एवं खलु नत्तुया ! अहं तं अज्जए होत्था, इहेव सेयंविआए नयरीए
अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेमि) हे पौत्र ! मैं तुम्हारा
आर्यक-पितामह था, इसी श्वेतांविका नगरी में अधार्मिक बना हुआ मैं
अच्छो तरह से प्रजाजन से प्राप्त टेकम से उनका पोषण नहीं करता था.

पिए मणुण्णे मणामे, थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए रयणकरंडगसमाणे
जीविउत्सविए) ते आर्यकनो हुं पौत्र छुं. हुं तेमना भाटे अबिलषित इतो, कंत
इतो, प्रिय इतो, मनोज्ञ इतो, मनोगम्य इतो, स्थैर्यरूप इतो, विश्वासपात्र इतो,
सन्मानपात्र इतो, प्रचुर मानपात्र इतो, हृदयप्रिय इतो, रत्न करंडक जेवो इतो,
श्रवणतया उत्सवरूप इतो (हिययणंदिजणणे उंवरपुष्पं विच दुल्लभे सवणयाए
किमंग पुण पामणयाए) तेमना हृदयने आनन्द आपनारे इतो उभराना पुण्यनी
जेम हुं तेमना भाटे जेवानी वात तो हर रही सालणवा भाटे पणु दुर्लभ इतो
(तं जइ णं से अज्जए णं ममं आगंतुवएज्जा) तो इवे जे ते आर्यक आवीने
मने आभ उडे डे (एवं खलु नत्तुया ! अहं तं अज्जए होत्था, इहेव सेयंविआए
नयरीए अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तेमि) हे पौत्र ! हुं तभारे
आर्यक-पितामह इतो. आन् श्वेताणिका नगरीमा अधार्मिक थधने प्रजाजनो पारे
हर पसव करीने पणु तेमनुं रक्षणु-पोषणु वगेरे करतो न इतो. (तए णं

अहं सुबहु पाप कर्म कलिकलुषं समज्जिणत्ता नरकषु उपपन्नः, तद् मा खलु
नप्तुक ! त्वमाप भव अधार्मिकः यावद् नो मम्यक् करभावृत्तिं प्रवर्तय,
मा खलु त्वमपि एवमेव सुबहु पापकर्म यावद् उपपत्त्यसे, तद् यदि खलु
स आर्यकः मम आगत्य वदेत-ततः खलु अहं श्रद्धध्याम् प्रतीयाम् रोचयेयं,
यथा-अन्नो जीवः अन्यत् शरीरम्, नो तत् जीवः स शरीरम्, यस्मात् खलु स

(तए णं अहं सुबहुं पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणत्ता नरएसु उववण्णे)
अतः मैंने बहुत अधिक अतिकलुष पापों का संचय किया था-और इससे
मैं नरको में से किसी एक नरक में नारक की पर्याय से उत्पन्न हुआ हूँ
(तं मा णं नत्तुया ! तुमं पि भवाहि अधम्मिण् जाव णो सम्मं करभरवित्तिं
पवत्तोहिं) इसलिये हे पौत्र ! तुम अधार्मिक मत होना, और प्रजाजनों से
प्राप्त टेकम से उनके पोषण में अस्वावधान मत रहना प्रत्युत उससे
उनका पोषण अच्छी तरह से करना (मा णं तुमं पि एवं चेव सुबहुं
पावकम्मं जाव उववज्जिहिमि) नहीं तो तुम भी इसी तरह से बहुत अधिक
पाप कर्म का यावत् उपार्जन करोगे, इसलिये ऐसे पापकर्मों का उपार्जन
मेरे द्वारा न हो इस तरह से (तं जइ णं से अज्जए ममं आगतुं वएज्जा)
यदि वे आर्यक आकरके मुझे समझावे (तो णं अहं सदहेज्जा पत्तिएज्जा
रोएज्जा जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं णो तं जीवो तं सरीरं) तो मैं
आपके इस कथन पर विश्वास करूँ और उसे अपनी प्रतीति का विषय
बनाऊँ. तथा अपना रुचि के भितर उसे उतारूँ (जहा अन्नो जीवो, अन्नं

सुबहुं पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणत्ता नरएसु उववण्णे) ऐथी मे
धणु अतिकलुष पापोनो संचय कर्यो छे अने ऐथी न नरकोमांथी डोह्णो नरकमा
नारकना पर्यायमां उत्पन्न थयो छुं (त मा णं नत्तुया ! तुमं पि भवाहि अधम्मिण्
जाव णो सम्मं करभरवित्तिं पवत्तोहिं) भाटे डे पौत्र ! तमे अधार्मिक थयो
नडि अने प्रणज्जोना पासेथी डर वसल करीने तेमना पोपणुना डाममा अस्वावधान
रडेशो नडि पणु तेमनुं सरस रीते पोपणु करेशो (मा णं तुमं पि एवं चेव
सुबहुं पावकम्मं जाव उववज्जिहिमि) नडितर तमे पणु भारी नेम न धणु
वधारे पापकर्मत्तुं यावत् उपार्जन करेशो. आ प्रमाणे आ वतनां पापकर्मत्तुं उपार्जन
भारा वडे थाय नडि तेम (तं जइ णं से अज्जए ममं आगतुं वएज्जा) तेथी ते
आर्यक आवीने मने समणवे. (तो णं अहं सदहेज्जा पत्तिएज्जा, रोएज्जा,
जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं णो तं जीवो तं सरीरं) तो हं आपना अ
कथन... विश्वास करी थडुं अने तेने भारी प्रतीतिने तेमन रुचिने विषय बनायी

आर्यकः मम आगत्य ना एवमवादीत्, तस्मान् सुप्रतिष्ठिता मम प्रतिज्ञा श्रम-
णाऽऽयुष्मन् ! यथा तज्जीवः स शरीरम् ॥ सू० १३१ ॥

टीका-- त एणं से पएसी' इत्यादि--=ततः खलु स प्रदेशी राजा
केचिन्नं कुमारश्रमणम् एवम्-अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत्-हे भदन्त !
यदि चेत् खलु युष्माकं श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् एषा संज्ञा यावत् समश्रमणं
यथा-अन्यो जीवः अन्यन् शरीरं नो तन् जीवः स शरीरम्, एवं-वक्ष्यमाण-
स्वरूपः खलु मम आर्यकः-पितामहः अभवत्, इहैव-आस्मिन्नेव जम्बूद्वीपे-
द्वीपे श्वेतिकाया नगर्याम् अधार्मिकः धर्माचरणवर्जितः यावत्--याव-
त्पदे-अधर्मिष्ठ इत्यादीनां पदानां सङ्ग्रह एकशततममत्राद् बोध्यः अर्थो-
ऽपि तत्रैव । स्वकस्यापि-म्यस्यापि च खलु जनपदस्य-देशस्य करभगवृत्ति
कारेण स्वग्राह्यभागग्रहणेन यो भरः-प्रजानां भागण=पोरणं तद्रथा या वृत्ताम्ना
सम्यक्-सुष्ठुरीत्या नो पावर्तयत्-अत्र मूले 'पवतेइ' इत्यार्थित्वाद् भूतार्थे
वर्तमाननिर्देशः । सः-पूर्वोक्तः आर्यकः खलु युष्माकं वक्तव्यतया=मतेन
सुबहु-प्रचुर कलिकलुपम्-अतिमलिनं पापं कर्म समर्ज्य-समुपाज्य कालमासं-
कालं कृत्वा, अन्यतरेषु-अन्यतमेषु नरकेषु नैर्गयिकतया-नारकतया उपपन्नः-
समुत्पन्नः । तस्य खलु आर्यकस्य अहं नप्तुकः=पौत्रः अभवम्, कीदृशोऽहम-

सरीरं, णो तं जीवो तं सरीरं) किं जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीवशरीर-
रूप नहीं है, शरीर जीवरूप नहीं है। (जम्हा णं से अज्जण ममं ना एवं
तम्हा सुपइट्ठिया मम पइन्ना समणाउसां ! जहा तज्जीवो तं सरीरं) परन्तु
जिस कारण से आर्यकने आकरके मुझसे ऐसा कहा नहीं है, उस
कारण से है श्रमण ! आयुष्मन् ! मेरी यह प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठित-सुस्थिर है
कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है।

टीकार्थ--मूलार्थ के अनुरूप ही है, परन्तु जो विशेषता है वह इस
प्रकार से है-प्रदेशी राजाने जो अपने को उष्ट्रादि विशेषणों वाला प्रकट
किया है सो उसका कारण यह है कि वह आर्यक को अभिलषित था

शुद्ध तेम छु. (जहा अन्नेहं जीवो, अन्न सरीर, णा त जीवो, त सरीरं)
हे एव अन्य के अने शरीर अन्य छे, एव शरीरउप नयी. (जम्हा ण से अज्जण
मम आगतुं नो एवं वयामी, तम्हा सुपइट्ठिया मम पइन्ना समणाउसां !
जहा तज्जीवो तं सरीरं) परन्तु वे श्रमणने लीधे आर्यके आवानि मने आ प्रभाणे
छे नही तेधा न हे श्रमण ! आयुष्मन् ! मेरी आ प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठित-सुस्थिर-छे
हे वे एव छे ते शरीर छे अने वे शरीर छे ते न एव छे.

टीकार्थ--मूलार्थ प्रभाणे न से परन्तु विशेषता आदडी न छे हे प्रदेशी
राजाने के पोताने छे वगेरे विशेषणोवाणे अलाये छे. ते तेतुं श्रमण से छे हे

भवमित्याह-इष्टः-अभिलषितः, कान्तः-कमनीयत्वात्, प्रियः-प्रेमपात्रत्वात्, मनोज्ञः-मनसा सम्यगपेक्ष्यतया ज्ञातत्वात्, मनोऽमः-मनोगम्यः, अतिप्रियत्वेन मनस्यवस्थितत्वात्, स्थैर्यं-स्थिरतागुणसम्पन्नः, वैश्वसिकः-विश्वासपात्रम् संमतः-संमानपात्रम्, बहुमतः-प्रचुरमानपात्रम्, अनुमतः-हृदयप्रियः तदाज्ञाराधकत्वात्, रत्नकरण्डकसमानः-रत्नानां-कर्केतनादीनां यत् करण्डकं तत्समानः-रत्नकरण्डक-तुल्यत्वं चात्रात्यन्तापेक्षत्वेन बोध्यम्, जीवितोत्सविकः-जीवितस्य-जीवनस्य य उत्सवः-उत्सविकः=उत्सवरूपः, नव नव हर्षजनकत्वात् हृदयानन्दजननः-हृदयानन्दकारकः, उदुम्बरपुष्पमिव-उदुम्बरपुष्पं यथा दुर्लभं-तथाऽहर्माप श्रवणतया-श्रवणेन, अङ्ग ! हे मुने ! किं पुनः दर्शनतया-दर्शनेन अपि तु दर्शनेनात्यन्तदुर्लभोऽहमित्यर्थः, तत्-तस्मात् यदि-चेत् खलु स आर्यकः मम आगत्य वदेत् कथयेत्-कथनीयस्वरूपमाह-एवं खलु भूषुक !-हे पौत्र ! अहं तव आर्यकः=पितामहः अभवम्, इहैव-अस्यामेव श्वेतां विकायां नगर्याम् अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयम्-अत्रापि सूत्रे 'पवत्तेमि' इत्यार्पित्वाद् भूतार्थे वर्त्तमाननिर्देशः । ततः-तस्मा-

इसलिये इष्ट था, कमनीय-सुंदर होने से कान्त था, प्रेमपात्र होने से प्रिय था, मनसे उसे अच्छी तरह से अपेक्षरूप से जाना था इसलिये मनोज्ञ था, अतिप्रिय होने के कारण मनमें अवस्थित था. इसलिये वह मनाऽम था, मनोगम्य था. स्थिरतागुण से संपन्न था-अतः स्थैर्यरूप था विश्वासपात्र होने से वैश्वसिक था, सन्मानपात्र होने से संमत था. प्रचुररूप में मानपात्र, होने से प्रचुर मानपात्ररूप था. उसकी आज्ञा का आराधक होने से अनुमत-हृदय प्रिय था अत्यन्त अपेक्षित होने से रत्नकरण्डक के समान था. नवर हर्षजनक होने से उत्सविक उत्सवरूप था, इसीलिये हृदयाह्लादक था. मूल में 'पवत्तेमि' ऐसा जो वर्तमानरूप से निर्देश हुआ है

ते आर्यकने अभिलषित हुतो-अथी इष्ट हुतो, कमनीय होवाथी कान्त हुतो, प्रेमपात्र होवाथी प्रिय हुतो, मने तेने सारी रीते अपेक्षरूपथी ज्ञाणी लीधी हुतो अथी ते मनोज्ञ हुतो, अतिप्रिय होवाथी ते मनमां अवस्थित हुतो अथी ते मनोऽम हुतो-मनोगम्य हुतो. स्थिरताना गुणथी संपन्न हुतो. अथी स्थैर्यरूप हुतो, विश्वासपात्र होवाथी वैश्वसिक हुतो, सन्मानपात्र होवाथी संमत हुतो, प्रचुररूपमा मानपात्र होवाथी प्रचुरमानपात्र रूप हुतो. तेनी आज्ञाने माननार होवाथी अनुमत-हृदयप्रिय हुतो, अत्यन्त अपेक्ष्य होवाथी रत्नकरण्डकनी जेम हुतो नवनवीन उदुम्बरपुष्प होवाथी उत्सविक-उत्सवरूप हुतो-अथी न ते हृदयाह्लादक हुतो, मूलमा 'पवत्तेमि' अथी न

त्कारणात्-खलु अहं सुबहु-अत्यन्तं क्लिकलुषम्=अतिमलिनं पापं कर्म
 समर्ज्य=समुपाज्यं नरकेषु उपपन्नः-नारकतयोत्पन्नोऽभवम्. तत्-तस्मात्कार-
 णात् नप्तृक!-हे पौत्र ! त्वमपि तथा मा भव. अधार्मिको यावत् नो सम्यक्
 करभरवृत्तिं प्रवर्त्तय-निषेधार्थकपदद्वयं प्रकृतार्थं दृढयतीति त्वमवश्यमेव
 धार्मिकादिविशेषणाविशिष्टो भूत्वा स्वकस्य जनपदस्य करभरवृत्तिं सम्यक्
 प्रवर्त्तयेति भावः । मा खलु त्वमपि एवमेव-अहमिव सुबहु-पापकर्म यावत्
 यावच्छब्देन-समुपाज्यं-नरकेषु नैरयिकतया इति संग्राह्यम्, उत्पत्त्यसे मा
 उत्थेया इत्यर्थः, तत्-तस्मात् कारणाद्-यदि-चेत् खलु आर्यको मम
 आगत्य वदेन्-कथयेत्, ततः-तदा खलु अहं श्रद्धयाम्-भवद्वचने श्रद्धां कुर्याम्
 प्रतीया-विशेषतो विश्वस्याम्, रोच्यं रुचि विषयीकुर्याम् यथा अन्यो जीवो
 ऽन्यच्छरीरम् नो तत् जीवः स शरीरम्-इति। यस्मात् हेतोः खलु सः पूर्वोक्तः आर्य
 कः ममागत्य नो-न एवं पूर्वोक्तप्रकारेण अवादीत्-हे श्रमणायुष्मन् ! तस्माद्
 हेतोः मम प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठिता-सुस्थिरा यथा तत् जीवः स शरीरम् इति ॥३१॥

मूलम्—तएणं केसीकुमारसमणे पर्णस राय एव वयासी-अत्थि
 णं पएसी ! तव सूरियकता णाम देवी ? हंता अत्थि, जइ णं तुम
 पएसी त सूरियकंतं देविं णहाय कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपाय-
 च्छित्तं सव्वालंकारभूसिय केणइ पुरिसेण णहाएणं जाव सव्वालं-
 कारभूसिएण सद्धिं इट्ठे सद्धफरित्तसरूवे गंधे पंचविहे माणुस्सए
 कामभोगे पच्चणुवभवमाणिं पासिज्जामि तस्स णं तुमं पएसी ! पुरिस-
 स्स क डंडं निव्वत्तेज्जासि ? अहंण भंते ! तं पुरिसं हत्थच्छिणणं

वह थार्प होने से भूत अर्थ में हुआ है 'त माण नत्तया ! तुमं पि' इत्यादि
 मंत्र में आगत दो निषेधार्थक पद प्रकृत अर्थ की पुष्टि करते हैं यथा
 तुम अवश्य ही धार्मिक आदि विशेषणों वाले होकर अपने जनपद की
 करभरवृत्ति को अच्छी तरह से चलाओ-यह अर्थ पुष्ट होता है ॥३१॥

वर्तमान उपमा निर्देश ध्येय छे ते आर्षं हीवाधी नूत अर्थमा न वयेत्तं न आन
 सभन्तुं. 'त माणं नत्तया ! तुमं पि' वगेरे मन्त्रमा आयेत्ता ये निषेधार्थ उपदेहा प्रकृत
 अर्थने न पोये छे. अेटडे डे तमे अवश्यमेव धार्मिक वगेरे विशेषणैः पूर्णं तं पन्न धर्मि
 जनपदनी करभरवृत्तिने सारी इति सदाये-जा अर्थ पुट ध्येय छे । न. १३१

वा सूलाइग वा सूलभिन्नगं वा पायच्छिन्नगं वा एगाहच्चं कूडाहच्चं
 जीवियाओ ववरोवएजा । अहं णं पएसी से पुरिसे तुम एवं वदेजा-
 मा ताव मे सामी ! सुहुत्तगं हत्थच्छिपणगं वा जाव जीवियाओ
 ववरोवह जाव ताव अहं भित्तणाऽणियगसयणसंबंधिपरयणं एवं
 वयामि एवं खलु देवाणुप्पिया । पावाइ कम्माइं समायरेत्ता इमेया-
 रूवं आवइं पाविज्जामि, तं मा णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेवि केइ
 पावाइं कम्माइ समायरइ, मा णं भे वि एवं चेव आवइं पावेज्जाहि
 य जहा णं अहं, तस्स णं तुभं पएसी । पुरिसस्स खणमवि एयमट्टं
 पडिसुणेज्जासि ? णो इणट्टे समट्टे, कम्हा णं ? जम्हा ण भंते ! अक्क-
 राही णं से पुरिसे, एवामेव पएसी ! तववि अज्जए होत्था इहेव
 सेयवियाए णयरोए अधम्मिए जाव णो सम्म वरभरवित्ते पत्तए,
 से णं अम्हं वत्तव्वयाए सुबहु जाव उववन्नो, तस्स ण अज्जगस्स
 तुभं णत्तए होत्था इहे कते जाव पासणयाए, से ण इच्चइ माणुसं
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ।
 चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववण्णए नरएसु नेरइए इच्छेइ माणुसं
 लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ १ अहुणोववन्नए
 नरएसु नेरइए से णं तत्थ महव्वभूयं वेयणं वेदेमाणे इच्छेज्जा माणु-
 ससं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ । २ । अहुणोववन्नए
 नरएसु नेरइए नरयपालेहिं भुज्जो भुज्जो समहिट्टिज्जाणे इच्छइ
 माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ । ३ । अहुणोववन्नए
 नरएसु नेरइए निरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि

आनजिन्नसि इच्छइ माणुसं लोग हवमागच्छित्तए नो चेव णं
 सचाएइ हवमागच्छित्तए । ४। एव निरयाउंसि अबखीणे, अचेइए,
 अणिज्जिण्णे इच्छेज्जा माणुस्सं लोग हवमागच्छित्तए नो चेव णं
 संचाएइ । इच्छेएहिं चउहिं ठाणेहं पएसी ! अहुणोववन्ने नरएसु
 नेरइएसु नेरइए इच्छइ माणुसा लाग हवमागच्छित्तए नो चेव णं
 संचाएइ । तं रुद्धहाहि णं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्न सरीरं
 नो त जीवो तं सरीरं ॥सू० १३२॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत अस्ति
 खलु प्रदेशिन ! तव सूर्यकान्ता नाम देवी ? हन्त अस्ति, यदि खलु त्वं
 प्रदेशिन ! तां सूर्यकान्तां देवीं स्नाता कृतवातिकर्मा कृतकौतुकमालप्रा
 याश्चत्ता मर्षालङ्कारभूषिता केनापि पुरुषेण स्नातेन यावत् सर्वालङ्कारभूष
 तेन आर्द्धमृ इष्टान् शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् पञ्चविद्यान् मानुष्यकान् काम-

‘तए णं केशीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केशीकुमारसमणे) इसके बाद केशीकुमारश्रमणने
 (पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(अत्थि णं पएसी !
 तव सूर्यकान्ता नाम देवी ? हे प्रदेशिन तुम्हारी सूर्यकान्तानामकी देवी है ?
 (हंता, अत्थि) हां भदन्त ! है (जइ णं तुमं पएसी ! तं सूरियकतं देविं
 ष्हायं कयवल्लिकम्मं कयकोउयम गलपायच्छित्तं सव्वालंकारभूमियं केणउ
 पुरिसेणं ष्हाएणं, जाव सव्वालंकारभूमिण्यं सद्धिं इट्ठे सदफरिसरमरुवे गंधे
 पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुवभवमाणिं पासिज्जामि) यदि हे प्रदेशिन!

‘तए णं केशीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केशीकुमारसमणे) त्सारपटी देशीकुमार श्रमणे (पएसिं
 राय एव वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रभावे क्यु. (अत्थि णं पएसी ! तव
 सूरियकान्ता नाम देवी ?) हे प्रदेशिन ! तमारी सूर्यकान्ता नाम देवी है ?
 (हंता, अत्थि) हां भदन्त ! है. (जइ णं तुमं पएसी ! तं सूरियकतं देविं
 ष्हायं कयवल्लिकम्मं कयकोउयम गलपायच्छित्तं सव्वालंकारभूमियं
 केणउ पुरिसेणं ष्हाएणं, जाव सव्वालंकारभूमिण्यं सद्धिं इट्ठे सदफरि
 रमरुवगंधं पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुवभवमाणिं पासिज्जामि,

મોગાન પ્રત્યનુમાન્તીં પશ્યેઃ (તદા) તમ્ય ચ્વલુ ત્વં પ્રદેશિન્ ! કં દણ્ડં
નિર્વર્તયેઃ ? અહં ચ્વલુ મદન્ત ! તં પુરુષં હસ્તચ્છિન્નકં વા શૂલાતિગં વા
શૂલભિન્નકં વા પાદચ્છિન્નકં વા ઇકાઽઽપાતં કૂટાઘાતં જીવિતાદ્ વ્યપ-
રોપયેયમ્ અથ ચ્વલુ પ્રદેશન ! સ પુરુષ. ત્વામ્ એવં વદેત્ મા યાવત્

તુમ સ્નાન, કૃતચ્છિન્નકર્મા—(કાક આદિ કો અન્નાદિતા ભાગ દેનેહ્ય ઉસ
દેવીઓં ફિ જિમને કૌતુક, મંગલરૂપ પ્રાયશ્ચિત્તેં કર લિયા હે, ઓર સમસ્ત
અલંકારોં મે જો વિભૂષિત બનો હુઈ હૈ કિસી મી મ્નાન યાવત્ સર્વાલંકાર-
વિભૂષિત પરપુરુષ કે સાથ ઇષ્ટ શબ્દ, સ્પર્શ, રસ, રૂપ, ગંધ ડન પાંચ
પ્રકાર કે મનુષ્યભવ સંબંધી કામભોગોં કા અનુભવ કરતી હુઈ દેખલો તો
(તસ્મ ણં તુમં પપ્મી ! પુરિસ્સ્મ કં હંડં નિવ્વુત્તેજ્જાસિ ?) તો હે પ્રદે-
શિન્ ! તુમ ઉમ પુરુષ કે લિયે કયા-કેસા દણ્ડ દો ? (અહં ણં મંતે ! તં
પુરિસં હસ્થવિણગં વા મૂલાઙ્ગં વા મૂલભિન્નગં વા પાદચ્છિન્નગં વા ઇગા-
હચ્ચં કૂટાહચ્ચં જીવિયામો વરોત્તેજ્જા) તદ્ પ્રદેશી રાજાને કહા-હે
અદન્ત ! મૈં ઉમ પુરુષ કા ણેસા દંડ હૂં ફિ જિસસે ઉસકે દોનોં હાય કાટ
લિયે જાવેં, યા ઉસે શૂલી પર ચઢા દિયા જાવે, યા ઉસકે દોનોં પગ
કાટ લિયે જાવેં, યા ઇહ હો પ્રહાર મે ઉમકા પ્રાણ લે લિયા જાવે, વા
કિસી પર્વત શિવર પર ઉસે ચઢાકરં વહાં ઉસે ધક્કેલ દિયા જાવે. ફિ
જિસસે વહ અપને જીવન સે રહિત હાવૈઠે. (અહં ણં પપ્મી ! સે પુરિસે

પ્રદેશિન્ ! તમે જેણે સ્નાત, કૃત ચ્છિન્નકર્મા—કાગડા વગેરેને અન્ન ભાગ આપ્યો છે એવી
તે દેવીને કે જેણે કૌતુક મંગલરૂપ પ્રાયશ્ચિત્તો કરી લીધા છે. અને સમસ્ત અલં-
કારોથી જે વિભૂષિત થઈ ગયેલી છે અને ગમે તે સ્નાન યાવત્ સર્વાલંકારવિભૂષિત
પરપુરુષની સાથે ઇષ્ટ શબ્દ, સ્પર્શ, રસ, રૂપ, ગંધ આ પાંચ પ્રકારના મનુષ્યભવ
સંબંધી કામભોગો ભોગવતી બેઠેલા તે (તસ્મ ણં તુમં પપ્મી ! પુરિસ્સ્મ કં
હંડં નિવ્વુત્તેજ્જાસિ ?) તો હે પ્રદેશિન્ ! તમે તે પુરુષને કંઈ જાતની શિક્ષા કરશો ?
(અહં ણં મંતે ! તં પુરિસં હસ્થવિણગં વા મૂલાઙ્ગં વા મૂલભિન્નગં વા પાદચ્છિન્ન-
ગં વા ઇગાહચ્ચં કૂટાહચ્ચં જીવિયામો વરોત્તેજ્જા) ત્યારે પ્રદેશી રાજાએ
કહ્યું હે ભદ્રત ! હું તે પુરુષને આ જાતની શિક્ષા કરીશ કે જેથી તેના બંને હાથો
કાપી લેવામાં આવે કે તેને શૂલી પર ચઢાવવામાં આવે કે તેના બંને પગો કાપી
નાખવામાં આવે કે એક જ ધામા તેને ભારી નાખવામાં આવે અગર પર્વતશિખર
પર લઈ જઈ તેને ત્યાંથી નીચે ફેંટી દેવામાં આવે કે જેથી પરિણામે તે મૃત્યુ પામે.

स्वामिन् ! मुहुर्त्तकं हस्तच्छिन्नकं वा यावत् जीविताद् व्यपगपय यावत् तावद् अहं मित्रं ज्ञाति-निजक स्वजनसम्बन्धिपरिजनम् एवं वदामि-एवं खलु देवानुप्रिया ! पापानि कर्माणि समाचर्य इमाभेनद्रूपाम् आपात्त प्राप्नोमि, तत मा खलु देवानुप्रिया ! यूयमपि केचित् पापानि कर्माण समाचरत, मा खलु यूयमपि एवमेव आपात्ति प्राप्नुत यथा खलु अहं, तस्य खलु त्वं प्रदे-

तुमं एवं वदामि-मा ताव मे सामी ! मुहुत्तगं हत्थाच्छिन्नगं वा जीवियाओ ववरोवेदि जाव ताव अहं मित्तणाइणियगमयणसंबंधिपरियणं एवं वयासी) इस प्रकार से प्रदेशी राजा का कथन सुनकर केशीश्रमणने उसमे ऐसा कहा-हे प्रदेशी ! यदि वह तुमसे ऐसा कहे-हे स्वामिन् ! आप थोड़ी देर तक ठहरिये. मेरे हाथ पैर न काटिये यावत् मुझे जीवन से रहिन न कीजिये, तब तक मैं मित्र, माता आदि ज्ञाति, स्वपुत्रादिक निजक, पितृव्यादि स्वजन श्वशुर आदिक सम्बन्धिजन, दासी दास आदि परिजन, इन सब से ऐसा कह दूँ कि (एवं खलु देवाणुप्पिया ? पावाइं कम्माइ समायरत्ता इमेयारुवं आवइं पाविज्जामि) हे देवानुप्रियो ! मैं पापकर्मोंको समाचरित करके इस प्रकार की आपत्ति को पा रहा हूँ (तं मा णं देवाणुप्पिया ! तुव्भे वि केइं पावाइं कम्माइं समायरइ) इसलिये हे देवानुप्रियो ! आप लोग कोई भी पापकर्म मत करना कि (मा णं भे वि एवं चेव आवइं पावेज्जादि य जहा णं अहं) जिससे तुमका भी ऐसी आपत्ति म पडना पडे, जैसा

(अहं णं पएसी ! से पुरिमे तुमं वदेज्जा मा ताव मे सामी ! मुहुत्तगं हत्था-च्छिन्नगं वा जाव जीवियाओ ववरोवेदि जाव ताव अहं मित्तणाइणियग-सयणसंबंधिपरियणं एवं वयासि) आ प्रभाणु प्रदेशी राजतुं कथन मातृगीने केशीकुमार श्रमणु तेभने कथु के डे प्रदेशिन् ! जे तभने आ प्रभाणु कडे के स्वामिन् ! आप थोड़ी वधत थोली जव. भ'रा इयपग आपो नदि यावन् भने एवन् रडित पथु जनावो नदि. हुं मित्र, माता, पिता वगेरे ज्ञाति, स्वपुत्रादिक निजक पितृ-व्यादि स्वजन, श्वशुर वगेरे सम्बन्धिजन. दासदासी वगेरे परिजन आ अध्याने आ प्रभाणु कडी हठं के (एवं खलु देवाणुप्पिया ! पावाइं कम्माइं समा-यरत्ता इमेयारुवं आवइं पाविज्जामि) हे देवानुप्रियो ! हुं पापकर्मोंको आचरत करीने आ जतनी शिक्षा लोगवी रखा हुं. (तं मा णं देवाणुप्पिया ! तुव्भे वि केइं पावाइं कम्माइं समायरइ) अथी डे देवानुप्रियो ! तमे ईउपथु वाततुं पापकर्म आचरता नदि (मा णं भे वि एवं चेव आवइं पावेज्जादि य जहा णं अहं) जेथी तभने आ जतनी शिक्षा लोगवी पडे के जेवी हुं लोगवी रहं

शिन ! पुरुषस्य क्षणमपि एतमर्थं प्रतिशृणुयाः ?, नायमर्थः समर्थः, कस्मात् खलु ? यस्मात् खलु भदन्त ! अपराधी खलु स पुरुषः, एवमेव प्रदेक्षन् ! तर्वापि आर्यकोऽभवत् इहैव श्वेतविकायां नगर्याम् अधार्मिको यावत् नो सम्यक् करभरवृत्तिं प्रावर्तयत्, स खलु मम वक्तव्यतया सुबहु यावत् उपपन्नः, तस्य खलु आर्यकस्य त्व नप्तृकोऽभवः, उष्ट्रः कान्तः यावद् दर्शनतया, स खलु इच्छान्त मनुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव खलु शक्नोति शीघ्रमागन्तुम्, चतुर्भिः स्थानैः प्रदेशिन् ! अधुनापपन्नकः नरकेषु नैरयिक

किं मे पड गया हूं । (तस्स णं तुमं पएसी ! पुरिमस्स खणमपि एयमट्ठं पडिसुणेज्जासि ?) तो हे प्रदेशिन् ! तुम क्या उस पुरुष की बात को थोड़ी सी भी देर के लिये स्वीकार कर लोगे ? (णो इणट्ठे समट्ठे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है—अर्थात् उसकी यह बात स्वीकार नहीं की जावेगी (जम्हा) क्यों कि (णं से भंते ! अवरानी णं से पुरिसे) हे भदन्त ! वह पुरुष अपराधी है । (एवामेव पएसी ! तव वि अज्जए होत्था) तो इसी तरह से हे प्रदेशिन् ! तुम्हारे भी आर्यक हुए है । (एवामेव इहेव सेयंविद्याए णयसीए अधम्मिए णो, सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेइ) उन्होंने इस श्वेतांविका नगरी में अपना जीवन अधार्मिक बनाया है, तथा प्रजाजन से प्राप्त देक्स से उनका उन्होंने अच्छी तरह से पावनपोषण नहीं किया है । (से णं अम्हं वत्तव्वाए सुबहुं जाव उववन्नो) इस तरह मेरी वक्तव्यता के अनुसार वे अनेक अतिमालिन पाप कर्मों का अर्जन करके यावत् किमो एक नरक की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं । (तस्स णं अज्जगस्स तुमं णत्तुए होत्था, इट्ठे कंते जाव पासणयाए) उन्ही आर्यक के तुम इष्ट कान्त

(तस्स णं तुमं पएसी ! पुरिसस्स खणमपि एयमट्ठं पडिसुणेज्जासि ?) तो हे प्रदेशिन् ! तुं तमे ते पुरुषनी वातने थोड़ा वणत भाटे पणु स्वीक्षरी वेशो ? (णो इणट्ठे समट्ठे) हे भदन्त ! आ अर्थ समर्थ नहीं अट्ठे के तेनी आ वात स्वीक्षराभां आवथे नडि. (जम्हा) केभके (णं से भंते ! अवरानी णं से पुरिसे) हे भदन्त ! ते पुरुष अपराधी छे. (एवामेव पएसी ! तव वि अज्जए होत्था) तो आ प्रभाणे न हे प्रदेशिन्, तभारा भाटे पणु आर्यक थया छे. (एवामेव इहेव सेयंविद्याए णयसीए अधम्मिए णो सम्मं करभरवृत्तिं पवत्तेइ) तेभणु पोतानुं एवन श्वेताणिका नगरीभां अधार्मिक रीते पसार क्युं छे तेभण प्रवणने। पासेथी डर वसूल करीने पणु तेभणुं सारी पेठे पोपणु क्युं नथी. (से णं अम्हं वत्तव्वाए सुबहुं जाव उववन्नो) आ प्रभाणे भाग कथन भुज्ज तेभणुं वणु पापकर्मोनुं अणं करीने यावत् केअ केअ नरकभां नारकनी पर्यायथी वन्म पाय्या छे (तस्स णं अज्जगस्स तुमं णत्तुए होत्था, इट्ठे कंते जाव पासणयाए)

इच्छात मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव खलु शक्नानि—१ अधुनोपपन्नकः नरकेषु नैरयिकः स खलु तत्र महद्भूता वेदनां वेदयन् इच्छेत् मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव खलु शक्नानि । २ अधुनोपपन्नको नरकेषु नैरयिका नरकपालैः भूयो भूयः समधिष्ठीयमानः इच्छति मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं

आदि विशेषणों वाले पौत्र हो (से ण इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ. हव्वमागच्छित्तए) वे तुम्हारे आर्यक ! यथाप इम मनुष्यलोक मे वहा से जल्दी से जल्दी आना चाहते हैं, परन्तु वे वहां से आने के लिये असमर्थ है। (चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववणए नरएसु नेरइए इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ) क्यों की हे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नक नारक चार कारणों को लेकर मनुष्यलोक में शीघ्र आने की इच्छा करता हुआ भी वह वहा से शीघ्र नहीं आ सकता है (१अहुणोववन्नए, नरएसु नेरइए—से ण तत्थ महब्भूयं वेयणं वेदमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ) वे चार कारण इम प्रकार से हैं—अधुनोपपन्नक नैरयिक नरकों में बहुत बड़ी वेदना का अनुभव करता है, अतः वह चाहता है कि मैं मनुष्यलोक में उत्पन्न हो जाऊ—परन्तु वह वहां से निकलने में सर्राया अपमर्थ होता है—वहां नहीं आ सकता है ? (२अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए नरए—

तेन आर्यकता तमे धृष्ट शत वगेरे विशेषणोपाणा पौत्रेण। (से णं इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ. हव्वमागच्छित्तए) तभारा ते आर्यक ने के मनुष्यलोकमा त्याधी जल्दीमा जल्दी आववा छच्छे छे, परंतु तेआ त्याधी आववामा असमर्थ छे। (चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववणए नरएसु नेरइए इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ) केमके छे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नक नारक चार कारणे लेधि मनुष्यलोकमा जल्दी आववानी इच्छा धरावे छे छताये ते त्याधी जल्दी आवी शकतो नवी (१ अहुणोववन्नए, नरएसु नेरइए से णं तत्थ महब्भूयं वेयणं वेदमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ) ते चार कारणे आ प्रभावे छे। अधुनोपपन्नकनैरयिक नरकेमां तीत्र वेदनाने अनुभवे छे वेधी ते जल्दी छे के हुं मनुष्यलोकमा जन्म पावु परंतु ते त्याधी नीउपवामः सर्वथा असमर्थ छे व छे, जल्दी ते आवी शकतो नथी १ (२ अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए नरएसु पएसेहिं भुज्जो भुज्जो समधिष्ठीयमाणे इच्छइ, माणुसं लोगं हव्वमाग-

नैव खलु शक्नोति । ३ अधुनोपपन्नकः नरकेषु नैरयिकः निरयवेदनीये कर्मणि अक्षीणे अवेदिते अनिर्जिणे इच्छति मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव खलु शक्नोति । ४ एवम् अधुनोपपन्नको नरकेषु नैरयिको निरयाऽऽयुषि कर्मणि अक्षीणे अवेदिते अनिर्जिणं इच्छति मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुं नैव खलु शक्नोति शीघ्रमागन्तुम् इत्येनैश्चतुर्भिः स्थानैः प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नकः

पालेहिं भुज्जो भुज्जो समर्हाद्विज्जमाणं इच्छइ, माणुसं लागं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ) अधुनोपपन्न नारक नरकों में परमाधार्मिकरूप नरकपालों द्वारा बार बार आक्रम्यमाण होता हुआ यह चाहता है कि मैं मनुष्यलोक में शीघ्र उत्पन्न हो जाऊं, परन्तु वह मनुष्यलोकमें शीघ्र उत्पन्न नहीं होसकता है २ (३अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए निरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अवस्वीणंसि अवेइयंसि अनिज्जिन्नंसि इच्छइ माणुसं लागं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए) अधुनोपपन्नक नारक नरक में नरकभोग्य अशातवेदनीय कर्म के अक्षीण होने पर, अननुभूत होने पर एवं अनिर्जिणं नाश होने पर, मनुष्यलोक में आनेका अभिलाषी होता हुआ भी नहीं आ सकता है ३ (४ एवं नेरयाउंसि अवस्वीणे अवेइए अणिज्जिणणे इच्छेज्जा माणुससं लागं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ) इसी प्रकार चौथा कारण यह है कि उसके नरकसंबंधी आयु क्षीण नहीं हुआ है, उसका वेदन नहीं हो चुका है, तथा नारक आयु की निर्जरा भी नहीं हुई है इसी कारण से वह मनुष्यलोक में आने को इच्छा करता हुआ भी नहीं आ सकता है (इच्छे-

च्छित्तए नो चेव णं संचाएइ) अधुनोपपन्नक नारक नारकोंमें परमाधार्मिकरूप नरकपालों वडे बारंवार आक्रम्यमाण थधने ते ऐम धनछे छे के हुं मनुष्यलोकमें नहीं उत्पन्न था ३ परंतु ते मनुष्यलोकमें नहीं उत्पन्न थध सकते नथी, २ (३अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए निरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अवस्वीणंसि अवेइयंसि अनिज्जिन्नंसि इच्छइ माणुसं लागं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए) अधुनोपपन्नक नारक नरकमें लोभ्य अशात वेदनीय कर्मअक्षीण होवाथी अननुभूत होवाथी अने अनिर्जिणं होवाथी मनुष्यलोकमें आववानी अभिलाषा शभे छे छतांअे ते त्यांथी मुक्त थध सकते नथी, अने (४ एवं नेरयाउंसि अवस्वीणे अवेइए अणिज्जिणणे इच्छेज्जा माणुससं लागं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ) आ प्रमाणे न थोथुं कारणु आ प्रमाणे छे के नरकसंबंधी तेहुं आयु क्षीण थयुं नथी, तेहुं वेदन थयुं नथी - मज्ज नारक आयुनी निर्जरा- नथी नथी ऐथी न ते मनुष्यलोकमें आववानी धच्छा धरावे छे छतांअे आवी

नरकेषु नैरगिकः इच्छति मनुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तु नैव स्वलु शक्नोति ।
तत् श्रद्धेहि स्वलु प्रदेशिन् ! यथा—अन्यो जीव अन्यत् शरीरम् नो तज्जीवः स
शरीरम् ॥ म. १३२ ॥

टीका—‘तए णं केमीकुमारसमणे’ इत्यादि—ततः—तदनन्तरम्, स्वलु
केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं गजानमेवमवादीत—हे प्रदेशिन ! तव सूर्यकान्ता-
नाम देवी=राज्ञी अस्ति स्वलु ?, ततः प्रदेशी राजोत्तरयति—हन्त !’ इति

एहिं चउाह ठाणेहि पएसी ! अहुणाववन्ने नरएसु नेरइएसु नेरइए
इच्छइ माणुमं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संवाएइ) इस प्रकार
इन चार कारणों से हे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नक नारक मनुष्यलोक में शीघ्र
जाने का अभिलाषी होता हुआ भी वह वहां से शीघ्र मनुष्य लोक में
नहीं आ सकता है। (तं सदहाहि णं पएसी ! जहा अन्नो जीवो अन्नं
सरीरं नो तं जीवो तं सरीरं) इसलिये हे प्रदेशिन् ! तुम - स बात पर
अवश्य विश्वास करो, कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है।

टीकार्थ—केशीकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा मे जो कहा वह इस मूत्र
द्वारा प्रकट किया गया है. इसमें जीव भिन्न है और शरीरभिन्न है इस
बातको उमके आर्यक—(पितामह दादा) नरक से आकर उसे क्यों नहीं
समझाते है इस बात का उत्तर उसे समझाया गया है. उससे केशी
कुमारश्रमणने कहा हे प्रदेशिन ! तुम्हारी जो सूर्यकान्ता देवी है उससे
यदि कोई मनुष्य उसी के जैसे विशेषणों वाला बन कर मनोऽनुकूल शब्द

शक्तो नथी. (इच्चेएहि चउाह ठाणेहि पएसी ! अहुणाववन्ने नरएसु नेर
इएसु नेरइए इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संवाएइ)
आ प्रभाए आ यारे यार कारखोथी हे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्नक नारक मनुष्यलोकमा
जवही आववानी छंछा राभतो होय छता ये त्याथी जवही मनुष्यलोकमा आथी
शक्तो नथी (तं सदहाहि णं पएसी ! जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं जीवो
तं सरीरं) येथी हे प्रदेशिन ! तमे आ बात पर अवश्य विश्वास करे के अत्र
भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे.

टीकार्थ—केशीकुमारश्रमणे प्रदेशी राजाने ने उछे उछुं छे न जधुं आ सूत्र
वडे प्रकट करवामां आणुं छे. आमा उंव भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे ये बातने
तेना आर्यक (पितामह—दादा) नरकमाथी आवीने ऐम समजवता नथी ये बात आ प्रभाए
तेने समझववामा आवी छे. केशीकुमारश्रमणे उछुं छे हे प्रदेशिन ! तनारी
ने सूर्यकान्तादेवी छे तेनी साथे ने उछे आणुं तेना जेवा विशेषणो बुझत ।

स्त्रीकारे अस्मिन्-विद्यते मम सूर्यकाता देवा । ततः केशीकुमारश्रमण-
 आह-यदि-चेत् खलु त्वं प्रदेशी राजा तां-पूर्वोक्तां सूर्यकान्तां देवीं
 स्नाता-कृतस्नाना, कृतचलिकर्मणां-कृतत्रायमादि निमित्तान्नभागा, कृत-
 कौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तां-कृतमपोपुण्ड्रतिलकादि मङ्गलाथपापशोधनक्रियां, सर्वा-
 लङ्कारभूषितां-सकलाङ्गोपाङ्गाभरणालङ्कृतां केनापि केनचित् पुरुषेण सार्द्धं,
 कीदृशेन ? इत्याह-स्नातेन ? इत्याह-स्नातेन यावत्-यावत्पदेन-कृतचलि-
 कर्मणा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तेन' इत्येषां सङ्ग्रहः, तथा सर्वालङ्कारभूषितेन
 सार्द्धं इष्टान्=मनोऽनुकूलान् शब्द-स्पर्श रसरूप-गन्धान्, पठवन्निधान्-पठव-
 प्रकाराम मनुष्यकान्-मानुष्यलोकभवान् कामभोगान्-पूर्वोक्तान् शब्दादीन्द्रिय-
 विषयान् प्रत्यनुभवन्तोऽपि-अनुभवविषयीकुर्वतीम् पश्येथ, तस्मिन्नवसरे हे प्रदे-
 शिन् ! त्वं तस्य-पूर्वोक्तस्य खलु कं-कीदृशं दण्डं निग्रहं निर्वर्तयेः-कुर्याः ? ।
 ततः प्रदेशिराज आह-हे भदन्त ! अहं खलु तं-कृतनादशदुराचारं पुरुषं
 हस्ताच्छन्नकं-हस्तौ छिन्नौ यस्य तादृशं वा-अथवा शूलतिग्ं शूलारोपितं वा
 भिन्नकं-शूलेन भिन्नः शूलभिन्नः स एव शूलभिन्नकस्तम्, वा-अथवा पाद-
 च्छिन्नकं-छिन्नौ पादौ यस्य तम् वा अथवा एकाऽऽघातम्-एकः-सकृत् आघातः-
 प्रहारो यस्मिन्, तम्, कूटाऽऽघातं-कूटेन-पर्वतशिखरेण तदुपरिसमारोपणद्वारा
 पातनेन आघातः-वधो यस्य तं तथा, जीवितात्-व्यपरोपयेयं-वियोजयेयम्,
 जीवरहितं कुर्यामित्यथेः, इति प्रदेशिराजनिवेदनानन्तरं पुनः केशीश्रमणः
 पृच्छति-अथ खलु हे प्रदेशिन् ! यादे सः पुरुषः त्वाम् एवम् अनुपद
 यक्ष्यमाणं वचनं वदेत्-कथयेत्-तथाहि-मे-मां हे स्वामिन् ! यावत्-मित्रा-

स्पर्श-रस-रूप गंधादि पांच प्रकारके मनुष्यभ्रम सबधो कामभोगों को
 भोगे और तुम इस बान को देखलो तो उस अदसर में (म एंस पुरुष के
 लिये क्या दण्ड दो ? तब प्रदेशी राजाने कहा-हे भदन्त ! ऐसे दुराचारी
 पुरुष को मैं अङ्गभङ्ग का यावत् जीवरहित होने का दण्ड दूं ठीक है-
 इस पर यदि वह पुनः तुम से ऐसा निवेदन करे कि हे स्वामिन् ! थोड़ी
 देर आप मुझे इस दण्ड से रहित कर दीजिये इतने में मैं अपने मित्रा-

रभण्यु करे मनोऽनुकूल शब्द स्पर्श रस रूप गंध वगैरे पांच प्रकारना मनुष्य-
 संबंधी कामभोगो लोगवे अने तमे आ अधुं करतां जेथ हो तो ते वधते तमे ते
 पुरुषने थी शिक्षा करे ? त्यारे प्रदेशी राजाने कहुं के छे कहंतां जेवा दुराचारी पुरुषने
 हुं अंगल गनी यावत् निग्रह्य करी भङ्गवानी शिक्षा आपुं ते योग्य कडेवाय. जेना
 प्रथी ते इरी तमने जेवी रीते विनंती करे के छे स्वामिन् ! थोडा वधत माटे मने
 रत्न आपो के जेथी हुं मित्र वगैरे स्वर्णने आभ कहुं के छे देवातृप्रियो तभाराभांथी

दीन् प्रति वक्ष्यमाणं पयनिवेदनसमयावधिमुद्धृतमुद्धृतमात्रं मां हस्त-
 च्छिन्नकं वा यावत्-यावत्पदेनोपयुक्तपदाना संग्रहा बोध्यः, तदर्थशोपर्युक्त
 एव, जीवितात् मा व्यपरोपय-न वियोजय, मा मारयेत्यर्थः यावत्-यत्प्रमय-
 पर्युक्तं 'तावत्' इति वाक्यालङ्कारे, अह मित्र-ज्ञाति-नि-क-स्वजन-सम्बन्धि
 परिजनं मित्राणि-सुहृदः, ज्ञातयः-मातापितृभ्रात्रादयः, निजकाः-स्वपुत्रादयः
 स्वर्जनाः-पितृव्यादयः, सम्बन्धिनः-श्वशुरादयः, परिजनाः-दासी दासादयः,
 एषां समाहारो मित्र-ज्ञाति-निजक स्वजन-सम्बन्धि-परिजनं, तत्तथा, एवम्
 अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनं वदामि-कथयामि, यथा-हे देवानुप्रियाः! यूयम्
 एवं-वक्ष्यमाणं शृणुत-'अहं पापानि कर्माणि समाचर्य-कृत्वा इमाम्-एतूपा-
 प्रदेशीराजोपनीयमाना कुमारणया ज चिताद् व्यपरोपणीयतारूपाम् आपत्तिम्-
 आपदं प्राप्नोमि-प्राप्तोऽऽस्मि, तत्-तस्मात्कारणात्-पापकर्माणां आपत्तिप्राप
 कत्वाद्धेतोः, हे देवानुप्रियाः! यूयमपि-मदीयमित्रादयः केचित्-केऽपि पापानि
 कर्माणि मा समाचरत-न प्रकुरुत 'भेवि' इति यूयमपि एवमेव-अनेनैव-
 प्रकारेण आपत्तिं मा प्राप्नुत-यथा खलु अहम् इति। तस्य खलु त्वम् एतं=
 तत्कथनरूपम् अर्थं हे प्रदेशिन्! प्रतिशृणुयाः-स्वीकुर्याः? प्रदेशी कथयति-
 अयम्-अनन्तराक्तोऽर्थः नो ममर्थः-न युज्यते, कस्मात् खलु न ममर्थः?
 इति जिज्ञासायामाह-'यस्मात्' इत्यादि-हे भन्त! यस्मात् खलु मपुरुषः
 मे-मम अपराधी वर्तते' इति हेतोः अयमर्थो न-ममर्थः, केहीकुमारश्रमणः

दिजना से ऐसा कह दू कि हे देवानुप्रियो! तुम लोगों-मे से कोई
 भी जन ऐसा पापकर्म नहीं करना-नहीं तो मेरी जैसी आपत्ति का भोगना
 पड़ेगा तो क्या हे प्रदेशिन्! तुम उसकी इस बातको मान लोगे। यदि
 कहो कि नहीं तो इस पर पुन यही पूछा जा सकता है कि क्यों नहीं?
 तुम कह सकते हो! इसके उत्तर में वह अपराधी है। तो इसी प्रकार में हे
 प्रदेशिन्! तुम्हारे जो आर्यक (दादा) हैं वे भी अनेक मलिन पापकर्मों को समाह्व
 यहाँ से नरक में नरक की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं-अतः जब तक ये
 ब्रह्मा की पूरी स्थिति को नहीं भोग लेते हैं-तब तक वे अपनी अज्ञा

शोधपथ्य अेषु पापकर्म उच्छेत्वा नहि नहितर भारा लेनी शिष्टा दे-नरकी पथ्या तं
 शुं हे प्रदेशिन् तमे तेनी आ वात स्वीकरी उच्छेत्वा? इत्ये अे तमे आम उच्छेत्वा
 नहि, तो ऐसा पर इ-नी तमने पृथ्वामां आवे उ उेम नहि? ऐसा उचरन्त तमे
 उच्छेत्वा उे ते अपराधी छे. तो आ प्रनाये उे प्रदेशियेन् तमने के अर्थ उे
 तेमो पथ्य यथा पापकर्मोत् उच्छेत्वा नहि नहि, तमे उच्छेत्वा तमे उच्छेत्वा
 अपराधी नरक पाप्या छे ऐसी नरक सुधी तमे उच्छेत्वा तमे उच्छेत्वा

प्राह-हे पदोशन ! एवमेव-अनेनैव प्रकारेण तत्रापि आर्यकाऽभवत्, पिता-
महो कोटर्षोऽभवत् ? इत्याह-स च इहैव-श्वेतविकायां नगर्यामधार्मिको
यावत्नो सम्यक् करभरवर्तित पावर्तयत् । सः-नवार्यकः खलु मम वक्त-
व्यतया-कथनानुसारेण सुबहुं यावत्-यावत्तदेन-"पापं कर्म पाणातिपातादिकं
ममज्यं नरकेषु" इत्येषां पदानां सङ्ग्रहः उत्पन्नः समुत्पन्नः" तस्य-पूर्वोक्तस्य
भार्यकस्य खलु त्वं नत्वरुः पौत्रोऽभारः, कीदृशः ? इति जिज्ञासाया-
माह-इष्टः कान्ता यावद् दर्शनतया, । सः-नरकं पूषन्नः खलु सम्प्रति
मानुष्यं लोकं हव्यं-शीघ्रमागन्तुमिच्छति, परन्तु स शीघ्रमागन्तुं नो शक्नोति ।
कुतो न इति जिज्ञासायां शृणु-हे प्रदेशिन् ! चतुर्भिः स्थानैः-कारणैः,
अधुनोपपन्नः-तत्कालोत्पन्नो नरकेषु-नरकमध्ये, नैरयिकः नारकः मानुष्यं
लोकं शीघ्रमागन्तुमिच्छति परन्तु शीघ्रं आगन्तुं नो शक्नोति-तानि चत्वारि
स्थानान्येवम्-अधुनोपपन्नो नरकेषु नैरयिकः सः खलु तत्र-नरकेषु, मह-
द्भूतां-महतीं वेदनां वेदयन्-अनुभवन् मानुष्यं लोकं शीघ्रमागन्तुमिच्छेत्
परन्तु आगन्तुं नैव शक्नोति ? । अधुनोपपन्नो नरकेषु नैरयिको नरकपालैः-
परमाधार्मिकैर्देवैर्भूयोभूयः-पुनःपुनः समधिष्ठीयमानः-आक्रम्यमाणः मन्
इच्छति मानुष्यं लोकमागन्तुं किन्तु न शक्नोतिरे । तृतीयं स्थानमाह-'अधु-
नोपपन्नो नरकेषु नैरयिकः, निरयवेदनाये-नरकभाग्ये अज्ञातवेदनीये कर्मणि
अक्षीणे-क्षयमप्राप्ते अवेदिते-अनुभूते, अनिर्जीर्णे-नाशमप्राप्ते च सति
इच्छति मानुष्यं लोकमागन्तुं किन्तु न शक्नोत्यागन्तुम् । अनेन प्रकारेण निर-
यायुषि-नरकसम्बन्धिनि आयुःकर्मणि अक्षीणेऽवेदितेऽनिर्जीर्णे-निर्जराम-
प्राप्ते च सति, इच्छति मानुष्यं लोकमागन्तुं किन्तु न शक्नोति । इत्येतैः
अनन्तराक्तैश्चतुर्भिः स्थानैः हे प्रदेशिन् ! अधुनोपपन्न इत्यादीनां विवरणं
प्राग्वत् । तत्-तस्मात्कारणात् हे प्रदेशिन् ! त्वं श्रेहि-मद्वचने विश्वमिहि
खलु, यथा-अन्यो जीवः, अग्नयं शरीरम्, नो म जीवः तत् शरीरम्'

के अनुसार यहाँ नहीं आ सकते हैं. क्यों कि नारक जीवों को यहाँ आने
में चार कारण बाधक हैं जो मूलार्थ में प्रकट किये जा चुके हैं। इसलिये
हे प्रदेशिन् ! तुम मेरे इस वचन पर कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न
है, जीव शरीररूप नहीं है, और शरीर जीव रूप नहीं है विश्वास रखो,

स्थितिने लोगवी देशे नहि त्यां सुधी तेभ्यो पोतानी धृच्छा सुश्रुण अर्द्धो आधी
शक्ये नहि केभके नारकलुवोने अर्द्धा आववा भाटे यार डारलो भाधक छे ।
भूतार्थभां अताववाभां आव्या छे. अथी हे प्रदेशिन् ! तभे भारा आ वचन पर-हे
एव. भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे, एव शरीररूप नथी, अने शरीर एवरूप नथी,

इति । यदि जीव-शरीरयोर्भेदो न स्यात्तदा पूर्वोक्तकारणचतुष्टयेन नरक-
भोग कः कुर्यात् ? शरीरस्य तु मनुष्यलोक एव नष्टत्वात्, शरीरभिन्नत्वे
तु जीवस्य शरीरनाशेऽपि भ्रत्वाद्दुक्तहेतुचतुष्टयेन नरकभोगं कर्तुं जीवः
शक्यो भवति ॥ सू० १३२ ॥

मूलम्--तएणं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासा-
अत्थि णं भंते ! एसा पण्णाओ उवमा, इमेण पुण कारणेण नो उवा-
गच्छइ । एवं खलु भंते ! मम अज्जिया होत्था इहेव सेयवियाए नय-
रीए धम्मिया जाव वित्ति कप्पेमाणी समणोवासिया अभिगय जीवा०
सव्वो वण्णओ जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ, सा णंतुज्झं वत्तव्वयाए
सुवहु पुन्नोवच्चयं समज्जिणित्ता कालमासे कालं किञ्चा अप्पणयरेसु
देवलेएसु देवत्ताए उववण्णा, तीसेणं अज्जियाए अहं नत्तुए होत्था इट्ठे
कंते जाव पासणयाए, तं जइ णं सा अज्जिमा मम आगंतुं एवं वएज्जा-
एवं खलु नत्तुआ ! अह तव अज्जिया होत्था, इहेव सेयवियाए
नयरीए धम्मिया जाव वित्ति कप्पेमाणी समणोवासिया जाव विह-

यदि जीव और शरीर में भेद नहीं होता तो पूर्वोक्त कारण चतुष्टय में
नरक भोग कौन करे? क्या कि शरीर तो मनुष्यलोक में ही नष्ट हो जाता
उसके नष्ट होने पर तदभिन्न जीव भी नष्ट हो जावेगा। परन्तु जब शरीर
से भिन्न जीव को माना जाता है तो शरीर के नाश होने पर भी जीव
का सद्भाव रहता ही है। अतः उक्त हेतु चतुष्टय में नरकभोग करने के लिये जीव समर्थ
होता है। इस प्रकार से यह टीका का भाव लिखा गया है ॥ सू. १३२ ॥

विषय सधो लो एव अने शरीरमा जिनता न होत तो पूर्वोक्त कारण चतुष्टयमा
नरकभोग करे कोय ? केमके शरीर तो मनुष्य लोकमा न नष्ट वत्तं नय छ, तेना नाय
पदी तदभिन्न एव पलु नष्ट वत्तं न नये न पर तु नष्ट हेतु चतुष्टय किये
उपने मानवामा आवे छ तो शरीरना विनाश पदी पलु एवमा नष्टत्वात् नष्ट
छ. उक्त हेतु चतुष्टयधी नरकभोग नाटे एव समर्थ एव छ. नय प्रमाये नय टीका
ने भाव ज्ञापना आवये छ. ॥ सू. १३२ ॥

रामि । तए णं अहं सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता कालमासे कालं
किच्चा देवलोएसु उववण्णा, तं तुमंपि णत्तुया ! भवाहि धम्मिए
जाव विहराहि, तएणं तुमंपि एवं चेव सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जि-
णित्ता जाव उववज्जिहिसि, तं जइ णं आज्जया मम आगतुं एवं
वएज्जा तो णं अहं सहहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा जहा अण्णो जीवो
अण्णं सरीरं, णो तं जावो तं सरीरं, जम्हा सा अज्जिया मम आगतुं
णो एवं वयासी तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा तं जीवो तं
सरीरं नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ॥ सू० १३३ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्
अस्ति खलु भदंत ! एषाःप्रज्ञातउपमाः, अनेन पुनः कारणेन नो उवागच्छति,

‘तएणं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (से पएसी राया कोस कुमारसमणं
एवं वयासी) उस प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—
(अत्थि णं भंते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेण नो उवागच्छइ)
हे भदन्त ! जीव और शरीर को भिन्न प्रकट करने में ‘मेरे आर्यक—(पिता-
मह) इस कारण से नहीं आते हैं’ यहां त क के सन्दर्भ से जो आपने उपमा दी है,
सो यह उपमा प्रज्ञात-दृष्टान्त है। यह वास्तविकी उपमा नहीं है) तो भी मैं यह
मान लेता हूँ कि मेरे पितामह—आर्यक आपके द्वारा प्रदर्शित कारणों की
वजह से यहां नहीं आते हैं—सो भले न जावे परन्तु (एवं खलु भंते !

‘त एणं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) त्थार पछी (से पएसी राया कोस कुमारसमणं
एवं वयासी) ते प्रदेशी राजाके केशीकुमार श्रमणुने आ प्रमाणे कहुं—अत्थि णं
भंते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेण नो उवागच्छइ) हे भदंत !
एव अने शरीरने भिन्न प्रकट करवामां “भारा आर्यक (पितामह) आ कारणुने लीधे
आवता नथी” अहीं सुधीना संदर्भ लगी ने कंठ पणु तमे उपमा रूपमां कहुं छे
तो ते उपमा प्रज्ञात-दृष्टान्त छे, आ वास्तविकी उपमा नथी, छतां ओ हुं तभारी
आ वात स्वीकारी लउं के भारा पितामह आर्यक तभारा वडे प्रदर्शित कारणुने
लीधे न अहीं आवी शकता नथी. तो तेओ भवे न आवे. परंतु (एवं खलु भंते !

गवं खलु भदंत ! मम आर्यिकाऽभवत्, इहैव श्वेतविकार्यां नगर्यां धार्मिकी
यावद् वृत्तिं कल्पयमाना श्रमणोपासिका अभिगतजीवा० सर्वो वर्णकः यावद्
आत्मानं भावयन्ती विहरति, सा खलु तत्र वक्तव्यतया सुबहुं पुण्योपचयं
समर्ज्य कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवतयोपपन्ना, तस्याः
खलु आर्यिकायाः अहं नष्टकोऽभवम्, इष्टः कान्तः यावद् दर्शनतया, तद्
यदि खलु माऽऽर्यिका मम आगत्य एवं वदेत्—एवं खलु नष्टक ! अहं

मम अज्जिया होत्था इहेव सेयंविद्याए नयरीए धम्मिया जाव विाच रूपे-
माणी समणोवासिया अभिगय जीवा० सव्वओ वण्णओ जाव अप्पाणं भावे-
माणी विहरइ) हे भदन्त ! मेरी जो आर्यिका—(दादी) हुई है, वह तो इस
श्वेतांगिका नगरी में धार्मिकी थी यावत् धर्म से ही अपनी जीवनयात्रा
चलाती थी, श्रमणोपासिका थी, जीवअजीव तत्त्व के स्वरूप को जानती
थी, इत्यादि सर्व वर्णन यहाँ पर करना चाहिये. यावत् वह आत्मा को
भक्ति करती हुई अपने समय को व्यतीत करती थी (सा णं तुज्झ वत्त-
व्वयाए सुबहुं पुण्णोवचयं ममज्जिणित्ता कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु
देवत्ताए उववन्ना) वह आपके कानानुसार बहुत अधिक पुण्य का उपचय
करके कालमास में काळ कर देवलोकोँ में से किसी एक देवलोक में देव
की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं। (नीसे णं अज्जियाए अहं नत्तुए होत्था)
में उसका पौत्र हुआ हूँ (इष्टं कंते जाव पासणयाए) मैं उसके
लिये इष्टअभिलषित. कान्त या यावत् दर्शन के लिये भी दुर्लभ था.

मम अज्जिया होत्था इहेव सेयंविद्याए नयरीए धम्मिया जाव विाच
रूपेमाणी समणोवासिया अभिगयजीवा० सव्वओ वण्णओ जाव अप्पाण
भावेमाणी विहरइ) हे भदंत ! मेरी जो आर्यिका (दादी) धया छे ते तो आ
श्वेतांगिका नगरीमा धार्मिक हुता यावत् धर्मतुं आचरखु करीने पोतानुं उचन
पसार करुं हुतुं. तेओ श्रमणोपासिका हुता, उव अउवत्तवना स्वउपने. न. पु. ता
हुता. वगेरे अधुं वलुंन अहीं तमअ लेवुं लेधअ. तेओ पोताना आत्मे ते क्वचित्त
उरता पोताने समय पसार उरता हुता. (सा णं तुज्झ वत्तव्वयाए सुबहुं पुण्णो-
वचयंसमज्जिणित्ता कालं किच्चा अण्णयरेसु देवतोएसु देवताए उववन्ना)
तेओ आपना अचन सुअअ भूअअ पुअअ तवय करीने उउ भावमा उउ करीने
देवतामाधी उअ अेक देवताउमा देवनी पर्यायमां उन्न उन्न छे. (नीसे णं
अज्जियाए अहं न ए होत्था) तेमने हु पौत्र यणे उ (इष्टं कंते जा
पासणयाए) हुं तेमना माटे इष्ट, अलिखित भव हुने कवव छदंन अउरे

तव आर्थिकोऽभवत्, इहैव श्वेतविकार्या नगरी धार्मिकी यावत् वृत्त
 कल्पयमाना श्रमणोपासिका यावद् विहराभि । ततः खलु अहं सुबहुं पुण्यो
 पचयं समज्ज्यं कालमासे कालं कृत्वा देवलोकेषु उपपन्ना, तत् त्वमपि
 नप्तुक । भव धार्मिकः यावद् विहरः, ततः खलु त्वमपि एवमेव सुबहुं

(तं जहं णं मा अज्जिया मम आगंतुं एवं वएज्जा) वह यदि आर्थिका (दादी)
 - सुझ से आकरके ऐसा कहे (एवं खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जिया होत्था,
 इहेव सेयं वियाए नयरीए धम्मिया जाव वित्ति कप्पेमाणी समणोवासिया
 जाव विहराभि) हे पौत्र ! मैं तुम्हारी दादी थी. इसी श्वेतांबिका
 नगरी में मैं धार्मिक जीवन व्यतीत करती हुई यावत् अपनी जीवनयात्रा
 चलाती थी, जीव अजीव तत्व के स्वरूप को ज्ञाता थी, तथा तप और
 संयम से अपनी आत्माको भावित करती हुई अपने समय को व्यतीत
 किया करती थी. (तए णं अहं सुबहुं पुण्योपचयं समज्जिणित्ता कालमासे
 कालं क्खिच्चा, देवलोएसु उववण्णा) इस तरह मैंने बहुत अधिक पुण्य का
 संचय किया और संचय करके जब मैं मरण के अवसर पर मरी तो
 देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हुई हूँ
 (तं तुमपि नत्तुया ! भवादि धम्मिए जाव विहरादि) इसलिये हे पौत्र !
 तुम भी धार्मिक जीवन व्यतीत करो और धर्मानुग आदि विशेषणों वाले
 बनो । तथा धर्म से ही अपनी जीवनयात्रा करते हुए यावत् श्रमणोपासक

दुर्लभ होते. (तं जहं णं मा अज्जिया मम आगंतुं एवं वएज्जा) ते आर्थिक
 (दादी) ने मने आवीने आभ, उडे डे (एवं खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जिया
 होत्था, इहेव सेयं वियाए नयरीए धम्मिया जाव वित्ति कप्पेमाणी
 समणोवासिया जाव विहराभि) हे पौत्र ! हूँ तुमारी पितामही होती मैं
 श्वेतांबिका नगरीमां धार्मिक जीवन पसार करती यावत् पितानी जीवनयात्रा चलाती
 होती हूँ श्रमणोपासिका होती, एवं अल्प तत्त्वना स्वइपने ज्ञातुती होती तेमज्ज
 तप अने संयमथी पिताना आत्माने भावित करती पितानो समय पसार करती होती.
 (तए णं अहं सुबहुं पुण्योपचयं समज्जिणित्ता कालमासे कालं क्खिच्चा,
 देवलोएसु उववण्णा) ओ रीते में धणा पुण्यनो संयय इथी अने संयम इरीने
 जेअरे हूँ मरुणु उणे मरी त्थारे देवलोकाभाथी डोअ ओक देवलोका देवनी पर्यायथी
 जन्म पाभी छुं. (तं तुमपि नत्तुया ! भवादि धम्मिए जाव विहरादि) ऐथी न
 हे पौत्र ! तमे पणु धार्मिक जीवन पसार करे अने धर्मानुग वगेरे विशेषणथी
 सयन्त गनो. तेमज्ज धर्मथी न पितानी जीवनयात्रा आगण धपावता यावत्

पुण्योपचयं समज्यं यावद् उपपत्स्यसे, तद् यदि त्वलु आर्थिना मम
आगत्य एवं वदेत्, तदा त्वलु अहं श्रद्धयात्र प्रवीषां रोचयेय यथा-
अन्यो जीवः, अन्यच्छरीरम्, नो तज्जीवस्तच्छरीरम् । यस्मात् आऽऽर्थिना
ममाऽऽगत्य नो एवमवादीत्, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः
स्सच्छरीरम्, नो अन्यो जीवः, अन्यच्छरीरम् ॥सू० १३३॥

वनो. (तए णं तुमपि एव चेव सुबहु पुण्योवनयं सममज्जिणित्ता जाय
उववज्जिणित्ति) इस तरह करके तुम जो शरीर ही तरह से पुण्य का उप-
चय करके यावत् देवलोक में किन्हीं एक देवलोक में देव की पर्याय से
उत्पन्न हो जाओगे. (त जइणं अज्जिया मम आगतुं एवं वणज्जा, तो
ण अहं महंज्जा, पत्तिएज्जा, रोडज्जा. जहा अणो जीवो, अणं सर्रीर
णो तं जीवो तं सर्रीरं) इस तरह से ही भदन्त! वह आर्थिका आकर
के मुझ से ऐसा कहे तो मैं तुम्हारे इस कथन पर कि जीव अन्य है
और शरीर अन्य है तथा-जीव शरीररूप नहीं है और शरीर जोचम्य नहीं
है विश्वास कर सकता हूँ प्रतीति कर सकता हूँ और उसे अपनी उच का
विषय बना सकता हूँ। (जम्हा सा अज्जिया मम आगतुं णो एव
ययासी-तम्हा सुपइट्ठिया-मे पइण्णा-जहा त जीवो अन्नं सर्रीरं) परन्तु
जिस कारण से वह आर्थिका मुझ से आकर के ऐसा कहती नहीं है.
अतः इस कारण से मेरा-यह मन्तव्य है कि जीव है वही शरीर है जीव
शरीर से भिन्न नहीं है और शरीर जीव से भिन्न नहीं है सुस्थिर है अर्थात् मन्तव्य।

श्रमलोपासक थाणे। (तए णं तुमपि एव चेव सुबहुं पुण्योवनयं सममज्जिणित्ता जाय
उववज्जिणित्ति) आ प्रभाते तमे पणु भावो केमए पुणे। १५ ॥ १६ ॥
पर्यायधी जन्म पावये। (त जइणं अज्जिया मम आगतुं एवं वणज्जा नो)

टीका—'तएणं से पएसी' इत्यादि—

ततः—तदन्तरं, स प्रदेशो राजा केशिनं कुमारश्रमणम्, एवम्—अनुपद वक्ष्यमाण वचनम्, अवादीत्—हे भदन्त ! जीवशरीरयोर्भेदे अनेन पुनः कारणेन नो उपागच्छति)—इत्यन्तसन्दर्भेण या उपमा भवता इत्ता, एषा खलु प्रज्ञात = बुद्धिविशेषात्—बुद्धिविशेषजन्या उपमा=दृष्टान्तः अस्ति, नत्विद्यं वास्तविकी उपमाऽस्ति, तथापि मन्ये यन्मत्पितामहो भवदुक्तकारणैर्नोपागच्छत्विति। परन्तु हे भदन्त ! मम-आर्थिका-पितामही खलु एवं=वक्ष्यमाणप्रकारा अभवत्—साक्षात्समादति जिज्ञासायामाह—इहैवेत्यादि—इहैव-अस्यामेव श्वेतांबिकायां-नगर्याम् . सा कीदृशी ? इत्यब्राह्म-धार्मिकीत्यादि—धार्मिकी—धर्माचरणशीला, यावत्—यावत्पदेन “धर्मानुगा, धर्मिष्ठा धर्माख्यायिनी धर्मप्रलोकिनी धर्मप्ररञ्जना धर्मसमुदाचारा धर्मेणैव” इत्येषां संग्रहः, तत्र—धर्मानुगा धर्मम् अनुगच्छति अनुसरति या सा तथा, धर्मिष्ठा=धर्मप्रिया, धर्माख्यायिनी=धर्मप्रतिपादिका, धर्मप्रलोकिनी=धर्म-

टीकार्थ—इसके बाद प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा— हे भदन्त ! जीव और शरीर को भिन्नता प्रदर्शित करने के निमित्त जो आपने उपमा दी है, वह तो केवल आपकी बुद्धि से जन्य एक दृष्टान्त-मात्र है. यह उपमा—दृष्टान्त सत्यार्थकोटि में नहीं आ सकती है। फिर भी आपके कथनानुसार यह मान लेता हूँ कि मेरे आर्थिक-प्रदर्शित चार कारणों के कारण यहां नहीं आ सकते हैं। सो वे न. आवें—परन्तु मेरी जो दादी थी—जो कि इसी श्वेतांबिका नगरी में रहती थी, और धार्मिक-धर्माचरण शील थी यावत् जो धर्मानुगधर्म का अनुसरण करने वाली थी, धर्मिष्ठा—धर्मप्रिया थी, धर्माख्यायिनी—धर्म का उपदेश देनेवाली थी, धर्म-

टीकार्थ—त्यारपछी प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणसे आ प्रभाणे कथुं के हे भदन्त ! एव अने शरीरनी भिन्नता प्रदर्शित करता के तमे उपमा आपी छि ते तो इत्त तमारी बुद्धिथी इत्थित करेव अेक दृष्टान्त मात्र न छि. अथी तमारी आ उपमा-दृष्टान्त-सत्यार्थ कोटिमां आवी शके तेम नथी. छताअे तमारा कथना मुग्ग अ आ वात मानी लउं छुं के मारा आर्थिक तमे इत्ता चार कारणाने लीध अदां आवी शकता नथी तो लवे ते न आवे परन्तु माग के दादी इत्ता—के अेओ आ श्वेतांबिका नगरीमां रहता इत्ता, अने धार्मिक-धर्माचरणशीला इत्ता यावत् के धर्मानुगा-धर्मने अनुसरनाग इत्ता, धर्मिष्ठा-धर्मप्रिय इत्ता, धर्माख्यायिनी-धर्मने उप

दर्शिनी, धर्मप्ररञ्जना=धर्मानुरागिणी, धर्मसमुदाचारा=धार्मिकसदाचारसंपन्ना,
 धर्मेणैव=जिनोक्तधर्मेणैव वृत्ति=जीवनयात्रां, कल्पयमाना कूर्वाणा, पुनःसा
 कीदृशी ? इति जिज्ञासायामाह—“अभिगतजीवाऽजीवे”—त्यादि-सर्वः वर्णकः—
 वर्णनकारकपदसमूहो बोध्यः, यावद् आत्मानं भावयमाना व्यहरत । अत्रत्य
 यावत्पदेन—‘अभिगतजीवाजीवा’ इत्यादि सर्वोऽपि पाठश्चतुर्दशाधिकैक-
 शततममूत्रतः स्त्रीत्वनिर्देशेन बोध्यः । अर्धोऽपि तत्रत एव विज्ञेयः । सा=
 अनन्तरोक्ता आर्यिका पितामही खलु तव वक्तव्यतया तवमतेन मुच्युम्—
 अतिप्रचुरं, पुण्योपचयं—पुण्यकर्मसमूहं समज्यसमुपाज्ये कालमासे कालं

मलोकिनी थी, धर्मप्ररञ्जना—धर्मानुरागवाली थी, धर्मसमुदाचारा—धार्मिक
 सदाचार से संपन्न थी. और जिनाक्तधर्म से ही अपनी जीवनयात्रा करने
 वाली थी. तथा जीव और अजीव तत्त्व के स्वरूप की ज्ञाता थी. अभि-
 गतजीवाजीवा’ इत्यादिरूप से वर्णन करने वाला पदसमूह और यहा
 यावत्पद से गृहीत पदसमूह ११४ वें सूत्र में वर्णित हुआ है, सा उसे
 यहा स्त्रीलिरू की विभक्ति लगाकर ग्रहण कर कहना चाहिये तथा इन
 पदों का अर्थ भी वहां से जानना चाहिये. ऐसी वह आर्यिका—पितामही—
 दादी आपके मन्तव्यानुसार अतिप्रचुर पुण्य का उपचय करके कालमाम
 में जय मरी तय वह अनेकविध देवलाकों में देव की पर्याय से उत्पन्न
 हुई है. उस आर्यिका का मैं पौत्र हूं, जो धर्म उसको बहुत अधिक उप
 कान्त था. यावत् पदसे वहां १३२ वे सूत्र में प्रोक्त इस विषय के विशेषणगृहीत
 हुए हैं। ये विशेषण वहा उसके पितामह के प्रकरण दिये गये हैं।

देश करना होता, धर्मप्रवेदिनी—धर्मदर्शिना होता, धर्मप्ररञ्जना—धर्मानुरागवाली होता.
 धर्मसमुदाचारा—धार्मिक सदाचार संपन्न होता अने जिनोक्त धर्म प्रभाते न पितामह
 एवम पसार करता है । तेमज एव अने अएव तत्त्वना स्वइपने जलुताना होता
 ‘अभिगत जीवाजीवा’ एव अने अने अएव वगेरे इपमा वलुंत कनार ५३ वनूत
 अने अही’ यावत्पदधी गृहीत पद समूह ११४वें सूत्रमा वलुंत ददेत है. अत्र
 तेने स्त्रीविंशनी विलकित लगाडीने अर्थ करवे जेधजे तेमज आ पडेने अर्थ पद
 त्याधी न बाणी देवे जेधजे. जेवी ते आर्यिका दादी तमारा मन्तव्यनुसज अनि
 प्रचुर पुण्यने संख्य करिने शत्रुभातमा गवारे मरुत पान्ना त्याने ते पदु देवलाकना
 देवनी पर्यायधी जन्म पान्ना है. ते आर्यिकाने हुं जेरे हुं तेमने परने नू
 एत यावत् शन्त हुतो यावत् पदधी अही १३२वें सूत्रमा वलुंत देवत — विषय
 विशेषणे गृहीत यथा न विदेपे, त्व तेने एतना साय

कृत्वा अन्यतरेषु-अनेकविधेषु देवलोकेषु कस्मिंश्चिद्-वलोके देवतया देवत्वेन
उपपन्नाः, तस्याः खलु आर्यिकायाः अहं नप्तृकः-पौत्रः अभवम्, कीदृशः?
इत्यात्राऽऽह-इष्टःकान्तः यावत्-दर्शनतया, अत्र यावत्पदेन द्वात्रिंशदुत्तर-
शतैकतमसूत्रे एतत्पितामहवक्तव्यतारूपः सर्वोऽपि पाठः संग्राह्यः । व्या-
ख्यापि तत्रैव विलोकनीया ।

तत्-तस्मात् यदि खलु सा-पूर्वोक्ता आर्यिका मम आगत्य-एवम्-
अतुल्यं वक्ष्यमाणं वचनं, वदेत-कथयेत्-नप्तृक ! हे पौत्र ! एवं खलु-
वक्ष्यमाणप्रकारकं शृणु-अहं तव आर्यिकाऽभवम् कुत्र ! इत्यात्राऽऽह-इहैव-
अस्यामेव श्वेतविकायां नगरीं धार्मिकी, यावत्-धर्मैव दृष्टि कल्पयमाना
श्रमणोपासिका=श्राविका यावत्-व्यहरम् । ततः-तस्मात्कारणात् सुबहु-
प्रचुरतरं पुण्योपचयं समर्प्य कालमासे कालं कृत्वा देवलोकेषु उपपन्ना, त-
तस्मात्कारणात् नप्तृक !-हे पौत्र ! त्वमपि धार्मिको यावत्-धर्मानुगादि
विशेषणविशिष्टो भव, तथा-धर्मैव दृष्टि कल्पयमानः अभिगत जीवाजीवादि
विशेषणविशिष्टः श्रावको भूत्वा विहर । ततः-तादृशाचरणेन खलु त्वमपि

अतः वही से इन्हे और इनके अर्थ को जानना चाहिये, ऐसी वह मेरी आर्यिका-
दादी आकरके मुझ से ऐसा यदि कहे कि हे नप्तृक-पौत्र ! मैं इसी
श्वेतविका नगरी में तेरी दादी थी, और धार्मिक यावत् धर्म से ही
अपनी जीवन यात्रा चलानेवाली थी, श्रमणोपासिका-श्राविका थी, इत्यादि
मैंने प्रचुरतर पुण्य का उपार्जन कर कालमास में जब मरण किया-तो
मैं देवलोको में से किसी एक देवलोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हुई
हूँ, इसलिये हे पौत्र ! तुम भी धार्मिक यावत् धर्मानुग आदि विशेषणों
वाले बनो, तदा धर्म से ही अपनी जीवनयात्रा का निर्वाह करते हुए जीव
और अजीव तत्त्व के स्वरूप के ज्ञाता बनो और सच्चे अर्थ में श्रावक बन-

आवेलां छि तेथी निशासुओये त्यांथी न् न्णुी देवा न्नेधये, येवा मारा
आर्यिका दादी आवीने मने न्ने आं प्रमाणे क्खे के डे पौत्र ! हुं आ श्वेतांगिका
नगरीमा तारी दादी छती अने धार्मिक यावत् धर्मायरुथी न् पोतानी एवनयात्रा
पसार करती छती, हुं श्रमणोपासिका-श्राविका छती वगेरे प्रचुरतर पुण्यत्तुं उपाज्जन
करिने अलभासमा न्यारे मृत्यु पाभी त्यारे देवलोकमाथी कोरि अेक देवलोकमा देवनी
पर्यायथी न्न्म पाभीछुं, तेथी छे पौत्र ! तमे पण् धार्मिक यावत् धर्मानुग वगेरे
विशेषणे वाणा तेमन् धर्मथी न् पोतानु एवन पसार करता एव अने अएव तत्त्वना
स्वरूपने न्णुनारा थाओ, अने साया अणुंमा श्रावक थधने पोताना एवनने सङ्ग
अनावे, न्ने तमे आ प्रमाणे धार्मिक आयरुथुक्त अन्त करणुवाणा थाओ तो तमे

एवमेव अहमिव सुबहुं प्रचुरतरं पुण्योपवयं समज्यं यावत्—यावत्पदेन काल-
मासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु अनेकविधेषु देवलोकेषु कस्मिंश्चिद्देवलोके उप-
पत्स्यसे—उत्पन्नो भविष्यसि, तत्—त माद् हेतोः यदि खलु आर्यिका मम
आगत्य एव वदेत् तदा खलु अहं श्रद्धयां-तद्वचने विश्वस्याम्, प्रतीया-
विशेषतो विश्वासं कुर्याम्, गन्धेयं—रुचिविषयं कुर्याम् यथा—अन्यो जीवः
अ यत् शरीरम्, ना तज्ज वःस्सशरीरम्, इति । यस्मात्-कारणान् सा-पूर्वोक्ता
आर्यिका मम आगत्य एवम्-अनन्तरोक्तप्रकारम् वचनं नो न अवादीत—नाकथ-
यत् तस्मात्-कारणात् मे-मम प्रतिज्ञा—स्वीकारः सुप्रतिष्ठिता—सत्याऽस्ति,
प्रतिज्ञाविषयमाह यथेत्यादि-यथा-तथाहि-तज्जीवःस्सशरीरम्, नो अन्यो जीवः,
अन्यच्छरीरम्, इति ॥सू० १३३॥

कर अपने जीवन को सफल करो, यदि तुम इस प्रकार के धार्मिक आचरण
से वासितान्तःकरणवाले हो जाते तो तुम मेरे जैसे ही प्रचुरतर पुण्य
का उपार्जन करके यावत्-कालमाम में कालकर अनेकविध देवलोकों में
से किसी एक देवलोक में देवकी पर्याय से उत्पन्न हो जाओगे. इस
प्रकार से मेरी आर्यिका-दादी मेरे पाप आकर ऐसा कहे तो मैं आपके
इस वचन पर विश्वास करूं, प्रतीति-विशेषरूप से विश्वास करूं, उम पर
रुचि करूं, कि जीव भिन्न है, शरीर भिन्न है, वह शरीर जीवरूप नहीं है,
और जीव शरीररूप नहीं है—परन्तु जिन कारण से वह अभी तक मुझ से आकर
के ऐसा नहीं कहती है. इसी कारण से हे भद्रन्त ! मैं अपनी इस मन्त्रव्य
पर कि 'जीव और शरीर एक ही जीव भिन्न नहीं है और शरीर भिन्न नहीं
है' अटल हू, उसे सत्य मान रहा हूँ ॥ सू० १३३ ॥

पशु मारी जेभ न प्रचुरतर पुण्योपुं उपार्जन करीने यावत् कालमासमां काल करीने
-नेकविध देवलोकांथी डोष पशु जेक देवलोकां देवना पर्यायधी जन्म पाभयो,
आ प्रमाणे जे मारी आर्यिका-दादी मारी पासे आरीने आम छडे तो हुं तमारी
पर विश्वास करूं, प्रतीति-विशेषरूपधी विश्वास करूं, तेनां रुचि उत्पन्न करूं हे एव
स्मिन् छे, शरीर भिन्न छे, अने शरीर एवरूप नहीं अने एव शरीर रूप नहीं,
परंतु जे अरुने तीर्थ छे सुधा तेओ मारी पासे आरीने अने छडेता नहीं ते
अरुने हीदि छे नहंत' मारी आ विचार पर हे एव अने शरीर ऐकज छे एव
भिन्न नहीं, अने शरीर भिन्न नहीं. हे हुं, तेने न सत्य मानीने वणभी २
पुं ॥ सू. १३३ ॥

मूलम्—तएणं केसी कुमारसमणे पएणं रोयं एवं वयासी-जइ
 णं तुमं पएसी ! णहायं कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्तं
 उल्लपडसाडगं भिगारकडुच्छुयहत्थगयं देवकुलमणुपविसमाणं केइ
 य पुरीसे वच्चघरंसि ठिच्चा एव वदेज्जा एह ताव सामी ! इह मुह-
 त्तगं आसयह वा चिट्ठह वा निसीयह वा तुयट्टह वा, तस्स णं तुमं
 पएसी ! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठं पडिसुणज्जासि ? णो इणट्ठे
 समट्ठे । कम्हा ? भंते ! असुई असुइसामंते । एवामेव पएसी ! तववि
 अज्जिया होत्था इहेव सेयवियाए णयरीए धम्मया जाव विहरइ, सा
 णं अम्हं वत्तवयाए सुबहु जाव उववन्ना, तीसे गं अज्जियाए तुमं
 णत्तुए होत्था इट्ठे जाव किमंगपुण पासणयाए ? सा णं इच्छइ
 माणुसं लोग हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ।

चऊहिं ठाणेहि पएसी । अहुणोववण्णए देवे देवलोएसु इच्छेज्जा
 माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चेव णं संचाएइ-अहुणोववण्णे
 देवे देवलोएसु दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए गिच्चे गढिए अज्झो-
 ववण्णे से णं माणुसे लोगे नो आढाइ नो परिज्जाणाइ मे णं
 इच्छिज्जा माणुसं नो चेव णं संचाएइ । अहुणोववण्णए देवे देव-
 लोएसु दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे, तस्स णं
 माणुस्से पेम्मे वोच्छिन्ने भवइ दिव्वे पेम्मे संकंते भवइ, से णं
 इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव संचाएइ (२) अहु-
 णोववण्णे देवे दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे,
 तस्स णं एवं भवइ-इयाणि गच्छं मुहुत्तणं गच्छं तेणं कालेणं इट्ठ

अप्पाउया णरा कालधम्मणा संजुत्ता भवंति, से णं इच्छेज्जा माणुस्सं
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ।३। अहुणोववणणे देवे
 दिव्वेहिं जाव अज्झोववणणे, तस्स माणुस्सए उराले दुग्गंधे पडिकूले
 पडिलोमे यावि भवइ, उद्धंपि य णं जाव चत्तारि पंच जोयणसए
 असुभे माणुस्सए गंधे अभिसमागच्छइ, से णं इच्छेज्जा माणुसं
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ।४। इच्चेएहि चउहिं
 ठाणेहि पएसी ! अहुणोववणणे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुसं
 लोगं हव्वमागच्छित्तए णो चैव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए त
 सदहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं
 जीवो तं सरीरं २ ॥सू० १३४॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं (अज्ञानमेवमवादीन् यदि
 म्वन्तु त्वं प्रदेशिन् ! स्नातं कृतवत्तिकर्मणिं कृतकौतुकमद्वल-प्रायश्चित्तम्
 आर्द्रपटशाटक भृङ्गारकटुच्छुक्रहस्तगत देवकूलमनुप्रविशन्तं कोऽपि पुत्रयो

‘तए णं केशीकुमारमणणे’ इत्यादि।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केशी कुमारमणणे) केशीकुमारश्रम-
 णणे (पएसि रायं) प्रदेशी राजा से (एवं वयामी) ऐसा कहा—(जइणं तुमं
 पएसी ! ण्हायं कयवत्तिकम्मं, कयकोउयमंगलपागच्छित्तं उद्धपइमाउगं) हे
 प्रदेशिन ! जिस समय तुम कृतरान होकर, कृतवत्तिकर्मा होकर,—प्रायश्चित्त का
 किये कृत अन्नविभागवाले होकर, कृत मपीतिलहादि मार्गान्तर प्राय-
 श्चित्त का किये वाले होकर, जलनिक्तवन्ध्याटारयुक्त होकर (निगारकटुच्छु-
 क्रहस्तगत देवकूलमनुप्रविशन्तं) एवं भृङ्गार कटुच्छुक्र हस्तगत होकर (देवकूलमनुप्रविशन्तं)।

‘तए णं केशीकुमारमणणे’ इत्यादि।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केशी कुमारमणणे) केशीकुमारश्रम-
 णणे (पएसि रायं) प्रदेशी राजा से (एवं वयामी) ऐसा कहा—(जइणं तुमं पएसी ! ण्हायं
 कयवत्तिकम्मं, कयकोउयमंगलपागच्छित्तं उद्धपइमाउगं) हे प्रदेशिन ! जिस
 समय तुम कृतरान होकर, कृतवत्तिकर्मा होकर,—प्रायश्चित्त का किये
 वाले होकर, जलनिक्तवन्ध्याटारयुक्त होकर (निगारकटुच्छुक्रहस्तगत देवकूलमनुप्रविशन्तं)
 एवं भृङ्गार कटुच्छुक्र हस्तगत होकर (देवकूलमनुप्रविशन्तं)।

वर्चोगृहे स्थित्वा एवं वदेत्—एत तावत् स्वामिन् ! इह सुहृत्कम् आस्वभ्र
वा तिष्ठत वा निषीदत वा त्वग्वर्त्तयत वा, नस्य खलु त्वं प्रदेशिन !
पुरुषस्य क्षणमपि एतमर्थं प्रतिशृणुयाः ? नो अयमर्थः समर्थः । कस्मात् ?
भदन्त ! अशुचि अशुचिसामन्तम् । एवमेव प्रदेशिन ! तवापि आर्यिका
ऽभवत् इहैव श्वेतविकायां नगर्यां धार्मिकी यावत् व्यहरत्. सा खलु अस्माकं

यक्षायतन में घुस रहे हो, उस समय (केइ य पुरिसे) तुम सं कोई पुरुष
(वच्चघरंसि ठिच्चा एवं वएज्जा) विष्ठागृह में स्थित होकर ऐसा कहे (एह
ताव सामी ! इह सुहृत्तगं आसयह, वा चिट्टह वा, निसीयह वा, तुयट्टह वा)
हे स्वामिन् !—आप आइये और एक सुहृत्तमात्र समयनक यहाँ बैठिये,
अथवा ठहरिये, सुखपूर्वक रहिये लेटिये (तस्स णं तुमं पएसी ! पुरिस-
स्स खणमपि एयमट्ठं पडिसुणेज्जासि) हे प्रदेशिन् ! तुम उस पुरुष की
उस बात को एक क्षण के लिये भी स्वीकार कर लोगे क्या ? (णो इणट्ठे
समट्ठे हे भदन्त ! उस समय उस पुरुष की यह बात स्वीकार योग्य
नहीं हो सकती है (कम्हा) हे प्रदेशिन् ! किस कारण से उस पुरुष की
वह बात स्वीकार योग्य नहीं हो सकती है ? (भंते ! असुई असुइ
सामंते) हे भदन्त ! क्यों कि वह स्थान अपवित्र है और सब तरफ
से अपवित्र वस्तु से युक्त हैं । (एवामेव पएसी ! तव वि अज्जिया होत्था,
इहेव, सेयं वियाए णयरीए धम्मिया जाव विहरइ) इसी प्रकार से हे

शुक्त यधने (भिं गारकडुच्छुयहत्थगयं) अने लु गार तेमज्ज कटुच्छुक्क डावमा
लधने (देवकुलमणुपविसमाणं) यक्षायतन (व्यंतरायतन) मा प्रवेशता होय ते सभये
(केइणपुरिसे) तमने केअ भाणुस (वच्चघरंसि ठिच्चा एवं वएज्जा) णज्जमां
रहीने आ प्रभाणु कडे (एह ताव सामी ! इह सुहृत्तगं आसयह वा चिट्टह वा
निसीयह वा, तुयट्टह वा) हे स्वामिन् ! तमे आवो अने इकत अेक सुहृत्तं नेटला
सभय सुधी अडीं जेसो के उला रडे, सुजेथी रडे के आराम करे. (तस्स णं तुमं
पएसी ! पुरिसस्स खणमपि एयमट्ठं पडिसुणेज्जासि) तो हे प्रदेशिन् ! तमे ते
भाणुसनी ते वातने थोडा वधत भाटे पथु स्वीकारथो ? (णो इणट्ठे समट्ठे) हे भदंत !
ते वधते ते भाणुसनी आ वात स्वीकारवामां आवशे नडि. (कम्हा) हे प्रदेशिन् !
आ कारणुथी ते भाणुसनी ते वात तमारामां स्वीकार्यं थशे नडि ? (भंते ! असुई
असुइ सामंते) हे भदंत ! केअके ते स्थान अपवित्र छे अने जधे ते अपवित्र
वस्तुअेथी शुक्त छे. (एवामेव पएसी ! तव वि अज्जिया होत्था, इहेव सेयं-
वियाए णयरीए धम्मिया जाव विहरइ) आ प्रभाणु ज्ज हे प्रदेशिन्, आ श्वेतां-

वक्तव्यतया सुबहुं यावद् उपपन्ना तस्याः खलु आर्यिकायाः न्व नष्टुको
 ऽभवः इष्टः यावत् किमद्ग ! पुनर्दर्शनतया ? सा खलु इच्छद् मानुष्यं लोकं
 शीघ्रमागन्तुं, नैव खलु शक्नोति शीघ्रमागन्तुम् ।

चतुर्भिः स्थानैः प्रदेशिन ! अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु इच्छेत्
 मानुष्यं लोकं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति । अधुनोपपन्नो देवो देव

प्रदेशिन ! इस श्वेतांशिका नगरी में तुम्हारी आर्यिका-दादी भी धार्मिक
 यावत् धर्मानुगादि विशेषणों से विशिष्ट हुई है (सा णं अहं वक्तव्याय
 सुबहुं जाव उववन्ना, तीसे णं अज्जियाण तुमं णत्तुए होत्था इट्ठे जाव
 किमंग पुणपामणयाण) वह हमारी वक्तव्यता के अनुसार-मान्यता के
 अनुसार अतिशय बहुत अधिक पुण्य का उपार्जन करके और कालमात्र
 में काल करके देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देव की पर्याय
 से उत्पन्न हो गई है। उस आर्यिका-दादी के तुम पौत्र हुए हो, जो उसे
 तुम इष्ट कान्त आदि विशेषणों वाले थे, और उदुम्बर पुष्प के समान
 उसे सुनने के लिये उस समय तुम दुर्लभ थे, फिर तुम्हारे देवने की
 बात ही क्या कहनी, (सा णं इच्छद् माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तण
 णोचेव ण संचाएइ हव्यमागच्छित्तए) वह आर्यिका-दादी मनुष्यलोक में
 आनेकी इच्छा तो करती है, परन्तु आ नहीं सकती है। इसमें चार कारण
 हैं जो इस प्रकार से हैं—(चज्जहि ठाणेहि पणमी अट्टणोवन्नए देवे देव
 लोएसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए, णो चेव ण संचाएइ)

(अथ नगरीमा तमाग आर्यिका दादी पञ्च धार्मिकी यावत् धर्मानुगादि विशेषणैः
 पाणा यथा छि. (सा णं अहं वक्तव्याय सुबहुं जाव उववन्ना, तीसे ।
 अज्जियाण तुमं णत्तुए होत्था इट्ठे जाव किमंगपुणपामणयाण) तस्याः
 वक्तव्यता मुञ्जण-मान्यता मुञ्जण अतिशय पुण्यैः उपार्जन इदमे उववन्ना
 शत इदमे देवलोकानाथी शत पञ्च लोक देवलोकाना देवती परंपर्याय वपन पञ्च छि
 ते आर्यिका-दादीना तने पौत्र छि, तने तेना भटे इष्ट कान्त वनेने इच्छेत्
 इता वनेने उदुम्बर पुष्पनी जेभ तने तेना आटे अवनुदुर्लभ इत्येत्ये प । तने दे
 वेवनी तो यावत् न शी उरथी. (सा णं इच्छद् माणुसं लोगं हव्यमागच्छित्तए
 णो चेव णं संचाएइ हव्यमागच्छित्तए) ते आर्यिका दादी वक्तव्यता - मान्यता
 इच्छा तो चाहे छि, पञ्च कारण इच्छा नहीं. अना चर इच्छेत् छि ते चर इच्छेत्
 छि. (चज्जहि ठाणेहि पणमी अट्टणोवन्नए देवे देव लोएसु इच्छेज्जा माणुसं
 लोगं हव्यमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ इच्छेत् छि)

लोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो गृद्ध ग्रथितः अध्युपपन्नः स खलु मानुष्यान् भोगान् नो आद्रियते नो परिजानाति, स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोमं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति ?। अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो यावत् अध्युपपन्नः, तस्य खलु मानुष्यं प्रेम

हे प्रदेशिन ! वे चार कारण ऐसे हैं कि जिनके कारण से अधुनोपपन्नक देव देवलोक में तत्कालोत्पन्न देवमनुष्यलोक में शीघ्र आना चाहता है, परन्तु वह नहीं आसकता है. सो उसमें प्रथम कारण ऐसा है—(अहुणोवन्नए देवे देवलोएसु दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे से माणुसे लोमे णो आढाइ, नो परिजाणाइ) अधुनोपपन्नक देव देवलोकों में दिव्यकामभोगों में मूर्च्छित हो जाता है, गृद्ध-विषयोपभोग की अभिलाषा से ग्रस्त हो जाता है, ग्रथित-विषयों में आसक्त हो जाता है, अध्युपपन्न-उनमें अत्यन्त आसक्तिवाला बन जाता है। अतः वह मनुष्यलोक संबंधी शब्दादिक विषयों को आदर की दृष्टि से नहीं देखता है, उनकी अपेक्षा नहीं करता है, और न उन्हें जानने की ही इच्छा करता है (से णं इच्छेज्जा माणुसं नो चेव णं संचाएइ ?) ऐसा वह देव किसी प्रकार मनुष्यलोक में आनेकी इच्छा करे तो भी देवभोगोंकी आसक्ति से वह यहां नहीं आना चाहता है। (अहुणोववण्णए देवे देवलोएसु दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे) अधुनोपपन्न देव देवलोक

आ प्रभाणु छे इ जेने वीधे अधुनोपपन्नकदेव देवलोकभाथी तत्कालोत्पन्न देव मनुष्यलोकभां जलही आववा धच्छे छे परंतु ते आवी शकता नथी तेनुं पडेखुं कारणु आ प्रभाणु छे— (अहुणोववन्नए देवे देवलोएसु दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे से माणुसे लोमे णो आढाइ नो परि जाणाइ अधुनोपपन्नक देव देवलोकभा दिव्यकामभोगोभा मूर्च्छित थथ जय छे, गृद्ध-विषयोलोगनी अभिलाषाथी आकात थथ जय छे, ग्रथित-विषयोभां आसक्त थथ जय छे. अने अध्युपपन्न अने तेभा अतीव आसक्ति युक्त थथ जय छे. अथी मनुष्यलोकना शब्द वगेरे विषयोने स्माननी दृष्टिको जेतो नथी, तेनी ते अपेक्षा राभतो नथी अने तेना संभंधमा ते कंधंणु जाणुवानी पणु धच्छे धरावतो नथी. (सेणं इच्छेज्जा माणुसं नो चेव णं संचाएइ ?) अथो ते देव कदाच मनुष्यलोकभा आववानी धच्छे राभतो जय तो पणु देवलोगोनी आसक्ति वीधे ते अही आववा धच्छता नथी (अहुणोववण्णए देवे देवलोएसु दिव्वे- कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे) अधुनोपपन्न देव देवलोकभां दिव्य

व्युच्छिन्नं भवति दिव्यं प्रेम संक्रान्तं भवति, स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोकं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति २ । अधुनोपपन्नो देवो दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छिता यावत् अध्युपपन्नः, तस्य खलु एवं भवति, इदानीं गमिष्यामि मुहूर्तेन गमिष्यामि तस्मिन् काले इह अल्पायुषो नराः कालधर्मण संयुक्ता भवन्ति, स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोकं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति

में दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित हो जाता है यावत् अध्युपपन्न हो जाता है सो (तस्मिन् माणुस्से प्रेम्मे वोच्छिन्ने भवइ, दिव्ये प्रेम्मे मरुते भरइ) इमका मनुष्य-संबंधी प्रेम व्युच्छिन्न-हूट जाता है और देव-लोक संबंधी प्रेम उसके हृदय में संक्रान्त-प्रविष्ट हो जाता है। (से ण इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छत्तए, नो चैव मचाएइ) अतः माणुस्यलोक में आनेका अभिलाषा होता हुआ भी आना नहीं चाहता है। (अट्टणोववन्ने देवे दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिण जाव अज्जोववणं, तस्मिन् एव भवइ, इयाणिं गच्छं, मुहुत्तेणं गच्छं, तेणं कालेणं इट्ट प्रपाउमाणरा, कालधम्मणा संयुक्ता भवति, से ण इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छत्तए णो चैव ण मचाएइ) अधुनोपपन्न देव देवदात में दिन, कामभोगों के द्वारा मूर्च्छित हो जाता है यावत् अध्युपपन्न-प्राप्त हो जाता है सो उसके मन में ऐसा होता है कि अब जाता हूँ, थोड़े काल पाउं जाऊंगा-उस काल में मर्त्यलोक में मनुष्य-माता, पिता, पुत्र, स्त्रियादि कि जिन की आयु समाप्त हो चुकी होती है, वे कालधर्म से संयुक्त हो जाते

अभिलाषा मूर्च्छित धर्म लय छे यावत् अध्युपपन्न धर्म लय छे सो तस्मिन् माणुस्से प्रेम्मे वोच्छिन्ने भवइ, दिव्ये प्रेम्मे मरुते भरइ (से ण इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छत्तए, नो चैव मचाएइ) अतः माणुस्यलोक में आनेका अभिलाषा होता हुआ भी आना नहीं चाहता है। (अट्टणोववन्ने देवे दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिण जाव अज्जोववणं, तस्मिन् एव भवइ, इयाणिं गच्छं, मुहुत्तेणं गच्छं, तेणं कालेणं इट्ट प्रपाउमाणरा, कालधम्मणा संयुक्ता भवति, से ण इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्यमागच्छत्तए णो चैव ण मचाएइ) अतः माणुस्यलोक में आनेका अभिलाषा होता हुआ भी आना नहीं चाहता है।

३। अधुनापपन्नो देवो दिव्येषु यावत् अध्युपपन्नः, तस्य मानुष्यकः उदारः दुर्गन्धः प्रतिकूलः प्रतिलोमथापि भवति, ऊर्ध्वमपि च खलु यावच्चतुःपञ्च योजनशतम् अशुभो गन्धोऽभिसमागच्छति, स खलु इच्छेत् मानुष्यं लोकं हव्यमागन्तुं नैव खलु शक्नोति । इत्येतैः चतुर्भिः स्थानैः प्रदेशिन ? अधु-

है, सो वह देव मनुष्यलोक में आने का अभिलाषी बना रहने पर भी यहां नहीं आ सकता है । (अहुणोववन्ने देवे दिव्वेहिं जाव अज्झोववण्णे. तस्स माणुस्सए उराले दुग्गधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ) चौथा कारण यहां पर नहीं आसकने का ऐसा है कि-अधुनोपपन्न देव दिव्य कामभोगों में यावत् अध्युपपन्न हो जाता है, सो उसके लिये औदारिक शरीर संबंधी गोमृतककलेवरादि समुत्पन्न दुर्गन्ध-घ्राणेन्द्रिय के अनुकूल नहीं पडता है, प्रत्युत वह-उसे-प्रतिकूल-अनिष्ट कर प्रतीत होता है (उद्धं पि य णं जाव चत्तारि पंच जोयणसए असुभे माणुस्सए गंधे अभिसमा गच्छइ, से णं इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमार्गच्छत्तए णो चैव णं संचाएइ) तथा वह मनुष्यलोक संबंधी अशुभ गंध चारसौ या पांचसौ योजन तक ऊपर में सब तरफ फैल जाता-है-अतः मनुष्यलोक में आने का अभिलाषी बना हुआ वह देव उस दुर्गंध के कारण यहां नहीं आ सकता है अर्थात् युगलियों के समय में चारसौ योजन और मनुष्य में पांचसौ योजन तक दुर्गंध जाता है (इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं पएसी । अहुणो

भृत्यु प्राप्त करी चूके छे अने आम ते देव मनुष्य लोकमां आववानी अलिदाषा राभवतो डोय छतांये अहीं आवी शकतो नथी. (अहुणोववन्ने देवे दिव्वेहिं जाव अज्झोववण्णे, तस्स माणुस्सए उराले दुग्गधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ) अहीं न आववानुं योथुं कारण आ प्रमाणे छे के अधुनोपपन्नक देव दिव्य काम भोगोमां यावत् अध्युपपन्न थर्ध जाय छे, तो तेना भाटे औदारिक शरीर संबंधी गोमृतक कलेवरादि समुत्पन्न दुर्गंध घ्राणेन्द्रियना भाटे अनुकूल कही शकय नडि, पथु येना विरुद्ध ते तेने प्रतिकूल अनिष्टकर लागे छे. (उद्धं पि य णं जाव चत्तारि पंच जोयणसए असुभे माणुस्सए गंधे अभिसमागच्छइ, से णं इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमार्गच्छत्तए णो चैव णं संचाएइ) तेभज ते मनुष्य लोक संबंधी अशुभ गंध चारसौ के पांचसौ योजन सुधीं ऊपर आकाशमा योभेर प्रसरने रडे छे येथी मनुष्यलोकमां आववानी अलिदाषा धरावतो डोय छतांये ते देव ते दुर्गंधने लीधे अहीं आवी शकतो नथी अटवे के युगलीयोना समयमा चारसौ योजनने मनुष्यमां पांचसौ योजन सुधीं दुर्गंध जाय छे. (इच्चेएहिं

नोपपन्नो देवो देवलोकेषु उच्छेत्त मानुष्यं लोकं जीवमागन्तुं नरा जन्तुति
 इत्यमागन्तुम् तत् श्रद्धेहि यत्तु त्वं प्रदेजिन ! यथा-अन्यो जीवः प्रन्यत्
 शरीरम्, नां तज्जीवः स शरीरम् २ ॥ सू० १३४ ॥

टीका-‘तए णं केसीकुमारमरणे’ इत्यादि-ततः यत्तु केस कुमार प्रवणः
 प्रदेशिराजम् एवम्-वक्ष्यमाणप्रचनमप्राचीत्-हे प्रदेजिन ! यदि-चेत् यत्तु
 न्यां स्नानं कृतस्नानं कृतचक्रिकर्माण-कृतधारमादिनिमित्तात्तभाणं कृतकोरक-
 मङ्गलपायश्चित्त-कृतमपोतिलकादि सादलिकप्रायश्चित्तविधिम्, आर्द्रपटशाटकं-
 जलमि क्वच्चशाटकयुक्तं भृदारकटुचतुस्रहस्नगर्भं-रत्नगृहीतभृदारदर्शितम्, देव-
 कुलं-वक्षायतनम् अनुप्रविशन्तम्-गच्छन्तम्, तोडपि-कश्चिदपि पुण्या पर्शो-
 गृहे विष्टागृहे स्थित्वा पयम्, वदन-कथयेत् हे स्वामिन् ! युगनिः सारद पय
 आगच्छत इत पूर्त्तं पूर्वभावसाधना यान् प्राप्स्यस्य उपविशत, यः-
 अथवा तिष्ठन् उदस्थिता मान, निर्णीयत्त-स कुन्धमुपविशन्, त्वगर्भयत्-गर्भ-
 कुत्त, अथ वा शब्दो वाक्यालङ्कारे, तस्य पुस्तस्य यत्तु हे प्रदेजिन !
 त्वम् एतमर्थं किम् प्रतिगणुया, स्वीकुर्याः ? प्रदेजीवाः—

नायमर्थः समर्थः-प्रथमर्थः स्वीकारयोगो नास्ति किमर्थमित्याः-हे-वदन् !
 तत्स्थानम्-अगुचि-अपवित्रम्, अशुचिनाम्नाम्=नवतोऽशुचि प्रकृतम् अना-

यवणे देवे देवलोकेषु उच्छेत्त्वा माणुष्यं लोकं त्वमागान्तुमण ना रा
 ण संचापः हवमागच्छित्तर, तं नदशादि णं त्वं पयसो ! जथा जन्तो
 जीवो जन्तं मगरं, नो तं जीवो नं मगरं इ प्रदेजिन ! हे त्वं कारणे हे त
 अधुनोपपन्न देव लो मनुष्यलोक म प्राने ही उच्छेत्त कृत म ना उच्य
 यतां आने में चारक पीते हे । इत्यन्वे हे प्रदेजीव ! त्वं नैव सर्वे
 न भवति करो कि जीव अन्य ? अथ मगर पयसः अपा शरीर-वत्तता उ
 जीव एवम जीरत्वा नर्त्ते ।

टीका-‘तए णं केसीकुमारमरणे’ इत्यादि-ततः यत्तु केस कुमार प्रवणः

न्नोचिताऽयमर्थः इति बोध्यम्, केशीश्रमणः प्राङ्-हे प्रदेशिम् ! एवमेव-
 इत्यमेव तत्रापि आर्षिकाऽभवत् कुत्र साऽभवदित्यत्राऽऽह-इहैव श्वेतविकायां
 नगर्यां धार्मिकी-यावत्-यावत्पदेन-धर्मानुगादिविशेषणविशिष्टा व्यहरत्,
 सा-आर्षिका खलु मम वक्तव्यतया-मम मतेन सुबहुं यावत्-यावत्पदेन-
 “गुण्योपचयं समुत्थं कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया
 उपपन्ना, तस्याः खलु आर्षिकायाः त्वं नष्टकः-पौत्रोऽभवः, कीदृशः ?
 इत्यत्राऽऽह-इष्टः यावत्-यावत्पदेन-इष्टकान्तादिविशेषणविशिष्टः उद्गम्य
 पुष्पमिव दुर्लभः श्रद्धणतया, किमङ्ग पुनर्दर्शनतया, एतादृशस्त्वमभूः । सा-
 आर्षिका खलु मानुष्यं लोकमागन्तुमिच्छति किन्तु नैव शक्नोति ।

कुतो न शक्नोति ? इति जिज्ञासायामाह-हे प्रदेशिन् ! चतुर्भिः-
 स्थानैः अधुनोपपन्नः-तत्कालोत्पन्नो देवः देवलोकेषु मानुष्यं लोकं शीघ्र-
 मागन्तुमिच्छेद्-अभिलषेत् किन्तु नैव शक्नोति-तत्र प्रथमकारणमाह-
 अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु कामभोगेषु मूर्च्छितः-मूर्च्छामधिगतः, गृद्धः-
 विषयोपभोगाभिलाषग्रस्तः, ग्रथितः आमक्तः, अध्युपपन्नः-अत्यासक्तः स
 खलु मानुष्यान्-मानुष्यलोकसम्बन्धिनः भोगान्-शब्दादीन् विषयान् नो
 आद्रियते नापेक्षते, अतएव नो परिजानाति-विज्ञातुं नेच्छति, स खलु देवः
 कथञ्चित् मानुष्यं लोकमागन्तुमिच्छेदपि किन्तु देवभोगासक्त्या नैवागन्तुं
 शक्नोति-नेच्छतीत्यर्थः १। द्वितीयस्थानमाह-अधुनोपपन्न इत्यारभ्य
 अध्युपपन्नः इति पर्यन्तानां चिचरणं प्राग्वत्, तस्य-देवस्य मानुष्यं-मनु-
 ष्यसम्बन्धि प्रेम व्युच्छिन्नं मनुष्यलोकमुखापेक्षयाऽधिकदिव्यसुखेन प्रति-
 हतं भवति तथा-दिव्यं-स्वर्गलोकसम्बन्धि प्रेम संक्रान्तं-हृद्यनुभवितं
 भवति, तेन हेतुना स देव आगन्तुं न शक्नोति २।
 अधुनोपपन्नो देवो दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो गृद्धो ग्रथिताऽध्यु-
 पपन्नो भवति, तस्य खलु देवस्य एवम्-अनुपदवश्यमाणस्वरूपो भिलाषो
 भवति तथा-उदानीम्-अधुना गर्भयामि, तथा मूर्ध्नेन घटिकाद्वया-
 नन्दरं गर्भयामि । तस्मिन् काले उह-मर्त्यलोके नराः-मातापितृपुत्र-
 कलत्राद्यः अन्पायुषः अल्पजीविनः कालवर्मेण-मृथुना मृक्ताः भवन्ति,
 नराः देव आगन्तुं न शक्नोति ३। अथ चतुर्थस्थानमाह-“अधुनोपपन्नो देवो
 दिव्यभोगासक्तो भवति, तस्य देवस्य औदारिकः-औदारिकशरीरसम्बन्धी
 गोमूत्रकृत्वादिगद्गद्भृतो दुर्गन्धः प्रतिकूलः प्राणेन्द्रियाननृकलः, प्रतिलोमः-
 प्राणविट्कन्धापि भवति । तथा-शृमः सः गन्ध ऊर्ध्वं म प उपरिप्रदेशेऽपि च

यत्क गायत्र्युःपञ्चयोजनयत्-व्यामि वा पञ्च वा योजनानां यत्तान् यत्तान्
अभिमतमागच्छति अभितः प्रसरति. म देवः मानुष्य लोकापामन्तुम्, इन्द्रेण
पस्वतु नर्तुर्गन्धर्वादागन्तु न शक्नोति ४। हे प्रदेहिन् । इन्द्रेणः चतभिः
स्वानिः-देवा आगन्तुं न शक्नुवन्तोनि । नन् तस्मान्कारमान हे प्रदेहिन् ।
नं अद्देहि-मदचने श्रद्धां कुरु यथा-प्रथो जीयः प्रथम शरीरम् नो त तीरः
स शरीरम्, उति ॥३७॥

मूलम्—तएणं से पण्मी गया केसे कुमारसनणं एवं वयानी—
अरिथणं भंते ! एसा पण्णा उवमा. उमणं पुण कारणेण णो उवा-
गच्छड. एव खडु भंते ! अह अन्नया कयाडं वाहिरियाण उरुण-
सालाण अणेण गण्णायक-दंडणायक राईसग्-तलवर-माटं पिय-काडुं-
यि य - इठभसेणि, सेणावड - सत्थवाह-मंति-भदासंति-गणग-
दोवारिय अमच्चचेड-पीडमद्-नगर-निगप-दूय-वधिवालेहिं सदिं मंप-
रिवुडे विहरामि । तएणं मम णग्गुत्तिया ससत्थवं सटोडं सग्गेवेज्ज
अवउडमवं वणवद्धं चोरं उवणेति, तएणं अहं तं पुग्गि म जीयत
चेय अउकुंभीए पक्खिवावेनि, अउमएणं पिहाणएणं पिहावेनि, अएण
य तउएण य आयावेनि, आगपत्तडएहिं पुग्गिनाहिं सक्खावंनि, तए
अहं अणया कयाडं जेणामेव सा अउकुंभी तेणामेव उवाण्णडामि.
उवागच्छित्ता त आउकुंभी उग्गट्ठवापिंस, उग्गट्ठवापिंस न
पुग्गिं सयमेव पात्तामि णो चेय णं तंमे अउकुंभीए केड डिडेड म
सिरेड वा अंतरेड वा राईवा उधो णं ने जीरे अंतोहिं तो र्हि म
मिग्गए. जड णं नते । तीरे अउकुंभीए तेजा देड डिडेड म वाय
राई वा उधो णं ने जीरे अंतोहिं तो र्हिया मग्गए सा णं उडे
सहेवा पत्तिएजा सेएजा जहा-अन्तो जीरे अन्तो सरेर नी म

जीवो तं सरीरं, जम्हा णं भंते ! तसि अउकुभीए णत्थि केइ
छिड्ढे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा-तं
जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ॥सू० १३५॥

छाया—ततःखलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्
अरित खलु भदन्त ! एसा प्रज्ञा उपमा, अनेन पुनःकारणेन नो उपाग-
च्छति, एवं खलु भदन्त ! अहमन्यदा कदाचित् बाह्यागाम् उपस्थानशाला
याम् अनेकगणनायक-दण्डनायक-राजेश्वर-तलवर-माडम्बिवा-कौटुम्बि
केभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-मन्त्री-महामन्त्री-गणक-दोवारिका-ऽमात्य-
चेट-पीठमह-नगर-निगम-दूत-सन्धिपालैः सार्द्धं संपरिवृतो विहरामि ।

‘तएणं से पएसी राया इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसकेबाद (पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी)
प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमण से ऐसा कह्यो—(अत्थि णं भंते !
एसा पण्णा उवमा, इमेणं पुण कारणेणं णो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह
जीव एवं शरीर में भेदरूप बुद्धि केवल उपमामात्र है, जैसा कि अभी
प्रकट किया गया है—कि इसर कारण से देव यहां नहीं आता है. (एवं
खलु भंते ! अहं अन्नया कयाइ बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए) हे भदन्त !
किसी एक समय मैं बाह्य उपस्थान शाला में (अणेगगणनायक, दण्डणा-
यक-राइसर-तलवर-माडंबिध-कौडु बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-
मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीठमह-नगर-निगम-दूय-
संधिवालेहिं सद्धिं संपरिबुडे विहरामि) अनेक गणनायक, दण्डनायक, राजा,

सुत्रार्थः—(तए णं) त्थारपणी (पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी)
प्रदेशी राजाने केशी कुमार श्रमणने आ प्रमाणे कहुं— (अत्थि णं भंते ! एसा
पण्णा उवमा, इमेणं पुण कारणेणं णो उवागच्छइ) हे भदन्त ! तमे देवने
अही न आववा भाटे ने कथं कहुयुं छे तेना वडे तो एव अने शरीरमां लेदइय
बुद्धि इत्त उपमामात्र ए छे आम स्पष्टपणे लापित थाय छे. (एवं खलु भंते !
अं अन्नया कयाइ बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए) हे भदन्त ! केधं अेक वपने
बाह्य उपस्थानशालाभां हुं (अणेगगणनायकदण्डनायक-राइसर-तलवर-माडं-
बिय कौडुं बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-मंति-महामंति-गणग-दो-
वारिय-अमच्च-चेड-पीठमह-नगर-निगम-दूय-संधि-वालेहिं-सद्धिं संपरि-

ततः खलु मम नगरगुप्तिका समक्ष महोद सग्रैवेयकम् अत्राहायच्यनवद्धं
 चौरमुपनयन्ति, ततः खलु अहं तं पुरुषं जीमन्तमेव अग्रकुम्भ्यां पश्येयामि,
 अग्रामयेन पिधानकेन पिद्यापयामि. अग्रमा च त्रपुणा च आतापयामि,
 आत्मप्रत्ययिकैः पुरुषैः रक्षयामि. ततोऽहमन्यदा कदाचित् यत्रैव सा अग्र

ईश्वर गेश्वर्यसंपन्न, तलवर, माडम्विक, कौटुम्भिक, उभ्य, श्रेष्ठी सेनापति,
 सार्थवाह, मन्त्री, महामंत्रो, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्द,
 नगरनिवासीजन, व्यापारिजग, दूत मन्त्रिगण, इन सबके साथ बैठे दशा
 था. (तण्णं मम नगरगुप्तिया समवपं, महोद, सग्रेवेज्जं, अवउडमचं
 णवद्धं चौर उवणेति) इतने में नगररक्षक मेरे समक्ष महोद-चुराई हुई
 वस्तुओं सहित, सग्रैवेयक-ग्रोवा में जिमने चुराई हुई वस्तुओं को वापस
 है ऐसे चौर को अत्रकोटक-(मुसक्रिया) बंधन से वापस लाये (तण्ण
 अहं तं पुरिसं जीवंतं चैव अउकुम्भोण पस्मिवावेमि) मैं उस पुरुष को
 जावितावस्था में ही लोह की कोठी में बन्द करवा दिया-और (अउम-
 णण पिहाणणं पिहावेमि) उसके मुखतो-कोठी के मुख को अह के दान
 से बन्द करवा दिया-ढक्का दिया. (अणण य तउणण य आयावेमि) बाद
 में फिर मैंने उसे द्रवीमत्त लोहे से और द्रवित राग से अटूत करा
 दिया, (आयपचडएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि) यह सब करवाकर फिर मैंने
 अपने विश्वासपात्र पुरुषों को उसकी रक्षा के निमित्त नियुक्त करवा दिया

बुद्धे विहरामि) धनु गणनायको, दडनायको, सन्त, उभ्य, अश्वर्य, सपन्न, तलवर
 माडम्विक, कौटुम्भिक, उभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, मन्त्री, महामन्त्री, गणक,
 दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्द, नगरनिवासीजन, बडेपानीजो, इतने, मन्त्रिगण,
 आ गंधानी साथे बैठे हुतो, (तण्णं मम नगरगुप्तिया समवपं महोदं, सग्रेवे-
 ज्जं, अवउडमचं णवद्धं चौर उवणेति) बैठेहुताना नगर-उड नारी जाने अउड
 -योगेश्वरी वस्तुजोनी साथे, सग्रैवेयक-लेनी उडना योगेश्वरी वस्तु-याधवना
 साथी छे अवा चोरने अवडोट-अन्ने हाथये लेना जायीने उडवा. तण्णं अहं
 तं पुरिसं जीवंतं चैव अउकुम्भोण पस्मिवावेमि) मैंने पुरुषं उवणे-
 व उवणेउता नगाना अह उवणी दीधे अने (अउमण-णण पिहाणण पिहावेमि)
 ते नगाने उवणेउता उवणी अथ कवची दीधे (अणण य तउणण य आयावेमि)
 त्वां पछी मे लेने द्रवीमत्त लोहे से तनज द्रवित राग से अटूत करा
 (आयपचडएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि) मैंने पुरुषों को उसकी रक्षा के निमित्त नियुक्त करवा दिया

स्कृम्भो तत्रैव उवागच्छामि, उवागम्य तामय कुम्भोम्, उन्श्लेष्यामि उन्श्लेष्य
 तं पुरुष सयमेव पश्यामि नो चैव खलु तस्या अस्कृम्भ्यां किञ्चित् छिद्रमिति
 वा विवरमिति वा अन्तर्गमति वा राजिरिति वा यतः खलु स जीवः अन्त
 राद् बहिर्निर्गतः, तदा खलु भदन्त ! तस्यां अयस्कृम्भ्यां भवेत् किमपि छिद्र
 वा यावद् राजर्त्तं यतः खलु स जीवः अन्तराद् बहिर्निर्गतः, तदा खलु
 अहं श्रद्धया प्रताया रोचयेयं यथा-अन्यो जीवः अन्यत् शरीरं नो तज्जीव

(तए अह अणया कयाइ जेणामेव सा अउकुंभी तेणामेव उवागच्छामि)
 एक दिन को बात है कि मैं उस अयःकुम्भी के-लोहेकी कोठी के पास
 गया (उवागच्छिता तं आउकुंभि उगलत्थावेमि) वहाँ जाकर मैंने उस
 लोहेकी कोठी का खुलवाया (उगलत्थावित्ता तं पुरिसं सयमेव पासामि
 णा चैव णं तीसे अयकुंभीए केइ छिड्डेइवा विवरेइ वा, अंतरेइ वा राइ वा
 जओण से जीवे अंतोहितो बहिया निग्गए) खुलवाकर मैंने स्वयं उस चोर
 को देखा तो वह वहाँ मरा पड़ा था, जब कि उस लोहेकी कोठी में न कोई
 छिद्र था, न कोई विवर था, न अवकाश था, न कोई रेखा थी, कि
 जिससे होकर उस चोर पुरुष का जीव उस लोहेकी कोठी के
 भीतर से बाहर निकल जाता (जइ णं नते ! तीसे अउकुंभीए- होजा
 केइ छिड्डे वा जाव गइ वा जओ ण से जीवे अंतोहितो बहिया
 निग्गए) हा अदन्त ! यदि उस लोहेकी कोठी में, कोई छिद्र वा यावत्
 देखा होती तो उसने होकर वह चोर पुरुष का जीव भीतर से बाहर

आटे विश्वासपात्र पुत्रोनी नियुक्ति करीदांधी. (तए अहं अणया कयाइं जेणामेव
 सा अउकुंभी तेणामेव उवागच्छामि) अथ द्विसती वात छे डेहुं त बोणं उना
 नणा पासे गणे, (उवागच्छिता तं आउकुंभि उगलत्थावेमि) त्या अर्धने भं
 छे बोण उना नणाते उवागच्छे, (उगलत्थावित्ता तं पुरिसं सयमेव पासामि, णो
 चैव णं तीसे अयकुंभीए केइ छिड्डेइ वा विवरेइ वा, अंतरेइ वा, राइ-
 वा जओण से जीवे अंतोहितो बहिया निग्गए) उधरवीने भं पोते ते बो-
 नणे तो न तेमा भूतावस्थाभा पडेवा इतो, ज्यारे ते बोण उना नणाभां न छिद्र
 इतुं डे न विवर इतुं डे न अवकाश इतो डे न रेखा इती डे लेथी ते बोरेना
 इतुं ते बोण उना नणाभांथी अइर नीइणी इतो रडे, (जइ णं नते ! तीसे अउकुं
 भीए उवागच्छिता केइ छिड्डे वा जाव गइ वा जओण से जीवे अंतोहितो
 बहिया निग्गए) हा अदन्त ! यदि उस लोहेकी कोठी में, कोई छिद्र वा यावत्
 देखा होती तो उसने होकर वह चोर पुरुष का जीव भीतर से बाहर

मन्त्रि-महामन्त्रि-गणक-दौवारिका-ऽमात्य-चेट-पीठमर्द- नगर -निगम-
 दूत-सन्धिपालैः-अनेके ये गणनायका दयः-तत्र गणनायकाः-गणधामिनः,
 दण्डनायकाः-दण्डविधायकाः, राजानः-प्रसिद्धाः, ईश्वरा-ऐश्वर्यसमपन्नाः,
 तलवराः-मन्तुष्टराजदत्तपट्टबन्धपरिभूषितराजकल्पाः, माडम्बिकाः-ग्रामपञ्च-
 शशीपतयः, यद्वा-साङ्गिकोशद्वयपरिमितप्रान्तरैर्विच्छिद्य विच्छिद्य स्थितानां
 ग्रामाणामधिपतयः, कौटुम्बिकाः-बहुकुटुम्बप्रतिपालकाः, इभ्याः-इभो-दस्ती
 तत्प्रमाण द्रव्यमर्हन्तीति इभ्याः, ते च जघन्य-मध्यमोत्कृष्टभेदात् त्रि-
 प्रकाराः, तत्र हस्तिपरिमितमणिमुक्ता-प्रवाल-सुवर्ण-रजतादिद्रव्यराशि स्वा-
 मिनो जघन्याः, हस्तिपरिमितवज्रमणिमाणिक्यराशिस्वामिनो मध्यमाः.

टीकार्थ-स्पष्ट है-परन्तु जो इसमें गणनायक आदि पद आये हैं उनकी व्याख्या
 इस प्रकार से है-गण के जो स्वामी होते हैं, वे गणनायक हैं दण्ड का
 जो विधान करते हैं, वे दण्डनायक हैं, राजा प्रसिद्ध हैं, ऐश्वर्य से जो युक्त
 होते हैं वे ईश्वर हैं. मन्तुष्ट हण राजा द्वारा जिन्के विशेष पोशाक
 दी जाती है वे राजतुल्य व्यक्तियों का नाम तलवर है पांच सौ ग्राम
 के जो अधिपति होते हैं वे माडम्बिक हैं, अथवा ढाई ढाई कोम के
 अन्तर से बसे हुए ग्रामों के जो अधिपति होते हैं वे माडम्बिक
 हैं, बहुत कुटुम्ब का पालन पोषण करनेवाले जो होते हैं कौटुम्बिक हैं,
 हस्तिप्रमाण द्रव्य-मणि-मुक्ता-प्रवाल-सुवर्ण-रजत-आदि द्रव्यराशि के
 जो स्वामी होते हैं वे जघन्य इभ्य है तथा-हस्तिपरिमित वज्र, मणि,
 माणिक्यराशि के जो स्वामी होते हैं वे मध्यम इभ्य है हस्तिपरिमित

टीकार्थ-टीकादा स्पष्ट है. परन्तु आ सूत्रमा गणनायक वगेरे के पदों
 आवेल छे तेमनी व्याख्या आ प्रमाणे छे. गणना के स्वामी होय छे ते गण-
 नायक छे. दंडतु के विधान करे छे ते दंडनायक छे. राजा प्रसिद्ध छे. ऐश्वर्यथी
 के सपन्न होय छे ते ईश्वर छे संतुष्ट थयेला राजा वरु केमने पडेरवाना वस्त्रां
 आपवामा आवे छे अवी राजतुल्य व्यक्तियों तलवर कडेवाय छे पाचसो ग्रामना
 के अधिपति होय छे. ते माडम्बिक छे अथवा तो अढी अढी डोसना अ तरे वसेला
 ग्रामोना के अधिपति होय छे ते माडम्बिक छे धण्डा कुटुम्बोना पालन-पोषण करनार
 के होय छे ते कौटुम्बिक छे. हस्तिप्रमाण द्रव्य-मणि-मुक्ता-प्रवाल-सुवर्ण-रजत
 आदि द्रव्यराशिना के स्वामी होय छे ते जघन्य इभ्य छे तेमके हस्तिपरिमित
 वज्र, माणिक्य राशिना के स्वामी होय छे ते मध्यम इभ्य छे, इतत हस्ति-

हस्तिपरिमितकेवलवज्ररागिस्वामिन उत्कृष्टाः, श्रेष्ठिनः-लक्ष्मीकृपाकृपाक्ष-
 प्रत्यक्षलक्ष्यमाणद्रविणलक्षलक्षणविलक्षणहिरण्यपट्टमलकैतमूर्धानो नगरप्रधान-
 व्यवहारकारिणः, सेनापतयः-चतुरङ्गसेनानायकाः सार्थवाहाः-गणिम-धरिम-
 मेय-परिच्छेद्यरूप-क्रयविक्रयवस्तुजानमादाय लाभेच्छया देशान्तराणि व्रजतां
 सार्थवाहयन्ति-योग-क्षेमाभ्यां परिपालयन्ति, दीनजनोपकराय मूलधनं दत्त्वा
 तान् समर्द्धयन्तीति तथा, तत्र गणिमम्-एक-द्वि-त्रि-चतुरादिसंख्याक्रमेण
 यदीयते, यथा-नारिकेल-पूगीफल-कदलीफलादिकम्, धरिमम्-तुलासूत्रेणो-
 सौल्य यदीयते, यथा-त्रीहि-यव-लवण-सितादि, मेयं-गरावलघुभाण्डादिनो-
 सौल्य यदीयते, यथा-दुग्ध-धृत-तैल-प्रभृति, परिच्छेद्यं च-प्रत्यक्षतोनिक-
 षादिपरीक्षया यदीयते, यथा-मणिमुक्ता-प्रवालाऽऽभरणादि, मन्त्री-रहस्य-
 कार्यकारी स एव महान् महामन्त्री, गणकाः ज्योतिषवेत्तारः, दौवारिकाः-द्वारि-
 नियुक्ताः द्वारपालाः, अमात्याः राज्याधिष्ठायकाः सहवासिगजपुरुषविशेषाः,
 वेटाः-चरणसेवकाः किङ्कराः, पीठ मर्हाः-राजसमीपस्थानिनो राजव्ययकाः
 सेवकविशेषाः, नगरेति नागरा नगरनिवासिनो जनाः, निगमाः-व्यापारिगणः,

केवल वज्रराशि के जो स्वामी होते हैं वे उत्कृष्ट इन्ध हैं। लक्ष्मी की
 जिनपर पूरी रूपा है, और इसी कृपा के कारण जिनके लाखों के
 खजाने हैं, तथा जिनके मस्तक पर उन्हीं को सूचित करनेवाला चान्दी
 का विलक्षण पट्ट शोभायमान हो रहा हो ऐसे नगर के प्रधानव्यापारी
 भेष्टी कहलाते हैं। चतुरङ्गसेना के नायक जो होते हैं वे सेनापति हैं, जो
 गणिम-गिनकर खरीदने बेचने योग्य नारियल, सुपारी केला आदि मेय-शराब
 आदि से नापकर खरीदने बेचने योग्य दूध, घी, तेल, आदि वस्तुओं का तथा
 परिच्छेद्य-कसौटी आदि पर परीक्षा करके खरीदने बेचने योग्य मणि,
 मोती, मृगा, गहना आदिवस्तुओं का लेकर काम के त्रिपे देशान्तर में जाने

परिमित वज्रराशिना जो स्वामी होय तो उत्कृष्ट इन्ध है। जेनी उपर लक्ष्मीकी
 पूर्ण कृपा है अने ऐसी जो जेमनी पासै लाजोना जंगर जरेला है तेनज जेमना
 भरता पर तेमने जो सुखवतो यादीने विउक्षय पर शोभायमान दष्ट रक्षी है।
 जेवा नगरना प्रधान व्यापारी जेनी उद्वेचय है जो चतुरंग सेनाना नास्त होय
 है ते सेनापति है जो गणिम-गनिमे बेखर इत्य जेन नारियेउ नापका है।
 जेदे वस्तु जेने १५५ उदे है नगर-नगरवा जोरे नगर उद्वेच जोदे जे नरिने जे नर उद्वेच
 मोन्य दूध, घी, तेल परदे वस्तु जेने जेन उद्वेउ तेनज परिच्छेद्य कसौटी जेदे पर परीक्षक
 हरिने बेखर उन्वा सेन्य नक्षि. मोती २५०, नानुसरी। जेने परवुजने न. ६

अथस्फुट्या. नास्त, किञ्च। छिद्र वा याम्परा जवा, यतः स. जीवो-
 ऽन्तः-मध्याद् बहिर्निर्गतःस्यात् तस्मात् कारणात् छिद्रादिविरहेण निःसर्तु-
 मशक्तत्वात् मे-मम प्रतिज्ञा मन्तव्यरूपा सुप्रतिष्ठिता-सुष्ठु समवस्थिता न
 तु खण्डिता यया तज्जीवः स शरीरम्, नो अन्यो जीवः अन्यच्छरीरम् ॥सू. १३५॥

मूलम्—तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-
 से जहानामए कूडागारसाला सिया दुहओ लित्ता गुत्ता गुत्तदुवारा
 णिवायगंभीरा, अह णं केइ पुरिसे भेरि च दंडं च गहाय कूडागार-
 सालाए अंतो अंतो अणुप्पविसइ तीसे कूडागारसालाए सब्वओ
 समंता घणणिचिथनिरंतराणेच्छिड्डाइं दुवारवयणाइं पिहेइ, तीसे
 कूडागारसालाए बहुमज्झदेशभाए ठिच्चा तं भेरि दंडएणं महया
 महया सदेणं तालेज्जा, से णूणं पएसी ! से सदे णं अंतोहितो बहिया
 निग्गच्छइ ? हंता णिग्गच्छइ, अत्थि णं पएसी ! तीसे कुडागार-
 सालाए केइ छिदे वा जाव राई वा जओ णं से सदे अंतोहितो
 बहिया णिग्गए ? नो इणट्ठे समट्ठे, एवामेव पएसी ! जीवे वि
 अप्पडिहयगई पुढविं भिच्चा सिलं भिच्चा अंतोहिं तो बहिया णिग्गच्छइ,
 तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी अण्णो जीवो अण्णं सरीरं, नो तं
 जीवो तं सरीरं ३ ॥सू. १३६॥

अतः निकलने के अभाव यही प्रतीत होता है कि जीव शरीर से भिन्न
 २ नहीं है जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है ॥सू. १३५॥

विचार थये के जे एव अनेशरीर जुहां जुहां ते डोय तो नणाभां छिद्र वगेरे न
 होवाथी तेनो एव तेमांथी कथां थधने नीकज्यो ? नीकजी न शकवाने दीधे आ वात
 स्पष्ट रीते न्णाय छे के एव शरीरथी भिन्न नथी. जे एव छे तेन शरीर छे
 अने जे शरीर छे तेन एव छे. ॥ सू. १३५ ॥

हस्तिपरिमितकेवलवज्रराशिस्वामिन उक्तृष्टाः, श्रेष्ठिनः-उक्ष्णो कृपा कृपास्त
 प्रत्यक्षलक्ष्यमाणद्रविणलक्षलक्षणविलक्षणहिरण्यपट्टममलङ्कृतमूर्त्तानो नगरप्रधान-
 व्यवहारकारिणः, सेनापतयः-चतुरङ्गसेनानायकाः सार्थवाहाः-गणिम-परिम-
 मेय-परिच्छेद्यरूप-क्रयविक्रेयवस्तुजानमादाय लाभेच्छया देशान्तराणि व्रजतां
 सार्थं वाहयन्ति-योग-क्षेमाभ्यां परिपालयन्ति, दीनजनोत्तराय मूलधन दत्ता
 तान् समर्द्धयन्तीति तथा, तत्र गणिमम्-एक-द्वि-त्रि-चतुरादिसंख्याकनेग
 यद्दीयते, यथा-नारिकेल-पूगीफल-कदलीफलादिकम्, धरिमम्-तुलासूत्रेणो-
 स्तोत्र्य यद्दीयते, यथा-त्रीदि-यव-लवण-सिनादि, मेयं-शरावलघुमाण्डादिनो-
 स्तोत्र्य यद्दीयते, यथा-दुग्ध-धृत-तैल-मभृति, परिच्छेद्यं च-प्रत्यक्षनोनिरु-
 षादिपरीक्षया यद्दीयते, यथा-मणिमुक्ता-पवालाऽऽभरणादि, मन्त्री-रहस्य-
 कार्यकारी स एव महान् महामन्त्री, गणकाः ज्यौतिषवेत्तारः, दौवारिकाः-द्वारि-
 नियुक्ताः द्वारपालाः, अमात्याः राज्याधिष्ठायकाः सहवासिगजपुरुषविशेषाः,
 वेटाः-चरणसेवकाः किङ्कराः, पीठ मर्द्दाः-राजसमीपत्थायिनो राजव्यस्काः
 सेवकविशेषाः, नगरेति नागरा नगरनिवासिनो जनाः, निगमाः-व्यापारिगणः,

केवल वज्रराशि के जो स्वामी होते हैं वे उत्कृष्ट इन्ध्र हैं। लक्ष्मी की
 जिनपर पूरा रकृपा है, और इसी कृपा के कारण जिनके लाखों के
 खजाने हों, तथा जिनके मस्तरु पर उन्हीं को सूचित करनेवाला चान्दी
 का विलक्षण पट्ट शोभायमान हो रहा हो ऐसे नगर के प्रधानव्यापारी
 भेष्टी कहलाते हैं। चतुरङ्गसेना के नायक जो होते हैं वे सेनापति हैं, जो
 गणिम-गिनकर खरीदने बेचने योग्य नारियल, मृपारी केला आदि मेय-शराब
 आदि से नापकर खरीदने बेचने योग्य दूध, घी, तेल, आदि वस्तुओं का तथा
 परिच्छेद्य-कसौटी आदि पर परीक्षा करके खरीदने बेचने योग्य मणि,
 मोती, मृंगा, गहना आदि वस्तुओं का छेहर जान के लिये देशान्तर में जाने

परिमित वज्रराशिना ले स्वामी होय उ ते उत्कृष्ट इन्ध्र उ. लेनी उरर सरनीनी
 पूर्णं भुष्य उ अने जेथी न लेमनी पत्ते वापिना लंघर भरेवा उ तेनय लेनना
 मस्तरु पर तेमने न लयवतो आरीना विवस्यु पट्टे शोभायमान यथ रक्षी होय
 जेवा नगरना प्रधान व्यापारी जेथी होय उ ले चतुरांग सेवना नगरक होय
 उ ते सेनापति उ ले गणिम-ज्योतिष वेत्तार इत्य वेत्य न श्रेष्ठ, सेवका देना
 वेष्टी वस्तुनेने गणिम होय उ नैर-यस्का वेष्टी नय वस्तु नगरमी नयने वेष्टी इत्य
 वेत्य इय, घी, तेल वेष्टी वस्तुनेने मेय होय तेनय परिच्छेद्य इत्यादी वेष्टी पर पराङ्क
 शरीने वेष्टी इत्य वेत्य नष्टि, मोती प्रयत्न, गहने इत्यादी वेष्टी वस्तुनेने लक्ष

अयस्कृम्याः नास्त, किञ्चिद् छिद्र वा यावत् राज्ञां, अतः स जीवो-
ऽन्तः-मध्याद् बहिर्निर्गतः स्यात् तस्मात् कारणात् छिद्रादिविरेहेण निःसर्तु-
मशक्तत्वात् मे-मम प्रतिज्ञा मन्तव्यरूपा सुप्रतिष्ठिता-सुष्ठु समवस्थिता न
तु खण्डिता यथा तज्जीवः स शरीरम्, नो अन्यो जीवः अन्यच्छरीरम् ॥सू. १३५॥

मूलम्—तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-
से जहानामए कूडागारसाला सिया दुहओ लिता गुत्ता गुत्तदुवारा
णिवायगंभीरा, अह णं केइ पुरिसे भेरि च दंडं च गहाय कूडागार-
सालाए अंतो अंतो अणुप्पविसइ तीसे कूडागारसालाए सव्वओ
समंता घणणिचियनिरंतराणेच्छिड्डाइं दुवारवयणाइं पिहेइ, तीसे
कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए ठिच्चा तं भेरि दंडएणं महया
महया सदेणं तालेज्जा, से णूणं पएसी ! से सदे णं अंतोहितो बहिया
निग्गच्छइ ? हंता णिग्गच्छइ, अत्थि णं पएसी ! तीसे कुडागार-
सालाए केइ छिदे वा जाव राई वा जओ णं से सदे अंतोहितो
बहिया णिग्गए ? नो इणट्टे समट्टे, एवामेव पएसी ! जीवे वि
अप्पडिहयगई पुढविं भिच्चा सिलं भिच्चा अंतोहिं तो बहिया णिग्गच्छइ,
तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी अण्णो जीवो अण्णं सरीरं, नो तं
जीवो तं सरीरं ३ ॥सू. १३६॥

अतः निकलने के अभाव यही प्रतीत होता है कि जीव शरीर से भिन्न
२ नहीं है जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है ॥सू. १३५॥

विचार थये के जे एव अनेशरीर बुद्धां बुद्धां ते होय तो नणामां छिद्र वगेरे न
होवाथी तेना एव तेमांथी क्यां थधने नीकल्ये ? नीकणी न थकवाने दीधे आ वात
रूपं रीते नणाय छे के एव शरीरथी सिन्न नथी. जे एव छे तेज शरीर छे
अने जे शरीर छे तेज एव छे. ॥ सू. १३५ ॥

छाया—ततःखलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत् -
 सा यथानामक कृटाकारशाला स्यात् द्विधातो लिप्ता गुप्ता गुप्तद्वारा निचात-
 गम्भीरा, अथ खलु कश्चि पुङ्गवः भेरीं च दंडं च गृह्यत्वा कृटाऽऽकार-
 शालायामन्तरन्तः अनुःप्रविशति तस्याः कृटाऽऽकारशालायाः सर्वतः समन्तात्
 चननिचितनिरन्तरनिश्चिद्रागि द्वारवदनानि पिद्यति, तस्याः कृटाऽऽकार-

‘तएणं केशी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केशीकुमारसमणे) हमके बाद केशीकुमार श्रमणने
 (पणमिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कृटा (से जहा नामण कृटागा-
 रशाला सिया दुहओ लिप्ता गुप्ता गुप्त द्वारा निरायगंभीरा) हे प्रदेशिन
 ! जैसे कोई एक कृटाकारशाला हो परंत की शिवर जैसी आच्छादि-
 वाला भवन हो और वह भीतर बाहर में आच्छादित हो, आच्छादित द्वार
 प्रदेशवाली हो, निचात गंभीर हो वायुहित हो तो हुड गंभीर अन्तः प्रदेशवादी हो
 (अहणं केइपुरिसे भेरिं च दंडं च गदाय कृटागारमात्वाए अथो अणुपरिसह)
 अथ कोई पुरुष भेरी और दंडे को लेकर उस कृटाकारशालाके भीतर गुप्त
 जाता है, (तीसे कृटागारशालाए सव्वओ ममंता यगनिविगनिरतगणिच्छिहुडं
 द्वारवयणाइ पिहेइ) और गुप्तकर रइ उसके दरवाजों को चारों तरफ से इस
 तरह से बन्दकर लेता है कि जिससे उनके द्विधात आराम में चिदकुल गट
 जाते हैं थोडा सा भी अन्तर उनमें नहीं रहता है, छिद्र उनके बन्द हो जाते हैं.

‘तएणं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केशीकुमारसमणे) हमके बाद केशीकुमार श्रमणने
 (पणमिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कृटा (से जहा नामण कृटागा-
 रशाला सिया दुहओ लिप्ता गुप्ता गुप्त द्वारा निरायगंभीरा) हे प्रदेशिन
 ! जैसे कोई एक कृटाकारशाला हो परंत की शिवर जैसी आच्छादि-
 वाला भवन हो और वह भीतर बाहर में आच्छादित हो, आच्छादित द्वार
 प्रदेशवाली हो, निचात गंभीर हो वायुहित हो तो हुड गंभीर अन्तः प्रदेशवादी हो
 (अहणं केइपुरिसे भेरिं च दंडं च गदाय कृटागारमात्वाए अथो अणुपरिसह)
 अथ कोई पुरुष भेरी और दंडे को लेकर उस कृटाकारशालाके भीतर गुप्त
 जाता है, (तीसे कृटागारशालाए सव्वओ ममंता यगनिविगनिरतगणिच्छिहुडं
 द्वारवयणाइ पिहेइ) और गुप्तकर रइ उसके दरवाजों को चारों तरफ से इस
 तरह से बन्दकर लेता है कि जिससे उनके द्विधात आराम में चिदकुल गट
 जाते हैं थोडा सा भी अन्तर उनमें नहीं रहता है, छिद्र उनके बन्द हो जाते हैं.

मूलक—तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी अत्थिणं भंते ! एसा पण्णाओ उवमा, इमेण पुण कारणेणं णो उवागच्छइ, एवं खलु भंते ! अहं अन्नया कयाइ बाहिरियाए उवट्टाणसालाए जाव विहरामि, तएणं ममं णगरगुत्तिया ससक्खं जाव उवणेंति, तएणं अहं तं पुरिसं जीवियाओ ववरोवेमि, ववरोवेत्ता अउकुंभीए पक्खिवावेमि अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि जाव आय-पच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि, तएणं अहं अन्नया कयाइं जेणेव सा अउकुंभी, तेणेव उवागच्छामि, तं अउकुंभि उग्गलत्थावेमि, तं अउकुंभि किमिकुंभिपिव पासामि, णोचेवणं तीमे अउकुंभीए केइ छिड्डे वा जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा वहिवाहिता अणुप्पविट्ठा, जइ णं तीसे अउकुंभीए होज्जा केइ छिड्डे वा जाव अणुप्पविट्ठा, तो णं अहं सबहेज्जा, जहा—अन्नो जीवो तं चेव, जम्हा णं तीसे अउकुंभीए नत्थि केइ छिड्डे वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुप्पइट्ठिआ मे पइण्णा जहा—तं जीवो तं सरीरं तं चेव ॥ सू० १३७ ॥

छाया—ततःखलु प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणमेवमवादीव अस्ति खलु भदन्त ! एषा प्रज्ञात उपमा अनेन पुनःकारणेन नो उपागच्छति), जीवो अणं सरीरं णो तं जीवा तं सरीर) अतः हे प्रदेशिन् ! तुम विश्वास करो जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है. जीव शरीर रूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है ।

टीकार्थ को लेकर ही यह मूलार्थ लिखा है. भावार्थ इसका केवल यही है कि जिस प्रकार शब्द अप्रतिहतगतिवाला है उसी प्रकार से जीव भी अप्रतिहतगतिवाला है अतः वह किसी भी स्थितिमें प्रतिहतगति वाला नहीं हो सकता है ॥ सू० १३६ ॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसी तं सरीरं) अथी हे प्रदेशिन् ! तमे विश्वास करो के एव भिन्न छ अने शरीर भिन्न छ. एव शरीर रूप नहीं अने शरीर एव रूप नहीं.

टीकार्थ—ते लक्ष्यमां राभीने न आ मूलार्थं लभवामां आव्यो छ. आने भावार्थ आ प्रभाषे छ के जेम शब्द अप्रतिहत गति युक्त होय छ. अथी ते गमे ते स्थितिमां पद्य प्रतिहत गतियुक्त थर्थ शके नडि. ॥ सू. १३६ ॥

‘त एणं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एणं) त्थार पछी (पएसी राया) केशी कुमार श्रमणने आ प्रभाषे

छाया—ततःखलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत् -
सा यथानामकं कूटाकारशाला स्यात् द्विधातो लिप्ता गुप्ता गुप्तद्वारा निवात-
गम्भीरा, अथ खलु कश्चिन् पुरुषः भेरीं च दण्डं च गृहीत्वा कूटाऽऽकार-
शालायामन्तरन्तः अनुःप्रविशति तस्याः कूटाऽऽकारशालायाः सर्वतः समन्तात्
पननिश्चितनिरन्तरनिश्चिद्राणि द्वारवदनानि पिदधाति, तस्याः कूटाऽऽकार-

‘तएणं केसी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे) इसके बाद केशीकुमार श्रमणने
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कडा (से जहा नामए कूडागा-
रशाला सिया दुहओ लिप्ता गुप्ता गुप्त दुवारा निवायगंभीरा) हे प्रदेशिन
! जैसे कोई एक कूटाकारशाला हो पर्वत की शिखर जैसी आकृति-
बाला भवन हो और वह भीतर बाहर में आच्छादित हो, आच्छादित द्वार
प्रवेशवाली हो, निवात गंभीर हो वायुहित होती हुई गंभीर अन्तः प्रदेशवाली हो
(अहणं केशपुरिसे भेरिं च दंडं च गहाय कूडागारशालाए अंतो अणुपपिसइ)
अथ कोई पुरुष भेरी और दंडे को लेकर उस कूटाकारशालाके भीतर गुप्त
जाता है, (तीसेकूडागारशालाए सबओ समंता पणनिश्चितनिरंतरनिश्चिद्राणि
द्वारवयणाइ पिदेइ) और गुप्तकर वह उसके दरवाजों को चारों तरफ से इस
तरह से बन्दकर लेता है कि जिससे उनके द्विवाड आपस में पिलकूल सट
जाते हैं थोडा सा भी अन्तर उनमें नहीं रहता है. छिद्र उनके बन्द हो जाते हैं,

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे) त्वार पछी केशी कुमार श्रमणने
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रमाणे उहु (से जहा नामए
कूडागारशाला सिया दुहओ सिया गुप्ता-गुप्तद्वारा निवायगंभीरा)
हे प्रदेशिन ! जेभ केउं जेउं कूटाकारशाला हो पर्वत की शिखर जैसी आकृति-
बाला भवन हो और वह भीतर बाहर में आच्छादित हो, आच्छादित द्वार
प्रवेशवाली हो, निवात गंभीर हो वायुहित होती हुई गंभीर अन्तः प्रदेशवाली हो
(अहणं केशपुरिसे भेरिं च दंडं च गहाय कूडागारशालाए अंतो अणुपपिसइ)
अथ कोई पुरुष भेरी और दंडे को लेकर उस कूटाकारशालाके भीतर गुप्त
जाता है, (तीसेकूडागारशालाए सबओ समंता पणनिश्चितनिरंतरनिश्चिद्राणि
द्वारवयणाइ पिदेइ) और गुप्तकर वह उसके दरवाजों को चारों तरफ से इस
तरह से बन्दकर लेता है कि जिससे उनके द्विवाड आपस में पिलकूल सट
जाते हैं थोडा सा भी अन्तर उनमें नहीं रहता है. छिद्र उनके बन्द हो जाते हैं,

मूलक—तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी अत्थिणं भते ! एसा पण्णाओ उवमा, इमेण पुण कारणेणं णो उवागच्छइ, एवं खलु भंते ! अहं अन्नया कयाइ बाहिरियाए उव-ट्ठाणसालाए जाव विहरामि, तएणं ममं णगरगुत्तिया ससक्खं जाव उवणेत्ति, तएणं अहं तं पुरिसं जीवियाओ ववरोवेमि, ववरोवेत्ता अउकुंभीए पक्खिवावेमि अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि जाव आय-पच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि, तएणं अहं अन्नया कयाइं जेणेव सा अउकुंभी, तेणेव उवागच्छामि, तं अउकुंभि उग्गलत्थावेमि, तं अउ-कुंभि किमिकुंभिपिव पासामि, णोचेवणं तीमे अउकुंभीए केइ छिड्डे वा जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा वहिवाहिता अणुप्पविट्ठा, जइ णं तीसे अउकुंभीए होज्जा केइ छिड्डेइ वा जाव अणुप्पविट्ठा, तो णं अहं सद्धहेज्जा, जहा—अन्नो जीवो तं चेव, जम्हा णं तीसे अउकुं-भीए नत्थि केइ छिड्डेइ वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुप्पइट्ठिआ मे पइण्णा जहा—तं जीवो तं सरीरं तं चेव ॥ सू० १३७ ॥

छाया—ततःखलु प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणमेवमवादीत् अस्ति खलु भदन्त ! एषा प्रज्ञात उपमा अनेन पुनःकारणेन नो उपागच्छति), जीवो अणं सरीरं णो तं जीवा तं सरीर) अतः हे प्रदेशिन ! तुम विश्वास करो जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है. जीव शरीर रूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है ।

टीकार्थ को लेकर ही यह मूलार्थ लिखा है. भावार्थ इसका केवल यही है कि जिस प्रकार शब्द अप्रतिहतगतिवाला है उसी प्रकार से जीव भी अप्रतिहतगतिवाला है अतः वह किसी भी स्थितिमें प्रतिहतगति वाला नहीं हो सकता है ॥ सू० १३६ ॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसी तं सरीरं) अथी हे प्रदेशिन् ! तमे विश्वास करो के एव भिन्न छ अने शरीर भिन्न छ. एव शरीर रूप नहीं अने शरीर एव रूप नहीं.

टीकार्थ—ते लक्ष्यमां राणीने न आ मूलार्थं लभ्वामा आब्यो छ. आने भावार्थं आ प्रभाषे छ के नेम शब्द अप्रतिहत गति युक्तु डोय छ. अथी ते गमे ते स्थितिमा पणु प्रतिहत गतियुक्त थर्ध थके नहि ॥ सू. १३६ ॥

‘त एणं पएसी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(त एण) त्थार पछी (पएसी राया) देशी कुमार श्रमणुने आ प्रभाषे

एवं खलु भदन्त ! अहमन्वदा कदाचित् वाद्यायाम् उरुवानशाब्दाया यावत्
 विहरामि, ततः खलु मम नगर गुप्तिताः तस्मात्स्यं वावद् उपनयन्ति ततः
 खलु अहं तं पुरुषं जीविताद् व्यपरोपयामि, व्यपरोप्य अयस्कुम्भ्या प्रक्षे-
 पयामि अयोमयेन पिधानकेन पिधापयामि यावत् आत्मप्रत्ययिकैः पुरुषैः
 रक्षयामि, ततः खलु अहं अन्यदा कदाचित् यत्रैव सा अयस्कुम्भी तत्रैव

कुमारममणं एवं त्रयामी) केजीकुमारश्चमण से पेमा कदा-(अन्धि णं
 मंते ! एसा पशाओ उपमा) हे भदन्त ! यह आपके द्वारा कही गई
 उपमा-(दृष्टान्त) वृद्धिदिशेष रूप है (उपेण पुा कारणेण णो उ०) किन्तु उस
 प्रक्षयमाण कारण से मेरे मनमें जीव और अरीर का भेद नहीं आता
 है-युक्तियुक्त पतित नहीं होता है। इसी बात को अब प्रदेशी राजा प्रसन्न करता
 है -(एवं खलु नते ! अहं अन्नया जयाई वाद्विजिवाए उाट्टाणमाळाए जाय
 विहरामि) हे भदन्त ! मैं एक दिन वाद्य की उपस्थान प्राप्ति में याचन बैठ
 हुआ था (तण्णं ममं णमग्गुत्तिया जयस्ये जायउवमेति) उस मेरे नगर
 रक्षकोंने साक्षिमल्लित यावत् एक चोर की उपस्थित किया (तण्णं जइं
 तं पुरिसं जीवियाओ ववरोवेमि) ऐसे उन चोर को प्राणदित कर दिया
 (ववरोस्ता अउहुंभीए पक्खिवावेमि जउमग्गं विजयाया विहायेमि)
 प्राणदित करके फिर मैंने उसे अयस्कुम्भी (येहेवी जेजा) में अपने पुरुषों
 से उच्यत दिया (जाय जायववक्ष्णदि पुरिसेदि सय्यादेहे) यन्तु कि मैंने
 अपने आत्मरक्षक पुरुषों का तथा पान निवृत्त कर दिया। (एवं १५

उपागच्छामि तामयस्कुम्भीमुत्क्षेपयामि, तामयस्कुम्भी कृमिकुम्भीमिव पश्यामि
 नैव खलु तस्याः कुम्भ्याः किञ्चित् छिद्रमिति वा यावद् राजिरिति वा यतः
 खलु ते जीवा बाह्याद् अनुप्रविष्टाः, यदि खलु तस्याः अयस्कुम्भ्याः
 भवेत् किञ्चित् छिद्रमिति वा यावद् अनुप्रविष्टाः तदाऽहं श्रद्धयां यथा
 -अन्यो जीवः तदेव, यस्मात् खलु तस्या अयस्कुम्भ्याः नास्ति किमपि

अन्नया कयाइं जेणेव सा अउकुंभी तेणेव उवागच्छामि) कुछ दिनों के
 बाद फिर मैं उस अयस्कुंभी के पास गया (तं अयकुंभि उगलत्थावेमि)
 उस अयस्कुंभी को उधाडा (तं अउकुंभि किमिकुंभिमिव पासामि, णो
 चैव णं तीसे अउकुंभीए केइ छिड्डेइ वा जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा
 बहियाहितो अणुप्पविट्ठा) उधाडते ही मैंने उसमें देखा कि वहां उस अय-
 स्कुंभी में कृमिकुंभी को देखा कि जिससे वह अयस्कुंभी कीटमयी हो
 रही थी. अब विचारने की बात यहां ऐसी है कि जब उस अयस्कुंभी
 में न कोई छिद्र था यावत् न कोई रेखा ही थी, कि जिससे होकर वे
 जीव उसमें बाहिर से आये (जइणं तीसे अउकुंभीए होज्जा केइ छिड्डेइ
 वा जाव अणुप्पविट्ठा) यदि उसमें कोई छिन्द्रादि होता तो यह बात मान भी
 ली जाती कि वे उनमें होकर उसमें प्रविष्ट हो गये हैं (तो णं अहं
 सद हेज्जा-जहा-अन्नो जीवो तं चैव, जम्हाणं तीसे अउकुंभीए णत्थि
 केइ छिड्डेइ वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुपइइद्विया मे पइण्णा जहा-तं जीवो

गोष्ठी दीधा. (तए णं अहं अन्नया कयाइं जेणेव सा अउकुंभी तेणेव
 उवागच्छामि) थोडा दिवसो भाद हुं इरी ते दोभंडना नणानी पासे गये
 (तं अयकुंभि उगलत्थावेमि) ते दोभंडना नणाने उधाउये (तं
 अयकुंभि किमिकुंभि पिव पासामि, णो चैव णं तीसे अउकुंभीए
 केइ छिड्डेइ वा, जाव राईइ वा जओ णं ते जीवा बहियाहितो अणुप्पविट्ठा)
 उदधाटित करतनी साथे ज भे' ते दोभंडना नणाभां कृमिकुलोने लेया-ते नणे
 डीटयुक्त थय गये हुतो. हुवे आ वात विचार करवा थैय्य छे के न्यारे नणाभां
 डोय पणु छिन्द्र यावत् डोय पणु रेभा (तराड) नडोती के नेथी ते एवे अडारथी
 तेभां प्रविष्ट थय थके (जइणं तीसे अउकुंभीए होज्जा केइ छिड्डेइ वा जाव
 अणुप्पविट्ठा) ले तेभां छिद्र वगेरे डोत तो आवी वात मानवाभां पणु आवी
 थके तेभां थयने ते नणाभां कृमियो प्रविष्ट थयां छे. (तो णं अहं सदहेज्जा-जहा
 -अन्नो जीवो तं चैव, जम्हाणं तीसे अउकुंभीए णत्थि केइ छिड्डेइ
 वा जाव अणुप्पविट्ठा तम्हा सुपइइद्विया मे पइण्णा जहा तं जीवो तं सरिं

छिद्रमिति चा यावद् अक्षुवविष्टाः, तस्मान् स्तुत्रनिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा
तज्जीयः न शरीरं तदेव ॥ सु० १३७ ॥

‘तण्णं पण्णो गवा’ इत्यादि—

श्रीका--ततः खलु प्रदेशी राजा पुनः केविकुमारश्रमणम् एवं
मवादीत हे मदनन्त ! एषा-नवदृक्ता उपमा=दृष्टान्तः प्रज्ञानः=बुद्धिविशो-
पात्, बुद्धिविशोपजन्या अस्ति, किन्तु अनेन-वक्ष्यमाणेन पुनः कारणेन
मे-मम मनसि जीयशरीरयो र्भेदः नोपागच्छति न संगच्छते युक्तियुक्तो
नो प्रतिवानीत्यर्थः । तदेव दर्शयति-हे मदनन्त ! एषम्-उत्वं खलु प्रहम्
अन्यथा कदाचित्-अन्यास्मिन् कर्मिभिरिच्छात्वे वाद्यायाम् उपस्थानजात्याया
यावत्-यावत्पदेन-अनेनश्रमणनायकादिभिः मान्त्रं संपरिचिन्नो विहरामि, ततः तदा
खलु मम नगरमुत्तिकाः-नगरक्षकाः-मन्त्राधिकं-वाचिन्महितम्, यावत्-यावत्-
त्वदेन-महोदादिविशोपणविनिष्ट चोरम् उपनयन्ति-उपस्थापयन्ति, ततः
खलु अहं तं-पूर्वोक्त चोरं चीरिनात् उपगोपयामि-भाणरदिनं करोमि, व्यप-
रोप्य मारयित्वा नयस्कृम्या प्रक्षेपयामि-अपुष्पैर्निवापयामि, प्रक्षेपितचोरं
तामयस्कृमिणाम् अयोमयेन-ओहमयेन पिशनेन पिशययामि-नाच्छादयामि,
यावत् यावत्पदेन-अथवा च अपुष्पा च अद्रयामि, आम्नपन्थयिहैः-न्यवि-

नं शरीरं चेत्) जीय उक्ता कारणं मे श्री मत् नदा तन्ना हे हि श्रीर
अथ हे श्रीर शरीरं अथ हे । अथ कारणं से उव अयस्कृ भी मे होट्ट
छिद्र नादि नदी ये हिम जी उमये तार जा मये तो उव कारण से
मना यतो चिन्ताम रत्ना हे हि मेव करत हि श्रीर शरीरं वा हे
शरीर शरीर जीयत्वा हे नृप्रापिष्टा ये ।

श्रीभाव उभ नयति हे ज्ञाना या उ मया उपय (नायण जाय) हे
उव या उव हे मे होट्ट मनेन अयोमयेन नाच्छादयामि अत्र नदे ।
तदा अथवा हे मते व उव अथवा हे म शरीरः उपयतो वा अथवा

श्वासपात्रैः पुरुषैः रक्षयामि, तप्तः खलु महश्च अन्यदा कदाचित् यत्रैव-यस्मिन्नेव स्थाने सा-सुरक्षिता अयस्कुम्भी तत्रैव-तस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छामि- तदन्तिकं गच्छामि, गत्वा ताम् उत्क्षेपयामि-उद्धाटयामि । तामयस्कुम्भीं कृमि-कुम्भीमिव कीटमयीमैव-कुम्भीं पश्यमि नैव खलु तस्याः-सुरक्षितायाः अयस्कुम्भ्याः किञ्चित्-किमपि छिद्रमिति वा यावत्-विवरं अन्तरम् राजि-वांनास्ति यतः-यस्मात्-छिद्रादेः ते कृमिजीवाः बाह्यात्-बाह्यप्रदेशात् अनु-प्रविष्टाः-अभ्यन्तरे प्रविष्टा भवेयुः । यदि-चेत् खलु तस्याः-सुरक्षितायाः, अयस्कुम्भ्याः भवेत्-स्यात् किञ्चित् छिद्रम् यावद् विवरादिकं भवेत्, यतस्ते जीवाः बाह्यप्रदेशात् अनुप्रविष्टाः स्युः तदा खलु अहं श्रद्धया-तव वचने विश्वस्याम्, अन्यो जीवः तदेव-पूर्वोक्तमैव अन्यो जीवः अन्यच्छरीरं नो तज्जीवः स शरीरम् इति । यस्मात्-कारणात् खलु तस्याः-सुरक्षितायाः अय-स्कुम्भ्याः नास्ति किञ्चित् किमपि छिद्रादिकं यतस्ते जीवाः बाह्यप्रदेशात् अनुप्रविष्टाः स्युः तस्मात् मे-मम प्रतिज्ञा-स्वीकारः सु-तिष्ठिता-स्थिरा यथा--तज्जीवः स शरीरं तदेव-पूर्वोक्तमैव नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम् इति ॥ सू० १३७ ॥

मूलम्—तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी ! अरिथणं तुभे पएसी कयाइ अएधं तपुठवे वा धमावियपुठवे वा ? हंता अरिथ,से णूणं पएसी ! अएधंते समणे सठवे अगणिपरिणए भवइ, ? हंता भवइ, अरिथणं पएसी ! तस्स अयस्स केइ छिड्डेइ वा जेणं से

हुमा हे । 'विहावेसि जाव' में आये हुए इस यावत्पद से 'द्रवित लोहे से और द्रवितरंग से मैंने उसे अत्यन्त करवा दिया' इस पूर्वोक्त पाठ का ग्रहण हुआ है । इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि जब कि उस अयस्कुम्भी में किसी भी प्रकार का कोई भी छिद्रादि नहीं था तो उममें बाहर से जीव कैसे प्रविष्ट हो गये, वहाँ तो केवल चौर का ही वह मृग शरीर पडा था अतः जीव और शरीर विन्न २ नहीं है यही कथन समुचित है । सू. १३७।

वेमि जाव' भा आयेउ यावत् पठ्यी द्रवित लोणं'य्यी अने द्रवित रंगायी में तेने अंठित डरावी दीधी' आ पाडतुं अडणु थयुं छे. आ सूत्रनेा लावार्थ आ प्रमाणे छे डे न्यादे ते लोणं'उता नणाभा डेअणसु छिद्र वगेरे न छाना छताये तेमां अडरथी छये: डेवी नीने प्रवेश पाभ्या. त्या तो इअत चोरतुं भुन शरीर पडतुं इतु जेवी छन अने शरीर विन्न नथी, आ वात समुचित छे. ।स.१३७।

जोई बहियाहिंनो अंतो अणुपविट्टे ? णो इणट्टे समट्टे एवामे
 पणसी ! जीवोऽवि अप्पडिहयगई पुढवि भिच्चा मिलंभिच्चा बहि
 याहिंतो अणुपविसइ, तं सइहाहि णं तुमं पणसी ! तहेव ।सू० १३८

आया—ततः गच्छ केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमरादीत
 अस्ति गच्छ स्वया प्रदेशिन ! कदाचिद् यथा-मातपूर्वा मापितपूर्
 या ? इन्त अस्ति, स नन प्रदेशिन ! यथा-मातं सत् मरिं अग्निपरिणतं
 भवति ? इन्त भवति, अस्ति गच्छ प्रदेशिन ! तस्य अयसः क्तिञ्चित् छिद्र
 मिति वा येन तत ज्ञातिः चात्मान् अन्तग्नुपविष्टम् नो अयमर्थः समर्थः

'तण णं केशीकुमार समणे' इत्यादि ।

समर्थ--(तण णं) इमके राट (केशीकुमारसमणे पणसिं रायं प
 यामी) केशीकुमार श्रमण ने प्रदेशी राजा मेणवा कडा (मान्धि णं मंते
 पणसी ! कयाइ अप्पंतपुच्चे या यमाविपपुच्चे या) हे प्रदेशिन ! तुम्हाते
 पास एना थोडा हे कि जिसे तुमने पहिले दनी अग्नि में तपाया हे
 या किमी से तपाया हो ? (इता अन्वि) हां 'नटना ! हे (से णं) पणसिं
 अयत्ते समाणे सज्जे अग्नि परिणप भवउ) तो हे प्रदेशिन में तुमने पेम
 पूजता हे कि रट थोडा जर अग्निमें तपाया जाता हे तब र
 सम्पूर्णरूपसे अग्निमें से परिणत हो जाता है न ? (हेना ! नरट
 प्रदेशीने कडा हां हा जाता हे (अन्वि न पणसा ! तस्य
 अयसस केर किट्टे वा जेणे से जाई पहियहिंता जना अणुपविट्टे?)

एवमेव प्रदेशिन्। जीवोऽपि अप्रतिहतगतिः पृथिवीं भिन्वा शैलं भिन्वा बाह्यात्
अनुर्भावशति, तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् ! तथैव ४ ॥ सू० १३८ ॥

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

टीका-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवम्-वक्ष्यमाणं
वचनम् अवादीत् हे प्रदेशिन् ! त्वया कदाचित्-कास्मश्चित्काले अयो=लोहं
ध्मात्पूर्वं पूर्वं ध्मात्तम्=अग्निना संयोजितम् ? वा अथवा ध्मापितपूर्वं=पूर्वं
केनचित्पुरुषेण ध्मापितम् अस्ति ? इति प्रश्नः, प्रदेशीप्राह-हन्त अस्ति । केशी
पृच्छति-हे प्रदेशिन् ! तद्अयः लोहं नूनं निश्चितम् ध्मात् सत् सर्वं अग्नि
परिणतम्-अग्निस्वरूपतया परिणतं भवति ? प्रदेशीप्राह-हन्त भवति ! पुनः
केशीपृच्छति हे प्रदेशिन् ! तस्य अयसः-लोहस्य, किञ्चित्-छिद्रमिति वा०
छिद्रादिकम् अस्ति ? येन-कारणेन तत् ज्योतिः-अग्निः बाह्यात् बहिः-

तो क्या हे प्रदेशिन् ! उस लोहे में कोई छिद्र होता है कि जिससे होकर
वह अग्नि बाहर से उस के भीतर घुस जाती है ? प्रदेशीने कहा-
(णो इण्ठे सम्ठे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् उस लोहे
में कोई भी छिद्रादिक नहीं है । (एवामेव पएसी ! जीवोऽपि अप्पडि-
हध्गई पुढ्विं भिच्चा, सिलं भिच्चा, बहियाहिंतो अणुप्पविसइ, तं सदहा-
हि णं तुमं पएसी तहेव) इसी तरह से हे प्रदेशिन् ! जीव भी अप्रति-
हतगतिवाला है अतः वह पृथिवी को शिला को भेदकर बहिःप्रदेश से
भीतर में घुस जाता है इस कारण हे प्रदेशिन् ! तुम मेरे वचन पर विश्वास
करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है । ४।

टीकार्थ स्पष्ट है. इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि जिस प्रकार छिद्रा
दिसे रहित लोहे के गोले में अग्नि बाहर से उसके प्रत्येक प्रदेश में

ते अग्नि ण्डारथी तेमां प्रविष्ट थं नय छे ? प्रदेशी अे उहुं. (णो इण्ठे सम्ठे)
छे लहन्त ! आ अर्थं समर्थं नथी ओटवे डे ते दोण उमा डोथ पणु छिन्द्र वगेरे नथी.
(एवामेव पएसी ! जीवोऽपि अप्पडिहध्गई पुढ्विं भिच्चा बहियाहिंतो
अणुप्पविसइ, तं सदहाहि णं तुमं पएसी तहेव) आ प्रमाणे छे प्रदेशिन् एव
पणु अप्रतिहत गनियुडत डोय छे ओथी ते पृथिवीने, शिलाने छेदीने ण्डारना
प्रदेशथी अंठरना प्रदेशमां पेसी नय छे आ डारणुथी छे प्रदेशिन् ! तमे
भारी वात पर विश्वास डरे डे एव लीन्न छे अने शरीर लीन्न छे. ॥ सू. ४ ॥

टीकार्थ-स्पष्ट न आ सूत्रने भावार्थ आ प्रमाणे छे डे नेम छिद्र वगेरेथी
सहित दोषां उमां अग्नि ण्डारथी तेना दरेडे दरेडे प्रदेशमा प्रविष्ट थं नय छे

प्रदेशान् मन्तः—आप्तोऽभवत्प्रदेशे अनुपरिच्छेदं न्यात् ? प्रदेशा ह्यपि
 नायमर्थः समर्थः नास्ति तत्र त्रिद्रादिफलमर्थः । कैशोपार—रे प्रदेशिन ! एव
 मेव—त्रिद्रादि विनाऽपि तज्ज्योतिषोऽप्योऽन्वयानुपरोपदेव जीरोऽपि अति-
 हतगतिः अहुण्डितगतिः पृथिवी भिन्ना भिन्ना—मन्तं भिन्ना वाप्यात् —यदिः
 प्रदेशान् प्रन्तानुपरिगति, तन्-तन्मात् हाप्यात् हे प्रदेशिन ! एवं श्रुदेदि
 मद्भवनं विभक्तिं त्वैव पूर्णोक्तमेव अन्यो जीरोऽन्वयः त्रीमन् नो तज्जीरः स-
 जरीरम्' इति ॥ सू० १३८ ॥

मन्तम्—तत्र णं पण्सी गया केसिकुमारमणं एवं वयासी
 —अतिथ णं भन्ते । एना पण्णाओ उवमा डमेण पुण मे कारणेणं
 नो उवागच्छड. अतिथ णं भन्ते ! से जहानामण केडपुगिमे तरणे
 जाय तिउणमिपोवगण पभु पंच कडगं निमिगित्तण ! हेत पण !
 जड णं भन्ते ! से चैव पुगिमे वाले जाय मंदविन्नाणे पण् होजा
 पच कंडगं निमिगित्तण, नो णं अहं सहेजा जहा—अन्नो जीवो
 तं चैव, जम्हा णं भन्ते ! से चैव पुगिमे वाले जाय मंदविन्नाणे
 णो पण पंच कंडयं निमिगित्तण तन्ना सुप्पट्टिना मे पण्णा
 जहा न जीरो तं चैव ॥ सू० १३९ ॥

आप्तः—अ. अत्र प्रदेशीयत्वात् तयो ह्यन्वयत्वात् तस्यैव तदा तदिति ॥ ८

મદન્ત ! ઇષા પ્રજ્ઞાત ઉપમા અનેન પુનઃ યે કારણેન નો ઉવાગચ્છતિ, અસ્તિ
 ચલુ મદન્ત ! સ યથાનામકઃ કશ્ચિત્ પુરુષઃ તરુણઃ યાવત્ નિપુણશિલ્પો-
 પગતઃ પ્રભુઃ । પઞ્ચ કાણ્ડકં નિસ્રપ્દુમ્ ? હન્ત પ્રભુ ! યદિ ચલુ મદન્ત ! સ
 એવ પુરુષો ચાલઃ યાવત્ મન્દવિજ્ઞાનઃ પ્રભુર્મવેત્ પઞ્ચકાણ્ડકં નિસ્રપ્દુમ્, તદા
 ચલુ અહં શ્રદ્ધયાં યથા-અન્યો જીવઃ તદેવ, યસ્માત્ ચલુ મદન્ત ! સ

કેશીકુમાર શ્રમણ સે એસા કહા (અત્થિ ણં મંતે ! એસા પળ્લાઓ ઉવમા) હે
 મદન્ત ! યહ જો આપને ઉપમા દી હૈવહ કેવલ બુદ્ધિવિશેષ સે જન્ય હોને કે
 કારણ વાસ્તવિક નહીં હૈ (इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ) ક્યોં કિ જો
 કારણ મૈં પ્રદર્શિત કર રહા હૂં ઉસ્સસે મેરે હૃદય મેં જીવ ઓર શરીર કા
 ભેદ જમતા નહીં હૈ । (अत्थि णं मंते ! से जहा नामए केइ पुरिसे तरुणे
 जाव निउणसिप्पोवगए पभू पंचकंडगं निसिरित्तए) વહ કારણ એસા હૈ-હે
 મદન્ત ! જૈસે કોહ યુવાપુરુષ હો યાવત્ વહ નિપુણશિલ્પોપગત હો, તો વહ
 પાંચવાળોં કો એક હી સામ પાંચ લક્ષ્યોંકો વેધને કે લિયે છોડને મેં સમર્થ
 હો સકતા હૈ ન ? (हंता पभू) કેશીકુમાર શ્રમણને કહા--હાં હો સકતા
 હૈ । (जइ णं मंते ! से चेव पुरिसे वाले जाव मंदविन्नाणे पभू होज्जा पंच
 कंडगं निसिरित्तए) अब यदि वही पुरुषवाल, यावत् मन्दविज्ञान वाला
 अपनी अवव्यापन्न हुआ पांचकाण्डकको-पांचवाणों को छोडने के लिये
 समर्थ हो जावे तो मैं आपके वचनों को श्रद्धा के विषयभूत बनाउं और
 यह मानलूं कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, जीव शरीर रूप नहीं

પ્રદેશી રાજાએ કેશીકુમારશ્રમણને આ પ્રમાણે કહ્યું (अत्थि णं मंते ! एसा पण्णाओ
 उवमा) હે મદન્ત ! આ પ્રમાણે જે તમોએ ઉપમા આપી છે. તે માત્ર બુદ્ધિ(વિશેષ
 જન્ય હોવાથી વાસ્તવિક નથી. (इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ) કેમકે
 જે કારણ હું બતાવી રહ્યો છું તેથી મારા હૃદયમાં ભવ અને શરીરની ભિન્નતાની વાત
 ભામ હી નથી. (अत्थि णं मंते ! से जहानामए केइपुरिसे तरुणे जाव
 निउणसिप्पोवगए पभू पंच कंडगं निसिरित्तए ते कारणु आ प्रमाणे छ. हे
 महंत ! नेम कोइ युवक होय यावत् ते निपुणशिल्पोपगत होय, तो ते पांच बाणोने
 ओडी साथे पांच लक्ष्योतुं वेधन करवाभां समर्थ थछ शकैछे?(हंता पभू) કેશીકુમાર
 શ્રમણે કહ્યું હાહ, થઈ શકે છે. (जइ णं मंते ! से चेव पुरिसे वाले जाव
 मंदविन्नाणे पभू होज्जा पंच कंडगं निसिरित्तए) હવે જે તે યુવક બાળ, યાવત્
 મન્દવિજ્ઞાનવાળો પોતાની અવસ્થાપન્ન થયેલ પાંચકાંડકોને-પાંચ બાણોને છોડવામાં
 સમર્થ થઈ બાલ્ય તો હું તમારા વચનોને શ્રદ્ધા યોગ્ય માની શકું તેમ છું અને આ

एव पुरुषो बालः यावत् मन्दविज्ञानो नो प्रभुः पञ्चकाण्डं नित्तु-दुत् तस्मात्
सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः तदेव ॥ सू० १३९ ॥

टीकार्थ—‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि ।

ततः—तदनन्तरं खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणम् एवम्—अनेन
प्रकारेण अवादीत्—हे भदन्त! एषा-इयम् उपमा—स्वापूर्वइयम् प्रज्ञातः=बुद्धि-
विशेषाद् अस्ति न तु वास्तविकी यतः अनेन—वक्ष्यमाणेन पुनः कारणेन
जीवशरीरयोर्भेदो मे-मम हृदये नोपागच्छति-न संगच्छते न स्वीकार-
योग्यतामर्हति । तदेव दर्शयति—हे भदन्त ! अस्ति—भवेत् खलु स यथा
नामकः अनिर्दिष्टनामा कश्चित् पुरुषः कीदृशः? इत्याह—तरुणः—युवा यावत्
—यावत्पदेन—“युगवान् बलवान् अल्पातङ्कः स्थिरसंहननः स्थिराग्रहस्तः प्रति-

है, और शरीर जीवरूप नहीं है। अतः हे भदन्त ! जिस कारण से वह
तरुणादि विशेषणों वाला पुरुष जब बाल यावत् मन्दविज्ञानवाला होता
है, तब पांच वाणों को छोड़ने के लिये समर्थ नहीं होता है इस कारण
से मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जीव और शरीर एक है, जो जीव है, वही शरीर
है और जो शरीर है वही जीव है सुप्रतिष्ठित है।

टीकार्थ—बाद में प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा है
भदन्त ! आपने जो अभी उपमा देकर जीव और शरीर की पृथक्ता
प्रकट की है सो जब मैं अपनी इस बात का विचार करता हूँ तब यह
उनकी पृथक्ता मेरे चित्त में नहीं जमती है, वह बात इस प्रकार
से है—जैसे कोई एक तरुण पुरुष हो और यावत् वह निपुणशिल्पोपगत
हो यहाँ यावत् पद से ‘युगवान् बलवान्. अल्पातङ्कः स्थिर संहननः स्थिरा-

वात पर विश्वास करी लउं के एव भिन्न छे अने शरीर भिन्न छे. एव शरीर
इय नथी अने शरीर एव इय नथी. येथी हे लदंत ! ने कारणुने लीधे ते तरुषु
वजेरे विशेषणोथी युक्त युवक न्यारे भाण यावत् मंदविज्ञानवाणो होय छे, त्यारे ते
पांय भाणोने छोडवामा समर्थ होतो नथी. आथी न भारी एव अने शरीर अेक छे.
ने एव छे तेन शरीर छे अने ने शरीर छे ते न एव छे आ प्रतिज्ञा सुप्रतिष्ठित छे.

टीकार्थ—त्यार पछी प्रदेशी राजन्थे केशीकुमार श्रमणुने आ प्रमाणे कथुं छे
लदंत ! तमोथे ने उभया उपमा वडे एव शरीरन्दी पृथक्ता प्रकट करी छे ते विधे
हुं न्यारे भारा मनमा विचार करुं छुं त्यारे आ वात भारा मनमा गराणर न्ती
नथी. केभडे नेभ केछ अेक तरुषु पुरुष थाय अने यावत् ते निपुण शिल्पोपगत थाय
अडी ‘यावत्’ पदथी ‘युगवान्, बलवान्, अल्पातङ्कः, स्थिरसंहननः, स्थिरा-

पूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः घननिचितवृत्तवलितस्कन्धः चर्मैष्टकद्रुघण-
मुष्टिकसमाहृतगात्रः उरस्यबलसमन्वागतः तलयमलयुगलवाहुः लङ्घनप्लवन
जवनप्रमर्दनसमर्थः लेकः दक्षः पृष्ठः कुशलः मेधावी इत्येतेषां पदानां
सङ्ग्रहः, निपुणशिल्पांगनः, एतद्व्याख्या सप्तमसूत्रतो बोध्या । एतादृशः
पुरुषः पञ्चकाण्डकं बाणपञ्चकं युगपत् पञ्चलक्ष्यवेधनाय निस्रष्टं-प्रक्षेतुं-
प्रभुः-समर्थो भवेत् ? इति प्रदेशिपश्चः केशीमाह-हे राजन् ! हन्त ! प्रभुः
पञ्चकाण्डकं प्रक्षेतुं स समर्थो भवेत् ? प्रदेशी कथयति हे भदन्त ! यदि चेत् खलु

ग्रहस्तः, प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, घननिचितवृत्तवलितस्कन्धः,
चर्मैष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहृतगात्रः, उरस्यबलसमन्वागतः तलयमलयुगल-
वाहुः, लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः लेकः, दक्षः, पृष्ठः, कुशलः, मेधावी”
इस पाठ का संग्रह हुआ है । इन पदों की व्याख्या सातवें सूत्रमें की
जा चुकी है अतः वहीं से इसे देखना चाहिये. ऐसा वह पुरुष पांच
वाणों को एक साथ पांचलक्ष्यों को वेधन करने के लिये हे भदन्त !
छोड़ने में समर्थ हो सकता है न ? केशीकुमार श्रमणने तब कहा हे राजन् !
ऐसा पूर्वोक्त विशेषणों वाला वह युवा पुरुष एक साथ पांचवाणों को
छोड़ने में समर्थ हो सकता है परन्तु हे भदन्त ! जब वही पुरुष बाल
यावत् मन्दविज्ञानवाला होता है तब पांच वाणों को एक साथ पांचलक्ष्यों
को वेधन करने के लिये छोड़ने में समर्थ नहीं होता है. यदि वह ऐसा
करने में समर्थ होता तो मैं आपकी इस बातको कि जीव भिन्न है
और शरीर भिन्न है तथा जीव शरीररूप नहीं है शरीर जीवरूप नहीं

ग्रहस्तः, प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, घननिचितवृत्तवलितस्कन्धः,
चर्मैष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहृतगात्रः, उरस्यबलसमन्वागतः तलयमल
युगलवाहुः, लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः, लेकः, दक्षः पृष्ठः कुशलः
मेधावी ” आ पाठने संग्रह थये छे. आ जधा पहोनी व्याख्या सातमा सूत्रमां
उरवामा आवी छे. ओथी जिज्ञासुओ त्याथी जाली देवा प्रयत्न करे. ओवा ते युवक
ने पात्र जालोने ओडी साथे ओकज लक्ष्यपर छोडीने छे अदंत शुं ते लक्ष्यवे-
धनमां सक्षण थये ? केशीकुमार श्रमणे आ सांभजीने उहुं के राजन् ओवा ते
पूर्वोक्त विशेषणोथी युक्त ते युवक ओडी साथे पात्र जालोने छोडवामां समर्थ थर्थ
थथे. पत्तु छे अदंत ! ज्यारे ते युवक जाल यावत् मट विज्ञान संपन्न होय छे.
त्यारे ते पात्र जालो वडे ओडी साथे पात्र लक्ष्येतुं वेधन उरवामां सक्षण थये
नडि. जे ते ओपुं करी थकतो होय तो हुं तमारी एव भिन्न छे अने शरीर
भिन्न छे तेभज एव शरीर इय नथी अने शरीर एवइय नथी,

स एवपुरुषः बालः-यावत् यावत्पदेन-अयुगवान्, अवलवान्, सातङ्कः अस्थिर-
संहननः, अस्थिराग्रहस्तः अप्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः अघन
निचितवृत्तवलितस्कन्धः, अचर्मेष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहतगात्रः उरस्यबलाऽसम-
न्वागतः अतलयमलयुगलबाहुः लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनासमर्थः अच्छेकः अद-
क्षः अपृष्ठः अकुशलः अमेधावी' इत्येषां संग्रहो बोध्यः, एषामपि व्याख्या
वैपरीत्येन सप्तममूत्रतो बोध्या, मन्दविज्ञानः-अल्पकौशलः, एतादृशः स यदि
पञ्चकाण्डकं निस्सष्टुं-प्रक्षेप्तुं प्रभुः-समर्थो भवेत् तदा खलु अहं श्रद्धध्यां-
तव वचनं श्रद्धाविषयीकुर्याम्, यथा-अन्यो जीवः तदेव-पूर्वोक्तमेव-अन्यच्छ-
रीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति, । हे भदन्त ! यस्मात् कारणात्
खलु यस्तरुणादिविशेषणविशिष्टः स एव यदा बालः यावद् मन्द
विज्ञानो भवेत् तदा न पञ्चकाण्डकं निस्सष्टुं प्रभुः-समर्थो भवति तस्मात्
सुप्रनिष्ठिता-समुचिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः, तदेव-पूर्वोक्तमेव तच्छरीरम्
नो अन्यो जीवः अन्यःछरीरम् इति ॥ सू० १३९ ॥

हे श्रद्धा का विषय कर लेता "बालः यावत्" में यावत् पद से "अयु-
गवान्, अवलवान्, सातङ्कः अस्थिरसंहननः, अस्थिराग्रहस्तः, अप्रतिपूर्ण
पाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः, अघननिचितवृत्तवलितस्कन्धः, अचर्मेष्टकद्रुघण-
मुष्टिकसमन्वागतगात्रः, उरस्यबलासमन्वागतः, अतलयमलयुगलबाहुः,
लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दना समर्थः अच्छेकः, अदक्षः, अपृष्ठ, अकुशलः, अमेधावी'
इनपदों का संग्रह हुआ है इसकी व्याख्या सातमें सूत्र से निषेधार्थपरक
रूप में करनी चाहिये. तात्पर्य कहने का इस सूत्र का यही है कि उस युवा
पुरुष का और बाल पुरुष का वही शरीर और वही जीव है उसमें कोई
भिन्नता नहीं है, भिन्नता केवल उपकरणों में है क्यों कि जो बालपुरुष

आ वात पर विधास करी लेत. 'बालः यावत्' भां 'यावत्' पदधी 'अयुगवान्,
अवलवान्, सातङ्कः, अस्थिरसंहननः, अस्थिराग्रहस्तः, अप्रतिपूर्णपाणिपाद-
पृष्ठान्तरोरुपरिणतः, अघननिचितवृत्तवलितस्कन्ध. अचर्मेष्टकद्रुघणमुष्टिक-
समन्वागतगात्रः, उरस्यबलासमन्वागतः, अतलयमलयुगलबाहुः, लङ्घन-
प्लवनजवनप्रमर्दनासमर्थः, अच्छेकः अदक्षः, अपृष्ठः अकुशलः, अमेधावी
"आ पदोनो संग्रह धयो छि. आ पदोनो व्याख्या सातभा सूत्रभांथी निषेधार्थक-
इये करी लेधये. मतलब आ प्रभाछे छे ते युवा पुइपने तेमन् आल पुइपने
तेन् एव छि. तेनां केध लिन्नता नथी. लिन्नता तो छे इकत उपकरेभां ७.

मूलम—तए णं केसीकुमारसमणे पएस्सिं रायं एवं वयासी
से जहानामए केइपुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए णवएणं
धणुणा नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचकंडग निसिरि-
त्तए ? ता पभू ! सो चैव णं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए
कोरिहियाए धणुणा कोरिहियाए जीवाए कोरिहियाए इसुणा पभू
पंचकंडगं णिसिरित्तए ? णो इणट्टे समट्टे । कम्हा ? भंते ! तस्स
पुरिसस्स अपज्जत्ताइं उवगरणाइं हवंति, एवामेव पएसी !
सो चैव पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे अपजत्तोवगरणे, णोपभू पंच-
कंडयं निसिरित्तए, तं सदहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो
तं चैव ५ ॥ सू० १४० ॥

छावा—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्
स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः नवकेन
धनुषा नविकया जीवया नवकेन इषुणा प्रभुः पञ्चकाण्डकं निस्रब्दुम् ?

या वही तो युवा हुआ है. अतः उस जीव में और उसके शरीर में
भिन्नता कैसे मानी जा सकती है ॥ सू० १३९ ॥

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे पएस्सिं रायं एवं वयासी) इसके
बाद केशीकुमारश्रमणने (पएस्सिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से इस
प्रकार कहा (से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए) हे
भदन्त ! जैसे कोई युवा पुरुष हो और वह यावत् निपुण शिल्पोपगत हो
(णवएणं धणुणा नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचकंडगं निसिरित्तए)

केमके आते पुरुष होते तेज युवा थये छ. अथी ते एवमां अने तेना शरीरमा
भिन्नता केम करीने मानी शक्य ॥सू० १३९॥

‘त एणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एणं केसीकुमारसमणे पएस्सिं रायं एवं वयासी) त्थार
पछी केशी कुमार श्रमणे (पएस्सिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजने आ प्रभाणे
अथुं. (से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए) हे भदत !
जेम केध युवा पुरुष होय अने ते यावत् निपुण शिल्पोपगत होय, (णवएणं धणुणा
नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचकंडगं निसिरित्तए) अथो ते

हन्त ! प्रभुः स एव खलु पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः जिर्णैः
धनुषा जीर्णया जीवया जीर्णेन इषुणा प्रभुः, पञ्च काण्डकं निस्सष्टुम् ।
नायमर्थः सः मर्थः । कस्मान् भदन्त । तस्य पुरुषस्य अपर्याप्तानि उपकरणानि
भवन्ति, एवमेव प्रदेशिन । स एव पुरुषः बालो यावत् मन्दविज्ञानः अपर्या-
प्तोपकरणः नो प्रभुः पञ्चकाण्डकं निस्सष्टुम् तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् !
यथा अन्यो जीवस्तदेव ५ ॥ सू० १४० ॥

ऐसा वह पुरुष नवीन धनुष से, नवीन प्रत्यश्चा से, नवीन बाण से पांच
बाणों को एक साथ पाच लक्ष्यों का वेधन करने लिये छोड़ने में समर्थ
है क्या ? (हंता प्रभु) तब प्रदेशीने कहा—हां, समर्थ होना है (सो चेवणं
पुरिसे तरुणे जाव निउणसिःपोवगए कोरिळिएणं धणुणा कोरिळिए जीवाए,
कोरिळिएणं इसुणा पभू पंचकंडगं निस्सिरितए) पुनः केशीने पूछा—हे
प्रदेशिन् ! यदि वही युवा पुरुष यावत् निपुणशिल्पोपगत बना हुआ जीर्ण
धनुष्य से, जीर्ण प्रत्यञ्चासे जीर्ण बाण से पांच बाणों को छोड़ने के
लिये समर्थ हो सकता है क्या ? प्रदेशीने कहा—(णो इणट्टे समट्टे) हे
भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । केशीने पूछा—(कम्हा) हे प्रदेशिन् !
इसमें क्या कारण है कि जिससे यह अर्थ समर्थ नहीं है । (भंते ! तस्स
पुरिसस्स अपज्जत्ताइं उवगरणाइं हवंति) प्रदेशी राजाने कहा
हे भदन्त ! उस पुरुषके उपकरण अपर्याप्त हैं (एवामेव पएसी ! सो चेव
पुरिसे थाले जाव मंदविन्नाणे अपज्जात्तोवगरणे, णो पभू पंचकंडयं निस्सि-
रित्तए, तं मदहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो तं चेव ५)

पुत्र्य शुं नवीन धनुष वडे, नवीन बाणु वडे पाच बाणुने ऐरी साथे पाच लक्ष्यो
ना वेधन भाटे छडवाभा समर्थ छाय छे ? (हंता प्रभु) त्वारे प्रदेशिन् राज्ञे
उल्लु-डाए, समर्थ छाय छे (सो चेव णं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिपोवगए
कोरिळिएणं धणुणा कोरिळिएणं जीवाए, कोरिळिएणं इसुणा पभू पंच
कंडगं निस्सिरित्तए) इरी उेशीये प्रश्न उथो डे छे प्रदेशिन् ! जे ते युवा पुरुष
यावत् निपुणशिल्पोपगत थधने उल्लु धनुषवी, उल्लु प्रत्यञ्चाथी, उल्लु बाणुथी पाच
बाणुने छडवाभा समर्थ थध थडे तेम छे ? प्रदेशीये उल्लु (णो इणट्टे समट्टे)
छे लहत । आ अर्थ समर्थ नथी. (भंते ! तस्स पुरिसस्स अपज्जत्ताइं उवग
रणाइं हवंति) प्रदेशी राज्ञे उल्लु छे लहत । ते पुत्र्यना उपकरणे पर्याप्ति नवी.
(एवामेव पएसी ! सो चेव पुरिससे थाले जाव मंदविन्नाणे अपज्जत्तोवगरणे,
णो पभू पंच कंडयं निस्सिरित्तए, तं मदहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो
जीवो तं चेव ५) त्वारे उेशीये उल्लु—डे आ प्रभाणे ५ छे प्रदेशिन् ! ते पुत्र्य

मूलम्—तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी
से जहानामए केइपुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए णवएणं
धणुणा नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचकंडग निसिरि-
त्तए ? ता पभू ! सो चैव णं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए
कोरल्लिएणं धणुणा कोरिल्लियाए जीवाए कोरिल्लिएणं इसुणा पभू
पंचकंडगं णिसिरित्तए ? णो इणट्टे समट्टे । कम्हा ? भंते ! तस्स
पुरिसस्स अपज्जत्ताइं उवगरणाइं हवंति, एवामेव पटंसी !
सो चैव पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे अपजत्तोवगरणे, णोपभू पंच-
कंडयं निसिरित्तए, तं सदहाहि णं तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो
तं चैव ५ ॥ सू० १४० ॥

छावा—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्
स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः नवकेन
धनुषा नविक्रया जीवया नवकेन इषुणा प्रभुः पञ्चकाण्डकं निस्रष्टुम् ?

या वही तो युवा हुआ है. अतः उम जीव में और उसके शरीर में
भिन्नता कैसे मानी जा सकती है ॥ सू० १३९ ॥

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) इसके
बाद केशीकुमारश्रमणने (पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से इस
प्रकार कहा (से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए) हे
भदन्त ! जैसे कोई युवा पुरुष हो और वह यावत् निपुण शिल्पोपगत हो
(णवएणं धणुणा नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचकंडगं निसिरित्तए)

डेभडे आल पुश्य डतो तेज युवा थये छ अथी ते एवमा अने तेना शरीरमां
भिन्नता डेम डरीने मानी थडाय. ॥सू० १३९॥

‘त एणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त एणं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) त्पार
पडी केशी कुमार श्रमणे (पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे
डहुं, (में जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए) डे लदंत !
जेम डेअ युवा पुश्य डोय अने ते यावत् निपुण शिल्पोपगत डोय, (णवएणं धणुणा
नवियाए जीवाए नवएणं इसुणा पभू पंचकंडगं निसिरित्तए) अये ते

हन्त ! प्रभुः स एव खलु पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः जीर्णेन धनुषा जीर्णया जीवया जीर्णेन इषुणा प्रभुः, पञ्च काण्डकं निस्रष्टुम् । नायमर्थः सः मर्थः । कस्मान् भदन्त । तस्य पुरुषस्य अपर्याप्तानि उपकरणानि भवन्ति, एवमेव प्रदेशिन । स एव पुरुषः बालो यावत् मन्दविज्ञानः अपर्याप्तोपकरणः नो प्रभुः पञ्चकाण्डकं निस्रष्टुम् तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् ! यथा अन्यो जीवस्तदेव ५ ॥ सू० १४० ॥

ऐसा वह पुरुष नवीन धनुष से, नवीन प्रत्यश्चा से, नवीन बाण से पांच बाणों को एक साथ पाच लक्ष्यों का वेधन करने लिये छोड़ने में समर्थ है क्या ? (हंता प्रभु) तब प्रदेशीने कहा--हां, समर्थ होता है (सो चेवणं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिःपोवगए कोरिळिएणं धणुणा कोरिळिए जीवाए, कोरिळिएणं इसुणा पभू पंचकडगं निसिरितए) पुनः केशीने पूछा--हे प्रदेशिन् ! यदि वही युवा पुरुष यावत् निपुणशिल्पोपगत बना हुआ जीर्ण धनुष्य से, जीर्ण प्रत्यश्चासे जीर्ण बाण से पांच बाणों को छोड़ने के लिये समर्थ हो सकता है क्या ? प्रदेशीने कहा--(णो इणट्टे समट्टे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । केशीने पूछा--(कम्हा) हे प्रदेशिन् ! इसमें क्या कारण है कि जिससे यह अर्थ समर्थ नहीं है । (भंते ! तस्स पुरिसस्स अपज्जत्ताडं उवगरणाइं हवंति) प्रदेशी राजाने कहा हे भदन्त ! उस पुरुषके उपकरण अपर्याप्त हैं (एवामेव पएसी ! सो चेव पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे अपज्जात्तोवगरणे, णो पभू पंचकंडयं निसिरित्तए, तं सद्दहादि णं तुमं पएसी ! जहा-अन्नो जीवो तं चेव ५)

पुरुष शुं नवीन धनुष वडे, नवीन बाणु वडे पाच बाणोने ज्येडी साथे पाच लक्ष्यो ना वेधन भाटे छेडवामां समर्थ होय छे ? (हंता प्रभु) त्पारे प्रदेशिन् राज्ञे उधु-डाउ, समर्थ होय छे (सो चेव णं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिःपोवगए कोरिळिएणं धणुणा कोरिल्लयाए जीवाए, कोरिळिएणं इसुणा पभू पंच कंडगं निसिरित्तए) इरी केशीजे प्रश्न उथो डे डे प्रदेशिन् ! जे ते युवा पुरुष यावत् निपुणशिल्पोपगत बधने उधु धनुषथी, उधु प्रत्यश्चाथी, उधु बाणथी पाच बाणोने छेडवामा समर्थ थर थडे तंम छे ? प्रदेशीजे उधु (णो इणट्टे समट्टे) डे लहत । आ अर्थ समर्थ नथी. (भंते ! तस्स पुरिसस्स अपज्जत्ताडं उवगरणाइं हवंति) प्रदेशी राज्ञे उधु डे लहत । ते पुउपत्ता उपज्जत्तो पयांसि नथी. (एवामेव पएसी ! सो चेव पुरिसे बाले जाव मंदविन्नाणे अपज्जत्तोवगरणे, णो पभू पंच कंडयं निसिरित्तए, तं सद्दहादि णं तुमं पएसी ! जहा-अन्नो जीवो तं चेव ५) त्पारे केशीजे प्रश्न-डे आ प्रमाणे ४ डे प्रदेशिन् । ते पुउप

‘तएण केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

टीका-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवमवादीत्-स यथानामकः कश्चित्-कोऽपि पुरुषः-तरुणः यावत्-यावत्पदेन-“युगवान् बलवान् अल्पपातङ्कः स्थिराग्रहस्तः प्रतिपूर्णपाणिपादपृष्ठान्तरोरुपरिणतः घननिचितवृत्तवलितस्कन्धः चर्मैष्टकद्रुघणमुष्टिकसमाहतगात्रः उरस्यबलसमन्वागतः तलयमलयुगलचाहुः लङ्घनप्लवनजवनप्रमर्दनसमर्थः छेकः दक्षः

तब केशीने कहा-इसी तरह से प्रदेशिन । वही पुरुष जब बाल यावत् मन्दविज्ञानवाला होता है तब वह अपर्याप्त उपकरणवाला होता है अतः पांच वाणों को प्रक्षिप्त करने के लिये समर्थ नहीं होता है । इस कारण हे प्रदेशिन ! तुम श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्. है जीव शरीररूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं हैं । ५ ।

टीकार्थ—तब केशीकुमार श्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा-जैसे अनिर्ज्ञात नामा कोई एक पुरुष हो, जो वह तरुण हो यावत्-युगवान् हो, बलवान् हो, अल्प आतङ्कवाला हो, स्थिर अग्रहाथवाला हो, पाणि, पाद, पृष्ठान्तर एवं उरु ये सब जिसके प्रतिपूर्ण हो, और परिणत विवेकशील एवं वयस्क हो. कंधे दोनों जिसके खूब भरे हुए हों गोल हों, शरीर जिसका चर्मैष्टक आदि से समाहत होने से विशेषरूप में पुष्ट शारीरिक बल एवं मानसिक बल जिसका बड़ा चढा हो, ताडवृक्ष के जैसे जिसके दोनों बाहू लम्बे हों, लांघने में, उछलने में, कूदने में दौड़ने

न्यारे आण यावत् मंद विज्ञानवाणो होय छे त्यारे ते अपर्याप्त उपकरणवाणो होय छे. ओथी न ते पांच आणोने प्रक्षिप्त करवाभां समर्थ होतो नथी. आथी छे प्रदेशिन ! तमे भारी वात पर विश्वास करे के एव सिन्न छे अने शरीर सिन्न छे एव शरीररूप नथी अने शरीर एवरूप नथी. ५।

टीकार्थः—त्यारे केशीकुमार श्रमणे प्रदेशी राजने आ प्रमाणे कहुं के-जेम केध अनिर्ज्ञातनामा केध ओक पुरुष होय, जे तइणु होय यावत्-युगवान् होय, बलवान् होय, अल्पपातङ्कवाणो, स्थिर अग्रहस्तवाणो होय, पाणि (हाथ) पाद (पग) पृष्ठान्तर अने उरु आ भधा जेना प्रतिपूर्ण होय अने परिणत-विवेक युक्त अने वयस्क होय, अने अलाओ जेना पुष्ट होय, गोल होय, जेतुं शरीर चर्मैष्टक वगेरथी समाहत होवाथी विशेषरूपथी पुष्ट होय, जेतुं शरीर तेमन मननी शक्ति वधारे परिपुष्ट थयेली होय. ताडवृक्ष जेवा जेना अने होथे लाणा होय, आणंगवामा उछलवामा, कूदकामा

प्रष्ठः कुशलः मेधावी" इत्येषां पदानां सग्रहः एषां व्याख्या सप्तममूत्रे कृता । निपुणशिल्पोपगतः-सम्यग्बिज्ञानसमन्वितः एतादृशः पुरुषः नवकेन-नूतनेन धनुषा, नविकया-नूतनया जीवया-धनुर्गुणेन चनुर्द्वरिकयेत्यर्थः नवकेन-नूतनेन इषुणा-वाणेन प्रभुः-समर्थः पञ्चकाण्डकं-वाणपञ्चकं युगपत् पञ्चलक्ष्यवेधनाय निस्सष्टुं-पक्षेप्तुम् ? । प्रदेशीप्राह-हन्त ! प्रभुः समर्थः । केशी कथयति-यदि स एव खलु पुरुषस्तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः 'कोरिल्लणं' इति देशी शब्दो जीर्णार्थकस्तेन जीर्णेन-घुणखादितेन धनुषा चापेन जीर्णया-प्रत्यञ्चया धनुर्गुणेनेत्यर्थः जीर्णेन इषुणा-वाणेन पञ्चकाण्डकं-काण्डकपञ्चकं निस्सष्टुं-पक्षेप्तुं प्रभुः-समर्थः स्यात् ? इति केशिपञ्चः, प्रदेशी-उत्तग्यति-नायमर्थः समर्थः, केशी कारणं पृच्छति-कस्मात्कारणात्

आदि क्रिया में जो बराबर समर्थ हो, छेक हो, दक्ष हो प्रष्ठ हो, कुशल हो मेधावी हो और निपुणशिल्पोपगत-सम्यग्ज्ञान समन्वित हो । इन युगवान् आदि पदों की व्याख्या सातवें सूत्र में की गई है. सो वहीं से जान लेना चाहिये ऐसा वह पुरुष नवीन धनुष से, नवीन प्रत्यञ्चा से-धनुषकी डोरीसे एवं नवीन वाण से हे प्रदेशिन् क्या वाण पंचक को युगपत् पांच लक्ष्यों का वेधन करने के लिये छोड़ सकता है ? तब प्रदेशीने कहा-हां, भदन्त ! छोड़ सकता है । पुनः केशीने उससे पूछा-यदि वही पुरुष जो कि तरुणादि पूर्वोक्त विशेषणोंवाला प्रकट किया गया है, कोरिल्ल-जीर्ण-घुण खादित ऐसे धनुष से, जीवा-प्रत्यञ्चा से, तथा जीर्ण वाण से वाण पंचक को छोड़ने में समर्थ हो सकता है ? तब प्रदेशीने कहा-हे भदन्त ! ऐसी स्थिति में वह इस प्रकार से करने में समर्थ नहीं हो सकता है. इस

भारवाभा, होडवाभा वगेरे क्रियाओभा के अराणर समर्थ होय, छेक होय, दक्ष होय प्रष्ठ होय, कुशल होय, मेधावी होय अने निपुण शिल्पोपगत-सम्यग्ज्ञानयुक्त होय आ युगवान् वगेरे पदोनी व्याख्या सातमा सूत्रमा करवाभा आवी छे. निज्ञासुओओ त्याधी आणुवा प्रयत्न करवो ओछओ. ओवो ते पुरुष नवीन धनुषधी, नवीन प्रत्य-ञ्चाधी, धनुषनी डोरीधी अने नवीन आणुधी हे प्रदेशिन् । शुं आणु पंचकने युगपत् पांच लक्ष्योना वेधन भाटे छाडी शक्ये । त्यारे प्रदेशीओ कहुं-हा लहत । छाडी शक्ये. डूरी केशीओ तेने प्रश्न करता कहुं-ओ तेन् पुत्रप-के के तरुण वगेरे पूर्वो-क्त विशेषणोवाणो छे, 'कोरिल्ल'-ओहुं-ओधेध वडे अवायेल धनुषधी 'जीवा'-प्रत्य-ञ्चाधी तेमन् ओहुं आणुधी आणु पंचकने छाडवाभा समर्थ वध शक्ये तेम छे ? त्यारे प्रदेशीओ कहुं-हे लहत । ओवी परिस्थितिमां ते आ प्रमाणे करवाभां समर्थ वध शक्ये नहि. आ प्रमाणे तेना अन्तामर्थ्यनुं शरवु शुं डार्थ शक्ये !

खलु सोऽर्थो न समर्थः ? प्रदेशो माह-भदन्त ! तस्य-पूर्वोक्तपुरुषस्य उपकरणानि-धनुरादि साधनानि अपर्याप्तानि जीर्णत्वादसमर्थानि भवन्ति, एवमेव-उक्तप्रकारेणैव हे प्रदेशिन् ! स एव पुरुषः बाल यावत्-यावत्पदेन अयुगवानित्यादीमामनन्तरसूत्रे संगृहीतानां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, तदर्थस्तु वैपरीत्येन सप्तमसूत्रे प्रतिपादित स्ततोऽवसेयः । अन्वविज्ञानः-अल्पविज्ञानयुक्तः अत एव अपर्याप्तो करणः-अपर्याप्तम्-असमर्थम्-उपकरणम् शरीरेन्द्रियबलबुद्ध्यादिरूपं साधनं यस्य स तथा, एतादृशःपुरुषः पञ्चकाण्डकं निस्सष्टुं-प्रक्षेप्तुं नो प्रमुः-समर्थो न भवति, तत्-तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन् । त्वं श्रद्धेहि यथा अन्यो जीवः तदेव-पूर्वोक्तमेव अन्यत् शरीरम् नो तज्जीवः स शरीरम् ॥ सू० १४०॥

मूलम्—तएणं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी-अत्थि णं भंते ! एसा पण्णाओ उवमा इमेण पुण कारणेणं नो

प्रकार की उनकी असमर्थता का क्या कारण है । तब प्रदेशीने उत्तर दिया भदन्त ! उस पूर्वोक्त विशेषण सम्पन्न पुरुषके उपकरण-धनुरादिसाधन जीर्ण होने के कारण अपर्याप्त-असमर्थ हैं । अब पुनः केशीश्रमण उससे पूछते हैं—हे प्रदेशिन् ! यदि तरुण पुरुष युगवान् आदि विशेषणों से रहित है अर्थात् बाल अयुगवान् आदि विशेषणों से विशिष्ट है और शरीर, इन्द्रिय, बल, बुद्धि आदि रूप साधन उसके अपर्याप्त हैं, तो क्या वह बाणपंचक को छोड़ने के लिये समर्थ हो सकता है? तब प्रदेशीने कहा- नहीं हो सकता है । तो हे प्रदेशिन् ! इससे तुम्हें यही मानना चाहिये शरीर भिन्न है और जीव भिन्न है शरीर जीवरूप नहीं है और जीव शरीररूप नहीं है ॥ सू० १४० ॥

त्यारे प्रदेशीये ज्वाण आपतां कहुं-डे लहत । ते पूर्वोक्त विशेषण युक्त पुश्पना उपकरणो-धनुष वगेरे साधनो-अर्थुं डोवाथी लक्ष्यवेधनमां असमर्थ छे । डवे इरी केशीश्रमणु तेने प्रश्न करे छे डे डे प्रदेशिन् ! ने ते तश्च पुश्प युगवान् वगेरे विशेषणोथी रक्षित अटवे डे णाण, अयुगवान् वगेरे विशेषणोथी युक्त डोय अने शरीर, इन्द्रिय, अण, बुद्धि वगेरे इय साधनो तेनी पासे अपर्याप्त डोय तो शुं ते पांच णाणो छोडीने लक्ष्यवेधन करी शकशे ? त्यारे प्रदेशीये कहुं-डे नडि, तो डे प्रदेशिन् ! अथी तमारे आ वान मानी देवी नेधये डे शरीर भिन्न छे अने अण भिन्न छे. शरीर अणइय नथी अने अण शरीरइय नथी. ॥ सू० १४० ॥

उवागच्छइ अत्थि णं भंते ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव
 निउणसिप्पोवगए पभू एगं महं अयभारगं वा तउयभारगं वा
 सीसगभारगं वा परिवहित्तए ? हंता पभू । से चैव णं भंते ! पुरिसे
 जुन्ने जराजज्जरियदेहे सिडिलवलिअतया विणट्टुगत्ते दंडपरिग्गहियग्ग-
 हत्थे पविरलपरिसडियदत्तसेठी आउरे किसिए पिवासिए दुब्बले
 लुहापरिकिलते नो पभू एगं महं अयभारगं वा जाव परिवहित्तए
 जइणं भंते ! सच्चैव पुरिसे जुन्ने जराजज्जरियदेहे जावं परिकिलंते
 पभू एगं महं अयभाहं वा जाव परिवहित्तए तो णं सद्दहेज्जा तहेव,
 जम्हा णं भंते ! से चैव पुरिसे जुन्ने जाव किलते नो पभू एगं
 महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा
 तहेव ॥ सू० १४१ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत्—अस्ति
 खलु भदन्त ! एषा प्रज्ञात उपमा अनेन कारणेन नो उपागच्छति, अस्ति
 खलु भदन्त ! स यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पो-

‘तण्णं पण्णी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तण्णं पण्णी राया) तव प्रदेशी राजाने (केशिकुमारसमणं
 एवं वयासी) केशिकुमारश्रमण से ऐसा कहा (अत्थि णं भंते ! एसा
 पण्णाओ उवमा इमेण कारणेणं नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह उपमा प्रज्ञा-
 सेजन्य है अतः राग्तविकी नहीं है, क्यों कि जो कारण मैं प्रदर्शित कर
 रहा हूँ उस कारण से मेरे हृदय में जीव और शरीर का भेद नहीं जम

‘तण्णं पण्णी राया’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तण्णं पण्णी राया) त्वारे प्रदेशी राजाने (केशिकुमारसमणं
 एवं वयासी) केशिकुमार श्रमणने आ प्रमाणे क्खु—(अत्थि णं भंते ! एसा पण्णा
 ओ उवमा इमेण पुण्ण कारणेणं ना उवागच्छइ) हे भदन्त ! आ उपमा
 प्रज्ञाधी जन्य छ अत्थी वस्तुविद नवी उवागे से अन्तु तु यथावी रथो छुं तेवी
 भात्ता इत्थिभां एव अनेन यथानमी विन्तता जम । तेवी (अत्थि णं भंते ! से जहा
 नामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणासिप्पोवगए पभू एगं महं अयभार

पगतः प्रभुः एकं महान्तमयोभारकं वा त्रपुकभारकं वा शीशकभारकं वा परिवोढुम् ? इन्त प्रभुः । स एव खलु भदन्त ! पुरुषः जीर्णः जराजर्जरित देहः शिथिलवलितत्वचाविणष्टगात्रः दण्डपरिगृहीताग्रहस्तः प्रविरलपरिश्रितदन्तश्रेणिः आतुरः कृशः पिपासितः दुर्बलः क्षुधापरिवलान्तः नो प्रभुरेकं पाता है (अतिथिं भंते ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसि एवोवणए पभू एगं महं अयभारगं वा तउयभारगं वा सीसगभारगं वा परिवहित्तए) वह कारण इस प्रकार से है—जैसे कोई एक पुरुष हो, और वह युवा यावत् निपुणशिष्योपगत हो, अर्थात् सम्यग्ज्ञान सम्पन्न हो तो ऐसा वह पुरुष विशाल लोहे के भार को, त्रपुक के भार को शीशा के भार को वहन करने में समर्थ हो सकता है न ? तव केशीकुमारश्रमण ने उससे (हंता, पभू) हां, प्रदेशिन् ! ऐसा वह पुरुष उस लोहे आदि के विशाल भार को वहन करने में समर्थ हो सकता है। (से चेत्रणं भंते ! पुरिसे जुन्ने जराजजरियदेहे सिधिलवलिअतयाविणष्टगत्ते दंडपरिगृहियग्गहत्थे) अब प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से फिर ऐसा पूछा—हे भदन्त ! वही पुरुष जब वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है और जरा से जर्जरित शरीर वाला होने के कारण शक्ति से शिथिल हो जाता है, त्वचा जिसकी झुर्रियों से युक्त हो जाती हैं और इसी से जिसको शारीरिक शक्ति प्रतिहत हो चुकी होती है, तथा दक्षिण हाथ में जो दण्डा लेकर चलने लगता है (पविरलपरिश्रितदन्तसेढी, आउरे,

वा तउयभारगं वा सीसगभारगं वा परिवहित्तए) ते ङारुण आ प्रमाणे छे जेम केअ ओक पुइष डोय अने ते युवा यावत् निपुण शिष्योपगत डोय ओटवे के सम्यक् ज्ञान युक्त डोय तो ओवे ते पुइष विशाल बोअंडना भारने त्रपुकना भारने शीशाना भारने वहन करवाभां शु समर्थ थछं शके छे ? त्थारे केशीकुमार श्रमणे तेने (हंता पभू) डाअ, प्रदेशिन् ओवे ते पुइष ते बोअंड वगेरेना विशाल भारने वहन करवाभा समर्थ थछं शके छे. (से चेत्रणं भंते ! पुरिसे जुन्ने जराजजरियदेहे सिधिलवलिअतयाविणष्टगत्ते दंडपरिगृहियग्गहत्थे) डवे केशी कुमारश्रमणे प्रदेशी राजने आ प्रमाणे प्रश्न कर्यो के छे लहत ! ते ज पुइष न्यारे धरडो थछं नय छे अने वृद्धावस्थाने लीधे जर्जरित शरीरवाणे डोवाथी अशक्त थछं नय छे, यामडी नेनी करयलीओथी युक्त थछं नय छे अने ओथी नेनी शारीरिक शक्ति प्रतिहत थछं नय छे तेमज्ज मण्णा डायमा ने लाडडी अलीने यालवा लागे छे. (पविरलपरिश्रितदन्तसेढी, आउरे, किन्नीए, पिपासिए, दुब्वले लुगा परिकिलंते नो पभू एगं महं अयभारगं वा जाव परिवहित्तए) नेनी इंत

महान्तमयोभारकं वा यावत् परिवोढुम्, यदि खलु भदन्त ! स एव पुरुषः
जीर्णः जराजर्जरितदेहः यावत् परिवलान्तः प्रभु, एकं महान्तमयोभारकं वा
यावत् परिवोढुम्, तदा खलु श्रद्ध्यां तथैव, यस्मात् खलु भदन्त ! स
एव पुरुषः जीर्णो यावत् क्लान्तः नो प्रभुरेकं महान्तमयोभारं वा यावत्
परिवोढुं तस्मात् सुप्रतिष्ठता मे प्रतिज्ञा तथैव ॥सू० १४१॥

फिसीए, पिवासिए, दुब्वले, लुहाकिलते पभू एग महं अयभारगं वा
जाव परिवहित्तए) दांतों की पक्ति जिसकी विरल हो जाती है, शक्ति
हो जाती है, तथा कास, श्वास आदि से जो सर्वदा पीडित बना रहता
है, और इसीसे जो कृश एवं अशक्त बन जाता है, उठ करके पानी पीने
तक भी शक्ति जिससे जाती रहती है, जो बिल्कुल शक्ति रहित हो
जाता है, भ्रुख से जो-पीडित बन जाता है ऐसा वह पुरुष एक विशाल
लोहे के भार को, त्रपुरु के भार को या शीशा के भार को वहन करने
के लिये समर्थ नहीं रहता है। (जहणं भंते ! सच्चेव पुरिसे जुन्ने जरा-
जजरियदेहे जाव परिकिलंते पभू एगं महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए
तो णं सदहेज्जा तहेव) यदि हे भदन्त ! वही पुरुष जीर्ण होने पर, जरा
से जर्जरित देह होने पर यावत् क्षुधा से परिक्लान्त होने पर एक विशाल
लोहभार को यावत् वहन करने के लिये समर्थ बना रहता तो मैं आपके इस
कथन पर कि जीव शरीर से भिन्न है और शरीर जीव से भिन्न है जीव
शरीररूप नहीं है, शरीर जीवरूप नहीं है विश्वास कर लेता (जमहाणं

पकित विरल थछं जय छे, शक्ति थछं जय छे, तेभज्ज अम, श्वास वगेरेथी जे
उभेशा पीडित रहे छे अने ओथी जे कृश अने दुर्बल थछं जय छे, उभा थछने
पाखी पीवानी पखु जेनामा ताडात होती नयी जे सावअशक्त थछं जय छे, लूणथी
जे पीडित थछं जय छे ओयो ते पुइय अेक मोय्जा बोअंउना लारने उं यिथाना
लारने वहन करवाभा समर्थ थछं थकतो नयी. (जण्णं नत्ते ! सच्चेव पुरिसे
जुन्ने जराजजरियदेहे जाव परिकिलते पभू एगं महं अयभार वा
जाव परिवहित्तए तो णं सदहेज्जा तहेव) तो छे भदन्त ! जे ते पुइय धरु
होवा छता जे घडपपुत्री जर्जरित यरीदवाणे होवा छता जे यावत् नूयवी परि-
कलात होवा छतावे अेक लारे बोअंउना लारने यावत् वहन करवाना उभय्यं थछं
थकत ते दु तमाना छव यरीन्थी भिन्न छे अने यरीर छवथी भिन्न छे, छव
यरीर इय नयी अने यरीर छव इय नयी आ उधर पर विधान्ता छी देत.

ટીકા—“તણ ણં પણ્ણી હત્યાદિ—તતઃસ્વલુ પ્રદેશો રાજા કેશિકુમાર-
શ્રમણમ્ એવમવાદીત્—ણા—ઇયમ્ ઉપમા પ્રજ્ઞાતઃ અસ્તિ અનેન વક્ષ્યમાણેન
પુનઃ કારણેન નો ઉપાગચ્છતિ—ન સ્વંગચ્છતિ, તદેશાઽઽહ—એવં સ્વલુ હે
મદન્ત ! સ્વ યથાનામકઃ કચ્છિત્ પુરુષઃ તરુણઃ યાવત્—યાવત્પદેન—અનન્તર-
સૂત્રે સંગૃહિતાનિ યુગવાન્ બલવાનિત્યાદીનિ પદાનિ સંગ્રહીતવ્યાનિ, તદર્થથ
સપ્તમસૂત્રતો બોધ્યઃ, નિપુણશિલ્પોપગતઃ—સમ્યગ્વિજ્ઞાનસમ્પન્ન, ણતાદૃશઃ પુરુષઃ
એકં મહાન્તં—વિશાલમ્ અયોમારકમ્—લોહમારં ત્રપુકમારકં—યાતુવિશેષમારં
વા શીશકમારકં વા પરિવોદુ—નેતું પ્રમુઃ—સમર્થઃ સ્યાત્ ? હતિ પ્રદેશિપ્રશ્નઃ
કેશીશ્રમણઃ કથયતિ—હન્ત !—હે રાજન ! પ્રમુઃ—સમર્થઃ સ્યાત્ । હે મદન્ત !

મંતે ! સે ચેવ પુરિસે જુન્ને જાવ કિલંતે નો પમૂ એગં મહં અયમારં વા
જાવ પરિવહિત્તણ, તમ્હા સુપઇટ્ટિયા મે પઢ્ણા તહેવ) જિસ કારણ સે હે
મદન્ત ! વહી પુરુષ જીર્ણ યાવત્ હો જાને પર એક વિશાલ લોહમારકો
યાવત વહન કરને કે લિયે સમર્થ નટો હોતા હૈ—ઇસ કારણ સે મેરા યહ
મન્તવ્ય જીવ ઓર શરીર કે એક હોને કા સુપ્રતિષ્ઠિત હૈ અર્થાત્ વહી
જીવ ઓર વહી શરીર હૈ, જીવ ભિન્ન નહીં હૈ ઓર શરીર ભિન્ન નહીં
હૈ એસા મેરા મન્તવ્ય સ્ત્ય હૈ ।

ટીકાર્થ—ઇસ મૂલાર્થ કે જૈસા હી હૈ. ‘તરુણઃ યાવત્ નિપુણશિલ્પો-
પગતઃ’ મેં જો યહ યાવત્પદ આયા હૈ. ઝમસે અનન્તર સૂત્ર મેં સંગૃહીત યુગ-
વાન્ બલવાન્ ઇત્યાદિ પદ યહાં ગૃહીત હૂણ હૈ । ઇન પદોં કા અર્થ સપ્તમ
સૂત્રકી ટીકા મેં લિખ્વા જા ચુકા હૈ, અત્ત વહીં સે યહ જાનના ચાહિયે ‘અયમારં

(જમ્હાણં મંતે ! સે ચેવ પુરિસે જુન્ને જાવ કિલંતે નો પમૂ એગ મહં
અયમારં વા જાવ પરિવહિત્તણ, તમ્હા સુપઇટ્ટિયા મે પઢ્ણા તહેવ) જે કાર
ણથી હે ભદંત ! તેજ પુરુષ જીર્ણ (ઘરડો) યાવત્ થઇ જવાથી એક વિશાળ લોખં-
ડના ભારને યાવત્ વહન કરવામા સમર્થ થઇ શકતો નથી તે કાણથી જ જીવ
અને શરીર એકજ છે એવી મારી ધારણા સુપ્રતિષ્ઠિત જ છે એટલે કે જીવ અને
શરીર બન્ને એકજ છે જીવ ભિન્ન નથી અને શરીર ભિન્ન નથી આ મારી
માન્યતા યોગ્યજ છે.

ટીકાર્થ—આ સૂત્રનો ટીકાર્થ મૂલાર્થ જેવો જ છે. તરુણઃ યાવત્ નિપુણશિલ્પો
પગતઃ’મા જે યાવત્ પદ આવેલ છે તેથી બીજી કોઇ જગ્યાએ સંગૃહીત યુગવાન્,
બળવાન્ વગેરે પદો અહીં સંગૃહીત થયાં છે. આ પદોનો અર્થ સાતમા સૂત્રની
ટીકામાં સ્પષ્ટ કરવામા અવ્યો છે. એથી ત્યાથી જ બાણુવા પ્રયત્ન કરવો જોઇએ.

स एव भारवाहकः पुरुषो जीर्णः—वृद्धास्या प्राप्तः अत एव जराजर्जरितदेहः—
 वृद्धावस्थामन्दशरीरशक्तिकः शिथिलवलितत्वचाविनष्टगात्रः—शिथिला अतएव
 वलिना—वलिपुक्ता त्वचा—वर्ष तथा विनष्टगात्रः—प्रतिहतशरीर-
 सामर्थ्यः दण्डपरिग्रहीताग्रहस्त-अग्रहस्तेन-हस्ताग्रभागेन परिगृहीतः—
 धारितो दण्डो येन तथा, परिश्लपरिशदितदन्तश्रेणिः—प्रविरलो—अत्यन्ताल्पा
 शदिना च दन्तश्रेणिः—दन्तपर्दि र्यस्य स तथा, आतुरः कासश्वा-
 सादिपीडितः, कृशः—अशक्तः, पिपामितः उत्थाय जलं पातुमप्यसमर्थः,
 दुर्बलः बलहीनः क्षुधापरिक्लान्तः—क्षुधापरिपीडितः, एतादृशः पुरुषः एक
 महान्तमयोभारं वा यावत्—‘यावत्’ पदेन—त्रपुकभारक वा शीशकभारकं
 वा परिवोढुं नो प्रभुः—समर्थो न भवति. पुनः प्रदेशी प्राह—भदन्त ! यदि
 खलु स एव पुरुषो जीर्णः जराजर्जरितः यावत् क्षुधापरिक्लान्तः एतादृशः
 पुरुषः एक महान्तमयोभारं वा यावत् शीशकभारं वा परिवोढुं प्रभुः
 स्यात् तदा खलु अह श्रद्दध्यां तथैव—अन्यो जीवः अन्यच्छरीरम् नो
 तज्जीवः स शरीरम्, इति । अथ पुनः प्रदेशी प्राह—हे भदन्त ! यस्मात्
 कारणात् खलु स एव पुरुषः जीर्णः क्षुधापरिक्लान्तः एकं महान्तमयो-
 भारं वा यावत् शीशकभारं वा’ इत्येतत्कारणात् परिवोढुं नो प्रभुः—समर्थो
 न भवति, तस्मात् कारणात् मे—मम प्रतिज्ञा स्वीकारः, सुप्रतिष्ठिता—स्थिरा,
 तथैव—तज्जीवः स शरीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति ॥सू. १४१॥

मूलम्—तए णं केसीकुमारसमणे पर्णस रायं एवं वयासी-

से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिण्पोवगए णवियाए विहं-

‘वा जाव परिवहितए’ में आये हए यावत्पद से ‘तउग भारग वा’ सीसग
 भारगं वा इन पदों का संग्रह हुआ है इस मंत्र का भावार्थ ऐसा है कि
 युवादि विशेषणों वाला जो जीव है वही जीव अयुवादि विशेषणों वाला
 भी है अतः वह वही जीव है और वही उमका शरीर है ये दोनों भिन्न
 नहीं हैं । यही बात प्रदेशीराजाने इस मंत्र से प्रमाणित की है ॥सू. १४१॥

‘अपभारगं वा जाव परिवहितए’ में आयेत यावत् पदधी ‘तउगभारग वा
 सीसगभारग वा’ में पदेने तउग वयेत छे वा सुवने लायर्थे वा प्रभुते
 छे छे युवा वीरधी युवत विशेषणो ते एव छे तेन एव अयुवा वयेते विशेषे
 पदोपधी अपभारग छे. वयेते ते तेन एव छे अने तेहुं शरीर एव तेन छे
 अने अने एव युव युवत नधी प्रदेशी नकथे तेन एव वा तत्रधी प्रमाणिता
 धी छे. सू. १४१॥

गियाए णवएहिं सिक्कएहिं णवएहि पच्छियपिंडएहिं पहू एगं मह
 अयभारं जाव परिवहिसए ? हन्ता पभू । पएसी ? से चेव णं पुरिसे
 तरुणे जाव सिप्पोवगए जुन्निथाए दुब्बलियाए घुणक्खइयाए विह-
 गियाए जुण्णएहिं दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं सिटिलतयापिणद्धएहिं
 सिक्कएहिं जुण्णएहिं दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं पच्छियपिंडएहिं पभू
 एगं महं अयभारवा जाव परिवहिसए ? णो इणट्टे समट्टे । कम्हा-
 णं भन्ते! तरुण पुरिसरुण जुण्णाइं उवगरणाइं भवंति । पएसी ? से
 चेव पुरिसे जुन्ने जाव लुहाकिलंते जुन्नोवगरणे नो पभू एग महं
 अयभारं वा जाव परिवहिसए, तं सदहाहि णं तुभं पएसी जहा-
 अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ॥सू० १४२॥

छाया-ततःखलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवन्नादीत-स
 यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणो यावत् शिल्पोपगतः नविकया विहङ्गिकाया
 नवकाभ्यां शिष्यकाभ्यां नवकाभ्यां पक्षितपिटकाभ्यां प्रभुः एकं महान्त-
 मयोभारं यावत् परिवोढुम् ? हन्त ? प्रभुः प्रदेशिन् ! स एव खलु पुरुषः

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) केशीकुमार
 श्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे
 जाव सिप्पोवगए णवियाए विहंगियाए णवएहिं सिक्कएहिं णवएहिं पच्छिय-
 पिंडएहिं पहू एगं मह अयभारं जाव परिवहिसए ?) जैसे कोई एक पुरुष
 हो और वह तरुण यावत् शिल्पोपगत हो, ऐसा वह पुरुष नवीन विहंगिका

‘तएणं केसी कुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) त्थार
 यधी केशीकुमारश्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रमाणे कथ्ये—(से जहानामए केइ
 पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवियाए विहंगियाए णवएहिं सिक्कएहिं,
 णवएहिं पच्छियपिंडएहिं पहू एगं मह अयभारं जाव परिवहिसए ?) जेभ
 गमे ते-डेअ पुरुष डाय अने ते तरुण यावत् शिल्पोपगत डाय, ओवे। ते पुरुष

तरुणा यावत् शिल्पोपगतः जीर्णया दुर्बलकया घुणखादितया विहङ्गिकया
जीर्णकाभ्यां दुर्बलकाभ्यां घुणखादिताभ्यां शिथिलत्वचापिनद्धकाभ्यां शिक्य
काभ्यां जीर्णकाभ्यां दुर्बलिकाभ्यां घुणखादिताभ्यां पक्षितपिटकाभ्यां प्रभुः
एकं महान्तमयोभारं वा यावत् परिवोहम् ? नो अयमर्थः समर्थः

से भारयष्टिका से (फाउ से), नवीन सिक्ककाओं से नवीन पक्षितपिट
काओं से एक विशाल लोहभार को यावत् त्रपुमार को अथवा शीशक
भार को वहन करने में समर्थ होता है न? तत्र प्रदेशी राजाने कहा—
(हृता, पभृ) हां, भदन्त ! ऐसा वह पुरुष उसे वहन करने में समर्थ होता है।
(पएमी ! से चेरणं पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए दुव्वलियाए घुणक्ख-
डयाए विहंगियाए जुण्णएहिं दुव्वलिणहिं, घुणक्खडएहिं, सिथिलतया पिण-
द्धएहिं, शिकएहिं दुव्वलिणहिं जुण्णेहिं घुणक्खएहिं पच्छियपिंडणहिं पभृ
णं महं अयमारं वा जाव परिवहित्तए) हे प्रदेशिन् ! अब मैं तुम से
ऐसा पूछता हूँ कि वही तरुणपुरुष जो यावत् निपुणशिल्पोपगत है जीर्ण
दुर्बल, घुन से खाई हुई भारयष्टि से, तथा जीर्ण, दुर्बल और घुन से
खाई हुई तथा शिथिल त्वचा से पिनद्ध हुई ऐसी शिक्यकाओं से, एवं
दुर्बलिक, घुण खादिताएमी पक्षितपिटकाओं से एक विशाल लोहभार को
अथवा त्रपुमार को या शीशक भार को वहन करने में समर्थ हो
सकता है? प्रदेशीने कहा—(णो इण्ठे मव्ठे) हे भदन्त ! वह अर्थ समर्थ

नवीन विहंगिकाधी भारयष्टिकाधी (अव्यधी) नवीन सिक्ककाधी नवीन पक्षितपिटका-
आधी ओक विगण बोण उना नान्ने यावत् त्रपुमारने अथवा शीशक नान्ने वहन
करवामा शुं समर्थं थं थके छे ? त्तारे प्रदेशी नान्णे उल्लु—(हंता, पभृ) हां, ए,
लहत ! ओवो ते पुरुष तेने वहन करवामा समर्थं थं थके छे (पएमी ! से चेर
ण पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए, जुन्नियाए, दुव्वलियाए घुणक्खडयाए
विहंगियाए, जुण्णएहिं, दुव्वलिणहिं घुणक्खडएहिं, सिथिलतया पिणद्धएहिं,
शिकएहिं जुण्णेहिं दुव्वलिणहिं घुणक्खडएहिं पच्छियपिंडणहिं पभृ णं
महं अयमारं वा जाव परिवहित्तए) हे प्रदेशिन् ! अब तमने हूँ आन प्रश्न

कस्मात् ? भदन्त ! तस्य पुरुषस्य जीर्णानि उपकरणानि भवन्ति, प्रदेशिन् !
 स एव पुरुषः जीर्णो यावत् क्षुधापरिक्रान्तः जीर्णोपकरणः नो मधुः एकं
 महान्तमयोभार वा यावत् परिवोढुम्, तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् !
 यथा-अन्यो जीवः अन्यत् शरीरम् ६ । ॥मू० १४२॥

नहीं है-अर्थात् वही युवादि विशेषणों वाला पुरुष जीर्णादि विशेषणोंवाली
 विहङ्गिकादि (कावड) द्वारा विशाल लोहभार को वहन नहीं कर सकता है।
 केशीकुमारश्रमणने पूछा-(कम्हा) वह ऐसा किस कारण से नहीं कर सकता है
 तब प्रदेशीने कहा-(भंते ! तस्स पुरिसस्स जुण्णाइं उवगरणाइ भवंति) हे
 भदन्त ! लोह भार आदि को वहन करने के जो उसके साधन हैं-वे जीर्ण
 हैं ! (पएसी से चेव पुरिसे जुन्ने जाव छुहापरिक्रिलंते जुन्नोवगरणे पभू
 एगं महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए-तं सदहाहि णं तुमं पएसी अन्नो
 जीवो अन्नं सरीरं) पुनः केशी ने प्रदेशी से पूछा-हे प्रदेशिन् ! यदि वही
 पुरुष जीर्ण, वृद्ध यावत् १४१वे सूत्र में कथितविशेषणोंवाला एवं क्षुधा
 परिक्रान्त हो जाता है वह जीर्णोपकरण वाला होने से-शरीर बल बुद्धि
 आदि उपकरणों की जीर्णतावाला होने से-एक विशाल अयोभार को यावत्
 शीशक भार को वहन करने में समर्थ नहीं होता है युवावस्था और वृद्धा-
 वस्था में जीव की समानता होने पर भी उपकरण के अभाव से वृद्ध
 भार को वहन करने के लिये समर्थ नहीं होता है इस कारण हे प्रदेशिन् !

आ अर्थं समर्थं नथी. अेटवे डे तेज युवा वगेरे विशेषणोथी युक्त पुरुष अर्थ
 वगेरे विशेषणोथी युक्त विङ्गिक (कावड) वगेरे वट विशाल बोण उना लारने वहन
 न करी शके तेम छे. केशीकुमार श्रमणे कहु. (कम्हा) ते आम शा कारणुथी नडि
 करी शके ? त्पारे प्रदेशीणे कहु. (भंते ! तस्स पुरिसस्स जुण्णाइं उवगरणाइं
 भवंति) हे भदन्त ! बोण उना लार वगेरेने वहन करवाना के साधनो छे ते अर्थ छे
 (पएसी से चेव पुरिसे जुन्ने जाव छुहापरिक्रिलंते जुन्नोवगरणे नो पभू
 एगं महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए-तं सदहाहि णं तुमं पएसी अन्नो
 जीवो अन्नं सरीरं) करी केशीणे प्रदेशीने आ प्रमाणे प्रश्न कर्यो डे हे प्रदेशिन् !
 ने ते ज पुरुष अर्थ वृद्ध यावत् १४१ भा सूत्रमा आवेल विशेषणोथी संपन्न
 होय क्षुधा परिक्रान्त थछ नय छे तो ते अर्थोपकरणवाणो होवाथी-शरीर बल बुद्धि
 वगेरे उपकरणो अर्थ होवाथी अेक विशाल बोण उना लारने यावत् शीशकलारने
 वहन करवामा समर्थ थछ शके तेम नथी. युवावस्थाभा अने वृद्धावस्थाभा अवननी
 समानता होवा छता अे उपकरणना अलावे वृद्ध लारने वहन करवामा समर्थ थछ

टीका—“तए ण केशी कुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशी कुमा-
रश्रमणः प्रदेशिनं राजामम्, एवमवादीत्—स यथानामकः कश्चित्—कोऽपि
पुरुषः तरुणः यावत्—निपुणशिल्पोपगतः नविक्रया—नूतनया विहङ्गिकया—भार-
यष्टिकया—शिक्यावलम्बनदण्डविशेषरूपया नवकाभ्यां—नवीनाभ्यां शिक्यकाभ्यां
नवकाभ्यां—नूतनाभ्यां पक्षितपिटकाभ्यां—वंशवेत्रादिनिर्मितपात्रविशेषाभ्याम्
एकं महान्तमयोभारं वा यावत् त्रपुभारं वा शीशकभारं वा एतादृशमयो
भारादिकं परिवोढुं प्रभुः—समर्थः स्यात् ? इति केशिप्रश्नः, प्रदेशी प्राह—
इन्त ! प्रभुः—समर्थः स्यात् ! केशीकथयति—प्रदेशिन ! स एव खलु पुरुषः
तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः, एतादृशः पुरुषः जीर्णया दुर्बलिकया-
निःसत्त्वया घुणखादितया—काष्ठकीटभक्षितया—विहङ्गिकया—भारयष्ट्या तथा—
जीर्णकाभ्यां—दुर्बलिकाभ्यां घुणखादिताभ्यां शिथिलत्वष्वापिनद्धकाभ्यां—
शिथिलदवरिकायद्वाभ्यां शिक्यकाभ्यां, तथा दुर्बलिकाभ्यां घुणखादिता-
भ्यां पक्षितपिटकाभ्याम् एकं महान्तमयोभारं वा यावत् त्रपुभारं वा शीश-
कभारं वा परिवोढुं प्रभुः—समर्थः स्यात् ? । प्रदेशी प्राह—नो अयमर्थः—
समर्थः— पूर्वोक्तसाधनैर्भारो वोढुं न शक्यत इत्यर्थः । केशी श्रमणो
हेतुं पृच्छति—कस्मात्कारणात् ? । प्रदेशी कथयति—हे भदन्त ! तस्य पूर्वोक्त-
स्य तरुणताविशिष्टस्य पुरुषस्य उपकरणानि जीर्णानि भवन्ति सन्ति, उप-
करणानां जीर्णत्वादिकारणान्नायोभारादिपरिवहनयोग्यता, इतिभावः । केशी

तुम मेरे बचन में विश्वास करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है,
वह जीवरूप नहीं है और न जीव शरीररूप है।

टीकार्थ—स्पष्ट है यहाँ जो ‘विहंगियाए, सिक्रण्हि, पच्छियपिंडण्हि’
ये शब्द आये हैं वे भार उठाने के अर्थ में आये हैं। वंश, वेत्र आदिकों
से निर्मित पात्र विशेषका नाम पक्षितपिटक है। तात्पर्य इस सूत्र का ऐसा

शक्यतो नहीं। जेथी हे प्रदेशिन् ! तजे नारी णत्त पर विद्यात्त उरे हे एव अन्य
छे, अने शरीर अन्य छे, शरीर एवइय नथी अने एव शरीर इय नथी

टीकार्थ—स्पष्ट न छे (‘विहंगियाए, सिक्रण्हि, पच्छियपिंडण्हि’)न
शब्दो आयेत छे ते भार वहत जेना नटेना विशेष साधनेना अर्थमा प्रकृत
करवामा आया छे। वंश, वेत्र वजेथी निर्मितपात्र विशेषरूप न न पक्षितपिटक
छे। आ तजेना विशेषका नाम पक्षितपिटक है। तात्पर्य इस सूत्र का ऐसा

प्राह-हे प्रदेशिन् ! स एव पुरुषो यदि जीर्णः-वृद्धः यावत् त्रिचत्वारिंशदधिकैकशततमसूत्रोक्त विशेषणविशिष्टः, पुनः क्षुधापरिक्लान्तःक्षुधाग्निः, एतदृशः पुरुषो, जीर्णोपकरणः शरीरबलबुद्ध्याद्युपकरणरहितो भवति तदा एकं महान्तमयोभारं वा यावत्-शीशकभारं वा परिवोहं न प्रभुः-न समर्थो भवति, तारुण्ये वार्धक्ये च जीवस्य समानत्वेऽपि उपकरणाभावान्न वृद्धो भारं वोहो समर्थो भवतीति भावः । तत्-तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन् ! त्वं श्रद्धेहि-मद्वचने विश्वसिहि-यथा अन्यो जीवः अन्यच्छरीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति ६ । ॥सू० १४२॥

मूलम्--तए णं से पएसी केसिकुमारसमणं एवं वयासी-अत्थि णं भंते ! जाव नो उवागच्छइ, एवं खलु भंते ! जाव विहरामि, तएणं मम णंगरगुत्तिया जाव चोरं उवणेति, तएणं अहं तं पुरिस जीवंतगं चेव तुलेमि, तुलेत्ता छविच्छेयं अकुवमाणे जीवियाओ ववरोवेमि मयं तुलेमि णोचेव णं तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स वा मुयस्स वा तुलियस्स केइ आणात्ते वा नाणत्ते वा उम्मत्तत्ते वा

है कि समर्थ पुरुष उपकरणों की बलवत्ता में लोहे आदिरूप भार को उठा सकता है, तथा वही समर्थ पुरुष उपकरणों की असमीचीनता में लोहे आदिरूप भार को नहीं उठा सकता है, तथा वही पुरुष वृद्धावस्थापन्न होने पर भी अयोभार को नहीं उठा सकता है, अतः इससे यही प्रतीत होता है कि जीव की समानता होने पर भी उपकरणों की असमानता में भारवहन नहीं होता है- इससे यह मानना चाहिये कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है । ६ ॥ सू १४२ ॥

अशक्त होय तो बोध उ वगेरेना लारने वडन करी शके छे तथा तेज्ज समर्थ पुरुष ले उपकरणो अशक्त-असमीचीन-होय तो बोध उ वगेरे इय लारने वडन करि शके तेम नथी, तेमज्ज तेज्ज पुरुष वृद्धावस्थापन्न होवाथी बोध उना लारने वडन करी शके तेम नथी, अथी आ वात स्पष्ट थाय छे के एवनी समानता होवा छतां अे उपकरणो (साधनो)नी असमानताने लीधे लारतु वडन करी शकय तेम नथी अथी आ वात मानी लेवी लेधुअे के एव लिन छे अने शरीर लिन छे । ६ ॥ १४२ ॥

तुच्छते वा गुरुयत्ते वा लहुयत्ते वा, जइ णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स होज्जा केइ नाणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा तो णं अहं सइहेज्जा तं चेव, जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नन्नत्ते वा जाव लहुयत्ते वा तम्हा सुपइट्ठियो मे पइण्णां जहा तं जीवो तं चेव ॥सू० १४३ ॥

छाया-ततः खलु स प्रदेशी केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत-अस्ति खलु भदन्त! यावत् नो उपागच्छति, एवं खलु भदन्त! यावद् विहरामि, ततः खलु मम नगरगुप्तिकाः यावत् चोरमुपनयन्ति, ततः खलु अहं तं पुरुषं जीवितकमेव तोलयामि तोलयित्वा छविच्छेदम् अकुर्वाणः जीविताद् व्यपरोप-

‘तए णं से पएसी इत्यादि ।

सुत्रार्थ-—(तए णं से पएसी केशिकुमारसमणं एव वयामी) इसके बाद उस प्रदेशोने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा-(अन्विय णं भंते ! जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! यह उपमा बुद्धि जन्य है अतः वास्तविक नहीं है। मुझे इस वक्ष्यमाण कारण से जीव और गरीर का भेद प्रतीत नहीं होता है (एव खलु भंते ! जाव विहरामि) यह कारण इस प्रकार से है-एक दिन की बात है कि मैं गणनायक आदिको के साथ वास्य उपस्थानशाला में बैठा हुआ था. (तए णं मम नगरगुप्तिया जाव चोर उवाणंति) इतने में मेरे नगररक्षक साक्षियुक्त आदि विशेषण संपन्न किसी एक चोर को पकड़ कर ले आए (तए णं अहं तं पुरिसं जीवितमं चेव तुल्येमि)

‘तए णं से पएसी’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ-—तए णं से पएसी केशिकुमारसमणं एवं वयामी) तत्र प्रदेशी तत्र प्रदेशी राज्ञो देशी कुमार श्रमणे नः प्रमाणे इति (अन्विय णं भंते ! जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त ! या उपमा बुद्धि जन्य छे अर्थी वास्तविक नहीं वक्ष्यमाण अर्थुर्थी छव अने शरीरणी विनयता नया मनना जानती नहीं (एवं खलु भंते ! जाव विहरामि) ते खलु आ प्रमाणे छे-हे छे विनयणी यत्त छे तं पुं ननुद यत्त वदेते नी नये यत्त उपस्थानशाला (उपस्थान शाला) में बैठा इति (तए णं मम नगरगुप्तिया जाव चोर उवाणंति) ते अने मेरे नगररक्षक साक्षियुक्त आदि विशेषण संपन्न किसी एक चोर को पकड़ कर ले आए (तए णं अहं तं पुरिसं

यामि मृतं तोलयामि ने चैव खलु तस्य पुरुषस्य जीवतो वा तोलितस्य मृत-
स्य वा तोलितस्य किञ्चित् नानात्वं वा उन्मात्रत्वं वा तुच्छत्वं वा गुरुत्वं
वा लघुत्वं वा, यदि खलु भदन्त ! तस्य पुरुषस्य जीवतो वा तोलितस्य
मृतस्य वा तोलितस्य भवेत् किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघुत्वं वा तदा
खलु अहं श्रद्धयां तदेव, यस्मात् खलु भदन्त ! तस्य पुरुषस्य जीवतो वा

उसे मैंने जीवित ही तोला (तुलेत्ता छविच्छेयं अकुञ्चमाणे जीवियाओ
बवरोवेमि, मयं तुलेमि) तोल कर फिर मैंने उसे अंग भंग किये बिना
जीवन से रहित कर दिया और फिर मरे हुए उसे तोला (णो चैव णं
तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स केइ नाणत्ते
वा उम्मत्तत्ते वा तुच्छत्ते वा गुरुयत्ते वा लघुयत्ते वा) तब जीविततुले हुए
उसमें और मरे तुले हुए उसमें मुझे किसी भी तरह की न्यूनाधिकता
नहीं दिखाई दी. न उस में भार बढा न वह उसका भार कम हुआ न उसमें गुरुता
आई न उसमें लघुता आई. (जह णं भंते। तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स
मयस्स वा तुलियस्स वा होज्जा केइ नाणत्ते वा जाव लघुयत्ते वा) हे भदन्त!
जीविततुले हुए और मरे तुले हुए उस पुरुष में यदि कोई न्यूनाधिकता
हो जाती यावत् लघुता हो जाती (तो णं अहं सदहेज्जा तं चैव) तो मैं श्रद्धा कर लेता
कि जीव अन्य है, और शरीर अन्य है वह जीव शरीर नहीं है. वह शरीर जीव नहीं है.

जीवितगं चैव तुलेमि) मे' अवितावस्थाभां ञ तेत्तुं वञ्चन कथुं'. (तुलेत्ता छविच्छेयं
अकुञ्चमाणे जीवियाओ बवरोवेमि, मयं तुलेमि) तोलीने पछी मे' तेने
अंग लंग कयां वगर ञ एवन रडित अनावी हीधो अने मयां पछी
इरी तेत्तुं मे' वञ्चन कराव्यु. (णो चैव णं तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलि-
यस्स मयस्स वा तुलियस्स केइ नाणत्ते वा उम्मत्तत्ते वा तुच्छत्ते वा
गुरुयत्ते वा लघुयत्ते वा) तयारे एवता वञ्चन करायेला तेमां अने भृत्यु पाभ्या
पछी वञ्चन करायेला तेमां अने डोअ पणु नतनी न्यूनाधिकता लागी नडीं, तेमां लार
वधारे पणु थयो नडी, अने तेमाथी लार ओछो पणु थयो नडी
तेमां शुइता आवी नथी तेम तेमा लघुता पणु आवी नथी.
(जह णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स
वा होज्जा केइ नाणत्ते वा जाव लघुयत्ते वा) हे भदन्त ! एवीतावस्थाभां
करेला वञ्चनभां अने भृतावस्थावामा करेला ते चोरना वञ्चनभा ने डोअ पणु नतनी
न्यूनाधिकता थछ नत यावत् लघुता थछ नत. (तो णं अहं सदहेज्जा तं चैव)

तोलिनस्य मृत्स्य वा तालितस्य नासि किञ्चित् नानात्व वा यावत् लघु कत्वं वा । तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-तज्जीवः तदेव ॥ सू० १४३ ॥

टीका-‘तए णं से पएसी’ इत्यादि ततः तदनन्तरं खलु स प्रदेशी राजा केशी-कुमारश्रमणम्, एवमवादीत हे भदन्त! अस्ति खलु यावत् यात्पदेन ‘एषा प्रज्ञा तउपमा अनेन पुनः वक्ष्यमाणेन कारणेन’ इत्येषां पदानां सङ्ग्रहः एतद्विचरणं पूर्वं तर (१४०) चत्वारिंशदधिकैशशततममूत्रे कृतम्, नो उपागच्छति-जीवशरीरयोः परस्परं भेदो मे-मम मनसि न संगच्छते । तदे

जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नन्नत्थे वा जाव लहुयत्ते वा, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा-तं जीवो तं चेव) जिस कारण हे भदन्त ! जीते हुए तोले गये उस पुरुष में और मरे हुए तोले गये उसी पुरुष में जब कोई भिन्नता-न्यूनाधिकता यावत् लघुता मैं नहीं देखता हूँ-उस कारण से मेरा यह मन्तव्य कि वही पूर्वोक्त जीव है और वही शरीर है, न अन्य जीव है, और न अन्य शरीर है सुस्थिर है।

टीकार्थ--केशीकुमारश्रमण का जीव शरीर भिन्नता-विषयक कथन सुनकर प्रदेशी राजाने उनसे इस प्रकार कहा-हे भदन्त ! आपने जो यह उपमा जीव शरीर की भिन्नता प्रकट करने के लिये प्रकट की है, वह केवल उपमा मात्र है-बुद्धिजन्य होने से वास्तविक नहीं है. अतः जो बात

तो हूँ आ वात पर श्रद्धा करी शकत के एव अन्य छे अने शरीर अन्य छे ते एव शरीर नथी अने शरीर एव नथी. (जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीव-तस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नन्नत्थे वा जाव लहुयत्ते वा, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा, तं जीवो तं चेव) जेथी छे-बदंत ! एवीतावस्थां वज्ज करायेल ते पुइषमा अने मृतावस्थां वज्ज करायेल ते पुइषमा न्यारे डोअ पणु नतनी भिन्नता-न्यूनताधिकता यावत् लघुता भारा ध्यानमां आवती नथी तेथी भारी जेवी मान्यता छे के जे एव छे तेव शरीर छे. एव अन्य नथी तेमज्ज शरीर पणु अन्य नथी.

टीकार्थ--केशी कुमारश्रमण एव शरीर भिन्नता संगंधी कथन सांभजीने प्रदेशी राजा जे तेमने आ प्रमाणे कहुं के छे कदंत ! तमे एव अने शरीरनी भिन्नता स्पष्ट करवा भाटे जे उपमा आपी छे ते मात्र उपमा जे छे. ते बुद्धि-

वाऽऽह-एवं खलु हे भदंत ! यावत्-यावत्पदेन 'बाह्यायामुपस्थानशाला
यामनेकगणनायक-दण्डनायक-राजेश्वर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिकेभ्य
श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-मन्त्रि-महामन्त्रि गणक-दौवारिकामात्य-चेट
पीठमर्दनगरनिगमदूतसन्धिपालैः सार्द्धं संपरिवृतः" इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो
बोधयः, एषां व्याख्या पट्टत्रिंशदधिकशततमसूत्रे गता । विहरामि-निष्ठापि,

मैं कह रहा हूँ उससे इन दोनों की अभिन्नता ही प्रकट होती है, यह
बात इस प्रकार से है-मैं एक दिन गणनायक आदिकों के साथ अपनी
बाह्य उपस्थान शाला में बैठा हुआ था. नगर रक्षक एक चोर को पकड़-
कर मेरे समक्ष लाये-मैंने उसे पहिले तो जीवितावस्था में तोला, बाद में
उसे मार कर तोला. तोलने पर उसके भार में कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं
आई. अतः इससे मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उस चोर का वही
जीव है और वही शरीर है. न जीव अन्य है और न शरीर अन्य है. यहाँ
'जाव नो उवागच्छइ' में जो यावत्पद आया है उससे 'एषा प्रज्ञात उपमा,
अनेन पुनः वक्ष्यमाणकारणेन' इस पाठका संग्रह हुआ है। इनका विवरण
१३८वें सूत्र में किया जा चुका है। 'जाव विहरामि' में आये हुए यावत्पद
से "बाह्यायामुपस्थानशालाया अनेक गणनायक-दण्डनायक, राजेश्वर, तलवर,
माडम्बिकेभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह-मन्त्रि-महामन्त्रि गणक-दौवारिका
मात्य-चेट-पीठमर्दनगर-निगम-दूतसन्धिपालैः सार्द्धं संपरिवृतः" इस पाठ का

अन्य डोवाथी अवास्तविक न छे. ऐथी जे वात हुं कहुं छुं तेथी ऐओ अन्नेनी
अभिन्नता न प्रकट थाय छे. ऐ वात आ प्रमाणे छे. हुं ऐक द्विवस गणनायक
वगेरेनी साथे भारी बाह्य उपस्थानशाणाभां जेठो हुतो त्या नगररक्षके ऐक चोरने
पकडीने भारी सामे लाव्या. में पडेला तेनुं एवतां न वज्जन् कथुं. त्यार पछी
तेने भारीने पछी तेनुं वज्जन् कथुं. तो तेना वज्जन्मां केध पण जतनी न्यूना-
धिकता नष्ठा नहि ऐथी हुं आ निष्कर्ष पर आव्यो छुं ते चोरने एव छे
शरीर छे. अने शरीर छे तेन एव छे एव अन्य नथी अने शरीर अन्य नथी अडी,
'जाव नो उवागच्छइ' मा जे यावत् पद आवेल छे तेथी (एषा प्रज्ञात उपमा,
अनेन पुनः वक्ष्यमाणकारणेन' आ पाठने संग्रह थयो छे. आनुं स्पष्टीकरण
१३८ मा सूत्र करवाभा आव्युं छे (बाह्यायामुपस्थानशालाया अनेकगण
नायक-दण्डनायक, राजेश्वर, तलवर माडम्बिक, कौटुम्बिकेभ्य, श्रेष्ठि-
सेनापति-सार्थवाह-मन्त्रि-महामन्त्रि गणक-दौवारिकामात्य-चेट पीठ मर्दन

ततः-तदा खलु मम नगरगुप्तिकाः-नगररक्षकाः ससाक्ष्यं-साक्षियुक्तं यथा तथा यावत्-सहोदादिविशेषणविशिष्टं चौरमुपगच्छन्ति-मत्समीपे समानं यन्ति, ततः खलु अहं तं चौरं पुरुष जीवितकमेव तोलयामि, तोलयित्वा छविच्छेदम्-अङ्गादिभङ्गम् अकुर्वाणः अकुर्वन्नेव जीविताद् व्यपरोपयामि-मारयामि, मारयित्वा पुनस्त मृतं तोलयामि, नैव च खलु तस्य मारितं चोरपुरुषस्य जीवतःसतः तोलितस्य वा-अथवा मृतस्य च तोलितस्य किञ्चित्-किमपि नानात्वं-न्यूनधिकत्वं पश्यामि, नानात्वस्य रूपं दर्शयति-उन्मात्रत्वं-भाराधिक्यं, वा-अथवा, तुच्छत्वं-भाराल्पत्वं वा गुरुकत्वं-गुरुता वा, लघुकत्वं-लघुता वा, यदि खलु हे भदंत ! तस्य पुरुषस्य जीवतो वा तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य किञ्चित् नानात्वं यावत् लघुकत्वं वा भवेत्, तदा खलु अहं श्रद्धयां तदेव-अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, नो तज्जीवः स शरीरम्, इति । हे भदन्त !-यस्मात् कारणात् खलु तस्य पुरुषस्य जीवतो वा तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चिद्, नानात्वं लघुकत्वं वा, तस्मात् मे सुपतिष्ठिता-सुस्थिरा प्रतिज्ञा यथा तज्जीवः, तदेव-पूर्वोक्तमेव-तज्जीवः स शरीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, इति ॥सू०-१४३॥

मूलम्--तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-अत्थि णं पएसी । तुमे कयाइ वत्थी धंतपुठ्वे वा धमावियपुठ्वे वा ? हंतो अत्थि । अत्थि णं पएसी ! तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा तुलियस्स अपुण्णस्स वा तुलियस्स केइ नाणत्ते वा जाव लघुयत्ते वा णो इणट्ठे समट्ठे एवामेव पएसी ! जीयस्स अगुरुलहुयत्तं पडुच्च जीवं तस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नाणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा, तं सदहाहि णं तुमं पएसी ! तं चेव ७ ॥ सू० १४४ ॥

संग्रह हुआ है इन पदों की व्याख्या १३५वे सूत्रमें की जा चुकी है। 'जाव चौरं उपणे'ति' मैं ससाक्षी सहोदादि विशेषणोंका यावत् पदसे ग्रहण हुआ है ॥सू० १४३॥

-नगर-निगम दूतसंधिपालैः सार्धं संपरिवृत्तः" आ पाठने सग्रह थयो छे. आ पदोनी व्याख्या १३५ भा सूत्रमा उक्त्वा मा आवी छे 'जाव चौर उपणे'ति' भा ससाक्षी-सहोदादि विशेषणानुं यावत् पठथी अलुषु थयुं छे. ॥सू० १४३॥

छाया—ततःखलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्
अस्ति खलु प्रदेशिन् । तव कदाचिद् अस्तिः ध्मात्पूर्वे ध्मापितपूर्वो वा ?
हन्त अस्ति । अस्ति खलु प्रदेशिन् ! तस्य वस्तेः पूर्णस्य वा तोलितस्य
अपूर्णस्य वा तोलितस्य किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघुकत्वं वा ? ।
नायमर्थः समर्थः । एवमेव प्रदेशिन् जीवस्यागुरुलघुकत्वं प्रतीत्य जीवतो

‘त ए णं से केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ— त ए णं से केशीकुमारसमणे पएस्सिं रायं एवं वयासी)
इसके बाद उन केशीकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—
(अत्थि णं पएसी ! तुमे कयाइ वन्थी धन्तपुब्बे वा धमावियपुब्बे वा ?)
हे प्रदेशिन् ! तुमने कभी भस्त्रिका को वायु से पूरित की है, या किसी
से करवाई है ? (हन्ता अत्थि) तब प्रदेशीने कहा—हां, भदन्त ! कीं है और
कराई है। (अत्थि णं पएसी ! तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा तुलियस्स अपु-
ण्णस्स वा तुलियस्स केइ नाणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा) पुनः केशीकुमार-
श्रमणने उससे कहा—हे प्रदेशिन् ! जब तुमने उस भस्त्रिका को वायु से
पूरित करके तोला तब, और वायु से अपूरितावस्था में तोला तब उसमें तुम्हें
कुछ न्यूनाधिकता यावत् लघुता दृष्टिगत हुई ? प्रदेशीने कहा—(णो इण्ठे
समद्धे) हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है—अर्थात् उसमें न्यूनाधिकता यावत्
लघुता कुछ भी दृष्टिगत नहीं हुई है (एवामेव पएसी जीवस्स अगुरुलहु-

‘त ए णं से केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(त ए णं से केशीकुमारसमणे पएस्सिं रायं एवं वयासी) त्थार
पथी ते केशीकुमारश्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रभाण्णे उद्धुं—(अत्थि णं पएसी !
तुमे कयाइ वन्थी धन्तपुब्बे वा धमावियपुब्बे वा ?) हे प्रदेशिन् ! तमे कौं
पथु द्विसे भस्त्रिका (धमण्णु) मां उवा लरी छे. के कौंनी पासेथी व रावडावी छे ?
(हन्ता अत्थि) त्थारे प्रदेशी राजान्णे उद्धुं, उं लहन्त ! उवा लरी छे अने लराव-
डावी छे (अत्थि णं पएसी ! तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा तुलियस्स अपुण्णस्स
वा तुलियस्स केइ नाणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा) इरी केशीकुमारश्रमणे तेने
उद्धु—हे प्रदेशिन् ! त्थारे तमे ते धमण्णुं उवा लरीने वण्ण उद्धुं अने पथी उवा
अहार डाढीने तेनुं वण्ण उद्धुं त्थारे तमने ते मां कंठक न्यूनाधिकता यावत् लघुता
वण्णुं ? प्रदेशीन्णे उद्धुं (णो इण्ठे समद्धे) हे लहन्त ! आ अर्थ समर्थ नहीं-
अटवे के न्यूनाधिकता यावत् लघुता उद्धुं पथु वण्णुं नहि (एवामेव पएसी

वा तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघुकत्वं वा, तत्र श्रद्धेहि खन्त्र त्वं प्रदेशिनः तदेव ७।सू० १४४॥

टीका—“तए णं केशी कुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशीकुमार-
श्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवमवादीत्—हे प्रदेशिन ! तत्र कदाचित्—अग्निः-
श्रित्काले अग्निः—इतिः—चर्मगुट्हा मल्लिका धमात्पूर्वाः—पूर्वः धमात्—वायुभिः
पूरितः, वा-अथवा धमापितपूर्वः पूर्वकेनापि धमापितः-वायुभिः पूर्णः कारितः
इति केशिप्रश्नः, तत्र प्रदेशी प्राह—इन्त ! अस्ति । पुनः केशी पृच्छति
हे प्रदेशिन ! तस्य वस्तेः पूर्णस्य वायुभृतस्य तोलितस्य, वा-अथवा अपू-
र्णस्य—वायुभिरपूरितस्य वा तोलितस्य मतः किञ्चित् किमपि नानात्वं यावत्
लघुकत्वं वा अस्ति ? इति केशिप्रश्नः प्रदेशी प्राह—नायमर्थः समर्थः—
नानात्वसद्भावरूपोऽर्थो न विद्यते । केशी कथयति—एवमेव हे प्रदेशिन !
जीवम्य अगुरुञ्चयुक्तत्वं—गुरुञ्चलघुत्वगहितत्वं प्रतीत्य—आश्रित्य जीवतो वा
तोलितस्य मृतस्य वा तोलितस्य नास्ति किञ्चित् नानात्वं वा यावत् लघु-
कत्वं वा, तत् तस्मात् कारणात् हे प्रदेशिन ! त्वं श्रद्धेहि मद्बचने श्रद्धां कुरु,
तदेव—यथा—नो तज्जीवः स शरीरम्, अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति, सू. १४४।

यत्तं पडुच्च जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ नाणत्ते
वा जाव लहुयत्ते वा, तं सद्दहाहि णं तुमं पपसी तं चेव ७) तो इसी प्रकार
से हे प्रदेशिन ! जीव के अगुरुञ्चयुत्व रहितपने को प्रतीत करके जीवित
अवस्था में तोले गये बाद में मृत अवस्था में तोले गये उस घोर के
शरीर में कुछ भी नानात्व अथवा लघुत्व नहीं है। इस कारण हे प्रदेशिन!
तुम मेरे वचन में श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है।

टीकार्थ इसका स्पष्ट है ॥ सू० १४४ ॥

जीवस्स अगुरुलहुयत्तं पडुच्च जीवतस्स वा तुलियस्स मयस्स वा तुलियस्स
नत्थि केइ नाणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा, तं सद्दहाहि णं तुमं पपसी तं
चेव ७) तो आ प्रमाणे हे प्रदेशिन ! एवमो अगुरुञ्चयुत्व शुभेन—शुभत्वलघुत्व
रहितत्वस्थाने सामे शरीरेण एवितावस्थाभां करयेत्ता ते चोरना वणनमा अने भृता-
वस्थाभां करयेत्ता ते चोरना वणनमा डोइ पणु ज्ञातत्वं नानात्व के लघुत्व, नथी.
अथी हे प्रदेशिन ! तमे भारी आ वात पर विश्वास करी दो, हे एव अन्य छ
अने शरीर अन्य छ. आ सूत्रेणो टीकार्थ स्पष्ट व छ. ॥१४४॥

मूलम्—तए णं पएसा राया केसिं कुमारसमणं एव वया नी
 -अत्थि णं भंते! एसा जाव नो उवागच्छइ, एवं खलु भंते! अहं
 अन्नया जाव चोरं उवणेति, तएणं अहं तं पुरिसं सब्बओ समंता
 समभिलोएमि, नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि, तएणं अहं तं पुरिसं
 दुहा फालियं करेमि करित्तो सब्बओ समंता समभिलोएमि, नो
 चेव णं तत्थ जीवं पासामि, एवं तिहा चउहा संखेज्जहा फालियं
 करेमि, नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि, जइ णं भंते! अहं तंसि
 पुरिसंसि दुहावा तिहा वा चउहा वा संखेज्जहा वा फालियंसि जीवं
 पासेज्जा, तो गं अहं सदहेज्जा तं चेव, जम्हा णं भंते! अहं तंसि
 दुहा वा तिहा वा चउहा वा संखिज्जहा वा फालियंसि जीवं न पासामि
 तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा, जहा-तं जीवो तं सरोरं तं चेव। सू, १४५।

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्-
 अस्ति खलु भदन्त! एषा यावद् नो उवागच्छति, एवं खलु भदन्त।

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी) इमके
 बाद प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—(अत्थि णं भंते! एसा
 जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त! यह उपमा बुद्धिजन्य होने से वास्तविक नहीं
 है इस वक्ष्यमाण कारण से मुझे जीव और शरीर का भेद प्रतीत नहीं
 होता है. वह वक्ष्यमाण कारण (एवं भंते!) हे भदन्त! इस प्रकार से है

‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी)
 त्पार पथी प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रमाणे उथु. (अत्थि णं भंते!
 एसा जाव नो उवागच्छइ) हे भदन्त! आ उपमा बुद्धि प्रेरित होवाथी वास्त-
 विक नहीं. आ निम्न उरखुथी भारा भनभां एव अने शरीरनी विन्दतानी वात
 भवती नथी. (एवं भंते) हे भदन्त! ते आ प्रमाणे छे. (अहं अन्नया जाव

अहमन्यदा यावत् चोगमुपनयन्ति, ततः खलु अहं तं पुरुषं सर्वतः समन्तात्
समभिलोके नैव खलु तत्र जीवं पश्यामि, ततः खलु अहं तं पुरुषं द्विधा स्फा-
टितं करोमि, कृत्वा सर्वतः समन्तात् समभिलोके, न चैव खलु तत्र जीव
पश्यामि, एवं त्रिधा चतुर्धा संख्येयथा स्फाटितं करोमि न चैव तत्र जीवं
पश्यामि, यदि खलु भदन्त ! अहं तस्मिन् पुरुषे द्विधा वा त्रिधा वा चतुर्धा वा

(अहं अन्नया जाव चोग उवणेति) मैं एक दिन १३५वें सूत्र में कथित
अनेक गणनायक आदिकों के साथ उपस्थानशाला में बैठा हुआ था वहां
पर मेरे नगर रक्षक मुसकिया बन्धन से बांधकर एक चोर को लाया
(तए णं अहं तं पुरिसं सव्वओ समंता समभिलोएमि) मैंने उस पुरुष को
मस्तक से लेकर चरणपर्यन्त अच्छी तरह से देखा (नो चैव णं तत्थ जीवं
पासामि) परन्तु मुझे वहां पर जीव देखने में नहीं आया (तए णं अहं
तं पुरिसं दुहा फालियं करेमि) इसके बाद मैंने उस चोर के दो
टुकड़े कर दिये. (करित्ता सव्वओ समंता समभिलोएमि) दो टुकड़े करने
के बाद फिर मैंने उसका अच्छी तरह से सब ओर से निरीक्षण किया
(नो चैव णं तत्थ जीवं पासामि) परन्तु फिर भी वहां पर मुझे जीव
देखने में नहीं आया (एवं तिहा, चउहा, संखेज्जहा फालियं करेमि—नो चैव णं
तत्थ जीवं पासामि) तदनन्तर मैंने उसके तीन टुकड़े किये, चार टुकड़े
किये, यावत् संख्यात (सैकडे) टुकड़े किये परन्तु फिर भी वहां मुझे जीव
नहीं दिखा (जइ णं भंते ! अहं तंसि पुरिसंसि दुहा वा तिहा वा चउहा

चोरं उवणेति) हुं एक दिनसे १३५ मा सूत्रमां कथित घण्टा गण्ट नायकोवगेरे-
नी साथे आद्य उपस्थान शालानां जेठो हुतो. त्यां भारा नगररक्षकेो एक चोरने
भुरकेटाट आधीने भारी साथे लाव्या. (तएणं अहं तं पुरिसं सव्वओ समंता
समभिलोएमि) में ते पुरुषने भरतकथी भांडीने पण अधी सारी रीते जेथो.
(नो चैव णं तत्थ जीवं पासामि) पण्टु भने तेमां एव देखाथो नही. (तएणं
अहं तं पुरिसं दुहा फालियं करेमि) त्यार पछी में ते चोर पुरुषना जे ककडा
करी नाप्पा. (करित्ता सव्वओ समंता समभिलोएमि) जे ककडाओ करीने पछी
में तेहुं सारी रीते निरीक्षण्टु क्युं. (नो चैव णं तत्थ जीवं पासामि) पण्टु भने
त्यां एव देखाथो नही. (एवं तिहा, चउहा, संखेज्जहा फालियं करेमि—नो
चैव णं तत्थ जीवं पासामि) त्यार पछी में तेना पण्टु ककडा कया, चार ककडा कयां
यावत् संख्यात (सैकडे) ककडा कयां पण्टु छतां ओ त्यां भने एव देखाथो नही.

संख्येयथा वा स्फाटिते जीवं पश्येयं, तदा खलु अहं श्रद्धयां तदेव,
यस्मात् खलु भदन्त ! अहं तस्मिन् द्विधा वा त्रिधा वा चतुर्धा वा संख्ये-
यथा वा स्फाटिते जीवं न पश्यामि, तस्मात् सुप्रतिष्ठिता मे प्रतिज्ञा यथा-
तज्जीवः स शरीरं तदेव । ॥मू० १४५॥

टीका—‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि-ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं
कुमारश्रमणम्, एवमवादीत्-हे भदन्त ! अस्ति खलु एषा इयम् यावत्-याव-
त्पदेन-‘प्रज्ञात उपमा, अनेन पुनः कारणेन’ इत्येषां पदाना संग्रहः, प्रज्ञप्तः-
बुद्धिविशेषाद् उपमाऽस्ति, किन्तु अनेन वक्ष्यमाणेन कारणेन भवदुक्तो
जीवशरीरभेदो नो उपागच्छति, -न संगच्छते । तत्कारणं दर्शयितुमुपक-
मते-एवं खलु हे भदन्त ! एवं-वक्ष्यमाणरीत्या अहम् अन्यदा-अन्यस्मिन्
काले यावत्-यावत्पदेन-वाह्यायामुपस्थानशालायां षट्त्रिंशदधिकैकशततम-
सूत्रोक्तानेकगणनायकादिपदादारभ्य ‘अवकोटकवन्धनबद्धं’ इति पर्यन्त-
पाठोक्तविशेषणविशिष्टं चोरमुपनयन्ति, ततः खलु अहं तं पुरुषं सर्वतः-
ओषादमस्तकं, समन्तात् साङ्गोपाङ्गं समभिलोके सम्यग् आभिमुख्येन पश्या-
मि किन्तु तत्र-तस्मिन्-चोरे जीवं नैव पश्यामि, ततः खलु अहं त-चोरं
द्विधा-द्विखण्ड स्फाटित-विदारितं करोमि कृत्वा सर्वतः समन्तात् समभिलोके,

वा संखेज्जहा वा फालियंसि जीवं पासेज्जा तो णं अहं सहहेज्जा तं चेव)
अतः यदि भदन्त ! मुझे उस पुरुष के दो, तीन चार, अथवा संख्यान
ढुंढे करने पर उसका जीव दिखना तो मैं आपके इस कथन पर विश्वास
कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है. जीव शरीररूप नहीं
है, शरीर जीवरूप नहीं है (जम्हां णं भंते ! अहं तेसिं दुहा वा तिहा वा
चउहा वा संखिज्जहा वा फालियंसि जीवं न पासामि-तम्हा सुपइट्टिया मे
पइण्णा-जहा तं जीवो तं शरीरं तं चेव) जिस कारण से हे भदन्त ! मैंने

(जइणं भंते ! अहं तंसि एरिसंसि दुहा वा तिहा वा चउहा वा संखेज्जहा वा
फालियंसि जीवं पासेज्जा तो णं अहं सहहेज्जा तं चेव) अथी जे भदंत !
मैंने ते पुरइणा जे त्रसु थार अथवा संध्यात ककडाम्पो करवाथी ते नो एव जेवाभां आण्योडोत
'तो ढुं' तभारा आ कथन पर विश्वास करी देत के एव अन्य छे. अने शरीर अन्य छे. एव
शरीररूप नहीं अने शरीर एवइय नहीं. (जम्हां णं भंते ! अहं तोसिं दुहा वा
'तिहा वा चउहा वा संखिज्जहा वा, फालियंसि' जीवं न पासामि-तम्हा सुपइ
ट्टिया मे पइण्णा जहा तं जीवो तं शरीरं तं चेव) जे कारण्थी छे भदंत ! मे

किन्तु तत्रा जाव नैव खलु पश्यामि-अनेन प्रकारेण त्रिधा-त्रिखण्ड स्फाटितं, चतुर्धा-चतुःखण्डं स्फाटितं संख्येयधा-संख्यातखण्डं स्फाटितं करोमि, किन्तु नत्र तस्मिन् द्वित्रचतुःसंख्येयधा स्फाटिते चोरे जीव नैव पश्यामि, हे भदन्त! यदि खलु अहं तस्मिन्-बोरपुरुषे द्विधा वा त्रिधा वा चतुर्धा वा संख्येयधा वा स्फाटिते जीवं पश्येयं तदा-जीवदर्शने खलु अहं श्रद्धयां भवतोक्ते विश्वस्याम् तदेव-नो तज्जीवः स शरीरम् अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, इति, यस्मात् खलु हे भदन्त! अहं तस्मिन् चोरे द्विधा वा त्रिधा वा चतुर्धा वा संख्येयधा वा स्फाटिते जीवं न पश्यामि, तस्मात्-जीवादर्शनकारणात् मे-मम प्रतिज्ञा-स्वीकारः, सुमनिष्ठिता-सुस्थिरा यथा--तज्जीवः स शरीरं तदेव--नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति । ॥ सू० १४५ ॥

मूलम्-तए णं केसि कृतारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-मूढतणए णं तुमं पएसी ताओ कट्टुहाराओ, ! के णं भंते कट्टुहारए ? पएसी! से जहाणामए केइपुरिसो वणत्थी वणोवजीवी वणगवेसणयाए जोइं च जोइभायणं च गहाय कट्टाणं अडविं अणुपविट्ठा, तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए अडवीए-किंचिदेसं अणुपत्ता समाणा एगं पुरिसं एवं वयासी-अम्हे णं देवाणुप्पिया! कट्टाणं अडविं पविसामो, एत्तो णं तुमं जोइभायणाओ जोइं गहाय अम्ह असणं साहेज्जासि, अह तं जोइभायणे जोई विज्झवेज्जा एत्तो णं तुमं कट्टाओ जोइ गहाय

उसके दो तीन चार अथवा संख्यात टुकडे कर देने पर भी जीव नहीं देखा उम कारण से मेरा मन्तव्य कि जीव शरीररूप है और शरीर जीवरूप है. जीव भिन्न नहीं है, शरीर भिन्न नहीं है सुस्थिर है. ।

टीकार्थ स्पष्ट है ॥ सू० १४५ ॥

तेना ये त्रिषु थार अथवा सभ्यात ककडाओ कयां पछी पणु एव जेयो नडि ते ते कारण्थी भारी एव शरीररूप छे अने शरीर एवरूप छे, एव सिन्न नथी अने शरीर सिन्न नथी जेवी भान्यता सुस्थिर छे.

टीकार्थ स्पष्ट है छे. ॥ सू० १४५ ॥

अहं असणं साहेजासित्ति कट्टु कट्टाण अडविं अणुपविट्ठा । तए णं
 से पुरिसे तओ मुहुत्तंतराओ तेसिं पुरिसाणं असणं साहेमित्ति कट्टु
 जेणेव जोइभायणे तेणेव उवागच्छइ जोइभायणे जोइं विज्झायमेव
 पाइ, तएणं मे पुरिसे जेणेव से कट्टे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता
 तं कट्टुं सव्वओ समंता समभिलोएइ नो चेव णं तत्थ जोइं पासइ,
 तए णं से पुरिसे परियरं बंधइ फरसुं गिण्हइ त कट्टु दुहा फालियं
 करेइ सव्वओ समंता समभिलोएइ नो चेव णं तत्थ जोइं पासइ
 एवं जाव सखेज्जहा फालियं करेइ सव्वओ समंता समभिलोएइ
 नो चेव णं तत्थ जोइं पासइ, तए णं से पुरिसे तसि दुहा फालिए
 वा जाव सखेज्जहा फालिए वा जोइं अपासमाणे भंते तंते परितंते
 निव्विण्णे समाणे फरसुं एगते एडेइ, परियरं मुयइ एवं वयासी-
 अहो! मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहिएत्ति कट्टु ओहयमण-
 संकप्पे चिंता सोगसागरसंपविट्ठे करयलपल्लंथमुहे अट्टज्झाणोवगए
 भूमिगयदिट्ठिए झियायइ तए णं ते पुरिसा कट्टाइं छिंदति जेणेव से
 पुरिसे तेणेव उवागच्छंति, तं पुरिसं ओहमयणसंकप्प जाव झियायमाण
 पासंति एवं वयासी-किं णं तुमं देवाणुप्पिया! ओहयमणसंकप्पे जाव
 झियायसि? तए णं से पुरिसे एव वयासी-तुज्झं णं देवाणुप्पिया!
 कट्टा णं अडविं अणुपविसमाणा मम एवं वयासी-अहं णं देवाणु-
 प्पिया! कट्टाणं अडविं जाव अणुपविट्ठा, तए णं अहं तत्तो मुहुत्तंत-
 राओ तुज्झं असणं साहेमित्ति जेणेव जोइभायणे जाव झियामि, तए णं

तेसि पुरिसाणं एगे पुरिसे छेए दक्खे पत्तट्टे जाव उवएसलद्दे ते पुरिसे
 एवं वयासी-गच्छह णं तुज्जे देवाण्पिया ! पहाया कयबलिकम्मा
 जाव हव्वमागच्छेह जा णं अहं असणं साहेमिति कट्टु परिहरं बंधइ
 फरसुं गिण्हइ सरं करेइ सरेण अरणिं महइ जोइं पाडेइ जोइ संघु-
 व्खेइ तेसिं पुरिसाणं अमणं साहेइ, तए णं ते पुरिसा पहाया कय-
 बलिकम्मा जाव पोयच्छित्ता जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छंति,
 तए णं से पुरिसे तेसिं पुरिसाणं सुहासणवरगयाणं तं विउलं अ-
 सणं पाणं खाइमं साइमं उवणेइ। तए णं ते पुरिसा तं विउलं असणं
 पाणं खाइमं माइमं आसाएमाणा वीसाएमाणा जाव विहरंति।
 जिमियभुत्तुरोगयावि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया
 तं पुरिसं एवं वयासी-अहो ! णं तुमं देवाण्पिया जड्डु मूढे अपं-
 डिए णिविण्णाणे अणुवएसलद्दे जे णं तुमं इच्छसि कट्टुसि दुहा
 फालियसि वा जाव जोइ पासित्तए, से एएणट्टेणं पएसी ! एवं तुच्चइ
 मूढतराए णं तुमं पएसी ! ताओ कट्टुहाराओ ८ । सू० १४६ ।

छाया--ततः खलु केशिकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्—
 मूढतरकः खलु त्वं प्रदेशिन् ! ततः काष्ठहारात्, कः खलु भदन्त ! काष्ठ

‘तए णं केसिकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केसिकुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी) इमके
 बाद केशीकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा से इम प्रकार कहा (मूढतराए णं
 तुमं पएसी । ताओ कट्टुहाराओ) हे प्रदेशिन् ! तुम उस काष्ठहर से भी

‘तएणं केसिकुमारसमणं’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं केसिकुमारसमणं पएसिं रायं एवं वयासी) त्यार भाइ
 देशीकुमारश्रमणे प्रदेशी राजाने आ प्रभाळे कहुं (मूढतराए णं तुमं पएसी !
 ताओ कट्टुहाराओ) हे प्रदेशिन् ! तमे भने पेला काष्ठहर करतां यल्लु वधारे

हारकः ! प्रदेशिन् ! ते यथानामहाः कंचित् पुरुषाः वनार्थिनः वनोपजीविनः
वनगवेषणया ज्योतिश्च ज्योतिर्भाजनं च गृहीत्वा काष्ठानामटवीमनुप-
विष्टाः, ततः ग्वलु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकायाः यावत् किञ्चिद्देशम-
नुगताः सन्तः एकं पुरुषमेवमवादिपुः-वयं खलु तेऽनुप्रिय ! काष्ठाना-
मटवीं प्रविशामः, इतः ग्वलु त्वं ज्योतिर्भाजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माकम-

सुद्धो अधिक मूर्ख प्रतात हाते हो (कणं भते । कट्टहरण) हे मदन्त !
वह काष्ठहर कैसा था ? इस प्रकार जब प्रदेशीने कहा--तब (एमी)
केशीकुमारश्रमणने कहा--हे प्रदेशिन् ! सुनो (से जहानामए केइ पुरिसो
वणन्थी वणोवजीवी वणगवेषणयाए जोइं च जोइभायणं च गहाय कट्टाणं
अडविं अणुपविट्ठा) कितनेन वनार्थी और वनोपजीवी काष्ठहारक पुरुष थे।
वन की गवेषणा करते-र किसी एक अटवी में प्रविष्ट हो गये, साथ में
उन्होंने अग्नि - रखने का आधारभूत पात्र ले रखा था. उस अटवी
में इन्धन बहुत था. (तएण ते पुरिसा तीसे अग्गमियाए अडवीए
किंचि देसं अणुपत्ता समाणा) जब वे पुरुष उस ग्रामरहित अटवी में कुछ
दूर तक पहुंच चुके, तब (एगं पुरिसं एवं वयासी) उन्होंने एक पुरुष
से ऐसा कहा--(अग्हे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अडविं पविसामो) हे देवानु-
प्रिय ! हमलोग इस काष्ठप्रधान अटवी में आगे प्रविष्ट होते हैं (एत्तो-
णं तुमं जोइभायणाओ जोइं गहाय अग्हं असणं साहेज्जासि) तबतक तुम

भूषं लागे छ. (के णं भंते ! कट्टहारण) हे मदन्त ते काष्ठहर केयो इतो ? आ
प्रभाणु न्यारे प्रदेशी राज्ञ्ये कल्लु-त्यारे (एसी !) केशीकुमारश्रमणु कल्लु के हे
प्रदेशिन् ! सांभणे (से जहानामए केइ पुरिसा वणन्थी वणोवजीवी वणग-
वेषणयाए जोइं च जोइभायणं च गहाय कट्टाणं अडविं अणुपविट्ठा). केटलाक
वनार्थी अने वनोपजीवी काष्ठहारक पुइषो इता. तेअो वनमां शोधता शोधतां
कैध अेक अटवीमां प्रविष्ट थधः गया. तेभणु पोतानी साथे अग्नि तंभण अग्निने
भूकवामां भाटे आधारभूत पात्र लध राण्यां इता. ते अटवीमां लाकडाअो पुकण
प्रभाणुमां इता. (तएणं ते पुरिसा तीसे अग्गमियाए अडवीए किंचिदेसं
अणुपत्ता समाणा) न्यारे ते अघाते ग्रामरहित निर्जन अटवीमां थोडी हूरगथा
त्यारे (एगं पुरिसं एवं वयासी) तेभणु अेक पुरुषने आ प्रभाणु कल्लु. (अग्हे
ण देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अडविं पविसामो) हे देवानुप्रिय ! अने अघा काष्ठ
प्रधान अटवीमां वयु आगण प्रवेशीअे छीअे. (एत्तो णं तुमं जोइभायणाओ जोइं

शन साधयेः इति कृत्वा काष्ठानामटवीमनुप्रविष्टाः. ततः खलु स पुरुषः
ततो मुहूर्तान्तरात् तेषां पुरुषाणामशन माधयामीति कृत्वा यत्रैव ज्योति-
र्भाजन तत्रैव उपागच्छति, ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यातमेव पश्यति, ततः
खलु स पुरुषः यत्रैव तत् काष्ठ तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तत्

सुर्दीं पर रह कर अग्नि के इस पात्र से अग्नि को लेकर हम लोगों के
लिये भोजन तैयार करलो (अह तं जोइ भायणे जोई विज्ज्ञवेत्त) यदि
उस पात्र में अग्नि बुझ जावे (एत्तो णं तुम कट्टाओ जोइं गहाय अम्हं
असणं साहेज्जासि तिकट्टुं कट्टाण अडविं अणुपविट्ठा) तो देखो जो यह
लकड़ी पड़ी है सो इसमें से अग्नि को उत्पन्न कर लेना और हम-
लोगों के लिये भोजन बना लेना इस प्रकार कह कर वे उस इन्धन
वाली अटवी में आगे प्रविष्ट हो गये (तएणं से पुरिसे तओ मुहुत्त-
तराओ तेसिं पुरिसाणं असणं साहेमिच्चि कट्टुं जेणेव जोइभायणे तेणेव
उवागच्छइ) उनके चले जाने पर उस पुरुषने ऐसा विचार किया—कि
चलो जल्दी से उन लोगों के लिये भोजन तैयार करलूँ—ऐसा विचार
करके वह जहां पर वह अग्नि का पात्र रखा था वहां पर गया (जोइ-
भायणे जोइं विज्ज्ञायमेव पासइ) वहां जाकर उसने उस ज्योतिपात्र मे
अग्नि को बुझा हुआ ही देखा. (तए णं से पुरिसे जेणेव से कट्टे नेणेव

गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि) त्यां सुधी तमे अडीं रडीने अग्निना आ
पात्रमांथी अग्निने लथ अमारा माटे लोअन तैयार करे. (अह तं जोइभायणे
जोईं विज्ज्ञवेत्ता) ने आ पात्रमा अग्नि ओणवाध नय. (एत्तो णं तुमं कट्टा
ओ जोइं गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि ति कट्टुं कट्टाणं अडविं
अणुपविट्ठा) तो लुओ, आ लाकडु पउयुं छे, तेगाथी अग्नि उत्पन्न करी लेने
अने अमारा माटे लोअन तैयार करने. आ प्रमाणे भधी विगत समलवीने तेओ
ते पुध्कण लाकडावाणी अटवीमा आगण प्रविष्ट थध गया. (तए णं से पुरिसे
तओ मुहुत्ततराओ तेसिं पुरिसाणं साहेमिच्चि कट्टुं जेणेव जोइभायणे
तेणेव उवागच्छइ) तेओ भधा न्यारे त्यांथी जता रखा त्यारे तेणे आ प्रमाणे
विचार करीं के—साइं जल्दी तेओ भधा माटे जभवातुं तैयार करी लठं. आभ
विचार करीने ते न्यां अग्नि पात्र डतुं त्या गयो. (जोइभायणे जोइ विज्ज्ञाय-
मेव पासइ) त्या जधने तेणे ते अग्निपात्रमा अग्निने ओणवाध गयेल जं नेयो.
तए णं से पुरिसे जेणेव से कट्टे तेणेव उवागच्छइ) त्यार पधी ते पुइध

काष्ठं सर्वतः समन्तात् समभिलोकते, नो चैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, ततः खलु स पुरुषः परिकरं बध्नाति, गृह्णाति, तत् काष्ठं द्विधा स्फाटितं करोति सर्वतः समन्तात् समभिलोकते नो चैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, एवं यावत् संख्येयथा स्फाटितं करोति सर्वतः समन्तात् समभिलोकते नो चैव खलु तत्र ज्योतिः पश्यति, ततः खलु स पुरुषः तस्मिन् काष्ठे द्विधा स्फाटिते वा यावत् संख्येयथा स्फाटिते वा ज्योतिरपश्यन् श्रान्तः तान्तः पणितान्तः निर्विण्णाः सम पा

उवागच्छइ) इसके बाद वह पुरुष वहा गया जहां वह काष्ठ पडा हुआ था (उवागच्छत्ता तं कट्टं सव्वओ समंता समभिलोएइ) वहां जाकर क उसने उस काष्ठ को चारों ओर से अच्छी तरह से देखा (णो चैव णं जोइं पासेइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि दिखाई नहीं दी (तए णं से पुरिसे परियरं बंधइ) तब उस पुरुषने अपनी कमर बांधी (फरसुं गिण्हइ) कुल्लाडी उठाई और (तं कट्टं दुहा फालिहं करेइ) उस काष्ठ के दो टुकड़े कर दिये (सव्वओ समंता समभिलोएइ) फिर उसे चारों ओर से अच्छी तरह से उसने देखा (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) परन्तु उसमें उसे अग्नि दिखाई नहीं दी (एवं जाव संखेज्जहा फालिहं करेइ) इसी प्रकार से फिर उसके यावत् संख्यात टुकड़े तक कर दिये (सव्वओ समंता समभिलोएइ) परन्तु सब तरफ से अच्छी तरह देखने पर भी (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) उसे उनमें अग्नि दिखाई नहीं दी (तए णं से पुरिसे नसि कट्टंसि दुहा फालिए वा जाव संखेज्जहाफालिए वा जोइं अपास

त्यां गथे ज्थां पेक्षुं काष्ठं (लाकडुं) पडेक्षुं इतुं (उवागच्छत्ता तं कट्टं सव्वओ समंता समभिलोएइ) त्यां बध्ने तेण्णे ते लाकडाने यारे भाजुथी सारी रीते जेथुं (णो चैव णं जोइं पासेइ) पण्णु तेमां तेने अग्नि देभाये नहिं. (तए णं से पुरिसे परियरं बंधइ) त्यारे ते पुरुषे पोतानी डेडभांधी. (फरसुं गण्ह) कुल्लाडी हाथमां धीधी अने (तं कट्टं दुहा फालिहं करेइ) ते लाकडाना जे कडडा करी नाभ्या. (सव्वओ समंता समभिलोएइ) पण्णु तेण्णे यारे भाजुथी तेने जेथुं. (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) पण्णु तेमां तेने अग्नि जेवामां आव्थे नहिं. (एवं जाव संखेज्जहा फालिहं करेइ) आ प्रभाण्णे पण्णु तेण्णे तेना यावत् सेडडा कडडाये करी नाभ्या. (सव्वओ समंता समभिलोएइ) पण्णु तेमने यारे तरसुं सारी रीते जेवा छ्तांये (णो चैव णं तत्थ जोइं पासइ) तेने तेमनामां अग्नि देभाये नहिं. (तए णं से पुरिसे तं कट्टंसि दुहा फालियं वा जाव संखेज्जहा फालिए

शुभेकान्ते एडति (मुठचति) पकिरं मुठचति एवमवादीत् अहो ! मया
तेषां पुरुषाणामशनं नो साधितमिति अपरमनःसंकल्पचिन्ताशोकसागरस-
पविष्टः करनलपर्यस्तमुग्धः आर्तध्यानपगतः भूमिगतदृष्टिको ध्यायति ततः
खलु ते पुरुषाः काष्ठानि छिन्दन्ति, यत्रैव स पुरुषः तत्रैवोपागच्छन्ति,

माणे संते परितंते निविण्णे समाणे परसुं एगंते एडेइ) इसके बाद जब
उम पुरुष को उस काष्ठ के दो टुकड़े यावन संख्यात टुकड़े करने पर
भी जब अग्नि दिखाई नहीं दी, तब वह थक कर, क्लान्त होकर, परितान्त
होकर विशेष दुःखित हुआ और उसने उम कुल्हाड़ी को किसी एकान्त स्थान
में रख दिया (परियरं मुयइ) कमर का बंधन भी खोल दिया (एव
वयासी) इस प्रकार कहने लगा (अहो मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो
साहिं त्ति कट्टु ओ हयमणसंकप्पे चिन्तामोगसागरसपविष्टे करतलपलत्थमुहे
अट्टझाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! मैं उन पुरुषों के लिये
भोजन तैयार नहीं कर सका अब क्या करूं ! इस प्रकार विचार कर वह
बड़ा ही दुःखित हुआ उसकी मामूली मानसिक अभिलाषाएँ नष्ट हो गई
और वह चिन्ता, एव शोक रूपी समुद्र में निमग्न हो गया. कपोल पर
हथेली रख कर आर्तध्यान करने लगा दृष्टि उसकी नीचे जमीन की ओर
हो गई - इस प्रकार वह चिन्ता में फंस गया (तएणं ते पुरिसा कट्टाइं
छिंदंति) अब उन पुरुषोंने जब लकड़ियों को काटलिया- तब वे (जेणेव

या जोइं अपासमाणे संते तंते निविण्णे समाणे परसुं एगंते एडेइ)
त्यार पछी ज्यारे ते पुइपने ते काष्ठना भे कडाओ यावत्संयात कडाओ क्यो
पछी पछु ज्यारे अग्नि जेवाभा आओ नहि, त्यारे ते थाकीने, क्लान्त थधने,
परितान्त थधने विशेष दुःखित थये अने तेजे ते टुहाडीने काँठ जेकांत स्थाने भूकी
दीधी (परियरं मुयइ) कमरछं बंधन पण भोली नाथुं (एव वयासी) पछी
ते आ प्रभाणे कहेवा लाग्यो. (अहो मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहिं
त्ति कट्टु ओ हयमणसंकप्पे चिन्तामोगसागरसपविष्टे करतलपलत्थमुहे
अट्टझाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाइ) अरे ! हुं ते भावुसो माटे लोअन
अनावी थक्यो नहि हुवे शुं कइं ? आ प्रभाणे विचार करीने ते भूअ ज दुःखी
थये तेनी अधी मानसिक थच्छाओ नष्ट थध गध, अने ते चिन्ता अने शोअइपी
समुद्रमां निमग्न थध गयो कपाण पर हुथेणी भूकीने ते आर्तध्यान करवा लाग्यो
तेनी नजर जमीन तरइ नीचे थध गध, आभ ते चितामां डूपी गयो. (तएणं
ते पुरिसा कट्टाइं छिंदंति) हुवे ते भावुसोओ काँठोओ कापी लीधा त्यारे तेओ

तं पुरुषमपहतमनःसंकल्पं यावत् ध्यायन्तं पश्यन्ति. एवमवादिषुः—किं खलु त्वं देवानुप्रिय ! अपहतमनःसंकल्पः यावत् ध्यायसि ? ततः खलु स पुरुष एवमवादीत्—यूय खलु देवानुप्रियाः! काष्ठानामटवीमनुप्रविशन्तः मम एवमवादिषुः—वय खलु देवानुप्रिय ! काष्ठानामटवी यावत् अनुप्रविष्टाः।

से पुरिसे तेणेव उवागच्छति) जडा वह पुरुष था, वहां पर आये तं पुरिसं ओहयमणसंक्रुप जाव झियायमाणं पासंति) वहां आकरके उन्होंने उस पुरुष को मानसिक अभिलाषाओं से रहित हुआ और शोक तथा चिन्तारूपी सागर में निमग्न हुआ, कपोल पर हथेली रख कर आर्तध्यान करता हुआ, एवं नीचे दृष्टि किये हुए देखा, देग्वकर फिर उन्होंने (एवं वयासी) उससे ऐसा कहा—(किं णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंक्रुपे जाव झियायसि) हे देवानुप्रिय ! तूम किस कारण से अपहतमनःसंकल्प वाले बने हुए हो और यावत् चिन्ता कर रहे हो (तए णं से पुरिसे एव वयामा) तब उस पुरुषने उनसे ऐसा कहा—(तुज्झे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अडविं अणुपविसमाणा मम एवं वयासी) हे देवानुप्रियो ! आपलोग जब लकड़ी काटने के लिये अटवी में प्रविष्ट होने के लिये तैयार हुए थे—तब मुझसे ऐसा कहा था—(अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अडविं जाव अणुपविट्ठा) हे देवानुप्रिय हम लोग लकड़ो काटने के लिये इस जंगल में आगे जाते

(जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छंति) जथा ते पुइषे डतो, त्या गया. (तं पुरिसं ओहयमणसंक्रुपं जाव झियायमाणं पासंति) त्यां जेधने तेभण्णे ते पुइषने मानसिक धरुछाओ जेनी नष्ट पायी छे जेवो अने शोक तेमज्ज चिंता इपी समुद्रमां निमग्न थयेल कपोल पर डथेणी मूडीने आर्तध्यान करतो अने नीची दृष्टि करेवो जेयो. जेधने पछी तेभण्णे (एवं वयासी) तेने आ प्रभाण्णे क्खं—(किं णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंक्रुपे जाव झियायसि) हे देवानुप्रिय ! तमे था करणुथीअपडत मन.संक्रुपवाणा थयं गया छे अने यावत् चिंता करी रह्या छि. (तए णं से पुरिसे एवं वयासी) त्तारे ते पुइषे तेमने आ प्रभाण्णे क्खं. (तुज्झे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अडविं अणुपविसमाणा मम एवं वयासी) हे देवानुप्रियो ! तमे सौ ज्यारे लाकडाओ कापवा भाटे अटवीमा प्रविष्ट थवा तैयार थया डता त्तारे मने आ प्रभाण्णे क्खं डतुं—(अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कट्टाणं अडविं जाव अणुपविट्ठा) हे देवानुप्रिय ! अमे जथा लाकडाओ कापवा भाटे आ अटवीमां आगण जेधये छीये. तो तमे त्या सुधी अज्जि पात्रमांथी अज्जि लधने

ततःखलु अहं ततो मुहुत्तान्तरात् युष्माकमशन साधयामि' इति कृत्वा
यत्रैव ज्योतिर्भाजन यावत् न्योयामि, ततः खलु तेषां पुरुषाणामेकः पुरुषः

हं-सो तुम तब तक अग्नि के पात्र से अग्नि को लेकर हम लोगों के लिये भोजन बनाना. यदि उम पात्र में अग्नि बुझ जावे तो तुम इस काष्ठ से ज्योति-अग्नि को तैयार कर लेना और हम लोगों के लिये भोजन बनाना, इस प्रकार कह कर आपलोग अटवी में प्रविष्ट हो गये, (तएणं अहं ततो मुहुत्तान्तरात् तुज्जे अस्मिन् साहेमि त्ति कट्टुं जेणेव जोइभायणे जाव झियामि) इसके बाद मैंने ऐसा विचार किया कि चलो बहुत जल्दी आप लोगों के लिये भोजन बनादूँ-ऐसा विचार कर ज्यों ही मैं जहाँ वह ज्योति भाजन (अग्निपात्र) रखा था, वहाँ पर गया-तो क्या देखता हू कि उसमें अग्नि बुझी पड़ी है. फिर मैं जहाँ वह काष्ठथा-वहाँ पर गया, वहाँ जाकर मैंने उस काष्ठ को अच्छी तरह से सब ओर से देखा, परन्तु मुझे वहाँ अग्नि दिखाई नहीं दी, फिर मैंने अपनी कमर कसी और कुठार को लेकर उस काष्ठ के दो टुकड़े किये फिर मैंने उसे सब ओर से अच्छी तरह देखा परन्तु फिर भी मुझे वहाँ अग्नि के दर्शन नहीं हुए इस तरह फिर मैंने उसके तीन चार यावत् सैकड़ों तक टुकड़े कर डाले और उन सब को अच्छी तरह से चारों ओर से देखा. परन्तु वहाँ कहीं भी

अमारा माटे भोजन तैयार करे तो पात्रमा अग्नि ओणवध नय तो तमे ते काष्ठमाथी अग्नि उत्पन्न करी लेजे. अने अमारा माटे भोजन तैयार करजे. आम कडिने तमे अधा अटवीमा प्रविष्ट थध गया इता (त एणं अहं ततो मुहुत्तान्तरात् तुज्जे अस्मिन् साहेमि त्ति कट्टुं जेणेव जोइभायणे जाव झियामि) त्थार पछी मे आ नतने विचार करीं के थालो, गहुं न जलही तमारा माटे भोजन तैयार करी लउ आम विचार करीने हुं न्यारे अग्निपात्र नथा राण्यु इतुं त्या गये तो तेमा भने अग्नि ओणवध गथेल देभाये. त्थार पछी हुं नया लाकडुं इतुं त्या गये. त्या नधने मे ते काष्ठने सारी रीते जेथुं, थारे तरइ जेथुं पणु भने तेमा अग्नि देणायो नडि पछी मे कम्मर पाधी अने कुडाडी लधने ते काष्ठ (लाकडा)ना जे कडडायो कर्या. पछी ते कडडायोने थारे तरइथी सारी रीते जेथो भने तेमा पणु अग्नि देणायो नडि. आम मे तेना पणु थार त सभ्यात् कडडायो करी नाण्या अधा कडडायोने थारे तरइथी सारी रीते जेथो पणु त्या भने नरा पणु अग्नि देभाये नडि थारे हुं धार्कने, तान्त, परितान्त थधने अने जेद

छेकः दक्षः प्राप्तार्थः यावत् उपदेशालब्धः तान् पुरुषान् एवमवादीत्--
गच्छत खलु यूय देवानुप्रियाः ! स्नाताः कृतबलिकर्माणः यावत् शीघ्रमा-
गच्छत यावत् खलु अहमशनं साधयामीति कृत्वा परिकरं बध्नाति पर्युं

सुझे अग्नि का नामतक भी नहीं पाया. तब मैंने थककर तान्त, परि-
तान्त होकर और खेद विन्न होकर कुल्हाड़ी को एकान्त में एक ओर
रख दिया और कमर को खोल दिया—फिर मैंने ऐसा विचार किया—मैं
अपहतमनः सकल्पवाला बना हुआ शोक एवं चिन्तारूपी समुद्र में डूबा
हूँ. कपोल पर हथेली रखकर बैठा हुआ हूँ, आर्त्तध्यान कर रहा हूँ
और लज्जा के मारे जमीन की ओर देख रहा हूँ (तएणं तेमिं पुरि-
माणं एगे पुरिसे छेए दक्खे, पत्तट्टे जाव उवएसलद्धे ते पुरमे एव
वयासी) इस के बाद उन पुरुषों के बीच में एक पुरुष ऐसा था जो
छेक—अवसर का ज्ञाता था, दक्ष—कार्यकुशल था, प्राप्तार्थ—अपनी कुशलता
से जिसने साध्यार्थ—को अधगत कर लिया था, यावत् गुरुपदेश जिमने
प्राप्त किया था. उसने उन वाष्टहारक पुरुषों से ऐसा कहा—(गच्छह ण
तुज्जे देवाणुप्पिया ! ण्हाया, कयबलिकम्मा जाव हव्वमागच्छेह, जा णं
अहं असण साहेमि ति कट्टुं परिकरं बध्दइ) हे देवानुप्रियों ! आप लोग
जाइये, स्नान कीजिये, बलिकर्म—काक आदि को अन्नादि का भाग देने

भिन्न थछने कुहाडीने ऐक तरइ मूठी दीधी अने भांधेली डेड भोडी नाभी पछी
भे आ जतने विचार कर्यो. हुं ते भाणुसे भाटे बोजन भनावी शक्यो नहि.
आ डेवी दुःख अने आश्चर्यनी वात छे आ प्रभाणे विचार करीने हुं अपहत
मनः सकल्पवाणे थछने शोक अने चिंताइपी समुद्रमां रुन थछने, कपोल पर
हथेली मकीने भेठो छु, अने आर्त्तध्यान करी रह्यो छुं. शर्मथी मारी नजर नीची
जमीन तरइ वणी गछ छे (तएणं तेमिं पुरिमाणं एगे पुरिसं छेए दक्खे,
पत्तट्टे जाव उवएस लद्धे ते पुरिसे एवं वयासी) त्थार पछी ते भाणुसेमा ऐक भाणुस
अवेो पय्य डतो डे डे छेक येअ्य समयने पिछाणुनार, दक्ष—कार्यकुशल प्राप्तार्थ—
पोतानी कुशलताधी—नेणे साध्यार्थ प्राप्त करि लीधो छे, अवेो यावत् गुरुपदेश नेणे
प्राप्त कर्यो छे अवेो डतो. तेणे काष्टहारक भाणुसेने आ प्रभाणे कहुं (गच्छह णं
तुज्जे देवाणुप्पिया ! ण्हाया, कयबलिकम्मा जाव हव्वमागच्छेह, जा णं अहं
असण साहेमि ति कट्टुं परिकरं बध्दइ) हे देवानुप्रियो (तमेलेके स्नान करो,
बलिकर्म—काकरा वगेरे अन्न वगेरेना भाग आपीने निश्चिन्त थछ जाव. यावत्

गृह्णाति गृहीत्वा शरं कराति शरेण अरणिं मथनानि ज्योतिः पातयतिः ज्योतिः
संधुक्षते तेषां पुरुषाणामशनं माध्र्यात् ततः खलु ते पुरुषाः स्नाना
कृतबलिकर्माणः यावत् प्रायश्चित्ताः यत्रैव म पुरुषः तत्रैव उपागच्छन्ति, ततः
खलु म पुरुषः तेषां पुरुषाणां सुखासनवरगताना नद् विपुलमशनं पान खाद्विमं

रूप कार्यं से निश्चिन्त हो जाइये, यावत् भौतिक मंगलरूप प्रायश्चित्त कर
लीजिये और फिर जल्दी आजाइये तबतक मैं आप लोगों के लिये भोजन
तैयार करता हूँ। ऐसा कहकर उसने अपनी कमर कसी आग (फरसुं
गिण्हड) कुल्हाडी को उठाया (मरं करेड, शरेण अरणिं महेड) उमसे
पहिले उसने लडकी को इतना छीला कि जिससे वह बाण के जैसी
शलाई के रूप में हो गई, फिर उमसे उसने अरणिक्वाष्ठ का मथन किया
(जोड पाडेड) मथन करने से अग्नि उममें प्रकट हो गई (जोडं संधुक्खेः)
प्रकट हुई उस अग्नि को उसने पवन वगैरह आदि साधनों से विशेष
चैतन्य किया, अर्थात् धौका (तेमिं पुरिसाण असणं साहेड) अग्नि के
तैयार हो जाने पर फिर उसने उन सब पुरुषों का भोजन बना दिया (तएण
ते पुरिसा ण्हाया कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता जेणेव से पुरिसे तेणेव
उवागच्छड) इतने में वे पुरुष स्नान करके, बलिकर्म—काकभादि हो अन्नादि का
भाग दे करके यावत्—भौतिक मंगलरूप प्रायश्चित्त करके उस स्थान पर आये-

भौतिक मंगलरूप प्रायश्चित्त करी दो, अने पछी जल्दी अडीं उपास्थित थय जव,
आटलाभा हुं तमारा भाटे लोअन तैयार कर आम कडीने तेणे पोतानी डेड
भांधी अने (फरसुं गिण्हड) कुहाडी हाथमां लीधी (मरं करेड शरेण अरणिं
महेड) तेणे सौ पडेला लाकडाने अेवी रते छाल्यु डे अेथीते भाषु जेवी थलाका
अेपुं थयुं पछी तेनाथी तेणे अरखि कष्टनुं मथन क्युं (जोड पाडेड) मथन
करवाथी तेमाथी अाग्न प्रकट थय गयो (जोडं संधुक्खेड) प्रकट थयेत ते अग्निने
पवन वगर साधनेथी तेने सविशेष प्रअवलित कथी (तेमिं पुरिसाण असणं
साहेड) अग्नि अ्यारे प्रअवलित थय गयो त्यारे तेणे ते अधा दोडे भाटे लोअन
तैयार क्युं (तएण ते पुरिसा ण्हाया कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता जेणेव
से पुरिसे तेणेव उवागच्छड) आटलाभा ते अधा भाषुसे स्नान करीने, अलिकर्म—
काकअ वगेरेने अन्न वगेरेने लाग आपीने यावत् भौतिक मंगलरूप प्रायश्चित्त करीने
ते अयाअे आवी गया, अया ते पुडु डतो, तएणं मे पुरिसे तेमिं पुरिसाणं
सुहासणवरगयाणं तं विउलं असणं पाणं खाइमं माइमं उवणेड तएण ते

स्वादिसम्-उपनर्थात्, ततः खलु ते पुरुषाः तद् विपुलमशनं पानं स्वादिमं
स्वादिसम् आस्वादयन्तो विस्वादयन्तो यावद् विहरन्त, जिमितभुक्तो, त
रागता अपि च खलु मन्तः आचान्ताः चांक्षा. परमशुचिभृताः तं पुरुष-
मेवमवादिषुः-अहो !! खलु त्वं देवानुपिय ! जडः मूढः अपण्डितः निर्विज्ञानः
अनुपदेशलब्धः यः खलु त्वामच्छमि काट' द्विधा स्फाटिते वा यावत्

जहां कि वह पुरुष था. (तएण से पुरिसे तेमिं पुरिसमाणं मृदासणवगया णं
तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवणेइ, तएणं ते पुरिमा तं विउलं अमण
पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा जाव विहरति) वहा
आकरके वे सबके सब पुरुष अपनेर सुखासन पर बैठ गये. उनके बैठ
जाने पर फिर उस पुरुष ने उस प्रचुर खाद्य आदि सामग्री को लाकर
उनके समक्ष रख दिया और परोस दिया, उन सबने उस भोजन सामग्री
चारों प्रकार के आहार को-उसका स्वाद जानने के लिये पहिले तो
चखा, रुचि से उसे खाया (जिमिगभुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता
चोक्खा परमसुइभूया तं पुरिसं एवं वयासी) खापीकर जब वे निश्चिन्त
हो गये-तब वहां से उठे, और उठकर आचमन किया, आचमन-कुछा
करने के बाद फिर उन्होंने अपने हाथ मुह आदि को अच्छे प्रकार
से धोकर साफ किया. इस तरह परम शुचियुक्त होकर फिर उन्होंने
उस पहिले पुरुष से ऐसा कहा-(अहो णं तुमं देवानुपिय ! जड्हे, मूढे,
अपण्डिणं निर्विज्जाने, अनुवएसलद्धे, जे णं तुमं इच्छसि कट्टंसि दुहा

तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा जाव
विहरति) त्यां जधने तेओ अथा पुइषे पोतपोताना स्थाने सुखासन पर ऐसी
गया. तेओ ज्यारे ऐसी गया त्यारे ते पुइषे ते प्रचुर आद्य वगेरे सामग्रीने लावीने
तेमनी सामे मूकी हींधी अने पीरसी हींधी. तेओ अथाये ते लोअन सामग्रीने
यारे प्रकारना खाड(रने-तेना स्वाहने जल्युवा माटे पडेला तो तेने थाज्यो पछी
पूअ इथिपूर्वक तेने जग्था (जिमिगभुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता
चोक्खा परमसुइभूया तं पुरिसं एवं वयासी) आध-पीने ज्यारे तेओ निश्चिन्त
थध गया त्यारे तेओ त्याथी उला थया अने उला थधने आचमन-डोगणा-करीने
पछी तेमणे पोताना हाथ भां वगेरेने सारी रीते धाधने स्वच्छ कर्था. आ प्रभाणे
परम शुचियुक्त थधने पछी तेमणे ते पडेला पुरुषने आ प्रभाणे कहुं. (अहो णं
तुमं देवानुपिय ! जड्हे ! मूढे अपण्डिणं निर्विज्जाने, अनुवएसलद्धे, जे णं

ज्योतिर्द्रष्टुम्, तदेतेनार्थेन प्रदेशिन् ! एवमुच्यते मूढतरकः खलु त्वं
प्रदेशिन् ! ततः काष्ठहारात् । ॥ सू० १४६ ॥

टीका--'तए णं केसिकुमारसमणे' इत्यादि-ततः खलु केशिकुमारश्र-
मणः प्रदेशिन राजानमेवमवादीत्-हे प्रदेशिन ! ततः-तस्मात् काष्ठहारात्
पुरुषात् त्वं मूढतरकः-अतीव मूर्खः खलु प्रतिभासि ! तत्र प्रदेशी हेतुं
पृच्छति-हे भदन्त ! कः खलु असौ काष्ठहारकः ? केशी प्राह-हे प्रदेशिन् !

फालियंसि वा जाव जोइं पासित्तए) हे देवानुप्रिय ! तुम जड़ हो, अग्नि
का उत्पन्न करने के साधन से अनभिज्ञ हो, मूर्ख हो-विवेक रहित हो,
अपण्डित हो-प्रतिभा से युक्त नहीं हो, निर्विज्ञान-कुशलता तुम में नहीं
है, अनुपदेशलब्ध-तुम ने इस विषय में गुरु का उपदेश प्राप्त नहीं किया
है, अर्थात् अशिक्षित हो, इसीलिये लकड़ी में अग्नि को पाने के लिये
तुमने उसे फाड़ा है, दो टुकड़े किये है, तीन टुकड़े किये हैं, चार टुकड़े
किये हैं. यावत् संख्यात टुकड़े किये हैं, फिर भी तुम उसमें अग्नि
नहीं देख सके-अतः तुम सच्चेरूप में मूढत्वाद पूर्वोक्त विशेषणों से शून्य
नहीं हो. (से एएणट्टेणं पएसी ! एवं वुच्चइ मूढतराए णं तुमं पएसी !
ताओ कट्टहाराओ) इस प्रकार से मूढतरत्वसाधक दृष्टान्त का कथन कर
उपसंहार करते हुए अब केशी प्रदेशी से कहते हैं-हे प्रदेशिन् ! तुम
इस दृष्टान्तोक्त पुरुष की अपेक्षा भी अधिक मूर्ख हो जो तुम पुरुष के
शरीर को छिन्न भिन्न करके उसके जीव को देखने के लिये अभिलाषी बने हो ।

एवं इच्छसि कट्टंसि दुहा फालियंसि वा जाव जोइं पासित्तए) हे देवानु-
प्रिय ! तमे ७४ छे, अग्नि उत्पन्न करवाना साधनथी अनभिज्ञ छे, मूर्ख छे,
विवेक रहित छे, अपण्डित छे, प्रतिभा रहित छे, निर्विज्ञान-कुशलता रहित छे,
अनुपदेशलब्ध-तमोअये आ आभतमा शुद्धो उपदेश प्राप्प कथी नथी, अट्टले के तमे
आशिक्षित छे, अथी ७ लाकडीभांथी अग्नि भेणववा भाटे तमे तेना ककडा करी
नाभ्या छे. जे ककडा करी नाभ्या छे. त्रयु ककडा करी नाभ्या छे, चार ककडाअये करी
नाभ्या छे यावत् संख्यात ककडाअये करी नाभया छे. छतां अये तमने तेमां अग्नि
हेभाये नडि. अथी तमे भरेभर मूढत्व वगेरे पूर्वोक्त विशेषणोथी रहित नथी.
(से एएणट्टेणं पएसी ! एवं वुच्चइ मूढतराए णं तुमं पएसी ! ताओ कट्ट-
हाराओ) आ प्रमाणे मूढतरत्व साधक दृष्टान्त कडीने उपसंहार करता केशी प्रदेशीने
कडेवा लाज्या के छे प्रदेशिन् ! तमे आ दृष्टान्तमा आवेल पुग्ग करतां पणु वधारे
मूर्ख छे केभके तमे भाणुसना शरीरना ककडा करीने तेमना अवनो जेवा तत्पर थया हुवा,

ते यथानामकाः अनिर्दिष्टनामानः केचित् पुरुषाः वनार्थिनः-वनमेवार्थोऽ-
 स्त्येषामिति वनार्थिनः-वनप्रयोजनयुक्ताः वनोपजीविनः वनेन वन्यकाष्ठादिना
 उपजीविनः जीवननिर्वाहकारिणः काष्ठहारका इत्यर्थः, वनगवेषणया-वनजिज्ञा
 सया ज्योतिः-अग्निं च ज्योतिर्भाजनम्-अग्निपात्रं च गृहीत्वा काष्ठानाम्-
 इन्धनानाम् स्थानभूताम् अटवीम् अनुप्रविष्टाः, ततः-तदनन्तरम् ते पुरुषाः
 तस्याः अग्रोमिकायाः-जनवसतिरहितायाः, अटव्याः किञ्चिद्देशं-स्वल्पदे-
 शम् अनुप्राप्ताः-क्रमेण गताः सन्तः एक पुरुषम् एवमवादिषुः-हे देवानुप्रिय!
 वयं काष्ठानामटवीं प्रविशामः, इतः खलु त्वं ज्योतिर्भाजनात्-अग्निपात्रात्
 ज्योतिः अग्निं गृहीत्वा अस्माकमशनं साधयेः-निष्पादयेः. अथ-भोजन-
 निष्पादनसमये ज्योतिर्भाजने तत्-पूर्वतो रक्षितं ज्योतिः विध्यायेत्--
 शाभ्येत् तदा इतः-एतस्मात् काष्ठात् खलु त्वं ज्योतिः-अग्निं गृहीत्वा
 अस्माकमशनं साधयेः इति कृत्वा-इत्याज्ञाप्य ते काष्ठहारकाः काष्ठाना
 मटवीमनुप्रविष्टाः, ततः-तेषां गमनानन्तरं खलु स पुरुषः ततः-मुहूर्ता-
 न्तरात्-किञ्चित्कालानन्तरम् तेषां-वनं प्रविष्टानां पुरुषाणाम् अशनं साध-
 यामीति कृत्वा-इत्यभिप्रेत्य यत्रैव-यस्मिन्नेव स्थाने ज्योतिर्भाजनमासीत्
 तत्रैव-तस्मिन्नेव स्थाने उपागच्छति, परन्तु ज्योतिर्भाजने-अग्निपात्रं ज्योतिः-
 अग्निम् विध्यातमेव-प्रशान्तमेव पश्यति, ततः खलु सः-अशननिष्पादनार्थी
 पुरुषः यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छति. उपागत्य तत् काष्ठं सर्वतः
 समन्तात् समभिलोकते नो चैव-नैव खलु तत्-काष्ठे ज्योतिः-बहिं पश्यति.
 ततः-तदनन्तरम् स पुरुषः परिकरं कटिवन्धनं वध्नाति परशुं-कूठारं गृह्णाति तत्
 काष्ठं द्विधा स्फाटितं-विदारितं करोति-सर्वतः समन्तात् समभिलोकते नो
 चैव खलु तत्-काष्ठे ज्योतिः-बहिं पश्यति, एवम्-अनेन प्रकारेण यावत्-
 यावत्पदेन 'त्रिधा स्फाटितं चतुर्धा स्फाटितम्' इत्येषां पदानां सर्व्वे
 बोध्यः, संख्येयधा-संख्यातखण्डं स्फाटितं करोति कृत्वा सर्वतः सम-
 न्तात् समभिलोकते, नो चैव तत् ज्योतिः पश्यति, ततः-तदनन्तरम् खलु
 स पुरुषः तस्मिन्-कृतकूठारप्रहारे काष्ठे द्विधा स्फाटिते यावत् संख्येयधा-
 संख्यातखण्डशः स्फाटिते वा ज्योतिः अपश्यन् श्रान्तः-श्रमं प्राप्तः, तान्तः
 -श्रान्तः, परितान्तः-विशेषतःवलान्तः, निर्विणः-खिन्नः सन् परशुं-कू-
 ठारम् एकान्ते-रहसि पडति-देशीयोऽद्यमेडधातुर्मोचनार्थः, तेन 'मुञ्चति'
 इत्यर्थः. मुञ्चया परिकरं-कटिवन्धनं मुञ्चति, मुञ्चया एवमवादीत्-अहो!!-

विस्मयोऽत्र यत् मया मन्दभाग्येन तेषां पुरुषाणामशन-भोजनं नो साधि-
तम्, इति कृत्वा-इति विचिन्त्य आहतमनःसंकल्पः-नष्टमनोऽभिलाषः,
चिन्ताशोकसागरसंप्रविष्टः--चिन्ताशोरूपमुद्रनिमग्नः, करतलपर्यस्तमुखः-
कार्तृनिहितकालः, मुखशब्दस्य मुत्रावयवकपोलपरत्वात्, आर्तध्यानो-
पगतः-आर्तध्यानयुक्तः, भूमिगतदृष्टिक-पृथिवीतलनिरीक्षणतत्परः-अधो-
मुखः, ध्यायति-चिन्तां करोति. तत इतश्च ते-अटवीमनुप्रविष्टाः पुरुषाः
काष्ठानि छिन्दन्ति, छिन्त्वा यत्रैव सः अशननिष्पादनार्थी पुरुषः तत्रैव उपा-
गच्छन्ति, उपागत्य त पुरुषम् अपहतमनःसंकल्पं यावत्-यावत्पदेन
“चिन्ताशोकसागरसंप्रविष्टः, करतलपर्यस्तमुखम्, आर्तध्यानोपगतं, भूमि-
गतदृष्टिकम्” इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, ध्यायन्त-चिन्तां कुर्वन्तं

टीकार्थ स्पष्ट है-इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है-कि जिस प्रकार
प्रथम पुरुष को काष्ठ में अग्नि के दर्शन नहीं हुए और द्वितीय पुरुष
को हो गये. उसी प्रकार तुम्हें भी उस चोर पुरुषके शरीर में छिन्नभिन्न
करने पर भी उसको जीव के दर्शन नहीं हो सके एतावता यह कैसा
कहा जा सकता है कि जीव दिखाई नहीं देने से जीव नाम का कोई
स्वतंत्र पदार्थ नहीं है. इसलिये जीव और शरीर एक हैं ऐसी तुम अपनी मान्यता
का परित्याग कर यह मानो कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है. ये
दोनों एक नहीं हैं. यहां सूत्र में जो ‘करतलपर्यस्तमुखः’ ऐसा पद आया
है -उनमें मुखशब्द मुख के अवयवभूत कपोल अर्थ में आया है ‘अपहत-
मनःसंकल्प जाव’ में जो यह यावत् पद आया है-उससे ‘चिन्ताशोक-
सागरसंप्रविष्टः, करतल पर्यस्तमुखः, आर्तध्यानोपगतः, एवं भूमिगतदृष्टिकः’

टीकार्थ आ सूत्रनी स्पष्ट न छि आ सूत्रनी भावार्थ आ प्रमाणे छि डे
नेम पहिला भाष्यसने काष्ठमां अग्निना दर्शन थया नथी अने भीज भाष्यसने थया
तेमज ते चोर पुत्रेण शरीरना कडडे कडडा करवा छतांये तेना एवना
दर्शन तमने थया नथी अनाथी आ डेवी रीते कडी शक्य डे एव देभातो नथी.
तेथी एव नामनेो केछ स्वतंत्र पदार्थ न नथी- अथी एव अने शरीर अेक न छि.
अेवी तमारी ने मान्यता छि तेने तमे छोडी हो अने आ वात स्वीकारी बोडे एव
भिन्न छि अने शरीर भिन्न छि अेयो अने अेक नथी. अडीं सूत्रमां अे ‘करतल
पर्यस्तमुखः’ आ अतद्युं पद छि तेमा मुष् शब्द मुष्ना अवयवभूत कपोल
अर्थमा आवेल छि “अपहतमनः संकल्पं जाव”-मां अे यावत् पद आवेल छि,
तेथी ‘चिन्ताशोकसागरसंप्रविष्टः करतलपर्यस्तमुखः आर्तध्यानोपगतः एवं

पश्यन्ति, दृष्ट्वा एवम् अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम्, अवादिषुः—किं—
कारणं खलु ? हे देवानुमिय ! त्वम् अपहतमनःमंकल्पः यावत्-ध्याय-
सि ?—चिन्तां करोषि ?, ततः—तदनन्तरम् खलु स पुरुषः एवमवादीत्—हे
देवानुमियाः ! यूयं खलु काष्ठानामटवीमनुपविशन्तः मम एवमवादिष्ट—कथि
तवन्तः, किमित्याह—हे देवानुमिय ! वयं खलु काष्ठानामटवीं यावत्—याव-
त्पदेन “प्रविशामः, इतःखलु त्वं ज्योतिर्भाजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माकमशनं
साधयेः, अथ तज्ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यायेत् इतः खलु त्वं काष्ठात् ज्यो-
तिर्गृहीत्वाऽस्माकमशनं साधयेरिति कृत्वा काष्ठानामटवीम्” इत्येषां
पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, अनुपविष्टाः, ततः—तदनन्तरं खलु अहं ततो—मुहु-
र्तन्तरात् युष्माकमशनं साधयामीति कृत्वा यत्रैव ज्योतिर्भाजनं यावत्—याव-
त्पदेन “तत्रैव उपागच्छामि ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यातमेव पश्यामि, ततः
खलु अहं यत्रैव तत् काष्ठं तत्रैव उपागच्छामि, उपागम्य तत् काष्ठं
सर्वतः समन्तात् समभिलोके नो चैव तत्र ज्योतिः पश्यामि, ततः खलु अहं
परिकरं वप्रामि परशुं गृह्णामि तत् काष्ठं द्विधा स्फाटितं करोमि कृत्वा
सर्वतः समन्तात् समभिलोके. नो चैव तत्र ज्योतिः पश्यामि, एवं यावत्
त्रिधा चतुर्धा संख्येयधा स्फाटितं करोमि सर्वतः समन्तात् समभिलोके नो
चैव तत् ज्योतिः पश्यामि, तत् खलु अहं तस्मिन् काष्ठे द्विधा स्फाटिते
वा यावत् त्रिधा चतुर्धा संख्येयधा वा स्फाटिते ज्योतिरपश्यन् श्रान्तः
तान्तः परितान्तः निर्विण्णः सन् परशुमेकान्ते (एडामिदे०) मुञ्चामि मुक्त्वा

इन पदों का ग्रहण हुआ है। ‘काष्ठानामटवीं यावत्’ में आये हुए यावत्पद से
‘प्रविशामः. इतः खलु त्वं ज्योतिर्भाजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माकमशनं साधयेः,
अथ, तज्ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यायेत्—इतः खलु त्वं काष्ठात् ज्योतिर्गृहीत्वा
अस्माकमशनं साधयेरिति कृत्वा काष्ठानामटवीम्’ इस पाठ का संग्रह हुआ
है। ‘एव यावत् संख्येयधा’ में आये हुए यावत्पद से त्रिधा स्फाटितं,
चतुर्धा स्फाटितम्’ इन पदों का संग्रह हुआ है। ‘एडति’ यह शब्द देशीय

भूमिगत दृष्टिक’ आ पदोनुं अडथु थयुं छे. ‘काष्ठानामटवीं यावत्’ भां आवेल
यावत् पदथी ‘प्रविशामः इतः खलु त्वं ज्योतिर्भाजनात् ज्योतिर्गृहीत्वाऽस्माक-
मशनं साधयेः, अथ तज्ज्योतिर्भाजने ज्योतिर्विध्यायेत्—इतः खलु त्वं
काष्ठात् ज्योतिर्गृहीत्वा अस्माकमशनं साधयेरिति कृत्वा काष्ठानामटवीं’
आ पाठने। संग्रह थयो छे ‘एवं यावत् संख्येयधा’ भां आवेल यावत् पदथी
‘त्रिधा स्फाटितं चतुर्धास्फाटितं’ आ पदोने। संग्रह थयो छे ‘एडति’ आ

परिकरं मुञ्चामि एवमवादिषम्-अहो !! मया तेषा पुरुषाणामशन ना साधितमिति कृत्वा अपहतमनः संकल्पः चिन्ताशोकसागरसंपविष्टः वरतल पर्यस्तमुखः आतर्ध्यानोपगतो भूमिगतदृष्टिकः” इत्येषां सङ्ग्रहो बोध्यः, एषां व्याख्याऽस्मिन्नेव सूत्रे पूर्व कृता, ध्यायामि-चिन्ता करोमि, ततः-तदनन्तरं तेषा पुरुषाणां मध्याद् एकः कोऽपि पुरुषः लेकः-अवसरज्ञः, दक्षः-कार्य-कुशलः, प्राप्तार्थः-निजकौशलेनाधिगतसाध्यरूपार्थः, यावत्-यावत्पदेन-“बुद्धः, कुशलः, महामतिः विनीतः विज्ञानप्राप्तः” इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, एषां व्याख्या पूर्व गता, तथा उपदेशलब्धः-प्राप्तगुरुपदेशः, शिक्षित इति यावत्, एतादृश एकः पुरुषः तान्-काष्ठदारकान् पुरुषान् एवमवा दीत्-हे देवानुप्रियाः ! यूय गच्छत खलु स्नाताः-कृतस्नानाः कृतवलि-कर्माणः-कृतवायसादिनिमित्तान्नदानाः, यावत्-प्रायश्चित्ताः-यावत्पदेन-कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता” इत्येतत्पदसङ्ग्रहो बोध्यः, एतादृशाः सन्तः शीघ्रमागच्छत, क्रियता कालेन ? इति जिज्ञासायामाह-यावत्-यावत्कालेन खलु अहम् अशनं-भोजनं साधयामि-नष्पादयामि. इति कृत्वा-इत्युक्त्वा परिकरं वप्राति-कटिबन्धनं करोति, परशु-कुठारं गृह्णाति, गृहीत्वा शरं-बाणसदृशं प्रतनुकाष्ठं करोति तेन शरेण-तनूकृतकाष्ठेन अरणिं-काष्ठ विशेषं मथ्नाति-संघर्षति, ज्योतिः-अग्निं पातयति-निष्काशयति, पातयित्वा जग्नातिः-बहिः संघुक्षते-संदीपयति, संदीप्य तेषां पुरुषाणामशनं साधयति, ततः-अशननिष्पादनानन्तरम् खलु ते पुरुषाःस्नाताः कृतवलिकर्माणः यावत् प्रायश्चित्ताः-कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः सन्तः यत्रैव स पुरुषं आसीत् तत्रैव उपागच्छन्ति, ततः खलु स पुरुषः तेषां पुरुषाणाम्, सुवासनवरगतानां-

है इसमें एड धातु मोचन अर्थ में है। 'अहो' शब्द विस्मयार्थक है। 'पत्तट्टे जाव' में जो 'यावत्पद' आया है-उससे यहाँ 'बुद्धः, कुशलः, महामतिः, विनीतः, विज्ञानप्राप्तः' इन पदों का संग्रह हुआ है। इन पदों की व्याख्या पहिले की जा चुकी है। 'कृतवलिङ्गमा जाव' में आये हुए यावत् पद से 'कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः' इस पद का संग्रह हुआ है। 'दुहा फालियंसि

शब्द देखीय छे. आमा 'एड' धातु 'मोचन' अर्थमे छे. 'अहो' शब्द विस्मयार्थक छे. 'पत्तट्टे जाव' भा जे यावत् पद आवेल छे. तेही अर्धी 'बुद्धः, कुशलः, महामतिः विनीतः, विज्ञानप्राप्तः,' आ पदेनो संग्रह थयो छे. आ पदेनी ध्याध्या पहेला करवामा आवी छे. 'कृतवलिङ्गमा जाव' भा आवेल यावत् पदधी 'कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः' आ पदेनो संग्रह थयो छे. 'दुहा फा

सुखदोत्तमासनोर्गविष्टानाम्, सताम् पुरतः तत्-साधितं, त्रिपुलं-पुष्कलम्, अशनं पानं स्वादिमं स्वादिमम् उपनयति-परिवेशयति, ततः खलु ते पुरुषाः तद्विपुलमशनं पानं स्वादिमं स्वादिमम् आस्वादयन्तः-सामान्यतः स्वादयन्तः, विस्वादयन्तः-विशेषेण स्वादयन्तः, यावत्-यावत्पदेन-“परिभाजयन्तः परिभुञ्जानां” इत्यनयोःपदयोः सङ्गो योऽर्थः, तत्र परिभाजयन्तः-परितो वण्टयन्तः, परिभुञ्जाना-परित-आर्त्तं भुञ्जाना, विहरन्ति-तिष्ठन्ति। जिमितभुक्तोत्तरागता-जिमितं-चतुर्विधमशनं तस्य-युक्तं-भोजनं तदुत्तरं-तदनन्तरं कालम् आगता-प्राप्ताः अपि च मन्तः आचान्ता-कृताऽऽवमनाः, चोक्षाः सामान्यतः शुद्धाः, परमशुचिभूताः-गण्डूषादिभिर्विशेषतः शुद्धाः तम् पुरुषम्, एवम्-अनुपदं वक्ष्यमाणं दन्तम् अवादिषुः-अहो !! देवानुप्रिय ! न्व खलु जडः जडसदृशः-विशिष्टचेतनारहितत्वात्, मूढः-मूर्खः, अपण्डितः मदसद्विवेकविकलत्वात्, निर्विज्ञानः- कौशलरहितः, अनुपदेशलब्धः अप्राप्त गुरूपदेशः-अशिक्षितश्चासि, गस्त्वम् खलु द्विधा स्फटिते काष्ठे यावत् त्रिधा चतुर्धा संख्येयधा वा स्फटिते काष्ठे ज्योतिः वह्निं द्रष्टुमिच्छामि, इति मूढतरत्नसाधकदृष्टान्तमुक्त्वोपसंहरति-हे प्रदेशिन् तदेतेन-अनन्तरोक्तेन अर्थेन-दृष्टान्तरूपेण, एवम्-इत्थम् उच्यते-वध्यते यद् हे प्रदेशिन् ! तस्मात् अपाचकात् काष्ठहारात् मूढतरः-अतिमूर्खः असि ॥ सू० १४६॥

मूलम्--तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी-जुत्तए णं भंते ! अइदक्खाणं बुद्धाणं कुसलाणं महामई ण विणयाणं विण्णाणपत्ताणं उवएसलद्धाणं अह इमीसाए महइ महालयाए परिसाए मज्जे उच्चावएहिं आउसेहिं आउसित्तए, उच्चावयाहिं उद्धसणाहिं उद्धंसित्तए, एव उच्चावयाहिं निब्भच्छणाहिं निब्भच्छित्तए, उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडित्तए ? ॥सू० १४७॥

वा जाव' में यावत् पद से 'त्रिधा, चतुर्धा, संख्येयधा वा स्फटिते काष्ठे' इन पदों का संग्रह हुआ है ॥ सू. १४६ ॥

वा जाव' भा आवेल यावत् पदार्थी 'त्रिधा, चतुर्धा, संख्येयधा वा स्फटिते काष्ठे' आ पदोने संग्रह थयो छे ॥सू० १४६॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणमेवमवादीत-युक्तः खलु भदन्त ! युक्तमावम् अतिच्छेकानां दक्षणा बुद्धानां कुशलानां महामतीना विनीतानां विज्ञानप्राप्तानाम् उपदेशलब्धानाम् अहम् भस्याः महाति महालयाः परिषो मध्ये उच्चावचैः आक्रोशैः अक्रोष्टुम्, उच्चावचाभिरुद्धर्षणाभिरुद्धर्षयितुम्, उच्चावचाभिर्निर्भर्त्सनाभिर्निर्भर्त्सयितुम्, उच्चावचाभिर्निच्छोटनाभिर्निच्छोटयितुम् ? । सू० १४७॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केशिकुमारसमणं एवं वयासी) इमके बाद प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से ऐमा कहा—(जुत्तएणं भन्ते ! अट्टक्खाणं बुद्धाणं कुसलाणं महामईणं विणीयाणं, विण्णाणपत्ताण, उवएसलद्धाणं) हे भदन्त ! अतिच्छेक-अवसरज्ञ, दक्ष-चतुर, बुद्ध-तत्त्वज्ञ, कुशल-कर्तव्या-कर्तव्य निर्णायक, महामति औत्पत्तिको आदिवुद्धियों से युक्त, विनीत-शिष्ट, विज्ञानप्राप्त-सत् असत् के विवेक से संपन्न, एव उपदेशलब्ध-गुरु के उपदेश को प्राप्त करने वाले ऐसे आपके लिये (अहं इमीसाए महइमहालियाए परिमाए मज्झे) मुझे से इस अतिविशाल परिपदा के बोच में (उच्चावएहिं आउसेहिं आउमित्तए, उच्चावयाहिं उद्धसणाहिं उद्धसित्तए) उच्चावच-नाना प्रकार के कठिनवचनरूप आक्रोशों से संवाप करना नानाप्रकार की अनादर सूत्रकवचनरूप उद्धर्षणाओं से मुझे उद्धर्षित करना, (एवं उच्चावयाहिं निवभंउणाहिं निवभंछित्तए, उच्चावयाहिं

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं पएसी राया केशिकुमारसमणं एवं वयासी) त्पार पधी प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रमाणे क्खु—(जुत्तएणं भन्ते ! अट्टक्खाणं बुद्धाणं कुसलाणं महामईणं विणीयाण, विण्णाणपत्ताणं, उवएसलद्धाणं) हे भदन्त ! अतिच्छेक-अवसरज्ञ, दक्ष-चतुर, बुद्ध-तत्त्वज्ञ, कुशल-कर्तव्या-कर्तव्य निर्णायक, महामति-औत्पत्तिकी वगेरे बुद्धीय्योथी युक्त, विनीत-शिष्ट, विज्ञान प्राप्त-सत् असत्तना विवेकथी युक्त अने उपदेशलब्ध-गुरुना उपदेशने प्राप्त करनार अवा तभारा वडे (अहं इमीसाए महइमहालियाए परिमाए मज्झे) भारी साथे आ अतिविशाल परिपदानी वर्ये (उच्चावएहिं आउसेहिं आउमित्तए, उच्चावयाहिं उद्धसणाहिं उद्धसित्तए) उच्चावच-अनेउ जतना इहोर वयनउप आ-देश्योथी संवाप करवुं-अनेक प्रकारना अपमान सूत्रक वयनउप उद्धर्षणाओथी उद्धर्षित कर

टीका—“तए णं पएसी” इत्यादि—ततः खलु म प्रदेशी राजा केशि-
कुमारश्रमणमेवमवादीत्-हे भदन्त ! अनिच्छेकानाम्-अवसरज्ञानां, दक्षाणाम्-
चतुराणां, बुद्धानाम्-तत्त्वज्ञानां, कुशलानाम्-कर्तव्यावर्तव्यनिर्णायकानां,
महामनीनाम्-औत्पत्तिकयादिबुद्धियुक्तानां विनीतानाम्-शिष्टानां, विज्ञानप्राप्ता-
नाम्-सदमद्विवेकसम्पन्नानाम्, उपदेशलब्धानां प्राप्तगुरूपदेशानाम्, युष्माकम्
अभ्याः उपस्थितायाः, महाति महालयायाःअतिविशालायाः परिषदः सभाया मध्ये
उच्चावचैः-नानाविधैः, आक्रोशैः-कठिनवचनरूपैः, आक्रोष्टुम्-संलपितुम्,
उच्चावचाभिः-नानाविधाभिः उद्घर्षणाभिः-अनादर सूचकवचनलक्षणाभिः,
उद्घर्षयितुम्-वक्तुम्, उच्चावचाभिः-नानाविधाभिः, निर्भर्त्सनाभिः-अवहे-
लनाभिः, निर्भर्त्सयितुम् अवहेलितुम्-उच्चावचाभिः-नानाप्रकाराभिःनिश्चोटना-
भिः-नीरसवचनावलीभिः, निश्चोटयितुम्-संभाषितुम्, अहं किं युक्तकः ?-
युक्तोऽस्मि-योग्योऽस्मि ? सभासमक्षसेतादृग्द्वचनरूपो व्यवहारो मत्कृते
भवादृशानां महापुरुषाणां नोचित इति भाः ॥ सू० १४७ ॥

मूलम्—तए णं केली कुमारसमणे पएसिं राय एवं वयासी-
जाणासि णं तुमं पएसी ! कइ परिसाओ पणत्ताओ ? । जाणामि
चत्तारि परिसाओ पणत्ताओ, तं जहा-खत्तियपरिसा १, गाहावइ-
परिसा २, माहणपरिसा ३, इसिपरिसा ४ । जाणासि णं तुमं पएसी !
एयासि चउण्हं परिसाणं कस्स का दंडणीई पणत्ता ? हता !!
जागाम-जे णं खत्तियपरिसाए अवस्झइ से णं हत्थच्छिण्णए वा

निच्छोडणार्हि निच्छोडित्तण) नाना प्रकार की अवहेलनारूप निर्भर्त्सनाओं
द्वारा मेरी निर्भर्त्सना करना तथा नानाप्रकार की नीरसवचनरूप निश्चोटनाओं
द्वारा मुझ से बोलना क्या योग्य है ? अर्थात् आप जैसे महापुरुषों को सभा
के समक्ष ऐसा वचनरूप व्यवहार मेरे साथ करना उचित नहीं है।

टीकार्थ—स्पष्ट है ॥ सू० १४७ ॥

(एवं उच्चावचार्हि निश्चोडणार्हि निश्चोडित्तण, उच्चावचार्हि निच्छोडणार्हि निच्छो-
डित्तण) अनेक प्रकारना अवहेलनाइय निर्भर्त्सनाओवडे भारी बर्त्सना करवी तेमण अनेक
प्रकारणी निश्चोडणार्हि निश्चोडित्तणो वडे अने गमे तेम गोलपुं थुं योग्य छ ?
-उडे तेमण तेवा नडापुउपाने मजानी वर्ये आ नतना वयनोपुं उच्चारय
इ-उर नई उडेवाय. टीकार्थ स्पष्ट छ है ॥ सू० १४७ ॥

पायच्छिण्णए वा सीसच्छिण्णए वा सूलाइए वा एगाहच्चे कूडा-
हच्चे जीवियाओ ववरोविज्जइ ? । जे णं गाहावइपरिसाए अवरज्झइ
से णं तएण वा वेढेण वा पलालेणं वा वेढित्ता अगणिकाएणं झामि-
ज्जइ २ । जे णं माहणपरिसाए अवरज्झइ से णं अणिट्टाहिं अकं-
ताहि जाव अमणामाहिं वग्गूहिं उवालंभित्ता कुंडियालंछणए वा
सुणगलंछणए वा कीरइ, निठिवसए वा आणविज्जइ ३ । जे णं
इसिपरिसाए अवरज्झइ से णं णाइअणिट्टाहिं जाव णाइ अमणा-
माहिं वग्गूहिं उवालब्भइ ४ । एवं च ताव पएसी ! तुमं जाणासि
तहावि णं तुम ममं वान्न वामेणं, दंडं दडेणं, पडिकूलं पडिकूलेणं,
पडिलोमं पडिलोमेणं विवज्जासं विवज्जासेणं वट्टसि ? ॥सू० १४८॥

छाया—ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानमेवमवादीत्-
जानामि खलु त्वं प्रदेशिन् । पतिपरिषदः प्रज्ञप्ताः ? । जानामि चतस्रः परि-
षदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्षत्रियपरिषत् १, गाथापतिपरिषत् २, ब्राह्मणपरिषत्

'तए णं केसीकुमारसमणे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केसी कुमारसमणे) केशीकुमारश्र-
मणने (पएसिं रायं एव वयासो) प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(जाणासि णं
तुमं पएसी ! कइ परिसाओ पणत्ताओ ?) हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो-
कितनी परिषदाँ कहो गई हैं ? प्रदेशोने कहा—(जाणामि चत्तारि परिसाओ
पणत्ताओ) हाँ भदन्त ! जानता हूँ—चार परिषदा कही गई हैं। (तं जहा-

'तएणं केसीकुमारसमणे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएण) त्थार पधी (केसी कुमारसमणे) केशी कुमार श्रमणे
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रभात्ते उच्च. (जाणासि णं तुमं
पएसी ! कइ परिसाओ पणत्ताओ ?) हे प्रदेशिन् ! तमे ज्ञत्तो छे हे परिषदा-
ओ उट्ठला उडेत्ताय छे ? प्रदेशीओ उच्च (जाणामि चत्तारि परिसाओ पणत्ताओ)
हा छे, लदत्त । हु ज्ञत्तुं छुं के चार ज्ञत्तनी परिषदाओ उडेत्तामा आवी छे.
(त जहा, चत्तियपरिसा १, गाहावइपरिसा २, माहणपरिसा ३, इसि-
परिसा ४) जे आ प्रभात्ते छे—क्षत्रिय परिषदा, १ गाथापति परिषदा २, ब्राह्म-

३, ऋषिपरिषत् ४। जानामि खलु त्वं प्रदेशिन् ! एतासां चतसृणां परिषदां (मध्ये) कस्य का दण्डनीतिः प्रज्ञसाः ? हन्त ! ! जानामि-यः खलु क्षत्रिय परिषदि अपराध्याति स खलु हस्तच्छिन्नको वा पादच्छिन्नको वा शीर्षच्छिन्नको वा शूलायितो वा एकाहत्यं कूटाहत्यं जीविताद् व्यपरोप्यते ? । यः खलु गाथापतिपरिषदि अपराध्याति स खलु त्वचा वा वेष्टेन वा पलालेन वा वेष्टयित्वा अग्निकायेन ध्माप्यते २ । यः खलु ब्राह्मणपरिषदि

स्वत्तियपरिसा १ गाहावइपरिसार, माहणपरिसार, हसिपरिसार) जो इस प्रकार से हैं. क्षत्रियपरिषदा १, गाथापतिपरिषदार, ब्राह्मणपरिषदा ३ और ऋषिपरिषदा ४, (जाणामि णं तुमं पएसी ! एयामि चउण्ह परिमाणं कस्स का दंडणीई पणत्ता) हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो-इन चार परिषदाओं के बीच में किस अपराधी के लिये किस प्रकार दण्डनीति कही गई है ? (हंता, जाणामि-जेणं स्वत्तियपरिसाए अवरज्जइ से णं हत्थच्छिण्णए वा पायच्छिण्णए वा, सीसच्छिण्णए वा मुलाइ वा एगाहच्चे, कूडाहच्चे जीवियाओ ववरोविज्जइ) हां जानता हू-क्षत्रियपरिषदा में-क्षत्रिय वर्ग जो कोई क्षत्रीय अपने वर्ग में जिस किसी का भी अपराध करता है उसका या तो हाथ काट दिया जाता है, अथवा पग काट दिया जाता है, या शिर काट दिया जाता है, या शूली पर उसे चढ़ा दिया जाता है, या उसे एक ही घाव से या पर्वत ऊपर से गिरा देने से प्राणरहित कर दिया जाता है। (जे णं गाहावइपरिसाए अवरज्जइ-से णं तएण वा वेष्टेण वा पलालेणं वा वेढित्ता अगणिकाए णं जामिज्जइ २) गाथापति परिषदा में-गृहपतिवर्ग में-जो कोई गाथापति जिस किसी क

परिषदा ३, अने ऋषि परिषदा ४, (जाणामि णं तुमं पएसी ! एयामि चउण्ह परिमाणं कस्स का दंडणीई पणत्ता) हे प्रदेशिन् ! तमे जल्लो! छे के आर परिषदाओमां क्खं जतनी दंडनीति कहेवामां आवी छे ? (हंता, जाणामि-जेणं स्वात्तियपरिसाए अवरज्जइ सेणं हत्थच्छिण्णए वा पायच्छिण्णए वा सीसच्छिण्णए वा मुलाइवा, एगाहच्चे कूडाहच्चे जीवियाओ ववरोविज्जइ) डाल, जल्लु छुं. क्षत्रिय परिषदांमां क्षत्रियवर्गंमां जे केधं क्षत्रिय पोतानी जतिमां के परज्जनिमां गमे तेने अपराध (शुने) करे छे तो तेने का तो हाथ कापी नाभवामां आवे छे, अथवा पग कापी नाभवामां आवे छे, के माथुं कापी नाभवामां आवे छे के तेने ओकज्ज धामां भासी नाभवामां आवे छे के पर्वत परथी तेने धकेलीने प्राञ्चुरडित करी नाभवामां आवे छे. (जे णं गाहावइ परिसाए अवरज्जइ-से णं तएणं वा, वेष्टेण वा, पलालेणं वा वेढित्ता अगणिकाएणं जामिज्जइ २)

अपराध्यति स खलु अनिष्टाभिः अक्रान्ताभिः यावत् अमनोऽमामिः वाग्भिः
उपालभ्य कुण्डिलाच्छनको वा शुनक्लाच्छनको वा क्रियते, निर्विषयो वा
आज्ञाप्यते ३ । य. खलु ऋषिपरिषदि अपराध्यति स खलु नात्यनिष्टाभिः
यावत्-नात्यमनआमामिः वाग्भिः उपलभ्यते ४ । एवं च तावत् प्रदेशिन !

भी अपराध करता है, वह वृक्षादि की छाल से अथवा तृणादिनिर्मित रस्सी
से, या पलाल से परिवेष्टित किया जाकर अग्नि से जला दिया जाता है—
(जे ण माहणपरिसाए अवरज्जइ, से णं अणिट्ठयाहिं अकंताहिं जाव अमणा-
माहिं वग्गुहिं उवालंभित्ता कुंडियालंछणए वा सुणगलंछणए वा कीरइ,
निव्विसए वा आणविज्जइ) ब्राह्मण परिषदा में जो ब्राह्मण जिस किसी का
भी अपराध करता है, वह अनिष्ट-सामान्यरूप से अनभिलषित, अक्रान्त-
विशेषरूप से अनभिलषित-अप्रिय-प्रभवर्जित, अमनोज्ञ असुन्दर एवं अमन
आम-मनः प्रतिकूल ऐसी वागियों से उपालंभ युक्त किया जाता है,
अथवा तप्तलोहे के तकुये द्वारा कण्डलु के जैसे आकार वाले लांछन से
ललाट में चिह्नित किया जाता है, अथवा कुन्ने के पग के जैसे आकारवाले
चिह्न से लांछित किया जाता है, अथवा देश से बाहर निकाल दिया जाता है.
तुम हमारे देश से निकल जाओ ऐसी आज्ञा उसके लिये दी जाती है ३.
(जे ण इत्तिपरिसाए अवरज्जइ से णं णाइ अणिट्ठयाहिं जाव णाइ अमणामाहिं
वग्गुहिं उवालंभइ ४) तथा जो ऋषि परिषदा में-ऋषिवर्ग में-ऋषि

गाथापति परिषदाभां-गृहपति वर्गभा ने केअ गाथापति गमे तेनो अपराध करे
तो ते वृक्ष वगेरेनी छालथी अथवा तृषु वगेरेथी निर्मित होरी के पलावथी परि-
वेष्टित कराधने अग्निवडे सणगाववाभा आवे छे. (जे णं माहणपरिसाए अवर-
ज्जइ, से णं अणिट्ठयाहिं अकंताहिं जाव अमणा माहिं वग्गुहिं उवालंभित्ता कुंडिया
लंछणए वा सुणगलंछणए वा कीरइ निव्विसए वा आणविज्जइ) ब्राह्मण परि-
षदाभा ने ब्राह्मण गमे तेनो अपराध करे छे तो ते अनिष्ट-सामान्य रूपथी अन-
भिलाषित, अक्रान्त-विशेषरूपथी अनभिलषित, यावत् अप्रिय-प्रभवर्जित, अमनोज्ञ-
असुंदर अने अमन आम मनःप्रतिकूल ऐवी वाणीओथी उपालंभयुक्त करवाभां
आवे छे तेमज तत्त थयेव लोअंउना सणिया वडे कभंउहुं नेवा आकारथी युक्त
चिह्णथी ललाटभां चिन्हित करवाभां आवे छे. अथवा इतराना पग नेवा आकारवाण
चिन्हुथी लांछित करवाभां आवे छे. अथवा देश अहार करवाभां आवे छे तमे अमारा
देशथी नत्ता रडे. ऐवी आज्ञा तेने आपवाभां आवे छे. ३, (जेणं इत्तिपरिसाए
अवरज्जइ से णं णाइ अणिट्ठयाहिं जाव णाइ अमणामाहिं वग्गुहिं उवालंभइ ४)

ત્વં જાનાસિ તથાપિ સ્વલુ ત્વં મા વામવામેન, દણ્ડદણ્ડેન. પ્રતિકૂલપ્રતિ-
કૂલેન, પ્રતિલોમ પ્રતિલોમેન, વિપર્યાસવિપર્યાસેન વર્તસે ॥ ૧૪૮ ॥

ટીકા—“તણ્ ણં કેમી” દૃષ્ટ્યાદિ—તતઃ તદનન્તરં સ્વલુ કેશી કુમાર
શ્રમણઃ પ્રદેશિનં રાજાનમ્ ણવ-પ્રક્ષ્યમાણપ્રકારં વચનમ્ અવાદીત્-કથિત
વાન-હે પ્રદેશિન્ ! ત્વં જાનાસિ કિં પરિપદઃ—વર્ગાઃ કતિ-કતિસંસ્કર્યકાઃ
પ્રજ્ઞપ્તાઃ ? । પ્રદેશી રાજા પ્રાહ-જાનામિ-પરિષદશ્ચતસ્રઃ—ચતુઃ સ્વયંકાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ,
તદ્યથા—તા યથા—ક્ષત્રિયપરિષત્ ૧, ગાયાપતિપરિષત્ ૨, બ્રહ્મણપરિષત્ ૩,
ઋષિપરિષત્ ૪ । કેશી કુમારશ્રમણઃ પૃચ્છતિ—હે પ્રદેશિન્ ! જાનામિ સ્વલુ

જિસ કિસી કા ખી અપરાધ કરતા હૈ વહ ન અતિ અનગટ. યાવત્-ન
અતિ અકાંત, ન અતિ અમિય, ન અતિ અમનોજ્ઞ ઓર ન અતિ અમન
આમ એસી વાણિયો દ્વારા ઉપાલંભયુક્ત ક્રિયા જાતા હૈ. (એવં તાવ પપસી !
તુમં જાણાસિ—તહા વિ ણં તુમં મમં વામં વામેણં. દંડં દંડેણં, પડિકૂલ
પડિકૂલેણં, પડિલોમં પડિલોમેણં, વિવજ્ઞાસં વિવજ્ઞાસેણં વદ્દસિ) હે પ્રદેશિન
તુમ હસ પૂર્વોક્ત પ્રકારવાલી નીતિ કો—દણ્ડ નીતિ કો—નિશ્ચય સે જાનતે
હો, ફિર ખી તુમ મેરે પ્રતિવામવામરૂપ સે અતિ વિરુદ્ધવ્યવહાર સે, દણ્ડ
દણ્ડરૂપ સે—દણ્ડવત્ સ્તબ્ધરૂપ વ્યવહાર સે—અતિ અહઙ્કાર યુક્ત વ્યવહાર
સે, પ્રતિકૂલ પ્રતિકૂલરૂપ સે અતિ વિપક્ષી ભૂત વ્યવહાર સે, પ્રતિલોમપ્રતિ-
લોમ સે—અતિવિપરીતરૂપ વ્યવહાર સે ઓર વિપર્યાસ વિપર્યાસ સે—સર્વથા
વિરુદ્ધરૂપ વ્યવહાર સે પ્રવૃત્ત હો રહે હો ।

ટીકાર્થ સ્પષ્ટ હૈ ॥૧૪૮॥

તેમજ જે ઋષિ પરિષદામાં—ઋષિવર્ગમાં કોઈ પણ ઋષિ અપરાધ કરે છે તે ન અતિ
અનિષ્ટ યાવત્ ન અતિ એકાંત ન અતિ અમનોજ્ઞ અને ન અતિ અમન આમ એવી
વાણીઓ વડે ઉપાલંભયુક્ત કરવામા આવે છે. (એવં તાવ પપસી ! તુમં જાણાસિ
—તહા વિ ણં તુમં મમં વામં વામેણં દંડં દંડેણં પડિકૂલં, પડિકૂલેણં,
પડિલોમં પડિલોમેણં. વિવજ્ઞાસં વિવજ્ઞાસેણં વદ્દસિ) હે પ્રદેશિન્ ! તમે
આ પૂર્વોક્ત નીતિને—દંડનીતિને—સારી રીતે જાણો છો, છતાં એ તમે મારા પ્રતિ વામ
વામરૂપથી—અતિ વિરુદ્ધ વ્યવહારથી, દણ્ડ દણ્ડરૂપથી—દણ્ડવત્ સ્તબ્ધરૂપ વ્યવહારથી
અતિ અહઙ્કારયુક્ત વ્યવહારથી, પ્રતિકૂળ, પ્રતિકૂળરૂપથી અતિ વિપક્ષી વ્યવહારથી
પ્રતિલોમ પ્રતિલોમથી—અતિ વિપરીતરૂપ વ્યવહારથી અને વિપર્યાસથી સર્વથા વિરુદ્ધરૂપ
વ્યવહારથી પ્રવૃત્ત થઈ રહ્યા છો. ટીકાર્થ સ્પષ્ટ જ છે. ॥ સુ. ૧૪૮ ॥

त्वं ? एतासां चतसृणां प रषदां मध्ये कस्य अपराधिनः का-विप्रवारा
दण्डनीतिः-दण्डविधानरूपा ज्ञप्ता-कथिता ? । प्रदेशी प्राह-हन्त ! जानामि
तदेवाह-क्षत्रियपरिषदि-क्षत्रियवर्गे य खलु कश्चित् क्षत्रियः स्ववर्गे परवर्गे-
वा स्य कस्यापि, अपराध्यति-अपराध करोति स खलु हस्तच्छन्नकः-
च्छिन्नहस्तः क्रियते, वा-अथवा पादच्छन्नकः, अथवा शीर्षाच्छन्नकः, वा
अथवा शूलधितः-शूलारोपितः वा-अथवा एकाहत्यम्-एकाघातेन, कूटाहत्यं-
यवनपातेन जीवितात-प्राणेभ्यः व्यपरं प्यते-पृथक् क्रियते १। गाथापतिपरिषदि
गृहपतिवर्गे यः खलु कश्चिद् गाथापति र्यस्य कस्यापि अपराध्यति स खलु
त्वचा-वृक्षादिच्छलिना वा अथवा वेष्टेन तृणादिनिर्मितरज्ज्वा, वा अथवा
पलालेन-प्रसिद्धेन वेष्टयित्वा-परिवेष्टय अग्निकायेन-अग्निना ध्माप्यते-ज्वा-
ल्यते २। ब्राह्मणपरिषदि-ब्राह्मणवर्गे यः खलु कश्चिद् ब्राह्मणो यस्यकस्यापि
अपराध्यति स खलु अनिष्टाभिः-सामान्यतोऽनाभिलषिताभिः अकान्ताभिः-
विशेषतोऽनभिलषिताभिः, यावच्छब्देन-“अप्रियाभि-प्रेमवर्जिताभिः-असु-
न्दरीभिः” इति स ग्राह्यम्, अमनोऽमाभिः मनप्रतिकूलाभिः वाग्भिः-
वाणीभिः उपालभ्य उपालम्भं दत्त्वा कुण्डिकालाञ्छनकः-कुण्डिका-कमण्डलः
तदाकारक लाञ्छनक-तप्तशलाकया ललाटे चिह्नं यस्य स तथाभूतः, वा
अथवा शुनकलाञ्छनकः-ललाटे शुनकपदाकारक चिह्नं यस्य स तथाभूतः
क्रियते, वा-अथवा निर्षियः-निर्वामितो यथा भवेत्तथा आज्ञाप्यते-‘न्वम-
म्मादेशान्निर्गच्छ’ इत्याज्ञा तस्मै दीयते इति भावः ।३। ऋषपरिषदि-
ऋषिवर्गे यः खलु कश्चित् ऋषिर्यस्य कस्यापि अपराध्यति स खलु नात्य
निष्टाभिः यावत्-यावच्छब्देन-नात्यकान्ताभिः नात्यप्रियाभिः, नात्यमन
ज्ञाभिः” इति स ग्राह्यम्, नान्यमनोऽमाभिः वाग्भिः-वाणीभिः उपालभ्यते-
तस्मै उपालम्भो दीयते इति भावः ४। केशी कुमारश्रमणः कथयति-हे
प्रदेशिन एव-पूर्वोक्तप्रवारां दण्डनीतिं तावत्-निश्चयेन त्वं जानासि तथापि
त्वं मा प्रति वामवामेन-अतिशयवामेन-अतिविस्मयेन व्यवहारेण, एव दण्ड-
दण्डेन-अतिदण्डरूपेण-दण्डवत्स्तव्यरूपेण-अत्यह ।रयुक्तेनेत्यर्थः । प्रतिकूलं
प्रतिकूलेन-अप्रतिकूलेन-विपक्षीभूतेनेत्यर्थः प्रतिलोमप्रतिलोमेन-अतिप्रतिला
मेन-अतिविपरीतेनेत्यर्थः विपर्यामविपर्यासेन अतिविपर्यासेन-सर्वथा विरु-
द्धेनेत्यर्थः, एतादृशेन व्यवहारेण वर्तसे ॥सू० १४८॥

मूलम्—तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी-
 एवं खलु अहं देवाणुप्पिएहिं पढमिल्लिएणं चेव वागरणेणं संलत्ते
 तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था—जहा
 जहा णं एयस्स पुरिसस्स वामं वामेणं जाव विवच्चासं विवच्चासेणं
 वट्टिस्सामि तथा तथा णं अहं नाणं च नाणोवलंभं च चरणं च
 चरणोवलंभं च दंसणं च दंसणोवलंभं च जीवं च जीवोवलंभं च
 उवलभिस्सामि, त एएणं अहं कारणेणं देवाणुप्पियाणं वामं वामेणं
 जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए ॥सू० १४९॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्
 एवं खलु अहं देवानुप्रियैः प्राथमिकेनैव व्याकरणेन संलपितः तदा खलु
 मम अयमेः रूप आध्यात्मिकः यावत् संकल्पः समुदपद्यत, यथा यथा खलु

'तए णं पएसी राया' इत्यादि ॥

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने केसिं
 कुमारसमणं एवं वयासी) केशी कुमारश्रमण से ऐसा कहा—(एवं खलु
 अहं देवाणुप्पिएहिं पढमिल्लिएणं चेव वागरणेणं संलत्ते) हे भदन्त! आप
 देवानुप्रिय के द्वारा मैं सर्व प्रथम बोला गया हूँ अर्थात्—आप देवानु
 प्रिय! मुझ से सब से पहिले बले हैं—आप के साथ मेरी यह सब से
 प्रथम भेट है, इसके पहिले हमारा आपका कोई मिलन नहीं हुआ है
 (तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था) अतः जब

'तए णं पएसी राया' इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थारपणी (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसिं कुमार
 समणं एवं वयासी) केशी कुमार श्रमणने आ प्रभाणु क्खु—(एवं खलु अहं
 देवाणुप्पिएहिं पढमिल्लिएणं चेव वागरणेणं संलत्ते) हे भदन्त! आप देवा-
 नुप्रियवडे हु साथी पडेलां ओलाये छुं अटवे डे आप देवानुप्रिय! भारी साथे
 साथी पडेला ओल्या छे. आपनी साथे आ भारी पडेली मुलाकात छे. अना पडेलां
 आपनी भारी साथे लेट नहोती थछ. (तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव
 संकप्पे समुप्पज्जित्था) ओथी ल्यादे तमे भारी साथे सर्व प्रथम आ प्रभाणु

एतस्य पुरुषस्य वामवामेन या त् विपर्यासविपर्यासेन वर्तिष्ये तथा तथ
खलु अहं ज्ञानं च ज्ञानोपालम्भं च चरणं च चरणोपालम्भं च दर्शनं च
दर्शनोपालम्भं च जीवं च जीवोपालम्भं च उपलप्स्ये, तत् एतेनाहं का-
णेन देवानुप्रियाणा वामवामेन यावद् विपर्यासविपर्यासेन वर्तितः ॥सू०१४९॥

टीका—‘तए णं पएसी’ इत्यादि—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिन
कुमारश्रमणमेवमवादीत्—एवं खलु अहं देवानुप्रियैः—भवद्भिः प्राथमिकेनैव—
व्याकरणेन—संलापेन, संलपिनः—संभाषितः, तदा खलु मम अयमेनद्रूप—

आप मुझ से सर्व प्रथम इस प्रकार से बोलेतो मेरे मन में यह इस
प्रकार का यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ कि (जहा र ण एयस्स पुरिसस्स
वामं वामेण जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिस्सामि, तहा र णं अहं
नाणं च नाणोवलंभं च चरणोलंभं च, दंसणं च दंसणोवलंभं च जीवं च
जीवोवलंभं च उवलंभिस्सामि) मैं जैसा इस पुरुष के साथ वाम वामरूप से
यावत्—दण्ड दण्डरूप से, प्रतिकूल प्रतिकूलरूप से प्रतिलोम प्रतिलोमरूप
से एवं विपर्यास विपर्यासरूप से व्यवहार करूंगा, वैसा वैसा र मैं ज्ञान
को—पदार्थ ज्ञान को ज्ञानोपालम्भको—ज्ञान की प्राप्ति को, चारित्र को, चारि-
त्रके लाभ को, तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व को, दर्शनलाभ को जीव के
स्वरूप को, और जीव के स्वरूपकी प्राप्ति को पा जाऊंगा (तं एणं
अहं कारणेण देवानुप्रियाणं वामं वामेणं जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए)
अतः इसी कारण से आप देवानुप्रिय के साथ मैं अतिविद्धरूपव्यवहार
से यावत् सर्वथा विद्धरूप व्यवहार से प्रवर्तित हुआ हू ।

जोव्या ते मारा मनमां आ वततो यावत् संकल्प उत्पन्न थयो डे (जहा र णं एयस्स
पुरिसस्स वामं वामेणं जाव विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिस्सामि, तहा र
णं अहं नाणं च नाणोवलंभं च चरणं च चरणोवलंभं च, दंसणं च दंसणो-
वलंभं च जीवं च, जीवोवलंभं च उवलंभिस्सामि) हुं जेम जेम आ पुइयणी
साथे वाम वामइयथी यावत्—द डहं डइयथी प्रतिकूल प्रतिकूलइयथी, प्रतिलोम प्रतिलोम
इयथी अने विपर्यास विपर्यासइयथी व्यवहार उरंथ—आयस्सु उरीथ तेम तेम हु
ज्ञानने, पदार्थ ज्ञानने, ज्ञानोपालब्धने ज्ञानप्राप्तिने चारित्रने, चारित्र लाभने,
तत्त्वार्थ श्रद्धानइय सम्यक्त्वने, दर्शनलाभने, ज्जवना त्वइयने अने ज्जवना त्वइयणी
प्राप्तिने भेजवीथ. (तं एणं अहं कारणेणं देवानुप्रियाणं वामं वामेणं जाव
विवच्चासं विवच्चासेणं वट्टिए) गेटला भाटे आप देवानुप्रियणी साथे ने अति
विद्धइय व्यवहारथी यावत् सर्वथा विद्धइय व्यवहारथी प्रवर्तित थयो हुं.

वक्ष्यमाणप्रकारकः, आध्यात्मिकः—आत्मगत। विचारः यावत्—यावच्छब्देन—
चिन्तितः, कलितः, पार्थितः, मनोगतः' इति । तत्रात्मं संकल्पः—विचार-
समुदपद्यत—संजातः, तदेवाह—यथा यथा खलु अहम् एतस्य पुरुषस्य वाम
वामेन—अनिविरुद्धेन व्यवहारेण यावत्—यावच्छब्देन—'दण्डदण्डेनः प्रतिकूल-
प्रतिकूलेनः प्रतिलामप्रतिलोमेन' इति संग्राह्यम्, विपर्ययसे—विपर्यामेन' एषा-
मर्थोऽव्यवहितपूर्वमुत्रे गतः, वर्तिष्ये तथा तथा खलु अहं ज्ञान च—पदार्थ-
ज्ञानं च ज्ञानोपालम्भं—ज्ञानप्राप्तिं च च—पुनः चरणं—चारित्रं चरणोपालम्भं
चारित्रलाभं च—पुनः दर्शनं—स्वार्थज्ञानं सम्पत्त्वं दर्शनोपालम्भं—
दर्शनलाभं च—पुन—जीवो—जीवस्वरूपं—जीवोपालम्भं—जीवस्वरूपः
प्राप्तम् उपलभ्ये—प्राप्त्यामिः तद् एतेन खलु कारणेन अहं देवानु-
प्रियाणां मपीवे वामवामेन—अनिविरुद्धेन व्यवहारेण यावत् विपर्यायविपर्या-
सेन—सर्वथाविरुद्धेन व्यवहारेण वर्तित—अहं वामवामादिकं व्यवहार
वर्तितवानिति भावः । ॥ सू० १४० ॥

मूलम्—तए णं केसीकुमारसमणे पएसि रायं एवं वयासी-
जाणासि णं ! कइ व्यवहारगा पणत्ता ? हंता ! ! जाणामि चत्तारि
व्यवहारगा पणत्ता, त जहा—देइ नामंगे णो सणवेइ १, सणवेइ
नामंगे नो देइ २ । एगे देइ वि सणवेइवि ३ । एगे णो देइ णो

टीकार्थ स्पष्ट है। इस सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि प्रदेशी राजाने
केशी कुमार श्रमण से अपने द्वारा किये गये प्रतिकूल व्यवहार के प्रति
ऐसा कहा है भदन्त ! आप की और हमारी यह प्रथम भेट है। इसमें
जो आपने मुझसे संभाषण किया—उससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला
कि मैं इनके प्रति जैसा २ टेड़ा चलूंगा—विरुद्ध व्यवहार करूंगा—वैसा २
मुझे इनसे ज्ञान आदि प्राप्त होगा अतः मैंने आपके साथ इस प्रकार का
व्यवहार किया है ॥ सू० १४१ ॥

टीकार्थ स्पष्ट है कि आ सत्रने लावार्थ आ प्रभाणु छे के प्रदेशी राजाने
केशीकुमार श्रमणने पोताना वटे आचरेल प्रतिकूल व्यवहारने लधने आ प्रभाणु
कथुं छे के छे सहत । आपनी अने भारी आ पहेली लेट छे आमां ने आपश्रीअ
भारी साथे सलाषणु कथुं तेथी अने निष्कर्षरूपे आ जतनी प्रतीति थछ के हुं
तभारा प्रति नेम नेम विरुद्ध भोलीथ तेम तेम अने तभाराथी ज्ञान वगेरेनी प्राप्ति
अये. आ कारणथी ने में आपनी साथे आ जतनुं आचरणु कथुं छे ॥सू०१४१॥

सणवेइ ४ । जाणासि णं तुमं पएसी ? एएसिं चउण्हं पुरिसाणं
के ववहारी के अववहारी ? ! हंता ! ! जाणामि तत्थ णं जे से पुरिसे
देइ णो सणवेइ सेणं पुरिसे ववहारी, तत्थ णं जे से पुरिसे
णो देइ सणवेइ से णं पुरिसे ववहारी २, तत्थ णं जे से पुरिसे
देइ वि सणवेइ वि से पुरिसे ववहारी ३, तत्थ णं जे से पुरिसे
णो देइ णो सणवेइ मे णं अववहारी ४ । एवामेव तुमंपि ववहारी,
णो चेव णं तुमं पएसी ! अववहारी ॥सू० १५०॥

छाया—ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशीराजमेवमवादीत्—जा-
नासि खलु त्वं प्रदेशिन् । कति व्यवहारकाः प्रज्ञप्ताः ? । हन्त ! ! जानामि-
चत्वारो व्यवहारकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ददाति नामैकः नो संज्ञापयति १,
संज्ञापयति नामैको नो ददाति २, एको ददाति अपि संज्ञायति अपि ३,

‘तए णं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) इसके बाद (केसी कुमारसमणे) केशीकुमारश्रमणने
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजा से ऐसा कहा—(जाणासि णं तुमं
पएसी ! कइ ववहारगा पणत्ता ?) हे प्रदेशिन् ! व्यवहार कितने होते हैं—
क्या तुम इस बात को जानते हो ? (हंता, जाणामि) हां, भदंत ! जानता
हुं (चत्तारि ववहारगा पणत्ता) व्यवहार चार कहे गये हैं । (तं जहा—देइ,
नामेगे, णो सणवेइ १ सणवेइ नामेगे णो देइ २, एगे देइ वि, सणवेइ

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्थार पथी (केसीकुमारसमणे) देशी कुमार श्रमणे
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रभावे उल्लु—(जाणासि णं तुमं
पएसी ! कइ ववहारगा पणत्ता ?) हे प्रदेशिन् ! तु तने जहो छे डे व्यवहार
उटवी जतना डोय छे ? (हता, जाणामि) हां, जहंत ! जालु छु (चत्तारि वव-
हारगा पणत्ता) व्यवहार चार उडेवाय छे. (त जहा देइ, नामेगे, णो सण-
वेइ १, सणवेइ नामेगे णो देइ २, एगे देइ वि, सणवेइ वि ३, एगे

एको नो ददाति नो संज्ञापयति ४ । जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ? एतेषां चतुर्णां पुरुषाणां को व्यवहारी ? कोऽव्यवहारी ? हन्त !! जानामि । तत्र खलु यः स पुरुषो ददाति नो संज्ञापयति स खलु पुरुषो व्यवहारी । तत्र खलु यः स पुरुषो नो ददाति संज्ञापयति स खलु पुरुषो व्यवहारी । तत्र खलु यः स पुरुषो ददात्यपि संज्ञापयत्यपि स पुरुषो व्यवहारी । तत्र खलु

वि ३, एगे णो देइ णो सण्णवेइ ४, जो इस प्रकार से हैं—एक कोइ पुरुष किसी वस्तु को किसी के लिये देता तो है. पर उसके साथ वह मिष्ट भाषण द्वारा अच्छा संतोषप्रद व्यवहार नहीं करता है १, एक पुरुष मिष्ट भाषण द्वारा दूसरे के प्रति संतोषप्रद व्यवहार तो करता है, परन्तु देता कुछ भी नहीं है २, एक पुरुष देता भी है और लेने वाले के प्रति मिष्टवचनद्वारा संतोषप्रद व्यवहार भी करता है ३, एक पुरुष ऐसा होता है जो न देता है और न मिष्टवचन द्वारा संतोषप्रद व्यवहार ही करता है—४, (जानासि णं तुमं पएसी ! एएसिं चउण्हं पुरिसाणं के व्यवहारी के अव्यवहारी ?) केशी ने प्रदेशी से पूछा—हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो इन चार व्यवहारी पुरुषों के बीच में कौन व्यवहारी है और कौन अव्यवहारी है? तब प्रदेशीने केशिकुमार श्रमण से कहा—(हंता, जानामि-तत्थ णं जे से पुरिसे देइ णो सण्णवेइ से णं पुरिसे व्यवहारी?) हां, जानता हूं, इनमें जो पुरुष देता है और सम्यग् आलाप से संतोष उत्पन्न नहीं कराता है वह पुरुष व्यवहारी कहा जाता है (तत्थ णं जे से पुरिसो णो

णो देइ णो सण्णवेइ ४) जे आ प्रभाणु छे. ओक भाणुस केँ पणु वस्तु केँ देने आपे तो छे पणु तेनी साथे ते मिष्ट संवाषणुवडे अच्छे संतोषप्रद व्यवहार करतो नथी ? ओक भाणुस मिष्ट वाषणुवडे नीजनी साथे संतोषप्रद व्यवहार तो करे छे पणु आपतो कंठ नथी २, ओक भाणुस आपे पणु छे अने लेनार भाणुसने मिष्ट वचनो वडे संतोष पणु आपे छे. ३, ओक भाणुस ओयो पणु डाय छे के जे कंठ पणु आपतो नथी अने मिष्ट वचनोथी संतोषजनक व्यवहार पणु करतो नथी (जानासि तुमं पएसी ! एएसिं चउण्हं पुरिसाणं के व्यवहारी के अव्यवहारी ?) केशीअे प्रदेशीने प्रश्न कर्यो के हे प्रदेशिन् ! तमे जणु छे के आ यार व्यवहारी छे ? त्परे प्रदेशीअे कथुं. (हंता, जानामि, तत्थ णं जे से पुरिसे देइ णो सण्णवेइ से णं पुरिसे व्यवहारी ?) हां, जणु छुं. आमां जे भाणुस आपे छे अने सारा वचनोथी संतोष आपतो नथी ते पुरुष व्यवहारी कहेवाय छे. (तत्थ णं जे से पुरिसे णो देइ सण्णवेइ से णं पुरिसे व्यवहारी २)

यः सं पुरुषो नो ददाति नो संज्ञापयति स खलु अव्यवहारी । एवमेव त्वमपि व्यवहारी, नो चैव खलु त्वं प्रदेशिन् ! अव्यवहारी ॥सू० १५०॥

टीका—“तए णं केसीकुमारसमणे” इत्यादि—ततः—अनन्तरोक्त-प्रकारेण वर्त्तनानन्तरं खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजम् एवमवादीत्—

देह सण्णवेइ से णं पुरिसे ववहारी२) तथा जो पुरुष देता नहीं है किन्तु सम्यग् आलाप से संतोष उत्पन्न करता है वह पुरुष व्यवहारी है। (तत्थ णं जे से पुरिसे देइ वि, सण्णवेइ वि, से पुरिसे ववहारी३) तथा जो पुरुष देता भी है और सम्यक् आलाप द्वारा संतोष भी उत्पन्न कराता है वह पुरुष व्यवहारी है। (तत्थ णं जे से पुरिसे णो देइ णो सण्णवेइ से पुरिसे से णं अववहारी) तथा जो पुरुष न देता है और न सम्यक् संभाषण द्वारा संतोष उत्पन्न करता है वह पुरुष अव्यवहारी है। (एवामेव तुमं पि ववहारी णो चैव णं तुमं पएसी ! अववहारी) इसी तरह से अर्थात् भद्रत्रयोक्त पुरुष, के बीच में एक भंग विशेष की तरह हे प्रदेशिन् ! तुम भी व्यवहारी हो, चतुर्थ भद्रोक्त पुरुष की तरह तुम अव्यवहारी नहीं हो—तात्पर्य कहने का यह है कि यद्यपि हे प्रदेशिन् ! तुमने सम्यक् आलाप द्वारा सन्तुष्ट कर मुझसे व्यवहार नहीं किया है—फिर भी मेरे विषय में भक्ति और चहुमान तो किया ही है—अतः तुम आद्यभद्रोक्त पुरुष की तरह व्यवहारी ही हो—अव्यवहारी नहीं हो।

तेमज्जे णे पुइय आपतो नथी पणु सारा सभापणुथी सतोप उत्पन्न करे छे ते व्यवहारी छे. (तत्थ णं जे से पुरिसे देइ, वि, सण्णवेइ वि, से पुरिसे ववहारी.३) तेमज्जे णे पुइय अ.पे पणु छे अने सम्यक आलापवडे सतोप पणु उत्पन्न करे छे ते पुइय व्यवहारी छे. (तत्थ णं जे से पुरिसे णो देइ णो सण्णवेइ से पुरिसे णं अववहारी) तेमज्जे णे पुइय आपतो नथी तेमज्जे सम्यक आलाप पणु करतो नथी अट्ठे डे सारा सभापणुथी सतोप उत्पन्न करतो नथी ते पुरुष अव्यवहारी छे. (एवामेव तुमं पि ववहारी णो चैव णं तुमं पएसी ! अववहारी) आ प्रभात्ते डे प्रदेशिन् तमे पणु व्यवहारी छे.

चतुर्थं लगमा इह्या मुज्जणे तमे अव्यवहारी नथी. तात्पर्य आ प्रभात्ते छे डे डे प्रदेशिन् ! तमोअे सम्यक् आलापइय सारे ववहार भारी साथे कथी नथी छताअे भारी विषयमा लडित अने अहुमान तो तमे कथी छे अथी तमे आद्यभद्रोक्त पुइय-नी जेम व्यवहारी न छे. अव्यवहारी नथी.

हे प्रदेशिन् त्वं जानासि खलु यत् कति-कियन्तो व्यवहारकाः-व्यव-
हाराः-पवृत्तयः प्रज्ञप्ताः ?” इति प्रश्नानन्तरं प्रदेशी प्राह-हन्त ! जानामि,
तत्र ज्ञायमानविषयं प्रकोशयति-चत्वारः-चतुः संख्यकाः व्यवहाराः प्रज्ञप्ताः,
तद्यथा-एकः-कश्चित् पुरुषः ददाति-किञ्चिद् वस्तु कस्मैचित् समर्पयति
किन्तु न संज्ञापयति-सम्यगालापेन संतोषं नोत्पादयति ? । एकः संज्ञा
पयति किंतु नो ददाति २ । एको ददात्यपि संज्ञापयत्यपि ३ । एको नो
ददाति नो संज्ञापयति ४ । इति चत्वारो भङ्गाः । तत्र केशी प्रदेशिन् पृच्छ-
ति-हे, प्रदेशिन् ! त्वं जानासि खलु एतेषां चतुर्णां पुरुषाणां दान-तद-
संज्ञापन १-संज्ञापनाऽदान २-दानसंज्ञापनोभय ३-तदुभयराहित्यरूपऽ
वृत्तिसम्पन्नानां मध्ये कः पुरुषो व्यवहारी ? इति जानासि ? इति प्रश्ने
प्रदेशी-प्राह-हन्त !! जानामि-तदेव दर्शयति “तत्थ ण” इत्यादिना-तत्र-
भङ्गचतुष्टये खलु यः सः-प्रथमभङ्गोक्तः पुरुषः ‘ददाति नो संज्ञापयति’ सः-
दान-तदसंज्ञापनसम्पन्नः खलु पुरुषः व्यवहारी कथ्यते ? । एवं तत्र खलु
यः सः-द्वितीयभङ्गोक्तः, ‘नो ददाति नो संज्ञापयति’-संज्ञापनाऽदानसम्प-

टीकार्थ—जब केशिकुमारश्रमणने प्रदेशी राजा से ऐसा पूछा कि हे
प्रदेशिन् ! तुम जानते हो कि व्यवहार कितने प्रकार का होता है ? इस
प्रकार से पूछने का कारण यह हुआ कि प्रदेशी राजाने १४९वें सूत्र में
अपने द्वारा कृतव्यवहार के विषय में सफाई उपस्थित की है. केशीकु-
मारश्रमण के प्रश्न को सुनकर उसने कहा हां, भदन्त ! जानता हूं व्यव-
हार चार प्रकार का होता है. एक व्यवहार में देनेवाला पुरुष किसी के
लिए कोई वस्तु देता है परन्तु अपने सम्यक् आलाप से-वातचीत से
वह उसके लिये संतोष उत्पन्न नहीं करता है, दूसरे व्यवहार में देनेवाला

टीकार्थ—द्वितीय प्रदेशी कुमार श्रमणने प्रदेशी राजाने आ प्रमाणे प्रश्न किये हैं
हे प्रदेशिन् ! तमने ज्ञायो छे के व्यवहार के प्रकारने ज्ञाय छे ? आ प्रमाणे के
प्रश्न करवाभां आव्यो छे तेनु कारण अे छे के प्रदेशी राजाने १४९ भा सूत्रभां
के ज्ञानतु आव्यरखु कियुं छे तेना सणधमा सपटीकरखु करवाभां आव्युं छे. देशी
कुमार श्रमणने प्रश्नने भावणीने तेखे कथुं हां लदंत ! ज्ञायुं छु. व्यवहार चार
प्रकारने ज्ञाय छे प्रथम व्यवहारमा दानकर्ता पुरुष कोठना माटे कोठ वस्तु आपे
छे, परन्तु पोताना सम्यक् आज्ञापथी-मारी भीठी वातचीतथी ते सामेना भावुसने
संतोष आपते नथी द्वितीय व्यवहारमा दानकर्ता पुरुष पोतानी भीठी वाणीथी भीजने

न्नः सः खलु पुरुषो व्यवहारी २, एव तत्र यः सः तृतीयभङ्गोक्तः पुरुषः
ददात्यपि संज्ञापयत्यपि' सः-दान-तत्संज्ञापनसम्पन्नः पुरुषो व्यवहारी ३ ।

पुरुष अपनी मिष्ट भाषणरूप प्रवृत्ति से दूसरे को संतोष तो उत्पन्न करा देता है, परन्तु अपनी वस्तु उसे देता नहीं है. तृतीय व्यवहार में देने-वाला अपनी वस्तु दे भी देता है और अपनी मिष्ट भाषणरूप प्रवृत्ति से उसी संतोष भी उत्पन्न करदेता है, चतुर्थ व्यवहार में-कोई देता भी नहीं है और संतोष भी उत्पन्न नहीं कराता है. इस प्रकार ये चार भङ्ग हैं। इन में केशीकुमारश्रमण प्रदेशी राजा से पूछते हैं-हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो कि इन चार-दान-तदसंज्ञापन, संज्ञापन दाने संज्ञापन उभय एवं तदुभय रहितरूप वृत्तिसम्पन्न पुरुषों के मध्य में कौन पुरुष व्यवहारी है? तब प्रदेशीने कहा हां, भदन्त ! जानता हूँ, इस भङ्गवतुष्टय में जो प्रथम भङ्गोक्त पुरुष है-देता तो है मिष्टभाषण द्वारा संतोष उत्पन्न नहीं कराता है-वह दान तदसंज्ञापन सम्पन्न पुरुष व्यवहारी कहा जाता है अर्थात् जो 'ददाति नो संज्ञापयति' इस भङ्गवाला है वह व्यवहारी है इसी तरह जो द्वितीयभङ्ग में कहा गया है 'संज्ञापयति, नो ददाति' वह संज्ञापना अदान सम्पन्नपुरुष व्यवहारी है. इसी प्रकार जो तृतीय भङ्ग में कहा गया है 'ददात्यपि' संज्ञापयत्यपि' ऐसा वह दान तत्संज्ञापन सम्पन्न पुरुष व्यवहारी

संतोष आपी दे छे पणु पोतानी वस्तु सामेवाणा भाषुसने आपतो नथी. तृतीय व्यवहारमा दानकर्ता पोतानी वस्तु आपी पणु दे छे अने पोतानी मधुर लापणुइप प्रवृत्तथी ते सामेना भाषुसने संतुष्ट पणु करी दे छे. यतुर्थ व्यवहारमां ते डोछ पणु वस्तु याचकने आपतो पणु नथी अने मधुर संज्ञापथी सामेना भाषुसने संतुष्ट पणु करतो नथी. आ प्रमाणे आ चार लंग छे अने संज्ञापमा देशी कुमारश्रमण प्रदेशी राजने प्रश्न करे छे डे छे प्रदेशिन् ! तमे जणु छे डे आ चार-दान तद-संज्ञापन, संज्ञापन, दाने संज्ञापन उभय अने तदुभय रहितरूप वृत्ति सम्पन्न पुरुषोमा डोछ व्यवहारी छे ? तारे प्रदेशीअे कहु-छा लहतं ! जणु छुं. आ लंग यतुष्टयमा जे प्रथम लङ्गोक्त पुरुष छे-ते आपे तो छे पणु मिष्ट भाषणुवडे संतोष उत्पन्न करतो नथी ते दान तदसंज्ञापन सम्पन्न पुरुष व्यवहारी कहवाय जे. अट्टे डे जे 'ददाति नो संज्ञापयति' आ लङ्गवाणी छे ते व्यवहारी छे आ प्रमाणे जे द्वितीय लङ्ग कहव छे 'संज्ञापयति, नो ददाति' ते संज्ञापना अदान सम्पन्न पुरुष व्यवहारी छे. आ प्रमाणे जे तृतीय लङ्गमा कहव छे-ददात्यपि संज्ञाप-यत्यपि' अथे ते दान तत्संज्ञापन सम्पन्न पुरुष व्यवहारी छे. पणु जे यतुर्थ

तत्र खलु यः सः—चतुर्थभङ्गोक्तः पुरुषः 'नो ददाति नो संज्ञापयति' सः—
 अदानासंज्ञापनोभयसंपन्नः पुरुषः उभयविधव्यवहाररहिततया अव्य-
 वहारी । एवमेव—भङ्गत्रयोक्तपुरुषाणां मध्ये एकभङ्गविशेषवदेव हे प्रदेशिन !
 त्वं खलु अव्यवहारी चतुर्थभङ्गोक्तपुरुषवत् नो चैव—नैवासि । यद्यपि त्वं
 सम्यक्मंलापेन मां संतोष्य न वर्तसे, तथापि मम विषये भक्ति—बहुमानं
 च करोषि अतस्त्वमाद्यभङ्गोक्तपुरुषवद् व्यवहार्येव नत्वव्यवहारीति भावः ॥सू. १५०॥

मूलम—तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी
 —तुब्भे णं भंते ! अइच्छेया दक्खा जाव उवएसलद्धा समत्था णं
 भंते ! ममं करयलंसि वा आमलय जीवं सरीराओ अभिनिवट्टित्ता
 णं उवदंसित्तए ?

तेणं कालेणं तेणं समएणं पएसिस्स रण्णो अदूरसामंते वाउ-
 याए संवुत्ते, तणवणस्सइकाए ऐयइ वेयइ चलइ, फंदइ घट्टइ उदी-
 रइ त तं भावं परिणमइ, तए णं केसीकुमारसमणे पएसिं रायं
 एवं वयासी—पाससि णं तुभं पएसिराया ! एयं तणवणस्सइं एयंत

है. परन्तु जो चतुर्थ भङ्गोक्तपुरुष है 'नो ददाति नो संज्ञापयति' वह
 आदान असंज्ञापनारूप उभयवृत्ति संपन्न पुरुष उभयविधव्यवहार रहित होने
 के कारण अव्यवहारी है । इसी तरह से हे प्रदेशिन ! इन तीन भङ्गो
 में कहे गये पुरुषों के बीचमें एकभङ्गोक्त पुरुष विशेष की तरह तुम
 भी हो. चतुर्थ भङ्गोक्त पुरुष की तरह अव्यवहारी नहीं हो. यद्यपि तुमने
 सम्यक् आलाप द्वारा सुझा संतोष उत्पन्न कराकर प्रवृत्तिरूप व्यवहार नहीं
 किया है फिर भी मेरे विषय में भक्ति और बहुमान तो किया ही है, इसलिये तुम
 आद्यभङ्गोक्त पुरुष की तरह व्यवहारी ही हो, अव्यवहारी नहीं हो ॥सू. १५०॥

ल्लगोक्त पुरुष छे. 'नो ददाति नो संज्ञापयति' ते आदान असंज्ञापना इय
 उभयवृत्ति संपन्न पुरुष उभयविध व्यवहार रहित होवाथी अव्यवहारी छे. आ
 प्रमाणे छे प्रदेशिन ! आ तथु ल्लगोगा उडेल पुरुषोभां प्रथम ल्लगोक्त पुरुष विशेष
 पनी जेम तमे यथु छे चतुर्थ ल्लगोक्त पुरुषनी जेम तमे अव्यवहारी नथी. तमे
 सम्यक् आलापद्वारा मने संतोष आपीने प्रवृत्तिरूप व्यवहार करीया नथी छताये
 मारा विषयमां ललित अने बहुमान तो तमेअये करीया न छे. अथी तमे आद्य
 ल्लगोक्त पुरुषनी जेम व्यवहारी न छे, अव्यवहारी नथी. ॥सू० १५०॥

जाव त त भोव परिणमंत ? हंता ।। पासामि । जाणासि णं तुमं पएसी ! एय तणवणस्सइं कायं ।क देवो चालेइ असुरो वा चालेइ णागो चालेइ किंनरो वा चालेइ किंपुरिसो वा चालेइ महोरगो वा चालेइ गंधव्वो वा चालेइ ? हंता जाणामि—णो देवो चालेइ जाव णो गंधव्वो चालेइ । वाउकाए चालेइ पाससि णं तुमं पएसी ! एयस्स वाउकायस्स सरूविस्स सकम्मस्स सरागस्स समोहस्स सवेयस्स सलेसस्स ससरीरस्स रूव ? । णो इणट्ठे समट्ठे । जइ गं तुमं पएसिराया ! एयस्स वाउकायस्स सरूविस्स जाव ससरीरस्स रूवं न पाससि तं कहं णं पएसी ! तव करयलं सि वा आमलगं जीव उवदंसिस्सामि ? । एव खल्ल पएसी ! दसट्ठाणाइं छउमत्थे मणुस्से सव्वभावेणं न जाणइ न पासइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं १, अधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकायं ३, जीवं असरीरवद्धं ४, परमाणुपोग्गलं ५, सदं ६, गंधं ७, वायं अयं जिणे भविस्सइ वा णो भविस्सइ ९, अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करिस्सइ वा नो वा करिस्सइ १० । एयाणि चैव उप्पन्ननाणदसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा धम्मत्थिकायं जाव नो वा करिस्सइ, तं सदहाहि ण तुम पएसो ! जहा अन्नो जीवो तं चैव ? । सू ५१ ।

ज्ञाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिकुमारश्रमणसेवमवादीन्—युय खलु भदन्त ! अतिच्छेदाः दक्षाः यावत् उपदेशकव्याः समर्थाः खलु भदन्त !

‘तणं पएसी राया’ इत्यादि ।

मृत्रार्थ—(तणं णं) उमके वाट (पएसी राया) प्रदेशीने (केशिकुमार-समणएव वयासी) केशीकुमारश्रमणसेवेना दक्षा—(तुभे णं भवे ! अच्छेदा

‘तणं पएसी राया’ इत्यादि ।

(मृत्रार्थ—(तणं णं) त्वात् पटी (पएसी राया) प्रदेशीने (केशिकुमार-समणं एव वयासी) दक्षाः कुमारश्रमणसेवेना दक्षाः तुभे णं भवे ! अच्छेदा

मम करतले वा आमलकं जीवं शरीराद् अभिनिवर्त्य खलु उपदर्शयितुम्?।
 तस्मिन् काले तस्मिन् समये प्रदेशिनो राज्ञः अदूरसामन्ते वायुकायः
 संवृत्तः, तृणवनस्पतिकायः एजते व्यजते चलति स्पन्दते घट्टते उदीर्ते तं तं
 भावं परिणमते । ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-पश्यसि

दृष्ट्वा जाव उवएसलद्धा समत्था णं भंते ! ममं करयलंसि वा आम-
 ल्यं जीवं सरीराओ अभिनिवट्टित्ता णं उवदंसित्तए) हे भदन्त ! आप
 अवसर के ज्ञान में अतिनिपुण हैं दक्ष हैं-कार्य के सम्पादन में कुशल
 हैं, यावत् उपदेशलब्ध हैं-गुरु के उपदेश को प्राप्त किये हुए हैं। इसलिये
 हे भदन्त ! शरीर से जीव को निकाल कर क्या आप हस्ततल में स्थित
 आंखों की तरह उसे मुझे दिखा सकते हैं ? (तेणं कालेण तेणं समएणं पए-
 सिस्स रण्णो अदूरसामन्ते वाउयाए संवुत्ते) उस काल और उस समय
 में प्रदेशी राजा के नजदीक-न अतिदूर और न अतिपास स्थान पर
 वायुकायप्रवृत्त हुआ (तृणवनस्पसइकाए एयइ, वेयइ, चलेइ, फंदइ, घट्टइ,
 उदीरइ, तं नं भावं परिणमइ) इससे तृणवनस्पतिकाय सामान्यतः एवं
 विशेषतः कंपित होने लगा, इधर से उधर रुकने लगा। परस्पर में संघर्षित होने
 लगा एवं कोईर जमीन ऊपर ही रुक गया। इस तरह वह तृणवनस्पति-
 काय एजनादिरूप भिन्न प्रकार के व्यापार में परिणत हो गया (तए णं

अइच्छेया दृष्ट्वा जाव उवएसलद्धा समत्था णं भंते ! ममं करयलंसि
 वा आमल्यं जीवं सरीराओ अभिनिवट्टित्ता णं उवदंसित्तए) हे भदन्त ! आप
 अवसर के ज्ञान में अतिनिपुण हैं, कार्यना सम्पादन में कुशल हैं,
 यावत् उपदेश लब्ध हैं, गुरु के उपदेश को प्राप्त किये हुए हैं। इसलिये
 हे भदन्त ! शरीर से जीव को निकाल कर क्या आप हस्ततल में स्थित
 आंखों की तरह उसे मुझे दिखा सकते हैं ? (ते णं कालेण ते णं समएणं पए-
 सिस्स रण्णो अदूरसामन्ते वाउयाए संवुत्ते) उस काल और उस समय
 में प्रदेशी राजा के नजदीक-न अतिदूर और न अतिपास स्थान पर
 वायुकायप्रवृत्त हुआ (तृणवनस्पसइकाए एयइ, वेयइ, चलेइ, फंदइ,
 घट्टइ, उदीरइ, तं नं भावं परिणमइ) इससे तृणवनस्पतिकाय सामान्यतः
 एवं विशेषतः कंपित होने लगा, इधर से उधर रुकने लगा। परस्पर में संघर्षित
 होने लगा एवं कोईर जमीन ऊपर ही रुक गया। इस तरह वह तृणवनस्पति-
 काय एजनादिरूप भिन्न प्रकार के व्यापार में परिणत हो गया (तए णं

खलु त्वं प्रदेशिराज ! एतं तृणवनस्पतिकायम् एजमानं यावत् तं भावं परिणममानम् ! हन्त ! पश्यामि । जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! एतं तृणवनस्पतिकायं किं देवश्चालयति असुरो वा चालयति नागो वा चालयति किन्नरो वा चालयति किंपुरुषो वा चायति महोरगो वा चालयति गन्धर्वो वा चालयति ! हन्त ! जानामि-नो देवश्चालयति जाव नो गन्धर्वश्चालयति

केशीकुमारसमणे पएसिरायं एवं व्यासी-पाससि णं तुमं पएसी राया ! एयं तणवणस्सइं एयंतं जाव तंतं भाव परिणमतं) तव केशीकुमारश्च मणने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा-हे प्रदेशिन् ! तुम इस तृणवनस्पतिकाय को सामान्य विशेषरूप से कंपित होते हुए यावत् एजनादिरूप भिन्न-प्रकार के व्यापार में परिणत होते हुए देख रहे होन? तव प्रदेशी राजाने कहा (हंता, पासामि) हां, भदन्त ! देख रहा हूं (जाणासि णं तुमं पएसी ! एयं तणवणस्सइकायं किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ, नागो वा चालेइ, किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधव्वो वा चालेइ) तव केशीकुमारश्चमणने उससे कहा हे प्रदेशिन् ! तुम जानते हो कि इस तृणवनस्पतिकाय को कौन चलाता है ? क्या देव चलाता है, या नाग चलाता है या किन्नर चलाता है, या किंपुरुष चलाता है, या महोरग चलाता है या गंधर्व चलाता है ? प्रदेशीने कहा-(हंता, जाणामि) हां, भदन्त ! जानता हूं (णो देवो चालेइ जाव णो गंधव्वो चालेइ वाउकाए

केशी कुमारसमणे पएसिं राय एवं व्यासी-पाससि णं तुमं पएसि राया ! एयं तणवणस्सइं एयंतं जाव तंतं भाव परिणमंति) त्वारे देशी कुमारश्चमणे प्रदेशी राजाने आ प्रमाणे उद्यु उं उं प्रदेशिन् ! तमे आ तृणवनस्पतिकायने सामान्य विशेषरूपधी कंपित यता यावत् एजनादिरूप भिन्न-प्रकार के व्यापार में परिणत बुद्धो धा ? त्वारे प्रदेशी राजाने उद्यु (हंता पासामि) हां, भदन्त ! जानता हूं (जाणासि णं तुमं पएसी ! एयं तणवणस्सइकायं किं देवो चालेइ, नागो वा चालेइ, किन्नरो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधव्वो वा चालेइ) त्वारे उं प्रदेशिन् ! तमे आ उं उं उं तृणवनस्पतिकायने चलावे छ ? उं असुर चलावे छ ? उं नाग चलावे छ ? उं किंपुरुष चलावे छ, उं गंधर्व चलावे छ ? प्रदेशीने कहा-(हंता, जाणामि) हां, भदन्त ! जानता हूं (णो देवो चालेइ, जाव णो गंधव्वो चालेइ वाउकाए

स्तिकायं३, जीवमशरीरवद्धम्४ परमाणुपुद्गलं५, शब्दं६, गन्ध७, वातम्८, अयं जिने भविष्यति वा नो भविष्यति०, अयं सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति वा नो वा करिष्यति१०। गतानि चैव उत्पन्नजानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली सर्वभावेन जानाति पश्यति, तद्यथा-धर्मास्तिकाय यावत् नो वा करिष्यति, तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेक्षिन्। यथा-अन्नो जीवः तदेव९ ॥ सु० १५१॥

सर्वभावेणं न जाणइ, न पासइ) क्यों कि हे प्रदेशिन्। छद्मस्थ जीव इन इन दश स्थानों को सर्वभाव से नहीं जानता है और नहीं देखता है (तं जहा) वे दशस्थान इस प्रकार से है (धम्मत्तिकाय १, अधम्मत्तिकाय २, आगामत्तिकाय ३, जीवमशरीरवद्ध ४, परमाणुपुद्गल ५, शब्द ६, गंध ७, वायु ८ अयं जिने भविस्सइ वा नो भविस्सइ९, अयं सर्वदुःखाणां अंतो करिस्सइ नो वा करिस्सइ१०) धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, अशरीर वद्ध जीव ४, परमाणुपुद्गल ५, शब्द ६, गंध ७, वात ८ यह जिन होगा, या नहीं होगा ९, और यह समस्त दुखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा १० (गयाणि चैव उत्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सर्वभावेणं जाणइ पासइ) इन्हे तो उत्पन्न ज्ञान दर्शन धारी अर्हन्त जिन केवली सर्वभाव से जानते हैं। (तं जहा धम्मत्तिकाय जाव नो वा करिस्सइ-तं सद्वहादि णं तुम पएसी। जहा अन्नो जीवो तं चैव) अतः जय अर्हन्त जिन केवली धर्मास्तिकायादि १० स्थानों को जानते देखते हैं

सर्वलावधी जाणतो नधी अने जेतो नधी (तं जहा) ते दशस्थानो आ प्रभाणे छे (धम्मत्तिकायं १, अधम्मत्तिकायं २, आगामत्तिकायं ३, जीवमशरीरवद्धं ४, परमाणुपुद्गलं ५, शब्दं ६, गंधं ७, वायुं ८, अयं जिने भविस्सइ वा नो भविस्सइ ९, अयं सर्वदुःखाणां अंतो करिस्सइ १०) धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, अशरीर वद्ध जीव ४, परमाणुपुद्गल ५, शब्द ६, गंध ७, वात ८, आ जिन वये छे नदि धरे इ अने अयं अन्तं दुःखानां अन्तं अन्ते छे नदि धरे १० (गयाणि चैव उत्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सर्वभावेणं जाणइ पासइ) अर्हन्त जिन केवली सर्वभावेणं जानते देखते हैं। (तं जहा धम्मत्तिकाय जाव नो वा करिस्सइ-तं सद्वहादि णं तुम पएसी। जहा अन्नो जीवो तं चैव) अतः जय अर्हन्त जिन केवली धर्मास्तिकायादि १० स्थानों को जानते देखते हैं

टीका—‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि—ततः खलु प्रदेशी राजा केशि-
कुमारश्रमणम् एवमवादीत्—हे भदन्त ! यूय खलु अतिच्छेकाः—अवसरज्ञा-
नातिनिपुणाः, दक्षा—कार्यसम्पादनकुशलाः, यावत्—यावत्पदेन ‘प्राप्तार्थाः बुद्धाः
कुशलाः महामतयः विनीताः विज्ञानप्राप्ताः’ इत्येषां पदानां संग्रहः एषां
व्याख्या पूर्व गता । उपदेशलब्धाः—प्राप्तगुरूपदेशाः, अतो हे भदन्त यूयं
शरीरात् जीवमभिनिवर्त्य—निष्काश्य करतले—हस्ततले स्थितम् आमलक-
मिव मम उपदर्शयितुं समर्थाः—शक्ताः ।

और छद्मस्थ इन्हे जानता देखता नहीं है तो हे प्रदेशिन् ! तुम श्रद्धा
करो कि जीव अन्त्य है और शरीर अन्त्य है. इत्यादि ।

टीकार्थ स्पष्ट है—‘दुक्खा जाव उपएसलद्धा’ में जो यावत् पद आया
है उससे यहां ‘प्राप्तार्थाः, बुद्धाः, कुशलाः, महामतयः, विनीताः, विज्ञान-
प्राप्ताः’ इन पदों का संग्रह हुआ है, इन पदों की व्याख्या पहिले की जा
चुकी है। उस काल और उस समय में का तात्पर्य है जब प्रदेशी राजाने
केशीकुमारश्रमण से शरीर से निकालकर जीव को हस्तामलकवत् दिखाने
की बात कही तब। ‘एयंतं जाव तं तं’ में जो यावत् पद आया है उससे
यहां ‘व्येजमानं, चलन्तं, स्पन्दमानं, घट्टमानम्’ इन पदों का संग्रह हुआ है।
इन पदोंकी व्याख्या इसी सूत्र में पहिले की जा चुकी है. इन पदों में वायुकाय एके-
न्द्रिय जीव है—अतः वह रूप युक्त है, कर्मसहित है, रागसहित है, मोहसहित
है, नपुंसकवेद सहित है, औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण इस चार

टीकार्थ स्पष्ट न छे. ‘दुक्खा जाव उपएसलद्धा’ भां न्ने यावत् पद आवेल
छे तेथी अड्डी ‘प्राप्तार्थाः बुद्धाः, कुशलाः, महामतयः, विनीताः, विज्ञान-
प्राप्ताः. आ पटोने स ग्रह थयो छे. आ पटोनी व्याख्या पडेल्लो डरवाभां आवी
छे. ते डणे अने ते सभये न्ने डडेवाभा आ व्थुं छे तेनी स्पष्टता आ प्रमाणे छे डे
व्यादे प्रदेशी राजाये डेथी कुमार श्रमणने शरीरभाथी आडार डडीने एवने हस्ता-
मलकवत् अताववानी बात डडी त्यादे (एयंतं जाव तं तं) भां न्ने यावत् पद छे
तेथी अड्डी ‘व्येजमानं, चलन्तं, स्पन्दमानं, घट्टमानम्’ आ पटोने स ग्रह
थयो छे. आ पटोनी व्याख्या आ न्ने सूत्रभां पडेल्लो डरवाभां आवी छे. आ पटोभां
प्रत्ययवृत्त न्ने विशेषता छे. वाच्यवृत्त विशेषता नथी वायुकाय ओडेन्द्रिय एव छे.
येथी ते उपयुक्त एव न्ने कर्मसहित छे, रागसहित छे, मोहसहित छे, नपुंसक
सहित छे, औदारिक, वैक्रिय, तैजस अने कार्मण आ आर शरीरवाणे छे. दृष्य

तस्मिन् काले-केशिकुमारश्रमण प्रति जीवस्य शरीरान्निष्काशनपूर्वकं कराऽऽमलकवट्टुदर्शनप्रार्थनाकाले तस्मिन् समये-अवसरे प्रदेशिनो राज्ञः अदूरसामन्ते नातिदूरे-नातिममीपे वायुकायः संवृत्तः-प्रवृत्तोऽभवत्, तेन तृणवनस्पतिकायः एजते-सामान्यतः कम्पते, ततो व्येजते-विशेषतः कम्पते, चलति-चपली भवति, स्पन्दते-ईषन्चलति, घटते-परस्परं संघर्षं प्राप्नोति. उदीर्ते-उत्कम्पते एवं तां भावम्-एजनादिरूपं व्यापारं परिणमते-प्राप्नोति, ततः-वायुकायसर्वतन्वशात् तृणवनस्पतिहायस्यैजनादिभावोपगमनानन्तरम् खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजमेवमवादीत्-हे प्रदेशिराज! त्वं पश्यसि-चक्षुर्गोचरं करोषि खलु एतम्-इमम् तृणवनस्पतिम्, एजमानं यान्त-यावत्पदेन-‘व्येजमानं चलन्तं स्पन्दमानं घटमानम् उदीराणम्’ इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः एषां व्याख्याऽत्रैव मूत्रे पूर्वं कृता, तत्र मत्पयकृतो विशेषः, धात्वर्थस्त्वविशेष एव द्रष्टव्यः। तां तां भावं परिणममानम्. ?। इति केशिप्रश्ने प्रदेशी प्राह-हन्त ! पश्यामि। पुनः केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिराजं पृच्छति-हे प्रदेशिन ! त्वं खलु जानासि एतं वनस्पतिकार्यं किं देवश्चालयति? किं वा अमुरश्चालयति? किं वा नागः-नागदेवश्चालयति ! किं वा किन्नरः-तदाव्यदेवश्चालयति ! किं वा किंपुरुषश्चालयति ! किं वा महोरगः-व्यन्तरविशेषो देवश्चालयति। किं वा गन्धर्वश्चालयति !। प्रदेशी प्राह-हन्त!! जानामि-नो देवश्चालयति, यावत्-नो गन्धर्वश्चालयति, तर्हि ऋश्चालयति ! इति जिज्ञासायामह-वायुकायश्चालयति। केशी पृच्छति-हे प्रदेशिन ! त्वमेतस्य स्वकीयेऽदूरसामन्ते संप्रवृत्तस्य वायुकायस्य रूपं पश्यसि, तस्य कीदृशस्येत्यत्राऽऽत्तरूपिणः-रूपयुक्तस्य सकर्मणः-कर्ममहितस्य सरागस्य-रागसहितस्य समोहस्य-मोहसहितस्य सवेदस्य-नपुंसक वेदसम्पन्नस्य सलेड्यस्य-कृष्णनीलहापोतलेड्यात्रययुक्तस्य मशरीस्य-औदारिक्रैक्रियतैजसकर्मणः शरीरचतुष्टययुक्तस्य एतद्वनस्य वायुकायस्य रूपं किं पश्यसि। इति पूर्वोपान्वयः। इति पन्ने प्रदेशी प्राह-नायमर्थः समर्थः-तादृशस्य वायुकायस्य दर्शनरूपोऽर्थः न जनति-न जन्म रूपं पश्यामीति भावः। केशीकुमार-

शरीरोत्थाला ई. हृष्या, नीट एवं हापोत उन तीन लेड्याओंवाला है यही पात सरुपी आदि विशेषणों द्वारा वायुकाय में प्रकट की गई है। अब शिष्ट मन्त्र पदों का अर्थ स्पष्ट है ॥ अ. १५१ ॥

श्री-... विद्यायां ॥
 १०-... ॥१५१॥

श्रमणो वायुकास्याशक्यदर्शनत्वे प्रदेशिनमाह—हे प्रदेशिराज । यदि त्वं खलु एतस्य वायुकायस्य सखुपिणः यावत्—सशरीरस्य रूपं न पश्यसि तत्—तदा कथं—केन प्रकारेण खलु करतले आमलकं वा—इव जीवं तव उपदर्शयिष्यामि? वायुकायस्य तत्र जीवस्य च समानरूपत्वादेकस्या शक्यदर्शनत्वेऽपरस्यापि अशक्यदर्शनत्वात् । वक्ष्यमाणच्छद्मस्थमनुष्यस्य जीवादिस्थानानां सर्व-भावेन ज्ञानदर्शनाऽयोग्यत्वात् कथं चक्षुर्गोचरं कारयिष्यामीति भावः । तदेव दर्शयति—हे प्रदेशिन ! एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण खलु छद्मस्थो मनुष्यः दशस्थानानि वक्ष्यमाणानि धर्मास्तिकायादीनि सर्वभावेन सम्पूर्णतया न जानाति, न पश्यति । कानि तानीत्याह तद्यथा—धर्मास्तिकायम् १, अधर्मास्तिकायम् २, आकाशास्तिकायम् ३, जीवशरीरवद्धम्—शरीरतोऽसंस्पृष्टम् ४, परमाणुपुण्डलम् ५, शब्दम् ६, गन्धम् ७, वात—वायुम् ८, अयं जिनो भविष्यति वा—अथवा नो—न भविष्यतीति? ९, अयं सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति वा नो करिष्यतीति? १० । एतानि दशस्थानानि उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हन् जिनः केवली एव सर्व-भावेण—साकल्येन जानाति तथा पश्यति, तद्यथा—धर्मास्तिकायं यावत्—नो वा करिष्यति तत्तस्मात्कारणात् हे प्रदेशिन ! त्वं श्रद्धेहि, यथा—अन्यो जीवः तदेवपूर्वोक्तमेव—अन्यच्छरीरम्, नो तज्जीवःस शरीरम् इति ॥ सू० १५१ ॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी से नूर्ण भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ? हंता पएसी हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे । से णूणंभंते ! हत्थिउ कुंथू अप्पकम्मतराए चेव अप्पकिरियतराए चेव अप्पासवतराए चेव एवं अप्पाहारनीहारउस्सासनीसासइड्ढितराए अप्पजुइयतराए चेव, एवं कुंथुओ हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव जाव ?, महज्जुइयतराए चेव । हंत ? हत्थीओ कुंथू अप्पकम्मतराए चेव कुंथुओ वा हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव तं चेव । कम्हा णं भंते ! हत्थिस्स कुंथुस्स य समे चेव जीवे? पएसी से जहाणामए-कूडागारसाला सिया जाव निवायगंभीरा, अह णं केइ पुरिसे जोइं च

पदीव च गहाय त कूडागारसाल अंतोर अणुपविसइ, तीसे कूडा-
 गारसालाए सव्वओ समंता घणनिचियनिरंतराइं णिच्छिड्डाइं दुवा-
 खयणाइ पिहेइ, तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए तं पईवं
 पलीवेज्जा, तए णं से पईवे त कूडागारसालं अंतोर ओभासइ उज्जो
 वेइ तावइ पभासइ, णो चेव णं वाहिं। अह णं से पुरिसे तं पईवं
 इडुरएणं पिहेज्जा, तए णं से पईवे त इडुरयं अंतोर ओभासेइ४,
 णो चेव णं इडुरगस्स वाहिं णों चेव णं कूडागारसालाए वाहिं। एवं
 गोकिलिंजेणं, पच्छियपिडएणं गंड मणियाए, आढएणं, अद्धाढएणं,
 पत्थएणं, अद्धपत्थएणं, कुलवेणं चाउव्भाइयाए, अट्टभाइयाए, सोल-
 सियाए, वत्तीसियाए, चउसट्टियाए, दीवचंपएण, तए णं से पईवे
 दीवचंपगस्स अंतोर ओभासेइ४, नो चेव णं दीवचंपगस्स वाहिं नो
 चेव णं चउसट्टियं नो चेव णं चउसट्टियाए वाहिं, णो चेव णं कूडा-
 गारसालं णो चेव णं कूडागारसालाए वाहिं, एवामेव पएसी ! जीवे
 वि ज. जारिसय पुव्वकम्मनिवद्धं वोदिं णिव्वत्तेइ तं असंखेज्जेहिं
 जीवपएसेहिं सचित्तं करेइ गुट्टियं वा महालिय वा, तं सदहादि
 णं तुम पएसी ! जहा—अण्णो जीवो त चेव णं १० ॥ सू. १५२ ॥

त्राया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केजिनं कुमारमन्त्रेणसदसीव-
 स नून मदन्त ! तस्मिन्तः कुभ्योः वा मम एव जोरः ? इत्त ! ! प्रदेशिन !

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि।

सुवार्थ—‘तए णं’ इत्ये वाद तं एवमां राया हेमिं कुमारमन्त्रेणं
 एव रायासी। इत्त प्रदेशी राजाने हेमिं कुमारमन्त्रेणं एवं रायासी। हेमि-

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि।

सुवार्थ—‘तए णं’ इत्ये वाद तं एवमां राया हेमिं कुमारमन्त्रेणं एव
 रायासी। इत्त प्रदेशी राजाने हेमिं कुमारमन्त्रेणं एवं रायासी। हेमि-

हस्तिनश्च कुन्थोश्च सम एव जीवः। अथ नूनं भदन्त ! हस्तिनः कुन्थुः अल्प-
कर्मतर एव अल्पक्रियतर एव अल्पास्रवतर एव, एवम् अल्पाहारनीहारो-
च्छ्वासनिः श्वासऋद्धिकतरः अल्पधुतिकतर एव, एव च कुन्थुतः हस्ती
महाकर्मतर एव महाक्रियतर एव यावत् महाधुतिकतर एव ? हन्त ! प्रदेशिन् !

कुमारश्रमण से ऐसा कहा—(से णूणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे
चेव जीवे) हे भदन्त ! हाथी का जीव और कुथु का जीव क्या तुल्यप-
रिमाण वाला है या न्यूनाधिकपरिमाणवाला है ? तब केशीकुमारश्रमण
ने उससे कहा—(हंता, पएसी ! हत्थिस्स य कुथुस्स य समे चेव जीवे)
हां प्रदेशिन् ! हाथी का और कुंथुका जीव तुल्यपरिमाणवाला है, न्यूना-
धिक परिमाणवाला नहीं है। (से णूणं भंते ! हत्थीउ कुंथू अप्पकम्मतराए
चेव, अप्पकिरियतराए चेव, अप्पासवतराए चेव) हे भदन्त ! हस्ती की
अपेक्षा कुन्थु क्या अल्पकर्मवाला ही होता है ? अत्यल्प कायिकादि क्रिया
वाला ही होता है ? अत्यल्प आस्रव वाला ही होता है ? (एवं अप्पाहार
नीहारउस्सासनीसासइड्ढियतराए, अप्पजुइयतराए चेव) अल्पतर आहार-
वाला ही होता है ? अल्पतर नीहार वाला ही होता है ? अल्पतर उच्छ्वास
निश्वास वाला ही होता है ? अल्पतर ऋद्धिवाला ही होता है ? अल्पतर
धुति शरीर की कान्ति वाला ही होता है। (एवं कुंथुओ हत्थी महाकम्म-
तराए चेव, महाकिरियतराए चेव जाव महज्जुइयतराए चेव) इसी प्रकार से

भंते ! हत्थिस्सय कुंथुस्स य समे चेव जीवे) हे भदन्त ! हाथीने एव
कुंथुने एव शुं तुल्य परिणाम वाणे छे के न्यूनाधिक परिमाणवाणे छे ? त्थारे केशी
कुमार श्रमणे तेने उल्लुं—(हंता, पएसो ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव
जीवे) हां प्रदेशिन् ! हाथीने अने कुथुने एव तुल्य परिणामवाणे छे. न्यूना-
धिक परिणामवाणे नथी. (से णूणं भंते ! हत्थिउ थुकुथू अप्पकम्मतराए चेव,
अप्पकिरियतराए चेव, अप्पासवतराए चेव) हे भदन्त ! हाथीनी अपे-
क्षाये शु कुंथु अल्पकर्मवाणुं न् डोय छे ? अत्यल्पकायिक वगेरे क्रियावाणुं डोय
छे ? अत्यल्प आस्रवयुक्त डोय छे। (एवं अप्पाहारनीहारउस्सासनीसास-
इड्ढियतराए, अप्पजुइयतराए चेव) अल्पतर आहारवाणुं न् डोय छे ! अल्प-
तर नीहारवाणुं न् डोय छे ! अल्पतर उच्छ्वास निश्वास युक्त डोय छे। (एवं
कुथुओ हत्थी महाकम्मतराएचेव, महाकिरियतराए चेव जाव महज्जु
इयतराए चेव) आ प्रमाणे कुंथुनी अपेक्षाये शुं हाथी महाकर्मतर डोय छे,

दस्तितः कुन्धुश्च अल्पकर्मतर एव, कुन्धुतो वा दत्तो महाकर्मतर एव तदेवा ।
कस्मान् ग्लु भदन्त ! द्दस्तिनश्च कुन्धोश्च सम एव जीवः । प्रदेशिन् ! तद्
यथानामकं कृटाऽऽकारशाला स्यात्, याभूत् निर्वातगम्भीरा, अथ ग्लु रुधित्
पुरुषः ज्योतिर्वा प्रदीपं वा गृहीत्वा ता कृटाऽऽकारशालाम् अन्तरन्तरनुप-

कुन्धु की अपेक्षा हाथी क्या महाकर्मतर ही होता है, महाक्रियातर ही होता है?
यावत् महाधृतितर ही होता है? इस प्रदेशी के प्रश्न के उत्तर में केशी
कुमारश्रमणने कहा—(दत्त, पणसी ! द्दत्तिश्चा कुन्धु अल्पकर्मतराण चैव,
कुन्धुओ वा दत्थी महाकर्मतराण चैव महाक्रियतराण चैव—तं चैव) हां,
प्रदेशिन् ! ऐसी ही बात है—हाथी से कुन्धु अल्पतर कर्मवाला ही होता है,
इत्यादि इसी प्रकार कुन्धु की अपेक्षा से हाथी महाकर्मतरवाला ही होता
है, महाक्रियावाला ही होता है इत्यादि। (कृद्वा णं भंते ! द्दत्तिस्म य
कुन्धुस्स य समे चैव जीवे) अब प्रदेशी इस प्रकार पूछता है कि—हे
भदन्त ! आपने जो हाथी और कुन्धु के जीव को समानपरिमाणवाला कहा
है सो इसका क्या कारण है? केशीकुमारश्रमणने उससे कहा—(पणसी !
से जहा नामण कृटागारशाला सिया जात निवायगंभीरा) हे प्रदेशिन् !
जैसे एक कृटाकारवाली पर्वत के शिखर के आकार जैसी जगत् हो और यावत्
वह निर्वात-वायुप्रवेश रहित होने के कारण न जीव हो, (दृढं णं कृड पुरिमं
जोई पदोव च गहाय तं कृटागारशालं जतोरे अणुपरिमिड) अब जोई

विशति, तस्याः कूटाकारशालायाः सर्वतः समन्तात् घननिचितनिरन्तराणि निश्छिद्राणि द्वारवदनानि पिदधाति, तस्याः कूटाऽऽकारशालाया बहुमध्य देशभागे तं प्रदीप प्रदीपयेत्, ततः खलु स प्रदीपः तां कूटाऽऽकारशालाम् अन्तरन्तः अवभासयति उद्द्योतयति तापयति प्रभासयति, नो चैव खलु बहिः अथ खलु स पुरुषः तं प्रदीपम् इहुरकेण पिदध्यात्, ततः खलु

पुरुष अग्नि और दीपक को लेकर उस कूटाकारशाल के भीतर घुसकर बिलकुल ठीक मध्यभाग में जाकर खड़ा हो जाता है (तीसे कूडागारसालाए सव्व समंता घणनिचियनिरंतराइं णिच्छिड्डाईं दुवारवयणाईं पिहेइं) फिर वह उस कूटाकारशाला के चारों ओर के सब दरवाजों को इस तरह से बन्द कर देता है कि जिससे उनके आपस में किवाड इस प्रकार से सट जाते हैं कि उनमें जरासा भी छिद्र नहीं रहने पाता है. इस तरह से दरवाजों को अच्छी तरह से बन्द कर (तीसे कूडागारसालाए बहुमज्जदेसभाए तं पईव पलीवेज्जा) फिर वह उस कूटाकारशाला के बहुमध्य देशभाग में उस प्रदीप को प्रज्वलित करता है. (तए णं से पईवे तं कूडागारसालं अंतो २ ओभासइं) इस तरह वह दीपक उस कूटाकारशाला के पूरे भागको ही प्रकाशित करता है (उज्जोवेइं, तावइं पभावइं) उद्योतित करता है, तापित करता है एवं घटपटादि पदार्थों को दिखाने से उसे प्रभासित करता है (णो चैव णं बहिं) उस कूटाकारशाला के बाहिरी भाग को वह न प्रकाशित करता है, न उद्योतित करता है, न तापित करता है और न घटपटादिकों को

पविस्सइं) उवे केअ पुरुष अग्नि तेमए दीपक लधने ते कूटाकारशाणाना अंदर प्रविथधने अेकहम तेना मध्यभागमा लधने उलो थध लय छे. (तीसे कूडागारसालाए सव्वओ समंता घणनिचियनिरंतराइं णिच्छिड्डाईं दुवारवयणाईं पिहेइं) पछी ते भाणुस ते कूटाकार शाणाना आरे तरइना अधा द्वारेने अेवी रीते अी करी हे छे तेना परस्पर अेकहम अध थयेला कमाओमांथी नानुं सरभुं पणु काए रडेतुं नथी. (तीसे कूडागारसालाए बहुमज्जदेसभाए तं पईव पलीवेज्जा) पछी ते भाणुस ते कूटाकारशाणाना बहुमध्य देशभागमां ते दीपकने पेटावे छे (तए णं से पईवे तं कूडागारसालं अंतो २ ओभासइं) आ प्रभाणु (दीपक ते कूटाकार शाणाना अंदरना भागने ल प्रकाशित करे छे, (उज्जोवेइं, तावइं पभावइं) उद्योतित करे छे, तापित करे छे, अने घटपट वगेरे पदार्थोने अतावीं तेमने प्रतिभासित करे छे (णो चैव णं बहिं) ते कूटाकार शाणाना अंदरना भागने ते प्रकाशित करतो नथी, उद्योतित करतो नथी, संतापित करतो नथी अं

स प्रदीपः तद् इडुरकम् अन्तरन्तः अवभासयति४, नो चैव खलु इडुरकस्य वहिः, नो चैव खलु कूटाऽऽकारशालायाः वहिः। एवं गोकिलिञ्जेन. पक्षिपिटकेन, गण्डमाणिकया. आढकेन, अर्थाढकेन, प्रस्थकेन, अर्धप्रस्थकेन, कुडवेन, अर्द्धकुडवेन, चतुर्भागिकया, अष्टभागिकया, षोडशिकया, द्वात्रिंशत्कया,

दिखाने से उसे प्रभासित करता है। (अहं णं से पुरिसे तं पईवं इडुरणं पिहेज्जा, तणं से पईवे तं इडुरयं अंतोर ओभासेइ ४) यदि वह पुरुष उस दीपक को किसी बड़े ढक्कन से ढंक देता है—तो वह दीपक उस बड़े ढक्कन के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करता है यावत् उसे प्रभासित करता है (णो चैव णं इडुरगस्स चाहिं णो चैव णं कूटागारशालाए चाहिं) उस बड़े ढक्कन के बाहिरी भाग को एवं कूटाकारशाला के बाह्यदेश को प्रकाशित यावत् प्रभासित नहीं करता है। (एवं गोकिलिञ्जेणं, पच्छिपिटणं, गण्डमणियाणं, आढणं, अर्थाढणं, प्रस्थणं, अर्धप्रस्थणं, कुडवेणं, अर्द्धकुडवाए, अष्टभायाए, षोडशियाए) इसी तरह उस दीपक को गोकिलिञ्ज से—गाय को खाना जिसमें रखा जाता है ऐसी कुण्डिका से, तथा पक्षी के आकरवाले बगलका निर्मित पात्र विशेष से, गण्डमणिका से—धान्य नापनिका से, आढक से, अर्थाढक से, प्रस्थक से, अर्धप्रस्थक से, कुडवसे, अर्द्धकुडव से, न मव देव विशेष में प्रसिद्ध धान्यमापक पात्र विशेषों से ढक देता है तथा चतुर्भागिका से, अष्टभागिका

षट्षट वगेरे पद्यार्थेने णतावीने तेनने प्रतिभापित पणु इरतो नवी। (अहं णं से पुरिसे तं पईवं इडुरणं पिहेज्जा, तणं से पईवे तं इडुरयं अंतोर ओभासेइ ४) इसे जो ते पुरुष ते दीपकने मोटा ढक्कनसे ढक देते ते दीपक ते मोटा ढक्कन के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करे छे, यावत् तेने प्रतिभापित करे छे। (णो चैव णं इडुरगस्स चाहिं णो चैव णं कूटागारशालाए चाहिं) ते मोटा ढक्कन के बाहिरी भाग को एवं कूटाकारशाला के बाह्यदेश को प्रकाशित यावत् तेने प्रतिभापित नहीं करता है। (एवं गोकिलिञ्जेणं, पच्छिपिटणं, गण्डमणियाणं, आढणं, अर्थाढणं, प्रस्थणं, अर्धप्रस्थणं, कुडवेणं, अर्द्धकुडवाए, अष्टभायाए, षोडशियाए) इसी तरह उस दीपक को गोकिलिञ्ज से—गाय को खाना जिसमें रखा जाता है ऐसी कुण्डिका से, तथा पक्षी के आकरवाले बगलका निर्मित पात्र विशेष से, गण्डमणिका से—धान्य नापनिका से, आढक से, अर्थाढक से, प्रस्थक से, अर्धप्रस्थक से, कुडवसे, अर्द्धकुडव से, न मव देव विशेष में प्रसिद्ध धान्यमापक पात्र विशेषों से ढक देता है तथा चतुर्भागिका से, अष्टभागिका

चतुष्पष्टया, दीपचम्पकेन, ततः खलु स प्रदीपः दीपचम्पकस्य अन्तरन्तः
 अवभासयति४, नो चैव खलु दीपचम्पकस्य वहिः नो चैव खलु चतुष्पष्टिका,
 नो चैव खलु चतुष्पष्टिकाया वहिः, नो चैव खलु कूटाऽऽकारशालां, नो
 चैव खलु कूटाऽऽकारशालाया वहिः, एवमेव प्रदेशिन् । जीवोऽपि यां यादृशीं
 पूर्वकर्म निबद्धां बोद्धिं निर्वर्तयति तामसंख्येयैर्जीवप्रदेशैः सचित्तं करोति क्षुद्रिकां वा
 महतीं वा, तत् श्रद्धेहि खलु त्वं प्रदेशिन् ! यथा अन्यो जीवः तदेव खलु १० । सू. १५२।

से, षोडशभागिका से इन सब चतुर्भागिका से चतुष्पष्टिकापर्यन्त के
 मगधदेशप्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषों से ढक देता है तथा दीप के ढकने
 से ढक देता है (तएण से पईवे दीवचंपगस्स अंतो २ ओमासेइ) तो
 वह प्रदीप जिन २ से ढका गया है उन्हीं २ के भीतरी को ही प्रका-
 शित करता है, उनके बाहिरी भाग को नहीं इसी तरह से वह दीपच-
 म्पक के ही भीतरी भाग को प्रकाशित करता है, (णो चैव णं दीवचं-
 गस्स बाहिं नो चैव णं चउसट्ठियं, नो चैव णं चउसट्ठियाए बाहिं, णो
 चैव णं कूडागारसालं, कूडागारसालाए बाहिं) दीपचम्पक के बाहिरी
 भाग को नहीं—या दीपक के बाहिर के प्रदेश को नहीं, चतुष्पष्टिका
 को नहीं, चतुष्पष्टिका के बाहिर के प्रदेश को नहीं, कूटाकारशाला को,
 और कूटाकारशाला के बाहर के प्रदेश को नहीं प्रकाशित करता है
 (एवामेव पएसी ! जीवे वि जे जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोद्धिं णिव्वत्तेइ)

अष्ट लागीकथी, षोडश लागीकथी (बत्तीसियाए, चउसट्ठियाए, दीवचंपएणं)
 अत्तीसिकथी, चतुष्पष्टिकथी, आ अधी चतुर्भागिकथी चतुष्पष्टिका पर्यन्तना मगध
 देश प्रसिद्ध रसमापक पात्रविशेषोथी ढांकी हे छे तेमज्ज दीपचंपकथी—दीपकना! ढां-
 क्णुथी ढांकी हे छे. (तएण से पईवे दीवचंपगस्स अंतो २ ओमासेइ)
 तो ते प्रदीप जे जे वस्तुथी ढांकावां आये छे ते ते वस्तुना अंदरना लागने
 ज प्रकाशित करे छे. तेमना अहारना लागने प्रकाशित करतो नथी आ प्रमाणे ते
 दीपचंपकना अंदरना लागने ज प्रकाशित करे छे (णो चैव णं दीवचंपगस्स
 बाहिं, नो चैव णं चउसट्ठियं, नो चैव णं चउसट्ठियाए बाहिं, णो चैव
 णं कूडागारसालं, णो चैव णं कूडागारसालाए बाहिं) दीपचंपकना
 अहारना लागने नहीं हे दीपक चंपकना अहारना प्रदेशने नहीं, चतुष्पष्टिकाने नहीं,
 चतुष्पष्टिकाना अहारना प्रदेशने नहीं कूटाकार शालाने नहीं, अने कूटाकारशालाना
 अहारना प्रदेशने प्रकाशित करतो नथी. एवामेव—पएसी ! जीवे वि जे. जारि-
 सयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोद्धिं णिव्वत्तेइ) आ प्रमाणे छे प्रदेशिन् एव पथु पूर्व-

हस्तिनः कुन्थोश्च जीवः सम एव । प्रदेशी कथयति—हे भदन्त ! तत्र—हस्ति-
 कुन्धोर्मध्ये हस्तिनः—हस्तिनमपेक्ष्य, अत्र ल्यब्लोपे कर्मणि पठ्वमी कुन्थुः
 नूनं—निश्चयेनाल्पकर्मतरः—अत्यल्पाऽऽयुरादिरूपकर्मवान् एव, अल्पक्रियतरः—
 अत्यल्पकायिकादिक्रियावान् एव, अल्पास्रवतरः—अत्यल्पप्राणातिपातादिरूपा
 स्रववान् एव, एवम्—अनेन प्रकारेण अल्पाऽऽहारनीहारोच्छ्वांसनिःश्वासऋद्धि
 कतरः अल्पधृतिकतरः अल्पशब्दस्य सर्वत्र सम्बन्धात् अल्पोहारतर एव अल्प-
 नीहारतर एव अल्पोच्छ्वांसतर एव अल्पऋद्धिकतर एव, अत्र ऋद्धिः परि-
 चारादिरूपा ग्राह्या, अल्पधृतिकतर एवेत्यर्थः, धृतिश्च—शरीरकान्तिरूपा ।
 एवं—यथा—हस्तिनमपेक्ष्य कुन्थुगल्पतरकर्मत्वादिविशिष्ट उक्तस्तथा, कुन्थुतः—
 कुन्थुमपेक्ष्य हस्ती—महाकर्मतरः—अधिकायुरादिरूपकर्मवान्, एव, महाक्रि-
 यतर याव यावत्—यावत्पदेन—महास्रवतर एव महानीहारतर एव महोच्छ्वा-
 संसर एव महर्द्धिकतर एव महाधृतिकतर एव इत्येषां सङ्ग्रहो बोध्यः । इति
 प्रश्ने केशी प्राह—हन्त ! प्रदेशिन् ! हस्तिनः कुन्थुरल्पकर्मतर एव कुन्थुतो
 वा हस्ती महाकर्मतर एव, तदेव—पूर्वोक्तमेव—कुन्थुपक्षे अल्पक्रियतर एव
 अल्पास्रवतरः हस्तिपक्षे—महाक्रियतर एव महास्रवतर एवेत्यादि बोध्यम् । इति
 हस्ति-कुन्धोः परस्परं कर्मादिभेदं श्रुत्वा प्रदेशी तयोर्जीवसाम्ये कारणं
 पृच्छति—‘कस्मात् खलु भदन्त ! इत्यादि—हे भदन्त ! कस्मात् कारणात् खलु
 हस्तिनः कुन्थोश्च जीवः सम एव ?’, केशी प्राह—हे प्रदेशिन् ! तद् यथाना-
 मकं—यथादृष्टान्तम् कूटाऽऽकारशाला—पर्वतशिखराकारा स्यात्, यावत्—याव-
 त्पदेन द्विधातो लिप्ता गुप्ता गुप्तद्वारेति पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, निर्वात-

कुन्थु का हो चाहे हाथी का हो सब में समानता है एक जीव में अस-
 रूपात प्रदेश होते हैं. इन प्रदेशों की अपेक्षा सब समान है. कोई भी
 जीव ऐसा नहीं है कि जिसमें इन प्रदेशों की समानता न हो. पूर्वो-
 पार्जित शरीर नाम कर्म आदि के द्वारा जिस जीव को जैसा शरीर प्राप्त
 होता है वह जीव उसमें अपने प्रदेशों को संकोच विस्तारवाला बना लेता है.

एवमां—पछी लवे ते कुन्थुं नो डोय के हाथीने समानता छे. ओक एवमां अस-
 रूपात प्रदेशो डोय छे. आ प्रदेशोनी अपेक्षाओ आपणे विचार करीओ तो अथा
 एवो समान न छे. कोछ पण आवो नथी के नेमा आ प्रदेशोनी समानता डोय
 नहि. पूर्वोपार्जित शरीर नामकर्म वजरे वडे ने एवने नेवुं शरीर प्राप्त थाय छे
 ते एव तेमा पोताना प्रदेशोने संकोच विस्तारयुक्त अतावी वे छे, हाथला तरीके

गम्भीरा, अध खलु कोऽपि पुरुषः 'ज्योतिः-अग्नि च दीपं च गृहीन्वा तां-कृटाकारशालाम्, अन्तरतः-अत्यन्ताभ्यन्तरे अनुप्रविशति । तस्याः कृटाकारशालायाः सर्गतः-सर्वदिक्षु, समन्तान्-सर्वविदिक्षु घननिचिननिगन्तराणि-घन-निविडं यथा स्यात्तथा निचितानि-संघातितानि निगन्तराणि-अन्तररहितानि तानि तथा, अस्य 'द्वारवदनानी'-त्यनेन सम्बन्धः, पुनः निश्छिद्राणि छिद्ररहितानि द्वारवदनानि-द्वारमुखानि, पिठयानि-आच्छादयति, तस्याः-कृटाऽऽकाटशालायाः बहुमध्यदेशभागे-अत्यन्तमध्यपदेशे तं प्रदीपं प्रदीपयेत्-पञ्जालयेत्, ततः खलु स प्रदीपः तां कृटाकारशालाम् अन्तरन्तः-सर्वान्तभागे-सर्वान्तभागावच्छेदेनेति भावः । अवभामयति-प्रकाशयति, उद्घोतयति-उत्कर्षेण प्रकाशयति, तापयति-संतप्तां करोति प्रभामयति-घटपटादिदर्शनया प्रकर्षेण प्रकाशमानां करोति, किन्तु षट्तिः-कृटाकारशालायां षट्तिर्भागं नो चैव-नैव अवभामयति उद्घोतयति तापयति प्रभामयति । अथ खलु स पुरुषः तं प्रदीपम् इश्रकेण-महापिटकेन-आवरणविशेषेण पिठ्यात्-आच्छादयेच्चेत्, ततः खलु सः-पिहितः प्रदीपः तत्-प्रदीपपिधानभूतम् इश्रकम् अन्तः आभ्यन्तगावच्छेदेन अवभामयति किन्तु इश्रकस्य षट्तिः-षट्तिःपदेश नो चैव-नैव खलु अवभामयति तथा कृटाकारशालायाः षट्तिः नो चैव अवभामयति, एवम्-अनेन प्रकारेण गोकिर्लितेन-गाकिर्लिठजं-गवां भक्ष्यम्भाषनकृष्टिका, तेन, तथा पश्चिपिटकेन-पश्चिपिटक-पशुपाकारो वंशजित्वाहानिर्मितपात्रविशेषः, तेन, तथा गण्टमालिकाया-गण्टमालिका-धान्यमापनिका, तथा, आटकेन, अर्धाटकेन, पण्यकेन, अर्धपण्यकेन, बुहवेन, अर्धबुहवेन. आटकादार-अर्धबुहवपर्यन्तानि धान्यमापनानि देष्टविशेषसिद्धानि पारविशेषानि तैः प्रदीपं पिठ्यादिति पूर्वेषु सम्बन्धः, तथा चतुर्भागिकया, अष्टभागिकया, षोडशिकया, द्वाविंशतिकया चतुष्पष्टिकया-चतुर्भागिकादि चतुष्पष्टिकयापर्यन्ता समभेदेऽप्रसिद्धा एव समभाषकयात्र विज्ञेयान्त. प्रदीपं पिठ्यादिति पूर्वेषु सम्बन्धः, एवं-दीपचक्रकेन-दीपविधानेन प्रदीपं पिठ्यादिति पूर्वेषु सम्बन्धः, ततः खलु सः-पिहितः प्रदीपः दीप-

जसे दीप वा एक सोटे (एक घा) के रूप दिग्या जाये तो वा एक कोटे भर हो जहा तक उन्हा प्रदीप केवल एकटा है प्रकाशित करता है और एही दीपक को षट् सिद्धि के लोके वर्तन के लिये एक ही रूप दिया

चम्पकस्य अन्तः—मध्यभागम् अवभासयति उद्द्योतयति तापयति प्रभासयति नो
 चैव खलु दीपचम्पकस्य बहिः, नो चैव खलु चतुष्टिकां नो चैव खलु
 चतुष्ष्टिकाया बहिः, एवं दीपचम्पकाच्छादितो दीपः, नो चैव खलु द्वात्रिं-
 शिकां, नो चैव खलु द्वात्रिंशिकायाः बहिः, इत्यादि पश्चादानुपूर्वक्रमेण यावत्
 नो चैव कूटाकारशालाम्, नो चैव कूर्वाकारशालाया बहिः अवभासयति उद्-
 द्योतयति तापयति प्रभासयति' इति योजना कार्या एवमेव—प्रदीपदृष्टान्तानु-
 सारेणैव हे प्रदेशिन् ! जीवोऽपि यां कांचित्—यादृशीं—पूर्वकर्मनिबद्धां—पूर्व-
 भवोपार्जितकर्मनिबद्धां बोन्दि—तनुं निर्वर्तयति—उत्पादयति तां बोन्दिम्
 असंख्येयै असंख्यातैः जीवप्रदेशैः सचित्ता—जीवयुक्तां करोति—सम्पादयति,
 तां बोन्दिं कीदृशीम् ! इति जिज्ञासायामाह क्षुद्रिकाम्—अतिलघ्वीम्, महतीं
 —विशालाम् वा सचितां करोति' इति पूर्वेणान्वयः । तत्—तस्मात्—दीपदृष्टा-
 न्तेन जीवस्य पूर्वभक्तकर्मनिबद्धातिलघुमहाशरीरानुप्रवेशनकारणात् हे
 प्रदेशिन् ! त्वं श्रद्धेहि—मद्वचने श्रद्धां कुरु, यथा—अन्यो जीवः तदेव—पूर्वोक्त-
 मेव अन्यच्छरीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति । ॥ सू० १५२ ॥

मूलम्—तए णं एसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी-एवं
 खलु भंते ! मम अज्जगस्स एसा सन्ना जाव समोसरणं जहातज्जीवो
 तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं । तयाणंतरं च णं मम
 पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं । तयाणंतरं च णं मम

जाता है तो वह उसके भीतरी भाग को ही प्रकाशित करता है। आदि
 तो जिस प्रकार से दीपक के प्रकाश में संकोच विस्तार करने का स्वभाव
 है, उसी प्रकार से जीव में भी अपने प्रदेशों को संकोच विस्तार करने
 का स्वभाव है यही सब विषय इस सूत्र में स्पष्ट किया गया है। 'हत्थीउ
 कुंथु' इसका अर्थ है हस्ती की अपेक्षा करके । ऋद्धि शब्द से यहां
 परिवारादिरूप ऋद्धि गृहीत हुई है ॥ सू० १५२ ॥

ते लेश दीपधना प्रशशमा अश्रेय विस्तार इरवानो स्वभाव छे तेमन् एवमां पणु
 पोताना प्रदेशाने अंशुयित ऽ विस्तार इरवानो स्वभाव छे. आ गधी वातो आ
 मृत्रमां न्पट इरवाभा आंवी छे. 'ह न्थी उ कुंथु' अनेो अर्थ 'हाथीनी अपेक्षाये'
 अर्थ छे. ऋद्धि शब्दधी अर्थी परिवारादिरूप ऋद्धिनुं अलुषु यथु छे. ॥सू० १५२॥

वि एसा सृण्णा जाव समोसरणं, त नो खलु अह बहुपुरिस्ति
परंपरागयं कुलनिस्तिरयं दिट्टि छंडेस्तामि ॥ सू० १५३ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केजिनं कुमारश्रमणम्—एवमवादीन् एव
खलु भदन्त ! मम आर्यकस्य एषा संजा यावत् समवसण्णं यथा—तज्जीयन्त-
रीरम्. नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, तदनन्तरं च खलु मम पितुगपि एषा संजा
यावत् समवसण्णम् । तदनन्तरं ममापि एषा संजा यावत् समवसण्णम्, तत नो
खलु अहं बहुपुरीपरम्परागतां कुलनिश्चितां दृष्टि मोक्षामि ॥ सू० १५३ ॥

‘ताणं पाण्णी गया’ इत्यादि ।

अर्थ—(ताणं) इसके बाद (पाण्णी गया) प्रदेशी राजाने (केजिनं कुमार
श्रमण एव यवार्थी) केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा (एवं खलु भन्ते ! मम अज्जगन्त
एसा सन्ना जाव समोसरणं जहा तज्जीयो त शरीरं, नो अन्तो जीवो अन्तं शरीरं)
हे भदन्त मेरे आर्यक—पितामह की यह संजा थी, यावत् समवसण्णं था—कि
यही जीव है यही शरीर है—जीव शरीर से भिन्न नहीं है शरीर जीव से भिन्न
नहीं है (तयाणंतरं च जं रं पित्तो पि एसा मया जाव समोसरणं.) उनके बाद मेरे
पिताकी भी ऐसी ही संजा यवत् एसा ही समवसण्णं था, (तयाणा-
च ण मम पि एसा मया जाव समोसरणं तं नो खलु बहुपुरिस्तिपरंपरागयं
कुलनिस्तिरयं दिट्टि छंडेस्तामि) बाद में मेरी भी यही संजा यावत् एसा ही
समवसण्णं है—अतः अनेक पुत्र परम्परा से चली आई गई इन इत्यादीपरम्परा
की नहीं छोड़ी, इसलिये तीस और शरीर एक ही हैं भिन्न २ नहीं हैं ।

चम्पकस्य अन्तः-मध्यभागम् अवभासयति उद्द्योतयति तापयति प्रभासयति नो
 चैव खलु दीपचम्पकस्य बहिः, नो चैव खलु चतुष्टिकां नो चैव खलु
 चतुष्ष्टिकाया बहिः, एवं दीपचम्पकाच्छादितो दीपः, नो चैव खलु द्वात्रिं-
 शिकां, नो चैव खलु द्वात्रिंशिकायाः बहिः, इत्यादि पश्चाद्गानुपूर्वक्रमेण यावत्
 नो चैव कूटाकारशालाम्, नो चैव कर्षाकारशालाया बहिः अवभासयति उद्-
 द्योतयति तापयति प्रभासयति' इति योजना कार्या एवमेव-प्रदीपदृष्टान्तानु-
 सारेणैव हे प्रदेशिन् ! जीनोऽपि यां कांचित्-यानृशीं-पूर्वकर्मनिबद्धां-पूर्व-
 भवोपार्जितकर्मनिबद्धां बोन्दि-तनुं निर्वर्तयति-उत्पादयति तां बोन्दिम्
 असंख्येयै असंख्यातैः जीवप्रदेशैः सचित्ता-जीवयुक्तां करोति-सम्पादयति,
 तां बोन्दिं कीदृशीम् ! इति जिज्ञासायामाह क्षुद्रिकाम्-अतिलघ्वीम्, महतीं
 -विशालाम् वा सचितां करोति' इति पूर्वेणान्वयः । तत्-तस्मात्-दीपदृष्टा-
 न्तेन जीवस्य पूर्वभेवकृतकर्मनिबद्धातिलघुमहाशरीरानुप्रवेशनकारणो, त हे
 प्रदेशिन् ! त्वं श्रद्धेहि-मद्वचने श्रद्धां कुरु, यथा-अन्यो जीवः तदेव-पूर्वोक्त-
 मेव अन्यच्छरीरम् नो तज्जीवः स शरीरम्, इति ॥ सू० १५२ ॥

मूलम्--तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी-एव
 खलु भंते ! मम अज्जगस्स एसा सन्ना जाव समोसरणं जहातज्जीवो
 तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं । तयाणंतरं च णं मम
 पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं । तयाणंतरं च णं मम

जाता है तो वह उसके भीतरी भाग को ही प्रकाशित करता है। आदि
 तो जिस प्रकार से दीपक के प्रकाश में संकोच विस्तार करने का स्वभाव
 है, उसी प्रकार से जीव में भी अपने प्रदेशों को संकोच विस्तार करने
 का स्वभाव है. यही सब विषय इस सूत्र में स्पष्ट किया गया है. 'हत्थीउ
 कुंथू' इसका अर्थ है हस्ती की अपेक्षा करके । ऋद्धि शब्द से यहां
 परिवारादिरूप ऋद्धि गृहीत हुई हैं ॥ सू० १५२ ॥

ते. नेम दीपकना प्रकाशमां सकोच विस्तार करवाने स्वभाव छे तेमज्ज एवमां पणु
 पोताना प्रदेशोने संकुचित छे विस्तार करवाने स्वभाव छे. आ अधी वातो आ
 सूत्रमां स्पष्ट करवाना आवी छे. 'हत्थीउ कुंथू' जेना अर्थ 'हाथीनी अपेक्षाये'
 जेवे छे. ऋद्धि शब्दथी अडी परिवारादिरूप ऋद्धितुं श्रद्धेय थयु छे. ॥सू० १५२॥

वि एसा सण्णा जाव समोसरणं, त नो खलु अह बहुपुरिस-
परंपरागयं कुलनिस्सियं दिट्ठि छंडेस्सामि ॥ सू० १५३ ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम्—एवमवादीत् एव
खलु भदन्त ! मम आर्यकस्य एषा संज्ञा यावत् समवसरणं यथा—तज्जीवस्तच्छ-
रीरम्, नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, तदनन्तरं च खलु मम पितुरपि एषा संज्ञा
यावत् समवसरणम् । तदनन्तरं ममापि एषा संज्ञा यावत् समवसरणम्, तत् नो
खलु अहं बहुपुरुषपरम्परागतां कुलनिश्रितां दृष्टिं मोक्षामि ॥ सू० १५३ ॥

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं) इसके बाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसि कुमार-
समणं एवं वयासी) केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा (एवं खलु भंते ! मम अज्जगस्स
एसा सन्ना जाव समोसरणं जहा तज्जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्नं सरीरं)
हे भदन्त मेरे आर्यक—पितामह की यह संज्ञा थी, यावत् समवसरण था—कि
वही जीव है वही शरीर है—जीव शरीर से भिन्न नहीं है शरीर जीव से भिन्न
नहीं है (तयाणंतरं च णं मम पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं,) उनके बाद मेरे
पिताकी भी ऐसी ही संज्ञा यावत् ऐसा ही समवसरण रहा, (तयाणंतर
च णं मम वि एसा सण्णा जाव समोसरणं तं नो खलु बहुपुरिसपरंपरागय
कुलनिस्सियं दिट्ठि छंडेस्सामि) बाद में मेरी भी यही संज्ञा यावत् ऐसा ही
समवसरण है—अतः अनेक पुरुष परम्परा से चली आई हुई उस कुलाधीनमान्यता
को नहीं छोड़ूंगा, इसलिये जीव और शरीर एक ही हैं भिन्न २ नहीं है ।

‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(तएणं) तयारणाद (पएसी राया) प्रदेशी राजाने (केसि कुमार-
समणं एवं वयासी) केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाणे ध्वु—(एवं खलु भंते !
मम अज्जगस्स एसा सन्ना जाव समोसरणं जहा तज्जीवो तं सरीरं, नो
अन्नो जीवो अन्नं सरीरं) हे भदन्त ! मम आर्यक—पितामहनी आ सन्ना
इती यावत् समवसरणं एतु के तेज एव छे, तेज शरीर छे, एव शरीर इन्ना
भिन्न नहीं. (तयाणंतरं च णं मम पिउणो वि एसा सण्णा जाव समोसरणं)
तयार पधी भाग पितानी पधु ऐवी न संज्ञा यावत् ऐवुं न समवसरणं ममुं
(तयाणंतरं च णं मम वि एसा सण्णा जाव समोसरणं तं नो खलु बहुपुरिस-
परंपरागयं कुलनिस्सियं दिट्ठि छंडेस्सामि) तयार पधी भाग पधु ऐवी न संज्ञा
यावत् समवसरणं छे ऐटला भाटे अनेक पुरुष परंपराधी वाली मान्यता आ धुदा-
धीन मान्यता ने हुं त्यस्यनहीं ऐवी एव अने शरीर ऐक्य छे भिन्नभिन्न नहीं.

टीका—‘तए णं पएसी राया’ इत्यादि ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणम्, एवमवादीत्—एवं खलु हे भदन्त ! मम आर्यकस्य—पिता-महस्य एषा संज्ञा यावत्—यावत्पदेन एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः एषा हेतुः एष उपदेशः एषः संकल्पः एषा तुला एतद् मानम् एतत् प्रमाणम्” इत्येषां पदानां संग्रहो बोध्यः समवसरणमासीत् । एषां व्याख्या—एकत्रिंशदधिकैकशततमसूत्रतो विज्ञेया । यथा—तज्जीवः तच्छरीरम् नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरम्, इति मम पितामहस्य मन्तव्य-मासीत् । तदनन्तरं च खलु मम पितुरपि एषा—अनन्तरोक्ता संज्ञा यावत् समव-सणमासीत् । तदनन्तरं च खलु ममापि एषा संज्ञा यावत् समवसरणमस्ति, तत्—तस्मात् कारणात् खलु अहं बहुपुरुषपरम्परागतां—पितामहादिपरम्परासमागतां कुलनिश्रितां कुलनिश्रया समागतां दृष्टिम् नो मोक्ष्यामि—न त्यक्ष्यामि—अपि तु तज्जीवः स शरीरं नो अन्यो जीवोऽन्यच्छरीरमिति मतमेव स्वीकरिष्यामि ॥सू० १५३॥

मूलम्—तए णं केसी कुमारसमणै पएसि रायं एवं वयासी—मा णं तुमं पएसी ! पच्छाणुताविए भवेज्जासि, जहा व से पुरिसे अयहारए । के णं भंते ! से अयहारए ? । पएसी ! मे जहाणामए केई पुरिमा अत्थत्थिया अत्थगवेसिया अत्थलुद्धया अत्थकंखिया अत्थपिवासिया अत्थगवेसणयाए विउलं पणिथभंडमायाए सुवहुं भत्तपाण पत्थयणं गहाय एगं महं अगामियं छिन्नात्रायं दीहमद्धं अडवि अणुपविट्ठा ।

टीकार्थ—स्पष्ट है—‘सन्ना जाव समोसरणं’ में जो यह यावत् पद आया है उस से यहां—एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः एषा रुचिः, एष हेतुः, एषः उपदेशः, एषः संकल्पः, एषा तुला, एतद् मानम् एतत् प्रमाण) इन पदों का संग्रह हुआ है. इन सब पदों की व्याख्या तथा ‘समवसरण’ इस पद की व्याख्या १३० वे सूत्र में की जा चुकी है। अतः मैं जीव शरीर की अभिन्नता को ही स्वीकार करूंगा, भिन्नता को नहीं ॥ सू० १५३ ॥

टीकार्थ—स्पष्ट व छे. ‘सन्ना जाव समोसरणं’ मां व्जे यावत् पद छे तेथी अडी. ‘एषा प्रतिज्ञा एषा दृष्टिः एष उपदेशः एषः संकल्पः एषा तुला, एतत् मानम् एतद् प्रमाणम्” आ पढोने संग्रह थये छे. आ सर्व पढोनी व्या-ख्या १३० मा सूत्रमां डरवामां आवी छे. अथी हुं एव तेमव शरीरनी अलिन्नवाने व स्वीकारीश लिन्नताने नडि. ॥सू० १५३॥

तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए अडवीए जाव कंचिदेसं अणुप्पत्ता
समाणा। एगं महं अयागरं पासंति, असणं सब्वओ समंता आइण्णं
वित्थिणं सच्छडं उवच्छडं फुड अणुगाढं पासंति, पासित्ता हट्ठा लुट्ठा
जाव हियया अन्नमन्नं सदावेत्ति, एव वयासी-एस णं देवाणुप्पिया !
अयागरे इहे कंते जाव मणामे, तं सेयं खल्ल देवाणुप्पिया ! अम्हं
अयभारगं वंधत्तएत्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, अय-
भारं वंधंति अहाणुपुव्वीए संपत्थिया । तए णं से पुरिसा अगामि
याए जाव अडवीए किंचिदेसं अणुपत्ता समाणा एगंमहं तउआगरं
पासंति, तउएणं सब्वओ समंता आइण्णं तं चेव जाव सदावेत्ता एवं
वयासी-एस णं देवाणुप्पिया ! तउआगरे इहे जाव मणामे, अप्पेणं
चेव तउएणं सुवहुं अए लब्भइ, तं सेयं खल्ल अम्हं देवाणुप्पिया
अयभारगं छड्ढेत्ता तउयभारग व धित्तएत्तिकट्टु अन्नमन्नस्स अंतिए
एयमट्ठं पडिसुणेंति अयभारं छड्ढेंति तउयभारं वंधति । तत्थ
एगे पुरिसे णो संचाएइ अयभारं छड्ढेत्तए तउयभार वधित्तए, तए
णं ते पुरिसा त पुरिसं एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया ! तउ-
आगरे जाव सुवहु अए लब्भइ, तं छड्ढेहि, णं देवाणुप्पिया ! अय-
भारग, तउयभारगं वंधाहि । तए णं से पुरिसे एवं वयासी-इग-
हडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए,
अइगाढबंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, असिट्ठिल्लवधणवद्धे मए
देवाणुप्पिया ! अए, धणियवंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, णो
संचाएमि अयभारगं छड्ढेत्ता तउयभारगं वंधित्तए । तए णं ते

पुरिसा तं पुरिसं जाहे णो संचायंति बहूहिं आधवणाहि य पणव-
णाहि य परूवणाहि य अधवित्तए वा पणवित्तए वा परूवित्तए वा
तया अहाणुपुठ्ठीए संपत्थिया ! एवं तंवागर रूपागरं, सुवण्णागरं
रयणागरं, वड्ढागर । तए णं ते पुरिसा जेणेव सया जणवया जेणेव
साइं साइं नगराइ तेणेव उवागच्छंति, वयरविक्रिणणं करे ति, सुवट्ठु
दासीदासगोमहिसगवेलगं गिण्हति, अट्टतलमूसिय पासायवडिंसगे,
कारावे ति, णहायो कयवलिकम्मा कायकोउयमंगलपायच्छिता उट्ठिं
पासायवरगया फुट्टमाणेहिं सुइंगमत्थएहिं वत्तीसइवद्धएहिं नाडएहिं
वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणा उवगिज्जमाणा उवलालिज्ज-
माणा इट्ठे सदफरिसरसरूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्च-
णुभवमाणा विहरति । तए णं से पुरिसे अयभारेण जेणेव सए
नयरे तेणेव उवागच्छइ, अयभारगं गहाय अयविक्रिणणं करेइ
तंसि अप्पमोळ्ळंसि निट्ठियंसि खीणपरिब्बए^ण ते पुरिसे उट्ठिं पासाय-
वरगए जाव विहरमाणे पासइ, पासित्ता एवं वयासी-अहो! णं
अहं अधण्णो अपुन्नो अकयत्थो अकयलक्खणो हिरिसिरिवज्जिओ
हीणपुण्णचाउइंसे दुरंतपंतलक्खणे । जइ णं अहं मित्ताण वा णाईण,
वा नियगाण वा वयणं सुणे तओ तो णं अहंपि एवं चेव उट्ठिं
पासायवरगए जाव विहरे तओ । से तेणट्ठेणं पएसी ! एवं बुच्चइ-
मा तुमं पएसी ! पच्छाणुताविए भविज्जासि, जहा व से पुरिसे
अयभारए ॥ सू० १५४ ॥

छाया—ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिं राजानमेवमवादी न मा खलु त्वं प्रदेशिन् ! पश्चादनुतापिको भवेः, यथा वा स पुरुोऽयोहारकः । कः खलु भदन्त ! सोऽयो-
हारकः ? । प्रदेशिन् ! ते यथा नामकाः केचिः पुरुषा अर्थार्थिकाः अर्थगवेपकाः
अर्थलुब्धकाः अर्थकांक्षिनः अर्थपिपासिताः अर्थगवेपणायै विपुलं पणितभा ड-
मादाय सुबहुभक्तपानपथ्यदनं गृहीत्वा एकां महतीम् अग्रामिकां छिन्नाऽऽपातां
दीर्घाध्वान् अटवीमनुप्रविष्टाः । ततः खलु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकाया याव ।

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तएण) इसके बाद (केशीकुमारसमणे) केशीकुमार श्रमणने (पएसिं-
गय एवं वयासी) प्रदेशी राजा से कहा (माण तुमं पएसी ! पच्छाणुता-
विण भवेज्जासि—जहा व से पुरिसे अप्पहारण) हे प्रदेशिन् ! तुम पश्चात्तापयुक्त
मन बनो जैसा कि वह अयोहारक—लोहवणिक—पश्चात्तापयुक्त बना,

अब प्रदेशी उससे परिचय को जानने के अभिप्राय से पृच्छता है (के णं
भंते ! से अयहारण) हे भदन्त ! वह अयोहारक कौन था ? इस पर
केशीकुमारश्रमण कहते हैं—(पएसी ! से जहाणामण केटं पुरिसा अत्यन्थिया
अत्यगवेसिया अत्यलुब्धया, अत्यकखिया, अत्यपिवासिया, अत्यगवेसणयाए विउलं
पणियभंडमायाए सुवहुं भत्तपाणपथ्ययण गहाय एण महं अग्गामियं छिन्नावायं
दीहमद्धं अडविं अणुपविट्ठा) हे प्रदेशिन् । अनिर्दिष्ट नामवाले कितनेक पुरुष जो
कि धन के अर्थी थे, धन के गवेपक थे, धन के लोलुप थे, धनकी काक्षा
से युक्त थे, धनकी प्यामवाते थे, धनकी गवेपणा के लिये विपुल क्रयागक-

‘तए णं केशीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—(तए णं) त्पार पटी (केशीकुमारसमणे) देशी कुमारश्रमणे
(पएसिं रायं एवं वयासी) प्रदेशी राजाने आ प्रभाते इधु (मा ण तुम पएसी !
पच्छाणुताविण भवेज्जासि—जहाव से पुरिसे अयमारण) हे प्रदेशिन् ! तम
पेदा अयोहारक—लोह वणिक—नी नेम, पश्चात्ताप न करे। एवं प्रदेशी तेना न अ धमा
बधी विगत लणुवा भाटे आ प्रभाते पूरे छे—(कि णं भंते ! से अयहारण) हे
भदन्त ते अयोहारक लोहवणिको वेपारी डालु हुने ? तेना अग्राममा देशी
कुमार श्रमण इहे छे—(पएसी ! से जहाणामण केटं पुरिसा अत्यन्थिया अत्य-
गवेसिया अत्यलुब्धया, अत्यकखिया, अत्यपिवासिया, अत्यगवेसणयाए विउलं
पणियभंडमायाए सुवहुं भत्तपाणपथ्ययण गहाय एणं महं अग्गामियं
छिन्नावायं दीहमद्धं अडविं अणुपविट्ठा) हे प्रदेशिन् । अनिर्दिष्ट नामवाले
उत्पन्न पुरुषो हे लोहो धनार्थी हुना, धनका गवेपक हुना, धनका हे लुप हुना

अटव्याः कंचित् देशमनुप्राप्ताः सन्तः एकं महान्तम् अयआकारं पश्यति, अयसा सर्वतः समन्ताद् आकीर्णं विस्तीर्णं सच्छटम् उपच्छटं स्फुटम् अनुगाढं पश्यन्ति, दृष्टा हृष्टाः तुष्टाः यावत् हृदयाः अन्योऽन्यं शब्दयन्ति, एवमवादिषुः—एष खलु देवानु-
प्रियाः ! अयआकरः इष्टः कान्तः यावत् मनआमः, तत्र श्रेयः खलु देवानुप्रियाः

वस्तु समूह को लेकर तथा साथ में पर्याप्त अशनपानरूप पाथेयलेकर एक विशाल अटवी में जो वसति से रहित थी, हिंसक जंतुओं के भय से मनुष्यों का गमनागमनरूप संचार जिसमें विलकुल नहीं था और दीर्घमार्गयुक्त थी जा पहुँचे (तएणं से पुरिसा तीसे अग्गमियाए अडवीए कंचिदेसं अणुप्पत्ता समाणा एगं महं अयागारं पासंति) इसके बाद वे पुरुष जब उस अग्रामिका, छिन्नापात-युक्ता एवं दीर्घाध्वावाली अटवी के और आगेके प्रदेश में आ चुके तब उन्होंने वहाँ पर एक लोहे की खान को देखा (अएणं सच्चओ समंता आइण्णं सच्छडं उवच्छडं फुडं अणुगाढं पासंति) यह खान सब तरफ से लोहेसे आकीर्ण बनी हुई थी. स्पष्टरूप में नहीं थी बहुत विस्तारवली थी समीचीन छटा—चाक-चिक्यवाली थी. छटायुक्त थी. स्पष्टरूप में नहीं थी. (पासित्ता हट्टतुट्ठा जाव हियया अन्नमन्नं सदावेति) इस लोहे की खान देखकर वे बहुत अधिक हृष्ट एवं तुष्ट यावत् हृदयवाले हुए और फिर उन्होंने आपस में एक दूसरे को बुलाया (एवं वयासी) बुलाकर ऐसा कहा (एस णं देवाणुप्पिया ! अयागरे इट्ठे कंते,

धननी कांक्षाथी युक्त इता, धननी तरसवाणा इता, धननी गवेषणा माटे विपुल कथाशुक्त वस्तु समूहने लधने तेभञ्ज साथे पर्याप्त अशनपानरूप पाथेय लधने अेक विशाल अटवीमा—के जे अेकदम निर्जन इती, हिंसक जंतुओना लयथी भाणुसोनी अवरजवर जेमां सदंतर अध इती अने दीर्घ मार्ग युक्त इती जध पडोन्था. (त एणं ते पुरिसा तीसे अग्गमियाए अडवीए कंचिदेसं अणुप्पत्ता समाणा एगं महं अयागारं पासंति) त्थार पधी ते भाणुसोने अत्रा-मिका, छिन्नापात युक्त अने दीर्घाध्वावाणी अटवीनी अहर भूण आगण जता रखा त्या तेभणु दोअंउनी भोटी भाणु जेध (अएण सच्चओ समंता आइण्णं वित्थिण्ण सच्छडं उवच्छडं फुडं अणुगाढं पासंति) आ भाणु योभेर दोअं-उधी आधीणु इती. अहु ज विस्तार युक्त इती. समीचीन छुटा अेटवे के चाकचिक्य वाणी इती, छटायुक्त इती. स्पष्टरूपथी देणाती इती— अने अेक पुंज रूपमां इती छिन्नबिन्न रूपमा न इती. (पासित्ता हट्टतुट्ठा जाव हियया अन्नमन्नं सदावेति) ते दोअंउनी भाणुने जेधने अहुञ्ज वधारे हृष्टतुष्ट यावत् हृदयवाणा थया अने पधी तेभणु परस्पर अेकधीजने जोदाव्या. (एवं वयासी) जोदावीने आ प्रमाणे कधुं (एस ण देवाणुप्पिया ! अयागरे इट्ठे, कंते, जाव मणामे)

अस्माकम् अयोभारकं वद्धेत्, इति कृत्वा अन्योऽन्यस्य एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, अयो-
भारं वधन्ति, यथाऽनुपूर्विं प्रस्थिताः । ततः खलु ते पुरुषाः अग्रामिकाः यावत् अटव्याः
किञ्चिद्देशम् अनुश्रुताः सन्तः एकं महान्तं त्रषाकरं पश्यन्ति, त्रपुणा सर्वतः
समन्तान् आकीर्णं तदेव यावत् शब्दयित्वा एवमवादिषुः—एष खलु देवानुप्रियाः !
त्रषाकरः इष्टः यावन् मनओमः, अल्पेनैव त्रपुणा सुग्रहो अयो लभ्यते, तत्र श्रेयः

जाव मणामे] हे देवानुप्रियो ! यह लोहे की खान इष्ट है, यावत् मनोज्ञ है (तं सेयं खलु
देवानुप्रिया । अहं अयभारकं वधित्तए त्ति कर्तुं अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडि-सुणेत्ति) अतः
उचित है कि हम लोग इस लोहे के भार यहां से ले लें इस प्रकार विचार
करके उन्होंने आपसके इस विचार को निश्चय का रूप दे दिया (अयभारं
वधेत्ति) और लोहे को यहां से ले लिया (अहाणुपुञ्चिए संपत्थिया) और लेकर
वहां से क्रमशः चल दिया (तएण से पुगिसा अगामियाए जाव
अडवीए कंचिदेस अणुपत्ता समाणा एगं महं तउआगरं पासन्ति) इसके बाद
वे चलते २ जत्र और अधिक आगे निकल गये तब उन्होंने उस अग्रामिक
आदि विशेषणवाली अटवी में एक बहुत बड़ी त्रपु-रांगा की खान को देखा (तएणं
सच्चओ समंता आडणं तं चेव जाव सदावेत्ता एवं वयासी) संतुष्ट यावत् हृदय वाले
हुए बाद में उन्होंने आपस में एक दूसरे को बुलाया बुलाकर ऐसा कहा—
(एस णं देवानुप्रिया ! तउआगारे इट्ठे जाव मणामे] हे देवानुप्रिया ! यह रांगा

ते बोधनी भाषणे छे, इत यावत् मनोज्ञ छे (तं सेयं खलु देवानु-
प्रिया ! अहं अयभारकं वधित्तए त्ति कर्तुं अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिसुणेत्ति)
श्रेयो अमारा भारे आ वात पाणार छे छे अमे पथा आ बोधनी भाषणे अतीथी
लक्ष्मणे आ प्रभाणे विचार करीने तेमणे परस्पर इदं आ विचारने निश्चया
लक्ष्मणे आ 'यु' (अयभारं वधेत्ति) अने बोधने त्याधी लक्ष्मणे (अहाणु-
पुञ्चिए संपत्थिया) अने लक्ष्मणे त्याधी अशः आ ण आलता थया. (तएणं से
पुगिसा अगामियाए जाव अडवीए कंचिदेसं अणुपत्ता समाणा एगं मह
तउआगरं पासन्ति) त्थार पधी तेमो जता जता जथाए पुत्र एव नीक्षणी जया
त्थार तेमणे अत्रान्निडा वगेदे विशेषणेधी युक्त अटवीमा अेत्त अणु विश्रुत त्रपु
रांगा (इधीनी भाषणेने लक्ष्मणे. (त एणं सच्चओ समंता आडणं तं चेव-
जाव सदावेत्ता एवं वयासी) ते रांगानी भाषणेने रांगधी-भाषणेने लक्ष्मणे, यवत्
अेत्त पुत्र इपमा हती आ भाषणेने लक्ष्मणे तेमो नये भूषण इष्ट अने संतुष्ट
यवत् हृदयवाण थया त्थार पधी तेमणे अेत्त लक्ष्मणे अेत्त अने बोधनी
आ प्रभाणे इदं-एस णं देवानुप्रिया ! तउआगारे इट्ठे जाव मणामे] हे देवा

खलु देवानुप्रियाः ! अस्माकम् अयोभारकं मुक्त्वा त्रपुकभारकं वद्मुम्, इतिकृत्वा अन्योऽन्यस्त्र अन्तिके णतमर्थं प्रतिगृह्णान्त, अयोभारं मुञ्चन्ति, त्रपुकभारं वध्नन्ति ! तत्र खलु एकः पुरुषो नो शक्नोति अयोभारं मोक्तुम् त्रपुकभारं वद्मुम् । ततः खलु ते पुरुषाः तं पुरुषमेवमवादिपुः-णप खलु देवानुप्रिय ! त्रपुकाकरः यावत् सुबहुअयो लभ्यते, तद् मुञ्च खलु देवानुप्रिय ! अयोभारकम्, त्रपुकभारकं वधान । ततः स पुरुषः एवमवादीत्-दूराऽऽहृतं मया देवानुप्रियाः ! अयः. चिराऽऽहृतं मया

खान इष्ट यावत् मन आम-अर्तिहर होने से मन गम्य है [अपे णं चेव त-उएण सुवहुं अए लब्भइ] थोडे से ही रांगा से बहुत अधिक लोहा हमें मिल सकता है (तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! अयभारगं छड्हेत्ता तउयभारगं वधित्तए त्ति कड्डु अन्नमन्नरस अंतिए एयमट्ट पडिसुणेति) अतः हमारी भलाई अब इसी में है कि हम इस लोहे के भार को छोड़कर इस रांगा को यहां से बांध ले, इस प्रकार का विचार करके उन्होने आपस के इस कृत विचार को निश्चय का स्थान दे दिया. (अयभार छड्हेत्ति, तउयभारं वंधत्ति) और लोहके भार को छोड़कर रांगा के भार को बांध लिया (तत्थ ण एगे पुरिसे णो संचाएइ, अयभारं छड्हेत्तए, तउयभारं वंधत्तए) परन्तु इनमें एक पुरुष ऐसा भी था—जो लोहे के भार को छोड़ने में और रांगा के भार को ग्रहण करने में बांधने में असर्थथा, अर्थात् वह ऐसा करना नहीं चाहता था. (तएणं ते पुरिसा

नुप्रिया । आ रांगानी आणु धण्ट यावत् मन आम-अर्तिहर होवा णहल मनगम्य छे. (अपे णं चेव तउएणं सुवहुं अए लब्भइ) थोडा रागाथी अमने धणुं दोणउ भणी शके छे. (तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! अयभारगं, छडेत्ता तउयभारगं वधित्तए त्ति कड्डु अन्नमन्नरस अंतिए एयमट्ट पडिसुणेति) अथी अमारा भाटे अे न साइं छे डे अमे दोणउना लारने त्यणने आ रागाने अडा थी आथी लधअे. आ प्रमाणे विचार करीने तेमणु पश्यपर कृत आ विचारने निश्चयात्मकइय आपी दीधुं. (अयभारं छड्हेत्ति, तउयभारं वंधत्ति) अने दोणउना लारने भूकीने ताणाना लारने साथे लध दीधो. (तत्थ णं एगे पुरिसे णो संचाएइ, अयभारं छड्हेत्तए, तउयभार वंधित्तए) पणु तेअधामा अेक माणुस अेत्तो पणु हुतो डे न दोणउना लारने त्यणने रागाने अडणु करवानी वातने उचित मानतो न हुतो (तएणं ते पुरिसा तं पुरिस एव वयासी) त्वारे ते पुइषोअे तेने आ प्रमाणे कथं- (एस ण देवाणुप्पिया ! तउआगरे जाव सुवहुं अए लब्भइ) डे देवानुप्रिय ! आ रांगानी आणु छे, धण्ट कात वगेरे विशेषणोथी युक्त छे. थोडा रांगाथी पणु आपणु धणुं दोणउ भेजवी शकीअे तेम छीअे. (तं छड्हेहि णं देवाणुप्पिया !

देवानुप्रियाः ! अयः, अतिगाढबन्धनवद्धं मया देवानुप्रियाः ! अयः, अशिथिल-
बन्धनवद्धं मया देवानुप्रियाः ! अयः, अत्यन्तगाढबन्धनवद्धं देवानुप्रियाः ! अयः,
नो शक्नोमि अयोभारकं त्यक्त्वा त्रपुकभारकं वद्धुम् । ततः खलु ते पुरुषाः तं
तं पुरिसं एवं वयासी) तत्र उन पुरुषोने उस पुरुष से ऐसा कहा—(एस णं
देवाणुप्पिया ! तउ आगरे जाव सुवहुं अए लब्भइ) हे देवानुप्रिय ! यह रांगे की
खान है. इष्ट कान्त आदि विशेषणवाली है. थोड़े से रांगा से ही बहुत अधिक
लोहा प्राप्त किया जा सकता है । (तं छड्हेहि ण देवाणुप्पिया ! अयभारगं,
तउयभारगं वंधाहि) इसलिये ! तुम हे देवानुप्रिय ! इस लोहे के भार को छोड़
दो और रांगा के भार को बांध लो—लेलो (तएण से पुरिसे एवं वयासी) तव
उस पुरुषने ऐसा कहा (दूराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए, देवा-
णुप्पिया ! अए अडगाढवंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, असिदिल्लव धणवद्धे
मए देवाणुप्पिया ! अए, धणियवंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, णो संचाणमि
अयभारगं छड्हेत्ता तउयभारगं वधित्तए) हे देवानुप्रियो ! इसलोहके भारको मैं
बहुत दूर से लाया हूँ, बहुत समय से इसे लादे हुए हूँ, हे देवानुप्रियो !
मैंने इसे बहुत ही गाढ बंधन से बांधा है अर्थात् बहुत अधिक कसकर बांधा
हुआ है. अशिथिल बंधन से—अब खुल सके ऐसे बन्धन में नहीं बांधा है
किन्तु हे देवानुप्रियो ! मैंने इस लोहे को ग्रचुर बंधन से बांधा है, अतः अब
मैं अयोभार को छोड़कर त्रपुक भारको ग्रहण करने के लिये समर्थ नहीं हूँ
अर्थात् लोहे के भार को छोड़ कर रांगा के भार को नहीं लूँ । (तएणं ते

अयभारगं, तउयभारगं वंधाहि) अटला भाटे तभे हे देवानुप्रियो ! आ दोअंउला
आरने भूडी हो आने रागाना आरने आधी हो. (त एण से पुरिसं एवं वयासी)
आटे ते पुडे आ प्रभाते धु—(दूराहडे मए देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मए,
देवाणुप्पिया अए गाढवंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, धणिय-
वंधणवद्धे मए देवाणुप्पिया ! अए, णो संचाणमि अयभारगं छड्हेत्ता तउय-
भारगं वधित्तए) हे देवानुप्रियो ! आ दोअंउला आरने त एण से भूडी हो ।
हूँ, एए समयकी में आने उपादी राणयो छ हे देवानुप्रियो ! आने के सुधन
जाए बंधन आधे छ अटले हे में आने इराने आधे छ हवे आदी अरु
येवा बंधनधी आधे नधी एए हे देवानुप्रियो ! में आ दोअंउला आरने अरु
बंधनधी आधे छ अटला भाटे हवे त आ दोअंउला आरने अरुने अरुने अरुने
अरुने अरुने अरुने अरुने अरुने अरुने अरुने अरुने अरुने अरुने अरुने अरुने
हूँ एषाद्य नहीं (तएण ते पुरिसा तं पुरिसं जाहे णो संचाणमि अरुने

पुरुषं यदा नो शक्नुवन्ति बहुभिः आख्यापनाभिश्च प्रज्ञापनाभिश्च प्ररूपणाभिश्च आख्यापयितुं वा प्रज्ञापयितुं वा प्ररूपयितुं वा तदा यथाऽऽनुपूर्विं सप्रस्थिताः। एवं ताम्राऽऽकरं रूप्याऽऽकरं सुवर्णाऽऽकरं वज्राऽऽकरं । ततः खलु ते पुरुषाः यत्रैव स्वानि स्वानि नगराणि तत्रैव उपागच्छन्ति, वज्रविक्रयणं कुर्वन्ति, सुवहु

पुरिसा तं पुरिसं जाहे णो संचायंति बहुहिं आघवणाहि य, पणवणाहि य, परु-
वणाहि य, आघवित्तए वा पणवित्तए वा परुवित्तए वा तथा अहाणुपुव्वीए संप-
त्थिया) तव उन पुरुषों ने जब कि उसे अनेक दृष्टान्तरूप आख्यापनाओं द्वारा,
हेयोपादेय—प्रतिबोधक प्रज्ञापनाओं द्वारा, तथा यथार्थ स्वरूपनिरूपक प्ररूपणाओं
द्वारा समझाया परन्तु वह नहीं समझा, वहां से आगे क्रमशः प्रयाण करना
श्रांभ कर दिया. (एवं तंवागरं, रूप्यागरं, सुवर्णागरं, वज्रागरं) ज्यों २ वे आगे
चले उन्होंने वैसे २ ताम्र की खान को, रूप्य की खान को सुवर्ण की खान
को, रत्न की खान को और हीरे की खान को देखा (तएणं ते पुरिसा जेणेव
सया जणवया जेणेव साइं साइं नगराइं तेणेव उवागच्छंति) वहां २ से अल्प
मूल्य की उन २ ताम्रादिरूप वस्तुओं का परित्याग करते हुए और लोह भार-
ग्रहण करने में ही आदर बुद्धिवाले बने हुए उस पुरुष को उन २ वस्तुओं के
भरने के विषय में समझाने पर भी उसकी हठाग्राहिता को छुड़वाने में असमर्थ
बने हुए वे सब पुरुष जहां अपने २ जनपद-देश थे और उनमें जहां २ अपने
२ नगर थे वहां पर वज्रमणियों को लिये हुए आये (वइरविक्रिणणं करंति) वहां

आघवणाहि य पणवणाहि य, परुणाहि य आघवित्तए वा पणवित्तए वा
परुवित्तए वा, तथा अहाणुपुव्वीए संपत्थिया) तयार पछी ते पुइषोअे धणुं द्दष्टा
इय आख्यापनाअे द्वारा, हेयोपादेय प्रतिबोधक प्रज्ञापनाअे द्वारा, तेमअ यथार्थ
स्वरूप निरूपक प्ररूपणुअे द्वारा समज्जअे, पणु ते मान्ये नडि, त्यांथी अघाअेअे
क्रमशः आलवा माउथं. (एवं तंवागरं, रूप्यागरं, सुवर्णागरं, वज्रागरं)
जेम जेम तेअे आगण वधता गया तेम तेम तेमअे ताअानी आण्णाने, आहीनी
आण्णाने, सुवर्णुनी आण्णाने, रत्ननी आण्णाने अने हीराअेनी आण्णाने जेध.
(तएणं ते पुरिसा जेणेव सया जणवया जेणेव साइं साइं नगराइं तेणेव
उवागच्छंति) त्यांथी अल्पमूअ्यनी ते ताम्रादि वस्तुअेने भूअीने अने डोडलार
अडणु करवामां अ प्रवृत्त थयेला ते माणुअने तेअेअे मूअ्यवान वस्तुअेने देवा माटे
आअड कर्ये अतांअे तेनी डडाअाडिताने छिडाववामां अंते निण्ण गया. अने आम
तेअे अघा अया पोतपोताने जनपद-देश डतो अने तेमा पणु अया पोतपोताअं
नगर डतुं त्या वज्रमणुअे वगेरे लध पडोअी गया. (वइरविक्रिणणं करंति)

दासीदासगोमहि गवेलकं गृह्णन्ति, अष्टलोच्छ्रितप्रासादावतंसकान् कारयन्ति. स्नाताः कृतवलिकर्मणः कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः उपरिप्रासादवरगताः स्फुटद्विर्मृदङ्गमन्तकैः द्वात्रिंशद्द्वकैर्नाटकैर्वरतरुणीसंश्रयुक्तैरुपनर्त्यमाना उपगीयमानाः उपलाल्यमानाः इष्टान् शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुषकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्ती

आकरके उन्होंने वज्रमणियो का विक्रय किया. (सुबहुदासीदासगोमहिस-गवेलगं गिण्हंति) और उसे प्राप्त द्रव्य से अनेक दासी, दास, गो महिप तथा गवेलको को खरीदा अर्थात् इनका संग्रह किया (अद्वुतलमसियपासायवडि-सगे कारवेति) और आठ खण्डों से सुशोभित ऊचे २ श्रेष्ठ प्रासादों का निर्माण कराया (प्रायाकयवलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करके वलि-कर्म-त्रायसादिको अन्नादि का भाग देने रूप वलिकर्म करके एवं कौतुक, मंगलरूप प्रायश्चित्त करके वे उन (उपि पासायवरगया) प्रासादों के ऊपर ही रहते (फुट्टमाणेहि, मुडंगमत्यएहि, वत्तीसडवद्वएहि नाडएहि, वरतरुणी संपउत्तेहि) और वहाँ रहकर वे अतिवेग से ताडित किये गये मृदङ्गाँ के निनादों से तथा सुन्दर २ तरुणियों द्वारा अभिनीत किये गये वत्तीस प्रकार के नाटकों से (उवणच्चिज्जमाणा) उपनर्त्यमान (उवगिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा) उपगीयमान और उपलाल्यमान होते हुए (इडे सह फरिस-रस-रुच-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पञ्चणुभवमाणा विहरति) इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच प्रकार के मनुष्यसंबन्धी कामभोगों को भोगते २ आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे (ताणं मे

त्या पहोंथीने तेमले पञ्चमण्योत्तुं वेयाए धुं (सुबहुदासीदासगोमहिस-गवेलगं गिण्हंति) अने ले द्रव्य मलयुं तेनाधी घए। दासी दास, गो, महिप तेमले गवेलकोनी खरीदी करी. अष्टदं डे अभनेना संश्रयु कथी। (अद्वुतलमसिय-पासायवडिसगे कारवेति) अने आठ भाणाओधी सुशोभित लीया लीया श्रेष्ठ प्रासादोत्तु निर्माए श्राव्यं (प्राया कयवलिकम्मा, कयकोउयमंगलपायच्छित्ता) स्नान करीने, वलिकर्म-श्रावण वउत्तेने अन्न वउत्तेने। भाग आधीने अने शौच मन्त्र उप प्रायश्चित्त करीने तेओ ते (उपि पासायवरगया) प्रासादोनी उपर उ-रहेया लीया (फुट्टमाणेहि, मुडंगमत्यएहि, वत्तीसडवद्वएहि नाडएहि, वरतरुणी संपउत्तेहि) अने त्याए उहीने तेओ अनियोगधी प्रनरित इडे। मुडंगम निनादोधी तेमले मुडंग मुडंग तडुए लीये दास अभिनीत कियेए वरुणी उवण चिज्जमाणा (उ-वणच्चिज्जमाणा) उपनर्त्यमान (उवगिज्जमाणा उ-वलालिज्जमाणा) उपगीयमान अने उपलाल्यमान हुए (इडे सह फरिस-रस-रुच गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पञ्चणुभवमाणा विहरति) इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांच प्रकार के मनुष्यसंबन्धी कामभोगों को भोगते २ आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे (ताणं मे

विहरन्ति । ततः खलु स पुरुषः अयोभारेण यत्रैव स्वं नगरं तत्रैव उवागच्छन्ति, अयोभारकं गृहीत्वाः यो विक्रयणं करोति, तस्मिन् अल्पमूल्यनिष्ठिते क्षीणपरिव्ययः तान् पुरुषान् उपरि प्रासादवरगतान् यावद् विहरतः पश्यति, दृष्ट्वा

पुरिसे अयोभारेण जेणेव सए नयरे तेणेव उवागच्छइ) अब वह पहिला पुरुष कि जिसने हित वचनों की अबहेलना की और लाह के भार को ही अच्छा समझा उस लोहभार के साथ ही अपने नगर में आया (अयोभारकं गहाय अयोविक्रिणणं करेइ) वहां आकारके उसने उस लोहे के भार को लेकर बेचना प्रारंभ किया (तंसि अप्पमोल्लंसि, निट्टियंसि, हीणपरिव्वए ते पुरिसे उप्पिं पासायवरगए जाव विहरमाणे पासइ) जब वह पूरा विक चुका—तो उससे जो उसे द्रव्य प्राप्त हुआ, वह बहुत थोड़ा सा प्राप्त हुआ—क्यों कि वह लोह उसका अल्पमूल्य में बिका अतः उससे प्राप्त द्रव्य आहार वस्त्र आदि के लाने में ही समाप्त हो गया. इस तरह क्षीणपरिव्ययवाले बने हुए उस पुरुष ने उन वस्त्रविक्रयी पुरुषों को जो कि अपने २ रम्य प्रासादों में रहकर यावत्—अतिवेग से ताडित (बजाते) हुए मृदङ्गों के निनादों से एवं ३२ प्रकार के सुन्दर २ तरुण युवतियों द्वारा अभिनीत किये गये नाटकों से उपनर्त्यमान थे और उपलब्धमान थे एवं इष्ट शब्द-स्पर्श रस, रूप, गंध, इनपांचप्रकार के मनुष्य-भव संबंधी कामभोगों को भोगते हुए आनन्द के साथ अपना समय व्यतीत

पोतानो समय पसार करवा लाया. (तए णं से पुरिसे अयोभारेण जेणेव सए नयरे तेणेव उवागच्छइ)इये ते पेवे लोभउना भारवाणे भाणुसुं के जेणे पीण लोकेना हित वचने सा लया नडि अने लोभउना भारने उत्तम मान्ये इतो— नगरमा आव्ये. (अयोभारकं गहाय अयोविक्रिणणं करेइ) त्यां आवीने तेणे ते लोभउना भारने लधने वेयायु प्रारंभं क्युं (तंसि अप्पमोल्लंसि निट्टियंसि हीणपरिव्वए ते पुरिसे उप्पिं पासायवरगए जाव विहरमाणे पासइ) न्यारे ते लोभउने भार वेयायुं गये त्यारे तेनाथी जे द्रव्यमण्युं इतुं ने अत्यल्प इतुं केमडे ते लोभउं अल्प मूल्यमां जे वेयायु इतु. तेनाथी जे अल्पधन प्राप्त थयु इतु. ते तो आहार वस्त्र वगैरेनी थरीदीमां जे पइं थयुं गयुं इतुं. आ प्रमाणे ते क्षीण परिव्यापवाणा ते पुइथा ते वज्र विक्रयी पुइधोने के जेयो पोतपोताना रम्य प्रासादोमा रडीने यावत् अतिवेगथी प्रताडित थयेल मृदङ्गोना निनादोथी अने उर प्रकारना सुंदर सुंदर तरुण स्त्रीयो द्वारा अलिनीत करायेला नाटकोथी उपनर्त्यमान इता, उपगीयमान इता, अने उपलब्धमान इता अने धुण्ट, शब्द, स्पर्श रस, रूप, गंध, आ पांच जतना मनुष्य भव संबंधी काम लोकोनी उपलोग करतक आनन्दपूर्वक पोतानो समय पसार करी रखा इता जेया. (पासित्ता एव वयासी

एवमवादीत्-अहो !! खलु अहम् अधन्यः अपुण्यः अकृतार्थः अकृतलक्षणः हीश्री-
वर्जितः हीनपुण्यचातुर्दशो दुर्न्तप्रान्तलक्षणः । यदि खलु अह मित्राणां वा जातीनां
वा निजकानां वा वचनम् अश्रोण्य तदा खलु अहमपि एवमेव उपरि प्रासादव-
गतः यावद् व्यहरिष्यम् । तत् तेनार्थेन प्रदेशिन् ! एवमुच्यते-मा त्वं ! प्रदेशिन् !
पश्चादनुतापितो भवेः, यथा वा स पुरुषोऽयोहारक । ॥ सू० १५४ ॥

कर रहे थे देखा(पासित्ता एवं वयासी-अहोणं अहं अधन्ना, अपुन्नो, अकृतार्थो
अकृतलक्षणो हिरिसिरिवज्जिओ हीणपुण्यचाउदसे दुरंतपंतलक्षणो) तो देगकर
इस प्रकार विचार किया-अरे ! मैं कितना अधन्य हूं, पुण्यहीन हूं, अकृतार्थ
हूं, शुभलक्षण रहित हूं. लज्जा लक्ष्मी दोनों से वर्जित हूं, हीनपुण्यचातुर्दश हूं
अर्थात् हीनपु यवाला हूँ-सी लिये कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में जन्मा हूं, दुर्न्त
प्रान्तलक्षणवालाहूं-दुष्टावसानवाले अमनोज्ञ लक्षणो से युक्त हूं (जड णं अहं मित्राण
वा णार्हण वा णियगाण वा वयणं मुणेनओ तो णं अहं पि एवं चैव उपि
पासायवग्गए जात्र विहरेतओ) यदि मैं साथ गये हुए मित्रों के, अथवा पितृ-
व्यादि ज्ञातिजनों के वा अपने हितैषियों के वचनों को मान लेता, तो मैं भी
उन्हीं साथ के आये हुए वज्रविक्रेता पुरुषों की तरह ही प्रामादों में गटना
हुआ विविध सुख सम्पन्न बनकर अपने समय को आनन्दपूरक व्यतीत करता
(से तेणेट्टणं पण्णी ! एवं वुच्छड, मा तुमं पण्णी ! पच्छाणुताविण भविज्जामि,
जहा व ते पुरिमे अयभाण्ण) उम्मी काण्य हे प्रदेशिन् ! मैंने ऐसा कहा है कि

अहो णं अहं अधन्ना, अपुन्नो अकृतार्थो, अकृतलक्षणो हिरिसिरिव-
ज्जिओ हीणपुण्यचाउदसे दुरंतपंतलक्षणो) तमने जेठेन आ प्रभाणं विद्या
धर्या के अहं । त उदडे अलागिथे हूं अधन्य हू. पुण्यहीन हू. अकृतार्थ
हू. शुभलक्षण रहित हू. लज्जा लक्ष्मी धन्नेथी वर्जित हू हीनपुण्यचातुर्दश
हूं. श्रेष्ठ के हीन पुण्यवाणो हू. केशी व इए, पथनी चतुर्दशीना विदो न
पाथेया है, दुर्न्त प्रान्त लक्षणवाणो हू. दुष्टावसाववाणो अमनोज्ञ लक्षणवा सुद
(जडण अह मित्राण वा णार्हण वा णियगाण वा वयणं मुणेनओ तो णं अहं
पि एवं चैव उपि पासायवग्गए जात्र विहरेतओ) तो हू अधन्य अधन्य
मित्रव्यादि ज्ञातिजनोना के पंनना हितैषियोना वदना नली, हितैषियोना
व अह गानी साथे साथेव उदरिंतेण पुण्येण तेन व अहं हं म. म. विदो
नय नसिपन्त वदनेन वेतता सम्पन्ने अहं हू इहं पन्ने एत से तेणेट्टण
पण्णी ! एवं वुच्छड मा तुमं पण्णी ! पच्छाणुताविण भविज्जामि, जहा व ते
पुरिमे अयभाण्ण) केशी व हे प्रदेशिन् ! मैंने ऐसा कहा है कि

टीका—“तए णं केसीकुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशीकुमार-
श्रमणः प्रदेशिगजम् एवमवादीत्—हे प्रदेशिन् ! त्वं खलु पश्चादनुतापिकः—पश्चात्ता-
पयुक्तो मा भवेः, यथा—येन प्रकारेण सः—वक्ष्यमाणः अयोहारकः—लोहवणिक
पश्चादनुतापिकोऽभूत् ।, प्रदेशी तत्परिचयं पृच्छति—कः खलु हे भदन्त ! सः
अयोहारकः ? इति प्रश्नः । केशीकुमारश्रमण आह—ते यथानामकाः—अनिर्दिष्ट-
नामानः केचित् पुरुषाः अर्थार्थिकाः—धनार्थिनः, अर्थगवेपिका—धनान्वेषिण,
अर्थलुब्धकाः—धनलोलुपाः अर्थकाङ्क्षिताः—धनकाङ्क्षायुक्ताः, अर्थपिपासिताः—धन-
पिपासायुक्ताः, अर्थगवेषणार्थै—धनगवेषणार्थं विपुलं पणितभाण्डं—क्रयाणकवस्तुजातम्
आदाय तथा—सुबहु—पर्याप्तं भक्तपानपथ्यदनम् अशनपानरूपं पाथेयं गृहीत्वा एकां

जैसा यह अयोहारक पुरुष पश्चात्तापयुक्त हुआ है—इसी प्रकारसे तुम्हे न होना
पड़े—अतः तुम मेरे कहे हुए पर श्रद्धा करो और मानो किजीव और शरीर मिन्न
है इत्यादि ।

टीकार्थ—इसी मूलार्थ के जैसा है—परन्तु जहाँ पर विशेषता है—वह इस
प्रकार से है “हट्टुट्ठा जाव हियया” में जो यावत् पद आया है, उससे—
“चित्तानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्” इन पदों का संग्रह हुआ
है. इन पदों की व्याख्या पूर्वोक्त जैसी ही है. “इष्टे, कंते जाव” में जी यह
यावत्-पद आया है—उससे यहाँ पर “प्रियः, मनोज्ञः, मन आमः” इन पदों का
ग्रहण हुआ है. इष्ट शब्द का अर्थ—मनोरथ को पूरा करनेवाला है. कान्त शब्द
का अर्थ—सहायकारी होने से अभिलषणीय है, प्रिय शब्द का अर्थ—उपकारक
होने से प्रेम का उत्पादक है, तथा—मनोज्ञ शब्द का अर्थ—हितकारी होने से
मनोहर ऐसा है और मन आम शब्द का अर्थ आर्तिहर होने से मनोगम्य ऐसा

हा-क पुरुष पश्चात्ताप-युक्त थयो छे—तेम तमारी पणु स्थिति थाय नहि, अथी
तमे मारी वात पर श्रद्धा राषो अने मारी वात मानी वो के एव अने शरीर
मिन्न मिन्न छे इत्यादि.

टीकार्थ—आ मूलार्थ प्रमाणे न छे. पणु न्या विशेषता छे ते आ प्रमाणे छे.
“हट्टुट्ठा जाव हियया” मा ने यावत् पद छे तेथी ‘चित्तानन्दिताः, परमसौ-
मनस्यिताः हर्षवशविसर्पद्’ आ पदोनी सग्रह थयो छे. आ पदोनी व्याख्या पड़ेलां
मुण्ण न छे. “इष्टे, कंते जाव” मा ने यावत् पद छे तेथी अर्धी ‘प्रियः,
मनोज्ञः, मनः आम’ आ पदोनुं अहण थयुं छे. इष्ट शब्दो अर्थ मनोरथ ने
पूरनार छे कात शब्दो अर्थ सहायकारी होवाथी अभिलषणीय छे, प्रिय शब्दो
अर्थ—हितकारी होवाथी प्रेमनो उत्पादक छे, तथा मनोज्ञ शब्दो अर्थ—हितकारी
होवाथी मनोहर अवे थाय छे. मनः आम शब्दो अर्थ आर्तिहर होवाथी मनो-

टीका—“तए णं केसीकुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशीकुमार-
श्रमणः प्रदेशिराजम् एवमवादीत्—हे प्रदेशिन् ! त्वं खलु पश्चादनुतापिकः—पश्चात्ता-
पयुक्तो मा भवेः, यथा—येन प्रकारेण सः—वक्ष्यमाणः अयोहारकः—लोहवणिक
पश्चादनुतापिकोऽभूत् ।, प्रदेशी तत्परिचयं पृच्छति—कः खलु हे भदन्त ! सः
अयोहारकः ? इति प्रश्नः । केशीकुमारश्रमण आह—ते यथानामकाः—अनिर्दिष्ट-
नामानः केचित् पुरुषाः अर्थार्थिकाः—धनार्थिनः, अर्थगवेषिका—धनान्वेषिणः,
अर्थलुब्धकाः—धनलोलुपाः अर्थकाङ्क्षिताः—धनकाङ्क्षायुक्ताः, अर्थपिपासिताः—धन-
पिपासायुक्ताः, अर्थगवेषणार्थ—धनगवेषणार्थं त्रिपुलं पणितभाण्डं—ऋयाणकवस्तुजातम्
आदाय तथा—सुबहु-पर्याप्तं भक्तपानपथ्यदनम् अशनपानरूपं पाथेयं गृहीत्वा एकां

जैसा यह अयोहारक पुरुष पश्चात्तापयुक्त हुआ है—इसी प्रकारसे तुम्हे न होना
पड़े—अतः तुम मेरे कहे हुए पर श्रद्धा करो और मानो कि जीव और शरीर मिन्न
है इत्यादि ।

टीकार्थ—इसी मूलार्थ के जैसा है—परन्तु जहाँ पर विशेषता है—वह इस
प्रकार से है “हृदुतुडा जाव हियया” में जो यावत् पद आया है, उससे—
“चित्तानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्” इन पदों का संग्रह हुआ
है. इन पदों की व्यख्या पूर्वोक्त जैसी ही है. “इहे, कंते जाव” में जी यह
यावत्-पद आया है—उससे यहाँ पर “प्रियः, मनोज्ञः, मन आमः” इन पदों का
ग्रहण हुआ है. इष्ट शब्द का अर्थ—मनोरथ को पूरा करनेवाला है. कान्त शब्द
का अर्थ—सहायकारी होने से अभिलषणीय है, प्रिय शब्द का अर्थ—उपकारक
होने से प्रेम का उत्पादक है, तथा—मनोज्ञ शब्द का अर्थ—हितकारी होने से
मनोहर ऐसा है और मन आम शब्द का अर्थ आर्तिहर होने से मनोगम्य ऐसा

डा-क पुष्प पश्चात्ताप-युक्त थये छे—तेम तमारी पणु स्थिति थाय नहि, अथी
तमे मारी वात पर श्रद्धा राणे अने मारी वात मानी ले के एव अने शरीर
सिन्न सिन्न छे इत्यादि.

टीकार्थ—आ मूलार्थ प्रमाणे न छे. पणु न्या विशेषता छे ते आ प्रमाणे छे.
“हृदुतुडा जाव हियया” मा न्ने यावत् पद छे तेथी ‘चित्तानन्दिताः, परमसौ-
मनस्यिताः हर्षवशविसर्पद्’ आ पदोनी संग्रह थये छे. आ पदोनी व्याख्या पढेलां
मुण्ण न छे. “इहे, कंते जाव” मा न्ने यावत् पद छे तेथी अहीं ‘प्रियः,
मनोज्ञः, मनः आम’ आ पदोनुं अणु थयुं छे. इष्ट शब्दो अर्थ मनोरथ ने
पूरनार छे कत शब्दो अर्थ सहायकारी होवाथी अभिलषणीय छे, प्रिय शब्दो
अर्थ—हितकारी होवाथी प्रेमनो उत्पादक छे, तथा मनोज्ञ शब्दो अर्थ—हितकारी
होवाथी मनोहर अये थाय छे मनः आम शब्दो अर्थ आर्तिहर होवाथी मनो-

महती-विशालाम अग्रामिकाम्-सतिगहितां, छिन्नाऽऽपाता-छिन्न-हिंसकजन्तु-भयेनोपहत आपात-मनुष्याणां गमनागमनं यत्र ताम् दीर्घाध्वां-दीर्घमार्गाम्, अट-वी-अनुप्रविष्टाः । ततः खलु ते पुरुषाः तस्याः अग्रामिकायाः यावत् छिन्नाऽऽपातायाः दीर्घाध्वाया अटव्याः कञ्चिद्देशम्-अटवीविभागम्, अनुप्राप्ताः सन्तः तत्र एकम् अयआकरं-लोहवनिम्, पश्यन्ति-दृष्टवन्तः, तमाकरम् अयसा-लोहेन सर्वत्र-सर्वदिक्षु, समन्ता-सर्वविदिक्षु आकीर्णं-व्याप्तं, विस्तीर्णं-विस्तारप्राप्तम्, सच्छटं-सती-समीचीना छटा-चाक्रचक्रयं यत्र तम्, उपच्छटं-छटायुक्तम्, स्फुटं-प्रकटम्, अनुगाढं-पुञ्जरूपं पश्यति-दृष्टवन्तः, दृष्ट्वा हृष्टतुष्ट यावत्-यावत्पदेन “चित्तानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्” इत्येतां सङ्गो बोध्यः, हर्षवशविसर्पद्” इत्यस्य “हृदया” इत्यनेन योगाद् “हर्षवशविसर्पद्दयाः” इति, एतद्दृष्ट्वा प्राग्गतं, एतादृशाः सन्तः अन्योन्यं-परस्परं, शब्दयन्ति-आवृणन्ति, शब्दयित्वा एवमत्रादिपुः-उक्तवन्तः—हे देवानुप्रियाः ! एत-अयं खलु अयआकरः-लोहाऽऽकरः इष्टः कान्तः यावत् यावत्पदेन-“प्रियः, मनोज्ञः मनआम” इति पदानां संग्रहः, तत्र इष्टः-मनोरथपूरकः, कान्तः सहायकारित्वादभिलाषीयः, प्रियः-उपकारिकत्वेन प्रेमोत्पादकः, मनोज्ञः-हितकारित्वान्मनोहरः. मनआमः-आर्तिहर्तृत्वान्मनोगम्यः, अस्ति तद्-तस्मान् कारणान् हे देवानुप्रियाः । अस्माकम् अयोभारं-लोहभारं वञ्चं ग्रहीतु श्रेयः-प्रशस्तम् इतिकृत्वा-इति निश्चित्य अन्योन्यस्य-परस्परस्य एतम्-अयोभारग्रहणरूपम् अर्थम्-प्रतिभ्रूवन्ति-कर्तव्यतया स्वीकुर्वन्ति. प्रतिश्रुत्य अयोभारं-लोहभारं वञ्चन्ति, वञ्चं यथानुपूर्वि-यथाक्रमं संप्रस्थिताः-अग्रे गन्तु प्रवृत्ताः । ततः खलु ते पुरुषाः अग्रामिकायाः यावत्-“छिन्नाऽऽपातायाः दीर्घाध्वायाः अटव्या किञ्चिद्देशं-किञ्चिद्देशम् अनुप्राप्ताः सन्तः एकं महान्तं त्रधाकरं-त्रपु-धातुविशेषरसः ऽऽकरं, पश्यन्ति-दृष्टवन्तः तम् त्रपुकेण सर्वतः समन्ताद् आकीर्णं तदेव-पूर्वोक्तमेव “विस्तीर्णं, सच्छटम्, उपच्छटं स्फुटं गाढं पश्यन्ति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टाः. चित्तानन्दिताः. परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः,

हैं। ‘अगामियाए जाव’ में जाये हुए इस यावत्पद से “छिन्नापातायाः” दीर्घाध्वायाः” इन पदों का संग्रह हुआ है. “त चेव” इस पाठ से “विस्तीर्णः सच्छटम् उपच्छटं स्फुटं गाढं पश्यन्तिः दृष्ट्वाहृष्टतुष्टाः, चित्तानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः अन्योन्यं शब्दयन्ति” इस पाठ का यहां ग्रहण

गम्य भवेत् शाय छे. ‘अगामियाए, जाव’ भा आवेल भा यावत् पदथी छिन्नापातायाः, दीर्घाध्वायाः, भा पदोने सत्रह थये छे ‘तचेव’ भा पाठथी ‘विस्तीर्णः सच्छटम्, उपच्छटम्, स्फुटं, गाढं पश्यन्तिः, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टाः, चित्तानन्दिताः, परमसौमनस्यिताः, हर्षवशविसर्पद्दयाः अन्योन्यं शब्दयन्ति” भा पाठ अडथे

अन्येऽन्यं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा. एवम् अवादिषुः-हे देवानुप्रियाः ! एष खलु त्रपाकरः यावत्-यावत्पदेन “इष्टः, कान्तः, प्रियः, मनोज्ञः” संग्राह्यम् मनआमः अल्पेनैव त्रपुकेण सुबहु-अतिप्रचुरम् अयः-लोहं लभ्यते-प्राप्यते, तत्-तस्मात् कारणात् हे देवानुप्रियाः ! अयोभारं मुक्त्वा-विहाय त्रपुकभारं बद्धं श्रेयः. इति कृत्वा अन्योऽन्यस्य अन्तिके-सर्मापि एतम्-त्रपुभारग्रहणरूपम् अर्थम् प्रतिशृण्वन्ति कर्तव्यतया स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्वा अयोभारं मुञ्चन्ति-त्यजन्ति त्रपुकभारं बध्नन्ति-गृह्णन्ति, तत्र-त्रपुभारग्रहणवेषये खलु एकः-कश्चित् पुरुषः अयोभारं मोक्तुं-त्यक्तुं नो शक्नोति, तथा-त्रपुकभारं बद्धं-ग्रहीतुं नो शक्नोति, ततः खलु ते पुरुषाः तम्-लोहभारवन्तं पुरुषम् एवमवादिषुः-हे देवानुप्रिय ! एष खलु त्रपाकरः, यावत्-यावत्पदेन-“इष्टः, कान्तः, प्रियः, मनोज्ञः, मनआमः, अल्पेनैव त्रपुकेण” इत्येषां सर्वो बोध्यः, सुबहु-अतिप्रचुरा अयः-लोहः, लभ्यते तत्-तस्मात् कारणात् हे देवानुप्रिय ! अयोभारकं-लोहभारं मुञ्च-त्यज तथा त्रपुकभारकं बधान-गृहाण, ततः खलु सः-लोहभारवाहकः पुरुषः एवमवादीत-हे देवानुप्रियाः-मया अयः-लोहः दूराऽऽहृतं-दूरात्-दूरप्रदेशाद् आहृतम्-आनीतम्, हे देवानुप्रियाः ! मया अयः-चिराऽऽहृतम्-चिरात्-बहुकालाद् आहृतम्-उद्धृतम्, हे देवानुप्रियाः ! मया अयः अतिगाढ-बन्धनबद्धम्-अत्यन्तदृढबन्धनेन बद्धम् अत एव हे देवानुप्रियाः ! मया अयः अशिथिलबन्धनबद्धम्-अशिथिलबन्धनेन दृढबन्धनेन बद्धम् हे देवानुप्रियाः ! मया अयः प्रचुरबन्धनबद्धम्-“घणिय” इति प्रचुरार्थो देशीयः शब्दः, अतोऽहम् अयोभारं त्यक्त्वा त्रपुकभारकं बद्धं-ग्रहीतुं नो चैव शक्नोमि । ततः खलु ते पुरुषाः तम्-लोहभारवाहकं पुरुषं यदा बहुभिः-बह्वीभिः आगव्यापनाभिः-दृष्टान्तरूपाभिः” च पुनः प्रज्ञापनाभिः हेयोपादेयप्रतिवोयिकाभिश्च

क्रिया गथा है । “इष्टे जाव मणामे” में आये हुए यावत्पद से ‘इष्टः कान्तः प्रियः, मनोज्ञः’ इन पदों का संग्रह हुआ है ! “तउ आगरे जाव” पद से भी इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन आम” इन पदों का संग्रह क्रिया गथा है । “घणीय” यह शब्द देशीय है और प्रचुर अर्थ का वाचक है ॥ १५४ ॥

यथे छ. “इष्टे जाव मणामे” भा आवेल यावत् पदथी ‘इष्टः, कान्तः, प्रियः, मनोज्ञः’ भा पदोने अत्रथे छ. ‘तउआगरे जाव’ पदथी पद्यु ‘इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन आम’ भा पदोने अत्रथुं छ. ‘घणिय’ भा शब्द देशीय छ अने प्रचुर अर्थो वाचक छ. ॥२॥ १५४॥

प्ररूपणामिः—यथार्थस्वरूपनिरूपिकाभिश्च आख्यापयितुं वा प्रज्ञापयितुं वा प्ररूपयितुं वा नो शक्नुवन्ति—समर्था नाभवन, तदा यथानुपूर्वि—यथाक्रमम्, संप्रस्थिताः—
ततोऽग्रे प्रयाताः । एवम्—अनेन प्रभारेण ताम्राऽऽकरं, रूप्याऽऽकरं, सुवर्णाऽऽकरं,
रत्नाऽऽकरं, वज्राऽऽकरं, हीरः खनि पश्यन्ति इत्यादि लोहत्रय्याकरदर्शनवदेव सर्व
वर्णान बोध्यम् । ततः—लोहभारग्रहणकृताऽऽदरदुर्बुद्धिपुरपस्यानेकवथा प्रबोधक-
वाक्यप्रपञ्चैः प्रबोधनाः सामर्थ्यानन्तरं खलु ते अल्पमूल्यपूर्वपूर्वस्तुपरित्याग-
पूर्वकवहुमूल्योत्तरोत्तरवस्तुग्रहणवद्वाऽऽदरतया गृहीतवज्रमणिभाराः पुरुषाः यत्रैव
स्वाः—स्वकीयाः जनपदाः—देशाः, यत्रैव स्वानि स्वानि—निजानि निजानि नग-
राणि तत्रैव उपागच्छन्ति । वज्रविक्रयण—वज्रमणिविक्रय कुर्वन्ति—कृतवन्तः ।
तद्विक्रयेण लब्धवहुद्रव्यैः सुवहुदासीदासगोमहिपगवेलकं—सुवहु—अतिप्रचुरं यद्
दासी—दास—गो महिप—गवेलकः—तत्र दासी—दास—गो—महिपाः प्रसिद्धाः, गवे-
लकाः—मेपाश्चेत्येषां समाहारस्तथा, तत् गृह्णाति, अष्टतलोच्छ्रित प्रासादावन्तंसमान
—अष्टौ तलानि यत्र ते अष्टतलाः—अष्टभूमिभाः, ते च ते उच्छ्रिताः—उन्नताः
गगनचुम्बिनः प्रासादावन्तंसमाः—श्रेष्ठप्रासादास्तान् कारयन्ति, तत्र च स्नाताः
कृतस्नानाः, कृतवलिर्मणिः—कृतवायसादिनिमित्तान्निविभागाः, कृतकौतुलमङ्गल-
प्राश्चित्ताः दुःस्वप्नादिफलविधाताय धृतदध्यक्षताश्रयाः सन्तः
उपरि—ऊर्ध्वं प्रासादवरगताः—मनोहर प्रासादस्थिताः विहरन्ती-
न्युत्तरेणान्वयः, किं कुर्वन्तो विहरन्तीत्याह—स्फुटद्भिः—अतिरभसा स्फालनात्
स्फुटद्भिरिवः, मृदङ्गमस्तकैः मृदङ्गमुखपुटैः, द्वात्रिंशद्भुक्तैः— द्वात्रिंशत्प्रकाररचना
युक्तैः नाटकैः, तै कीदृशैः ? इत्यत्राऽऽह—वरतरुणीसंप्रयुक्तैः—विशिष्ट
स्त्रीसम्पादितैः, उपनर्त्यमानाः, नृत्यं दृश्यमानाः, उपगीयमानाः गानं श्राव्यमाणाः,
उपलाल्यमानाः धिलास्यमानाः, इष्टान् अभिलषितान्, शब्दस्पर्शरसरूप-
गन्धान्, पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवतो विहरन्ति तिष्ठन्ति ।
ततः खलु इतश्च सः—अवहेलितहितवचनो लोहभारवाहकः पुरुषः अयोभारेण
सह यत्रैव स्वं-निज नगरं, तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत्र अयोभारकं गृहीत्वा
अयोविक्रयणं करोति । तस्मिन्—लोहविक्रयलब्धे, अल्पमूल्ये-स्वल्पद्रव्ये आहार-
वस्त्राद्यानयनेन निष्ठिते-समाप्ते सति स लोहवणिक्ः पुरुषः क्षीणपरिव्ययः-क्षीणः-
मन्दः परिव्ययः-परितो व्ययः-द्रव्योपयोगो यस्य तथाभूतः, तान्-वज्रविक्रयिण-
पुरुषान् उपरि—ऊर्ध्वभागे, प्रासादवरगतान्—स्म्यप्रासादस्थितान् यावद् विहरमाणान्
स्फुटद्भिर्मृदङ्गमस्तकैः द्वात्रिंशद्भुक्तैः नाटकैः वरतरुणीसंप्रयुक्तैः उपनर्त्यमानान् उ
गीयमानान् उपलाल्यमानान् इष्टान् शब्द—स्पर्श-रस-रूप-गन्धान् पञ्चविधान्

प्यकान कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो विहरमाणान् पश्यन्ति । दृष्ट्वा एवम्-अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत्-अहो ! विस्मयः खलु अहम् अधन्यः-धन्यो न, अपुण्यः-पुण्यहीनः, अकृतार्थः अकृतेष्टसिद्धिकः, अकृतलक्षणः-शुभलक्षणहीनः, हीश्रीवर्जितः-लज्जालक्ष्मीहीनः, हीनपुण्य-चातुर्दशः-हानपुण्यः-क्षीणपुण्यः, अत एव चातुर्दशः-कृष्णचातुर्दशं जातः, दुरन्तान्त लक्षणः-दुरन्तं-दुष्टा-सानम् अत एव प्रान्तम् अमनोज्ञं लक्षणं यस्य स तथा-कुलक्षणयुक्तः, अहममि । यदि-चेत् खलु अहं मित्राणां-सहगतानां वा-अथवा ज्ञातीनां-पितृव्यादीनां वा निजकानां-हितैषिणां वा वचनम् अश्रोण्यं-श्रवणपथमानेष्वम् तदा-तर्हि खलु अहमपि एवमेव-मत्सहागतवज्रमणिविक्रान्ति-पुरुषवदेव, उभरि-ऊर्ध्वभागे, प्रासादवरगतः-सुन्दर-प्रासादस्थितः वज्रमणिविक्रान्तिसदृशो भूत्वा यावद् वहरिष्यम्-अस्थास्यम् विविध-सुखसम्पन्नोऽभविष्यम् । तत्-त-माद्वेतोः, तेन-अनन्तरोक्तेन अर्थेन-लोहवणिगूरूपेण दृष्टान्तेन, हे प्रदेशिन ! एवम्-इत्थम्, उच्यते-कथ्यते यत् हे प्रदेशिन ! त्वं पश्चादनुतापिको मा भवेः, यथा-येन प्रकारेण सः-अन्तरोक्तः, अशोहारकः पश्चादनुतापिकोऽभूत् । ॥सू० १५४॥

मूलम्-तए णं से पएसी राया संबुद्धे केसिकुमारसमणं वंदइ जाव एवं वयासी-णो खलु भंते ! अहं पच्छाणुताविए भविस्तामि जहा चेव से पुरिमे अयंभारए । त इच्छाम णं देवाणुप्पियाणं अंतिए केवलपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए । अहासुह देवाणुप्पिया । मा पडिवंधं करेह । धम्मकहा, जहा चित्तस्स तहेव जाव गिहिधम्मं पडिवज्जइ, जेणेव सेयविया नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए । १५५॥

छाया-ततः खलु स प्रदेशी राजा संबुद्धः केशिकुमारश्रमणं वन्दते यावत् एवमादीन्-नो खलु भदन्त ! अहं पश्चादनुतापिको भविष्यामि यथैव स पुरुषो

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ-—(तएणं से पएसी राया संबुद्धे) इम तरह से बहुत समझाने पर वह प्रदेशी राजा बोध को प्राप्त हो गया (केशिकुमारसमणं जाव वंदइ

‘तए णं से पएसी राया’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ-—(तएणं से पएसी राया संबुद्धे) आ प्रमाणे पाठु व समस्तववाची ने प्रदेशी राजाने बोध प्राप्त थयो । (केशि कुमारसमण जाव वंदइ एवं वयासी) पथी तेणे

अयोहारकः । तदिच्छामि खलु देवानुप्रियाणामन्तिके केवलप्रज्ञप्त धर्मं निशम-
यितुम् । यथासुखं देवानुप्रियाः ! मा प्रतिबन्धं कुरुत धर्मकथा, यथा चित्रस्य
तथैव यावत् गृहिधर्मं प्रतिपद्यते, तत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव प्राधारयद्
गमनाय ॥ स्र० १५५ ॥

एवं बयासी) फिर उसने वंदना की यावत् केशिकुमारश्रमण से ऐसा कहा-(गो
खलु भंते । अहं पच्छाणुताविए भविस्सामि, जहा चेव से पुरिसे अयहारण)
हे भदंत ! मैं उस अयोहारक-लोहवणिक पुरुष की तरह पश्चादनुतापित नहीं
होऊंगा (तं इच्छामि णं देवानुप्पियाणं अंतिए केवलपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए)
अतः, मैं आप देवानुप्रिय से केवलप्रज्ञप्त धर्म सुनने का अभिलाषी हो रहा
हूँ (अहा सुहं देवानुप्पिया ! मा पडिवन्धं करेह) तब केशीकुमारश्रमण ने उससे
कहा-हे देवानुप्रिय ! आप को जिससे सुख उपजे ऐसा करो परन्तु इस विषय
में विलम्ब करना उचित नहीं है । (धम्म कहा) प्रदेशी राजाको तब केशी-
कुमारश्रम ने मुनिधर्म और गृहस्थधर्म का उपदेश दिया. (जहा चित्तस्स तहेव
गिहिधम्मं पडिवज्जइ) यहां वह धर्मकथा १११वें सूत्र में जैसी कही गई है
वैसी जाननी चाहिये. तब प्रदेशी राजाने द्वादशविधरूप गृहीधर्म स्वीकार कर-
लिया. (जेणेव सेयंविद्या णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए) इस प्रकार गृहिधर्म
धारणकर वह प्रदेशी राजा जहां श्वेतांशिका नगरीथी उस ओर चलदिया-

केशी कुमारश्रमणने वंदना करी यावत् केशिकुमार श्रमणने आ प्रभाणु कलु -(गो खलु भंते !
अहं पच्छाणुताविए भविस्सामि, जहा चेव से पुरिसे अयहारण) हे भदंत !
हूँ ते अयोहारक लोहवणिक पुरुषनी जेम पश्चादनुतापिक थयथ नडि. (तं इच्छामि
णं देवानुप्पियाणं अंतिए केवलपन्नत्तं धम्मं निसामित्तए) अथी हूँ आप देवा-
नुप्रिय पासैथी केवदि प्रज्ञप्त धर्मने सालणवानी अबिदाषा राणुं छु. (अहासुहं
देवानुप्पिया ! मा पडिवन्धं करेह) त्यारे केशीकुमार श्रमणु तेने कलु हे देवानुप्रिय !
तमने जेमा आनद थाय तेम करे. पणु आ विषयमा विल्लण उचित नथी.
(धम्मकहा) प्रदेशी राजाने त्यारे केशी कुमार श्रमणु मुनिधर्म अने गृहस्थधर्मने
उपदेश आप्थे. (जहा चित्तस्स तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ) अर्ही ते धर्मकथा
११ मा सूत्र प्रभाणु कडेवामा आवी छे. त्यारे प्रदेशी राजाने द्वादश विधरूप
गृहीधर्मने स्वीकार करी (जेणेव सेयंविद्या णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए)
आ प्रभाणु गृहीधर्म धारण करीने ते प्रदेशी राजा जयां श्वेतांशिका नगरी छती
ते तरङ्ग स्वाना थय गथे.

टीका—“तए णं से पएसी राया” इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशी राजा संबुद्धः बोधं प्राप्तः, सन् केशिकुमारश्रमणम् वन्दते—स्तौति, यावत्—यावत्पदेन ‘नमस्यति सत्करोति सम्मानयति कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्ते’ इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः । एषां व्याख्या गता । वन्दनाद्यनन्तरम् एवमवादीत्—हे भदन्त ! अहं खलु पश्चादनुतापिको नो भविष्यामि, यथा येन प्रकारेण सः—अनन्तरोक्तः अयोहारकः—लोहवणिकः, पुरुषः पश्चादनुतापिकोऽभवत्, तत् तस्मात् कारणाद् अहं खलु देवानुप्रियाणां भवताम् अन्तिके पार्श्वे केवलि-प्रज्ञप्तं, धर्मं भवसागरनिमज्जत्प्राणिगणोद्धरणधुरीणं श्रुतचारित्रलक्षणं निशमयितुं श्रोतुम्, इच्छामि अमिलयामि । केशी प्राऽऽह—हे देवानुपिय ! यथासुखं यथा-तुभ्यं रोचते तथा कुरु इति भावः, किन्तु प्रतिबन्धं विलम्ब मा कुरु । धर्मकथा अनगारागारधर्मकथा, यथा चित्रस्य, द्वादशाधिकैकशततमसूत्रप्रोक्ता तथैव तदनुसारिण्येव विज्ञेया । ततः प्रदेशी गृहिधर्मं द्वादशविधं प्रतिपद्यते स्वीकरोति, प्रतिपद्य स यत्रैव श्वेतांशिका नगरी तत्रैव गमनाय प्राधारयत् मनसि निश्चितवान् । ॥सू० १५५॥

मूलम्—तए णं केशी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी-जाणासि णं तुमं पएसी ! कइ आयरिया पन्नत्ता ?, हंता जाणामि,

टीकार्थ—स्पष्ट है “वंदइ जाव एवं वयासी” में जो-यावत्पद आधा है, उससे—“नमस्यति-सत्करोति-सम्मानयति-कल्याणं मङ्गलं दैवतं-चैत्यं-पर्युपास्ते” इन पदों का संग्रह हुआ है, तात्पर्य—कहने का यह है कि—जब प्रदेशी राजा बोध को प्राप्त हो गया, तब उसने केशी कुमार श्रमण की स्तुति की, उन्हे नमस्कार किया उनका सत्कार किया सम्मान किया और—कल्याणरूप मङ्गलरूप एवं-देवस्वरूप उन चैत्य ज्ञान प्रदाता गुरुदेव की उसने पर्युपासना की, फिर उसने भवसागर में डूबते हुवे प्राणियों का उद्धार करने में समर्थ ऐसे श्रुत चारित्ररूप धर्म को सुनने की अपनी अमिलापा प्रकट की ॥ सू. १५५ ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है ‘वंदइ जाव एवं वयासी’ भां जे यावत् पद आवेल छे, तेथी ‘नमस्यति—सत्करोति सम्मानयति कल्याणं—मङ्गलं—दैवतं—चैत्यं—पर्युपास्ते’ आ पदोनो मंत्रहु थयो छे, तात्पर्य आम छे के न्यारे प्रदेशी राजने बोध प्राप्त थय गयो त्याके तेणे केशी कुमार श्रमणनी स्तुति करी तेभने नमस्कार कयो, तेभने सत्कार कयो, सम्मान कयुं अने कल्याणरूप, मङ्गलरूप अने देवस्वरूप ते चैत्यज्ञान प्रदाता गुरुदेवनी तेभणे पर्युपासना करी, त्यार पथी तेभणे भवसागरमा डूबता प्राणीओना उद्धारमा समर्थ जेवा श्रुत चारित्ररूप धर्मने आलणवानी पेतानी करी प्रकट करी ॥सू. १५५॥

तओ आयरिआ पणत्ता, तं जहा-कलायरिए१, सिप्पायरिए२,
धम्मायरिए३ । जाणासि ण तुम पएसी ! तेसिं तिण्हं आयरियाणं
कस्स का विणयपडिवत्ती पउंजियच्चा ? । हंता ! जाणामि, कला-
यरियस्स िप्पायरियस्स उवलेवणं संमज्जणं वा करेज्जा, पुरओ
पुप्फाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा भोयावेज्जा वा विउलं जीवियारिहं
पीइदाणं दलएज्जा पुत्ताणुपुत्तियं वित्ति कप्पेज्जा२ जत्थेव धम्मायरिय
पासिज्जा तत्थेव वंदेज्जा णमंसेज्जा सक्कारेज्जा सम्माणेज्जा कल्लाणं मगलं
देवय चेइय पज्जुवासेज्जा फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं
पडिलाभेज्जा पाडिहारिएणं पीढफलगसिज्जासंथारएणं उवनि
मते३ । एवं जाणासि तहावि णं तुमं मम वाम वामेणं जाव वट्ठि-
त्ता ममं एयमट्ठं अक्खामित्ता जेणेव सेयविया णयरी तेणेव पहा
रत्थ गमणाए ॥ सू० १५६ ॥

छाया-ततः खलु केशीकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवम् अवादीन्-
जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! कति आचार्याः प्रज्ञप्ताः १, हन्त ! जानामि त्रय

“तएणं केसी कुमारसमणे” इत्यादि ।

सुत्रार्थ—“तएण” इसके बाद “केसी कुमारसमणे” केशीकुमारश्रमणने
“पएसिं” रायं एवं वयासी” प्रदेशी राजा से ऐसा कहा “जाणासि णं तुमं
पएसी ? कइ आयरिया पणत्ता—” हे प्रदेशिन्-! तुम जानते हो कितने
आचार्य कहे गये हैं-? प्रदेशीने कहा—“हंता ? जाणामि-तओ आ रिया

‘तएणं केसीकुमारसमणे’ इत्यादि ।

सुत्रार्थ—‘तएणं’ त्थार पछी ‘केसी कुमारसमणे’ केशी कुमार श्रमणे ‘पएसिं
रायं एवं वयासी’ प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कइ ‘जाणासि णं तुमं पएसी ! कइ
आयरिया पणत्ता’ हे प्रदेशिन् त्तमे न्णो छे के आचार्यो केटवा प्रधारना कडे-
वाय छे ? प्रदेशीने कइ-‘हंता ? जाणामि-तओ आयरिया पणत्ता’ छे लहंत ।

आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कलाऽऽचार्यः १, शिल्पाऽऽचार्यः २, धर्माऽऽचार्यः ३ । जानासि खलु त्वं प्रदेशिन् ! तेषां त्रिणां कस्य का विनयप्रसिपत्तिः प्रयोक्तव्या ? हन्त ! जनामि-कलाऽऽचार्यस्य शिल्पाऽऽचार्यस्य उपलेपनं संमार्जनं वा कुर्यात्, पुरतः पुष्पाणि वा आनयेत् मार्जयेत् माडयेत् भोजयेत् वा विपुलं जीविताहं प्रीतिदानं दद्यात् पौत्रानुपुत्रिकीं वृत्तिं वरदयेत् २ । यत्रैव धर्माऽऽचार्यं पश्येत्

पणत्ता-” हां भदन्त-! जानता हू-तीन आचार्य कहे गये हैं । “तं जहा-कलायारिए-सिप्पायारिए-धम्मायारिए” जो इस प्रकार से हैं-कलाचार्य-१ शिल्पा-चार्य-२ और तीसरा धर्माचार्य । ‘जानामि ण तुमं पएसी-” तेसिं तिण्हं आरिचाणं कस्स का विणघपडिवत्ती पउंजियच्चा-” हे प्रदेशिन्-! तुम जानते हो, इन तीन आचार्यों में किस आचार्यका कैसा विनय प्रकार करने को कहा गया है-! प्रदेशीने कहा-”हंता ? जानामि हां भदन्त ३ जानता हूं कला-यारियस्स सिप्पायारियस्स उवलेवणं समज्जण वा करेज्जा पुरओ पुष्पाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा भोयाविज्जा वा विउलं जीवियारिहं पीइदाण दलएज्जा पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेज्जा-” कलाचार्य और-शिल्पाचार्य के शरीर में तेल वा मदन करना, उन्हें स्नान कराना, तथा-उनके समक्ष पुष्पों-माला र भेटके रूप में रखना, पुष्पमाला आदिसे उन्हें अलङ्कृत करना भोजन कराना उनकी आजीविका के योग्य सहर्ष प्रीतिदान देना वस्त्रादि प्रदान करना, एवं-पुत्र

जानासिं छुं-त्रयु आचार्यो कहेवाय छि “तं जहा-कलायारिए सिप्पायारिए धम्मायारिए” ते आ प्रमाणे छि-कलाचार्य, १ शिल्पाचार्य २ अने धर्माचार्य ३, “ जानासि ण तुमं पएसी तेसिं तिण्हं आरिचाणं कस्स का विणघपडिवत्ती, पउंजियच्चा” हे प्रदेशिन् तमे जानो छि हे आ त्रयु आचार्योमा कथा आचार्यने कछि जानते विनय प्रकार करवा कहेवामा आये छि १, प्रदेशीके कहुं-“हंता ? जानामि” हा, भदन्त ? जानासिं छुं. “कलायारियस्स सिप्पायारियस्स उवलेवणं समज्जणं वा करेज्जा पुरओ पुष्पाणि वा आणवेज्जा मंडावेज्जा भोयावेज्जा वा विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलएज्जा पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेज्जा” कलाचार्य अने शिल्पाचार्यना शरीरमां तेलनी मालीश करवी, तेमने स्नान करावपुं तेमने तेमनी सामे पुष्पानी लेट भूकवी, पुष्पमाणा वगेथी तेमने अलङ्कृत करवा लेज्जन करावपुं, तेमनी आजीविका माटे योग्य सहर्ष प्रीतिदान आपुं अने पुत्र-पौत्र वगेरेना लशु-पोषणु योग्य आजीविकानी व्यवस्था

तत्रैव चन्देत नमस्येत सत्कुर्यात् सम्मानयेत् कल्याणं मङ्गलं देवतं चैत्य पशुपा-
सीत, प्रासुकैषणीयेन अशन पान खादिमस्वादिमेन प्रतिलम्भयेत्, प्रातिहारिकेण
पीठफलकशय्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयेत्, एवं च तावत् त्वं प्रदेशिन ! एव जानासि
तथापि खलु त्व मम वाम वामेन यावद् वर्तित्वा मम एतमर्थम् अक्षामि त्वा
यत्रैव श्वेतविका नगरी तत्रैव प्राधारयत् गमनाय । ॥ सू० १५६ ॥

पौत्रादि के निर्वाह योग्य आजीविका लगा देना. इस प्रकार से यह कलाचार्य
७२ —प्रकार की कलाओं को सिखानेवालों की, और—शिल्पाचार्य विज्ञान
सिखानेवालों का विनयप्रतिपत्ति है। “जत्थेव धम्मायरिय पासिज्जा, तत्थेव
वंदेज्जा, णमंसेज्जा, सक्कारेज्जा, सम्माणेज्जा, कल्लाणं—मंगलं—देवयं चेइयं पज्जुवासे
ज्जा—’ तथा—धर्माचार्य की विनय प्रतिपत्ति इस प्रकारसे है—जहां पर भी
धर्माचार्य को देखलिया जावे, वही पर उनकी वन्दना करना, नमस्कार करना,
सत्कार करना, सम्मान करना. कल्याण—मङ्गल—देवस्वरूप उन चैत्य ज्ञानदायक की
पर्युपासना करना, तथा—“फासुएसणिज्जेण असण—पाण—खाइम—साइमेण पडि-
लाभेज्जा, पाडिहारिणं पीठ—फलक—सिज्जा संथारएणं उवनिमंतेज्जा—” प्रासुक
एषणीय अशन पान खादिम स्वादिम रूप चारां प्रकारके आहार से उन्हें प्रति
लाभित करना, पडिहारिपीठफलक शय्या संस्तारक को ग्रहण करने के लिये
उनसे प्रार्थना करना—इस प्रकार की यह धर्माचार्य की विनयप्रतिपत्ति है—
“एव ताव तुम पएसी—? एव जाणासि तहाविण तुमं मम वामं वामेण

करवी. आ प्रभाणु आ कलाचार्य के लिये ७२ प्रकारनी कलाओंतु शिक्षणु आपे छे
अने शिल्पाचार्य-विज्ञानतु शिक्षणु आपनारनी विनयप्रतिपत्ति छे “जत्थेव धम्माय-
रियं पासिज्जा, तत्थेव वंदेज्जा, णमंसेज्जा सक्कारेज्जा, सम्माणेज्जा, कल्लाण
मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा” तेभञ्ज धर्माचार्यनी विनयप्रतिपत्ति आ
प्रभाणु छे—तथा धर्माचार्य देणाय के तस्सत्तया तेभने वन्दन करवा, नमस्कार करवा
सत्कार करवो, सम्मान करवु, कल्याण-मंगल देवस्वरूप ते ज्ञानदायकनी पर्युपासना
करवी तेभञ्ज “फासुएसणिज्जेण असणपाणखाइमसाइमेण पडिलाभेज्जा,
पाडिहारिणं पीठफलकसिज्जा संथारएण उवनिमंतेज्जा” प्रासुक एषणीय अशन-
पान खादिम स्वादिम रूप चार प्रकारना आहारथी तेभने प्रतिलाभित करवा, सम-
र्षणीय पीठफलक, शय्यासंस्तार ने ग्रहण करवा भाटे तेभने विनती करवी उ, आ
जतनी आ धर्माचार्यनी विनय प्रतिपत्ति छे “एवं ताव तुम पएसी? एव जा-
णासि तहाविण तुमं मम वामं वामेण जाव वट्ठित्ता मम एवमट्ट अक्खामित्ता जेणेव
सेयविया णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए” छे प्रदेशिन ! ज्यारे तमे आ प्रभाणु

टीका—“तण् णं केसीकुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशाकुमारश्रमणः प्रदेशिनं राजानम् एवमवादीत्—हे प्रदेशिन् ! त्वं जानासि यत् कति—कियन्त आचार्याः प्रज्ञप्ताः ? । इति ग्रन्थे प्रदेशा प्राह हन्त ! जानामि, यत् त्रयः—त्रिमं-ख्यकाः आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कलाऽऽचार्यः—द्वासप्तति प्रकारकलाशिक्षकः ? , शिल्पाऽऽचार्यः—विज्ञानशिक्षकः २, धर्माऽऽचार्यः—धर्मोपदेशकः ३ । पुनः केशी पृच्छति—हे प्रदेशिन् ! त्वं जानासि खलु यत् तेषाम्—अनन्तरोक्तानां त्रयाणामा-चार्याणां मध्ये कस्याऽऽचार्यस्य का—कीदृशा ? विनयप्रतिपत्तिः—विनयप्रकारः प्रयोक्तव्या कर्तव्या ? । हन्त ! जानामि, तत्र कलाऽऽचार्यस्य शिल्पाऽऽचार्यस्य च उपलेपनं तैलाभ्यङ्गः, तथा—संमज्जनं—स्नपनं कुर्यात्—स्नपये दित्यर्थः, तथा पुरतः—तयोऽग्रे, पुष्पाणि वा समानयेत्, मण्डयेत्—पुष्पमाल्यादिनाऽऽलङ्कुर्यात्, भोजयेत्—भोजनं कारयेत्, विपुलं—बहु जीवितार्हं—जीवनयोग्यं प्रीतिदानं—सहर्षं वस्त्रादिदानं दद्यात्, तथा पुत्रानुपौत्रिकीं—पुत्रपौत्रादि निर्वाहयोग्यां वृत्तिं जीविकां कल्पयेत्—सम्पादयेत् २ । इति कलाऽऽचार्य—शिल्पाऽऽचार्ययोर्विनयप्रतिपत्तिमुक्त्वा धर्माऽऽचार्यस्य तां कथयितुं प्रक्रमते—यत्रैव—यस्मिन्नेव स्थले धर्माऽऽचार्यं पश्येत्

जाव वद्वित्ता मम एयमष्टं अक्खाभित्ता जेणेव सेयविया णयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए—” हे प्रदेशिन् ३ जव तुम इस प्रकार से विनयप्रतिपत्ति का जानते हो तब भी तुमने मेरे प्रति प्रतिकूलरूप व्यवहार से यावत् प्रवृत्ति करके उस प्रतिकूल व्यवहार जनित अपराध को क्षमा कराये बिना जहाँश्वेतविका नगरीथी वहीं पर जानेका निश्चय किया ॥ सू० १५६ ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है, “कल्लाणं—मंगलं—देवयं—चेइयं पज्जुवासेज्जा—” इन पदों की व्याख्या चतुर्थ सूत्रमें की जा चुकी है । “वामं वामेणं—” इस यावत् पदसे—“दण्ड दण्डेन—प्रतिकूल प्रतिकूलेन—प्रतिलोम प्रतिलोमेन—विपर्यासं विपर्यासेन” इन पदों का संग्रह हुवा है, इन पदोंकी व्याख्या पीछे की जा चुकी है ॥ सू० १५६ ॥

विनय प्रतिपत्ति ने जणुो छे छता ये तमे ये भारा प्रत्ये प्रतिकूल रूप व्यवहारथी यावत् प्रवृत्ति करीने प्रतिकूल व्यवहार जनित अपराधने क्षमा कराव्या वगर न्यां श्वेताणिका नगरी छे त्या जवानो तमे निश्चय कर्यो ॥ सू० १५६ ॥

टीकार्थ—स्पष्ट छे “कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा” आ पढोनी व्याख्या योथा सूत्रमां आवी छे. “वामं वामेणं” मां आवेल यावत् पदथी “दण्ड दण्डेन प्रतिकूलप्रतिकूलेन प्रतिलोम प्रतिलोमेन विपर्यासं विपर्यासेन” आ पढोनी स अडु थयो छे. आ पढोनी व्याख्या पढेलां करवामां आवी छे ॥ १५६ ॥

तत्रैव-तस्मिन्नेव स्थले वन्देत् नमस्येत् सत्कुर्यात् सन्मानयेत् कल्याणं मङ्गलं दैवतं
 चैत्यं पर्युपासीत्” एतेषां व्याख्या चतुर्थसूत्रतो बोध्या, तथा तं धर्माचार्यं प्रासुकै
 पर्णीयेन-अचित्तकल्पनीयेन अशन-पान-खादिम-खादिमेन-अशनादि चतुर्विंशधाहारेण
 प्रतिलभ्येत्-चतुर्विधाहारं तस्मै दद्यादिति भावः, तथा तं प्रातिहारिकेण-पुनः
 समर्पणीयेन पीठफलकशय्यासंस्तारकेण उपनिमन्त्रयेत्-तद्ग्रहणे प्रार्थयेत् ३ । एवं
 तावत् प्रथमं प्रदेशिन् ! त मेवम्-अनन्तरोक्तप्रकारां विनयरूपां प्रतिपत्तिं जानासि,
 तथाऽपि खलु त्वं मम वामवामेन-प्रतिकूलतरेण व्यवहारेण यावत्-यावत्पदेन
 “दण्डदण्डेन. प्रतिकूलप्रतिकूलेन, प्रतिलोम-प्रतिलोमेन विपर्यासविपर्यासेन”
 इत्येषां पदानां सङ्ग्रहो बोध्यः, व्याख्याऽपि तत्रैव विलोकनीया, वर्तित्वा-उक्तव्य-
 वहारेण युक्तो भूत्वा मम एत-मया सह प्रतिकूलव्यवहारजनितम् अर्थम्-
 अपराधम् अक्षामयित्वा यत्रैव श्वेताविका नगरी तत्रैव गमनाय प्राधारयत्-
 निश्चय कृतवान् । ॥ सू० १५६ ॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया केसि कुमारसमणं एवं वयासी
 एवं खलु भंते ! मम एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-
 एवं खलु अहं देवाणुप्पियाणं वामं वामेणं जाव वट्टिए तं सेयं
 खलु मे कल्लं पाउप्पभाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमल्लुम्मिलिय-
 म्मि अहापंडुरे पभाए रत्तासोगकिंसुय-सुयमुह-गुंजद्ध-रागसरिसे
 कमलागरनलिणिसंडबोहए उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे
 तेयसा जलंते अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पिए वंदि-
 त्तए नमंसित्तए एयमट्टं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएणं खामित्तएत्ति
 कट्ठु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

तए णं से पएसी राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव
 तेयसा जलंते हट्टुट्टु जाव हियए जहेव कूणिए । तहेव निग्गच्छइ,
 अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे पचविहेणं अभिगमेणं वंदइ नमं-
 सइ, एयमट्टं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएणं खामेइ ॥सू० १५७॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा केशिनं कुमारश्रमणमेवमवादीत्—ए।
खलु भदन्त ! मम एतद्रूपः आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत—एवं खलु अहं देवा-
नुप्रियाणां वामवामेन यावत् वर्तितः, तत्र श्रेयः खलु मे कलं प्रादुर्भ्रमातायां
रजन्यां फुल्लोत्पलकमलकमलोन्मीलिते अथाऽऽपाण्डुरे प्रभाते रक्ताशोक-किंशुक-
शुकमुख-गुञ्जार्द्धरागसदृशे कमलाकरनलिनीपण्ड-बोधके उत्थिते सूरे सहस्ररश्मौ
दिनकरे तेजसा ज्वलति अन्तःपुरपरिवारैः सार्द्धं संपरिवृतो देवानुप्रियान् वन्दि-

मूलार्थ—“तएणं से पएसी राया—” इत्यादि।

“तएणं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—” ३५९

इसके बाद—प्रदेशी राजाने केशी कुमारसमण से सा कहा—“एवं खलु भंते !—
मम एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था” हे भदन्त—३ मुझे ऐसा
आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ. “एवं खलु अहं देवाणुप्पियाणं वामं
वामेण जाव वट्टिए. तं सेयं खलु मे कलं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमल-
कामलुम्मिलियम्मि अहा पाण्डुरे पभायाए रत्ता साग िसुय—सुयमुह गुंजद्धराग-
सरिसे, कमलागरनलिणिसंडबोहए—” मैंने आप देवानुप्रिय के साथ प्रति-
कूल रूप से यावत् व्यवहार किया है, अतः—मुझे यही श्रेयस्कर है कि—मैं
कल जब रजनी प्रभातयुक्त हो जावेगी, अर्थात्—रात्रि समाप्त हो जावेगी.
और कमल तथा—हरिणविशेषके नेत्र ये दोनों विकसित हो जावेगे, अर्थात्
कमल जब खिल जावेगा. और—हरिणविशेष की आंखे शयन करलेने के बाद
खुल जावेगी. तथा—प्रभातका रङ्ग जब पीत धवल हो जावेगा. रक्ताशोक-किंशुक-

‘तएणं से पएसी राया’ इत्यादि।

सूत्रार्थ—‘तएणं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी ॥१५७॥
त्यार पछी प्रदेशी राजाने केशीकुमार श्रमणने आ प्रभाते कहु ‘एव खलु भंते !
मम एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था’ हे भदन्त ! अवे। आध्यात्मिक
यावत् संकल्प उत्पन्न थयो. “एवं खलु अहं देवाणुप्पियाण वामं वामेण जाव
वट्टिए तं सेयं खलु मे कलं पाउप्पभाया ए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकमल-
लुम्मिलियम्मि अहापाण्डुरे पभाए रत्तासोगकिंसुयसुयमुहगुंजद्धरागसरिसे
कमलागर नलिणिसंडबोह ए” मे आप देवानुप्रियनी साथे प्रतिद्वन्द्वीयावत्
व्यवहार कर्यो छे. तेथी भारा भाटे अवे वात श्रेयस्कर छे के हुं आवती कवे
अथारे रात्रि प्रभात युक्त थयं अथे, अथे के रात्रि पूरी थयं अथे, अने कमण
तथा हरिण विशेषना नेत्रो विकसित थयं अथे, अथे के कमण अथारे विकसित
थयं अथे अने हरिण विशेषनी आंखो अनिद्रा त्याग कर्यो आह उघडी अथे तेमअ
प्रभातने रंग अथारे पीत धवल (पीणो अने सङ्केह) थयं अथे, रक्ताशोक, किशुक

त्वा नमस्यित्वा एतमर्थं भूयो भूयः सख्यं विनयेन क्षामयितुम्, इति कृत्वा यामेव दिशं प्रादुर्भूतः, तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ततःखलु स प्रदेशी राजा कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत् तेजसा जलति हृष्टतुष्ट यावद् हृदयः ग्रथैव कूणिकः तथैव निर्गच्छति अन्तःपुरपरि-

पलाश-शुकमुख एवं—गुञ्जा-रुत्ती के अघस्तन का अर्धभाग जैसा लाल. तथा—सरो-वरो में कमलिनी कुल का विकाशक, “उद्वियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते—” ऐसा सहस्रकिरणोंवाला एवं—दिनकर्ता सूर्य जब अपने तेज से प्रज्वलित होता हुआ आकाश में उदित हो जावेगा, तब—“अते उर परियाल-सद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पिए वंदित्तए नमंसित्तए एयमद्ध भुज्जो—२ सम्मं विण-एणं—खामित्तए त्ति कट्ठुं जामेव दिसिं पाउब्भूए. तामेव दिसिं पडिगए” मैं अन्तःपुर परिवार से युक्त होकर आप देवानुग्रिय की वन्दना—नमस्कार और—पूर्वोक्त अपराध रूप अर्थ को विनय के साथ प्रशस्त नम्र भावसे बार—२ क्षमापना के लिये आऊंगा. इस प्रकार केशी स्वामी से निवेदन कर वह जिस दिशा से आया था—उसी दिशा की ओर चला गया. “तएणं से पएसी राया कल्लं पाउप्प-भायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते—” इसके बाद दूसरे दिन जब रजनी रात्री प्रभातप्राय-समाप्त हो चुकी और—१ भात हो गया यावत् सूर्य अपने तेज से देदीप्यमान हो उठा—तब वह—“हृष्ट तुष्ट जाव हियए जहेव कूणिए तहेव निग्गच्छइ—” हृष्ट-तुष्ट यावत् हृदयवाला होकर कूणिक नरेश की तरह अपने स्थान से निकला

पलाश, शुकमुख અને गुंजना नीचेना अर्धा भाग जेवो लाल तेमज सरोवरोभां कमलिनी कुलने वीनाशक ‘उद्वियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते’ जेवा सहस्र कीरणोवाणे अने हीनकर्ता सूर्य ज्यारे पोताना तेजथी प्रज्वलीत थते। आकाशभा उदय पामथे, त्यारे अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे देवाणुप्पिए वंदित्तए नमं सित्तए एयमद्ध भुज्जो २ सम्मं विणएणं खामित्तए त्ति कट्ठुं जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए” त्यारे अंतःपुर परिवारनी साथे आप देवानु-ग्रियने वदन अने नमस्कार करवा भाटे अने पूर्वोक्त अपराधरूप अर्थने सविनय प्रशस्त नम्र भावथी चारंवार क्षमापना भाटे आवीश. आ प्रभाणे केशीकुमारने विनंती करीने ते जे दिशा तरइथी आये। उते तेज दिशा तरइ जते रह्यो. “तएण से पएसी राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते” त्यारषधी पीण हिवसे ज्यारे रात्री पुरी थथ अने प्रभात थयुं यावत् सूर्य पोताना तेजथी प्रकाशित थथ जये। त्यारे ते “हृष्टतुष्ट जाव हियए जहेव कूणिए तहेव निग्गच्छइ” हृष्ट तुष्ट यावत् हृदयवाणे थथने कुणिक राजनी जेभ पोताना स्थानथी

वारैः सार्द्धं संपरिवृतः पञ्चविधेन अभिगमेन वन्दते नमस्यति, एतमर्थं भृयोभृयः
सम्यग् विनयेन क्षामयति ॥ सू० १५७ ॥

टीका—“तए णं पएसी राया” इत्यादि—ततः खलु स प्रदेशी राजा केजिनं
कुमारश्रमणम्, एवमवादात्—हे भदन्त ! ए।ं खलु मम एतद्रूपः—अनुपदं वक्ष्यमाण-
स्वरूपः आध्यात्मिकः—आत्मगतः क्षमापनारूपोर्थोर्ङ्कुर इव, यावत्-या-त्यदेन “चि-
न्तितः, कल्पितः, प्रार्थितः, मनोगतः, सकल्पः” इत्येषां पदानां सङ्गो हो बोध्यः, तत्र
“अंतेउरपरियालसाद्धिं संपरिवुडे पंचविहेणं अभिगमेणं वंदइ-नमंसइ—” निकल
ते ही वह अन्तःपुर परिवार से परिवेष्टित हो गया. इस तरह से प्रदेशी राजाने
पांच प्रकारके अभिगम से केशीकुमार श्रमण की वन्दनाकी-उनकी स्तुति की.
“एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो-सम्मं विणएणं खामेइ—” स्तुति नमस्कार करके फिर उसने
अपने प्रतिकूल आचरण से जनित अपराध की वार-र अच्छी तरह से विनम्र
भावसे युक्त हो कर क्षमा कराई, अर्थात्-क्षमा मांगी—

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने केशीकुमारश्रमण से इस प्रकार कहा-हे भदन्त !
अब मुझे इस प्रकार का यह आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुआ. कि-मैं अपने
प्रतिकूल आचरण से जनित अपराध की आप से वार-वार क्षमा करावे, यहविचार
आत्मगत होने से पहले तो अर्ङ्कुर की तरह उत्पन्न हुआ. अतः—उसे आध्या-
त्मिक रूपसे प्रकट किया गया है, बाद में यावत् पदसे चिन्तितः-कल्पितः—
प्रार्थितः-मनोगतः इन विशेषणों वाला हुआ है कि—वह विचार स्मरणरूप बन

नीकण्यो. “अंतेउरपरियालसाद्धिं संपरिवुडे पंचविहेणं अभिगमेणं वंदइ-
नमंसइ” नीकणतां ञ ते पोताना अंतःपुर परिवारथी वी टणाछ गयो. आ
प्रमाणे तैयार थयेला प्रदेशी राज्ञे केशी कुमारश्रमणुनी पासे ञधने पात्र प्रकारना
अभिगमथी केशी कुमारश्रमणुनी वन्दना करी तेमनी रतुति करी, नमस्कार कया.
“एयमट्ठं भुज्जो र सम्मं विणएणं खामेइ” स्तुति तेमञ्च नमस्कार करीने पछी
तेणे पोताना प्रतिकूल आचरणुथी थयेला अपराधनी वारवार सारी रीते विनम्र
भावथी युक्त थधने क्षमा मांगी.

टीकार्थ—प्रदेशी राज्ञे केशीकुमारश्रमणुने आ प्रमाणे कहुं—हे भदन्त ! हुवे
मने आ जतने आध्यात्मिक विचार उत्पन्न थये छे के हुं मारा प्रतिकूल आचर-
णुथी थयेला अपराध गदल आपथी पासेथी वारवार क्षमा मांगुं. आ विचार
आत्मगत होवाथी पडेलां तो अर्ङ्कुरनी जेभ उत्पन्न थये. जेथी तेने आध्यात्मिक
इये प्रकट करवाभां आण्यो छे. त्पार पछी यावत् पदथी “चिन्तितः, कल्पितः,
प्रार्थितः मनोगतः”, आ विशेषणुथी युक्त थये छे, विचारने जे चिन्तित पदथी

चिन्तितः-पुनः पुनः स्मरणरूपो विचारो द्विपत्रित इव, ततः कल्पितः स एव व्यवस्थायुक्तः 'क्षामयेगम्ः' इति परिणते विचारः पल्लवित इव, स एव प्रार्थितः- इष्टरूपेण स्वीकृतः पुष्पित इव, मनोगतः म-सि दृढरूपेण निश्चयः 'इत्थमेव मया कर्तव्यम्' इति विचारः फलित इव समुदपद्यत-समुत्पन्नः-एवं खलु अहं देवानुप्रियाणां-भवतां वामत्रामेन यावत्-यावत्पदेन 'दण्डदण्डेन प्रतिकूलप्रति-कूलेन प्रलिलोम प्रतिलोमेन-परिर्घासद्विपरिर्घासेन' इत्येषां सङ्गो हो बोध्यः, एषां व्याख्या पूर्व गता, वर्तितः-प्रवृत्तः तत्-तस्मात्कारणात् मे मम श्रेः-प्रशस्तं यत्

गया. अर्थात्-मुझे अपने अपराध की आपसे क्षमा कराना है. ऐसी स्मृति मुझे बार-बार आने लगी. इसलिये-यह विचार द्विपत्रित अङ्कुर की तरह प्रथम अवस्था की अपेक्षा कुछ विशेष पुष्ट होने से चिन्तित प्रकट किया गया है। तथा वही विचार जब व्यवस्थायुक्त हो गया. कि मुझे अवश्य ही इस रूपसे क्षमा कराना है तो द्वितीय अवस्थाकी अपेक्षा और-अधिक पुष्ट हो जाने के कारण यह पल्लवित हुवे अङ्कुर की तरह कल्पित पद से विशेषित किया गया है. तथा जब वही विचार इष्ट रूप से स्वीकृत कर लिया गया. तो वह पुष्पित हुवे अङ्कुर की तरह हो गया. और जब वही विचार मनमें दृढ रूपसे निश्चय की स्थिति में परिणत हो गया के ऐसा ही मुझे करना है. तो फलित हुवे अङ्कुर की तरह वह हो गया. क्या विचार उत्पन्न हुवा इसी बात को वह अब प्रकट करता है कि हे भदन्त-! मैंने आप देवानुप्रिय के साथ बहुत अधिक प्रतिकूलरूपसे. यावत् दण्ड दण्डरूपसे. अतिशय प्रतिकूलरूपसे व्यवहार किया है.

विशेषित करवाभा आये छे तेनु कारणु आ छे के ते विचार स्मरणरूप थछ गये। हतो. अटले के मने मारा अपराधनी आपश्रीना यासेथी क्षमा कराववी छे, अथी स्मृति बार-बार आववा लागी, अथी आ विचार द्वि पत्रित अङ्कुरनी जेम प्रथम अवस्था करता कंठक विशेष पुष्ट होवाथी चिन्तित रूपमा-प्रकट करवाभा आये छे. तथा तेज विचार न्यारे व्यवस्थायुक्त थछ गये-के मारे शोक्कस आविने क्षमा याचना करवी छे तो द्वितीय अवस्था करता वधारे ते विचार पुष्ट थछ नवाथी अे पल्लवित थयेला अङ्कुरनी जेम कल्पित पदथी विशेषित करवाभा आये छे तेमज न्यारे ते न विचार इष्ट रूपथी स्वीकृत थछ गये। तो ते पुष्पित थयेला अङ्कुरनी जेम थछ गये। अने न्यारे ते विचार मनमा दृढरूपथी निश्चयनी स्थितिमा परिणत थछ गये। के अेलुं न मारे करवु छे तो इक्षित थयेला अङ्कुरनी जेम ते थछ गये। शो विचार उत्पन्न थये? अेज वातने हुवे दृष्ट करतां कहे छे के-हे संदंत! मे आप देवानुप्रियनी साथे बहुत प्रतीकृण रूपथी यावत् दंड दंड रूपथी-अतिशय प्रतीकृणरूपथी अतिशय प्रतिकूलरूपथी अने अतिशय विपरीत रूपथी व्यवहार कर्यो छे, अथी मारा

कल्प-श्वः प्रादुष्प्रभातायां प्रकाशप्रकाशितायाम्, रजन्यां रात्रौ फुल्लोत्पलकमलकोम-
लोन्मीलिते—फुल्लं विकसितं यद् उत्पलं—कमलं, तच्च कमलं च हरिणविशेषश्चेति
फुल्लोत्पलकमलौ, तयोर्यत् कोमलं मृदु उन्मीलनं तत्र फुल्लोत्पलपत्राणां विकसनं
हरिणनयनयोः शब्दानन्तरं पुटमोचनम् च यस्मिन् तत्र फुल्लोत्पलकमलकोमलो-
न्मीलितं तस्मिन्, अथ प्रभातानन्तरम् आ-समन्तात् पाण्डुरे पीतधवलै प्रभाते
प्रातःकाले रक्ताशोककिंशुक शुक्रमुख गुजार्द्धरागसदृशे तत्र रक्तांशोकः रक्तवर्णी
शोकः, किंशुकः पलाशः, शुक्रमुखं, गुजार्द्धरागः गुजायाअधस्तनार्द्धव्य रागः, एतै-
रक्तवर्णैः सदृशे तुल्ये, अस्य “सूरे” इति परेण सम्बन्धः, एतन्नेत्रनानामपि,
कमलाकरनलिनीपण्डबोधके सरोवरगतकमलिनीकुलविक्राशके सूरे सूरे उच्यते

इसलिये मेरा कल्याण अब इसी में है कि मैं दूसरे दिन जबकि रात्रि प्रभात के
रूप में परिणत हो जावे. अर्थात् प्रातःकाल हा जाय. और इसमें कमल उत्पल
एवं हरिण विशेष की आंखे निद्राविगम के बाद प्रफुल्लित हो जाय कमल
विकसित हो जाय एवं-हरिणों के नेत्र अच्छी तरह से खुल जाय तथा वह
प्रभात समन्तात् पीत धवल प्रकाशवाला हो जावे, एवं सहस्रकिरणों से सम्पन्न
तथा दिवसविधायक सूर्य जो कि कमलाकर सरोवर में नलिनी कुलकाबोधक-वि-
काश करनेवाला होता है जब रक्ताशोक किंशुक शुक्रमुख और गुजार्द्ध गुञ्जा के सदृश
उदित हो जावे तथा उसका प्रकाश अच्छी तरह से फैल जावे तब मैं अन्तःपुर
परिजनों से परिवृत्त होकर आप देवानुप्रिय, की वन्दना के लिये नमस्कार के
लिये आज और-अपने पूर्वोक्त अपराधरूप अर्थकी आपसे वार २ विनम्र मात्र
युक्त हो कर क्षमा मांगू, इस प्रकार से वह प्रदेशी राजा केशीश्रमणकुमार के प्रति
निवेदन कर अपने स्थान पर गया. । दूसरे दिन जब पूर्वोक्तरूप से प्रभात

भाटे हुवे जेण श्रेयस्कर छे के हुं आवती काले ज्यारे रात्रे प्रभातमा परिणत थई
जय जेटले के सवार थई जय, कमल उत्पल अने हरिण विशेषेनी आंखो निद्रा
रहित थईने प्रफुल्लित थई जाय. कमलो विकसित थई जाय अने हरिणोना नेत्रो
सारी, रीते उघडी जाय तथा प्रभात समन्तात् पीतधवल प्रकाशयुक्त थई जाय
अने सहस्र किरणोथी सम्पन्न तेमज दिवस विधायक सूर्य के जे कमलाकर सरोवर
मा नलिनी कुलने विकसित करनार छे. रक्ताशोक, किंशुक, शुक्र मुख अने गुजार्द्धनी
सदृश ते उदित थई जाय तेमज तेना प्रकाश सारी रीते प्रसरी जाय, त्यारे हु
अन्तःपुर परिजनोंथी परिवृत्त थईने आप देवानुप्रियने वंदन तेमज नमस्कार करवा
भाटे अहीं आवु. अने पूर्वोक्त अपराध अदल आपश्री पासेथी विनम्र थईने वार वार
क्षमा याचना कइं. आ प्रभाते ते प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणने विनंती करीने स्वस्थाने
गयो थीजा दिवसे ज्यारे पूर्वोक्तइपथी प्रभात पूर्णइपे विकसित थई गयुं त्यारे ते

उदिते सति, पुनः कीदृशे तस्मिन् ? सहस्ररश्मौ-किरणसहस्रसम्पन्ने दिनकरे-
दिवसकरणशीले तेजसा-दीप्त्या ज्वलति-देदीप्यमाने सति, अन्तःपुरपरिवारैः
राज्ञीपरिवारैः संपरिवृतः-युक्तः सन् अहं देवानुप्रियान् वन्दितुं नमस्यितुम्,
एतमर्थं-पूर्वोक्तापराधरूपमथ भूयोभूयः-पुनः पुनः सम्यग् विनयेन-प्रशस्तनम्रभावेन
क्षामयितुम् । इतिकृत्वा-केशिस्वामिने इति निवेद्य यामेव दिशं समाश्रित्य प्रादुर्भूतः
तामेव दिशं प्रतिगतः ।

ततः खलु स प्रदेशी राजा कलयं-श्वः प्रादुष्प्रभाताद्यो रजन्यां यावत्-
यावत्पदेन अनन्तरप्रोक्तोऽरितनपदानां फुल्लोत्पलादीनां सङ्गो हो बोध्यः, तदर्थश्च
तत्रैव ज्ञेयः । तेजसा ज्वलति दृष्टतुष्ट यावत्-यावत्पदेन चित्तानन्दितः, परम-
सौम स्थितः, हर्षवश विसर्पद्भृदः. इत्येतत्पदसङ्गो हो बोध्यः । यथा-येन प्रकारेण
कूणिकः-तन्नामा श्रेणिकराजपुत्र औपपातिकसूत्रे वर्णितो निर्गतः, तथैव-तेनैव
प्रकारेण निर्गच्छति-स्वभवतान्निःसरति, तन्निर्गमनवर्णनमौपपातिकसूत्रतो
बोध्यमिति तात्पर्यम् । निर्गत्य अन्तःपुरपरिवारैः संपरिवृतः-वेष्टितः पञ्चविधेन-
पञ्चप्रकारेण सूचितानां द्रव्याणां व्युत्सर्जनेन १, अचित्तानां द्रव्याणामव्युत्सर्जनेन २,

काल का सूर्य उदित हो गया. तब वह दृष्टतुष्ट यावत् चित्तानन्दित हुआ. परमसौम-
यित हुआ हर्षवश विसर्पत् हृदयवाला (पद्म आनन्दयुक्त हुआ) औपपातिकसूत्र में वर्णित
श्रेणिक राजपुत्र कूणिक नरेशकी तरह अपने भवन से निकला. कूणिक नरेश के निक-
लने का वर्णन औपपातिक सूत्र में किया गया है । निकलते ही वह अन्तःपुर परि-
वार जनो से परिवेष्टित कर लिया गया. और पांच प्रकार के अभिगम से
युक्त हो कर वह प्रदेशी राजा केशीकुमारश्रमणकी वन्दना आदि करने के
लिये चल दिया. वहां पहुंचकर उसने उनका वन्दना की नमस्कार किया. और
स्वकृत तिकूल आचरणजनित अपराधा की बड़े विनम्रभावयुक्त होकर क्षमा
मांगी. । पांच प्रकारके अभिगम इस प्रकारसे ? सचित्तद्रव्योंका परित्यागकर

दृष्ट तुष्ट यावत् चित्तानन्दित थयो, परमसौमनास्मित थयो, हर्ष विसर्पत् हृदयवाणो
थयो औपपातिकसूत्रमा वर्णित श्रेणिक राजपुत्र कूणिक नरेशनी जेम पोताना भवनथी
ते नीकथ्यो. कूणिक नरेशना नीकणवात्तुं वर्णुन औपपातिक सूत्रमा करवाभा आच्यु
छे अहार नीकणता ज ते अन्तःपुर परिवार जनोथी वी टणाथ गथो-वेराथ गथो अने
पाय प्रकारना अलिगमथी युक्त थधने ते प्रदेशी राजा केशी कुमारश्रमणनी वदना
वगेरे करवाभा माटे नीकणी पडथी त्या पडोंचीने तेणे तेमने वदन अने नमस्कार
कथी अने स्वकृत प्रतिकूल आचरणजनित अपराधा अदल तेणे विनम्रभाव युक्त
थधने क्षमा मागी पाय प्रकारना अलिगमो आ प्रमाणे छे - १, सचित्त द्रव्योने

एकशाटिकोत्तरासङ्गकरणेन३, चक्षुःस्पर्शे अञ्जलिकरणेन४, मनस एकत्वकरणेन५, चेत्येवंरूपेण अभिगमेन-विनयविधिविशेषेण, वन्दते-स्तौति. नमस्यति-नमस्करोति वन्दित्वा नमस्यित्वा च एतमर्थ-प्रतिक्रलाचरणजनितापराधरूपं भूयोभूयः-वारं-वारम् सम्यग् विनयेन-प्रशस्ततरचिनम्रभावेन धामयति-धमां कारयति । ॥सू.१५७॥

मूलम्—तए णं केशी कुमारसमणे पएसिस्स रण्णो सूरिकं-तप्पमुहाणं देवीणं तीसे य महइमहालयाए परिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेइ । तए णं से पएसी राया धम्म सोच्चा निसम्म उट्ठाए उट्ठेइ केशिकुमारसमणं वदइ नसंसइ जेणेव सेयविया नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० १५८ ॥

छाया—ततः खलु केशी कुमारश्रमणः प्रदेशिनो राज्ञः सूर्यकान्ता-प्रमुखानां देवीनां तस्यां च महाऽतिमहालयां परिषदि चातुर्यामं धर्मं परिकथयति । ततः खलु स प्रदेशी राजा धर्मं श्रुत्वा निश्चय उत्थया उत्तिष्ठति केशिकुमार-श्रमणं वन्दते नमस्यति यत्रैव श्वेतविका नगरी तत्रैव प्राधारयद् गमनाय ॥सू.१५८॥

देना, ण अचेत्त द्रव्यां का पदित्याग नही करना, २ एक शाटिका उत्तरा-यङ्ग करना-विना सीये वस्त्रसे उत्तरासङ्ग करना, है-देखते ही हाथ जोड लेना, और-५. मनकी एकाग्रता करना. ॥सू. १५७॥

सूत्र-“तए णं केशीकुमारसमणे-” इत्यादि-॥१५८॥

मूलार्थ-“तए णं” इसकेबाद “केशीकुमारसमणे” केशीकुमारश्रमणने “पएसिस्स रण्णोसूरिकंतप्पमुहाणं देवीणं तीसेय. महइ महालयाए परिसाए-” प्रदेशी राजा के समक्ष एवं उसकी सूर्यकान्ता आदि प्रमुख गवियों के समक्ष उस विशाल परिषदा में “चाउज्जाम धम्मं” अहिंसा-सत्य-अस्तेय, एवं-अपरिग्रह रूप चातुर्याम धर्मका उपदेश दिया. “तए णं से पएसी राया धम्म सोच्चा

परित्याग करवो, २, अचित्त द्रव्योनेो परित्याग नहि करवो, ३ अेक शाटिका उत्तरासङ्ग करवो, ४ वगर सीयेला वस्त्रोथो उत्तरासङ्ग करवो नेतानी साथे ५ हाथ नेडी लेवा अने ५, मननी अेकाग्रता करवी ॥ सू १५७ ॥

सूत्रार्थ-“तए णं केशीकुमारसमणे इत्यादि”

मूलार्थ-“तए णं” त्थार पछी “केशी कुमारसमणे” केशी कुमार श्रमणे “पएसिस्स रण्णो सूरिकंप्प मुहाण देवीण तीसेय महइ महाकयाए परिसाए” प्रदेशी राजनी सामे तेमज तेनी सूर्यकान्ता वगेरे प्रमुख राणीओनी सामे ते विशाल परिषदां “चाउज्जाम धम्मं” अहिंसा, सत्य, अस्तेय अने अपरिग्रहइप चातुर्याम धर्मनेो उपदेश आयेो. “तए णं से पएसी राया धम्मं सोच्चा निसम्म

टीका—“तए णं केशिकुमारसमणे” इत्यादि—ततः खलु केशिकुमार-
श्रमणः प्रदेशिनो राज्ञः सूर्यकान्ता प्रमुखानां देवीनां तस्यां तत्र स्थितायां च
महाऽतिमहालयायाम् अतिबृहत्याम्, परिपदि चातुर्यामम्—अहिंसा-सत्या-ऽमृत्येया-
ऽपरिग्रहैर्विभक्तचतुर्महाव्रतरूपं धर्मं परिकथयति—प्ररूपयति । उपलक्षणाद् द्वादश-
विधं गृहधर्मं परिकथयति ततः खलु स प्रदेशी राजा धर्मम्-अनगारागारधर्मं श्रुत्वा
सामान्तः श्रवणगोचरं कृत्वा निश्चय-विशेषतो हृद्यवधार्य उत्थया-उत्थान-
प्रयासेन उत्तिष्ठति, उत्थाय केशिकुमारश्रमणं वन्दते—स्तौति, नमस्यति-नम-
स्करोति, वन्दित्वा नमस्वित्वा च यत्रैव श्वेतांबिका नगरी तत्रैव गमनाय
पाधारथत्—निश्चतवान् । ॥सू. १५८ ॥

मूलम्—तएणं केसी कुमारसमणे पएसिराय एवं वयासी—मा
णं तुमं पएसी ! पुढ्वि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवि-
ज्जासि, जहा से वणसंडेइ वा णट्टसालाइ वा इक्खुवाडएइ वा
खलवाडएइ वा । कहं णं भंते ! वणसंडे पुढ्वि रमणिज्जे भवि-
त्ता पच्छा अरमणिज्जे भवइ ? पएसी ! जहा णं वणसंडे पत्तिए

निसम्म उट्टाए उट्टेइ—” इसके बाद प्रदेशी राजा धर्म सुन कर और उसे हृदय में
धारणकर अपने आप वहां से उठा—“केशीकुमारसमणं वंदइ नमंसइ—” उठकर
उसने केशीकुमार श्रमण की वन्दना की उन्हें नमस्कार किया, “जेणेव सेयंविया
नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए—” वन्दना-नमस्कार कर फिर वह अपनी नगरी
की ओर चलदिया । टीकार्थ—स्पष्ट है—केशीकुमारश्रमणने चातुर्याम धर्म के उपदेश
और—साथ-साथ १२ प्रकाररूप गृहस्थ धर्म का भी उपदेश दिया, ऐसा कथन
उपलक्षण से जान लेना चाहिये ॥ सू. १५८ ॥

उट्टाए उट्टेइ” त्पार पथी प्रदेशी राजा धर्म साभणीने अने तेने हृदयमा धारण
करीने पोतानी भेणे न त्यांथी उलो थये “केशीकुमारसमणं वंदइ नमंसइ
उलो थधने तेणे केशी कुमारश्रमणुनी वदना करी तेभने नमस्कार कयां. “जेणेव
सेय विया नगरी तेत्रैव पहारेत्थ गमणाए” वदना तेभन नमस्कार करीने पथी
ते पोतानी नगरी तरइ रवाना थध गये।

टीकार्थ—स्पष्ट छेकेशीकुमारश्रमणुने चातुर्याम धर्मने उपदेश अने तेनी साथे
साथे १२ प्रकाररूप गृहधर्मने पणु उपदेश अथिये हुते, अणु कथन उपलक्षणुथी
भाणी लेवुं जेधये. ॥ सू. १५८ ॥

पुष्पिण्ण फलिण्ण हरिण्ण हरियगरेरिज्जमाणे सिरीण्ण अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ, तथा णं वणसंडे रमणिज्जे भवइ, जया णं वणसंडे नो पत्तिण्ण नो पुष्पिण्ण नो फलिण्ण नो हरिण्ण नो हरियगरेरिज्जमाणे णो सिरीण्ण अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ जया णं जुन्ने ज्जडे परिसडिय-पंडुपत्ते सुक्करुक्खे इव मिलायमाणे चिट्ठइ तथा णं वणसंडे अर-मणिज्जे भवइ १। जया णं णट्टसाला वि गिज्जइ वाइज्जइ नच्चि-ज्जइ होसज्जइ रमिज्जइ तथा णं णट्टसाला रमणिज्जा भवइ, जया णं नट्टसाला णो गिज्जइ जाव णो रमिज्जइ, तथा णं णट्टसाला अरमणि-ज्जा भवइ २। जया णं इक्खुवाडे छिज्जइ भिज्जइ पीलिज्जइ खज्जइ पिज्जइ दिज्जइ तथा णं इक्खुवाडे रमणिज्जे भवइ, जया णं इक्खु-वाडे णो छिज्जइ जाव तथा इक्खुवाडे अरमणिज्जे भवइ ३, जया णं खलवाडे उच्छुब्भइ मलिज्जइ खज्जइ दिज्जइ तथा णं खलवाडे रमणिज्जे भवइ, जया णं खलवाडे नो उच्छुब्भइ जाव अरमणिज्जे भवइ ४। से तेण्हणं पएसी! एवं वुच्चइ मा णं तुम पएसी! पुण्णिव रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि जहा वणसंडेइ वा जाव खलवाडेइ वा ॥ सू० १५९ ॥

छाया—ततः खलु केशिकुमारश्रमणः प्रदेशिराजमेवमवादीत्—मा खलु त्वं प्रदेशिन्! पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चाद् अरमणीयो भवेः, यथा स वनषण्ड इति

“तए णं केशीकुमारसमणे—” इत्यादि—॥ सू. १५९ ॥

मूलार्थ—“तए णं—” इसके बाद, “केशी कुमारसमणे—” केशी कुमारश्रमणने पएसी रायं एवं वयासी—” प्रदेशी राजा-से ऐसा कहा—“मा णं तुमं पएसी ?

सूत्रार्थ—“तए णं केशीकुमारसमणे” इत्यादि ॥ सू. १५९ ॥

भूतार्थ—“तएण” त्थार पछी “केशीकुमारसमणे” केशी कुमार श्रमणे “पएसी रायं एवं वयासी” प्रदेशी राजाने आ प्रभाणे कहुं—“मा णं तुमं पएसी ! पुण्णिव

वा नाटयशाला इति वा इक्षुवाटकम् इति वा खलुवाटकम् इति वा कथं खलु भदन्त ! वनषण्डः पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चाद् अरमणीयो भवति ? । प्रदेशिन् ! यथा खलु वनषण्डः । पत्रितः पुष्पितः फलितः हरितः हरितकराराज्यमानः श्रिया अतीव उपशोभमानः तिष्ठति, तदा खलु वनषण्डो रमणीयो भवति, यदा खलु

पुष्पि रमणीय भवित्ता पच्छा-अरमणिज्जे भविज्जासि—” हे प्रदेशिन्—! तुम पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय मत बनना. अर्थात्—धार्मिक होकर अधार्मिक मत बन जाना “जहा से वणसंडेइवा-णट्टसालाइवा-इक्खुवाडएइवा-खलुवाडएइ वा—” जैसे पूर्व में रमणीय होकर वनषण्ड अरमणीय बन जाता है, अथवा नाटयशाला, या इक्षु पीडन स्थान या—खलुवाटक पूर्व में रमणीय होकर अरमणीय बनजाते हैं. अब प्रदेशी पूछता है—“कहं णं भंते ? वणसंडे पुष्पि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवइ—” हे भदन्त ? वनषण्ड पूर्व में रमणीय होकर बाद में अरमणीय किस प्रकार से हो जाता है—३ “उत्तर में प्रभु कहते हैं—“पएसी जहा णं वणसंडे पत्तिए-पुष्पिए-फलिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अईव उवसोभेमाणे—तयाणं वणसंडे रमणिज्जे भवइ—” हैं प्रदेशिन् ? वनषण्ड जब पत्रां से युक्त होता है—पुष्प सम्पन्न होता है—फलित फलां से सहित होता है, हरियाली से युक्त होता है. हरे हरे पत्ते आदि से अतिशय सुहावना होता है तब वनषण्ड अपनी शाभासे सुशोभित होता हुआ रमणीय होता है,

रमणीय भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि” हे प्रदेशिन् ! तबे पड़ेला रमणीय थधने पछी अरमणीय बनशो नडि, अटवे के धार्मिक थधने अधार्मिक बनशो नडि, “जहा से वणसंडे वा णट्टसरलाइवा इक्खुवाडएइवा खलु वाडइवा” जेभ पड़ेला रमणीय थधने वनषंड पछी अरमणीय थध नय छे अथवा नाटयशाणा के इक्षु-पीडनस्थान के इक्षुनाटक पड़ेला रमणीय थधने पछी अरमणीय थध नय छे. डुवे प्रदेशी प्रश्न करे छे “कहं भंते ! वणसंडे पुष्पि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भवइ” हे भदन्त ! वनषंड पड़ेला रमणीय थधने पछी अरमणीय थध रीते थध नय छे ३, उत्तरभा कडे छे “पएसी जहाणं वणसंडे पत्तिए पुष्पिए फलिए हरिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अईव उवसोभेमाणे तयाण वणसंडे रमणिज्जे भवइ” हे प्रदेशिन् वनषंड न्यारे पत्रोथी युक्त होय छे, पुष्प सम्पन्न होय छे, इण युक्त होय छे दुर्गतिभाथी युक्त होय छे तेमज्ज लीला पांड-आयो वगेथी आ अतिशय सोडाभयो होय छे, त्यारे ते वनषंड पोतानी शोलाथी सुशोभित थतो रमणीय होय छे. अटवे के आ प्रभाणे वनषंड रमणीय कडेवाय छे.

વનપણ્ડા નો પત્રિતો નો પુષ્પિતો નો ફલિતો નો હરિતઃ નો હરિતઃ પરાગ્જ્યમાના નો શ્રિયા અતીવ્ર ઉપશોભમાનઃ તિષ્ઠતિ, યદા સ્વલુ જીર્ણઃ શન્નઃ પરિગટિત પાણ્ડુપત્રઃ શુષ્કવૃક્ષ ઇવ મ્લાયન તિષ્ઠતિ તદા સ્વલુ વનપણ્ડા નો સ્વલુ રમણીયો ભવતિ ।

યદા સ્વલુ નાટ્યશાલાઽપિ ગીયતે વાદ્યતે નર્ત્યતે હસ્યતે રમ્યતે તદા સ્વલુ નાટ્યશાલા રમણીયા ભવતિ, યદા સ્વલુ નાટ્યશાલા નો ગીયતે યાવત્ નો રમ્યતે તદા સ્વલુ નાટ્યશાલા અરમણીયા ભવતિ ।

અર્થાત્—ઇસ પ્રકાર સે વનપણ્ડ રમણીય ક્રહા જાતા હૈ. જયાગં વણસંડે નો પત્તિએ—નો પુષ્પિએ—નો ફલિએ નો હરિએ—નો હરિયગરેરિજ્જમાણે, ણો સિરીએ અર્દવ ઉવ સોમમાણે ચિટ્ઠઈ—પરન્તુ—જવ વહી વનપણ્ડ પત્રિત (પત્રવાલા) નહીં રહતા હૈ. પુષ્પિત (પુષ્પવાલા) નહીં રહતા હૈ—ફલિત નહીં રહતા હૈ—હરા નહીં રહતા હૈ, એવં—હરે ૨ પત્તાં આદિસે અતિશય સુહાવના નહીં રહતા હૈ, તવ અપની શોભા સે રહિત હો જાતા હૈ, તથા—“જયાગં જુન્ને ઝડે પડિસડિયપંડુપત્તે સુક્કરુક્ષે ઇવ મિલાયમાણે ચિટ્ઠઈ—” જવ વહી વન જીર્ણ પત્રાદિકોં સે રહિત હો જાતા હૈ, પત્તે આદિ સવ જવ ઝર જાતે હૈ, વિકૃત પાણ્ડુવર્ણવાલે પત્ર જવ ઉસમં હો ડાતે હૈ, તથા—શુષ્ક વૃક્ષ કી તરહ જવ વહ મ્લાન હો જાતા હૈ. “તયાણ વણસંડે અરમણિજ્જે ભવઈ—” તવ વહ વનપણ્ડ અરમણીય વન જાતા હૈ—? “જયાગં વણસંડે વિગિજ્જઈ—વાઈજ્જઈ—નચ્ચિજ્જઈ—હસિજ્જઈ રમિજ્જઈ— તયાગં વણસંડે રમણિજ્જા ભવઈ—” ઇસી તરહસે—હે પ્રદેશિન્ ? જવ તક નાટ્ય શાલા ગાનયુક્ત હોતી રહતી હૈ, વાદિત્રોં કી ઘ્વનિ સે વાચાલિત હોતી હૈ,

“જયાગં વણસંડે નો પત્તિએ—ન’ પુષ્પિએ—નો ફલિએ નો હરિએ—નો હરિયગરેરિજ્જમાણે, ણો સિરીએ અર્દવ ઉવસોમમાણે ચિટ્ઠઈ” યાજ્ઞુ તેજ વનપણ્ડ જ્યારે પત્રિત રહતો નથી, પુષ્પિત રહતો નથી, ફલિત રહતો નથી, લીલા રહતો નથી અને લીલા લીલા પાંદડાઓ વગેરેથી અતિશય શોભાયમાન રહતો નથી ત્યારે તે પોતાની શોભાથી રહિત થઈ જાય છે તથા “જયાગં જુન્ને ઝડે પડિસડિયપંડુપત્તે સુક્કરુક્ષે ઇવ મિલાયમાણે ચિટ્ઠઈ” જ્યારે તે વન છાણ્ડુપત્ર દોકોથી યુક્ત થઈ જાય છે, પાંદડાઓ વગેરે બધા ખરી પડે છે, તેમાં પાંદડાઓ વિકૃત તેમજ પાંડુવર્ણવાળા થઈ જાય છે તેમજ શુષ્ક વૃક્ષની જેમ જ્યારે તે મ્લાન થઈ જાય છે “તયાણ વણસંડે અરમણિજ્જે ભવઈ” ત્યારે તે વનપણ્ડ અરમણીય થઈ જાય છે. “જયાગં વણસંડે વિગિજ્જઈ વાઈજ્જઈ નચ્ચિજ્જઈ હસિજ્જઈ રમિજ્જઈ તયાગં વણસંડે રમણિજ્જા ભવઈ” આ પ્રમાણે હે પ્રદેશિન્ જ્યાં નાટ્યશાળામાં સંગીત વાદ્યતું રહે છે, તેમાં વાદિત્રો વાગતા રહે છે, તેમાં નાચ થતું રહે છે, પાત્રોના હાસ્યથી જ્યાં સુધી તે સુખાર્ત થતી રહે છે અને વિવિધ

यदा खलु इक्षुवाटकं छिद्यते भिद्यते पीडयते खाद्यसे पीयते दीयते तदा खलु इक्षुवाटकं रमणीयं भवति, यदा खलु इक्षुवाटकं नो छिद्यते यावत् तदा इक्षुवाटकम् अरमणीयं भवति ।

यदा खलु खलवाटकम् अवक्षिप्यते मर्द्यते उद्हाय्यते खाद्यते दीयते तदा खलु खलवाटकं रमणीयं भवति तत् तेनार्थेन प्रदेशिन् ! एवमुच्यते मा खलु त्व

उसमें नांच होता रहता है. पात्रों की हस्सी से जब तक वह खिल खिलाती रहती है, एवं विविध प्रकार की क्रीडाओं की क्रीडास्थला बनी रहती है. तब तक वह नाट्यशाला सुहावनी लगती है. "जयाणं णट्टसाला णो गिज्जइ, जाव णो रमिज्जइ, तयाणं णट्टसाला अरमणिज्जा भवइ-२" और-जब वह नाट्यशाला गीतों से रहित हो जाती है, वादित्तों की तुमुल ध्वनि से विहीन हो जाती है, यावत्-विविध प्रकार की क्रीडाओं से वह शून्य हो जाती है, तब वही नाट्यशाला अरमणीक हो जाती है-२ । "जयाणं इक्खुवाडे छिज्जइ-मिज्जइ-पीलिज्जइ-खज्जइ-पिज्जइ-दिज्जइ, तयाणं इक्खुवाडे रमणिज्जे भवइ, जयाणं इक्खुवाडे णो-छिज्जइ-जाव तया इक्खुवाडे अरमणिज्जे भवइ-३" इसी तरह जब तक हे प्रदेशिन् ? इक्षु-सेलडी क्षेत्रमें इक्षु कटते रहते हैं षते आदि उनसे दूर किये जाते रहते हैं उन्हें यन्त्रद्वारा पीडित कर उनका रस निकाला जाता रहता है बना हुआ गुड वहां चखा जाता रहता है लोग वहां निकाले हुवे रस को पीते रहते हैं, तथा-मिलने जुलने वालों को इक्षु दिया जाता रहता है. तब तक तो-वह इक्षुवाटक रमणीय बना रहता है और जब तक इक्षु-

प्रकारनी क्रीडास्थानी ते क्रीडा स्थली रहते छे. त्या सुधी ते नाट्यशाणा सोडाभणी लागे छे "जयाणं णट्टसाला णो गिज्जइ, जाव णो रमिज्जइ तयाणं णट्टसाला अरमणिज्जा भवइ २" अने ज्यारे नाट्यशाणा गीतरहीत थछे जाय छे, वादित्तोनी तुमुल तुमुल ध्वनि रहित थछे जाय छे यावत् विविध प्रकारनी क्रीडास्थानी शून्य थछे जाय छे, तयारे ते न नाट्यशाणा अरमणीक थछे जाय छे २ "जयाणं इक्खुवाडे छिज्जइ मिज्जइ, पीलिज्जइ खज्जइ पिज्जइ, दिज्जइ, तयाणं इक्खुवाडे रमणिज्जे भवइ, जयाणं इक्खुवाडे णो छिज्जइ जाव तया इक्खुवाडे अरमणिज्जे भवइ ३" आ प्रमाणे हे प्रदेशिन् ! जया सुधी इक्षु शेरडीना जेतरेमा शेरडी कपाती रहते छे, पाह-डाओ वगेरेनी साइसुडी थती रहते छे, यत्रमा नाथीने तेमाथी रस नीकणतो रहते छे, तयार थयेल गोण त्यां दोके वडे थपातो रहते छे, त्यांथी पसार थता दोके शेरडी-माथी नीकणतो रस पीता रहते छे, तथा भणवा माटे आवनाराओने शेरडी थपाती रहते छे त्यांसुधी तो ते इक्षुवाटक रमणीय रहते छे अने ज्यारे ते इक्षुवाटमां पूर्वोक्त

પ્રદેશિન્ ! પૂર્વ રમણીયો ભૂત્વા પશ્ચાદ્ અરમણીયી ભવેઃ યથા વનષ્ણ્ડ ઇતિ વા યાવત્ સ્વલવાટમ્ ઇતિ વા ॥મ્. ૧૫૯ ॥

ટીકા—“તદ્દેશિન્ કેસી કુમારસમણે” ઇત્યાદિ—તતઃ સ્વલુ કેસી કુમારશ્રમણઃ પ્રદેશિરાત્મ એવમવાદીત—મા સ્વલુ પ્રદેશિન્ ! ત્વં પૂર્વમ્—આદૌ રમણીયઃ—ધાર્મિકો ભૂત્વા પશ્ચાદ્ અરમણીયઃ—અધાર્મિકો મા ભવેઃ, યથા—યેન પ્રકારેણ વનષ્ણ્ડ ઇતિ વા નાટ્યશાલા—નાટ્યભવનમ્ ઇતિ વા ઇક્ષુવાટકમ્—ઇક્ષુપીલનસ્થાનમ્

વાટમેં યે પૂર્વોક્ત સર્વ કામ બંદ્ કર દિયે જાતે હૈ, —અર્થાત—ઇન્ કાર્યોં સે વહ રહિત બન જાતા હૈ. ત્વ વહી ઇક્ષુવાટ અરમણીય લગને લગતા હૈ “જયાણં સ્વલવાડે ઉચ્છુબ્મહ—મલિજ્જહ ઉહ્હિજ્જહ સ્વજ્જહ-દિજ્જહ, તયાગ સ્વલવાડે રમણિજ્જે ભવહ, જયાણં સ્વલવાડે ણો ઉચ્છુબ્મહ, જાવ—અરમણિજ્જે ભવહ ૪’ ઇસી પ્રકાર સે હે પ્રદેશિન્—? સ્વલિહાન જ્વતક ધાન્ય કે ઢેર લગે રહતે હૈ. દાય કળ મર્દન હોતી રહતી હૈ, ઉડાવની હોતી રહતી હૈ, વહીં પર ઉસકી રક્ષાર્થ રક્ષક કે નિમિત્ત લાયા હુવા મોજન સ્વાયા જા રહ રહા હૈ. દૂસરોં કી વહીં પર જ્વ તક અનાજ વગે હ દિયા જાતા રહતા હૈ. ત્વતક તો વહ સ્વલિહાન રમણીય લગતા રહતા હૈ, ઓર—જ્વ યહ સર્વ કામ હોના ઉમમેં બંદ્ હો જાતા હૈ ત્વ વહ અરમણીય લગને લગતા હૈ—૪ “સે તેગટ્ટેણં પવસી—? એવં વુચ્ચહ—મા ણં તુમં પવ—સી? પુવ્વિ રમણિજ્જે ભવિત્તા પચ્છા—અરમણિજ્જે ભવિજ્જાસિ જહા વગસંડે વા જાવ સ્વલવાડેહ વા—” ઇસી લિયે હે પ્રદેશિન્—? મૈને એસા કહા હૈ કિ—તુમ પહેલે રમણીય હોકર અરમણીય મત વન જાવો, જૈસે—કિ વનષ્ણ્ડ યાવત્ સ્વલવાટ હો જતે હૈ—

બધી ક્રિયાઓ બધ થઈ બધ છે ત્યારે તે ઇક્ષુવાટ અરમણીય લાગવા માટે છે. “જયાણં સ્વલવાડે ઉચ્છુબ્મહ—મલિજ્જહ, ઉહ્હિજ્જહ, સ્વજ્જહ, દિજ્જહ, તયાગ સ્વલવાડે રમણિજ્જે ભવહ, જયાણ સ્વલવાડે ણો ઉચ્છુબ્મહ, જાવ—અરમણિજ્જે ભવહ ૪’ આ પ્રમાણે હે પ્રદેશિન્ ! બળામાં બધા સુધી ધાન્યના ઢગલાઓ રહે છે, કણસલાં ગદીને અનાજ કઢાતુ રહે છે, અનાજ ઉપણાતુ રહે છે, ત્યાના રખેવાળ માટે ત્યા પહોંચાડેલુ ભોજન જમાતુ રહે છે. બીજાઓને ત્યાં બધાં લગી અનાજ વગેરે અપાતા રહે છે ત્યાં સુધી તે બધુ અરમણીય લાગે છે. અને ત્યારે આ બધું કામ બધ થઈ બધ છે, ત્યારે તે અરમણીય લાગવા માટે છે ૪ “સે તેગટ્ટેણં પવસી ! એવં વુચ્ચહ—મા ણં તુમં પવસી ! પુવ્વિ રમણિજ્જે ભવિત્તા પચ્છા—અરમણિજ્જે ભવિજ્જાસિ જહા વગસંડેહ વા જાવ સ્વલવાડેહ વા” એટલા માટે હે પ્રદેશિન્ ! મેં આમ કહ્યું છે કે તમે પહેલા અરમણીય થઈને પછી અરમણીય બનશો નહિ. જેવી રીતે વનષ્ણ્ડ યાવત્ સ્વલવાટ બધુ થઈ બધ છે.

इति वा खलुवाटकम् इति वा पूर्वं रमणीयं भूत्वा पश्चादरमणीयं भवतीति ! तत्र प्रदेशी पृच्छति—हे भदन्त ! कथं—केन प्रकारेण वनषण्डः पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो भवति ? । एवं नाटयशालेश्चवाट—खलुवाटविषयेऽपि प्रश्नयेज्जा कर्तव्या। तत्र क्रमेण तेषां रमणीयत्वारमणीयत्वे प्रदर्शयितुं केशी प्राह—‘पएसी’ इत्यादि—हे प्रदेशिन ! यथा वनषण्डः पत्रितः—पत्रसम्पन्नः, पुष्पिनः—पुष्पसम्पन्नः फलितः—फलसम्पन्नः, हरितः—हरितत्वसम्पन्नः हरितकराराज्यमानः—हरितवर्णं पत्रपल्लवादिभिरतिशयेन शोभमानः, अतएव श्रिया—शोभया, अतीव—अत्यन्तम् उपशोभमानः—शोभां प्राप्नुवन् यदा तिष्ठति—वर्तते, तदा—तस्मिन् काले च स वनषण्डो नो पत्रितः नो पुष्पितः नो फलितः नो हरितः नो हरितकराज्यमानः अत एव नो श्रियाऽतीवोपशोभमानो भवति, यदा च जीर्णः—जीर्णपत्र पल्लवादिभिरुक्तः शन्नः—प्रपतितपत्रादिकः, अत्र शब्दो झडादेशः, परिशटितपाण्डुपत्रः—विकृतपाण्डुवर्णपत्रयुक्तः शुष्कवृक्ष इव म्लानम्—म्लानतां गच्छन् सम तिष्ठते, तदा खलु वनषण्डो नो रमणीयो भवति ? । प्रदेशी पृच्छति—हे भदन्त ! नाटयशाला कथं रमणीया भूत्वा चारमणीया भवति ? केशी प्राह—हे प्रदेशिन ! यदा खलु नाटयशालाऽपि गीयते—गानयुक्ता भवति वाद्यते—वाद्यवादनयुक्ता भवति नृत्यते—नृत्ययुक्ता भवति, हस्यते—हास्ययुक्ता भवति, रम्यते—क्रीडनयुक्ता भवति, तदा खलु सा रमणीया भवति, यदा खलु नो गीयते—यावत् नो वाद्यते ना नृत्यते नो हस्यते नो रम्यते, तदा खलु सा अरमणीया भवति २ ।

अश्लेषवाटविषयकप्रश्ने केशी प्राह—हे प्रदेशिन ! यदा खलु इक्षुचाटम् इक्षुक्षेत्रे इक्षुः छिद्यते—द्विधा क्रियते, भिद्यते—विदार्यते, पीडयते—यन्त्रेण रसी निःसार्यते, खाद्यते—गुडादिकम्, पीयते—रसः, दीयते—इक्ष्वादिकं, तदा खलु इक्षुचाटं रमणीयं भवति । यदा खलु इक्षुचाटं नो छिद्यते यावत् नो पीडयते नो खाद्यते नो पीयते नो दीयते, तदा इक्षुचाटम् अरमणीयं भवति । ३ ।

टीकार्थ—स्पष्ट है, “झडे” यहाँपर शब्द के स्थान में झड आदेश हुआ है. संस्कृत में इस की छाया “शन्नः” ऐसी होती है । केशाने—इस सूत्र द्वारा प्रदेशी राजा को पहिले रमणीय होकर अरमणीय बन जाने वाले वनषण्ड आदि-चार को दृष्टांतरूप में रखकर यह समझाया है कि—तुम ऐसे मत बन जाना. ॥१५९॥

टीकार्थ—स्पष्ट है ‘झडे’ अर्थात् ‘शब्द’ना स्थाने ‘झड’ आदेश थये छे. संस्कृत भा अएनी छाया ‘शन्न’ डोय छे. केशीअये आ सूत्र वडे प्रदेशी राजाने यडेला रमणीय थधने पछी अरमणीय थधे जनारा वनषड वगेरेने दृष्टात रूपमा आपीने आ समनववामा आव्यु छे डे तमे अयेवा थशे नडि. ॥सू. १५९॥

अथ खलवाटविषयप्रश्ने केशी प्राह—हे प्रदेशिन ! यदा खलु खलवाटं सस्यकणमर्दनपरिष्करणस्थानम् तत्र धान्यम्—अवक्षिप्यते—पुञ्जीद्रियते, मर्द्यते—वली-वर्दीदिभिः, उड्ढायते—पद्मेने पूते, खाद्यते, दीयते तदा खलु खलवाटं रमणीयं भवति । यदा खलु नो अवक्षिप्यते यावत् नो मर्द्यते नो उड्ढायते, नो खाद्यते नो दीयते तदा अरमणीयं भवति ४ । तत् हे प्रदेशिन ! तेन—दनपण्डादि दृष्टान्तरूपेण अर्थेन एवम् उच्यते—कथ्यते—यत् हे प्रदेशिन ! त्वं पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो मा भवेः, यथा वनपण्ड इति वा यावत्—नाटशालेति वा इक्षुवाटम् इति वा खलवाटम् इति वा ॥मृ. १५९॥

मूलम्—तए णं पएसी केषिं कुमारसमणं एवं वयासी—णो खलु भंते । अहं पुठिं रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणीज्जे भविस्सामि जहा वणसंडेइ वा जाव खलवाडेइ वा, अहं सेयविया नयरीपमुक्खाइं सत्त गामसहस्साइं चत्तारि भागे करिस्सामि, एगं भागं बलवाहणस्स दलइस्सामि, एग भागं कूट्टागारे लुभिस्सामि, एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि, एगेणं भागेणं महइमहालयं कूडागारसालं करिस्सामि, तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्नभइभक्त-वेयणेहिं विउलं असणं पाणं खाइमं उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहणभिक्खुयागं पंथियवहियाणं परिभाएमाणे बहूहिं सीलव्वयगुण-व्वयवेरमणव्वयपच्चक्खाणपोसहोव्वामेहिं अप्पाणं भावेमाणे वि-हरिस्सामित्ति कट्टुं जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।
॥ सू० १६० ॥

छाया—ततः खलु प्रदेशी केशिनं कुमारश्रमणम् एवमवादीत्—नो खलु भदन्त ! अहं पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो भविष्यामि, यथा वनपण्ड इति वा यावत् खलवाटमिति वा, अहं खलु श्वेतविकानगरी प्रमुखाणि सप्त ग्रामसहस्राणि चतुरो भागान् करिष्यामि, एकं भागं बलवाहनस्य दास्यामि, एकं भागं कूट्टागारे क्षेप्यामि, एकं भागमन्तःपुराय दास्यामि, एकेन भागेन महा-जतिमहालयां कूटाऽऽकारशालां करिष्यामि, तत्र खलु बहुभिः पुरुषैः दत्तभृतिभक्त-

“तए णं पएसी के-सिं” इत्यादि ॥१६० स्र॥

सूत्रार्थ—‘तएणं’ इसके बाद ‘पएसी’ प्रदेशी राजाने—“केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—” केशीकुमारश्रमण से ऐसा कहा—“णो खलु भंते? अहं पुब्बि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविस्सामि जहा वणसंडेइ वा जाव-खलवाडेइ वा—” हे भदन्त! मैं पहले रमणीय होकर अब वनषण्ड, अथवा यावत् खलवाट सेलडीका खेत की तरह अरमणीय नहीं बनूंगा. “अहं सेयविया नयरी पमुक्खाइं सत्त गामसहस्साइं चत्तारिभागे करिस्सामि—” मैं श्वेताविका नगरी प्रमुख सातहजार ग्रामों को चार विभागों में विभक्त करूंगा. “एकं भागं बलवाहणस्स दल-इस्सामि—” इन में से एक भाग तो बल—और वाहन के लिये दूंगा. “एगे भागे कुट्टागारे छुमिस्सामि—” दूसरा भाग कौष्ठागार में प्रजापालन के लिये रक्खूंगा. “एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि—” एक भाग को तीसरेको मैं अन्तःपुर रक्षा के लिये दूंगा. “एगेणं-भागेणं महइमहालयं कूडागारसालं करि-स्सामि—” एक भाग से चौथे से मैं एक बहूत ही विशाल कूटागारशाला बनवाऊंगा —“तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्मभइभत्तवेयणेहिं विउल असण पाणं स्वाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-मारहण-भिकखुयाणं पंथिय पहियाण परिभाएमाणे—” उसमें जनेक पुरुषों को सवेतनिक रूपमें रक्खूंगा.

“तए णं पएसी केसिं ” इत्यादि ॥१६०॥

सूत्रार्थ—‘तए णं’ त्थार पछी ‘पएसी’ प्रदेशी राजाने ‘केसिं कुमारसमणं एवं वयासी’ केशी कुमार श्रमणने आ प्रमाणे कहुं “णो खलु भंते! अहं पुब्बि रमणिज्ज भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविस्सामि जहा वणसंडेइ वा जाव खलवाडेइ वा” हे भदन्त! हुं पडेला रमणीय थधने हुवे वनषण्ड के यावत् भजानी जेभ अरमणीय थधथ नडि “अहं सेयविया नयरी पमुक्खाइं सत्तगामसह-स्साइं चत्तारि भागे करिस्सामि” हु श्वेतविका नगरी प्रमुख सात हजार गाभेने चार भागोभा विभाजित करीथ, “एकं भागं बलवाहणस्स दलइस्सामि” आभाथी जेक भाग बल (सेना) अने वाहन भाटे आपीथ “एगे भागे कुट्टागारे छुमिस्सामि” भीजे भाग कौष्ठागारमा प्रजापालन भाटे बुद्धे राभीथ. “एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि” त्रीज जेक भागने हु अन्तःपुरनी रक्षा भाटे आपीथ “एगेणं भागेणं महइमहालयं कूडागारसालं करिस्सामि” चोथा जेक भागथी हुं जेक विशाल कूटागार शाला बनावडावीथ “तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्मभइभत्त-वेयणेहिं विउलं असणं पाणं स्वाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता बहूणं समणमाहण-भिकखुयाणं पंथियपहियाणं परिभाएमाणे” तेभा धज्जा पुइधेने हुं पगार आपीने नीभीथ. तेज्जे त्यांज नभशे. ते भाणुसो पासेथी हु विपुल मात्राभां अथन-पान-

वेतनैः विपुलम् अशनं पानं खादिमं स्वादिमम् उपम्कार्यं बहुभ्यः श्रमणं ब्राह्मण-
मिक्षुकेभ्यः पथिकप्राप्तुणेभ्यः परिभाजयन् बहुभिः शीलव्रतगुणव्रतविग्मणव्रत-
प्रत्याख्यानपौषधोपवासैः आत्मानं भावयमानो विहरिष्यामि, इति कृत्वा यामेव
दिशं प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः ॥मू. १६०॥

टीका—“तए णं पएसी” इत्यादि—ततः खलु प्रदेशी राजा केशिनं
कुमारश्रमणम् एवमवादीत्—हे भदन्त ! अहं पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादरमणीयो
नो भविष्यामि यथा—येन प्रकारेण वनपण्ड इति वा यावन् नाट्यशालेतित्वा इक्षु-
वाटमिति वा खलवाटमिति वा, वनपण्डादिवत् पूर्वं रमणीयो भूत्वा पश्चादर-
मणीयो नो भविष्यामीति, तदेव स्पष्टयति अहं खलु श्वेतान्विकानगरी प्रमुखानि
सप्त ग्रामसहस्राणि-सप्त सहस्रपरिमितग्रामान् चतुगे भागान्-चतुर्धा विभक्तान्

वही वे भोजन करेगे. उनसे मैं विपुल मात्रा में अशन-पान-खादिम स्वादिम रूप चारों
प्रकारके आहार को तैयार कराऊंगा फिर—अनेक श्रमण माहण मिश्रुकों के लिये.
तथा पथिकरूप प्राधूर्णिकों के (अतिथिविशेष) लिये उस आहार को देता
हुवा, एवं—‘वहूँहिं शीलव्रयगुणव्यवेरमणव्ययपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं
भावेमाणे विहरिस्सामि त्ति कड्डु जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए—’
अनेकशील व्रतों से गुणव्रतों से प्रत्याख्यान और-पौषधोपवासोंसे आत्मा को मैं वासित
करता हूवा. इस प्रकार कह कर वह प्रदेशी राजा जिस दिशा से आया था-
उसी दिशा को चला गया.

टीकार्थ—स्पष्ट है प्रदेशी राजाने जो इस सूत्र द्वारा अपना अभिप्राय
प्रकटित किया है वह मैं वनपण्डादि कों की तरह पूर्वमें रमणीय होकर अरम-
णीय नहीं होने की पुष्टि के निमित्त प्रकट किया है इसी बात की पुष्टि अपने
सात हजार ग्रामों को चार विभागों में विभक्त करने की है. इसमें एक-२

आदिम-स्वादीमरूप चारों प्रकारना आहारों तैयार करावडावीश. पछी धणु श्रमण
माहणु मिश्रुके माटे तेमञ् पथिकरूप प्राधूर्णिकोंने ते आहार आपते। एवं वहूँहिं
शीलव्रयगुणव्यवेरमणव्ययपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणे
विहरिस्सामि त्ति कड्डु जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए” धणु शील-
व्रतेथी गुणव्रतोथी, प्रत्याख्यान अने पौषधोपवासोथी आत्माने हुं वासित करतो
रहीश आ प्रमाणे कहीने प्रदेशी राजा जे दिशा तरइथी अ न्यो हुतो ते दिशा-
अथी न् नतो रह्यो.

टीकार्थ—स्पष्ट न् छं. प्रदेशी राजाअये आ सूत्रवडे जे पोताने अलिप्राय प्रकट
कथ्यो छ ते वनपण्ड जेम पण्डेलां रमणीय थधने पछी अरमणीय थध नय छ तेम
ते थशे नहिं अये वातने स्पष्ट करवामा आवी छ. पोताना सात हुण्डर गामोंने चार
भागोमां जे राजाअये विलाजित कथ्यो छ ते पणु अये वातने न् पुण्ट करे छ अेमां

करिष्यामि, तत्र भागान् इत्यत्र 'भज्यन्त इति भागाः' इति कर्मव्युत्पत्तिर्बोध्या, भावव्युत्पत्त्या तु कर्मणि षष्ठ्यापत्तिः स्यात् । तेषु चतुर्षु भागेषु एकं भागं पादोनसहस्रद्वयरूपं बलवाहनाय-तत्र बलाय-सैन्याय-वाहनाय-हस्त्यश्वाद्यर्थं दास्यामि १, एकं-द्वितीयं भागं कोष्ठागारे-प्रजापालनाय कोशे क्षेप्स्यामि २, मूले क्षिपे श्छुभादेशः, एकं-तृतीयं भागम् अन्तः पुराय-अन्तःपुररक्षणाय दास्यामि ३, चतुर्थेन भागेन महातिमहालयाम्-अतिमहतीं-परमविशालाम्, कूटाऽऽकारशालां करिष्यामि, तत्र कूटाऽऽकारशालायां बहुभिः-बहुसंख्यैः पुरुषैः, कीदृशैः ? दत्तभृतिभक्तवेतनैः-दत्ताः भृतयो-जीविकाः, भक्तानि-आहाराः, वेतनानि-मासिकवृत्तयश्च येभ्यस्ते दत्तभृतिभक्तवेतनास्तैः पुरुषैरिति सम्बन्धः, विपुलं-प्रचुरम् अशनं पानं खादिमं स्वादिमम्' इति चतुर्विधाऽऽहारम् उपस्कार्य-सम्पादय बहुभ्यः श्रमण-ब्राह्मणभिक्षुकेभ्यः, तथा-पथिकप्राघुणेभ्यः-पथिकरूपाः प्राघुणाः पथिकप्राघुणाः, न तु सम्बन्धमाश्रित्य प्राघुणाः, तेभ्यः, परिभाजयन्-ददत्, बहुभिः शीलव्रत-गुणव्रत-विरमणव्रत-प्रत्याख्यान पोषधोपवासैः आत्मानं भावयमानो विहरिष्यामि, इति कृत्वा-इति कथयित्वा यामेव दिशं समाश्रित्य प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः । ॥सू० १६०॥

भाग में पेटे दो-दो हजार ग्राम आते हैं । सैन्यका नाम-बल, और हस्ती अश्व आदिका नाम वाहन है । प्रजाओं की अच्छी तरह से पालन हो इस अभिप्राय से उसने एक भाग कोश-भण्डार में रखदिया "छुभिस्सामि" की संस्कृत छाया "क्षेप्स्यामि" है क्षिप् का प्राकृत में छुभादेश हुआ है. भृति शब्द का अर्थ जीविका. भक्त शब्द का अर्थ आहार एव-वेतन शब्द का अर्थ पगार है । पथिक प्रघूर्ण से पथिकरूप से प्राघुण लिये गये हैं नकि-सम्बन्ध को आश्रित करके प्राघूर्ण लिये गये हैं ॥सू० १६०॥

दरेके दरेके विलागमा पोष्ठा भे-भे हजार गाम छे सैन्यतुं नाम णल अने डाथी धाडा वगेरेतु नाम वाहन छे. प्रजातुं सारी रीते पालन थछ शके तेटला भाटे तेछे अेक लाग कोश-भण्डारमा भूकथे छे. "छुभिस्सामि" नी संस्कृत छाया "क्षेप्स्यामि" छे. क्षिप् ने प्राकृतमा छुभादेश थथे छे भृति शब्दनेो अर्थ लुविडा लकत शब्दनेो अर्थ आहार अने वेतन शब्दनेो अर्थ पगार छे पथिक प्राघूर्ण- (अतिथिइप भडेमान)थी पथिकइपथी प्राघूर्ण (भडेमान) लेवामा आन्था छे संघधने आश्रित करीने प्राघूर्ण लेवामा आन्था नथी ॥सू. १६०॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया कल्लं जाव तेयसा जलंते सेयावि पामोकखाइं सत्त गामसहस्साइं चत्तारि भाए कीरइ, एगं भागं बलवाहणस्स दलयइ जाव कूडागारसालं करेइ, तत्थ णं बहू हिं पुरिसे हिं जाव उवक्खडावेत्ता बहूणं समणं जाव परिभाएमाणे विहरइ ।

तए णं से पएसी राया समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ, जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइं च णं रज्जं च रट्टु च वलं च वाहणं च कोसं च कोट्टागारं च पुरं च अतेउरं च जणवय च अणाढायमाणे यावि विहरइ । ॥ सू० १६१ ॥

छाया—ततः खलु स प्रदेशी राजा कलयं यावत् तेजसा ज्वलति श्वेतां चिकाप्रमुखानि सप्त ग्रामसहस्राणि चतुरो भागान् करोति, एकं भागं बलवाहनाय ददाति यावत् कूटाऽऽकारशालां करोति, तत्र खलु बहुभिः पुरुषैः यावत् उपस्कार्यं बहुभ्यः श्रमणं यावत् परिभाजयन् विहरति ।

“तए णं पएसी राया—” इत्यादि ।

सूत्रार्थ—“तएणं” इसके बाद “पएसी राया कल्लं” प्रदेशी राजाने दूसरे ही दिन “जाव तेयसा जलंते-” यावत् तेजसे सूर्य प्रकाशित होजाने पर “सेयंविया पामोकखाइ सत्तगामसहस्साइ चत्तारि भाए कीरइ—” श्वेतां चिका प्रमुख सातहजार ग्रामों को चार विभागों में विभाजित कर दिया. “एगे भागे बलवाहणस्स दलयइ” इनमें एक भाग बलवाहन के लिये वितरण करदिया. “जाव-कूडागार सालं करेइ-” यावत् चतुर्भाग कूटागारशाला को बनवाने के निमित्त दे दिया. “तत्थ णं बहूहिं पुरिसे हिं जाव-उवक्खडावेत्ता बहूणं समणं जाव परिभाए माणे विहरइ—” जब

‘तएणं पएसी राया’ इत्यादि

सूत्रार्थ—‘तएणं’ त्थार आठ (पएसी राया कल्लं) प्रदेशी राजाने भीष्मदिवसे जाव तेयसा जलं ते’ यावत् तेजसी न्यारे सूर्य प्रकाशित थई गयो त्थारे “सेयंविया पामोकखाइं सत्तगामसहस्साइं चत्तारि भाए कीरइ” श्वेतां चिका प्रमुख सात हजार गांभोने चार भागोमा बडेथी नाथ्या. “एगे भागे बलवाहणस्स दलयइ” आमा अेक भाग-बल-वाहन भाटे आंथे. “जाव कूडागारसालं करेइ” यावत् थोथे भाग कूटागारशाला बनाववा भाटे आंथे. “तत्थ बहूहिं पुरिसेहिं जाव उवक्खडावेत्ता बहूणं समणं जाव परिभाएमाणे विहरइ”

ततः खलु स प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः अभिगत-जीवाजीवः यावद् विहरति, यत्प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः, 'तत्प्रभृति च खलु राज्यं च राष्ट्रं च बलं च वाहनं च कोशं च कोष्ठागारं च अन्तःपुरं च जनपदं च अनाद्रि-प्रमाणश्चापि विहरति । ॥सू० १६१॥

टीका—“तए णं से पएसी” इत्यादि-ततः खलु स प्रदेशी राजा कल्पं यावत् एकोनपष्टयधिकैकशततम १५९ सूत्रोक्तपाठानुसारेण सूर्ये तेजसा-दीप्त्या ज्वलति-काशमाने सति श्वेतांशिकाप्रमुखानि सप्त ग्रामसहस्राणि-ग्रामाणां सप्त कूटागारं शाला वनकर तैयार हो गई तब उसमें उसने अनेक पुरुषों द्वारा यावत् चारों प्रकार का अशन-आहार निष्पन्न कराकर उससे अनेक श्रमणादि जनोंको प्रतिलाभित करता था याने देता था “तएण से पएसी राया समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ—” इसके बाद वह प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हो गया. जीव तत्र और अजीव तत्र के स्वरूप का भलीभांति से ज्ञाता बन गया. इत्यादि. जप्पमिडं च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पमियं च णं रज्जं च रट्टं च बलं च वाहनं च कोसं च कोष्ठागारं च-पुरं च अन्तेउरं च जणवयं च अणाढायमाणे यावि विहरइ—” अब वह प्रदेशी राजा जिस दिन से श्रमणोपासक बना. उसी दिन से अपने राज्य के प्रति. राष्ट्र के प्रति बल के प्रति. वाहन के प्रति, कोष के प्रति, कोष्ठागार के प्रति अन्तःपुर के प्रति और जनपद के प्रति उपेक्षाभाव धारण कर लिया. इस सूत्र का टीकार्थ—स्पष्ट है. यहां यावत्पद से—“कल्लं जाव” के इस यावत् पदसे १५९ वें सूत्र है जो पाठ इसके विषय में

न्याये कूटागारशाळा तैयार थई गछ त्यारे तेमा तेणु घण्टा पुइधो वडे यावत् त्यारे जातने अशन आहु रथनाव १०या अने तेनाथी घण्टा श्रमणु वगेरेने प्रतिलाभित कर्या “तए णं से पएसी राजा समणोवास ए जाव अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ” त्यार पछी ते प्रदेशी राजा श्रमणोपासक थई गयो. ज्वलत्त्व अने अज्वलत्त्वना स्वइपने सारी रीते ज्ञाता थई गयो वगेर. “जप्पमिडं च ण पएसी राया समणोवासए जाए तप्पमियं च ण रज्जं च रट्टं च, बलं च वाहनं च. कोसं च. कोष्ठागारं च. पुरं अन्तेउरं च, जणवयं च अणाढायमाणे यावि विहरइ” हुवे ते प्रदेशी राजाये ने द्विवसथी श्रमणोपासक थयो. तेन द्विवसथी पीताना राजय तरइ. राष्ट्र तरइ, सेना तरइ, वाहन तरइ, लडार (कोष) तरइ कोष्ठागार प्रति, अन्तःपुर प्रति अने जनपद प्रति उपेक्षा भाव धारणु करी लीधी.

टीकार्थ-आ सूत्रने स्पष्ट न छे. अही यावत् पदथी “कल्लं जाव” ना आ यावत् पदथी १५९ भा सूत्रमा ने पाठ येना विषे गृहीत थयो छे त नाणुयो.

सहस्राणि चतुरो भागान्—यतुर्धा विभक्तानि क्रमेति, कृत्वा तेषु चतुर्षु भागेषु एकं-प्रथमं भागं बलवाहनाय ददाति, द्विपष्टयधिकशततमसूत्रोक्तानुसारेण कृत्वा ऽऽकारशालां करोति । तत्र खलु बहुभिः पुरुषैः यावत् उपस्कार्य बहुभ्यः श्रमणं यावत् द्विपष्टयधिकैकशततमसूत्रोक्तानुसारेण श्रमणब्राह्मणभिक्षुकेभ्यः पथिक-प्राघुणेभ्यः परिभाजयन् विहरति ।

ततः खलु स प्रदेशी राजा श्रमणापासकः—श्रावको जातः कीदृशः? इत्याह—अभिगतजीवाजीवः चतुर्दशोत्तरशततमसूत्रोक्तविशेषणविशिष्टो भूत्वा विहरति । यत्प्रभृति च—यद्दिनादारभ्य खलु प्रदेशी राजा श्रमणापासको जातः, तत्प्रभृति—तद्दिनादारभ्य च खलु राज्यं—राष्ट्रं, दलं, वाहनं, कोशं, कोष्ठागारम् पुरम् जनपदं च अनाद्रिद्यमाणः—उपेक्षमाणः चापि विहरति ॥सू० १६१॥

मूलम्—तए णं तीसे सूरियकंताए देवीए इमेयारूवे अज्झ-
स्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जप्पभिइं च णं पएसी राया समणो-
वासए जाए तप्पभिइं च णं रज्ज च रट्टं च जाव अते उर च समं
च जणवयं च अणाढायमाणे विहरइ, तं सेयं खलु से पएसिरायं
केणवि सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा संतप्पओगेण वा विस-
प्पओगेण वा उद्वेत्ता सूरियकंतं कुमारं रज्ज ठवित्ता सयमेव रज्ज-
सिरिं कारेमाणीए पालेमाणीए विहरित्तएत्ति कट्टे एवं सपेहेइ, संपे-
हित्ता सूरियकंतं कुमारं सदावेइ सदावित्ता एव वयासी—जप्पभिइं
च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइं च णं रज्ज च जाव
अंतेउरं च जणवय च माणुस्सए च कामभोगे अणाढायमाणे विह-

कहा गया है वह गृहीत किया गया है “जाव कूडागारसालं—” में आगत यावत् पद से १६२ सूत्र में जो पाठ कहा गया है वह यहां गृहीत किया गया है । इसी तरह से “पुरिसेहिं जाव—” में आगत यावत् पद से भी ३६२ ये सूत्र में कथित इस विषय का पाठ ग्रहण किया गया है ॥१६१॥

‘जाव कूडागारसालं’ मां आवेद यावत् पदथी १६२ मां सूत्रमा ने पाठ छे तेत्तुं अहण्ण उरवामां आ०यु छु. आ प्रमाणे “पुरिसेहिं जाव” मां आवेद यावत् पदथी १६२मां सूत्रमा कथित आ विषे ना पाठनु अहण्ण थयुं छे. ॥१६१॥

इह त सेय खलु तव पुत्ता । पएसिं रायं केणइ सत्थप्पओगे^१ ।
 वा जाव उह्वित्ता सयमेव रज्जसिंरिं कारेमाणस्स पालेमाणस्स
 विहरित्तए । तए णं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एव^२
 वुत्ते समाणे सूरियकंताए देवीए एथमहं णो आढाइ णो परिघाणाइ
 तुस्सिणीए संचिट्ठइ, तए णं तीए सूरियकंताए देवीए इमेयारूवे
 अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—मा णं सूरियकंते कुमारे पएसिस्स
 रण्णो रहस्सभेयं करिस्सइत्ति कहु पएसिस्स रण्णो छिद्दाणि य
 सम्माणि य रहस्साणिय य त्रिवराणिय अंतराणि य पडिजागरमाणी
 पडिजागरमाणी विहरइ ॥ सू० १६२॥

छाया—ततः खलु तस्याः सूर्यकान्ताया देव्याः अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः
 यावत् समुदपद्यत—प्रत्प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातस्तत्प्रभृति
 च खलु राष्ट्रियं च राष्ट्रं च यावत् अन्तःपुरं च मां च जनपदं च अनाद्रियमाणो
 विहरति, तच्छ्रेयः खलु मे प्रदेशिन राजान केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा अग्निप्रयो-

“तएणं तीसे सूरियकंताए देवीए” इत्यादि ॥

मूलार्थ—‘तए णं—’ इसके बाद ‘तीसे सूरियकंताए देवीए—’ उस
 सूर्यकान्ता देवी को ‘इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—’ यह इस
 प्रकार का आध्यात्मिक यावत् विचार उत्पन्न हुआ—‘जप्पभिडं च ण पएसी राया
 समणोवासए जाए—’ जिस दिन से प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हुवे है ‘तप्प-
 भियं च ण रज्ज च—’ उसी दिन से उन्होंने राज्य के प्रति, राष्ट्र के प्रति,
 यावत् अन्तःपुर के प्रति, तथा—मेरे प्रति, और-जनपद देश के प्रति उपेक्षा

“तएण तीसे सूरियकंताए देवीए” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए णं” त्थार पछी “तीसे सूरियकंताए देवीए” ते सर्थकान्ता
 देवीने “इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था” आ जातने आध्यात्मिक यावत्
 विचार उत्पन्न थये. “जप्पभियं च णं पएसी राया समणोवासए जाए” ते दिवस
 थी प्रदेशी राजा श्रमणोपासक थया छे, “तप्पभियं च णं रज्जं च” ते न दिवसथी
 तेमणे राज्य प्रति, राष्ट्रना प्रति, यावत् अन्तपुर प्रति तेमण भाग प्रति अने
 जनपद-देशना प्रति उपेक्षा धारणु करी लीधी छे “तं सेयं खलु मे पएसिं गयं

गेण वा मन्त्रप्रयोगेण वा विषप्रयोगेण वा उपद्रूय सूर्यकान्तं कुमारं राज्ये म्या-
पयित्वा स्वयमेव राज्यश्रियं कारयन्त्याः पालयन्त्या विहर्तुम्, इतिकृत्वा एव
संप्रेक्षते. संप्रेक्ष्य सूर्यकान्तं कुमारं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—तत्प्रभृति
च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जातः, तत्प्रभृति च खलु राज्यं च यावत्
अन्तःपुरं च खलु जनपदं च मानुष्यक्रांश्च कामभोगान् अनाद्रियमाणो विहरति

धारण कर स्वखा है “तं सेयं खलु मे पएसि रायं वेणवि सत्थप्पओगेण वा—
अग्गिप्पओगेण वा—संतप्पओगेण वा—दिसप्पओगेण वा—उह्वेत्ता मूरियकंतं कुमारं
रज्जे ठवित्ता—” अतः—अब मुझे यही उचित है कि मैं प्रदेशी राजा को किसी
अस्त्र के प्रयोग से अथवा—अग्नि के प्रयोग से. मार्कर सूर्यकान्त पुत्र को
राज्य में स्थापित करके “सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणीए पालेमाणीए विहरित्ते
त्ति कहुं एवं संपेहेइ—” अपने आप स्वयं ही राज्य लक्ष्मी का भोग करती
हुई, उसका पालन करती हुई, आनन्द से रहें—? इस प्रकार का उसने विचार
किया—“संपेहित्ता-सूरियकंतं कुमार सदावेइ—” ऐसा विचार करके फिर उसने
अपने सूर्यकान्त पुत्रको बुलाया. “सदावित्ता एवं वयासी—” बुलाकर उससे
ऐसा कहा—“जप्पमिइं च ण पएसी राया समणोवासए जाए तप्पमिइं च ण
रज्जं च जाव अंतेउर च जणवय च मणुस्सए च कामभोगे अणाढायमाणे
विहरइ—जिस दिन से प्रदेशी राजा श्रमणोपासक बने है उस दिन से उन्होंने
राय की ओर—यावत् अन्तःपुर की ओर और जनपद की ओर, एवं—मनुष्य भव-

केण वि सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा—संतप्पओगेण वा विसप्पओ-
गेण वा उह्वेत्ता मूरियकंतं कुमारं रज्जे ठवित्ता” अथी भारः भाटे हुवे ओण
उयिन छे के हु प्रदेशी राजाने केछ शस्त्रना प्रयोगथी के अग्निना प्रयोगथी
के मन्त्रना प्रयोगथी के विषना प्रयोगथी भारी नाणीने सूर्यकान्त पुत्रने राज्यपालने
ऐसाडीने ‘सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणीए पालेमाणीए विहरित्ते त्ति कहुं एवं
संपेहेइ” पोतेओ राज्य लक्ष्मीने उपभोग करीने तेतुं रक्षणु करता आनन्दपूर्वक
समय पसार करे आ प्रमाणे तेले विचार करी. “संपेहित्ता सूरियकंतं कुमारं
सदावेइ” आ जतने विचार करीने पथी तेले पोताना सूर्यकान्त पुत्रने ओलाओ.
“सदावित्ता एवं वयासी” ओलावीने तेने आ प्रमाणे कहु. “जप्पमिइं च ण
पएसी राया समणोवासए जाए तप्पमिइं च ण रज्जं च जाव अंतेउरं च
जणवय च मणुस्सए च कामभोगे अणाढायमाणे विहरइ” ओ द्विसथी प्रदेशी
राज श्रमणोपासक थया छे ते द्विसथी तेभले राज्य तरइ, यावत् अन्तःपुर तरइ
जनपद तरइ, मनुष्यलव सणधी शमभोगे तरइ ध्यान आपवुं अंध करुं छे.

तच्छ्रेयः खलु तव पुत्र ! प्रदेशिनं राजानं केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा यावत् उप-
 र्हुत्य स्वयमेव राज्यश्रिय कारयतः पालयतो विहर्तुम् । ततः खलु सूर्यकान्तः
 कुमारः सूर्यकान्तया देव्या एवमुक्तः सन्न सूर्यकान्ताया देव्या एतमर्थं नो आद्रि-
 यते नो परिजानाति तूष्णीकः संतीष्ठते । ततः खलु तस्याः सूर्यकान्तायाः
 देव्या अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः यावत् समुदपद्यत—मा खलु सूर्यकान्तः कुमारः

सम्बन्धी कामभोग की ओर लक्ष्य देना वन्द करदिया है, अर्थात्—इन सब
 बातों को अब वे आदर की दृष्टि से नहीं देखते हैं “त सेय खलु वि
 पुत्ता ? एसिं राय केणइ सत्थप्पओगेण वा जाव उद्दचित्ता सयमेव रज्जसिरीं
 कारेमाणस्स पालेमाणस्स विहरित्तए—” अतः—हे पुत्र—अब यही योग्य है कि
 तुम प्रदेशी राजा को किसी भी शस्त्र के प्रयोग से अथवा अग्निप्रयोग से—यावत्
 विषय के प्रयोग से मारकर स्वयं राज्यश्री का भोग करो उसका पालन करो
 ‘तएणं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवं वुत्ते समाणे सूरियकंताए देवीए
 एयमट्ठं णो आढाइ, णो परियाणाइ तुसिणीए सच्चिद्धइ—” इस प्रकार सूर्य
 कान्ता देवी द्वारा कहे गये सूर्यकान्तकुमारने उसकी इस बात को आदर
 की दृष्टि से नहीं देखा. और—न तो उसकी उसने अनुमोदना ही की, किन्तु
 इस बात को सुनकर वह केवल चुपचाप ही रहा—“तएणं तीए सूरियकंताए
 इमेयास्सवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—” इसके बाद उस सूर्यकान्ता देवी
 को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ—“मा णं

अट्ठे इ तेव्वा इवे आ णधी वस्तुअने आदरणी दृष्टिअे जेता नथी. “तं सेयं
 खलु वि पुत्ता ? एसिं राय केणइ सत्थप्पओगेण वा जाव उद्दचित्ता सय-
 मेव रज्जसिरीं कारेमाणस्स पालेमाणस्स विहरित्तए” अथी इ पुत्र ! इवे अेअ
 उचित न्णाय छे इ तमे प्रदेशी राजने कोइ पणु शस्त्रना प्रयोगथी इ यावत् विष
 प्रयोगथी भारी नाणे अने पोते राज्यलक्ष्मीने उपलोग करे, तेनु रक्षणु करे.
 “तए णं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवं वुत्ते समाणे सूरिय-
 कंताए देवीए एयमट्ठं णो आढाइ, णो परियाणाइ, तुसिणीए सच्चिद्धइ”
 आ प्रमाणे सूर्यकान्ता देवी वडे कडेवायेइ सूर्यकान्त कुमारने तेनी बात प्रत्ये आदर
 णताव्थे नडि अने तेनी बातनी तेले अनुमोदना पणु करी नडि पणु ते तेनी
 सामे भूगे थधने उलो न्ण व्थो “तए णं तीए सूरियकंताए इमेयास्सवे
 अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था” त्याइ पथी ते सूर्यकान्ता देवीने आ जतने
 आध्यात्मिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न थयो इ “माणं सूरियकंते कुमारे-

प्रदेशिनो राज्ञः इमं रहस्यभेदं करिष्यति, इति कृत्वा प्रदेशिनो राज्ञः छिद्राणि च मर्माणि च रहस्यानि च विवराणि च अन्तराणि च प्रतिजाग्रती प्रतिजाग्रती विहगति ॥ सू० १६२ ॥

टीका—“तए णं तीसे” इत्यादि—ततः खलु तस्याः सूर्यकान्ताया देव्या प्रदेशिराजस्य पट्टराज्या अयमेतद्रूपः—वक्ष्यमाणप्रकारकः आध्यात्मिकः—आत्मगतो विचारः यावत्—यावत्पदेन “चिन्तितः कल्पितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः” इते संग्राह्यम्, अर्थस्तु पूर्वसूत्रे गतः, समुदपद्यत—संजातः, तदेव दर्शयति—यत्प्रभृते—रद्दिनादारभ्य च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासकः—श्रावको जानः, तत्प्रभृते तद्दिनादारभ्य च खलु राज्यं—स्वाम्यमात्स—सुदृत्—कोप—राष्ट्र—दुर्ग—सूरियकंते कुमारे पणसि स रण्णो रहस्यभेयं करिस्सइ ति कट्टु पणसिस्स रण्णो छिद्राणिय-मम्माणिय-रहस्साणिय-विवराणिय—अंतराणिय पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ—” सूर्यकान्तकुमार प्रदेशी राजा के पास, अर्थात्—प्रदेशी राजा से मेरी इस मन्त्रणा को प्रकाशित न करदे ? अतः—वह इस विचार से प्रदेशी राजा के छिद्रों को, दोषों को, मर्मों को, कुकृत्यरूप लक्षणों को—रहस्यों को एकान्तस्थान में सेवित निषिद्ध आचरणों को, विवरों को, निर्जनस्थानों को, और—अवकाश लक्षणरूप अन्तरो को बड़ी सावधानी के साथ बार-बार देखने लगी—अर्थात्—न सब पर वह कड़ी दृष्टि रखने लगी. ॥

टीकार्थ—स्पष्ट है. “अज्झत्थिए जाव” में आगत इस यावत् पदसे—चिन्तित कल्पित प्रार्थित मनोगत संकल्प, इन पदों का संग्रह हुवा है। इन विचार के विशेषणों का अर्थ पहले प्रकट किया जा चुका है। “ग्ज्जं च जाव अंतेउर च—” में आगत यावत् पद से—“बलं वाहनं कोष कोष्ठागार

पणसि स रण्णो रहस्यभेयं करि सइ ति कट्टु पणसि-स रण्णो छिद्राणिय मम्माणिय रह साणिय, विवराणिय अंतराणिय पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ” सूर्यकान्त कुमार प्रदेशी राज्यानी पासे—अटले के प्रदेशी राजाने भारी आवात कड़ी दृष्टि अथी ते प्रदेशी राजाना छिद्रोने, दोषोने, मर्मोने, कुकृत्यरूप लक्षणोने, रहस्योने, एकान्त स्थानमा सेवित निषिद्ध आचरणोने, विवराने, निर्जन स्थानोने अने अवकाश लक्षणरूप अन्तरोने अहुञ्ज सावधानीपूर्वक बार-बार लेवा लागी. अटले के अधी हिलथाल पर दृष्टि राभवा भाडी

टीकार्थ—स्पष्ट है. “अज्झत्थिए जाव” भां आवेदा यावत् पदथी “चिन्तितः, कल्पितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः” आ पदोने संग्रह थये छे, आ पदोने अर्थ पढेलां स्पष्ट करवाभा आव्यो छे. “ग्ज्जं च जाव अंतेउरं च” भां आवेदा यावत् पदथी

बलरूपेण सप्ताङ्गम्. राष्ट्रं—देशं यावत्—यावच्छब्देन ‘बलं—नैर्घ्यं, वाहनं—स्थादि-
कम्, कोपं—रत्नादिभाण्डागारम्, ‘कोष्ठागारं—घायास्थापनगृहम्, पुरं—नगरम्’
इति संग्राह्यम्, अन्तःपुरम्—अन्तःपुरस्थपरिवारम् च पुनः मां च—तथा
जनपदं—विजितदेशं च अनाद्रियमाणः—तच्चिन्तामकुर्वाणा विहरति—तिष्ठति, तत्
तर्हि मे—मम श्रेय—समीचीनं खलु प्रदेशिनं राजनं केनापि शस्त्रयोगेण—खड्गा-
दिभयोगेण, वा—अथवा अग्निप्रयोगेण—अग्निना दाहनरूपेण,—मन्त्रयोगेण—मन्त्र-
जापरूपेण, वा—अथवा, विषप्रयोगेण—विषप्रदानरूपेण, उपद्रुत्य—मारयि वा सूर्यकान्तं
सूर्यकान्तनामकं, कुमारं—मम पुत्रं राज्ये स्थापयित्वा संनिवेश्य स्वयमेव—अहं स्वयं
राज्यश्रियं—राजलक्ष्मीं कारयन्त्याः—बलवाहनादिभिः संर्धयन्त्याः. पालयत्याः—
रक्षयन्त्याः विहर्तुं—स्थातुम् । इतिकृत्वा—इति वितर्क्य एवं—पूर्वोक्तानु-
सारेण सप्रेक्षते—निर्धारयति, निर्धाय सूर्यकान्तं कुमारं शब्दयति आह्वयति,
शब्दयित्वा एवमवादीत्—यत्प्रभृति च खलु प्रदेशी राजा श्रमणोपासको जात-

पुर—” इन पदों का संग्रह हुआ है । अन्तःपुर शब्द से अन्तःपुरस्थ परिवार
का ग्रहण किया गया है । तथा—जनपद से विजित देश लिया गया है, इस
सूत्र का भावार्थ ऐसा है कि—जब सूर्यकान्ता देवीने यह जान लिया कि प्रदेशी
राजा श्रमणोपासक बन चुका है, और—अपने बल—वाहन आदि की संभाल
करने आदि की ओर उसका जैसा ध्यान होना चाहिये अब वैसा नहीं रहा
है, और न वह मेरी भी अब कुछ चाहना करता है, तब उसके मनमें इस
को दूर करने के लिये ऐसा विचार उठाकि—जैसे भी बने, चाहे—अग्नि-
प्रयोग से हो, या शस्त्रादि से हो, अवश्य ही इस प्रदेशी राजा का विनाश
कर देना चाहिये, तथा—सके स्थान पर सूर्यकान्त पुत्र को स्थापित कर
देना चाहिये. इसी में अब मलाई है । ऐसा विचार कर उसने पुत्र को बुलाया

“बल वाहनं कोपं कोष्ठागारं पुरं” आ पदोना स ग्रहणं यथे अन्तःपुर शब्दशी
अन्तःपुरस्थ परिवारं तु ग्रहणं यथे छे तेभ्य जनपदशी विजित (छुतेना)देशोना अर्थ
देवामा आव्ये छे आ सूत्रोना भावार्थ आ प्रमाणे छे के न्याये सूर्यकान्ता देवीने
आ वात नाशी लीधी के प्रदेशी राजा श्रमणोपासक यथं गये छे अने पोताना बल-
वाहन वगेरेनी सलाण राणतो नथी अने भारी तन्त्र पणु तेनु ध्यान नथी त्यारे
तेना मनमा ते शरणे हर करवानो विचार उत्पन्न थयो के गमे ते शीते अग्नि-
प्रयोगशी. के शस्त्रादि प्रयोगथो आ राजने भागी नाथयो नेधये तथा तेनी आदी
पडेली न्यापर सूर्यकान्त पुत्रने गादीये जेसाडेयो नेधये. आमां न हुये राजनी
बलाछ छे आभ विचार करीने तेले पुत्रने जालाये अने पोताना आ नतना

स्तत्कृति च खलु राज्यं च यावत् अन्तःपुरं च जनपदं च तथा मानुष्यकान्-
मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान्-अनाद्रियमाणः-अनादरदृष्ट्या पश्यन् विहरति,
तच्छ्रेयः खलु तव हे पुत्र ! प्रदेशिनं राजानं केनापि शस्त्रप्रयोगेण वा यावत्
अग्न्यादिप्रयोगेण वा उपद्रुत्य-मारयित्वा स्वयमेव राज्यश्रियं कारयतः पाल्यतो
विहर्तुम् । ततः खलु स सूर्यकान्तः कुमारः सूर्यकान्ताया देव्याः स्वमातुः एत
मर्थं नो आद्रियते-कामपि स्वीकृतिचेष्टां न दर्शयति, नो परिजानाति-नानु-
मोदयति । तर्हि किं करोति ? इत्याह-तूष्णीकः-किञ्चिदप्यवदन्नेव संतिष्ठते ।
ततः खलु तस्याः सूर्यकान्तायाः देव्या अयमेतद्रूपः वक्ष्यमाणप्रकारकः आध्या-
त्मिकः-आ मगतो विचारः यावत् चिन्तितः कल्पितः प्रार्थितः मनोगतः सक-
ल्पः समुदपद्यत-समुत्पन्नः, तदेवाऽऽह-सूर्यकान्तः खलु कुमारः प्रदेशिनो राज्ञः
समीपे इमं मत्कथितं रहस्यभेदं-गुप्तमन्त्रणाप्रकाशनं मा करिष्यति-मा कुर्यात्,
इति कृत्वा-इति विचार्य प्रदेशिनो राज्ञः छिद्राणि-दूपणानि, मर्माणि-कुकृत्य-
लक्षणानि, एकान्तस्थानसेवितनिपिद्धाचरणानि, विवराणि-निर्जनस्थानरूपाणि,
अन्तराणि-अकाशलक्षणानि प्रतिजाग्रती प्रतिजाग्रती-अन्वेपयन्ती २ विहरति-
तिष्ठति ॥सू० १६२॥

मूलम्—तए णं सा सूरियकंता देवी अन्नया कयाइं पएसिस्स
रण्णो अतरं जाणइ असण-पाण-खाइम-साइम-सव्ववत्थगंधमल्ला-
लंकारेसु विसप्पओगं पउजइ । पएसिस्स रण्णो ण्हायस्स जाव
सुहासणवरगयस्स ते विससंजुत्ते असण-पाणं-खाइम-साइम-सव्व-
वत्थगंधमल्लालंकारे निसिरेइ । तए णं तस्स पएसिस्स रण्णो तं
विससंजुत्तं असणं-पाणं-खाइमं-साइमं आहारेमाणस्स समाणस्स

और-अपने इस प्रकार के विचारों को उसे सुनाया, पर उस विचारको पुत्रने
अच्छा नहीं समझा. तब-सूर्यकान्ता के हृदय को उस विचारने आलोकित करदिया
की-कहीं ऐसा न हो कि मेरे इस विचार को सूर्यकान्त, प्रदेशी राजा से प्रकट
कर दे, अतः-वह प्रदेशी राजा के छिद्रादिकों को देखने की ताकमें रहनेलगी. ॥३६२

विचारे तेनी साभे स्पष्ट उर्था. पणु पुत्रे आ वातने सारी भानी. नहिं त्थारे सूर्य-
कान्ताना मनभां आ जतने विचार थये डे भारी आ वात ये प्रदेशी राजा साभे
प्रकट उरी देखे तो शुं थये ? येउला भाटे ते डवे प्रदेशी राजाना छिद्रो वगेरे
नेवा लागी. ॥सू. १६२॥

सरीरंसि वेयणा पाउव्भूया उज्जला विउला पगाढा कक्कसा कडुया फरुसा निट्टुरा चंडा तिक्वा दुक्खा दुग्गा दुरहियासा पित्तज्जरपरिगय-सरीरे दाहवक्कते यावि विहरइ ॥ सू० १६३ ॥

छाया—ततः खलु सा सूर्यकान्ता देवी अन्पदा कदाचित् प्रदेशिनो राज्ञः अन्तर जानाति अशन-पान-खादिम-स्वादिम- सर्ववस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेषु विष प्रयोगं प्रयुनक्ति, प्रदेशिने राज्ञे स्नाताय यावत् सुखासनवरगताय तान् विषसंयुक्तान् अशन-पान-खादिम-स्वादिम-सर्ववस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारान् निसृजति । ततः खलु तस्य

“तएणं सूरियकंतादेवी” इत्यादि—

मूलार्थ—‘तएणं’ इसके बाद ‘सूरियकंतादेवी’ सूर्यकान्तादेवीने ‘अन्नया-कयाइ’ किसी एकदिन ‘पएसिस्स रन्नो’ प्रदेशी राजाके ‘अंतरंजाणइ’ षष्ठ-पारणा के अवसररूप अन्तर को जान लि । और असण-पाणखाइम-साइम सव्वन्धमल्लालंकारेसु विसप्पओगं पउज्जइ—’ अशन-पान खाद्यरूप आहारों में, तथा-वस्त्र-गन्ध-माला अलङ्कारों में विष का संप्रयोग करदिया. पएसिस्स रणो ण्ह ए जाव सुहासनवरगयस्स ते विससंजुत्ते असण पाण खाइमसाइमसव्व-वन्धमल्लालंकारे निसिरेइ—’ प्रदेशी राजा जब स्नान करके यावत् सुखदरूप श्रेष्ठ आसनपर आसीन था. तब उसके लिये उसने-उन विषसंप्रयुक्त अशन पान-खाद्य-स्वाद्यरूप आहार को परोसा. तब-पहिरने के लिये वस्त्र-गन्ध-माला. एवं-अलङ्कारों को दिया. ‘तए ण तस्स पएसिस्स रणो ते विससंजुत्तं असण-

‘तए णं सूरियकंता देवी’ इत्यादि ।

मूलार्थ—“तएणं” त्थार पथी “सूरियकंता देवी” सूर्यकान्ता देवीअ-“अन्नया कयाइ” केवल अथवा दिससे “पएसिस्स रन्नो” प्रदेशी राजने “अंतरं जाणइ” षष्ठ पारणाने अवसर इय अतर (तड) न्नाथी तीधो अने “असणपाणखाइम-साइमसव्ववन्धमल्लालंकारेसु विसप्पओग पउज्जइ’ अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्यइय आहारोमा तेमज्ज वस्त्र गन्ध माला अलंकारोमा विष संप्रयोग करी तीधो. “पएसिस्स रणो ण्हयास्स जाव सुहासनवरगयस्स ते विससंजुत्ते असणपाण-खाइमसाइमसव्ववन्धमल्लालंकारे निसिरेइ” प्रदेशी राजा स्नाते स्नान करीने यावत् सुखदरूप श्रेष्ठ आसन पर आसीन हुता त्थारे तेमना भाटे तेहे ते विषसंप्रयुक्त अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यइय आहार पीरन्थु. तेमज्ज पहिरवा भाटे वस्त्र-गन्ध-माला अने अलंकारो आथ्यां. “तए णं तस्स पएसिस्स रणो ते विस-

प्रदेशिनो राज्ञः तद्विषसंयुक्तम् अशनं पानं खादिमं स्वादिमम् आहरतः सतः शरीरे वेदना प्रादुर्भूता-उज्ज्वला विपुला प्रगाढा कर्कशा कटुका परुषा निष्ठुरा चण्डा तीव्रा दुःखा दुर्गा दुरध्यासा पित्तज्वरपरिगतशरीरो दाहव्युत्क्रान्तश्चापि विहरति ॥ सू० १६३ ॥

पाणं-स्त्राइमं-साइमं-आहारेण गरस समाणरस सरिंसि वेदना पाउब्धुना, उज्जला-विउला-पगाढा-ककसा-कडुया-फरुसा-निठुगा-चंडा-तिव्रा दुःखा दुग्गा-दु-हियासा-पित्तज्वरपरिग-सरीरे-दाह कंते यावि विह-इ—” इसके बाद उस प्रदेशी राजा के शरीर में उस विषसंयुक्त अहार के करने से वेदना उत्पन्न हो गई । यह वेदना उज्ज्वलथी दुःखदाई होने से सुख लेश से रहितथी-विपुलथी, सकल शरीर में व्याप्त होने से विस्तीर्णथी, अत्यंत-प्रगाढथी, कर्कश-कठोर थी, । जैसे-कर्कश-पाण का संघर्ष शरीर की सन्धियों को तंड देता है, उसी प्रकार इसे कर्कश कहा गया है, अप्रीति जनक होने से यह कटुक थी, मन में अति रूक्षता की जनक होने से दुर्भेद्य थी, चण्ड-गौद्र थी तीव्र-तीक्ष्ण थी, दुःखदा स्वरूप होने से दुःख थी, चिकित्सा से भी दुर्गम्य होने के कारणे दुर्गथी, दुम्ह होने से दुरध्याप थी । इस प्रकार की वेदना उत्पन्न होने के कारण वह राजा पित्तजार से अक्रान्त शरीर वाला हो गया, और-समस्त शरीर भ्रम में उसको दाह पडने लगी, । टीकार्थ-स्पष्ट है-॥१६३॥

संयुक्तं अशनं पाणं स्त्राइमं साइम आहाग्माणस्य समाणस्य सरिंसि वेदना पाउब्धुना उज्जला विउला पगाढा ककसा- दुग्गा-फरुसा-निठुगा-चंडा तिवा-दुःखा-दुग्गा-दु-हियासा-पित्तज्वरपरिग-सरीरे दाहवकंते यावि विह-इ’ त्यार-पछी ते प्रदेशी राजना शरीरमा ते विष संयुक्त आहार करवाथी वेदना उत्पन्न थछ गछ, आ वेदना उज्ज्वलण हुती, दुःखदा होवाथी सुख रहित हुती, विपुल हुती, समस्त शरीरमा व्याप्त होवाथी विस्तीर्ण हुती, प्रगाढ हुती, कर्कश-कठोर हुती जेम कठोर पथथरनी रगड शरीरमा संधि लागोने तोडी नापे छे, तेम ते वेदना पणु आत्म प्रदेशोने तोडती हुती अथी न अने कर्कश कडुवाभा आवी छे अप्रीतिजनक होवाथी अे कटुक हुती, मनमा अति रूक्षताजनक होवाथी पंड्य हुती, र निष्ठुर हुती, अशक्य हुती, यउ रौद्र तीव्र तीक्ष्ण हुती, दुःखदा स्वरूप होवाथी दुःखदा हुती, चिकित्साथी पणु दुर्गम्य हुती अथी ते दुर्ग हुती, दुम्ह होवाथी दुर्ध्यास हुती, आ नतनी वेदना उत्पन्न थछ होवाथी ते राजा पित्तज्वर-क्रान्त शरीरवाणे थछ गथे, अने तेना आभा शरीरमां गणतरा थवा भाडी,

टीकार्थ—स्पष्ट न छे, ॥ सू १६३ ॥

टीका—“तए णं सा” इत्यादि—ततः खलु सां सूर्यकान्ता देवी अन्यदा कदाचित्—कमिंश्चित् काले प्रदेशिनो राज्ञः अंतरम्—अवकाशं—षष्ठपारणावसर-मित्त्वर्थः, जानाति, अशन-पान-खादिम-सर्ववस्त्र-गन्ध-माल्यालङ्कारेषु—अशनादिसर्व-वस्तुषु विषप्रयंगं—विषस योगं, प्रयुनक्ति-करोति एवं कृत्वा स्नाताय—कृतस्ना-नाय, यावत्—सुखामनवरगताय—सुखदरूपश्रृंष्टासनोपविष्टाय प्रदेशिने राज्ञे तान् विषमंयुक्तान् अशनपान-खादिम स्वादिम-सर्ववस्त्र-गन्ध-मालया-ऽलङ्कारान् निसृ-जति-ददाति । ततः तदन्तरं खलु तस्य प्रदेशिनो राज्ञः तं विषसंयुक्तम् अशनं-पानं-खादिमं स्वादिममिति चतुर्विधाऽऽहारम् आहरतः गृह्णतः सतः शरीरे वेदना प्रादुर्भूता—समु-पन्ना, सा कीदृशी ? इ याह—उज्ज्वला—दुःखदतया उग्रा सुखलेश-रहितेत्यर्थः, विपुला-सबलशरी वशापकराद् विस्तीर्णा, अतएव प्रगाढा-अतिश-यिता, कर्कशा कठोरा, यथा कर्कशपाषाणसंघर्षः शरीरसन्धीस्त्रोटयति तथैवात्म प्रदेशांस्त्रोटयन्ती या वेदना जायते साः कर्कशेत्युच्यते, वटुका—अप्रीतिजनिका, परुषा मनोऽतीव रूक्षत्वोत्पादिना निष्ठुरा—अशक्याप्रतीकारत्वेन दुर्भेद्या, अत एव चण्डा-रौद्रा, तीव्रा—तीक्ष्णा दुःखा-दुःखदस्वरूपा, दुर्गा—चिकित्सादुर्गम्या, दुर्-ध्यासा-दुःमहा, एवम्भूता वेदना समुद्भूता, तेन कारणेन स राजा पित्तज्वर परिगतशरीरः—पित्तज्वरेण परिगतम्—आक्रान्त शरीर यस्य स तथा, अत एव दाहव्युत्क्रान्तः—दाहव्याप्तः सन् चापि विहसति—निष्ठति । ॥ सू० १६३ ॥

मूलम्—तए णं से पएसी राया सूरियकंताए देवीए अच्चाणं संपलछं जाणित्ता सूरियकंताए देवीए मणसावि अप्पदुस्समाणे जे-णेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, पोसहसालं पमज्जेइ, उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ दव्वमसंथारग संथरेइ, दव्वमसंथारगं दुरुहइ, पुरत्थाभिमुहे संपालयंकनिसन्ने करयलपरिग्गहियं पिरसावन्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एव वयासी—नमोत्थुणं अरहंताणं जाव संप-त्ताणं नमोत्थुणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मो-वदेसगस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए. पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं-त्तिकट्टु वंदइ नमसइ, पुण्विपि णं मए केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए थूलपाणाइवाए पच्चक्खाए जाव थूल-

परिग्गहे पच्चक्खाए तं इयाणिं पि णं तस्मेव भगवओ अंतिए सव्वं
पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि सव्वं
कोहं जाव मिच्छादंसणसह्णे पच्चक्खामि अकरणिज्जं जोगं पच्च-
क्खामि, सव्वं असणं० चउव्विहं पि आहारं जावज्जीवाए पच्च-
क्खामि, जंपि य मे सरीरं इट्ठं जाव फुसंतुत्ति एवंपि य णं चरि-
मेहिं उसासनीसासेहिं वोसिरामि-त्ति कट्ठू आलोइयपडिक्कंते सभा-
हिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सेहम्मे कप्पे सूरियाभे विमाणे
उववायसभाए देवत्ताए उववन्ने । ॥सू० १६४॥

इति पएसिरायस्स वण्णणं समत्तं ।

छाया—ततः खलु प्रदेशी राजा सूर्यकान्ताया देव्या आत्मानं संप्रलब्धं ज्ञात्वा
सूर्यकान्ताया देव्या मनमाऽपि अप्रद्विषन् यत्रैव पोषधशाला तत्रैव उपागच्छति
पोषधशालां प्रमार्जयति, उच्चारप्रस्रवणभूमिं प्रतिलेखयति, दर्भसंस्तारकं सं-
तृणति, दर्भसंस्तारकम् दूरोहति पौरस्त्याभिमुखः संपल्यंङ्कनिषण्णः करत्तलपरिगृहीतं

“तए णं से पएसी राया” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए णं-” इसके बाद “से पएसी राया-” वह प्रदेशी राजा
“सूरियकंताए-देवीए अत्ताणं सपलद्धं, जाणित्ता-” सूर्यकान्ता देवी की यह
उत्पात (करामत) है इस प्रकार जान कर भी—“सूरियकंताए देवीए मणसा
वि अप्पदुस्समाणे जेणेव पोसहसाल तेण व उवागच्छइ-” उस सूर्यकान्ता देवी
के प्रति मनसे भी द्वेषभाव नहीं करता हुआ जहां पोषधशाला थी वहां पर
गया—“पोसहसाल पमज्जेइ-” वहां जा करके उसने पोषधशाला की प्रमार्ज की
“उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ-” उच्चारप्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना

“तए णं से पएसी राया” इत्यादि

मूलार्थ—‘तएणं’ त्थार पछी ‘से पएसी राया’ ते प्रदेशी राजा ‘सूरियकंताए
देवीए अत्ताणं सपलद्धं जाणित्ता’ सूर्यकान्ता देवीये आ गधु कयुं छ आस
नल्लुवा छतांये “सूरियकंताए देवीए मणसा वि अप्पदुस्समाणे जेणेव पोसह-
साला तेणेव उवागच्छइ” ते सूर्य कान्ता देवी प्रत्ये मनथी पधु द्वेषभाव न करता
न्था पौषधशाणा हुती त्यां गथे. (पोसहसालं पमज्जेइ) त्यां न्धने तेणु पौषध-
शाणानी प्रमार्जना करी. “उच्चारपासवण भूमिं पडिलेहेइ” उच्चार-प्रस्रवण भूमिनी

शिर आवर्त मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्-नमोऽतु खलु अर्हद्भ्यः यावत्
संप्राप्तेभ्यः नमोऽतु खलु केशिने कुमारश्रमणाय मम धर्माऽऽचार्याय धर्मोपदेश-
काय, वन्दे खलु भगवन्तं तत्रगतम् इहगतः, पर्यतु मां भगवान् तत्रगतः इह
गतम्' इति कृत्वा वन्दते नमस्यन्ति, पूर्वमपि खलु मया केशिनः कुमारश्रमण-
स्यान्तिके शूलपाणानिपातः प्रत्याख्यातः यावत् शूलपरिग्रहः प्रत्याख्यातः;

की—"द्वभसंथारगं संथरेड्—" और फिर दर्भ का संथारा विछाया
'द्वभसंथारगं दुरुहड्—" उसे विछा कर वह उस पर बैठ गया. "पुर-
न्थाभिमुहे संपलियंकनिसन्ने—" वहां आरूढ हो-र वह पूर्व दिशा की ओर
मुह करके पर्यङ्कासन से बैठ गया. "करयलपरिग्गाहियं सिरसावत्तं मत्थए अजलिं
कट्टु एवं वपासी—" और दोनों हाथों की अंजली बनाकर एवं—उसे मस्तक
पर घुमाकर इस प्रकार से कहने लगा. "नमो थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं,
नमो थुणं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरिस्स धम्मोवदेसगस्स—" अर्हन्त
भगवन्तों के लिये नमस्कार हो, मेरे धर्मोपदेशक धर्माचार्य केशीकुमार श्रमण
के लिये नमस्कार हो, "वंदामि णं भगवन्तं तथ य इहगए—" यहां रहा हुआ
मैं वहां पर रहे हुवे भगवान् को वन्दना करता हूं, "—पासउ मे भगवं
तन्थगए इहगय ति कट्टु वंदइ नमंसड—" वहां पर रहे हुवे वे भगवान् यहां
रहे हुवे मुझे देखे—इस प्रकार कह कर उस प्रदेशी राजाने उनकी वन्दना की
नमस्कार किया. 'पुंवि पि णं मए केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए शूल-
पाणाइवाए पच्चक्खाए. जाव शूलपरिग्गहे पच्चक्खाए " पहलेमी मैंने केशी

प्रतिवेणना करी "द्वभसंथारगं संथरेड्" अने पछी दर्भतु आसन त्या पाथरुं.
"द्वभसंथारगं दुरुहड्" तेने पाथरीने ते तना पर ठेबा थर्र गये. "पुरन्था-
भिमुहे संपलियंकनिसन्ने" त्या आरूढ थरने ते पूर्व दिशा तरइ मुष् करीने
पर्यंकासनथे जेसी गये. 'करयलपरिग्गाहियं सिरसावत्तं मत्थए अजलिं कट्टु एवं
वपासी' अने णन्ने डाथोनी अजलिं जनावीने अने तेने मस्तक पर डेरवी ते
आ प्रभाणे कहेवा लाओये. "नमोथुणं अरहंता ण जाव संपत्ताणं नमोथुणं
केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरिस्स धम्मोवदेसगस्स" अर्हन्त भग-
वतने मारा नमस्कार छे माग धर्मोपदेशक धर्माचार्य केशीकुमार श्रमणने माग
नमस्कार छे "वंदामि णं भगवन्तं तन्थगए इहगए" अर्हन्त भगवन्ने हु त्या वर्तमान
भगवानने वंदन कर छुं. 'पासउ मे भगवं तन्थगए इहगय ति कट्टु वंदइ.
नमंसड" त्या गहेता भगवान गने अर्हन्त भगवन्ने आ प्रभाणे करीने ते प्रदेशी
राजाने तेभने वंदन करी नमस्कार करी "पुंवि पि णं मए केसिस्स कुमारसम-
णस्स अंतिए शूलपाणाइवाए पच्चक्खाए. जाव शूल परिग्गहे पच्चक्खाए"

तद् इदानीमपि खलु तस्यैव भगवतः अन्तिके सर्वं प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि
यावत् सर्वं परिग्रहम् प्रत्याख्यामि, सर्वं क्रोधं यावत् मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि
अकरणीयं योगं प्रत्याख्यामि, सर्वम् अशनं चतुर्विधमपि आहारं यावज्जीवं
प्रत्याख्यामि, यदपि च मे शरीरम् इष्टं यावत् स्पृशन्तु इति एतदपि च खलु
चरमैः उच्छ्वासनिःश्वासैः व्युत्सृजामि, इति कृत्वा आलोचितप्रतिक्रान्तः समाधि-

कुमारश्रमण के पास स्थूल प्राणातिपातका यावत् स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान
किया है—‘तं इयाणि पि णं तस्सेव भगवओ अंतिए सच्चं पाणाइवायं प च-
क्खामि—’ अब भी मैं उन्ही भगवान् के पास उसी सब प्राणातिपात का
प्रत्याख्यान करता हूँ, “जाव सच्चं परिग्रहं पच्चक्खामि—” यावत् समस्त
परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ। सच्चं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं प च-
क्खामि—” समस्त क्रोध का प्रत्याख्यान करता हूँ, यावत् मिथ्यादर्शन शल्य
का प्रत्याख्यान करता हूँ। “अकरणीज्ज जोगे पच्चक्खामि—” अकरणीय योग
(अशुभ योगका) का प्रत्याख्यान करता हूँ, “सच्चं असणं चउच्चिहं वि आहारं जाव
ज्जीवाए पच्चक्खामि—” उश्न-पान आतिरूपचारः प्रकार के आहार का यावज्जीव
त्याग करता हूँ “जं पिय मे सरीरं इट्ठं जाव फुसंतु त्ति एवं पिय णं चरिमे-
हिं उसासनीसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्ठुं—” मैंने पहले जिस इष्टादि विशेषण
विशिष्ट शरीर की रक्षा की इस अभिप्राय से कि—इसे शीत उष्ण आदि परिग्रह
तथा-सर्पादिकृत उपसर्ग आदिकी बाधा न पहुँचाये—जब मैं उसी शरीर का अन्तिम
उच्छ्वास-निश्वासों तक परिया। करता हूँ, इस प्रकार विचार करके—“आलो-

पडेलां पणु मे' केशीकुमारश्रमणनी पासे स्थूल प्राणातिपातनु यावत स्थूल परिग्रहनु
प्रत्याख्यान करुं छुं “त इयाणि पि णं तस्सेव भगवओ अंतिए सच्चं पाणा-
इवायं पच्चक्खामि” छवे पणु छु ते ज लगाननी पासे तेज समस्त प्राणु पाति
नु प्रत्याख्यान करे छु. “जाव सच्चं परिग्रहं पच्चक्खामि” यावत समस्त परि-
ग्रहनु प्रत्याख्यान करे छु “सच्चं कं हं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि”
समस्त क्रोधनु प्रत्याख्यान करे छु यावत मिथ्यादर्शन शल्यनु प्रत्याख्यान करे छु.
“अकरणीजं जोगे पच्चक्खामि” अकरणीय योगनु प्रत्याख्यान करे छु “सच्चं
असणं चउच्चिहं वि आहारं जावज्जीवाए पच्चक्खामि” अशन-पान वगेरे रूप चार
प्रकारना आहारनो यावत एवम त्याग करे छु “जं पिय मे सरीरं इट्ठं जाव
फुसंतु त्ति एवं पिय णं चरिमेहिं उसासनीसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्ठुं” मे
पडेला जे छष्ट वगेरे विशेषणु विशिष्ट शरीरनी रक्षा करी ते आ प्रयोजनथी के
आने शीतउष्ण वगेरे परीपडेा तथा सर्पादिकृत उपसर्ग वगेरे बाधा पडेलांयाडे नडि
छवे छु ते ज शरीरनो अंतम उच्छ्वास निःश्वासो सुधी परित्याग करे छु. आ

प्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे सूर्याभे विमाने उपपातसभायां देवतया उपपन्नः ॥ सू० १६४ ॥

इति प्रदेशिराजस्य वर्णनं समाप्तम् ।

टीका—“तए णं से पएसी” इत्यादि—ततःखलु स प्रदेशी राजा सूर्य-कान्ताया देव्या-स्वराज्या आत्मानं-स्व स्ंप्रलब्धं—विषप्रदानेन वञ्चितं सूर्यकान्तया मा णार्थं महाविषं दत्तमिति ज्ञात्वा सूर्यकान्ताया देव्या मनसाऽपि—मनोमात्रे-णापि अप्रद्विषन्—द्वेषमकुर्वन् यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति, पौषधशालां प्रमार्जयति, उच्चारप्रस्रवणभूमिं प्रतिलेखयति, दर्भसंस्तारकं सस्तृणाति दर्भसस्तारकं दूरोहति—अधिरोहति दर्भसस्तारकोपर्युपविशतीत्यर्थः, पौरस्त्याभिमुखः—पूर्वदिगभि-

इ.पडिकंते ममाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कल्पे सूरियाभे विमाणे उववाय भाए देवत्ताए उववन्ने—” उसने पहले गुरु को सम्मुख करके जिन अति-कारों का प्रयाख्यान किया था अब उन्हें पुनः अकरण विषय से अतिक्रान्त करके, अर्थात्—आलोचनापूर्वक मिथ्यादुष्कृत देकरके चित्त की समाधि प्राप्त करता हू. और—उसी स्थिति में वह कालमाप में काल करके सूर्याभविमान में उपात सभा में देव पर्याय से उत्पन्न हो गया. ॥

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने जब जाना कि—मेरी रानी सूर्यकान्ताने ही मुझे मारने के लिये विष प्रदान कर इस स्थिति पर पहुंचाने का निमित्त उपस्थित किया है तो वह इस हालत में भी उसके प्रति द्वेषभाव से रहित बना रहकर जहां पौषधशाला थी वहां पर चला गया. वहां जाकर उसने पौषधशाला की प्रमार्जना की उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की. और—दर्भ का संस्तारक विछाया. विछाकर फिर वह उसपर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके

प्रभाषे विद्यां कर्त्तुने ‘आलोइपडिकंते ममाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कल्पे सूरियाभे विमाणे उववायसभाए देवत्ताए उववन्ने’ तेषु पदेषु शुद्धी साभे न् अतिशारेणु प्रत्याख्यान कर्तुं इतु इवे तेभने क्ती अक्रेणु विषयधी अतिशत क्तीने—अष्टवे के ‘आलोचनापूर्वक मिथ्या दुष्कृत आभीने चित्तनी ममाधि प्राप्त क्त छु’ अने आवी स्थितिमा ते शालमायमा शल कर्त्तुने अर्थाभविमानमा उपपात सभाया देव पर्यायधी नन्म पाभ्ये।

टीकार्थ—प्रदेशी राजाने नान्ये न्यारे आ वात जाणी के भारी जाणी सूर्यकान्ताअने अने भारवा भाटे विष आभ्यु छे अने भारी आ दशा क्ती छे तो ते प्रदेशिनि भा पणु सूर्यकान्ता प्रत्ये अद्वेषभावधी व्यवहार क्तीने न्या पौषधशाला इती त्या गथे। त्या नदने तेहे पौषधशालानी प्रमार्जना क्ती उच्चारप्रस्रवण भूमिनी प्रति लेखना क्ती अने दर्भसस्तारक पाधये। त्याअधी ते तेनी उपर पूर्व दिशा तरक

मुखः सपत्यङ्गनिषणः—पर्यङ्कासनेन समुपविष्टः सन्न करतलपरिगृहीतं गिरावर्तं
 मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्—नमोऽस्तु खलु अर्हद्भ्यः यावत् स ग्राणेभ्यः ।
 अत्र यावत् खलु न नमोऽस्तु णं” पाठः सर्वोऽपि वाच्यः । तथा नमोऽस्तु खलु
 केशिने कुमारश्रमणाय सम धर्माचार्याय धर्मोपदेशकाय, इति खलु भगवन्तं तत्र
 गतम् इह गतः—अत्र स्थितोऽहम्, पश्यतु मे—प्रम मामित्यर्थः, भगवान् केशि-
 कुमारश्रमणस्तत्रगत इहगतम्, इति कृत्वा वदते नम यति, कथयति—पूर्वमपि खलु
 मया केशिनः कुमारश्रमण य अन्तिके—समीपे शूलप्राणातिपातः प्रत्याख्यातः ?
 यावत्—यावच्छब्देन “स्थूलमृषावादः प्रत्याख्यातः२ शूलादत्ताऽऽदानं प्रत्याख्यातम्
 ३, इति संग्राह्यम्, स्थूलपरिग्रहः प्रत्याख्यातः४, तद् इदानीमपि खलु तस्यैव

पत्यङ्गासनसे बैठ गया. दोनों हाथों को जोड़ा-और-आवर्तकर इ प्र आ करने
 लगा. अर्हन्तों को नमस्कार हों. यहां—यावत् शब्द से “नमोऽस्तु णं ” पाठ
 पूरा उसने कहा वह मझ लेना चाहिये । इस प्रश्न, कहते करते अपने
 ऐसा भी रहा कि—मुझे धर्म का उपदेश देने वाले जो मेरे धर्माचार्य केशी
 कुमाश्रमण हैं-उन्हें भी मेरा नमस्कार हो, वे यदि—हां पर मेरे पास
 वर्तमान में नहीं हैं अतः जहां पर भी वे विराजमान हों मैं
 यहां रहा हुवा उन्हें नमस्कार करता हूं. वहां रहे हुवे वे भवान्
 केशीकुमाश्रमण यहां रहे हुवे मुझे देखे इ प्र आ वह पर उरमें उन को
 वन्दना की-नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार कर फिर वह इस प्रकार से
 कहने लगा मैंने पहले भी केशीकुमाश्रमण के समीप शूल प्राणातिपात का
 प्रत्याख्यान किया है—यावत् स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान किया है. स्थूल
 अदत्तादान का प्रत्याख्यान किया है. औ—स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया

मुझ करीने पर्यङ्कासनेनी मुद्रामा भेयी गया त्यार पाद तेणे अन्ने लुथोनी अञ्जलि
 अनादी अने तेने मस्तक पर करीने आ प्रमाणे कडेवा लाये. अर्ह तोने नमस्कार
 छे, अडी यावत् पद्यी “नमोऽस्तु णं” पूरापाठ ते भोदये ये वात समजवी जेछये.
 आ प्रमाणे कडेतां कडेता तेणे आ प्रमाणे कछु के भने धर्मोपदेश आपनार मारा
 धर्माचार्य केशीकुमार श्रमणने मारा नमस्कार छे तेयो अडीं डमण्णा विद्यमान
 नथी छतांये तेयोश्री ज्या विराजता डाय हुं अडी रडीने तेभने नमस्कार कर
 छुं. त्या रहेता ते भगवान केशीकुमारश्रमण अडीं रहेला भने बुचे. आ प्रमाणे
 कडीने तेणे तेभने वदन करी नमस्कार कर्या. वदन तेभज नमस्कार करीने ते आभ
 कडेवा लाये के मे पडेलां पणु केशीकुमारश्रमणनी पासै स्थूल प्राणातिपातनुं प्रत्या-
 ख्यान कर्युं छे यावत् स्थूल मृषावादनुं प्रत्याख्यान कर्युं छे, स्थूल अदत्तादाननुं
 प्रत्याख्यान कर्युं छे अने स्थूल परिग्रहनुं प्रत्याख्यान कर्युं छे. हुवे हु तेज केशी

अगव :- केशिकुमारश्रमणयैव अन्तिके तदाज्ञावर्तित्वेन तस्मिन् भगव त विद्यमाने सति समीपे इव समीपे सम्प्रति सर्व प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि या-त्-यावच्छब्देन सर्वं मृषावादं प्रत्याख्यामि, सर्वमदत्तादानं प्रत्याख्यामि, इति संग्राह्यम्, सर्व परिग्रहं प्रत्याख्यामि तथा क्रोधं यावत् यावच्छब्देन-मान-मायां लोभं रागं द्वेषं कलहमभ्याख्यान पैशुन्य परपरिवादं गत्यस्ती माया-मृषा 'इति संग्राह्यम्. मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि, सर्वम् अशनमिति-अशन खाद्यं स्वाद्यं चतुर्विध-माहारं यावज्जीवं-प्राणधारणपर्यन्तं प्रत्याख्यामि यदपि च मे शरीरम् इष्टं यावत् पृथुश तु अत्र यावच्छब्देन का तत्त्वादि विशेषणविशिष्टं शरीर शीतोष्णादयः परीपहाः सर्पादिकृता उपर्गाः कर्कशकठोरदयः स्पर्शाश्च मा रपृथुश तु इत्यन्तं संग्रा-

है. अब मैं उसी केशिकुमारश्रमण के पास उनकी आज्ञा के बगवर्ती होने के कारण उन्हें अपने समीप रहा हुआ जैसा मानकर समस्त प्राणातिपात वा प्रत्याख्यान करता हूँ. समस्त मृषावाद वा प्रत्याख्यान करता हूँ और समस्त अदत्तादान वा प्रत्याख्यान करता हूँ और समस्त परिग्रह वा प्रत्याख्यान करता हूँ. तथा क्रोधो यावत् मान माया लोभका राग-द्वेष, कलह का प्रत्याख्यान पैशुन्य परिवाद अर्थात् माया मृषा का, एवं-मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ। तथा-समस्त अशनका पानका खाद्यका स्वाद्यका, यावज्जीव-प्राणधारण पर्यन्त परित्याग करता हूँ, तथा-का-तत्त्वादि विशेषणों से युक्त जिस शरीर की मैंने शीतोष्ण आदिपरीपहों से सर्पादिकृत उपसर्गों से एव-कर्कश कठोर आदि स्पर्शों से ये सब इसे स्पर्शन करे इस ख्याल से रक्षा की इसका भी मैं अब अन्तिम व्यामोच्छ्वास तक यावज्जीव तक परित्याग करता हूँ। तान्पर्य इसका इस प्रकार से है-मैंने इस शरीर

कुमारश्रमणनी पास तेमनी आज्ञाने वश होवाने दीध तेओ भासी पाये न छे ओम भानीने समस्त प्राणुपिततनु प्रत्याख्यान कइछु. समस्त मृषावादानु प्रत्याख्यान कइ छु समस्त अदत्तादाननु प्रत्याख्यान कइ छे अने समस्त परिग्रहनु प्रत्याख्यान कइ छु तेमज क्रोधनु यावत् मान माया लोभ नग द्वेष इहइनु प्रत्याख्यान कइ छे पैशुन्य परिवाद अरनि माया मृषा अने मिथ्यादर्शनशल्यनु प्रत्याख्यान कइ छे तेमज समस्त अशननु पाननु खाद्यनु स्वाद्यनु यावत् एवज प्राणु धारण पर्यन्त विसर्जन कइ छे. तेमज शरीर इयादि विशेषणोधी युक्त के शरीरनी मे शीतोष्ण वगेरे परीपहाधी = परिग्रहण उपसर्गोधी अने इष्टं अ इष्टं वगेरे उपसर्गोधी-ओओ. आ शरीरने उपसर्ग नदि मे उच्छ्वास वगैरी अने परीपहाधुं इवे अन्तिम व्यामोच्छ्वास सुधी पण्डित के कइ छे तन्पर्य अ. प्रमत्तं इ

ह्यम्, तथाहि—का-तं, प्रियं मनोज्ञं, मनआमं, धैर्य-धैर्यस्वरूपं विश्वास योग्यं, संमतम्, अनुमतं बहुमतं, माण्डकण्डकममानं, रत्नकण्डकभूतमिदं शरीर मा खलु शीतं मा खलु उष्णं, मा खलु क्षुधा मा खलु पिपासा, मा खलु व्यालाः—सर्पाः, मा खलु चोराः, मा खलु दंशाः, मा खलु मशकाः, मा खलु वातिकः—वातसम्बन्धी रोगातङ्काः एवं पैत्तिकः श्लैष्मिकः सान्निपातिकः इत्यादि का विविधा रोगातङ्काः, तत्र रोगाः—ज्वरदयः, आतङ्काः—सद्योघातिशूलादयः, तथा परीषहाः—क्षुधादयः, उपसर्गाः सर्पादिकृता उपद्रवाः, स्पर्शाः—कर्कशकठोर दयः, मा स्पृश-तु-मे शरीरे मा मंलग्ना भव तु इति—इति बुद्ध्या सरक्षितम् एतदपि च खलु शरीरं चरमैः—अतिमैः उच्छ्वासाभिः—व्युत्सृजामि—त्यजामि,

को कान्त प्रिय-मनोज्ञ मन आम धैर्यस्वरूप विश्वासयोग्य, संमत-अनुमान, तथा—बहु मत माना एवं-रत्न रखने के पिटारे के जैसा बहुमूल्य माना। अतः—इस की तरह से मैंने संभाल रखी इसे शीत से बाधा न हो जावे, उष्णसे संताप न हो जावे, क्षुधा से कष्ट न हो जावे. पिपासासे यह आकूलित न हो जावे. सर्पादि कृत उपद्रवों से यह पीड़ित न हो जावे. चोरों द्वारा इसे आपत्ति में पडना न पडे, दंश—मशक इसे काट न लेवे. वात सम्बन्धी रोगातङ्को—ज्वरादि रोगों सद्योघाति शूलादिकों से यह दुःखित न हो जावे पैत्तिक—श्लैष्मिक—सान्निपातिक रोगातङ्क इसे मलिन न करदे कर्कश—कठोर आदि स्पर्श करके इसके सौन्दर्य का अपहरण न करे, इस प्रकार से मैंने इसकी हरतरह के खूब रक्षाकीथी, परन्तु—अब मैं ऐसे प्रिय इस शरीर के साथ अषना सम्बन्ध जीवन के अन्तिमक्षण तक यावज्जीव तक बिच्छेद

के मे आ शरीरने कात, प्रिय, मनोज्ञ, मन आम, धैर्यस्वरूप, विश्वास योग्य, संमत-अनुमत तेमज् बहुमत जाण्यो अने रत्न मूकवानी पेटीनी जेम जहु मूल्यवान मान्यु अथी ज् आनी मे जधी रीते सलाण राणी. आने उडीथी पीडा न थाय, उष्णताथी संताप न थाय, क्षुधाथी कष्ट न थाय, तरसथी व्याकुण न थाय सर्पादिकृत उपद्रवाथी आ पीडित न थाय चोरो वडे आ आकृतमा न इसाई पडे, दंश-मशक आने कष्ट न आपे वात सम्बन्धी रोगातङ्को—ज्वरादि रोगो, सद्योघाति शूलादिकोथी आ शरीर दुःखित न थाय, पैत्तिक श्लैष्मिक, सान्निपातिक रोगातङ्क आ शरीरने मलिन न करे, कर्कश कठोर वगेरेना स्पर्शथी अेना सौन्दर्यनुं अपहरणु न करे आ प्रमाणे मे जधी रीते आ शरीरनी भूम रक्षा करी डती पणु डवे डुं आ अेवा प्रिय शरीरनी साथे पोताने संधं एवनना अतिम क्षण सुधी छोडी दडं छुं आम विचार करीने ते प्रदृशी

इति कृ वा—इत्यालोच्य स प्रदेशी राजा आलोचितप्रतिक्रान्तः—आलोचिताः—पूर्व
गुरुमभिसुखीकृत्य प्रकाशिताः अतिचाः। ते पश्चात् प्रतिक्रान्ताः—पुनस्कणविषयी-
कृता येनासौ तथा—आलोचनापूर्वकप्रदत्तमिथ्यादुष्कृत इत्यर्थः समाधि-प्राप्तचित्त
समाधिकः सन् कालमासे—कालावसरे कालं कृत्वा—मृत्युं प्राप्य सूर्याभे विमाने
उपपातसभायां देवतया—देवत्वेन उपपन्नः—उत्पन्नः । ॥सू० १६४॥

इति प्रदेशिराजस्य वर्णनं माप्तम् ॥

अथ प्रदेशिराजजीवस्य सूर्याभदेव याऽऽगामिभववर्णनमाह—

मूलम्—तए णं सूरियाभेदेवे अहुणोववन्नमए चैव समाणे पंच-

विहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभाव गच्छइ, त जहा—आहारपज्जत्तीए सरीर-
पज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणपाणपज्जत्तीए भासमणपज्जत्तीए, त
एवं खलु भो । सुरियाभेणं देवेणं दिव्वा देविड्डी दिव्वा देवजुई
दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए । ॥सू० १६५॥

छ.या—ततः खलु स सूर्याभे देवः अधुन पपन्नक एव सन् पञ्चविधया पर्याप्ति
भावं गच्छति, तद्यथा आहारपर्याप्त्या१, शरीरपर्याप्त्या२, इन्द्रियपर्याप्त्या३, आन-

कर्ता ह. इस तरह विचार कर वह प्रदेशी राजा आलोचित प्रतिक्रान्त होकर
समाधि में तल्लीन हो गया. और—काल मास में मरण प्राप्त कर सूर्याभविमान
में—उपपात सभा में देव पर्याप्त से उत्पन्न हो गया. ॥सू० १६४॥

(प्रदेशी राजा वर्णनसमाप्त.)

“प्रदेशी राजा के जीव-सूर्याभ देव के आगामी भवका वर्णन

“तए णं से सूरियाभे देवे अहुणोववन्नए—” इत्यादि

मूलार्थ—“तए णं सूरियाभे देवे—” इसके बाद तत्काल उत्पन्न हुआ ही
वह सूर्याभदेव पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त हो गया. “तं जहा—आहार

राज आलोचित प्रतिक्रान्त बंधने समाधिमा तल्लीन बंध गया अने हाल मासमा
मन्थु पाभीने सूर्याभविमानमा उपपात मला. । देव पर्याप्तये उत्पन्न थये. ॥सू० १६४॥

प्रदेशी राजानुं वर्णन समाप्त

“प्रदेशी राजाना उप-सूर्याभदेवतु आगामी भवतु वर्णन”

“तए णं से सूरियाभे देवे अहुणोववन्नए” इत्यादि.

मूलार्थ—“तए णं सूरियाभे देवे” त्याः पछी उत्पन्न थला ज ते सूर्याभदेव
पांच प्रकारनी पर्याप्तियोंकी बंधत बंध गया “तं जहा—आहारपज्जत्तीए, शरीर

प्राणपर्याप्त्याऽ, भाषाननःपर्याया ५, तद् एवं खलु भो ? सूर्याभेन देवेन दिव्या देवर्द्धिः, दिव्या देवद्युतिः दिव्यो देवानुभावः लब्धः प्राणः अभिसमन्वागतः ॥ सू० १६५॥

टीका—“तए णं से सूरियाभे देवे” इत्यादि—ततः खलु स सूर्याभो देवः अधुनोपपन्नक एव—तत्कालोत्पन्नक एव सन्न पञ्चविधया पर्याप्त्या पर्याप्तिभाव गच्छति. पर्याप्तिपञ्चकरणार्थः पूर्वं व्यञ्जीतितमसुत्रे गतः । एवमनेन कारणेन प्रदेशीराजभवं आस्ति. कभावपूर्वकश्रावकधर्माराधनरूपेण आलोचितप्रतिलोडित्वसमाधिमरणादिरूपेण च कारणेन भो—हे गौतम ! सूर्याभदेवेन इयं दिव्या देवर्द्धिः—विमानादिरूपा. दिव्या देवद्युतिः—शरीराभरणादिकान्तिः, दिव्यो देवानुभावः—देवप्रभावः, लब्धः—उपार्जितः, प्राणः—स्वाधीनभूतः, अभिसमन्वागतः—भोग्यत्वेन सम गभिमुखमागतः ॥सू० १६५॥

पञ्जत्तीए, सरीरपञ्जत्तीए. इंदि पञ्जत्तीए, आण- णपञ्जत्तीए, भासमणपञ्जत्तीए—” वे पांच पर्याप्ति । इस प्रकार से हैं—आहारयोसि-शरीरपर्याप्त-इन्द्र-पर्याप्ति-श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और-भाषा मनःपर्याप्ति, “तं एवं खलु भो ? सूरियाभेणं देवेणं दिव्या देवर्द्धि-दिव्या देवजुई-दिव्ये देवाणुभावे-लद्धे पत्ते अभिसमन्वागत—” इस तरह से इस सूर्याभदेवने प्रदेशी राजा के भवमें अन्तिम भवपूर्वक श्रावक धर्म की आराधना की थी. फिर-आलोचन प्रतिक्रान्त होकर यह समाधि प्राप्त हुआ था. इन्ही सब कारणों से इसने सूर्याभदेव के पर्याय में यह दिव्यदेवर्द्धि-विमानादि-दिव्य देवद्युति-शरीराभरणादि कान्ति और दिव्यदेवानुभाव-देवप्रभाव, उपार्जित किया है प्राप्त किया है. अने अधीन किया है. और उसे भोग्यरूप होने के कारण अच्छी तरह से उसे भोगा है—

टीकार्थ—स्पष्ट है. पांच प्रकार की पर्याप्तियों का स्वरूप पहिले ८३-वें सूत्रमें प्रकट किया गया है ॥सू० १६५॥

पञ्जत्तीए. इंदियपञ्जत्तीए, आणपाण पञ्जत्तीए, भासमणपञ्जत्तीए” ते पांच पर्याप्तियों आ प्रमाणे छे—आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति अने भाषा मनः पर्याप्ति “तं एवं खलु भो ! सूरियाभे णं देवेणं दिव्या देवर्द्धि—दिव्या देवजुई—दिव्ये देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्वागत—” आ प्रमाणे ते सूर्याभदेवे प्रदेशी राजाना लवमा आस्तिक लावपूर्वक श्रावक धर्मनी आराधना करी हुती अने पछी आलोचित प्रतिक्रान्त यधने ते समाधि प्राप्त थयो हुतो. आ यथा कारणेथी तेणे सूर्याभदेवना पर्यायमा दिव्य देवर्द्धि विमानादि दिव्यदेवद्युति शरीराभरणादि कान्ति अने दिव्य देवानुभाव देवप्रभाव उपार्जित कर्था छे, भोग्यथा छे. स्वाधीन गनाव्या छे. अने तेने भोग्यरूप होवाथी सारी संते तेने उपलोग कर्था छे. टीकार्थ स्पष्ट छे पांच प्रकारनी पर्याप्तियों स्वरूप पहिला ८३ भा सूत्रमा प्रकट करवाभा आच्यु छे. ॥१६५॥

मल्ल—सूरियाभस्स णं भन्ते । देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता ? गोयमा । चत्तारि पल्लिओवमाइं ठिई पणत्ता । से णं भन्ते ! सूरियाभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ ? कहि उव्वज्जिहिइ ? गोयमा । महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलाणि भवंति तं जहा—अट्ठाइ दित्ताइ विउलाइ वित्थिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइं बहुधणवहुजायरुवरययाइ, आओगपओगसंपउत्ताइ विच्छड्डियपउरभत्तपाणाइ बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूयाइ बहुजणस्स अपरिभूयाड, तत्थ अन्नयरम्मि कुलम्मि पुत्तत्ताए पच्चायाइस्सइ ॥ सू० १६६ ॥

छाया—सूर्याभस्स खलु भदन्त ! देवस्स कियन्तं कालं स्थितिः प्रजप्ता ? गौतम ! चत्वारि पल्लोपमानि स्थितिः प्रजप्ता । स खलु भदन्त ! सूर्याभो देव तस्माद्देवलोकाद् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं चयं त्ववचा कुत्र

सूरियाभस्स णं भन्ते-? देवस्स केव यं कालं ठिई पणत्ता—” इत्यादि

मूलार्थ—प्रश्न—“सूरियाभस्स णं भन्ते-? देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता—” हे भदन्त-? सूर्याभिव्यक्त की स्थिति कितनी कही गई है—३ उत्तर—“गोयमा-? चत्तारि पल्लोपमाइं ठिई पणत्ता—” हे गौतम-? चार पल्लोपम की सूर्याभिव्यक्त की स्थिति कही गई है । प्रश्न—“से णं भन्ते-? सूर्याभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ ? कहि उव्वज्जिहिइ—” हे भदन्त-? वह सूर्याभिव्यक्त देव उस देवलोकने आयुःक्षय-

“सूरियाभस्स णं भन्ते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” इत्यादि.

मूलार्थ—प्रश्न “सूरियाभस्स णं भन्ते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पणत्ता” हे भदन्त ! सूर्याभिव्यक्त की स्थिति कितनी कही गई है ? उत्तर—“गोयमा ? चत्तारि पल्लोपमाइं ठिई पणत्ता—” हे गौतम ! सूर्याभिव्यक्त की स्थिति चार पल्लोपम के टुकड़े के देवलोके में कही गई है । प्रश्न—“से णं भन्ते ! सूर्याभे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहि गमिहिइ ? कहि उव्वज्जिहिइ—” हे भदन्त ! तू सूर्याभिव्यक्त देव के देवलोकने आयुःक्षय-

गमिष्यन्ति ? कुत्रोत्पत्स्यते ? महाविदेहे वर्षे यानि इमानि कुलानि भवन्तः तद्यथा-आढ्यानि दीप्तानि विपुलानि विस्तीर्णविपुलभवनशयनासनयानवाहनानि बहुधन-बहुजातरूपरजतानि आयोगप्रयोगसंपुत्तानि विच्छिदितप्रचुरभक्तपानानि बहुदासीदासगोमहिषगवेलकप्रभूतानि बहुजनस्य अपरिभूतानि, तत्र अय-मस्मिन् कुले पुत्रतया यास्यति ॥ सू० १६६ ॥

भक्षय, एवं-थितिक्षय के बाद अनन्तर देव शरीर को छोड़कर वहां जावे गा-३ कहां उत्पन्न होवेगा-३ उत्तर-“गोयमा-? महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलानि भवन्ति, तं जहा-अर्द्धां दित्तां विउलाहिं विन्थिन्नविउलभवनशयनासणजाणवाहणां बहुधणबहुजायस्व रययाइ-” है गौतम-? महाविदेह क्षेत्र में जो ये कुल हैं, कि जो-आढ्य है-दीप्त है-विपुल है, विस्तीर्ण-विपुल भवनवाले हैं विस्तीर्ण विपुलशयनासन वाले हैं विस्तीर्ण विपुल यान-वाहनवाले हैं, बहुधनवाले हैं बहुतर जातरूप वाले हैं बहुरजतवाले हैं ‘आओगपओगसंपउत्ताइं विच्छिदियपउरभत्तपाणाइं’ बहु दासीदास गो महिस गवेलगप्पभूयाइं, बहुजणस्स अपरिभूयाइ-” आओग प्रयोग जिन से व्यापृत होते रहते हैं, दीनजनों के लिये उहां से प्रचुर मात्रा में भक्तपान प्राप्त होता है, जिन के पास दासी-दास अनेक संख्या में सेवा करने के लिये उपस्थित रहना है, प्रचुर मात्रा में जहां गो-महिष, एवं-अजा मेष अदि पशु कायम बने रहते हैं, तथा-कोईभी जन जिनको तिग्स्कां नहीं कर सकता है, “तत्थ अन्नयरंसि कुलम्मि पुत्तनाए पच्चायाइस्सइ-” उन कुलों में से किसी एक कुल में पुत्ररूप से उत्पन्न होगा. ॥

अने थितिक्षय पछी देव शरीरने त्यज्जने क्या जशे ? क्या उत्पन्न थशे ? उत्तर- “गोयमा ! महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलानि भवन्ति, तं जहा-अर्द्धां दित्तां विउलाहिं विन्थिन्न विउलभवनशयनासणजाणवाहणां बहुधण बहुजायस्व रययाइं” है गौतम ! महाविदेह क्षेत्रमा जे कुलो छे-जे आढ्य छे, दीप्त छे, विपुल छे, विस्तीर्ण भवनवाणा छे, विस्तीर्ण विपुल शयनासनवाणाओ छे, विस्तीर्ण विपुल यान-वाहन वाणाओ छे, बहुधन संपन्न छे, बहुतर जातरूपवाणा छे, बहुरजतवाणा छे. “आओगपओगसंपउत्ताइं विच्छिदियपउरभत्तपाणाइं, बहुदासीदासगो महिसगवेलगप्पभूयाइं, बहुजणस्स अपरिभूयाइं” तेभनाथी आओग प्रयोग व्यापृत थतो रहे छे, दीनजनों माटे जथाथी प्रचुर मात्रामा भक्त-पान प्राप्त थता रहे छे, जेभनी पास दासीदास धणी संप्यामा सेवा-चाकरी करवा उपस्थित रहे छे, जथा पुष्कल मात्रामा गाय महिष अने अन्य, मेष वगेरे पशुओ विद्यमान रहे छे, तेभज्ज कांठ पशु भाणुस जेभनो अनाहर करी शकतो नथी. “तत्थ अन्नयरंसि कुलम्मि पुत्तनाए पच्चायाइस्सइ” ते कुलोमाथी ते कांठ पशु ओक कुलमां पुत्ररूपे उत्पन्न थशे.

टीका—“सूर्याभस्स णं” इत्यादि—गौतमस्वामी पृच्छति—हे भदन्त ! सूर्याभस्य खलु देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? । भगवानाह—हे गौतम ! सूर्याभस्य देवस्य सौधर्मदेवलोके चत्वारि पलयोपमानि—चतुःपलयोपमपरिमिता स्थितिः प्रज्ञप्ता । गौतमस्वामी ग्राह—हे भदन्त ! स खलु सूर्याभो देवस्तरमाद् देवलोकात् आयुःक्षयेण—देवसध्वन्ध्यायुः कर्मदलिकनिर्जरणेन, भवक्षयेण—देवभ्र-गत्यादिकर्मनिर्जरणेन स्थिति क्षयेण—सौधर्मे बल्पे सूर्याभे विमाने देवानां या दश-सागरोपमस्थितिः प्रोक्ता तत्क्षयेण, अनन्तरं—त पश्चात् चयं—देवशरीरं त्यक्त्वा कुत्र गमिष्यति ? कुत्रोत्पत्स्यते ? भगवानाह—हे गौतम ! स सूर्याभदेवजीवः सौधर्मदेवलोकाच्च्युत्वा महाविदेहे वर्षे यानि इमानि-वक्ष्यमाणानि कुलानि भवन्ति, तद्यथा तान्येव दर्शयति आढ्यानि-समृद्धानि, दीप्तानि-प्रशंसनीय वादुज्ज्व-

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रभु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त-? सूर्याभदेव की कितने काल की स्थिति कही गई है—३ इसके उत्तर में प्रभुने उन से कहा—गौतम-? सूर्याभदेवकी चार पलयोपम की स्थिति सौधर्म देवलोक में कही गई है। उसके बाद गौतमने पुनः प्रभु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त-? जब सूर्याभदेव के देव सम्बन्धी आयुवर्म के दलिकों की निर्जरा हो जावेगी, देव भ रूप गत्यादि कर्म की निर्जरा हो जावेगी, तथा स्थितिक्षय-सौधर्म बल्प में सूर्याभविमान में कितनेक देवों की चार पलयोपम की स्थिति कही गई है, उनमें—सूर्याभदेव की भी चार पलयोपम की स्थिति वह भी जब क्षयित हो जावेगी तब वह देव शरीर से चक्कर कहाँ जावेगा—३ कहाँ उत्पन्न होगा—३ इसके उत्तर में प्रभुने कहा—हे गौतम ? सूर्याभदेव जीव सौधर्म देवलोक से चक्कर महाविदेह क्षेत्र में जो ये कुल हैं कि जो—आढ्य—समृद्ध है, दीप्त

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रभुने आगतने प्रश्न किये के हे भदन्त ! सूर्याभदेवकी स्थिति कितने कालकी कहेवाय छे ? अना उत्तरमा प्रभुने कहुं—गौतम ! सौधर्म देवलोकमा सूर्याभदेवकी स्थिति चार पलयोपम जेटली कहेवामा आवी छे. त्सारपछी गौतमे इरी प्रभुने प्रश्न किये के हे भदन्त ! न्यारे सूर्याभदेवना देव सम्बन्धी आयुवर्मा दलिकोनी निर्जरा थछ नशे लवक्षय—देवलवर्ण गत्यादि कर्मनी निर्जरा थछ नशे, तेमज स्थितिक्षय सौधर्म कल्पमा सूर्याभविमानमा जेटलाक देवोनी त्सारपलयोपम जेटली स्थितिमा कहेवाय छे, तेमा सूर्याभदेवकी पणु त्साण्पलयोपम जेटली स्थिति कहेवाय छे ते पणु न्यारे क्षयित थछ नशे, त्पारे तेदेव शरीर त्यज्जने कथा नशे ? कथा उत्पन्न थशे ? अना नवाणमा प्रभुने कहुं हे गौतम ! सूर्याभदेवने लव सौधर्म देव लोकथी अवीने महाविदेह क्षेत्रमा जे कुलो आढ्य—समृद्ध छे,

लानि, विपुलानि परिवारादिना विशालानि, तथा विस्तीर्णविपुलभवनशयनाऽऽसन-
यानवाहनानि, तत्र विस्तीर्णानि-क्षेत्रेण महान्ति, विपुलानि-संख्यया प्रचुराणि
भवनानि-गृहाणि शयनानि-शयनीयानि, आसनानि-पीठफलकादीनि, यानानि-थ
शकटादीनि, वाहनानि गजाश्वादीनि येषु (कुलेषु) तानि, तथा बहुधनबहुजात
रूपरजतानि-तत्र-बहूनि-प्रचुराणि धनानि-गरिम धरिम-मेय-परिच्छेद्यरूपाणि,
बहूनि-प्रचुराणि जातरूपाणि-सुवर्णानि रजतानि-रूपाणि येषु तानि, तथा-
आयोगप्रयोगसंप्रयुक्तानि, तत्र आयोगस्य-अर्थलाभय प्रयोगाः उपायाः, संयुक्ता-
व्यापृता ये स्तानि, तथा-विच्छर्दिप्रचुरभक्तपानानि विच्छर्दिनि-उदारबुद्ध्या
बहुपाचनेनावशिष्टानि, अथवा-विच्छर्दिनानि-त्यक्तानि दीनेभ्यो दत्तानि प्रचुराणि
बहूनि भक्तपानानि-येस्तानि, तथा-बहुदासीदासगोमहिषगवेलकप्रभूतानि-तत्र
बहवो दासी-दासाः प्रसिद्धाः, प्रभूतानि-प्रचुराः गोमहिषगवेलकाः-तत्र गो-
महिषः प्रसिद्धाः गवेलका-अजा मेवाश्च येषां तानि, तथा-बहुजनस्य अपरिभू-
तानि-अपरिभवनीयानि एतादृशानि गानि कुलानि सन्ति तत्र-तेषां कुलेषु मध्ये

प्रशंसनीय होने से उज्ज्वल है, विपुल-परिवार आदि जन की अपेक्षा विशाल
है, क्षेत्र की अपेक्षा विस्तीर्ण, एवं संख्या की अपेक्षा प्रचुर गृहों वाले है,
विस्तीर्ण विपुल शयन शय्या-एवं-आसनों वाले है, पीठ-फलक दिनाले है, स्थ-
शकट-आदिरूप यानों वाले हैं-एवं-गज अश्वादिरूप वाहनों वाले है, तथा-प्रचुर
गरिम धरिम मेय परिच्छेद्यरूप धनवाले हैं, प्रचुर जातरूप-सुवर्णवाले हैं, प्रचुर
रजत-चान्दीवाले हैं, तथा-अर्थ के लाभरूप प्रयोग जिनसे व्यापृत हुवे हैं, उदार
बुद्धि से जिनमें बहुतसा अन्न पान बनवाया जाता है, और-खाने के बाद
अवशिष्ट बचता है। अर्थात्-दीनों को देने के लिये जिनमें प्रचुर अन्न-पान
तैयार किया जाता है, जिस में बहुत दासी-दास हैं, बहुतही- गो महिष-और

दीप्त-प्रशंसनीय होवाथी उज्ज्वल छे, विपुल-परिवार वगेरेना लोकोनी दृष्टिअे विशाल
छे, क्षेत्रनी अपेक्षाअे विस्तीर्ण छे, संख्यानी दृष्टिअे प्रचुर ग्रहोवाणा छे, विस्तर्ण
विपुल शयन शय्या अने आसना वाणा छे, पीठ इलक वगेरेवाणा छे, गज अश्व
वगेरे इप वाडने वाणा छे, तेमज प्रचुर गरिम, धरिम मेय परिच्छेद्यइप धनवाणा
छे, प्रचुर जातरूप-सुवर्णवाणा छे, प्रचुर रजत-चान्दीवाणा छे, तथा अर्थलाभइप
प्रयोग नेमनाथी व्यापृत थयेल छे, उदार बुद्धिथी नेओ पुष्कण अन्नपान बनाव-
डावे छे अने नभ्या पछी पणु त्या अवशिष्ट रहे छे ओटवे के गरिओने
पवा माटे नेओ प्रचुर अन्नपान तैयार करावडावे छे नेमनी पास धणां दासी

अन्यतमग्निन्—कस्मिंश्चिदेकस्मिन् कुले पुत्रतया—पुत्रत्वेन पुत्रो भूत्वेत्यर्थः प्रत्या
यास्यति प्रत्यागमिष्यति पुनर्मानुष्यभवे जन्म ग्रहीष्यतीत्यर्थः ॥सू० १६६॥

मूलम्—तए णं तसि दारगसि गवभगयसि चैव समाणंसि
अम्मापिउणं धम्मे दढा पडण्णा भविस्सइ । तए णं तस्स दारगस्स
माया नवण्ह मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्टमाणं राइंदियाणं विड-
इक्कंताणं सुकुमालपाणियाय अहीणपडिपुण्णपच्चिदियसरीर लक्ख-
णवंजणगुणोववेयं साण्णमाणप्पमाणपांडपुण्णसुजायस्सट्ठव गसुदरंगं
ससिसोम्माकारं कत दियदंरुण सुखुवं दारय पयाहास ॥सू० १६७॥

छाया—ततः खलु तग्निन् दारके गर्भगते एव सति अम्मापित्रो. धर्मे
दृढो प्रतिज्ञा भविष्यति । ततः खलु तस्य दारकस्य माता नवसु मासेषु बहुप्रति-
पूणेषु अर्धाष्टमेषु रात्रिन्दिवेषु व्यतिद्रा तेषु सुकुमालपाणिपादम् अहीनप्रतिपूर्णा-

गवेलक अजा-मेष हैं, एवं-जो अनेक जनो द्वारा भी अपरिभूत हैं ऐसे कुलों
में से किसी एक कुल में पुत्ररूप से-उपन होगा. ॥सू० १६६॥

“तएणं तंसि दारगंसि गवभगयंसि चैव समाणंसि” इत्यादि
मूलार्थ—“तएणं तंसि दारगंसि गवभगयंसि चैव समाणंसि-” जब वह
दारक गर्भ में आवेगा-तब इस को गर्भ में आते ही-“अम्मापिउण धम्मे दढा
पडण्णा भविस्सइ-” माता-पिताको-धर्म में दृढ प्रतिज्ञा होगी -“तएणं तस्स
दारगस माया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्टमाणं राइंदियाणं विड-
क्कंताणं सुकुमालपाणियायं-” नौ मास साढे सात दिन जब पूरा हो जावेगे
तब उस दारक की माता सुकुमार ह.थ-पग वाले-“अहीणपडिपुण्णपच्चिदिय-

दासो छे, धञ्जी गाथे तेमञ्ज भड्डिष, गवेलक अण्ण, मेष छे अने जे धञ्जी भाणुसो
वडे पणु अपारिल्लूतछे अेवा डुवोभाथी ते केअ अेक डुणमा पुत्ररूपे जन्म पाभशे ॥सू० १६६॥

“त एणं तंसि दारगंसि गवभगयसि चैव समाणंसि इत्यादि ।
मूलार्थ—“त एणं तंसि दारगंसि गवभगयसि चैव समाणंसि” ज्यारे ते
दारक गर्भमा आवशे-त्यारे तेने गर्भमा आवतां ज “अम्मापिउणं धम्मे दढा
पडण्णा भविस्सइ” मातापिताने धर्ममा दृढ प्रतिज्ञा थशे “तएणं तस्स दारग-
रस माया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्टमाणं राइं दियाणं विडक्कंण
सुकुमालपाणियायं” नव मास अने साढा सात दिवसो ज्यारे पूरा थथ जशे
त्यारे ते दारकनी माता सुकुमार हाथपगवाणा “अहीणपडिपुण्णपच्चिदिय सरीर

पञ्चेन्द्रियशरीरं लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेतं मानोन्मानप्रमाणप्रतिपूर्णां सुजातसर्वाङ्ग
सुन्दराङ्गं शशिसौम्याऽऽकारं कान्तं प्रियदर्शनं सुम्पं दारुणं प्रजान्मते ॥सू० १६७॥

टीका—“तए णं तंमि दारुणंमि” इत्यादि-व्याख्या निगमिद्वा ॥ १६७ ॥

मूलम्—तए णं तस्स दारुणस्स अम्मा-पियरो पढमे दिवसे
ठिडवडियं करेहिंति. तइयदिवसे चंद्रमृदंमावणियं करिम्मति. छे
दिवसे जागरियं जागरिस्संति, एक्कारसमे दिवसे वीडकंते संपत्ते
वारसाहे दिवसे णिटिवत्ते असुइजायकम्मकरणे चोक्खे समजिओव-
लित्ते विउलं असणपाणग्वाडमसाडमं उवक्खवाविस्संति, मित्त-
णाइणियगसयणसंवधिपरिजणं आसंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाया
कयवलिकम्मा कयकोउयसंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावसाइं मंगलाइं
वत्थाइं पवरपरिहिया अप्पसहग्धाभरणाळंक्रियसरोरा भोयणसंडवंसि
सुहासणवरगया तेणं मित्तणाइणियगसयणसंवधिपरिजणेणं सद्धि
विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परि-
भुजेमाणा परिभाएमाणा एवं चेव णं विहरिस्संति, जिमियभुत्तत्त-

शरीरं-” अहीन परिपूर्ण पांचों इन्द्रियों से युक्त शरीर-”लक्षणव्यञ्जन
गुणोववेय, माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वगसुंदरं ससिसोमाकार-
कंतं पियदंसणं सुखं दारुणं पयाहिसि-” लक्षणव्यञ्जन गुणों वाले, मानोन्मान
प्रमाण प्रतिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुन्दर शरीरवाले, चन्द्रमा के जैसे सौम्य आकार-
वाले, कान्त-प्रियदर्शनयुक्त, एव-सुरूप सम्पन्न ऐसे, पुत्र को जन्म देगी.
टीकार्थ-स्पष्ट है. ॥सू० १६७॥

अहीन परिपूर्ण पांचे इन्द्रियोथी युक्त शरीर वाणा “लक्षणव्यञ्जनगुणोववेयं,
माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरं ससिसोमाकार कंतं
पियदंसणं सुखं दारुणं पयाहिसि” लक्षण व्यञ्जन गुणोववाणा, मानोन्मान
प्रमाण प्रतिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुंदर शरीरवाणा चन्द्र जेवा सौम्य आकारवाणा,
कान्त-प्रियदर्शन युक्त अने सुरूप सम्पन्न जेवा पुत्रने जन्म आपसे.

टीकार्थ स्पष्ट छे. ॥सू० १६७॥

रागयात्रियं समाणा आयंता चोवखा परमसुइभूयात् मित्तणाइ-
णियगसयणसंबंधिपरिजणं विउलेणं वत्थगंधमह्वालंकारेणं सक्का-
रिस्संति, सम्माणिस्संति, तस्सेव मित्तणाइ णियगसयणसंबंधिपरि-
जणस्स पुरओ एवं वइस्सति-जम्हा णं देवाणुत्थिया । अम्ह इमं
सि दारगसि गवभगयंसि धम्ममे द्ढा पइण्णा जाया तं होउ णं
अम्हं एस दारए द्ढपइण्णे णामेणं । तए णं तस्स
दारगस्स अम्मा पियरो नामधेज्ज करिस्संति-द्ढपइ-
ण्णेति । तए णं तस्स अम्मापियरो अणुपुठ्वेण ठिइवडियं च १,
चंदसूरियदंसणावणियं च २, धम्मजागरियं च ३, नामधिज्जकरणं
च ४, परंगमणं च ५, पचंकमणं च ६, पच्चक्खाणयं च ७, जेमं-
णगं च ८, परिवच्चावणगं च ९, पजं पावणगं च १०, कन्नवेहण
च ११, सवच्छरपाडलेहणेणं च १२ चूडावयायणं च १३, उवणयणं
च १४, अन्नाणि व वडूणि गवभाहाण जम्मणाइयाइ कोउगाइं
महया इड्डिसक्कारसमुदणं करिस्संति ॥ सू० १६८ ॥

छाया—ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ प्रथमे दिवसे स्थिति-
पतितां वरिष्यतः, तृतीयदिवसे चन्द्रसूरदर्शनिषां करिष्यतः, षष्ठे दिवसे

‘तएण तस्स दारगस्स अम्मापियरो—’ इत्यादि

मूलार्थ—‘तएणं—’ इसके बाद ‘तस्स दारगस्स—’ उस दारकके, ‘अम्मापियरो—’
मातापिता—‘पढमे दिवसे—’ प्रथम दिवस ‘ठिइवडिय—’ कुलपरम्परा से
आगत पुत्र जन्मोत्सव रूप क्रिया—‘करेहिंति—’ करेगे-तइयदिवसे ‘तृतीय
दिवस—‘चंदसूर दसणावणिय करिस्संति—’ चन्द्रदर्शनरूप एवं—सूर्यदर्शनरूपक्रिया

‘तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो’ इत्यादि ।

मूलार्थ—‘तए णं’ त्थार पछी ‘तस्स दारगस्स’ ते दारकना ‘अम्मापियरो’
मातापिता, ‘पढमे दिवसे’ प्रथम दिवसे ‘ठिइवडिय’ कुल पर परागत पुत्र-
जन्मोत्सव रूप विधिओ ‘करेहिंति’ करेशे. ‘तइयदिवसे’ त्रीन दिवसे ‘चंदसूर
दसणावणिय करिस्संति’ चन्द्रदर्शन रूप अने सूर्यदर्शनरूप क्रियाओ छे

जागरिकां जागरिष्यतः, एकादशे दिवसे ऽ तिक्रान्ते. संग्रामे द्वादशाहे दिवसे. निवृत्ते अशुचिजातकर्मकरणे चोत्रे संमार्जितोपलिप्ते (गृहे) विपुलम् अशनपान-खाद्यस्वाद्यम् उपस्कारयिष्यतः, मित्रजाणि निजवग्वजनसम्बन्धिपरिजनम् आमन्त्र्य

जो कि-पुत्र जन्मोत्सव पर की जाती है-करेंगे. "छठे दिवसे जागरियं जागरि संति-" छठे दिन रात्रि जागण्णस्य क्रिया करेंगे। "एकारसमे दिवसे वीइक्कसे संपत्ते वारसाहे दिवसे णिव्वित्ते असुइ जायकम्मकरणे-" ग्यारहवां दिन जब व्यतीत हो जावेगा. और-१२-व. दिन जब प्राग्भू होगा तब उम-दिन जन्म सम्बन्धी अशुचिता की निवृत्ति हो चुकने के बाद-"चोक्खे समज्जि ओवलित्ते विउल असण पाण खाइम साइम उवक्खडाविस्संति-" गृह को शुद्धि क्रिया करे गे। पहले उस वे सम्मार्जनी-बुहारी से कूड़ा-कचरा निकाल कर साफ करे गे और-फिर उसे गोमय-आदि से लीपे-पोते करे गे। इस प्रकार शुद्धिक्रिया हो जाने पर फिर-वे अशन-पान-खाद्य. एवं-स्वाद्यस्य चार प्रकार के आहार को पकावे गे-"मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणं आमत्तेत्ता. तओ पच्छा ण्हाया कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता-" इसके बाद वे मित्रजनों को-ज्ञाति के जनो को-मातापिता आदिकों को, अपने पुत्रादिकों को, पितृव्यादिक स्वजनों को स्वश्वशुर-पुत्रश्वशुर आदिको दासी-दास आदिरूप-परिजनों को आमन्त्रित करे गे, फिर-स्नानकर बलिकर्म-काक आदि को अन

पुत्र जन्मोत्सव समये करवाना आवे छ करे. "छठे दिवसे जागरियं जागरि-संति" छठे दिवसे रात्रि जागण्ण करे "एकारसमे दिवसे वीइक्कसे संपत्ते वारसाहे दिवसे णिव्वित्ते असुइ जायकम्म करणे" ग्यारहवां दिवस न्याये पूरे थैथे अने ग्यारहवां दिवस प्रारंभ थैथे तयारे ते दिवसे जन्म संबन्धी अशुचितानी निवृत्ति थैथे जैथे ते पछी "चोक्खे समज्जि ओवलित्ते विउलअसणपाणखाइम साइम उवक्खडा विस्संति" घरने शुद्ध करवाना करे करे. पड़ेला तेथे सम्मार्जनी-सावराणी-थी करे साइ करे अने पछी तेने गोमय वगेरेथी लीपीने स्वच्छ बनावसे. आ प्रमाणे शुद्धि क्रिया थैथे जवा ग्राह पछी ते अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्यरूप चार प्रकारना आहारने बनावरावसे. मित्तणाइ पियग सयण संबन्धि परिजणं आमत्तेत्ता, तओ पच्छा ण्हाया कयवलिकम्मा कयकोउय मंगल पायच्छित्ता" तयार पछी तेथे मित्रजनोने ज्ञातिजनोने, मातापिता वगेरेने, पोताना पुत्रादिकोने, पितृव्यादिके स्वजनोने, स्वश्वशुर-पुत्र-श्वशुर वगेरेने, दासी दास वगेरे परिजनोने आमन्त्रित करे. पछी स्नान करीने भलिकर्म-काक वगेरे पक्षीओने अन्न वगेरेने, लाग आवसे. कौतुक मंगल प्रायश्चित्त करे. सुद्धपावेसाई

ततः पश्चात् स्नातौ कृतवलिकर्मणौ कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तौ शुद्धप्रवेश्यानि
माङ्गल्यानि वस्त्राणि पवरपरिहितौ अल्पमहाघाभरणालङ्कृतशरीरौ भोजनमण्डपे
सुखासनवर्गगतौ तेन मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनेन सार्धं विपुलम्
अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् आस्वादयन्तौ विस्वादयन्तौ परिभुज्जानौ परिभाजयन्तौ
एवमेव खलु विहरिष्यतः । जिमितभुक्तोत्तरागतावपि च खलु सन्तौ आचान्तौ
त्र्योक्षौ परमशुचिभूतौ तं मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनं विपुलेन वस्त्र-
गन्धमाल्यालङ्कारेण सत्करिष्यतः सम्मानयिष्यतः, तस्यैव मित्रज्ञातिनिजकस्वजन-

आदिका भाग करेगे कौतुक-मङ्गलप्रायश्चित्त करेगे—“सुदृप्पावेसाइं मंगल्लाइं
वत्थाइं पवरपरिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा भोयणमंडवसि—” फिर
शुद्ध माङ्गलिकवस्त्रों को जो कि—राजसभा में जानेके लिये पहिरने योग्य होते
हैं उन्हें पहिरेगे, खाद्य में अल्प वजनवाले—और—विशेष मूल्यवाले ऐसे अल-
ङ्कारों को धारण करेगे, इस तरह सब प्रकारसे सजघजकर, फिर—भोजनमण्डप
में—भोजनशाला में—“सुहासणवरगया—” अपने-अपने श्रेष्ठ आसन पर बैठ कर—
“तेणं मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणेणं सद्धिं विउलं अणं पाणं खाइमं
साइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुजेमाणा परिभाए माणा एवं चेव णं विह-
रिस्संति—” उन मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धिजन एवं-परिजन के साथ
उस विपुल अशन-पान खाद्य, एवं—स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार का पहले आस्वादन
करेगे—फिर विशेष आस्वादन करेगे, उसे रुचिपूर्वक खायेगे, एक दूसरे को
देगे—“जिमियभुत्ततरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा, परमसुइभूया
तं मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणं विउलेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सत्कारिस्संति,

“मंगल्लाइ वत्थाइ पवरपरिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा भोयणमंडवसि”
पछी राजसभामा नवा भाटे पहिरवा योग्य शुद्ध मांगलिक वस्त्रों धारण करशे.
द्वार भाट अटपलारवाणा अने विशेष डीमती अेवा अलकारे धारण करशे आ
प्रभाण्डे सर्व रीते सुसज्ज थधने पछी तेअो लोअन मंडपमा-लोअनशाणामा-
“सुहासणवरगया” पोतपोताना श्रेष्ठ आसनेा पर अेअीने “ते णं मित्तणाइ णियग-
सयणसंबंधिपरिजणेणं सद्धिं विउलं अणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणा
विसाएमाणा परिभुजेमाणा परिभाएमाणा एवं-चेव णं विहरिस्संति” ते मित्र,
ज्ञाति, निजक, स्वजन संधिजनो अने परिजनोनी साथे ते विपुल अशन पान
खाद्य अने स्वाद्यरूप चतुर्विध आहारनेा पहिरवा आस्वादन करशे पछी विशेष आ-
स्वादन करशे तेने सुज्ञचिपूर्णे थधने नभशे परस्पर अेक धीअनेअने आचरे.
जिमियभुत्ततरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा, परमसुइभूया तं मित्तणाइ-
णियगसयणसंबंधि परिजणं विउलेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सत्कारिस्संति

तस्मिन्धिपरिजनस्य पुरत एवं वदिष्यतः—यस्मान् खलु देवानुप्रियाः ! आवयोः
अस्मिन् दारके गर्भगते एवं सति धर्मे दृढा प्रतिज्ञा जाता तद् भवतु खलु
आवयोः एष दारको दृढप्रतिज्ञो नाम्ना । ततः खलु तस्य दारकस्य अम्मा-
पितरौ नामधेयं करिष्यतः दृढप्रतिज्ञ इति । ततः खलु तस्य अम्मापितरौ अनु-
पूर्वेण स्थितिपतितां च १, चन्द्रसूर्यदर्शनिकां च २, धर्मजागरिकां च ३, नाम

संमाणिसंति—” भोजन कर चुकने के अनन्तर फिर वे अपने-अपने उपवेशन
(बैठने के) स्थानपर बैठ कर शुद्ध जल से आचमन कर चौखे होंगे, इस तरह
परमशुचिभूत हुये वे—मित्र, ज्ञाति, निजक स्वजन, सम्बन्धि परिजनों को विपुल
वस्त्र गन्ध माल्य अलङ्कारों से सत्कृत करेंगे । एवं—मानपूर्वक उनका आदर
करेंगे—“त सेव मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणस्स पुरओ एवं वइस्सति—”
फिर वे—“जम्हाणं देवाणुप्पिया ? अम्हं इमंसि दारगंसि गव्भगयंसि चेव समाणंसि
धम्मं दृढा पइण्णा जाया—” हे देवानुप्रियों ? जिस कारण से इस दारक के गर्भ में
आते ही हम लोगों की धर्म में दृढ प्रतिज्ञा हुयी, “ते होऊण अम्हं एस दारए
दृढपइण्णे णामेणं—” इस कारण यह हमारा दारक दृढप्रतिज्ञ इस नामवाला
हो—“तएणं तस्स दारगस्स अम्मा पियरो नामधेज्जं करिस्संति दृढपइण्णेत्ति—”
इस तरह उस दारक के मानापिता उसका दृढ प्रतिज्ञ ऐसा नाम करेंगे ।
“तएणं तस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं ठिइवडियं च-१ चंदसूरियदंसणावणियं च

संमाणिरस ति” भोजन खाद तेओ पोतपोताना उपवेशन स्थानपर बैसीने शुद्ध
जलथी आचमन करीने पवित्र थसे. आ प्रभाणे परमशुचिभूत थयेला ते मित्र
ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी परिजनोने विपुल वस्त्र, गन्ध, माल्य अलङ्कारेथी
सत्कृत करसे. अने सम्मानपूर्वक तेमनो आदर करसे “तस्सेव मित्तणाइणियग
सयणसंबंधिपरिजणस्स पुरओ एवं वइस्संति” पछी तेओ ते मित्र-ज्ञाति निजक
स्वजन-संबंधी परिजनोनी सामे आ प्रभाणे कइसे—“जम्हाणं देवाणुप्पिया !
अम्हं इमंसि दारगंसि गव्भगयंसि चेव समाणंसि धम्मं दृढा पइण्णा जाया.”
हे देवानुप्रियो ! आ दारक ज्यारथी अमारा गर्भमां आव्यो छे त्थारपछी अमारी
मनमां धर्म प्रत्ये दृढ प्रतिज्ञा जन्मी छे. “तं होऊणं अम्हं एस दारए दृढ-
पइण्णे णामेणं” आथी अमारो आ दारक दृढ प्रतिज्ञ आ नामवाणो थाय “तएणं
तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करिस्संति दृढपइण्णेत्ति” आ प्रभाणे
ते दारकना मातापिता तेनुं दृढप्रतिज्ञ अबुं नाम राभसे. “तएणं तस्स अम्मा-
पियरो अणुपुव्वेणं ठिइवडियं च १ चंदसूरियदंसणावणियं च २ धम्मजागरियं

धेयकरणं च ४, परगमनं च (पर्यङ्गनं च) ५ प्रचक्रमणकं च ६ प्रत्याख्यानकं च ७ जेमनकं च ८ प्रतिवर्धापनकं च ९ प्रजल्पनकं च १० कर्णवेधनं च ११ संवत्सरप्रतिलेखनकं १२ चूडापनयनं च १३ उपनयनं च १४ अन्नानि च बहूनि गर्भाधानजन्मादिकानि कौतुकानि महता ऋद्धिसत्कारसमुदयेन करिष्यतः ॥ सू० १६८ ॥

टीका—“तए णं तस्स” इत्यादि-ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ प्रथमे दिवसे-जन्मदिने स्थितिपतितां-स्थित्या-कुलमर्धाद्या पतिता-समागता

—२ धम्मजागरियं च—३ नामधिज्जकरणं च—४ परंगमणं च—५ पचंक्रमणं च—६ पच्चक्खाणयं च—७ जेमणगं च—८ पडिवद्धावणं च—९ पजपावणं च—१० कन्नवेहणं च—११ संवच्छरपडिलेहणं च—१२” क्रमशः—जब वे स्थिति प्रतिज्ञ—१ चंद्रसूर्यदर्शन—२ धर्मजागरण—३ नामकरण—४ इन उत्सवों को करचुकेगे—तब इनके बाद—परमगमन—५ प्रचक्रमण—६ प्रत्याख्यान—७ अन्नप्राशन—८ प्रतिवर्धापन—९ प्रजल्पनक—१० कर्णवेधन—११ संवत्सर प्रतिलेखनक—१२ “चूडावणयणं—१३ उवणयणं च—१४ अन्नाणिय बहूणि गम्भाहाणजम्मणाइयाइ कोउगाइं महया इड्डिसक्कारसमुदएणं करिस्संति—” चूडानपयन, और—१४ उपनयन इन अवशिष्ट उत्सवों को करेगे. तथा—इनके अतिरिक्त और भी बहुत से गर्भाधानादि सम्बन्धी अपनी ऋद्धि के अनुरूप सत्कार करने आदिरूप से करेगे—

टीकार्थ—उस दारक के बालक मातापिता प्रथम जन्मदिवस के समय कुल मर्यादासे चली आई पुत्रजन्मोत्सव क्रिया करेंगे, इसी के निमित्त तीसरे दिन वे

च ३ नामधिज्जकरणं च ४, परंगमणं च ५, पचंक्रमणं च ६, पच्चक्खाणयं च ७, जेमणगं च ८, पडिवद्धावणं च ९, पजपावणं च १०, कन्नवेहणं च ११, संवच्छरपडिलेहणं च १२,” अनुक्रमे ऋद्धिरे तेऽथो स्थिति प्रतिज्ञ १ चन्द्र सूर्यदर्शन २, धर्मजागरण ३, नामकरण ४, आ उत्सवो ऋद्धिरे त्थो त्थार भाद परगमन ५, प्रचक्रमण ६, प्रत्याख्यान ७, अन्न प्राशन ८, प्रतिवर्धापन ९, प्रजल्पनक १० कर्णवेधन ११, संवत्सर प्रतिलेखनक १२, “चूडावणयणं १३, उवणयणं च १४, अन्नाणिय बहूणि गम्भाहाण जम्मणाइयाइं कोउगाइं महया इड्डिसक्कारसमुदएणं करिस्संति” चूडापनयन अने १४ उपनयन आ अवशिष्ट उत्सवो ऋद्धिरे तेभञ्ज भिन्ना पणु धत्था गर्भाधान सगधी सत्कार इत्थाइप कार्थो पोतानी ऋद्धि अनुसार करेशे.

टीकार्थः—ते दारकना मातापिता जन्मने पडेवे दिवसे कुलपर परागत पुत्र जन्मोत्सव क्रिया करेशे. ये निमित्ते ऋ त्रीन् दिवसे तेऽथो चन्द्र-सूर्यदर्शन करेशे

पुत्रजन्मोत्सवरूपा क्रिया, तां करिष्यतः, तृतीयदिवसे चन्द्रसूर्यदर्शनिकां—चन्द्र-
दर्शन-सूर्यदर्शनरूपां पुत्रज-मो-र-वविशेषलक्षणां प्रक्रियां करिष्यतः, षष्ठे दि-से
जागरिका रात्रिजागरणरूपां क्रियां जागरिष्यतः—करिष्यतः, एकादशे दि-से व्य-
तिद्वान्ते—व्यतीते स प्राप्ते—समागते द्वादशाहे—द्वादशम् अहो यस्मिन् तत्तस्मिन्
तादृशे दि-से द्वादशाहे दि-से इत्यर्थः, अशुचिजातकर्मकरणे—अशुचीतां—जन्मा-
शौचवतां कुटुम्बितां जातकर्मणः—नवजातशिशुसम्बन्धिसंस्कारस्य करणं—विधानं,
तस्मिन् निवृत्ते समाप्ते सति जन्माशौचनिवर्तनानन्तरमित्यर्थः, चोक्षे-स्वच्छ, संमा-
र्जितोपलिप्ते—संमार्जिते—मार्जन्या कचवरापनयनेन संशोधिते उपलिप्ते—गोमया-
दिना कृतलेपे गृहे, विपुलं—प्रचुरम् अशनपानखाद्यस्वाद्यम् उपस्कारयिष्यतः—पाच-
यिष्यतः मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनं-तत्र मित्राणि—सुहृदः, ज्ञातयः—
मातापिताभ्रात्रादयः, निजकाः—स्वकीयाः पुत्रादयः, स्वजनाः—पितृव्यादयः सम्ब-
न्धिनः—स्वश्वशुरपुत्रश्वशुरादयः, परिजनो-दासी-दासादिः, एतेषां समाहारे तत्
आमन्व्य, ततः पश्चात् स्नातौ-कृतस्नानां कृतवलिकर्मणो—काकादिभ्यः कृता-

चन्द्र-सूर्य दर्शनरूप क्रिया करेगे। अर्थात्—नव जात शिशु को चन्द्र-सूर्यका
दर्शन करावेगे—। जब ग्यारहवां दिन व्यतीत हो जावेगा, और-१२ वारहवां
दिन प्रारम्भ हो जावेगा। तब वे जातकर्म क्रिया करेगे, इस क्रिया में—नव
जात शिशु के उत्पन्न हो जाने से अशुचिता कुटुम्ब के लोगों में मानी जाती
है, अर्थात् जन्म सम्बन्धी अशुचिता इस दिन समाप्त हो जाती है, घर वगैरे
ह की लिपाइ-पोताई की जाती है। वस्त्रों को धुलवाकर स्वच्छ कराया जाता
है। इस तरह अशुचि व्यपरोपण करके फिरने अशन आदिरूपचारों प्रकार के
आहार को बनवावेगे, और—अपने मित्र-सुहृज्जनो को माता-पिता-भाइ आदिरूप
ज्ञातिजनों को, पुत्रादिरूप निजजनों को, पितृव्य-आदिरूप-स्वजनों को, अपने-
श्वशुर एवं-पुत्र श्वशुर आदि सम्बन्धिजनोंको, एवं—दासीदास आदि परिचारक

ओटवे के नवजात शिशुने चन्द्र-सूर्यना दर्शन करावशे न्यारे अगियारमो दिवस
पूरे थशे अने बारमो दिवस प्रारंभ थशे त्यारे तेओ जातकर्म विधि करशे। आ
विधिमा नवजात शिशुना जन्मथी कुटुम्बना दोडोमा ने अशुचिता मनाथ छे तेने
साइ-सझाथ वगेरे करीने हर-करवाभा आवे छे ओटवे के जन्म संभंधी अशुचिता
आ दिवसे मटी जाथ छे, घर वगेरे लीपवाभा आवे छे, वस्त्रो धोवडावी स्वच्छ
करवाभा आवे छे, आ प्रमाणे अशुचि व्यपरोपण करीने पछी तेओ अशन-पान
वगेरे रूप थार प्रकारना आहारो बनावडावशे अने पोताना मित्र सुहृद जन, माता
पिता, लार्थ वगेरे रूप ज्ञातिजनोने, पुत्रादिरूप निजजनोने, पितृव्य वगेरे रूप स्व-
जनोने, पोताना श्वशुर अने पुत्र श्वशुर वगेरे संभंधीजनोने अने दासीदास वगेरे

नभगौ कृतकौतुकमङ्गलायश्चित्तौ—कृतानि स्रग्पादितानि कौतुकानि—मपीतिल-
 कादीनि मङ्गलानि-मङ्गलकराणि दुःस्वप्नादिफलनिवारणार्थं सर्षपदध्यक्षतादीनि
 तान्येव प्रायश्चित्तानि अवश्यकरणीयत्वात् याभ्यः तौ तथा, शुद्धप्रवेश्यानि-शुद्धानि
 पवित्राणि स्वच्छानि च प्रवेश्यानि राजसभाप्रवेशयोग्यानि, मङ्गल्यानि-मङ्गल-
 जनकानि वस्त्राणि प्रवरपरिहितौ-सुष्टुतया रथारीति धारितवन्तौ, अल्पमहार्घ-
 भरणालङ्कृतशरीरौ-तत्र अल्पानि-स्तोकभाराणि महार्घाणि-महामूल्यानि आभराणिनि-
 भूषणानि, तैः अलङ्कृत-भूषितं शरीरं ययोस्तौ तथा, भोजनमण्डपे-भोजनशालायां,
 सुखासनवरगतौ—निजनिजश्रेष्ठासने सुखरूपेण समुपविष्टौ सन्तौ तेन मित्र-
 ज्ञातिनिजकरवडनमर्वान्धपरिजनेन सार्धं विपुलम् अशनं पानं खाद्यं रवाद्यम्
 आस्वादयन्तौ, परिभुञ्जानौ-रुचिपूर्वकं भुञ्जानौ, परिभाजयन्तौ—अन्येभ्यः प्रयच्छन्तौ.
 एवमेव-अन्यैव रीत्या खलु विहरिष्यतः-रथाभ्यतः । जिमितभुक्तोत्तरागतावपि-जिमितौ
 भुक्तवन्तौ भुक्तोत्तर-भोजनोत्तरकालम् आगतौ-निजनिजोपवेशन थाने समागतौ

परिजने को जीमने के लिये आमन्त्रित करेगे । फिर-स्नान से, काकआदि
 वों के लिये-कृतान्न विभागसे मपीतिलकादिकरूप कौतुकों से, मङ्गलकर
 दुःस्वप्न आद अवाञ्छनीय फल की निवृत्ति के लिये सरसो-दधि-अक्षतरूप प्राय-
 श्चित्त से निपटकर राजसभा में प्रवेश के समय पहनने योग्य स्वच्छ-पवित्र
 -मङ्गलिकवस्त्रों को अच्छी तरह पहनवर, एवं—अल्पभारवाले अमोल अलङ्कारों
 से शरीर को सुशोभित करनेके बाद भोजनशालामें आवेगे, और—वहाँपर अपने योग्य
 स्थापित श्रेष्ठ आसनपर बैठकर आमन्त्रित होकर आये हुवे उन मित्र-ज्ञाति-निजक-
 -स्वजन-सम्बन्धीजन के साथ रुचिपूर्वक भोजन करेगे, एक दूसरे के लिये
 मनोविनोद करते हुवे भोजन करलेने की क्रिया समाप्त हो जावेगी, तब वे
 हाथ मुख धोकर अपने स्थानपर आकर विराजमान हो जावेगे, वहाँ शुद्धोदक

परिजने ने जन्मा भाटे आमन्त्रित करेगे. पछी स्नानथी, डागडा वगेरेने अन्नलांग
 आपवाथी मपीतिलक वगेरेइप कौतुकीथी मगल करीने दुःस्वप्न वगेरे अवाञ्छनीय
 इणनी निवृत्ति भाटे सरसव, दधि, अक्षतरूप प्रायश्चित्तथी निवृत्त थधने राजसभामा
 ज्वा योग्य वस्त्रो सारी रीते पड़ेरीने अने अल्पभारयुक्त षडु कीमती अलङ्कारथी
 शरीरने सुशोभित करीने पछी ते लोअनशाणामा ज्शे, अने त्या पोताने योग्य
 स्थापित श्रेष्ठ आसने पर जेरीने आमन्त्रित भडेमाने—मित्र-ज्ञाति-निजक स्वजन-
 सम्बन्धीजन अने परिजनेनी साथे इच्छिपूर्वक जभथे. मनोविनोद करता अेकधीनने
 पीरसावथे. आ प्रभाणे आनन्दपूर्वक जभवानुं काम पुठ थध ज्शे त्यार पछी तेज्जो
 हाथ मुख धोअने पोतपोताना स्थानपर आवीने विराजमान थध ज्शे. त्या शुद्धोद-

सन्तौ आचान्तौ- शुद्धोदकयोगेन कृताऽऽचमनौ चोद्धौ-लेपसिक्थ्राद्यपनयनेन स्वच्छौ,
अत एव परमशुचिभूतौ अतीव पवित्रौ, तं मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरि
जनं विपुलेन प्रचुरेण, वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण-त्र वस्त्राणि-श्रौमिक-कार्यासिक-
दुकूलरूपाणि, गन्धाः-पुपनिर्यामामोदपरिमलरूपाणि सुगन्धद्रव्याणि, माल्यानि-
पुष्पमालाः, अलङ्काराणि-कटककुण्डलाद्याभरणानि तेषां समाहारः, तेन सत्कृष्यतः-
तत्प्रदानेन सत्कारं कृष्यतः, सम्मानयिष्यतः-मानपूर्वकमादरिष्येते, ततः तस्यैव
मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनस्य पुत्रः-अग्रे, एवं-उत्सवमाणप्रका-
रेण वदिष्यतः-कथयिष्यतः, तदेवाह-हे देवानुप्रियाः ! मित्रादयः ! यस्मात्
खलु कारणात् अस्मिन् नवजाते दारके शिशौ गर्भगते ए-सति-गर्भगते सति
आवयोः धर्मे-जिनप्ररूपिते धर्मे प्रतिज्ञा-मतिः दृढा-निश्चला जाता. तत्-उत्सवात्
कारणात् आवयोः एष दारको नाम्ना दृढप्रतिज्ञो भवतु । ततः-तदन्तरं खलु तस्य
दृढप्रतिज्ञं य दारकस्य अम्बा पितरौ अनुपूर्वेण-अनुक्रमेण स्थितिपतितां?, चन्द्र-

से आचमन कर परमशुचि बने हुवे वे अपने मित्रजनों का, ज्ञातेजनों का,
निजकजनों का, स्वजनों का, सम्बन्धिजनों का, और-परिजनों का विपुल-
प्रचुर वस्त्रसे, रेशमी-एवं-सूतीवस्त्रोंसे गन्धसे, पुष्परस के आमोद परिमल से,
पुष्पमालाओं से, कटककुण्डल आदिरूप अलङ्कारों से सत्कारकरेने एवं मान-
पूर्वक उनका आदर करेगे. । फिर वे-उन्हीं मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धी
परिजनों के समक्ष ऐसा कहेंगे-हे देवानुप्रिय ? मित्रादिकों ? जिस कारण से
यह दारक जब गर्भ में आया था तब से हमलोगों की धर्ममें-जिन प्ररूपित
मार्ग में मति दृढ-निश्चल हो गई थी, इस कारण हमलोगों का यह-पुत्र नाम
से दृढप्रतिज्ञ हो' ऐसा कहकर वे ल उसका "दृढ प्रतिज्ञ-" नाम रखेगे
उस दृढप्रतिज्ञ बालक के मातापिता क्रमशः-स्थिति पतिता-? चन्द्र-सूर्य

इसकी आचमन करीने परमशुचि थयेला तेज्यो पोताना मित्रजनोनो, (निजकजनोनो,
स्वजनोनो, सम्बन्धीजनोनो) अने परिजनोनो विपुल-प्रचुर वस्त्रोथी, रेशमी अने
सूती वस्त्रोथी, पुष्परसना आमोद परिमलथी, पुष्पमालाज्योथी, कटक कुण्डलाद्य अलं-
कारोथी सत्कार करशे अने सम्मानपूर्वक तेमने आदर करशे. पछी तेज्यो पोताना
मित्र, जाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी परिजनोनी सामे आ प्रमाणे कहेशे के हे देवानु-
प्रियो । मित्रवरो । न्या-थी आ दारक गर्भमां आत्ये छे त्यारथी अमारी धर्ममां-
जिन प्ररूपित मार्गमा मति दृढ निश्चल थय गय छे. आथी अमारो आ पुत्र दृढ
प्रतिज्ञ नामथी सम्बोधित थाय. आम इहीने ते लोको 'दृढप्रतिज्ञ' ज्ये प्रमाणे तेज्युं नाम
राखेशे ते दृढ प्रतिज्ञधारकना मातापिता अनुक्रमे स्थिति पतिता १, चन्द्र-सूर्य दर्शनका २.

सूर्यदर्शनिकां२, धर्मजागरिकां३, नामधेयकरणं४, 'परगमणं इत्परय परगमनं पर्यङ्गनं चेत्तच्छाया, तत्र परगमनं-वगृहाद् बहिर्गमनम्, पर्यङ्गनम्, अङ्गुलिग्रहण-पूर्वकं भ-नाङ्गणे भ्रामणं ५, प्रचन्द्रमणं-स्वतोभ्रमणम् ६, प्रत्याख्यानकम्-आरोग्याद्यर्थं व्रतादिकरणम् ७, जेमनकम्-अन्नप्राशनम्८, प्रतिवर्धापनकम्-आशीर्वाद-दायकेभ्यो द्रव्यादिदानम्९ प्रजल्पनकं-'माता, पिता' इत्यादिशब्दपाठनम्१०, कर्णवेधनम्११. संवत्सरप्रतिलेखनकम् जन्मदिनोत्सवम्१२, चूडापनयनं-मुण्डनोत्सवम्१३, उपनयनम्-अध्ययनार्थं कलाचार्यस्मीपे नयनम्१४, एताश्चतुर्दशोत्सवान् ऋषिष्यतः अन्यानि च बहूनि गर्भाधानजन्मादिमानि गर्भाधानादिसम्बन्धीनि कौतुकानि-उत्सवजातानि महता ऋद्धिसत्कारसमुदायेन-ऋद्धिः बह्वसुवर्णादिसम्पत् तत् सत्कारः-जनसत्कारकरणं, तस्य समुदायः-समूहः, तेन करिष्यते तः । सू० १६८।

मूलम्--तएषां से दृढपङ्कणे दारगे पंचधाईपरिक्रिखत्ते, तं जहो खीरधारईए१, मज्जणधाईए२, रुडणधाईए३, अकधाईए४, किला-

दर्शनिका-२ धर्म जागरिका-३ नामकरण-४ परंगमण-५ परगृहगमन-अग्ने घरसे बाहर निकलने रूप परगमन, अथवा-अङ्गुलिग्रहणपूर्वक भवनाङ्गणमें फिरने रूप पर्यङ्गमन, प्रचन्द्रमण-स्वतोभ्रमण-६ प्रत्याख्यान-आरोग्य आदिके लिये व्रतादिकरण-७ जेमनक-अन्नप्राशन-८ प्रतिवर्धापनक-आशीर्वाददायकां के लिये द्रव्यादि देना-९ प्रजल्पनक-मातापिता-इत्यादि शब्दों का उच्चारण करानां-१० कर्णवेधन-११ संवत्सर प्रतिलेखनक-जन्म दिनोत्सव-वर्षगाठ, १२ चूडा पनयन-मुण्डनोत्सव-१३ और-उपनयन, अध्ययनार्थ कलाचार्य के पास ले जाना १४ इन चौदह प्रकारके उत्सवों को, तथा-इनसेभिन्न और भी अनेक गर्भाधानादि सम्बन्धी कौतुको को-उत्सवों को, ऋद्धि सत्कार समुदायसे करे गे । सू० १६८।

धर्मजागरिका ३, नामकरण ४, परंगमण ५, परगमन-पर्यङ्गमनपोताना धरथी षीण्ठ घेर जपुं ते परगमन, अथवा अङ्गुलि ग्रहणपूर्वक भवनाङ्गणमा ज इन्पु ते पर्यङ्गमन, प्रचन्द्रमण-स्वतोभ्रमण ६, प्रत्याख्यान आरोग्य वणेरे माटे व्रतादिकरण ७ जेमनक अन्नप्राशन ८, प्रतिवर्धापनक आशीर्वाद आपनाराओने द्योय वगेरे आपपुं ९, प्रजल्पनक-मातापिता वगेरे शब्दोत्तु उच्चारण करपुं. १०, कर्णवेधन ११, संवत्सर प्रतिलेखनक जन्म दिपोत्सव-वर्षगाठ चूडापनयन, मुण्डनोत्सव १३ अने उपनयन अध्ययन कलाचार्य पासे लध जपु ते १४, आशौह प्रशरना उत्सवाने तेमज्जणेभनाथो लिन्न षीण्ठ पणु धणु गताधान संगधी कौतुकाने उत्सवो ऋद्धि सत्कार समुदायपूर्वक करशे. ॥सू० १६८॥

वणधाईए५, अन्नाहि य बहूहिं खुजाहिं चिलाइयाहिं वामणियाहिं१,
 वडभियाह२, बव्वरिहिं३, वाउसियाहिं४, जोण्हियाहिं५, पल्हवियाहिं
 ६, ईसिणियाहिं७, वासिणियाहिं८, लासियाहिं९, लउसियाहिं १०,
 दविडीहिं११, सिंहलीहिं१२, आरबीहिं १३, पक्कणीहिं १४, वहलीहिं
 १५, मुरुंडीहिं १६, सब्बरीहिं१७, पारसीहिं१८, णाणादेसीहिं विदे-
 सपरिमंडियाहिं सदेसनेवत्थगहियवेसाहिं इंगियचितियपत्थियदिया-
 णियाहिं निउणकुसलाह विणीयाहिं चेडियाचक्कवालतरुणीवंदपरि-
 यालपरिवुडे वरिसधरकंचुइज्जमहत्तरगवदपरिक्खित्ते हत्थाओ हत्थ
 साहरिज्जमाणे २ अंकाओ अंकं परिभुजमाणे २ उवनच्चिज्जमाणे २
 उवगाइज्जमाणे २ उवलालिज्जमाणे २ उवगूहिज्जमाणे २ अवयासिज्ज-
 माणे २ परिधंदिज्जमाणे २ परिचुविज्जमाणे २ रम्मेषु मणिकुट्टिमतलेसु
 परांगज्जमाणे २ गिरिकंदरमल्लीणेविव चपगवरपायवे निठ्वाधायंसि
 सुहसुहेणं वरिवडिस्सइ ॥ सू० १६९॥

छायाः—ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारकः पञ्चधात्रिभिः परिक्षिप्तः, तद्यथा-
 क्षीरधात्र्या१, मज्जनधात्र्या२, मण्डनधात्र्या ३ अङ्गधात्र्या४, क्रीडनधात्र्या ५.

“तए णं से ददपइण्णे दासो—इत्यादि—

मूलार्थ—“तए णं—” इसके बाद—“से ददपइण्णे—” दृढप्रतिज्ञ बालक-
 “पंचधाई परिक्खित्ते—” इन पांच धायमाताओं से युक्त—“तं जहा—क्षीरधाइए—मज्ज-
 णधाइए—मंडणधाइए—अंकधाइए—किलावणधाइए—” जैसे—क्षीरधायमाता से,
 दूध पिलानेवाली उप माता से, मज्जनधायमाता से, स्नान करानेवाली उप

“तए णं से ददपइण्णे दासो” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए णं” त्थार पछी “से ददपइण्णे” ते दृढप्रतिज्ञ आणक “पंच
 धाई परिक्खित्ते” आ पाय धाय माताओथी “तं जहा—क्षीरधाइए—मज्जणधाइए—
 मंडणधाइए—अंकधाइए, किलावणधाइए” जेभडे क्षीरधाय माताथी धवडावनार
 उपमाताथी, मज्जनधाय माताथी, स्नान करानेवाली उपमाताथी, मंडनधायमाताथी,

अन्याभिश्च बहुभिः कुब्जाभिश्चिला तिकाभिःवार्मानकामिः १, वटभिकाभिः२, बर्वरी भेः३, बकुशिका भः ४, यौनिकाभिः५, पल्हविकाभिः६, इसिनिकाभिः७, वासिनिकाभिः८ लासिकाभिः ९, लकुशिकाभिः १० द्राविडीभिः ११, सिंहलीभिः १२, आरवीभिः १३, पक्कणीभिः १४, वहलीभिः १५, मुरुण्डीभिः १६, शर्वरीभिः १७, पारसीभिः १८, नानादेशीयाभिः विदेश-परिमण्डिताभिः स्वदेशनेपथ्यगृहीतवेषाभिः इङ्गितचिन्तितप्रार्थित विज्ञायिकाभिः

माता से, मण्डन धाय माता से—मपीतिलक आदि द्वारा मण्डन 'अलङ्कृत' करानेवाली उपमाता से अङ्गधात्री माता से—उत्सङ्ग—गोद में लेकर खिलाने वाली—उप—माता से, क्रीडनधात्री माता से—विविध प्रकार की क्रीडाएं करानेवाली उपमाता से. इन पांच प्रकार-की धात्रियों से युक्त हुवा—“अन्नाहिय बहूहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं वामणयाहिं वडभियाहिं बव्वराहिं वाउसयाहिं जोण्हियाहिं पल्हवियाहिं ईसिणियाहिं वासिणियाहिं लासियाहिं—” तथा—इन से अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार की वक्रपृष्ठवाली—एवं अनार्यदेशोत्पन्न तुमकी—हृद्-शरीरवाली—१ वटभिका—२ हीन एकपाश्वर् भागवाली बर्वरा—३ बर्वरदेशोत्पन्ना बकुशिका—४ यौनिका—५ पल्हविका—६—ईसिनिका—७ वासिनिका—८ लासिका—९ “लउसियाहिं” लकुशिका १० “दविडीहिं—” द्राविडी—११ “सिंहलीहिं आरवीहिं—पक्कणीहिं—वहलीहिं—मुरुडीहिं—सर्वरीहिं—” पारसीहिं सिंहली—१३ आरवी, पक्कणी—१४ वहली—१५ मुरुण्डी—१६ शर्वरा—१७ पारसी—१८ ‘णाणादेसीहिं—’ अपने—अपने नामानुरूप देशों में उत्पन्न हुवी—तथा—“विदेसपरिमंडियाहिं—”

मपीतिलक वगेरे द्वारा मण्डन करावनाउर उपमाताथी, अङ्गधात्री माताथी, उत्सङ्ग जोणाभां जेसाडीने रभाउनाउर उपमाताथी युक्त थयेले “अन्नाहिय बहूहिं खुज्जा हिं चिलाइयाहिं वामणियाहिं वडभियाहिं बव्वराहिं वाउसियाहिं-जोण्हियाहिं पल्हवियाहिं ईसिणियाहिं वासिणियाहिं लासियाहिं” तेमळ पीळ पळु अनेक प्रकारनी वक्रपृष्ठवाणी अने अनार्यदेशोत्पन्न डी गणी १, वटभिका २, हीन अेक पाश्वर्भागवाणी, गर्भरा उ गर्भर देशोत्पन्ना, बकुशिका ४ यौनिका ५, पल्हविका ६, इसिनिका ७, वासिनिका ८, लासिका ९ “लउसियाहिं” लकुशिका १०, “दविडीहिं” द्राविडी ११, “सिंहलीहिं आरवीहिं ह-वहलीहिं-मुरुंडिहिं सर्वरीहिं पारसीहिं” सिंहिली १३. आरवी पक्कणी १४. वहली १५ भाउडी १६ शर्वरा १७. पारसी १८. “णाणादेसीहिं” पोतपोताना देशोभा उत्पन्न थयेली. तथा ‘विदेसपरिमंडियाहिं’ विदेशी वेशभूषाभा सुसज्ज “मदेम-नेवत्यगहियवेसाहिं, इंगियचिचियपन्थियविश्याणियाहिं, निउणकुमलाहिं

निपुणकुशलाभिः विनीताभिः चेटिकाचक्रवालतरुणीवृन्दपरिवार—परिवृतः वर्ष-
धकञ्चुकिमहत्तरकवृन्दपरिक्षिप्तः हस्ताद् हस्तं संहिगमाणाः २ अङ्गाद् अङ्गं
परिभोज्यमानः २ उपनृत्यमानः २ उपगीयमानः २ पलाल्यमानः २ उपगूह्यमानः
२ श्लिष्यमाणः २ परिवन्द्यमानः २ परिचुम्ब्यमानः २ रम्भेषु मणिकुट्टिमतलेषु
पर्यङ्ग्यमाणः २ गिरिकन्दरालीन इव चम्पकवरपादपः निर्व्याघाते सुखसुखेन
परिवर्धिष्यते ॥ सू० १६९ ॥

विदेश के वेष से सजी हुयी, 'सदेसनेवथगहियवेसाहिं, इ गिय
चितियपथियविणियाहिं निउणकुसलाहिं, विणीयाहिं—' और अपने देश
में वस्त्राभूषणों को जिस तरह से पहिरा जाता है, उस तरह से वेष को
धारण करनेवाली, तथा—इङ्गित-चिन्तित-प्रार्थित को अच्छी तरह से समझ
लेने वाली, नारियों के बीच कुशल, विनय सम्पन्न, स्त्रियों से, तथा—'चेडिया
चक्रवालतरुणीवृन्दपरियालपरिवुडे, वरिसधरकञ्चुइज्जमहत्तरगवन्दपरिवि-
त्ते—' और भी दासियों के समूह से एवं युवतियों के समूह से परिवेष्टित
हुवा, तथा-वर्षधर, कञ्चुकी, और महत्तरक इन के समूह से परिवेष्टित हुवा,
एवम्—'हत्थाओ हत्थं साहरिज्जमाणे-२ उपलालिज्जमाणे-२ उवगूहिज्जमाणे-२
अवयासिज्जमाणे-परियंदिज्जमाणे २ परिचुंबिज्जमाणे-२ रम्भेसु मणिकुट्टिमतलेसु
परंगिज्जमाणे २" एक हाथ से दूसरे हाथों में बारबार जाता हुवा, एक
गोदी से दूसरी गोदी में बारबार नृत्य क्रिया दिखाने से संतुष्ट किया गया.
बारबार-मधुर वचनादि द्वारा लाड लडाया गया, बारबार-२ दृष्टि दोष को दूर
करने के लिये वस्त्रादिकोंद्वारा ढांका गया, बारबार हृदय से लगाकर आलि-

विणीयाहिं' अने पोतपोताना देशमा वस्त्राभूषणो जे रीते पहिराय छे ते रीते
वेषधारण करनारी तथा धिगत चिन्तित अने प्रार्थित ने-सारी-रीते जणनारी स्त्री
वर्गमा कुशल विनय सम्पन्न. स्त्रीओथी तेभज 'चेडियाचक्रवालतरुणीवृन्द
परियालपरिवुडे, वरिसधरकञ्चुइज्जमहत्तरगवन्दपरिवि-
त्ते' ओथ पणु दासी-
ओना समूहथी अने युवतीओना समूहथी परिवेष्टित थयेवो. भज वर्षधर कञ्चुकी
अने महत्तरक ओभना समूहथी परिवेष्टित थयेवो अने "हत्थाओ हत्थं साहरि-
ज्जमाणे २ उपलालिज्जमाणे २, उवगूहिज्जमाणे २, अवयासिज्जमाणे २, परि-
यंदिज्जमाणे २ परिचुंबिज्जमाणे २, रम्भेसु मणिकुट्टिमतलेसु परंगिज्जमाणे २"
ओके हाथेथी ओज हाथमा बारबार जतो ओकना ओजाओथी ओजेना ओजाओ
वारवार लथ जवातो, वारवार नृत्य क्रिया जतावीने संतुष्ट करायेवो, वारवार मधुर
वचनो वडे लाड करीने, वारवार दृष्टि दोषने दूर करवा भाटे वस्त्रादिकेथी ढांकेवो,

टीकाः—“तए णं से दृढपइण्णे” इत्यादि—ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारकः पञ्चधात्रीभिः—बालस्य स्तन्यपानादिकारिकाभिः षञ्चभिर्धात्रीभिः रिक्षितः—परिवृतः—मूले “पंचधाईपरिक्खित्ते” इत्यत्र ‘पंचधाई’ इति लुप्ततृतीयान्तं पदं, तेन ‘पञ्चधात्रीभिः’ इतिच्छाया, तद्यथा—क्षीरधात्र्या—स्तन्यपायिकया १, मज्जनधात्र्या—स्नपनकारिकया २, मण्डनधात्र्या—मषीतिलकादिभिर्मण्डनकारिकया ३, अङ्कधात्र्या उत्सङ्गस्थापिकया ४, क्रीडनधात्र्या—क्रीडनकारिकया ५। एवं प्रकाराभिः पञ्चभिर्धात्रीभिः परिवृतः—युक्तः। तथा—अन्याभिः—एतदतिरिक्ताभिरपि बहुभिः—बहुप्रकाराभिः, कुञ्जाभिः—वक्रपृष्ठाभिः, चिलातिभिः—अनार्यदेशोत्पन्नाभिः, कामिः १ इत्याह—वामनिकाभिः—ह्रस्वकायाभिः १, वटमिकाभिः—मडहकोष्ठाभिः—हीनैकपार्श्वभागाभिरित्यर्थः २, बर्बरीभिः—बर्बदेशोद्भवाभिः ३, वकुशिकाभिः ४, यौनिकाभिः ५, पल्हविकाभिः ६, इसिनिकाभिः ७, वासिनिकाभिः ८, लासिकाभिः ९, लकुशिकाभिः १०, द्राविडीभिः ११, सिंहिलीभिः १२, आरवीभिः १३, पक्कीभिः १४, बहलीभिः १५, मुरुण्डीभिः १६, शवरीभिः १७, पारसीभिः १८, एवमेताभिः तत्तन्नामानुरूपनानादेशीयाभिः—अनेकदेशोद्भवाभिः विदेशपरिमण्ड-

इन किया गया, ‘चिरकाल तक जीवित रहो—’ इस तरह के शुभाशीर्वादो से वधाया गया, बारवार चुम्बन किया गया—“रमेसु मणिकुट्टिमतलेसु परंगिज्जमाणे-२ गिरिकंदरमल्लीणे विव चपगवरपायवे निव्वाधायंसि, सुह सुहेणं परिविह्विस्सइ—” तथा रम्य—रमणीय मणिकुट्टिमतलों में रत्न जडित-अङ्गणों में बार-२ चलता हुआ. गिरिशुहा में स्थित चपकवृक्ष की तरह निराबाध स्थान में सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त करेगा.

टीकार्थ—मूलार्थ जैसा ही है, परन्तु फिर भी जो विशेषता है वह ऐसी है—“पंचधाई परिक्खित्ते-” यहाँ-पंचधाई. पद लुप्त तृतीयाविभक्ति वाला है, अतः—इसकी छाया-पंच धात्रीभिः ऐसी करनी चाहिये। “विदेशपरिमण्ड-

वार वार उदयने चांपीने आदिगन करेवो “धत्थु एवो” आ नतना शुभाशीर्वादोर्था वधाभली आपेवो वारंवार युजित करेवो, “रमेसु मणिकुट्टिमतलेसु परंगिज्जमाणे २ गिरिकंदरमल्लीणे विव चपगवरपायवे निव्वाधायंसि सुहसुहेणं परिविह्विस्सइ” तेमने रम्य-रमणीय मणिकुट्टिमतलोभा, रत्नजडित आंगणयोभा वारवार आलने, गिरिशुहाभा स्थित चांपक वृक्षनी नेम सुखपूर्वक मोटो थतो गये।

टीकार्थ—मूलार्थ प्रमाणे न छे. यणु छताये ने विशेषता न्णाय छे ते आ प्रमाणे छे “पंचधाई परिक्खित्ते” अडो “पंचधाई” पद लुप्ततृतीया विभक्तियुक्त छे. अथी “पंचधात्रीभिः” अेवी छाया करवी नेछये. “विदेशपरिमण्डिताभिः

ताभिः-विदेश इति विदेशवेषः, तेन परिमण्डिताभिः विभूषिताभिः, स्वदेश-
 नेष्यगृहीतवेषाभिः-स्वदेशे निजदेशे यन्नेष्यवस्त्राऽऽभूषणानां परिधानादिरचना
 तद्वद् गृहीतो वेषो याभिः ता तथा, ताभिः. इति चिन्तितप्रार्थितविज्ञायिकाभिः
 तत्र इङ्गितं निपुणमतिगम्यं अभिप्रायहृषं प्रवृत्तिनिवृत्तिस्त्रचकमीपद्भ्रूगिरःकम्पादिकं,
 चिन्तितं-हृदयगतं, प्रार्थितम्-अभिलषितं च विजानन्ति गाम्ता तथा ताभिः, निपुण-
 कुशलाभिः निपुणानां चतुरनारीणां मध्ये याः कुशलाः-दक्षारताभिः, विनीताभिः-विनय-
 सम्पन्नाभिः परिक्षिप्त' इति पूर्वेण सम्बन्धः । पुनश्च चेटिमाचक्रवालतरुणीवृन्द-
 परिवारपरिवृतः-चेटिमाचक्रवालः दासीममूहः, तरुणीवृन्दं युवति मूहः, तस्य
 परिवारेण परिवृतः परिवेष्टितः, पुन वर्षधरकञ्चुकिमहत्तरकवृन्दपरिक्षिप्तः, तत्र
 वर्षधराः अन्तःपुरकार्यकारिणो नपुंसकाः, कञ्चुकिनः अन्तःपुरप्रयोजननिवेदकाः
 अन्तःपुरप्रतीहागा वा, महत्तरकाः अन्तःपुरकार्यचिन्तकाः, तेषां वृन्देन-समूहेन
 परिक्षिप्तः परिवृतः स ह ताद् हस्तम् एकं हस्ताद् अन्यहस्तं संहियमाण २=वारं
 वारं नीयमानः अत्र विप्सायां द्वित्वम्, एवमग्रेऽपि, एवम् अङ्गाद् अङ्गम् एतस्या
 उत्सङ्गाद् अन्य या उत्सङ्गं परिभोज्यमानः-पाल्यमानः, उपनृत्यमानः, नर्तन
 दर्शनेन परितोष्यमाणः, उपगीयमानः गानं श्राव्यमानः, उलाल्यमानः ललित
 मधुरवचनादिना लाल्यमानः उपगूह्यमानः दृष्टिदोषादिनिवारणार्थं वस्त्रादिभिरा-
 ष्टमानः, श्लिष्यमाणः हृदयसंलग्नेन आलिङ्ग्यमानः परिविद्यमानः 'चिरं
 जीव्याद्' इत्याद्याशीर्वचनैः स्तूयमानः, परचुम्ब्यमानः, परिचुम्ब्यमानः, रम्येषु

ताभिः" में जों विदेश शब्द आया है वह "विदेश वेष अर्थ" में है, इङ्गित वह
 चेष्टा विशेष है जो निपुणमतिद्वारा ही जाना जाता है, यह प्रवृत्ति निवृत्ति
 का सूचक होता है, तथा इस में थोड़े से रूपमें शिरकम्पाना द किया जाता
 है । हृदयगत अभिप्राय का नाम चिन्तित है, तथा-अभिलषित का नाम-
 प्रार्थित है । अन्तःपुर में जो कार्य करने के लिये नियुक्त किये जाते हैं, एवं
 जो नपुंसक होते हैं-इनका नाम वर्षधर हैं । अन्तःपुर सम्बन्धी प्रयोजनों का
 निवेदक होते हैं, अथवा-अन्तःपुर में जो प्रतिहारका काम करते हैं वे-कञ्चुकी

मा जे विदेश शब्द आवेल छे ते 'विदेश वेष' अर्थमां वपरायेल छे. इङ्गित-ते
 ते चेष्टा विशेष छे. जे निपुणमति वडे जे ज्ञानी शक्य छे. आ प्रवृत्तिनि
 सूचक होय छे. तथा अर्थमां धीमेधीमे शिरकम्पनादि करवामां आवे छे हृदयगत
 अभिप्राय ने चिन्तित कहे छे. तथा अभिलषितने प्रार्थित कहे छे अन्तःपुरमां जे
 काम करे छे अने जे नपुंसक होय छे ते वर्षधर छे अन्तःपुर सम्बन्धी प्रयोजनो
 जे निवेदक होय छे, अथवा अन्तःपुरमां जे प्रतिहारनुं काम करे छे ते कञ्चुकी

रमणियेषु मणिकुट्टीमनलेषु रत्नजटिताङ्गेषु पद्ममाणः २=पुनः पुनश्चडक्रभ्यमाणः,
सन् गिरीन्दगालीनः गिरिगुहास्थितः चम्पकवर इव श्रेष्ठ चम्पकवृक्ष इव
नीर्व्याधाते नीरावाये स्थाने सुखपूर्वकं परिवर्धिष्यते वृद्धिं प्राप्स्यति ॥सू० १६९॥

मूलम्—तए णं त दृढपइणं दारगं अम्मापियरो साइरेग अट्टु-
वासजायगं जाणित्ता सोभणांस तिहिकरणणक्खत्तमुहुत्तसि णहायं
कयवलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छत्त सव्वालकारविभूसियं करेत्ता
महया इहिरक्कारस्समुदएणं कलायरियस्स उवणेहिति । तए णं से
कलायरिए त दृढपणं दारग लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-
स्यपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गथओ
यकरणओ य सिक्खावेहिइ य, सेहावेहिइ य तं जहा—लेहं १ गणियं २
रूवं ३ न्ह ४ गीय ५ वाइयं ६ सरगय ७ पुक्खरगयं ८ समतालं ९ जूयं
१० जणवा ११ पासग १२ अट्टा यं १३ पोरेवच्च १४ दग्गमट्टियं
१५ अन्नविहिं १६ पाणविहिं १७ वत्थविहिं १८ विलेवणविहि १९
सयणविहिं २० अज्जं २१ पहेलिय २२ मागहिय २३ णिदाइय २४
गाहं २५ गीइय २६ सिलोगं २७ हिरण्णजुत्ति २८ सुवण्णजुत्ति २९
आभरणविहिं ३० तरुणीपडिकम्म ३१ इत्थिलक्खणं ३२ पुरस्स-
क्खण ३३ हयलक्खणं ३४ गयलक्खणं ३५ कुडलक्खणं ३६ छत्त-
लक्खणं ३७ चक्कलक्खणं ३८ डलक्खणं ३९ असिलक्खणं ४०
मणिलक्खणं ४१ कोगणिलक्खणं ४२ वत्थुविज्जं ४३ णगरमाणं ४४

कहलाते है, अतः-पुर मे क्या क्या काय होता है. इत्यादिका चिन्तन करने
वाले होते हैं. वे-महत्तरक हैं ॥ सू० १६९ ॥

उडेवाय छे. अंतःपुरमा शुं शुं काम दवानुं छे तेनी विद्यान्हा करनाग महुत्तव
उडेवाय छे ॥ सू० १६६ ॥

खंधावारमाणं ४५ चारं ४६ पांडेचारं ४७ वूह ४८ चक्रवूहं ४९
 गरुलवूह ५० सगडवूह ५१ जुद्धं ५२ नियुद्धं ५३ जुद्धजुद्धं ५४
 अट्टिजुद्धं ५५ मुट्टिजुद्धं ५६ वाहुजुद्धं ५७ लयाजुद्धं ५८ ईसत्थ
 ५९ छरुप्पवाय ६० धणुवेयं ६१ हिरण्णपागं ६२ सुवण्णपागं ६३
 मणिपागं ६४ धाउपागं ६५ सुत्तखेड ६६ वद्धखेडं ६७ णालियाखेड
 ६८ पत्तच्छेज्जं ६९ कडगज्जेज्जं ७० सजीवनिज्जीव ७१ सउणरुय
 ७२ इति । ॥सू० १७० ॥

छाया—ततः खलु तं ददप्रतिज्ञं दाकम् अम्मापितरो सातिरेगअट्ठवर्षजातकं
 ज्ञात्वा शोभने तिथिकरणनक्षत्रमुहूर्ते स्नानं कृतवलिकर्माणं कृतकौतुकमंगलप्राय
 श्चित्तं सर्वालङ्कारविभूषितं कृत्वा महता ऋद्धिसत्कारसमुदयेन कलाचारस्य उप-

“तए ण तं ददपइण्णं ” इत्यादि

मूलार्थ—“तए णं” इसके बाद—“ददपइण्णं—” दद प्रतिज्ञ “दारगं” दारक
 बालक को—“अम्मापियरो” मातापिता “साइरेगअट्ठवासजायगं जाणित्ता—
 आठ वर्ष से कुछ अधिक का हुवा जानकर—“सोभणंसि तिहिकरणणक्वत्त-
 मुहुत्तंसि णहायं” शोभनतिथि नक्षत्र मुहूर्त में उसे स्नान कराकर—“कयवलिकम्मं
 कयकोउयमंगलपायच्छित्तं, सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता—” उससे बलिकर्म
 काकआदि को अन्नादि का भाग देकर, कौतुकमङ्गलरूपे प्रायश्चित्तका कर,
 एवं—उसे समस्त अलङ्कारों से विभूषितकर—“महया ईह्वंसकारसमुदएणं कला-
 यरियस्स उवणेहिंति—” अपनी विशाल ऋद्धि के अनुरूप सत्कारपूर्वक कला-

“तए ण तं ददपइण्णं” इत्यादि ।

मूलार्थ—‘तए णं’ त्थार पथी ‘ददपइण्णं’ ददप्रतिज्ञ ‘दारगं’ दारक-आणकने
 ‘अम्मा पियरो’ मातापिताओओ ‘साइरेगअट्ठवासजायगं जाणित्ता’ आठ वर्ष
 करतां थोडा भोटो थयेल णालीने ‘सोभणंसि तिहिकरणणक्वत्तमुहुत्तंसि णहाय’
 शोभनतिथि नक्षत्र मुहुर्तमां तेने स्नान करावथे, ‘कयवलिकम्मं, कयकोउयमंगल-
 पायच्छित्तं, सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता’ तेना वडे अलिकर्म-आणडा वगेरेने
 अन्न वगेरेने भाग अयावडावीने, कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त करावीने अने तेने
 समस्त अलंकारोधी विभूषित करीने ‘महया ईह्वंसकारसमुदएणं कलायुरियस्स
 उवणेहिंति’ पोतानीं विशाल ऋद्धिना अनुत्त सत्कारपूर्वक कलाचारनी पासो भोडलथे,

नेः । ततः खन्त्र स कलाऽऽचाः तं ददप्रतिज्ञ द्वाकं लेखादिः गणि-
प्रधानाः शकुनस्तपर्यवसानाः द्वासप्तति कलाः सूत्रतश्च अर्थतश्च कणतश्च शिक्ष-
यिष्यति च साधयिष्यति च, तद्यथा—लेखं १, गणितं २, रूपं ३ नाटयं ४,
गीतं ५, वादितं ६, स्वरगतं ७, पुष्करगतं ८, समतालं ९, द्यूत १०, जनवादं
११, पाशकम् १२, अष्टापदं १३, पौरकृत्य १४, दकमृत्तिकाम् १५, अन्न-
विधि १६, पानविधि १७, वस्त्रविधि १८, विलेपनविधि १९, शयनविधिम्
२०, आर्या २१, प्रहेलिका २२, मागधिकां २३, निद्रायिकां २४, गाथां २५,

चार्य के पास भेजेगे। “तएण से कलायणिए तं ददपडणं दारग लेहाइयाओ
गणियः हाणाओ सउणरुण ज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य
गथओ य ऋणओ य सिक्खावेहि इय सेहावेहि इय—” वह कलाचार्य उस
ददप्रतिज्ञ दा क को लेखादिक गणित प्रधान कलासे लेकर शकुनरु। तक
की ७२ कलाओं को सूत्र-अर्थ और—दुभय, एवं-कणरूप सिक्खावेगा, एवं
इन्हें सिद्ध भी करावेगा, “तं जहा—लेहं १ गणिय २ एवं ३ नइं ४ गीय-
५-वाययं-६ सरगयं-७ पुष्करगयं-८ समताल-९—” वे वहत कला इस प्रकार
से हैं लेखन-१ गणित-२ रूप-३ नाटय-४ गीत-५ वादित-६ स्वरगत-७
पुष्करगत-८ समताल-९ “ज्यं—” द्यूत-१० “जणवाय-” जनवा-११
“पासगं” पायक—“अट्टावय-” अष्टापद—“पोरेकच्चं-” पौरकृत्य—“दगमट्टिय-”
दकमृत्तिका—“अन्नविहिं” अन्नविधि-पाणविहिं-पानविधि-वथविहिं वस्त्रविधि
‘विलेपणविहिं-’ विलेपनविधि-‘सय विहिं-’ शयनविधि-‘अज्जं-’ आर्या-‘पहेलिसं-’
प्रहेलिका-‘मागहिय-’ मागधिका-‘णिदाइय-’ निद्रायिका-‘गाहं-’ गाथा-‘गीइय-’

‘तए णं से कलायणिए त ददपडणं दा ग लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-
रुणपज्जवसाणाओ वावत्तरि कलाओ सुत्तओय अत्थओय गथओय ऋणओय
सिक्खावेहिइय सेहावेहिइय’ ते कलायाये ते ददप्रतिज्ञदारकने लेखादिः गणित
प्रधान कलाथी माडीने शकुनइत सुधीनी ७२ कलाओने सूत्र अर्थ अने तदुभय अने
दरुणइपथी शीभवथे अने अनेने सिद्ध पणु करावथे त जहा लेहं १, गणिय
२, एवं ३, नइं ४ गीय ५, वाइय ६, सरगय ७, पुष्करगय ८, समतालं ९,
ते ७२ कलाओ आ प्रमाणे छ-लेपन १ गणित २, रूप ३ नाटय ४, गीत ५,
वादित ६, स्वरगत ७ पुष्करगत ८, समताल ९, ‘ज्यं घत १० ‘जणवाय’
जनवाइ ११, ‘पासग’ पायक, ‘अट्टावय’ अष्टापद ‘पोरेकच्चं’ पौरकृत्य ‘दगमट्टियं’
दकमृत्तिका, ‘अन्नविहिं’ अन्नविधि ‘पाणविहिं’ पानविधि वथविहिं वस्त्रविधि
‘विलेपणविहिं विलेपनविधि सयणविहिं’ शयनविधि. ‘अज्जं आर्या, ‘पहेलियं’
प्रहेलिका ‘मागहियं’ मागधिका, ‘णिदाइय निद्रायिका ‘गाहं’ गाथा, गीइयं गीतः

गीतिकां २६, श्लोकं २७, हिरण्ययुक्ति २८, सुवर्णयुक्तिम् २९, आभरणविधिं ३०, तरुणीप्रतिकर्म ३१, स्त्रीलक्षणं ३२, पुरुषलक्षणं ३३, हयलक्षणं ३४, गजलक्षणं ३५, कुक्कुटलक्षणं ३६, छत्रलक्षणं ३७, चक्रलक्षणं ३८, दण्डलक्षम् ३९, असिलक्षणं ४०, मणिलक्षणं ४१ काकिणीलक्षणं ४२, वास्तुविद्या ४३, नगरमानं ४४, स्कन्धावारमानं ४५, चारं ४६, प्रतिचारं ४७ व्यूहं ४८, चक्रव्यूहं ४९, गरुडव्यूहं ५०, शकटव्यूहं ५१, युद्ध ५२ नियुद्ध ५३ युद्धयुद्धम् ५४, अस्थियुद्धं ५५ मुष्टियुद्ध ५६ बाहुयुद्ध ५७ लतायुद्धम् ५८, इष्वस्त्रं ५९, त्सरुप्रवादं ६० धनुर्वेदं ६१ हिरण्यपाकं ६२ सुवर्णपाकं ६३ मणिपाकं ६४,

गीतिया-‘सिलोगं-’ श्लोक-‘हिरण्यजुक्ति-’ हिरण्ययुक्ति-‘सुवर्णजुक्ति’ सुवर्णयुक्ति
‘आभरणविधि-’ आभरणविधि-‘तरुणीपडिकम्म-’ तरुणीप्रतिकर्म-‘इत्थिलवखणं-’
स्त्रीलक्षण-‘पुरिसलवखणं’ पुरुषलक्षण ‘हयलवखणं-’ हयलक्षण-‘गयलवखणं-’ गज-
लक्षण ‘कुक्कुडलवखण-’ कुक्कुटलक्षण-‘छत्रलवखण-’ छत्रलक्षण-‘चक्रलवखण’
चक्रलक्षण-‘दण्डलवखण-’ दण्डलक्षण ‘असिलवखण-’ असिलक्षण-‘मणिलवखण
मणिलक्षण-‘कागणिलवखणं-’ काकिणीलक्षण-‘वत्थुविज्जं-’ वास्तुविद्या-‘नगर-
माणं-’ नगरमानं-‘खंधावारमाण-’ स्कन्धावारमान-‘चारं-पडिचारं-व्यूहं-चक्रव्यूहं’
चार-प्रतिचार-व्यूह-चक्रव्यूह, ‘गरुडव्यूहं-सगडव्यूहं-जुद्धं-निजुद्धं-जुद्धजुद्धं-अट्टिजुद्धं-
मुष्टिजुद्धं-बाहुजुद्धं-लताजुद्धं-इसत्थे-छरुप्पवाय-’ गरुडव्यूह-युद्ध-नियुद्ध-युद्धयुद्ध-अस्थि
युद्ध-मुष्टियुद्ध-बाहुयुद्ध-लतायुद्ध-इष्वस्त्र-त्सरुप्रवाद, धणुण्वेय-हिरण्यपागं-सुवर्णपागं
मणिपागं-धाउपागं-सुत्तखेडं-वट्टखेडं-जालियाखेडं-पत्तच्छेज्जं-’ धनुर्वेद-हिरण्यपाक-

‘सिलोगं’ श्लोक, ‘हिरण्यजुक्ति’ हिरण्ययुक्ति, ‘सुवर्णजुक्ति’ सुवर्णयुक्ति, आभरण-
विधिं आभरणविधि, ‘तरुणीपडिकम्म’ तरुणी प्रतिकर्म ‘इत्थिलवखणं’ स्त्रीलक्षण
‘पुरिसलवखणं’ पुरुषलक्षण. ‘हयलवखणं’ हयलक्षण. ‘गयलवखणं’ गजलक्षण.
‘कुक्कुडलवखणं’ कुक्कुटलक्षण. ‘छत्रलवखणं’ छत्रलक्षण. ‘चक्रलवखणं’ चक्रलक्षण.
‘दण्डलवखणं’ दण्डलक्षण. ‘असिलवखणं’ असिलक्षण. ‘मणिलवखणं’ मणिलक्षण.
‘कागणिलवखणं’ काकिणीलक्षण. ‘वत्थुविज्जं’ वास्तुविद्या. ‘नगरमाणं’ नगरमान.
‘खंधावारमाणं’ स्कन्धावारमान. ‘चारं पडिचारं व्यूहं-चक्रव्यूहं’ चार-प्रतिचार-
व्यूह-चक्रव्यूह. ‘गरुडव्यूहं-सगडव्यूहं-जुद्धं-निजुद्धं-जुद्धजुद्धं-अट्टिजुद्धं-मुष्टिजुद्धं-
बाहुजुद्धं-लताजुद्धं-इसत्थे-छरुप्पवाय’ गरुडव्यूह. शकटव्यूह. युद्धं नियुद्धं.
युद्धं-युद्धं अस्थियुद्धं. मुष्टियुद्धं. बाहुयुद्धं, लतायुद्धं. इष्वस्त्रं त्सरुप्रवाद.
“धणुण्वेय हिरण्यपागं सुवर्णपागं मणिपागं धाउपागं सुत्तखेडं वट्टखेडं
जालियाखेडं पत्तच्छेज्जं” धनुर्वेद, हिरण्यपाकं, सुवर्णपाकं, मणिपाकं, सूत्रपेदवत्

धातुपाकं ६५ सूत्रखेलं ६६ वर्तखेलं ६७ नालिकाखेलं ६८ पत्रच्छेद्य ६९,
कटकच्छेद्यं ७० सजीवनिर्जीव ७१ शकुनरुतम् ७२, इति ॥ सू० १७० ॥

टीका—‘तए णं त ददपइण्णं’ इत्यादि—ततः खलु तं
दृढप्रतिज्ञ दारकम् अम्बा-पितरौ-तन्माता-पितरौ, सातिरेकाष्टवर्षजातकं-
संजातकिञ्चिदधिकऋष्टवर्षक ज्ञा-वा-परिभाव्य शोभने तिथिकरण-
नक्षत्रमुहूर्ते—तिथिश्च करणं च नक्षत्रं च मुहूर्तं चेत्येतेषां समाहारः तिथिकरण-
नक्षत्रमुहूर्तं, तत्र शोभनशब्दस्य सर्वत्र सम्बन्धात् शोभनायां तिथौ—नन्दा जया
पूर्णारूपायां, शोभने करणे—स्थिरसंज्ञके, शोभने नक्षत्रे—विद्याऽध्ययनयोग्ये ज्ञान-
वृद्धिकारके मृगशीर्षाऽऽर्द्राऽऽपुष्यः-अश्लेषा-मूल, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद,
हरत-चित्रा-रूपे नक्षत्रदशकेऽन्यतमे-शोभने मुहूर्ते-शुभायां वेलायां स्नातं-कृत
स्नानं, कृतवलिकर्माणं—काकादिभ्यः कृतान्नभागं कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तं—कृता-
नि—म्पादितानि कौतुकानि—मपीतिलकादीनि मङ्गलानि—मङ्गलविधायकानि दध्य-
क्षतादीनि नान्येव प्रायश्चित्तानि—दुःस्वप्नादि विधातार्थमवश्यकरणीयत्वात् प्रा-

सुवर्णपाक-मणिपाक-धातुपाक-सूत्रखेल वर्तखेल-नालिकाखेल-पत्रच्छेद्य. ‘कडग
च्छेज्जं-सजीवनिर्जीवं-सउणरुयं-७२-त्ति-’ कटकच्छेद्य सजीवनिर्जीव-और शकुनरुत. ७२।

टीकार्थ—जब दृढप्रतिज्ञ दारक आठ वर्ष से अधिक वय का हो
जावेगा—तब उसके मातापिता उसे शुभ तिथि में—नन्दा—जया—पूर्णरूप तिथि
में, शुभकरण में—स्थिरनामके शुभकरण में, तथा—विद्याध्ययनयोग्य—ज्ञानवृद्धिकारक
मृगशीर्षा—आर्द्रा—पुष्य-अश्लेषा-मूल-फाल्गुनी-पूर्वाषाढा-पूर्वाभाद्रपद-हरत-और चित्रा
रूप नक्षत्र दशकमें, और शुभवेलामें कलाचार्य के पास ले जावेगे।
इसके पहले वे उस बालक को स्नान करावेगे, वायस—काक आदिको को देने
के लिये उससे अन्न का विभाग कराकर वितरित करावेगे. वह मपी तिलक
आदि रूप कौतुक को तथा—दुःस्वप्न आदिरूप अमंगल के विधातक—होने से
अवश्य करणीय ऐसे दध्यक्षतादिरूप प्रायश्चित्तको करेगा. और फिर वह समस्त

पेव. नासिका जेव पत्रच्छेद्य “कडगच्छेज्जं नत्ती निज्जीवं सउणरुयं ७२ नि
कटकच्छेद्य. सज्जवनिर्जीवं अने शकुन इति ७२.

टीकार्थ.—जब दृढप्रतिज्ञदारक आठ वर्ष करता मोटे धर्ष नये त्याजे तेना
मातापिता तेने शुभतिथिमा नदा नया पूर्णारूप तिथिमा, शुभकरणमा, स्थिर नामना
शुभकरणमा, तथा विद्याध्ययन योग्य ज्ञानवृद्धिकारक मृगशीर्षा आर्द्रा पुष्य अश्लेषा
मूल-पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढा पूर्वाभाद्रपद इत्येते अने चित्रा ये नक्षत्रदशकमा अने
शुभवेलामा कलाचार्यनी पास ले जावेगे. अने पहिला तेने ते बालकने
स्नान करावथे, वायस वगेरेने आपवा माटे तेनी पासधी अन्नविभाग करवथेने
वितरित करवथे ते मपीतिलक वगेरे उप कौतुकने तेमज्ज उ. अस्वप्न आदि उप
गलना विधातक होवाथी अवश्यकरणीय जेव दध्यक्षतादि उप प्रायश्चित्तने करवथे =

श्रित्तरूपाणि येन स तम्, सर्वालङ्कारविभूषितं—परिधृतकटककुण्डलाद्याभरणम्
 सर्वे—समस्ताः हस्तचरणकण्ठादिभ्रमस्तावयवयोग्या अलङ्काराः—वस्त्राभरणरूपाः
 तैः विभूषितं—सज्जितं परिहितशुद्धप्रवेद्यवस्त्र परिधृतकटककुण्डलाद्याभरणं च,
 एतादृशं सुसज्जितं दृढप्रतिज्ञं दारकं कृत्वा महता ऋद्धिसत्कारसमुदयेन—ऋद्धिः
 वस्त्रसुवर्णादिसम्पत् तथा सत्कारः सत्कारयुक्तः समुदयः—समागतजनसमुदायो यत्र
 स तेग-महोत्सवपूर्वकमित्यर्थः—कलाचार्यस्य—कलाशिक्षकस्य समीपे उपनेष्यतः । ततः
 खलु स कलाऽऽचार्यः तं दृढप्रतिज्ञं दारकं लेखादिकाः गणितप्रधानाः शकुनिस्त
 पर्यवमानाः द्वासप्ततिं कलाः सूत्रतः—मूलतः अर्थतः—अर्थोपदर्शनतः, ग्रन्थतः—
 ग्रन्थरूपेण तासां लेखनतः करणतः—प्रयोगतश्च शिक्षयिष्यते—अद्यापयिष्यति
 साभयिष्यति साध्याः कारयिष्यतिश्च । तद्यथा—ताः कला यथा—लेखम् लेखः—अक्षर-
 विन्यासः तद्विषया कलाविज्ञानं लेखएवोच्यते तं लेखम्—लेखविज्ञानम् कला-

अलङ्कारों से कटक-कुण्डलादिरूप आभरणों से अपने को सुसज्जित करेगा. तत्
 पश्चात्—वह सभा में प्रवेश योग्य शुद्ध वस्त्रों को धारण करेगा. इस प्रकार से सुसज्जित हुवे
 उस दृढप्रतिज्ञ कुमार को वे मातापिता अपनी ऋद्धि के अनुसार वस्त्र सुवर्णादि
 सम्पत्ति के अनुरूप समागत जन—समुदाय के साथ सत्कारपूर्वक—महोत्सव पूर्वक
 उसे कलाचार्य के पास ले जावेंगे । तब वह—कलाशिक्षक उस दृढप्रतिज्ञ दारक
 को गणितप्रधान लेखादिक कलाओं को शकुनिरुस्तान्त (पक्षिके शुकुन
 देखने तककी) कलातक यथावत् सिखावेगा. ये सब कलाएँ ७२-होती हैं ।
 सूत्र से तथा अर्थोपदर्शन से, एवं तदुभय से—अर्थात् सूत्र और अर्थ दोनों
 प्रकार से और—प्रयोगरूप से वह इन सब कलाओं के । उसे पढावेगा.
 पढाकर वह इन कलाओं में क्रियात्मकरूप से उसे निपुण भी करदेगा. । उन
 ७२ कलाओं के नाम इस प्रकार से हैं—लेख अक्षरविन्यास, इस विषय का

यधी ते सभस्त अलङ्कारेथी कटक कुण्डलादि इय आभरणेषुथी पोताना शरीरने सुस-
 ज्जित करशे. त्थार यधी ते शुद्ध वस्त्रो धारणु करशे. आ प्रभाणु सुराज्जित थयेदा
 ते दृढप्रतिज्ञ कुमारने तेना मातापिता पोतानी ऋद्धि मुज्ज्ण वस्त्रसुवर्णु वगेरे
 संपत्तिना अनुइय आवेल जनसमुदायनी साथे सत्कारपूर्वक, महोत्सवपूर्वक तेने कला-
 चार्थ यासे लथ जशे त्थारे ते कलाशिक्षक ते दृढप्रतिज्ञदारकने गणित प्रधान वेण-
 दिक कलाओथी शकुनिरुस्तान्त सुधीनी सभस्त कलाओने यथावत् शीघ्रवाउशे. आ यधी
 कलाओ ७२ छे सूत्रइपे, अर्थोपदर्शनइपे, ग्रन्थइपे अने प्रयोगइपे ते कलाचार्थ तेने
 सभस्त कलाओने अल्यास करावशे. अभ्यास करावीने ते तेने क्रियात्मक इपमां पणु
 नपुणु बनावशे. ते ७२ कलाओना नाम आ प्रभाणु छे. वेण—अक्षरविन्यास आ
 पयत्तुं जे विज्ञान डोय छे ते पणु 'वेण' ज छे आ 'वेण'मां अक्षर वगेरे लण-

ऽऽचार्यः शिक्षयिष्यतीति सम्बन्धः एवमग्रेऽपि संयोजना कर्तव्या । लेखो लिपि विषयभेदाद् द्विविधः तत्र लिपिः ब्रा-स्थ्यादिभेदेनाष्टादशविधा, सा च समवायाङ्गसूत्रगताऽष्टादशसमवायोक्ता बोध्या । अथवा लाटादिदेशभेदतोऽनेकविधा भवति । पुनश्च वल्कलकाष्ठदन्तलोहताम्ररजतपाषाणाद्याधारेषु लेखनोक्तिरुणस्यूतव्यूतच्छिन्नभिन्नदग्धसंक्रान्तितोऽक्षरविन्यासरूपा लिपिरनेकविधा भवति । विषयमाश्रित्य स्वामिभृत्यपितापुत्रकलत्रपतिगुरुशिष्यशत्रुमित्रादिविषया कार्यं स्थौल्यवैपम्यपक्वत्वपदच्छेदादिभेदभिन्ना चानेकविधा भवति १. गणितम्—पट्टिकादि प्रसिद्धमेकद्वयादि संमलनगुणभागादिरूपम् २. रूपम् लेप्यशिलासुवर्णरजतमणिवस्त्रचित्रादिलक्षणम् ३ । नाटयम्—साभिनयनिर्भिनयभेदभिन्नं

जो विज्ञान हो जाता है वह भी लेख ही है, इस लेख में अक्षरादिके लिखने में निपुण हो जाना यह—लेखकला है, यह लेख-लिपि, एवं-विषय भेदसे दो प्रकार का है. इनमें—ब्राह्मी आदि के भेद से लिपि १८—प्रकार की है. यह-विषय “समवायाङ्गसूत्र में १८-वे” समवान में कहा गया है । अथवा—लाटादि के भेद से लिपि अनेक प्रकार भी होती है, पुनः-वल्कल—काष्ठदन्त-लोह-ताम्र—रजत-पाषाण—आदि आधारों के ऊपर अक्षरों का लिखना, उन पर अक्षरों का टांकी आदि से अङ्कित—(उकेरना) इत्यादिरूप से अक्षरविन्यासरूप लिपि अनेक प्रकार की है । विषय की अपेक्षा भी स्वामी-भृत्य-पिता-पुत्र-कलत्र-पति-गुरु-शिष्य-शत्रु और-मित्रादि को विशय करने वाली जो लिपि है वहभी कृशता स्थूलता आदिरूप से विन्यास की अपेक्षा अनेक प्रकार होती है १ । गणितरूप कला गुणा—भाग, बीजगणित-रेखागणित आदि होती हैं २ । रूप-कला-लेख्य, शिला, सुवर्ण, रजत—आदि के ऊपर चित्र को उतारनेरूप या—

वामा कुशगता मेणवती ते लेखकला छे आ लेख-लिपि अने विषयलेखी के प्रका-रनी छे आमा ब्राह्मी वगेरेना लेखी १८ प्रकारनी लिपि छे आ विषय ‘समवायाङ्ग’ सूत्रमा १८ भा समवायमा आवेल छे अथवा लाटादिना लेखी लिपिना धनु प्रका-रनी छे अने वल्कल, काष्ठ, दंत, लोह, ताम्र, रजत पाषाणु वगेरे आधारो पञ्च अक्षरों लभवां. तेमनी उपर टाङ्कणी टाङ्कणी वगेरे उपमा अक्षर विन्यास लिपि धनु प्रका-रनी छे. विषयनी अपेक्षाअे पण स्वामी भृत्य, पिता, पुत्र, इत्य पति, शत्रु, शिष्य, शत्रु अने मित्र वगेरेने विशय करनेारी ले लिपि छे ते पण कृशता स्थूलता वगेरे उपधी विन्यासनी अपेक्षा अे अनेक प्रकारनी होय छे १. गणितरूप कला गुणा—भाग गणित, रेखा गणित वगेरे प्रकारनी होय छे. २. उपकला-लेख्य, शिला सुवर्ण, रजत वगेरेनी उपर चित्रने उतारवा उपके लेखन उप होय छे उनाटयकला अ भिनय अहित

नर्तनम् ४ । गीतम्—गन्धर्वकलाज्ञानविज्ञानरूपम् ५ । वादितम्—ततविततादि
 भेदभिन्नं वाद्यम् ६ । स्वरगतम्—षड्जऋषभादिस्वरज्ञानम् ७ । पुष्करगतम्—मृद-
 ङ्गमुरजादिभेदयुक्तं विज्ञानम्, अस्य वाद्यान्तर्गतत्वेऽपि यत्पृथक्कथनं तत् परम-
 सङ्गीताङ्गत्वख्यापनार्थम् ८ । समतालम्—समः-अन्युनाधिकमात्रम् : तालः-गीतादि-
 मानकालो यत्र तत् समतालविज्ञानमित्यथः ९ । द्यूत-प्रन्निद्धम् १० । जन
 वादं—द्यूतविशेषः ११ । पाशकम्—पाशैः खेलनरूपं द्यूतम् १२ । अष्टापदम्—सारि
 फलद्यूतमेव १३ । पौरकृत्यम्—पुरस्य कृतिः—निर्माणं तद्विषयं विज्ञानं पौरकृत्यं-
 पुरनिर्माणं लेत्यर्थः, तत् अत्र त्रिविधः पाठ उपलभ्यते तथाहि-पोरेकच्च 'पोरेकच्चं'
 'पोरेकव्वं' इति । प्रत्येकस्य छायापि तदनुसारेणैव भवति—'पोरेकृत्यम्' पौरपत्यम्
 'पुरःकाव्यम्' इति । तत्र 'पोरेकच्चं' इत्यस्य व्याख्याऽत्र कृत्वा 'पोरेकच्चं' पौरपत्यम्—
 नगररक्षककला, 'पोरेकव्वं' पुरःकाव्यम्—पुरतःपुरतः काव्यरूपवाणी निस्सारणं
 शीघ्रकवित्वमित्यर्थः । १४ । दक्षमृत्तिकम्—उदकसंयुक्तमृत्तिका विवेकद्रव्यप्रयोग-

लिखने रूप होती है, ३ । नाट्यकला-अभिनयसहित, विना अभिनय के भेद से
 दो प्रकार की होती है ४ । गीतकला—गाने आदि में निपुणता प्राप्त करनेरूप
 होती है, ५ । वादित्रकला—तत, वितत आदिरूप वादित्रों के बजाने रूप होती है ६ ।
 स्वरकला—षड्ज, ऋषभ—आदि के ज्ञान करानेरूप होती है ७ । पुष्करगतकला—मृदङ्ग,
 मुरज आदि के बजानेरूप होती है । यद्यपि—यह कला वादित्रकला में अन्तर्भूत हो
 जाती है, फिर भी—इसे जो स्वतन्त्ररूप से अलग कला कही गई है सो-यह सङ्गीतकला-
 में उसका उत्कृष्ट अङ्ग है, इस बात को प्रकट करने के लिये कहा गया है ८ ।
 गीतादिकों का मान काल जहाँ होता है, उसका नाम ताल है, इस ताल
 का जो विज्ञान है वह समताल विज्ञान है ९ । जूआ खेलने की चतुराई का नाम
 द्यूतकला है १० । जनवाद-यह भी एक प्रकार का विशेष जूआ है, ११ । पाशों से द्यूत
 खेलने की विशेषनिपुणता का नाम पाशकला है, १२ । सारिफल द्यूतरूप अष्टा-
 पद कला होती है १३ । नगर के निर्माण करने की कला का नाम पौरकृत्यकला-

अभिनय आभये प्रकारनी होय छे, गीतकला-संगीत वगेरेमा निपुणता प्राप्त
 करवी ते छे य वादित्रकला तत, वितत वगेरे वादित्राने वगाडवा ते छे ६, स्वरकला-षड्ज,
 ऋषभ वगेरेतुं ज्ञान भेणवतुं ते छे ७, पुष्करगत कला-मृदङ्ग, मुरज वगाडवा ते छे,
 जे के आ कला वादित्रकलानी अन्तर्भूत थरुं जय छे यणु छतांअे आनेजे स्वतत्र
 रूपमां जुही कला गणी छे तेनुं कारणु आ छे के आ कलानुं संगीत कलाभां अतीव
 महत्त्वपूर्णुं स्थान छे ८, गीत वगेरेने जे मानकाल होय छे तेनुं नाम ताल छे, आ
 तालतुं जे विज्ञान छे तेसमताल विज्ञान छे ९, जुगार रभवानी कुशणतानुं नाम द्यूत-
 १०, जनवाद यणु अेक जतने विशेष जुगार छे ११, पासाओथी जुगार रभवामां
 निपुणता भेणववानुं नाम 'पाशकला' छे १२, सारिकल द्यूतरूप अष्टापदकला
 १३ नगरनी निर्माणकला पौरकृत्यकल छे १४, उदक (पाणी)मा भणेली माटीने जे

पूर्विमा तपृथक्करणकलाऽप्युपचाराद् दकमृत्तिका ताम् १५ । अन्नविधिम्—अन्न
पाककलाम् १६ । पानविधि—जलोत्पादनकलां तत्संशोधनकलां वा १७ । वस्त्र-
विधिम्—वस्त्रोत्पादनकलां तद्धारणकलां वा १८ । विलेपनविधि—शरीरोपरिचन्दना-
दिलेपकलां यन्नकर्दमादिलेप परिज्ञानम् १९ । शयनविधिम् शयनं-शय्या पल्यङ्गादि.
तद्विषया कला ताम् २० । आर्याम्—मात्राच्छन्दो विशेषनिर्माणकलाम् २१ ।
प्रहेलिकाम्—गूढाशयपद्यरूपाम् २२ । मागधिकाम्—भाषाच्छन्दोविशेषाम् २३ ।

है. १४ । उदक में मिली हुई मिट्टी को दूर करनेवाले द्रव्य का ज्ञान होना, और-
उसका सम्वन्ध कराकर पानी और मिट्टी को दूर कर देना यह—दकमृत्तिका
कला है जैसे—निर्मली—फिटफिडी डाककर गन्दे पानी को निर्मल करदिया
जाता है. १५ । भोजन बनाने की चतुराई का नाम अन्नविधि कला है, १६। भूमि का
देखकर यहां जल निकलेगा इस प्रकारके विज्ञान का नाम पानविधि कला है. १७ ।
वस्त्रों का निर्माण करने की चतुराई का नाम, या—वस्त्रों को सुन्दर ढग से
पहनने की चतुराई का नाम वस्त्रविधि कला है. १८। शरीर के ऊपर चन्दनादि
का लेप करने की चतुराई का नाम—विलेपनविधि है, १९। पल्यङ्ग आदि विषयक
ज्ञान होना—अर्थात् इस प्रकारका पल्यङ्ग शुभ होता है—इस प्रकार का पल्यङ्ग
शुभ नहीं होता है, ऐसा ज्ञान होना इसका नाम—शयनविधि कला है २० ।
मात्रावाले छन्दों का निर्माण करना. यह—आर्या कला हैं, २१। गूढ आशयवाले
पद्यों की निर्माणकला प्रहेलिका कला है. २२। भाषाछन्द विशेष का नाम—मागधिका
है, इसके निर्माण की चतुराई का नाम मागधिकाकला है, २३। निद्रा जाने की विद्या

द्रव्यथी लुही पाडी शक्य तेतुं ज्ञान धनु अने तेने संबंध करावीने पाणी अने
भाटीने लुहा लुहा करवा आ दकमृत्तिका कला छे जेभडे निर्मली—फिटफिडी नाणीने
गहा पाणीने साइ करवांमां आवे छे १५ लोअन तोयार कुवानी कुशणतातु नाम अन्न
विधि कला छे १६ जमीनने जेधने अर्द्धीधी पाणी नीधणथे आ जतना विज्ञानतुं नाम
'पानविधि कला' छे १७ वस्त्रोना निर्माणनी कुशणतातुं नाम अथवा तो वस्त्रेने सुदर
ढंगधी पहरेवानी कणतु नाम वस्त्रविधि कला छे १८ शरीरनी उपर चन्दन वजरेने लेप
करवानी कुशणतातुं नाम विलेपनविधि छे १९ पल्यङ्गादि विषयक ज्ञान धनुं स्पष्ट छे
आ जतना पद्ये शुभ होय छे. आ जतना पल्यङ्ग शुभ नहीं होना आवु ज्ञान
धनुं, आतु नाम शयनविधि कला छे २० मात्रावाणा छे होतु निर्माण करवुं ने आर्याकला छे २१
गूढ आशययुक्त पद्योनी निर्माणकला 'प्रहेलिका—कला' छे २२ भाषाछन्द विशेषतुं न न
मागधिका छे. जेनी निर्माण कुशणता मागधिका कला छे २३ निद्रा जाने की विद्या

निद्रायिकाम्—अवस्वापनी विद्यारूपां कलाम् २४ । गाथागीतिका चेति कलाद्वय-
 मार्याभेदरूपाम् २५ २६ । श्लोकम्—श्लोकरचनाकलाम् कवित्वकलामित्यर्थः २७ ।
 हिरण्ययुक्तिम्—हिरण्यस्य—रजतस्य युक्तिः—निर्माणविधिस्ताम् २८ । सुवर्ण
 युक्तिम् सुवर्णस्य युक्तिः—निर्माणविधिस्ताम् २९ । आभरणविधिम्—
 भूषणनिर्माणकलाम् ३० । तरुणीपरिकर्म—स्त्रीणां वर्णादिवृद्धिरूपाम् ३१ । स्त्री-
 लक्षणम्, पुरुषलक्षणम्, एतद्वयं सामुद्रिकशास्त्रप्रसिद्धं विज्ञानम् ३२—३३ । हय-
 गज-कुक्कुट-च्छत्र-चक्र-दण्डानां प्रसिद्धानां सप्तानां तत्तल्लक्षणज्ञानकलाः ३४—४० ।
 मणिलक्षणम्—रत्नादि—परीक्षणम् ४१ । काकिणीलक्षणम्—काकिणी—चक्रवर्तिनो

का ज्ञान होना उसका नाम—निद्रायिका कला है, इस कलावाला दूसरे को
 इस कला के प्रभाव से निद्रा में मग्न कर देता है २४ । गाथा-और गीतिका
 ये दोनों कलाएँ आर्या का ही भेदरूप होती हैं, २५-२६ श्लोकरचना करने की
 चतुराई का नाम—श्लोककला है, इसका दूसरा नाम—कवित्वकला भी है २७ । हिरण्य
 युक्ति—चान्दी बनाने की कला २८ सुवर्णयुक्ति—सोना बनाने की कला २९ भूषणों के
 निर्माण की विधि का जानना. आभरणविधि कला है. ३० स्त्रियों के वर्णादिक में
 विधान का जानना. तरुणीपरिकर्मकला है. ३१ स्त्रियों के शुभाऽशुभ लक्षणों को
 जानना. स्त्रीलक्षणकला है. ३२ । पुरुषलक्षणों का जानना यह पुरुष लक्षणकला-
 है. ३३ । दोनों कलाएँ सामुद्रिकशास्त्र से सम्बन्धित हैं । घोडा—हाथी—कुक्कुट—छत्र—
 चक्र—दण्ड असि (तखवार) इन सातों के शुभाऽशुभ लक्षणों को जानना इसका
 नाम उस उस नाम की कला है ३४—४० । रत्नादिकों की परीक्षा करना इसका नाम
 मणिलक्षण कला है. ४१ । काकिनी कला में—चक्रवर्ती के रत्न विशेष की परीक्षा

ज्ञान थलुं ते निद्रायिका कला छे आ कलाने जलुनारने भीजने आ कलाना प्रलाभ-
 थी निद्रामग्न करे छे २४. गाथा अने गीतिका आ जन्ने कलाओ आर्यानाज लेदइपमा
 छे २५-२६ श्लोक रचनामा कुशलतातुं नाम श्लोक कला छे. आतुं भीलु नाम
 कवित्वकला पलु छे २७ हिरण्य युक्ति आंही जनाववानी कला, २८ सुवर्णने युक्ति—सोतुं
 जनाववानी कला २९ आभरणविधि—आभूषणोने जनाववानी विधीने जलुवी
 ते आभरणविधि कला छे ३०. स्त्रीओना वर्णादिकमा वृद्धिविधान जलुपुं ते
 तरुणी परिकर्मकला छे ३१. स्त्रीओना शुभाशुभ लक्षणो जलुवा ते स्त्रीलक्षण कला छे ३२. पुरुष
 लक्षणो जलुवा अे पुरुष लक्षण कला छे ३३. अे जन्ने कलाओ सामुद्रिकशास्त्रनी साथे
 मंगलध शोभे छे घोडा—हाथी—कुक्कुट—छत्र—चक्र—दण्ड—आसि—(तखवार) अे सहितना शुभा-
 शुभ लक्षणो जलुवा तेना नामो ते ते कला विधिष्ट समजवा ३४—४० रत्नादिकोनी परीक्षा ते
 मणिलक्षण कला छे ४१. काकिणी कलामा—चक्रवर्तीना रत्नविशेषनी परीक्षा तेना लक्षणोना

रत्नविशेषस्तस्य लक्षणम् ४२ । वास्तुविद्या—गृहभूमेर्गुणदोषज्ञानरूपाम् ४३ ।
 नगरमानम्—नगरस्य दश योजनाऽऽयाम-नवयोजनव्यासादि-प्रमाणज्ञानम् ४४ ।
 स्कन्धाधारमानम्—सेनानिवेशप्रमाणज्ञानम् ४५ । चारम्—चारो—ज्योतिश्चारः, तद्वि-
 ज्ञानम् ४६ । प्रतिचारम्—प्रतिचरण प्रतिचार.—रोगिणः प्रतीकारकरणं, तद्विषयक-
 ज्ञानम् ४७ । व्यूहम्—सामान्यतः सैन्यरचनं, तद्विषयज्ञानम् ४८ । चक्रव्यूहम्—चक्रा-
 ऽऽकृतिकसैन्यरचनाम् ४९ । गरुडव्यूहम्—गरुडाऽऽकृतिकसैन्यरचनाम् ५० । शकट-
 व्यूहम्—शकटाऽऽकृतिकसैन्यरचनाम् ५१ । युद्धम्—युद्धकलाम् ५२ । नियुद्धम्—
 मल्लयुद्धकरणकलाम् ५३ । युद्धयुद्धम्—खड्गादिप्रक्षेपणपूर्वकमहायुद्धकलाम् ५४ ।
 अस्थियुद्धम्—अस्थिभिः—कूर्परादिभिः प्रहरणं, तत्कलाम् । यद्वा 'दृष्टियुद्धम्' इति

करने के लक्षणों को जानना ४२ । गृहभूमि के गुण दोषों का ज्ञान होना
 इसका नाम वास्तु विद्या कला है, ४३ नगरकी दशयोजन लम्बाई और नौ योजन
 चौड़ाई आदि प्रमाण का ज्ञान होना यह नगरमान कला है ४४। सेनानिवेश
 के प्रमाण का होना—स्कन्धावार मानकला है ४५। नक्षत्रादिक ज्योतिष्केतों की
 चाल का ज्ञान होना चारककला है, ४६ । रोगों के प्रतिकार करने के उपायों का
 ज्ञान होना प्रतिचारकला है, ४७। सामान्यरूप में सैन्यरचना का ज्ञान होना, यह
 व्यूह कला है, ४८। चक्राकाररूप में सैन्य की रचना करना चक्रव्यूहकला है, ४९।
 गरुड के आकार में सैन्य की रचना करना यह गरुड व्यूहकला है, ५०। शकट
 के रूपमें सैन्य की रचना करने का ज्ञान होना यह शकटव्यूहकला है ५१। युद्ध
 करने का ज्ञान होना यह युद्धकला है, ५२। मल्लयुद्ध करने का ज्ञान होना यह
 मल्लयुद्ध या नियुद्धकला है ५३। तलवार आदि चलाते हुये समागान युद्ध करना
 यह युद्धयुद्धकला है, ५४। अस्थि—टोहनी आदि से प्रहार करने की चतुर्गट का

आधारे करवाया आवे छ ४२ गृहभूमिना गुणदोषानुं जान धवुं ते वास्तुविद्याकला छ ४३
 नगरेनी दश योजन लणाछ अने नवयोजन पडोणछ विगैटे प्रमाणुं जान धवुं ते
 'नगरमान कला' छ, ४४ सेनानिवेशना प्रमाणुं जान धवु ते स्कन्धावारमान कला छ, ४५
 नक्षत्रादिक ज्योतिष्केतानी गतिनु ज्ञान धवु ते चार कला छ ४६ ज्योतिषे भगवताना
 उपायेनु ज्ञान ते प्रतिचार कला छ, ४७ सामान्य रूपवी सैन्यरचनानुं जान धवु ते व्यूह
 व्यूह कला छ ४८यथाशकटउपमां सैन्यरचना कर्वां शकटव्यूह कला छ ४९ गरुडना
 आकारधी सैन्यनी रचना कर्वां तेनुं नाम गरुडव्यूह कला छ ५० शकटना उपमां
 सैन्यनी रचना कर्वां जान धवुं ते शकटव्यूह कला छ ५१ युद्ध करने का ज्ञान
 ते युद्ध कला छ पर मल्लयुद्ध कर्वां जान धवु ते मल्लयुद्ध कला छ ५२ नियुद्ध करने का
 तलवार वणैरे रचनतां चक्रव्यूह युद्ध कर्वां ते चक्रव्यूह कला छ ५३ युद्धयुद्ध करने का
 प्रहार कर्वांनी युद्धयुद्धना नाम अस्थियुद्ध कला छ ५४ अस्थि—टोहनी आदि से प्रहार

पाठः प्रतिद्वन्द्विनोश्चक्षुषो निर्निमेषावस्थानं, तत्कलाम् ५५ । मुष्टियुद्धम्—मुष्टिभिः प्रहरणम् ५६ । बाहुयुद्धम्—बाहुभिः प्रहरणम् ५७ । लतायुद्धम्—लतावृक्षमिव शत्रुं गाढं परिवेष्ट्य प्रहरणम् ५८ । इष्वस्त्रम् नागवाणादिदिव्यास्त्रप्रक्षेपणम् ५९ । त्सरुशब्दम्—त्सरुः—खड्गमुष्टिः, अवयवे समुदायोपचारात् त्सरुशब्देनात्र खड्गो गृह्यते, तस्य प्रवादो यत्र शास्त्रे तत् त्सरुप्रवादं—खड्गशिक्षाशास्त्रमित्यर्थः ६० । धनुर्वेदम्—धनुःशिक्षणशास्त्रम् ६१ । हिरण्यपाक—सुवर्णपाकौ—रजत—सुवर्णयो रसायन क्रिया त द्वेषशक्यलाद्वयम् ६२-६३ । मणिपाकम्—मणिनिर्माणकलाम् ६४ । धातुपाकम्—रजत ताम्रादिधातुनिर्माणकलाम् ६५ । सूत्रखेल-वर्त्तखेल-नालिकाखेलाः लोकतः प्रत्येत-व्याः ६६-६८ । पत्रच्छेद्यम्—अनेकपत्रेषु विवक्षित पत्रच्छेदनकलाम् ६९ । कटक-

नाम अस्थियुद्धकला है । अथवा 'दृष्टियुद्ध' इस पाठ में प्रतिस्पर्धी की आंखों को अपनी चितवन से निमेषरहित कर देना सो दृष्टियुद्ध है, ५५ । मुष्टियों से प्रहार करना, इसका नाम मुष्टियुद्धकला है ५६ । बाहुओं से प्रहार करना, इसका नाम बाहु युद्धकला है, ५७ । लता जैसे वृक्षा को लपेट लेती है, इसी प्रकार से शत्रु को घेरे में डालते हुवे गाढरूप से लपेटकर फिर उस पर प्रहार करना, लतायुद्ध है, ५८ । नागवाण आदि दिव्यरत्नों का प्रक्षेपण करना, इसका नाम—इष्वस्त्रकला है, ५९ । त्सरुशब्द का अर्थ तलवार की मूठ है, यहां अवयव में समुदाय के उपचार से त्सरुशब्द से खड्ग का ग्रहण किया गया है—इस खड्ग—तलवार को चलाने में निपुण होना इसका नाम—त्सरु प्रवाद है ६० । धनुष चलाने की क्रिया में निपुणता प्राप्त करना यह—धनुर्वेद कला है, ६१ । रजत-और सोना को रसायन क्रिया जानना वह हिरण्यरूप, सुवर्ण पाक कला है ६२-६३ । मणियों का निर्माण विधान को जानना मणि निर्माण कला है, ६४ अथवा—रजत ताम्रादि धातुओं का निर्माण

शत्रुनी आपोने पोतानी दृष्टी निमेष रहित करवी ते दृष्टियुद्ध छे ५५. मुष्टिकाओथी प्रहार करीने लडवु ते मुष्टि युद्ध कला छे, ५६ बाहुओथी लडवु ते बाहु युद्ध कला छे, ५७ लता जेभ वृक्षोने परिवेष्टित करी ले छे तेभन् शत्रुने आरे तरङ्ग घेरीने गाढरूपथी तेने वञ्चे लडने तेनापर हुमलो करवो ते लतायुद्ध छे ५८. नागबाणु वगेरे दिव्यरत्नोत्तुं प्रक्षेपणु करवु तेनु नाम इष्वस्त्रकला छे ५९. त्सरु शब्दने अर्थ तलवारनी मूठ छे, अर्था अवयवमां समुदायना उपचारथी त्सरु शब्दथी अर्द्धत्तुं अलुषु कथुं छे, अर्द्धने अज्ञाववामा कुशगता भेगवरी तेनु नाम त्सरुप्रवाद छे ६० धनुष अज्ञाववामां निपुणत्ता भेगवरी ते धनुर्वेद कला छे ६१ रजत अने सुवर्णना रसायणुनी क्रिया ज्ञानीने रजत अने पाक कला छे ६२ ६३ मणिओना निर्माणुनी कला ज्ञानी ते मणि निर्माणकला छे ६४. अथवा त्सरु वगेरे धातुओत्तु निर्माणु करवु आ धातुपाककला छे ६५. नटोनी जेभ सूत्रपर-

च्छेद्यम् शत्रुसैन्येषु विवक्षित शत्रुहननम् ७० सजीवनिर्जीवि-सजीव मृतधात्वादीनां सजीवकरणं सहजस्वरूपापादनम्, निर्जीवम् सुवर्णादिधातूनां प्रयोगविशेषेण मारणम्, पारदस्य मूर्च्छांप्रापणं वा ७१ । शकुनस्तम्-पक्षिशब्दम्ः, पक्षिशब्दज्ञानम्, यद्वा 'शकुनस्त'-शब्देन शकुनशास्त्रं गृह्यते, तेन वसन्तराजादिशकुनशास्त्रोक्तसर्वशकुन-ज्ञानं वा ७२ । इति आसां द्वासप्ततिकलानां क्रमन्यासः, कुत्रचिन्नामनिर्देशोऽपि च संग्रहसमयविपर्यासेन पृथक् पृथगुपलभ्यतेऽती यत्र यद्रूपः पाठो लभ्यते तत्र

करना यह—धातुपाक कला है, ६५। नटों की तरह सूत्रपर—वर्तपर, और—नालिका पर चढ़ कर खेलना—ये तत्—तत् नामवाली कलाएँ हैं ६६-६८। अनेकपत्रों में से किसी विवक्षित पत्र का छेदन करना पत्रच्छेद्य कला है, ६९। शत्रु की सेना में रह कर फिर विवक्षित शत्रु को मार देना यह कटकच्छेद्य कला है, ७०। भस्मसात् किये गये सुवर्णादि धातुओं को निरुत्थ भस्म होने से पहले तक प्रयोजन विशेष के आजाने पर उस भस्म को पुनः सुवर्ण कर देना, तथा—एक राज्य से दूसरे राज्य में सुवर्ण को ले जाने का राजकीय प्रतिबन्ध रहने पर उन वाञ्छनीय सुवर्णादिधातुओं को प्रयोगविशेष से मारना, अथवा—पारे को मूर्च्छित करना—अर्थात्—अजीर्णत्व—नपुंसकत्व आदि अट्टारह दोषों को पारों से निकाल देना यह सजीव निर्जीव कला है, ७१। पक्षियों की बोली को पहिचान लेना, अर्थात्—वसन्त राज आदि कृत शकुनशास्त्रदृष्टि से सब पक्षियों का ज्ञान होना यह—शकुनस्त कला है ७२। इन बहत्तर कलाओं का क्रम और कहीं कहीं उनका नाम निर्देश भी संग्रह समय की भिन्नसा से पृथक् पृथक् रूपसे उपलब्ध—प्राप्त

वर्तपर अने नालिकापर यतीने रभु ये तत्-तत् नामवाणी कलाओं छे ६६-६८ अनेक पत्रोभाधी डोछ भास पत्रनु छेदन क्वुं पत्र-छेद्यकला छे, ६९ शत्रुनी सेनाभाङ्गुनी पडी डोछ विशेष शत्रुने न मारु कटकच्छेद्य कला छे ७० लभभ्रमा परिपुत थयेला सुवर्णदुं धातुओने निरुत्थ लभ डोवाधी पडेला प्रयोगन विशेषने लीधे कुनी लभने सुवर्ण वगेरे गनावुं तेभन एक राज्यभाधी गीत गन्यभा सुवर्णने लधे गवाने नन शीय प्रतिबध होवा छता ये ते वाछनीय सुवर्णादि धातुओने प्रयोग विषयधी मान्य छे पाराने मूर्च्छित क्वे। अट्टे छे अछुत्त्व वगेरे अट्टे दोषाने पारभाधी डारण भा सल्लव निरुत्थकला छे ७१ पक्षीओनी ओलीने समष्ट देवी अट्टे छे वसन्तराज दों कृत शकुनशास्त्रनी दृष्टिओे लधा पक्षीओनी ओलीने समष्टी शुक्रशुक्र धातु ते शकुनस्त कला छे, ७२ भा ओतेर कलाओने। उभ अने तेना नाम नि

पाठः प्रतिद्वन्द्विनोश्चक्षुषो निर्निमेषावस्थानं, तत्कलाम् ५५ । मुष्टियुद्धम्—मुष्टिभिः प्रहरणम् ५६ । बाहुयुद्धम्—बाहुभिः प्रहरणम् ५७ । लतायुद्धम्—लतावृक्षमिव शत्रुं गाढं परिवेष्ट्य प्रहरणम् ५८ । इष्वस्त्रम् नागवाणादिदिव्यास्त्रप्रक्षेपणम् ५९ । त्सरुशब्दम्—त्सरुः—स्त्रमुष्टिः, अवयवे समुदायोपचारात् त्सरुशब्देनात्र खड्गो गृह्यते, तस्य प्रवादो यत्र शास्त्रे तत् त्सरुप्रवादं—स्वङ्गशिक्षाशास्त्रमित्यर्थः ६० । धनुर्वेदम्—धनुःशिक्षणशास्त्रम् ६१ । हिरण्य-पाक-सुवर्णपाकौ—रजत-सुवर्णयो रसायन क्रिया तद्विषयकवलाद्वयम् ६२-६३ । मणिपाकम्—मणिनिर्माणकलाम् ६४ । धातुपाकम्—रजत ताम्रादिधातुनिर्माणकलाम् ६५ । सूत्रखेल-वर्तखेल-नालिकाखेलाः लोकतः प्रत्येतव्याः ६६-६८ । पत्रच्छेदम्—अनेकपत्रेषु विवक्षित पत्रच्छेदनकलाम् ६९ । कटक-

नाम अस्थियुद्धकला है। अथवा 'दृष्टियुद्ध' इस पाठ में प्रतिस्पर्धी की आंखों को अपनी चितवन से निमेषरहित कर देना सो दृष्टियुद्ध है, ५५ । मुष्टियों से प्रहार करना, इसका नाम मुष्टियुद्धकला है ५६ । बाहुओं से प्रहार करना, इसका नाम-बाहु युद्धकला है, ५७ । लता जैसे वृक्षां को लपेट लेती है, इसी प्रकार से शत्रु को घेरे में डालते हुवे गाढरूप से लपेटकर फिर उस पर प्रहार करना, लतायुद्ध है, ५८ । नागवाण आदि दिव्यरत्नों का प्रक्षेपण करना, इसका नाम-इष्वस्त्रकला है, ५९ । त्सरुशब्द का अर्थ तलवार की मूठ है, यहां अवयव में समुदाय के उपचार से त्सरुशब्द से खड्ग का ग्रहण किया गया है—इस खड्ग—तलवार को चलाने में निपुण होना इसका नाम—त्सरु प्रवाद है ६० । धनुष चलाने की क्रिया में निपुणता प्राप्त करना यह—धनुवेद कला है, ६१ । रजत-और सोना को रसायन क्रिया जानना वह हिरण्यरूप, सुवर्ण पाक कला है ६२-६३ । मणियों का निर्माण विधान को जानना मणि निर्माण कला है, ६४ अथवा—रजत ताम्रादि धातुओं का निर्माण

शत्रुनी आभोने पोतानी दृष्टिथी निमेष रक्षित करवी ते दृष्टियुद्ध छे ५५. मुष्टिकाभ्योथी प्रहार करीने लडवु ते मुष्टि युद्ध कला छे. ५६ बाहुभ्योथी लडवु ते बाहु युद्ध कला छे. ५७ लता जेम वृक्षाने परिवेष्टित करी ले छे तेमज शत्रुने आरे तरङ्ग घेरीने गाढरूपथी तेने वर्ये लडने तेनापर डुमलेो करवो ते लतायुद्ध छे ५८. नागवाणु वगेरे दिव्यरत्नोत्तुं प्रक्षेपणु करवुं तेनु नाम इष्वस्त्रकला छे ५९. त्सरु शब्दने अर्थ तरवारनी मूठ छे. अर्ही अवयवमा समुदायना उपचारथी त्सरु शब्दथी अर्द्धत्तुं अडवु करुं छे. अर्द्धने अलाववामा कुशलता भेजववी तेनु नाम त्सरुप्रवाद छे ६० धनुष अलाववामा निपुणता भेजववी ते धनुर्वेद कला छे ६१ रजत अने सुवर्णना रसायणुनी क्रिया जाणीने रजत अने रस्य पाक कला छे ६२ ६३ मणिभ्योना निर्माणुनी कला जाणुवी ते मणि निर्माणुकला छे ६४. अथवा ताम्र वगेरे धातुभ्योत्तु निर्माणु करवु आ धातुपाककला छे ६५. नटोनी जेम सूत्रपर-

पाठः प्रतिद्वन्द्विनोश्चक्षुषो निर्निमेषावस्थानं, तत्कलाम् ५५ । मुष्टियुद्धम्—मुष्टिभिः प्रहरणम् ५६ । बाहुयुद्धम्—बाहुभिः प्रहरणम् ५७ । लतायुद्धम्—लतावृक्षमिव शत्रुं गाढं परिवेष्ट्य प्रहरणम् ५८ । इष्वस्त्रम् नागवाणादिदिव्यस्त्रप्रक्षेपणम् ५९ । त्सरुशब्दम्—त्सरुः—स्त्रम्—मुष्टिः, अवयवे समुदायोपचारात् त्सरुशब्देनात्र स्वप्नो गृह्यते, तस्य प्रवादो यत्र शास्त्रे तत् त्सरुप्रवादं—स्वप्नशिक्षाशास्त्रमित्यर्थः ६० । धनुर्वेदम्—धनुःशिक्षणशास्त्रम् ६१ । हिरण्यपाक-सुवर्णपाकौ—रजत-सुवर्णयो रसायन क्रिया त द्विषयकत्वाद्वाच्यम् ६२-६३ । मणिपाकम्—मणिनिर्माणकलाम् ६४ । धातुपाकम्—रजत ताम्रादिधातुनिर्माणकलाम् ६५ । सूत्रखेल-वर्तखेल-नालिकाखेलाः लोकतः प्रत्येतव्याः ६६-६८ । पत्रच्छेद्यम्—अनेकपत्रेषु विवक्षित पत्रच्छेदनकलाम् ६९ । कटक-

नाम अस्थियुद्धकला है। अथवा 'दृष्टियुद्ध' इस पाठ में प्रतिस्पर्धी की आंखों को अपनी चितवन से निमेषरहित कर देना सो दृष्टियुद्ध है, ५५ । मुष्टियों से प्रहार करना, इसका नाम मुष्टियुद्धकला है ५६ । बाहुओं से प्रहार करना, इसका नाम बाहु युद्धकला है, ५७ । लता जैसे वृक्षा को लपेट लेती है, इसी प्रकार से शत्रु को घेरे में डालते हुवे गाढरूप से लपेटकर फिर उस पर प्रहार करना, लतायुद्ध है, ५८ । नागवाण आदि दिव्यस्त्रों का प्रक्षेपण करना, इसका नाम—इष्वस्त्रकला है, ५९ । त्सरुशब्द का अर्थ तलवार की मूठ है, यहां अवयव में समुदाय के उपचार से त्सरुशब्द से स्वप्न का ग्रहण किया गया है—इस स्वप्न—तलवार को चलाने में निपुण होना इसका नाम—त्सरु प्रवाद है ६० । धनुष चलाने की क्रिया में निपुणता प्राप्त करना यह—धनुर्वेद कला है, ६१ । रजत-और सोना को रसायन क्रिया जानना वह हिरण्यरूप, सुवर्ण पाक कला है ६२-६३ । मणियों का निर्माण विधान को जानना मणि निर्माण कला है, ६४ अथवा—रजत ताम्रादि धातुओं का निर्माण

शत्रुनी आंभोने पोतानी दृष्टिथी निमेष रहित करवी ते दृष्टियुद्ध छे ५५. मुष्टिकाम्बोथी प्रहार करीने लडवु ते मुष्टि युद्ध कला छे. ५६ बाहुम्बोथी लडवु ते बाहु युद्ध कला छे. ५७ लता जेम वृक्षाने परिवेष्टित करी ले छे तेमज शत्रुने चारे तरङ्ग घेरीने गाढरूपथी तेने वन्द्ये लडने तेनापर हुमलो करवो ते लतायुद्ध छे ५८. नागवाणु वगेरे दिव्यस्त्रानोतुं प्रक्षेपणु करवु तेनु नाम इष्वस्त्रकला छे ५९. त्सरु शब्दने अर्थ तरवारनी मूठ छे. अर्ही अवयवमा समुदायना उपचारथी त्सरु शब्दथी अङ्गुतुं अडणु करुं छे. अङ्गुने यथाववाभा कुशलता भेणववी तेनु नाम त्सरुप्रवाद छे ६० धनुष यथाववाभा निपुणता भेणववी ते धनुर्वेद कला छे ६१ रजत अने सुवर्णना रसायणुनी क्रिया जानीने रजत अने रस्य पाठ कला छे ६२ ६३ मणिम्बोना निर्माणुनी कला जानववी ते मणि निर्माणकला छे ६४. अथवा 'त ताम्र वगेरे धातुम्बोतु निर्माणु करवु आ धातुपाककला छे ६५. नटोनी जेम सूत्रपर-

च्छेद्यम् शत्रुसैन्येषु विवक्षित शत्रुहननम् ७० सजीवनिर्जीव-सजीव मृतधात्वादीनां सजीवकरणं सहजस्वरूपापादनम्, निर्जीवम् सुवर्णादिधातूनां प्रयोगविशेषेण मारणम्, पारदस्य मूर्च्छांप्रापणं वा ७१ । शकुनस्तम्-पक्षिशब्दम्; पक्षिशब्दज्ञानम्, यद्वा 'शकुनस्त'-शब्देन शकुनशास्त्रं गृह्यते, तेन वसन्तराजादिशकुनशास्त्रोक्तसर्वशकुन-ज्ञानं वा ७२ । इति आसां द्वासप्ततिकलानां क्रमन्यासः, कुत्रचिन्नामनिर्देशोऽपि च संग्रहसमयविपर्यासेन पृथक् पृथगुपलभ्यतेऽतो यत्र यदूपः पाठो लभ्यते तत्र

करना यह—धातुपाक कला है, ६५ । नदों की तरह सूत्रपर—वर्तपर, और—नालिका पर चढ़ कर खेलना—ये तत्—तत् नामवाली कलाएँ हैं ६६-६८ । अनेकपत्रों में से किसी विवक्षित पत्र का छेदन करना पत्रच्छेद्य कला है, ६९ । शत्रु की सेना में रह कर फिर विवक्षित शत्रु को मार देना यह कटकच्छेद्य कला है, ७० । भस्मसात् किये गये सुवर्णादि धातुओं को निरुत्थ भस्म होने से पहले तक प्रयोजन विशेष के आजाने पर उस भस्म को पुनः सुवर्ण कर देना, तथा—एक राज्य से दूसरे राज्य में सुवर्ण को ले जाने का राजकीय प्रतिबन्ध रहने पर उन वाञ्छनीय सुवर्णादिधातुओं को प्रयोगविशेष से मारना, अथवा—पारे को मूर्च्छित करना—अर्थात्—अजीर्णत्व—नपुंसकत्व आदि अट्टारह दोषों को पारों से निकाल देना यह सजीव निर्जीव कला है, ७१ । पक्षियों की बोली को पहिचान लेना, अर्थात्—वसन्त राज आदि कृत शकुनशास्त्रदृष्टि से सब पक्षियों का ज्ञान होना यह—शकुनस्त कला है ७२ । इन बहत्तर कलाओं का क्रम और कहीं कहीं उनका नाम निर्देश भी संग्रह समय की भिन्नसा से पृथक् पृथक् रूपसे उपलब्ध—प्राप्त

वर्तपर अने नालिकापर यहीने रमयुं ये तत्-तत् नामवाणी कलाओ छे. ६६-६८ अनेक पत्रोमांथी छेछ आस पत्रद्य छेदन करयुं पत्रच्छेद्यकला छे. ६९ शत्रुनी सेनामारहीने पछी छेछ विशेष शत्रुने न मारयु कटकच्छेद्य कलाछे. ७० लस्मभ्रपमा परिशुत थयेला सुवर्णादि धातुओने निरुत्थ लस्म होवाथी पहुला प्रयोजन विशेषने लीधे करी लस्म ने सुवर्ण वगेरे जनावयुं तेमज् अेक राज्यमांथी गीज् राज्यमा सुवर्णने लछ जवानो राज-कीय प्रतिबन्ध होवा छतां ये ते वाञ्छनीय सुवर्णादि धातुओने प्रयोग विषयथी मारवां के पारने मूर्च्छित करवो अेटले के अलुत्त्व वगेरे अट्टार दोषोने पारामांथी काढवा आ सलुव निर्लवकला छे ७१ पक्षीओनी ओलीने समल लेवी अेटले के वस तराज वगेरे कृत शकुनशास्त्रनी दृष्टिअे जधा पक्षीओनी ओलीने समजवी शुलाशुल जलुपु ते शकुनस्तुत कला छे. ७२ आ ओतेर कलाओने कस अने तेना नाम निर्देश

तद्रूपेण व्याख्या विधेयेति तच्चम् । पूर्वोक्तप्रकारा द्वासप्ततिकलाः बलाचार्यो
दृढप्रतिज्ञं शिक्षयिष्यतीति भावः । ॥ सू० १७० ॥

मूलम्—तए णं से कलायरिए तं दृढपङ्कणं दारगं लेहाइयाओ
गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ
य अत्थओ य गंथओ य करणओ य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मा-
पिऊणं उवणेहिइ । तए णं तस्स दृढपङ्कणस्स दारयस्स अम्मापि-
यरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं यत्थगंध-
मल्लालंकारेणं सक्कारिस्संति, सम्भाणिस्संति, विउलं जीवियारिहं
पीइदाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविज्जेहिंति ॥ सू० १७१ ॥

छाया—ततः खलु स कलाचार्यस्तं दृढप्रतिज्ञं दारकं लेखादिकाः गणित-
प्रधानाः शकुनरुतपर्यसानाः द्वासप्ततिकलाः सूत्रतश्च अर्थतश्च ग्रन्थतश्च करणतश्च
शिक्षयित्वा साधयित्वा अम्मा-पित्रोः उपनेष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य

होता है इसलिये जहां जहां जिस जिस रूप से पाठ मिले वहां । उस उस रूपसे
व्याख्या समझनी चाहिए ॥ सू० १७० ॥

“तए णं से दृढपङ्कणे—”दारए इत्यादि—

मूलार्थ—‘तए णं’ इसके बाद ‘कलायरिय—’ कलाचार्यने ‘तं दृढपङ्कणं—’
उस दृढप्रतिज्ञकुमार को ‘लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ—’ गणित प्रधान लेखा-
दिक कलाएं—‘सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अत्थओ गंथ-
ओ य करणओ य—सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेहिइ—’ पहली लेह कला
से लेकर अन्तिम शकुनरुत कलातक जिन की संख्या ७२—प्रगट की जा चुकी है.

पणु संत्राडु समयना लिन्नपणुथी णुहाणुहाइपे प्राप्ता थाय छि. जेथी जयां जयां जे
जे इपथी पाठ भणेल छि त्या त्या ते ते इपथी तेनी व्याख्या समजवी. ॥सू०१७०॥

“तएणं से कलायरिए—इत्यादि ।

मूलार्थ—‘तए णं’ त्थार पछी ‘कलायरिए’ कलाचार्ये ‘तं दृढपङ्कणं’ ते दृढ
प्रतिज्ञ कुम्भारने ‘लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ’ गणित प्रधान लेखादिक कलाओ
‘सउणरुयपज्जवसाणाओ वावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अत्थओ गंथओ य करणओ
सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेहिइ’ अन्तिम शकुनरुत कला सुधीनी
अस्त ७२ कलाओने सौथी पडेला सूत्र-इपमां, त्थारपछी अर्थइपमां अथइपमां

दारकस्य अम्बा-पित्रोः उपनेष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य दारकस्य अम्बापितरौ तं कलाचार्यं विपुलेन अशनपानखादिमस्वादिमेन वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण सत्कारयिष्यतः, सम्मानयिष्यतः, विपुलं जीविकार्हं प्रीतिदानं दास्यतः दत्त्वा प्रतिविसर्जयिष्यतः ॥ सू० १७१ ॥

टीका—‘तए णं’ इत्यादि—ततः खलु स कलाचार्यः तं दृढप्रतिज्ञं दारकं लेखादिकाः—लेखः—अक्षरविन्यासः आदौ—प्राथम्ये यासां ताः—लेखप्रथमा इत्यर्थः, तथा—गणि—प्रधानाः—गणितं प्रधानं यासु ता—गणितमुख्या इत्यर्थः, तथा शकुनरुतपर्यवसानाः—शकुनरुतं—पक्षिशब्दः पर्यवसाने—अन्ते यासां ताम्—तथा—पक्षिशब्दपरिज्ञानान्ताः, द्वासप्तति—द्वाप्ततीसंख्यकाः पूर्वोक्ताः कला सूत्रत शब्दतश्च, अर्थतश्च ग्रन्थतः ग्रन्थरूपेण तासां लेखनतश्च, करणतः प्रयोगतश्च शिक्षयित्वा—अध्याप्य, साधयित्वा साध्याः कारयित्वा तस्य दृढप्रतिज्ञस्य, अम्बापित्रोरन्तिके उपनेष्यति प्रापयिष्यति । ततः खलु तस्य दृढप्रतिज्ञस्य दारकस्य अम्बापितरौ तं कलाचार्यं विपुलेन प्रचुरेण अशनपानखादिमस्वादिमेन वस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण च सत्कारयिष्यतः सम्मानयिष्यतः, विपुलं प्रचुरं जिवितर्हं यावज्जीवं जीवितयोग्यं प्रीतिदानम् उपहारं, दास्यतः, दत्त्वा प्रतिविसर्जयिष्यतः ॥ सू० १७१ ॥

प्रथमतः सूत्र रूप से—वाद में अर्थ रूप से—ग्रन्थरूप से, एवं—तदुभय—सूत्र और अर्थ दोनों रूप से सिखलाकर, एवं—उन्हें पहले उन्हीं के हाथ से सिद्ध कराकर उसके मातापिता के पास उसको ले आवेगा—‘तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारयस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थ—गंध—मल्लालंकारेणं सक्कारिस्संति—’ तब उस दृढप्रतिज्ञ कुमार के मातापिता उस कलाचार्य का विपुल अशन—पान—खादिम, एवं—स्वादिमरूप चार प्रकार के आहार से, तथा—वस्त्र—गन्ध—माला और—अलङ्कारों से सत्कार करेंगे—‘सम्माणेस्संति—’ विउलं जीवियारिहं, पीइयाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसिज्जेहिंति—’

अने करणरूपमां प्रयोगरूपमां शीषवी अने ते कलाचार्येने पडेला तेना न् हाथपडे प्रयोगरूपमा सिद्ध करावीने पछी तेने तेना मातापितानी पासो लछ न्शे. ‘तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारयस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारिस्संति’ त्यारणाए ते दढप्रतिज्ञ कुमारना मातापिता ते कलाचार्येने विपुल अशन—पान—खादिम—अने स्वादिमरूप चार प्रकारना आहारथी तेमन् वस्त्र गन्ध माला अने अलंकारेथी सत्कृत करथे “सम्माणेस्संति विउलं जीवियारिहं, पीइयाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसिज्जेहिंति”

मूलम—तए णं से ददपइण्णे दारए उम्मुक्कवालभावे विण्णा-
यपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते वावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपडि-
वोहए अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए गाथरई गंधव्वणट्टकुत्तले
सिंगारागारचारुवेसे संगयगयहसियभणियचेट्टियविलाससंलावुद्धाव-
निउणजुत्तोवयारकुसले हयजोही गयजोही रहजोही वाहुजोही वाहु-
प्पमही अलंभोगसमत्थे साहस्सिए वियालयारी यावि भविस्सइ।सू.१७२।

छाया—ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारक उन्मुक्तवालभावो विज्ञातपरिणत-
मात्रो यौवनकमनुप्राप्तो द्वासप्ततिकलापण्डितो नवाङ्गसुप्तप्रतिबोचकः अष्टादश-

सत्सम्मान करेगे, फिर-विपुल प्रीतिदान जो कि-उनको जीवनभर के लिये
जीविका वा योग्य हो सकेगा-देगे, यह सब कुछ करके, फिर वे उस कला
चार्य को विसर्जित कर देगे, । टीकार्थ—ःपष्ट हैं ॥ सू० १७१ ॥

“तए णं से ददपइण्णे दारए—इत्यादि—

मूलार्थ—“तए णं से ददपइण्णे—” इसके बाद वह दृढप्रतिज्ञ कुमार जिसका
“उम्मुक्कवालभावे विण्णायपरिणयमित्ते—” बालभाव व्यतीत हो चला है, और
—विज्ञान जिसका शीघ्रता से परिपक्व अवस्था में पहुँच गया है. “जोव्वण-
गमणुपत्ते—” यौवनावस्थाशाली हुवा. “वावत्तरिं कलापंडिए—णवंगसुत्तपडिवोहए—
अट्टारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए—” ७२—कलाओं में विशेषरूपसे
निष्णात हुवा. सुप्त अपने नवाङ्गों को दो कान-दो नेत्र-दो नासिकाछिद्र—एक जीभ

सम्भानीत करशे पछी तेमनी लुविका भाटे पर्याप्त धाय तेट्ठुं प्रीतिदान तेमने
आपशे. आ अद्युं करीने पछी तेओ तेमने विसर्जित करशे.

टीकार्थ स्पष्ट छे. ॥सू० १७१॥

“तए णं से ददपइण्णे दारए” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए णं से ददपइण्णे” त्थार पछी ते दृढप्रतिज्ञ कुमार-के जेमत्तुं
“उम्मुक्कवालभावे विण्णायपरिणयमित्ते” आणपणु पसार थध गयुं छे अने जेमत्तुं
विज्ञान अेकदम परिपक्ववावस्था सुधी पडोअी गयुं छे. “जोव्वणगमणुपत्ते” युवावस्था
संपन्न थशे. “वावत्तरिं कलापंडिए णवंगसुत्तपडिवोहए—अट्टारसविहदेसिप्प-
गारभासाविसारए” ७२ कलाओमां विशेषरूपशी निष्णात थयेवो ते पोताना सुप्त
आङ्गीने-जे कान, जे नेत्र, जे नासिकाछिद्र, अेक लल, अेक स्पर्शन धर्णिय, अने

विधदेशीप्रभारभाषाविशागदो गीतरतिः गान्धर्वनाट्यकुशलः शृङ्गारागारचारुवेषः
संगतगतहसितभणितचेष्टितविलाससंलापोल्लापनिपुणयुक्तोपचारकुशलो हययोधी रथयोधी।
वाहुयोधी वाहुप्रमदीं अलंभोगसमर्थः साहसिको विकालचारी चापि भविष्यति ।सू० १७२

एक रपशन, एवं-एक मन्-उनको व्यक्त-जागृत करता हुवा, अट्टारह प्रकारकी
भाषाओं में विशागद हुवा. "गीयरई-गंधव्रणटकुसले-सिगारागारचारुवेसे-
संगयगयहसियभणियचेष्टियविलाससंलापोल्लावनिउणजुत्तोवयारकुसले-" गीत-
एवं-रति में अनुरागयुक्त हुवा, गान्धर्व गान में-एवं नाट्य क्रिया में
पारङ्गत हुवा, तथा-शृङ्गारके गृह की तरह सुन्दर वेष से युक्त हुवा, समुचित गम-
नमें-समुचितहास में-समुचित बोलने में-वातचीत करने में-समुचित चेष्टा में
समुचित विनाम में-नेत्र जनिन विकार में-समुचित संलाप में-एवं समुचित
काकुभाषण में-दक्ष हुवा, तथा-समुचित व्यवहारा में कुशल हुवा, तथा-"हय
जोही गयजोही-रहजोही-वाहुजोही-वाहुप्पमदी-अलं भोगसमर्थे-साहसिए-वियाल-
यारी यावि भविरसइ-" हययुद्ध करने में कुशल हुवा गजयुद्ध करने में कुशल
हुवा, रथयोधी हुवा वाहुप्रयोधी हुवा, वाहुप्रमदीं हुवा, वाहु से कठिन भी
वस्तु को चूर-र करने में समर्थ हुवा, भोग में समर्थ हुवा. अकेलाही
सहस्र ग्व्यक भटों के साथ युद्ध करने में समर्थ हुवा, अथवा-साहसिक-
अधिक साहस से युक्त हुवा, मध्यरात्रि में भी विचरण करनेवाला होगा. ।

श्रेष्ठमत-व्यक्त जागृत करता अट्टार प्रकारकी देशीय भाषाओंमा विशारद थशे.
"गीयरई-गंधव्रणटकुसले सिगारागारचारुवेसे संगयगयहसियभणियचेष्टिय
विलाससंलापोल्लावनिउणजुत्तोवयारकुसले" गीत अने रतिमां अनुरागयुक्त थथेले,
गान्धर्वगानमा अने नाट्यक्रियामा पारंगत थथेले तेमज शृंगार गृहनी
जेम सुन्दर वेषथी सुसज्ज थथेले ते दृढप्रतिज्ञ समुचित गमनमा, समुचित हासमां
समुचित गोलवाभा वातचीत करवाभां, समुचित चेष्टाभा, समुचित विलासमां-नेत्र-
जनितविकारमा, समुचित संलापमा अने समुचित काकु-भाषणमा पणु दक्ष थथे जशे
आ प्रमाणे ते समुचित व्यवहारमा कुशण थशे. तेमज "हयजोही-गयजोही-रह-
जोही-वाहुजोही-वाहुप्पमदी-अलंभोगसमर्थे-साहसिए वियालयारी यावि भवि-
रसइ" हययुद्ध करवाभा गज युद्ध करवाभां कुशण थशे. ते रथयोधी थशे, वाहुयोधी
थशे, वाहुमदीं थशे, वाहुथी अति कठोर वस्तुने ब्रह्म विब्रह्म करवाभां समर्थ थशे
भोगमां समर्थ थशे. अकेले ज ते सहस्र सज्जक लटोनी साथे युद्ध करवाभा
समर्थ थशे. अथवा साहसिक-अधिक साहसयुक्त थशे. आभ ते मध्यरात्रिमां पणु
विचरण करनार थशे.

टीका—“तए णं से’ इत्यादि-ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो नाम दारकः उन्मुक्त-
 बालभावः-व्यतिक्रान्तवाल्यावस्थो विज्ञातपरिणतमात्रः-विज्ञातं-विज्ञानं परिणत-
 मात्रं-सद्यः परिपक्व यस्य स तथा-परिपक्वविज्ञान इत्यर्थः, यौवनकम्-युवावस्थाम्
 अनुप्राप्तः-अनुगतो द्वासप्ततिकलापण्डितः-पूर्वोक्तद्वीसप्ततिकलाऽभिज्ञो नवाङ्ग-
 सुप्तप्रतिबोधकः-‘द्वे श्रोत्रे, द्वे नेत्रे, द्वे, नासिके, एका जिह्वा एका त्वग् एकं
 मनः’ इत्येतेषां नवानां-नवसंख्यकानाम्-अज्ञानाम्-अवयावानां सुप्तानां बाल्या-
 दव्यक्तचेतनावच्छात् सुप्तसदृशानां प्रतिबोधकः यौवनाऽऽगमेन व्यक्तं चैतन्यं यम्य
 स तथा=स्व स्व विषयग्रहणसमर्थ नवाङ्गयुक्त इत्यर्थः, तथा-अष्टादशविध देशीप्रकार-
 भाषाविशारदः-अष्टादशविधायाम्-अष्टादशभेदायां देशीप्रकारायां-देशीस्वरूपायां
 भाषायां विशारदः-निष्णातः-अष्टादशभाषाऽभिज्ञ इत्यर्थः, तथा-गीतरतिः गीते गाने
 रतिः-अनुरागो यस्य स तथा=गीतानुरागयुक्त इत्यर्थः, तथा गान्धर्वनाट्यकुशलः-
 गान्धर्वे-गान्धर्वस्येदं गा धर्वं तस्मिन्-गाने, नाट्ये-नटकर्मणि च कुशलः-गान्धर्व-
 विद्यायां च पारङ्गत इत्यर्थः, तथा-शृङ्गारागारचारुवेषः-शृङ्गारः-अलङ्कारादिकृता
 शोभा तस्य अगारमिव=गृहमिव चारुवेषः-रुचिरवेषो यस्य स तथा-सविच्छिद्य-
 लङ्कारालङ्कृतशरीर इत्यर्थः, तथा-संगतगतहसितभणितचेष्टितविलाससंलापोल्ला-
 पनिपुण्युक्तोपचारकुशलः-संगतेषु-तत्र गतं गमनं हसितं-हासः भणितम्-उक्तिः
 चेष्टितं-चेष्टा, विलासः-नेत्रजन्यो विकारः, तदुक्तं-“विलासो नेत्रजो ज्ञेयः”
 इति, संलापः-परस्परभाषणम्, उक्तं च-“संलापो भाषणं मिथः” इति, उल्लापः-
 काका भाषणम्, उक्तं च-“उल्लापः काकुभाषणम्” इति, एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः,

टीकार्थ-उसका स्पष्ट है. “नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधक-” का-मतलब ऐसा है
 कि बाल्यावस्था में जो-श्रोत्र-आदि अङ्ग अव्यक्त चेतनावाले होने से सुप्त जैसे
 रहते हैं, वेही-यौवन अवस्था में व्यक्त चेतनावाले हो जाने से जागृत जैसे
 हो जाते हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि यौवनावस्था में अपने अपने विषय
 को ग्रहण करने में ये समर्थ हो जाते हैं। “विलासो नेत्र जो ज्ञेयः-संलापो
 भाषणं मिथः-” इस कथन के अनुसार नेत्र विकार का नाम विलास, और-
 भाषण का नाम-संलाप है। “उल्लापः काकुभाषणम्” के अनुसार काकुभाषण

टीकार्थ-आ सूत्रनेो अर्थ स्पष्ट छे. “नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधकः”नेो अर्थ आ
 छे के जाणपणुमां श्रोत्र (कान) वगेरे अंगो सुप्त जेवां होय छे तेज युवावस्थाभां
 नजगृत जेवा थछं नथ छे. तात्पर्य आ छे के युवावस्थाभां जे अंगो पोतपोताना
 विषयने अङ्गु करवाभा समर्थ थछं नथ छे “विलासो नेत्रजो ज्ञेयः संलापो भाषणं
 म्” आ कथन मुज्ज नेत्रज विकारनुं नाम विलास अने भाषणनुं नाम संलापय छे.
 : काकुभाषणम्” मुज्ज काकुभाषणु सारगर्भित व्यंगपूणु वचनोने कडे

तेषु निपुणः—दक्षः, तथा-युक्त पचारकुशलः—युक्तेषु-समुचितेषु उपचारेषु-व्यवहारेषु कुशलः—चतुरः, पदद्वय-य कर्मधारयः, तथा-हययोधी-हयेन युध्यते इत्येवंशीलः-हययुद्धकलाकुशल इत्यर्थः, एवं गजयोधी-स्थयोधी बाहुयोधी—इतिपदत्रयमुन्ने-यम्, तथा-बाहुप्रमर्दी—बाहुभ्यां प्रमर्दतीत्येवंशीलः—बाह्याघातेन कठिनस्यापि वस्तुन श्रणांकरणशील इत्यर्थः, तथा-अभोगसमर्थः—अत्यर्थ भोगानुभवस्मर्थः साह-स्रिक-सहस्रेण युध्यते इति-सहस्रसंख्यकभटैः सह एकाकथे व युद्धकर्ता, 'साहसिकः इतिच्छायापक्षेतु अतिसाहसयुक्तः, तथा-विकाचचारी-विकालेऽपि मध्यरात्रेऽपि चरती त्येवं शीलः अतिसाहसवच्चाद् मध्यरात्रेऽपि विचरणशीलश्चापि भविष्यतीति । सू० १७२।

मूलम्—तए णं तं ददपइणं दारगं अम्मापियरो उम्मुक्क-वालभावं जाव वियालयारिं च वियाणित्ता विउलेहिं अन्नभोगेहि य पाणभोगेहि य लयणभोगेहि य वत्थभोगेहि य सयणभोगेहि य उव-निमंतिहिंति । ॥ सू० १७३ ॥

छाया—ततः खलु तं ददप्रतिज्ञां दारकम् अम्मापितरौ उन्मुक्तवालभावं यावद् विकालचारिणं च विज्ञाय विपुलैः अन्नभोगैश्च पानभोगैश्च लयनभोगैश्च वस्त्रभोगैश्च शयनभोगैश्च उपनिमन्त्रयिष्यतः । ॥ सू० १७३ ॥

सारगर्भित व्यङ्गवचन को कहते हैं, या-ब्रच्चों के द्वार का-का, क-कु आदि तोतली वंली को भी काक भाषण कहते हैं । ॥सू० १७२ ॥

“तए णं ददपइणं दारगं—” इत्यादि—

मूलार्थ—“तए णं—” इसके बाद “तं ददपइणं दारगं—” उस दृढ प्रतिज्ञा दारक को “अम्मापियरो—” मातापिता “उम्मुक्कवालभावं जाव वियालयारिं च वियाणित्ता—” उन्मुक्तवालभाववाला यावत्-विकालचारी जानकर—“विउलेहिं अन्नभोगेहिंय-पाणभोगेहिं—” विपुल अन्न भोगों से विपुल पानभोगों से—“लयणभोगेहिं य वत्थभोगेहिंय सयणभोगेहिंय उवनिमंतिहिंति—” विपुल लयन-

छे. अथवा भाण्डो वडे का-अ-कु कु- वगेरे ने तोतली ओलीने पणु अकु लापणु अडे छे सू. ॥ १७२ ॥

“तए णं ददपइणं दारगं” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तए णं” त्वार पधी “तं ददपइणं दारगं” ते ददप्रतिज्ञा दारकने “अम्मापियरो” माता पिता ‘उम्मुक्कवालभावं जाव वियालयारिं च वियाणित्ता’ उन्मुक्त भावभाव युक्त यावत् विकालचारी ज्ञानीने ‘विउलेहिं अन्नभोगेहिं य पाणभोगेहिं’

टीका—“तए णं” इत्यादि—ततः खलु तं दृढप्रतिज्ञं दारकं अन्वा-पितरौ-माता-पितरौ उन्मुक्तबालभावं-व्यतिक्रान्तवाल्यावस्थं यावत्—यावत्पदेन ‘विज्ञातपरिणत-मात्रं यौवनकमनुप्राप्तं द्वादशप्रतिकलापण्डितं—नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधकम् अष्टादशविध-देशीप्रकारभाषाविशारदं गीतरतिं गान्धर्वनाट्यकुशलं शृङ्गारागारचारुवेषं संगतगत-हसितभणितचेष्टितविलाससंलापोल्लापनिपुणयुक्तोपचारकुशलं हययोधिनं गजयोधिनं रथयोधिनं बाहुयोधिनं बाहुप्रमर्दिनम् अलम्भोगसमर्थं साहस्रिकम्’ इत्येतानि पदा-नि संग्राह्याणि, तथा विकालचारिणं च विज्ञाय विपुलैः—प्रचुरैः अन्नभोगैः—अन्न-रूपभोग्यपदार्थैः, पानभोगैः—पेयरूपभोग्यपदार्थैः, लयनभोगैः—प्रासादरूपभोग्य-पदार्थैः, वस्त्रभोगैः—वसनरूपभोग्यपदार्थैः शयनभोगैः—शयनरूपभोग्यपदार्थैश्च उप-निमन्त्रयिष्यत इति । दृढप्रतिज्ञं दारकं यौवनोन्मुखं दृष्ट्वा तन्मातापितरौ अन्ना-दिभोगानुभोक्तुं प्रेरयिष्यत इति सूत्राशय इति । ॥सू० १७३॥

तनुभोगों से विपुलवस्त्ररूप भोग्य पदार्थों से उपनिमन्त्रित करेंगे । अर्थात् उसे अब अन्नादि भोग्य विषय के लिये स्वान्त्रता देगे ।

टीकार्थ—स्पष्ट है, “उन्मुक्तबालभाव जाव—” में जो यह यावत् पद आया है, उससे—“विज्ञातपरिणतमात्रं, यौवनकमनुप्राप्तम्, द्वादश प्रतिकला पण्डितम्, नवाङ्गसुप्तप्रतिबोधकम्, अष्टादशविधदेशी प्रकार भाषाविशारद गीतरति, गान्धर्वनाट्य कुशलम्, शृङ्गारागारचारुवेषं, संगतगतहसितभणित-चेष्टितविलाससंलापोल्लाप निपुण युक्तोपचार कुशलं, हययोधिनम्, गजयोधिनम् रथयोधिनं, बाहुयोधिनं, बाहुप्रमर्दिनम् अलम्भोगसमर्थम्, साहस्रिकम् साह-स्रिकम्, इन् पीछे के पाठों का ग्रहण हुवा है । ॥ सू० १७३ ॥

विपुल अन्न भोगोथी, विपुल पान भोगोथी ‘लयनभोगैर्हि य वस्त्रभोगैर्हि य सयणभोगैर्हि य उपनिमन्त्रिहिंति’ विपुल लयन तनुभोगोथी, विपुल वस्त्ररूप भोग्य पदार्थोथी उपनिमन्त्रित करके अटके के तेने अन्न वगेरे भोग्य विषयक पदार्थोने भोगवानी छूट आपसे.

टीकार्थ—स्पष्ट छे ‘उन्मुक्तबालभावं जाव’ भां जे यावत् पद आवेल छे तेथी “विज्ञातपरिणतमात्रं, यौवनकमनुप्राप्तम्, द्वादशप्रतिकलापण्डितम् नवाङ्गसुप्त-प्रतिबोधकम्, अष्टादशविध देशी प्रकार भाषा विशारद, गीतरति, गान्धर्व नाट्य कुशलम् शृङ्गारागार चारुवेष, संगतगतहसित भणित चेष्टित विलास संलापोल्लाप निपुण युक्तोपचारकुशल, हययोधिनम्, गजयोधिनम्, रथयोधिनम्, बाहुयोधिनम्, बाहुप्रमर्दिनम्, अल भोगसमर्थम्, साहस्रिकम्, साहस्रिकम् आ पाछणतुं अडल्यु यु छे । ॥ १७३ ॥

मूलम्—तए णं दृढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अन्वभोएहिं
जाव सयणभोएहिं णो संजिहिइ णा गिज्झिहिइ णो मुच्छिहिइ णो
अज्झोववज्झिहिइ । से जहा णामए पउमुप्पलेइ वा पउमेइ वा जाव
सयसहंस्सपत्तेइ वा पके जाए जले संबुद्धे णोवालप्पइ पंकरणं, णो-
वल्लिप्पइ जलरणं, एवामेव दृढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाए
भोगेहि संबुद्धे णोवल्लिप्पिहिइ कामरणं, णोवल्लिप्पिहिइ भोग-
रणं, णोवल्लिप्पिहिइ मित्तणाइणियगसयणसंबधिपरिजणेणं । से
णं तहारूत्राणं थेराणं अंतिए केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, मुंढे भवित्ता
अगाराओ अणगोरियं पव्वइस्सइ । से णं अणगारे भविस्सइ-ईरिया
समिए जाव सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते । तस्स णं भगवओ
अणुत्तरेणं णाणेणं, एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्ज-
वेणं मद्वेणं लाघवेणं खंतीए गुत्तीए अणुत्तरेणं सब्वसंजमसुचरिय
तवफलणिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते अणुत्तरे कसिणे
पडिपुण्णे निरावरणे णिवाघाए, केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्झिहिइ ।
तए णं से भगवं अरहा जिणे केवली भविस्सइ, सदेवमणुयासुरस्स
लोगस्स परियायं जाणिहिइ, तं जहा—आगइं गइं ठिइ चवणं उव-
वायं तक्कं कड मणोमाणसिय खइयं भुत्तं पडिसेविय आवीकम्मं
रहोकम्मं अरहा अरहस्सभागी तं तं कालं मणवयकायजोगे वट्टमा-
णाणं सब्वलोए सब्वजीवाणं सब्वभावे जाणमाणे पासमाणे
विहरिस्सइ । ॥ सू० १७४ ॥

छाया—ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारक स्तेषु विपुलेषु अन्नभोगेषु यावच्छ-
यनभोगेषु नो सङ्क्षयति, नो गर्विष्यति, नो मूर्च्छिष्यति, नो अध्वुपपत्स्यते ।
तद्यथानाम-पद्मोत्पलमिति वा पद्ममिति वा यावत् शतसहस्रपत्रमिति वा पद्मं
जातं जले वृद्धं नोपलिप्यते पङ्करजसा, नोपलिप्यते जलरजसा, एवमेव दृढ
प्रतिज्ञोऽपि दारकः कामैर्जातो भोगैः संवर्द्धितो नोपलेप्स्यते कामरजसा, नो
पलेप्स्यते भोगरजसा, नोपलेप्स्यते प्रियज्ञातिनिजक वजनसम्बन्धिपरिजनेन ।

“तए णं दढपइण्णे दारए—” इत्यादि—

मूलार्थ—‘तए णं’ उसके बाद— ‘दढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अन्नभोगेहिं
जाव सयणभोगेहिं—” वह दढप्रतिज्ञ दारक उन विपुल अन्नरूप भोग्य पदार्थों
में यावत्-शयनरूप भोग्य पदार्थों में—“णो सज्जिहिइ, णो गिज्झिहिइ, णो
मुच्छिहिइ, णो अज्झोववज्जिहिइ—” आसक्ति नहीं करेगा, गृद्धिभावको प्राप्त
नहीं होगा, मूर्च्छाभाव को प्राप्त नहीं होगा, उनमें—एक मनवाला नहीं बनेगा ।
‘से जहाणामए पउमुप्पलेइ वा, पउमेइ वा, जाव सयसहस्सपत्तेइ वा पंके जाए
जले संवुद्धं णोवलिप्पइ पंकरयेणं णोवलिप्पइ जलरणं—” जैसे-पद्म, अथवा—
उत्पल, यावत्-शत सहस्रपत्रोंवाला कमल पङ्क में पैदा होता है, जल में बढ़ता
है, परन्तु—वह कीचड से जरा भी अंश में लिप्त नहीं होता है, पानीसे लिप्त
नहीं होता है, “एवामेव दढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाए भोगेहिं संवुद्धं, णो-
वलिप्पिहिइ—कामरणं. णोवलिप्पिहिइ भोगरणं, णोवलिप्पिहिइ मित्तणाइ
णियगसयणसंबंधिपरिजणेणं—” इसी तरह से वह दढप्रतिज्ञ दारक भी काम-

“तए णं दढपइण्णे दारए” इत्यादि ।

मूलार्थ—‘तए णं’ पणु “दढपइण्णे दारए ते हिं विउलेहिं अन्नभोगेहिं जाव
सयणभोगेहिं” ते दढप्रतिज्ञ दारक ते विपुल अन्नरूप भोग्य पदार्थोंमा यावत् शय
नरूप भोग्य पदार्थोंमा “णो सज्जिहिइ, णो गिज्झिहिइ, णो मुच्छिहिइ, णो अज्झोव-
वज्जिहिइ” आसक्ति अतावथे नहि, गृद्धलाव प्राप्त इरथे नहि, मूर्च्छाभाव प्राप्त
इरथे नहि, तेमा तद्वलीन थथे नहि. -‘से जहाणामए पउमुप्पलेइवा, पउमेइवा
जाव सयसहस्सपत्तेइवा पंके जाए जले संवुद्धं णोवलिप्पइ पंकरयेणं णोवलिप्पइ
जलरणं” जेभ पद्म के उत्पल, यावत् शत सहस्रपत्र कमल पंके (आदव)मां उत्पन्न
लाय छे पाणीमा वृद्धि प्राप्त करे छे, पणु ते सडेव पणु आदवथी
विस्त धतुं नथी. “एवामेव दढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाए भोगेहिं
इ, णोवलिप्पिहिइ कामरणं, णोवलिप्पिहिइ भोगरणं णोवलिप्पिहिइ, मित्त
-णियगसयणसंबंधिपरिजणेणं” आ प्रमाणे ते दढप्रतिज्ञ दारकपणु आभथी

स खलु तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिके केवलां बोधिं भवत्स्यते, मुण्डो भूत्वा आगारात् अगारितां प्रव्रजिष्यति । स खलु अनगारो भविष्यति ईर्यामितो यावत् सुहुतहुताशन इव तेजसा ज्वलन् । त य खलु भगवतोऽनुत्तरेण ज्ञानेन, एवं दर्शनेन चरित्रेण आलयेन विहारेण. आर्जवेन मार्दवेन लाघवेन क्षान्त्या गुप्त्या मुक्त्या अनुत्तरेण सर्वं संयमसुचरिततपः फलनिर्वाणमार्गेण आत्मानं भाव-

से उत्पन्न होगा—भोगों से वर्धित होगा, फिर भी वह काम से लिप्त नहीं होगा, भोगों से लिप्त नहीं होगा, मित्र-ज्ञाति-निजक-सम्बन्धि जन, और-परि-जनों में लिप्त नहीं होगा. । “से णं तहारूपाणं थेराणं अंति ए केवल बोहिं बुज्झिहिइ मुंडे भवित्ता अगाओ अणगारियं पव्वइस्सइ-” वह तो केवल तथारूपवाले स्थविरों के पास केवल बोधि को प्राप्त होगा “से णं अणगारे भविस्सइ ईरियासमि ए जाव सुहुय हुयासणो इव तेयसा जलंते-” इस अगारावस्था में वह ईर्यासमिति आदि पांच समिति का पालन करेगा, यावत् अच्छी तरह जलती हुयी अग्नि की तरह वह अपने तेज से चमकेगा “तस्स णं भगवओ अणुत्तरेण णाणेणं एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं खंतीए गुत्तीए मुत्तीए अणुत्तरेणं सव्वसंजम सुचरियतवफलणिब्बाण-मग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स—” अनुत्तरज्ञान से-अनुत्तरदर्शन से-अनुत्तरचारित्र से-अप्रतिबद्ध विहार से-आर्जवसे—मार्दव से-लाघव से-क्षमा से-गुप्ति से-त्यागसे-अनुत्तर सर्वसंयम से-सुचरित्र से-तप से फल से-एवं निर्वाण मार्ग से आत्मा को

उत्पन्न थसे, भोगथी वर्द्धित थसे, छता ये कामथी लिप्त थसे. नहि, भोगोथी लिप्त थसे. नहि, मित्र ज्ञाति, निजक संभंधिजन अने परिजनोभा. लिप्त थसे. नहि” “से णं तहारूपाणं थेराणं अंति ए—केवल बोहिं बुज्झिहिइ—मुंडे भवित्ता अगारा-ओ अणगारियं पव्वइस्सइ” ते तो इकत तथाइप स्थाविशेनी पासे केवल बोधिने प्राप्त करशे. मुडित थसे अेटवे के अगारावस्थाभाथी अनगारावस्था प्राप्त करशे. से णं अणगारे भविस्सइ ईरिया समि ए जाव सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते” आ अणुगारावस्थाभा ते ईर्यासमिति वगेरे पाच समितित्तुं पालन करशे यावत् सारी रीते प्रव्वलित अग्निनी जेम ते पोताना तेजथी यमकशे. “तस्स णं भगव-ओ—अणुत्तरेणं णाणेणं एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्जवेणं मद्दवेणं लाघ-वेणं खंतीए गुत्तीए मुत्तीए अणुत्तरेणं सव्वसंजमसुचरिय तव फल णिब्बाण-मग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स” अनुत्तर ज्ञानथी, अनुत्तर दर्शनथी, अनुत्तर चारित्रथी, अप्रतिबद्ध विहारथी, आर्जवथी, मार्दवथी, लाघवथी, क्षमाथी, गुप्तिथी त्यागथी, अनुत्तर सर्व संयमथी, सुचरित्रथी, तपथी, इणथी, अने निर्भाण्य मार्गथी

यमोनस्य अनन्तम् अनुत्तरं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं निरावरणं निर्व्याघातं केवलवरज्ञानं दर्शनं समुत्पत्स्यते । ततः खलु स-भगवान् अर्हन् जिनः 'केवली भविष्यति, सदेवमनुजा-सुरस्य लोकेभ्य पर्यायं ज्ञास्यति, तद्यथा आगतिं गतिं स्थितिं च्यवनम् उपपातं तर्कं कृतं मनोमानसिकं खादितं भुक्तं प्रतिसेवितम् आविष्कर्म रहःकर्म अरहा अरहस्य भागी तस्मिंस्तस्मिन् काले मनोवाक्याययोगे वर्तमानानां सर्वलोके सर्वजीवानां सर्वभावान् जानन् पश्यन् विहरिष्यति । ॥सू० १७४॥

भावित करते हुवे उस भगवान् दृढकुमार के "अगते अणुत्तरे कसिणे पडिपुण्णे निरावरणे णिव्वाघाए केवलवरनाणदंसणेन समुप्पज्जिहिइ—" अनन्त-अनुत्तर-कृत्स्न-प्रतिपूर्ण-निरावरण-निर्व्याघात ऐसे केवल ज्ञान, और केवलदर्शन उत्पन्न होंगे- 'तएणं से भगवं, अरहा जिणे केवली भविस्सइ-" तव ये-दृढकुमार भगवान् अर्हन्त जिन केवली हो जावेंगे । "सदेवमाणुयासुरस लोगस्स परियायं जाणिहिइ, तं जहा आगइं, गइं, ठिइं चवणं, उववायं, तर्कं, कडं मणोमाणसियं खाइयं-भुत्तं-पडि सेवियं—" मनुज-देव-असुर सहित लोक की पर्याय को जान लेंगे, जैसे—आगतिक को-गति को-स्थिति को-च्यवन को-उपपात को तर्क को-कृतको मनोमासिक को-खादित को-भुक्त को प्रतिसेवित को-प्रत्यक्ष में कृत को एतन्त में कृत को, इस तरह से मनुज, देव, असुर सहित लोक की पर्याय को वे जानेंगे । "अरहा अरहस्स भागी तं तं कालं मणवयणकायजोगे बट्टमाणणं सब्बलोए सब्बजीवाणं सब्बभावे जाणमाणे पासमाणे विहरिस्सइ-" इस तरह वे अनगार कि जिन को अप्रत्यक्ष कोई भी वस्तु नहीं रहेगी सावधाचार से

आत्माने भावित करता ते भगवान् दृढकुमारने "अणुत्तरे अणुत्तरे कसिणे पडिपुण्णे निरावरणे णिव्वाघाए केवलवरनाणदंसणे समुप्पज्जिहिइ" अनन्त अनुत्तर कृत्स्न प्रतिपूर्ण निरावरण निर्व्याघात एवां केवलज्ञान अने केवलदर्शन उत्पन्न थसे "तएणं से भगवं अरहा जिणे केवली भविस्सइ" त्वारे ते दृढकुमार भगवान् अर्हन्त जिन केवली थें थें थें । "सदेवमाणुयासुरस लोगस्स परियायं जाणिहिइ, तं जहा आगइं, गइं, ठिइं, चवणं, उववायं, तर्कं, कडं, मणोमाणसियं खाइयं भुत्तं पडिसेवियं" मनुज, देव, असुर सहित लोक की पर्यायने जाणी वेशे, अटवे के आगतिने, गतिने, स्थितिने, च्यवनने, उपपातने, तर्कने, कृतने, मनोमानसिकने खादितने, भुक्तने, प्रतिसेवितने प्रत्यक्षमां कृतने, अतन्तकृतने, आभ ते मनुज देव, असुर सहित लोक की पर्यायने जाणी थें । "अरहा अरहस्स भागी तं तं कालं वयणकायजोगे बट्टमाणणं सब्बलोए सब्बजीवाणं सब्बभावे जाणमाणे पासमाणे विहरिस्सइ" आ प्रमाणे ते अनगार के जेभना भाटे प्रत्यक्ष एवी डोठ

टीका-तए णं से' इत्यादि-ततः खलु स दृढप्रतिज्ञो दारकः तेषु पूर्वोक्तेषु विपु-
लेषु-प्रचुरेषु अन्नभोगेषु 'यावत्'-यावत्पदेन-पानभोगेषु लयनभोगेषु वस्त्रभोगेषु'
इति सञ्ज्ञयते, तथा-शयनभोगेषु च नो सञ्ज्ञयति-आसक्तिं न करिष्यति नो
गर्धिष्यति-गृद्धिमान् न मविष्यति, नोमूर्च्छिष्यति-मूर्च्छां भावं नो करिष्यति ना
अध्युपपत्स्यते-तदेकमना नो भविष्यति । अमुमेवार्थं स दृष्टान् माह-"से जहा
णामए" इत्यादि-यथा-येन प्रकारेण उत्पलं लोहप्रसिद्धं 'नामकं' इति वाक्वाल-
ङ्कारे, पद्मोत्पलमिति वा, पद्ममिति वा-यावत्-यावत्पदेन-कुसुममिति वा
नलिनमिति वा सुभगमिति वा सुगन्धमिति वा पुण्डरीकमिति वा महापुण्डरीक-
मिति वा शतपत्रमिति वा सहस्रपत्रमिति वा' इति सञ्ज्ञयते, तथा-शः-सहरत्र-
मिति वा-अत्र इतिशब्दः स्वरूपनिर्देशे, वा शाब्दो विकल्पे, पङ्के-कर्ममे जातं-

वर्जित होने के कारण सुस्पष्ट सकल आचारचाले होते हुवे उस उम काल
में मन-वचन-काय-योग में वर्तमान इस लोक के समस्त जीवों के समस्त
भावों को जानते हुवे, और-देखते हुवे भूमण्डल में विहार करेंगे ।

टीकार्थ-स्पष्ट है, परन्तु-इस में जो विशेषता है, वह इस प्रकार से
है-वे दृढप्रतिज्ञदारक उन पूर्वोक्त विपुल अन्नभोगों में यावत्-पानभोगों
में, तथा-लयनयोगों में वस्त्रभोगों में आसक्ति नहीं करेंगे, गृद्धियुक्त नहीं
बनेंगे, मूर्च्छाभाव को नहीं धारण करेंगे, और-न उन में तल्लीन मन
वाले होंगे, इस बात को दृष्टान्त द्वारा यों समझाया गया है-जैसे-पद्मोत्पल
अथवा-पद्म, यावत् कुसुम, अथवा-नलिन या-सुभग, या-सुगन्ध, या-पुण्डरीक, या
-महापुण्डरीक, या-शतपत्र, या-सहस्रपत्र, ये सब कमलजाति के भेदरूप कमल

वस्तु भाङ्गी रहेशे नहि सावधान्यारथी वर्जित होवा पहल सुस्पष्ट सकल आचारगणा
थछने ते ते कालमा मनवचन, काय, योगमा वर्तमान आ लोकना समस्त लोवोने
समस्त लोवोने लोवुतां अने नेता लूमंडलमा विहार करेशे

टीकार्थ स्पष्ट छि पणु आमा ने विशेषता छि ते आ प्रमाणे छि ते दृढप्रतिज्ञ
दारक ते विपुल अन्नलोगोमा यावत् पानलोगोमा, लयलोगोमा, वस्त्रलोगोमा तेमन्
शयनलोगोमा आसक्त थशे नहि गृद्धियुक्त अनशे नहि, मूर्च्छालावयुक्त थशे नहि
अने तेमा तल्लीन पणु थशे नहि, अने वातने दृष्टात वडे आ प्रमाणे समन्त-
ववामा आवी छि के नेम पद्मोत्पल अथवा पद्म यावत् कुसुम, अथवा नलिन के
सुभग, के सुगन्ध, के पुण्डरीक, के महापुण्डरीक, के शतपत्र, के सहस्रपत्र आ अथा
कमल जातिना कमणो कर्म (काद्य)मा उत्पन्न होय छि, पाणीमा गृद्धि पाये छि,

समुत्पन्न, जले संवृद्धं-वृद्धिं गतमपि नोपलिप्यते—नोपलिप्तं भवति, पङ्कजसा, नोपलिप्यते जलरजसा, इत्थं दृष्टान्तमुक्त्वा दार्ष्टान्तिकमाह—‘एवमेव’ इत्यादि । एवमेव-अनेन प्रगरेणैव दृढप्रतिज्ञोऽपि दारकः कामैः जातोऽपि भोगैः संवृद्धो वृद्धिं गतोऽपि कामरजसा नोपलेप्यते-उपलिप्तो न भविष्यति, भोगरजसा नोपलेप्यते-उपलिप्तो न भविष्यति, तथा मित्रज्ञातिनिजकम्बजनसम्बन्धि परिजनेन—तत्र मित्राणि-सुहृदः, जातयः माता-पिता-भ्रात्रादयः निजकाः-स्वकीयाः पुत्रादयः, स्वजनाः-पितृव्यादयः सम्बन्धिनः—स्वश्वशुरपुत्रश्वशुरादयः, परिजनाः-दासीदामादयः एतेषां समाहारस्तेन सह नोपलेप्यते-उपलिप्तो नो भविष्यति । अपितु स खलु दृढप्रतिज्ञः अनगारो भविष्यति, कीदृशोऽनगारो भविष्यति? ईरियाममि ए इत्यादि । ईर्यासमिति ईर्यासमिति-युक्तः, ‘यावत् यावत्पदेन-भाषाममि एषणा ममि ए आयणभंडमत्तनिकखेवणाममि ए उच्चारपासवणखेलसिंधाणजल्लपरिष्ठापणिसाममि ए मणंगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिदि ए गुत्तव भयारी अममे अकिंचणे छिण्णगंधे

यद्यपि-कीचड से उत्पन्न होते हैं, जल में वृद्धि पाते हैं, परन्तु-फिर भी कीचड रजसे लिप्त नहीं होते हैं । जलरज से सम्बन्धित नहीं होते हैं, इसी प्रकार से-दृढप्रतिज्ञ भी दारक काम से उत्पन्न हुआ है भोगों से संवर्धित हुआ है, फिर भी वह काम ज से उगलित नहीं बनेगा, मित्रजनों से ज्ञातिजनों से माता पिता, भ्राता आदि कां से निजजनों से पुत्रादिकों से स्वजनों से पितृव्यादि कों से सम्बन्धित जनों से श्वशुर पुत्रश्वशुर आदि से, एवं परिजनां से दासीदास आदि कों से सम्बद्ध नहीं होगा । किन्तु वह दृढप्रतिज्ञ अनगार होगा । ईर्यासमिति का पालन करेगा, यावत् भाषा समिति का एषणा समिति का, अदानभण्डमात्र निक्षेपणसमिति का उच्चारणसवण खेल सिंधाण जल्ल परिष्ठापनिका समिति का पालन करेगा, मनोगुप्ति का वचन गुप्ति का कायगुप्तिका पालन करेगा यहां ऐसा समझना चाहिये । हिन मितप्रिय वचन बोलना इसका नाम भाषाममिति है । इस

पण छता ये कदवथी लिप्त थता नथी. आभते दढप्रतिज्ञ दारक पणु कामथी उत्पन्न थथे लोकोथी संवद्धित थथे छताये ते कामरजथी उपलिप्त नडि थथे, मित्रजनोथी पुत्रादिकोथी स्वजनोथी पितृव्यादिकोथी संबन्धीजनोथी श्वशुर, पुत्रश्वशुर वगेरेथी अने परिजनोथी, दासीदास वगेरेथी सम्बद्ध थथे नडि. पणु ते दढप्रतिज्ञ अनगार थथे. ईर्यासमितितु पालन करेशे, यावत् भाषा समितितुं, एषणा समितितुं, आदान भण्डमात्र निक्षेपणसमितितुं उच्चारणसवण-खेल, सिंधाण जल्ल-परिष्ठापनिका समितितुं पालन करेशे. मनोगुप्तितुं, वचोगुप्तितुं, कायगुप्तितुं पालन करेशे. आभ डी समणुं जेधये, हित-मित प्रियवचन बोलवु तेतु नाम ‘भाषा समिति छे.

छिष्णसोए निरुवलेवे कंसप ईव मुक्तेए संखे इव निरंजणे जीवे विव अप्पडि-
हयगई जच्चरणगं विव जायस्वे आदरिसफलगे इव पगडभावे कुम्मे इव
गुत्तिदिए, पुक्खरपत्तं व निरुवलेवे, गगणमिव गिरालवणे, अणिलो इव निरालए,
चंदोइव सोमलेसे, सूरु इव दित्तेए, सागरो इव गभीरे, विहग इव रव्वआ
विप्पमुहे, मंदरो इव अप्पकंपे, सारथल्लिलं इव सुद्धहियए, खग्गिविसागं इव
एगजाए, भारंडपक्खीव अप्पमत्ते, कुंजरो इव सोडीरो, वसभो इव जायत्थामे, सीहो
इव दुद्धरिसे, वसुन्धरा इव रव्वफासविसहे' इति संग्राह्यम् । एतच्छाया च—भाषा-
समित एषणासमित आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमितः उच्चारप्रव्रवणखेल-
शिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनिकासमितो मनोगुप्तो वचोगुप्तः कायगुप्तो गुप्तो गुप्ते-
न्द्रियो गुप्तब्रह्मचारी अममः अकिञ्चनः, छिन्नग्रन्थः, छिन्नस्रोताः, निरुपलेपः,
कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः, शङ्ख इव निरञ्जनः, जीव इव अप्रतिहतगतिः, जात-
कनकमिव जातरूपः, आदर्शफलक इव प्रकटभावः, कर्म इव गुप्तेन्द्रियः पुष्कर-
पत्रमिव निरुपलेपः गगनमिव निरालम्बनः अनिल इव निरालयः, चन्द्र इव सोम-
लेश्यः, सूर इव दीप्ततेजाः, सागर इव गम्भीरः, विहग इव सर्वतो विप्रमुक्तः,
मन्दर इव अप्रकम्पः शारदसलिलमिव शुद्धहृदयः, खड्गविषाणमिव एकजातः,
भारण्डपक्खीव अप्रमत्तः, कुञ्जर इव शोडीर', वृषभ इव जातरथामा, सिंह इव
दुर्द्धर्षः, वसुन्धरेव र्वस्पर्शविषहः-इति । तत्र भाषासमित—भाषाममितियुक्तः,
एषणाममितः-एषणार्या-भक्ताद्येषणायाम् उद्गमादिदोषवर्जनपूर्वकं समितः—समिति
युक्तः, विशुद्धाहारादिग्रहणान्वेषणोपयोगयुक्त इत्यर्थः । तथा आदानभाण्डमात्रनिक्षे-
पणासमितः—आदाने ग्रहणे—अस्य भाण्डामात्रयोरित्यनेन सम्बन्धः, प्रत्यासत्तिन्या-
यात् साहचर्यात् देहली दीपन्यायाद् वा, भाण्डस्य—पात्रस्य मात्रस्य—वस्त्राद्युप-
करणस्य च निक्षेपणायाम्—अवस्थापने समितः—प्रतिलेखनप्रमार्जनपूर्वकं प्रवृत्ति-

समिति से युक्त होना इसका नाम भाषासमिति युक्त है, । भक्त आदि की
एषणा में उद्गमादि दोषवर्जनपूर्वक जो समित है न. इसका नाम एषणा-
समिति है, अर्थात् विशुद्ध आहार आदि का ग्रहण करने और अन्वेषण करने में
उपयोगयुक्त होना, उसका नाम-एषणासमित है । भाण्ड—पात्र—मात्र वस्त्रादि
उपकरण का निक्षेपण रखने में एवं—अवस्थापन में समित होना. इसका

भक्त वगैरेनी एषणामा उद्गमादि दोषवर्जनपूर्वक समित थये तेतु नाम एषणा
समिति छे अटवे के विशुद्ध आहार वगैरे अल्लु इत्वा अने अन्वेषण इत्वा मा
उपयोग युक्त थयु' तेतु नाम एषणा समिति छे. भाण्ड-पात्र-मात्र-वस्त्रादि उपकरणना
निक्षेपणमा अने अवस्थानमा समिति युक्त थयु तेतु नाम आदानभाण्डमात्र निक्षेपणमा

युक्त इत्थं, तथा—उच्चारप्रस्रवणखेलशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनिकाममिति—तत्र उच्चारः—पुरीषं, प्रस्रवण—मूत्र, खेलः—श्लेष्मा—उपलक्षणत्वान्निष्ठीवनस्यापि थूकइति भाषाप्रसिद्धस्यापि ग्रहणम् शिङ्घाणं नासिकामलं, जल्लः—स्वेदजमलम्, एतेषां परिष्ठापनिका, परिष्ठापना-परित्यागः, सैव परिष्ठापनिका, तस्या समितिः—सम्-गुपयुक्तः, तथा—मनोगुप्तः—मनोगुप्तस्त्रिधा—तत्र आर्तौद्र-ध्यानानुबन्धि कल्पनाजालवियोगरूपा प्रथमा १, शास्त्रानुसारिणी पर-लोकसाधिका धर्मध्यानानुबन्धिनी माध्यस्थ्यपरिणतिर्द्वितीया २, मनोवृत्तिनिरोधेन योगनिरोधावस्थाभाविनी आत्मरक्षणरूपा तृतीया ३, तदुक्तं योगशास्त्रे—

“विमुक्तकल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।

आत्मारामं मनस्तज्जै मनोगुप्तिरुदाहता ।१।” इति ।

नाम-आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति है, अर्थात्-प्रतिलेखन, प्रमार्जनपूर्वक प्रवृत्ति से युक्त होना। इसका नाम आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति है। उच्चार नाम-पुरीषका है, प्रस्रवण नाम-मूत्र का है, खेल नाम श्लेष्मा का है, उपलक्षण से थूक का भी यहां ग्रहण किया गया है। शिङ्घाणनाम से यहां नासिका का मल गृहीत होता है, (नासामलं तु सिङ्घाणं इति अमरः)। स्वेदज मल का नाम—जल्ल है। इनकी परिष्ठापनिका में त्यागमें समित होना, उसका नाम—उच्चारप्रस्रवणखेलशिङ्घाणजल्लपरिष्ठापनसमिति है। मनोगुप्ति-तीन प्रकार की हैं, इनमें-आर्त रौद्र ध्यानानुबन्धी कल्पनाजाल का परित्याग करना इसका नाम प्रथम मनोगुप्ति है—१ शास्त्रानुसारिणी-परलोक साधिका-धर्मध्यानानुबन्धिनी। एवं माध्यस्थ्य परिणतिरूप द्वितीय मनोगुप्ति है—२ मनोवृत्ति के निरोध से योग निरोधकरनेवाली भाविनी जो-आत्मरक्षणरूप गुप्ति है। वह तृतीय मनोगुप्ति है। योगशास्त्र में कहा है—

समिति छे. अटले के प्रतिलेखन, प्रमार्जनपूर्वक, प्रवृत्तियुक्त थवुं ते आदान-भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति छे. पुरीषतुं नाम उच्चार मूत्रतुं नाम प्रस्रवण, श्लेष्मातुं नाम खेल छे. उपलक्षणथी थूकतुं पणु अर्डी प्रहणु करवामा आठ्युं छे शिङ्घाणु नाम अर्डी नासिका मल भाटे प्रयुक्त थयेल छे. (शिङ्घाण काचपात्रे च लेह-नासिकयेर्मले इति मेदिनी कोषः) स्वेदजमलतुं नाम जल्ल छे, अमनी परीष्ठापनिका-त्यागमा समित थवुं तेनु नाम उच्चार प्रस्रवण खेल शिङ्घाणु जल्ल परिष्ठापन समित छे. मनोगुप्ति त्रणु प्रकारनी छे. आमा आर्तौद्रध्यानानुबन्धी कल्पनाओनो परित्याग करवो ते प्रथम मनोगुप्ति छे. शास्त्रानुसारिणी परलोक साधिका धर्मध्यानानुबन्धिनी अने माध्यस्थ्य परिणतिरूप द्वितीय मनोगुप्ति छे. २, मनोवृत्ति ना निरोधावस्थाभाविनी ने आत्मरक्षण गुप्ति छे ते तृतीय मनोगुप्ति छे. योगशास्त्रमां

एवंविधया त्रिविधयाऽपि मनोगुप्त्या युक्त इत्यर्थः, तथा—वचोगुप्तः=वचन-
गुप्तियुक्तः, वचनगुप्तिश्चतुर्विधा, तथाहि- सत्या १, मृषा २, सत्यामृषा ३,
असत्यामृषा चेति। उक्तं च—

‘सच्चा तहेव मोसाय, सच्चा-मोसा तहेव य।

चउत्थी असच्चमोसाय, वयगुत्ती चउच्चिहा । (उत्त० २४ २२ गा०)इति,
छाया—“सत्या तथैव मृषा च, सत्यामृषा तथैव च।
चतुर्थ्यसत्यमृषा च, वचोगुप्तिश्चतुर्विधा । इति ।

तथा-कायगुप्तः कायगुप्तियुक्तः, कायगुप्तिस्तु गमनागमनप्रचलनादि
क्रियाणां गोपनम्, सा द्विविधा— चेष्टानिवृत्तिरूपं १, यथागमं

जिसमें—रूपना जाल विमुक्त हों, और—समत्व में जो सुप्रतिष्ठित हो—ऐसा
मन आत्माराम है—आत्मारूपी उद्यान (बाग) है, इसमें—रमण करना मनोगुप्ति
है। इस प्रकार की तीन गुप्तियों से मनका युक्त होना इसका नाम
मनोगुप्ति से गुप्त होना है। इसी प्रकार से वचनगुप्ति से युक्त
होना सो—वचनगुप्ति से गुप्त होना है, वचनगुप्ति चार प्रकार की है,—सत्या-
वचोगुप्ति—१ मृषावचोगुप्ति—२ सत्यामृषावचोगुप्ति—३ और—असत्यामृषावचो-
गुप्ति है—४ उक्तञ्च—“सच्चा तहेव मोसाय सच्चा-मोसा तहेवय ।

चउत्थी असच्च मोसाय वयगुत्ती चउच्चिहा—॥१॥

(उत्त० २४—२२ गाथा-) कायगुप्ति से युक्त होना इसका नाम—काय गुप्त है—१
गमनाऽऽगमनादिरूप प्रचलनादि क्रियाओं का गोपन करना कायगुप्ति है—२
यह कायगुप्ति चेष्टानिवृत्तिरूप. एवं—यथागम चेष्टा नियमनरूप से दो प्रकार की

कहु छे के नेमा कल्पनाजाल विमुक्त होय अने समत्वमा के सुप्रतिष्ठित होय अणु
मन आत्माराम छे आत्मारूपी उद्यान छे आमा रमण करवुं ते मनोगुप्ति छे.
“विमुक्तरूपनाजाल समत्वे सुप्रतिष्ठितम् । आत्मारामं मनस्तज्जैर्मनोगुप्ति-
रुदाहृता ॥१॥ आ ज्ञातनी त्रयु गुप्तिओथी मनयुक्त थवुं तेनुं नाम मनोगुप्तिथी
गुप्त थवु छे आ प्रमाणे वचनगुप्तिथी युक्त थवु ते वचनगुप्तिथी गुप्त थवुं छे.
वचनगुप्ति चार प्रकारनी छे सत्यामनो गुप्ति १, मृषा मनोगुप्ति २, सत्यामृषामनो-
गुप्ति ३, अने असत्यामृषामनो गुप्ति ४

कहुं छे,—“सच्चा तहेव मोसाय सच्चा-मोसा तहेव य।

चउत्थी असच्चमोसाय वयगुत्तीचउच्चिहा ॥१॥

(उत्त० २४—२२ गाथा) कायगुप्तिथी युक्त थवुं तेनुं नाम कायगुप्त छे १, गमना-
गमन-वगेरे इय प्रचलन विगेरे क्रियाओतु गोपन करवु कायगुप्ति छे. २. आ
काय-गुप्ति ओटा निवृत्तिइय अने यथागम चेष्टा नियमनइयथी जे प्रकारनी होय छे

चेष्टानिगमरूपा च २ । तत्र परीपहोपसर्गादि संभवेऽपि यत्कायोत्सर्गादि-
करणादिना कायस्य निश्चलताकरणम् सर्वयोगनिरोधावस्थायां वा सर्वथा यत्
कायचेष्टानिरोधनं सा प्रथमा । गुरुमापृच्छथ शरीरसंस्तारकभूम्यादिप्रतिलेखना
प्रमाजनादिममयोक्तक्रियाकलापपुरस्सरशयनासनादिविधेयम्, ततः शयनासन-
निक्षेपादानादिषु श्वेच्छया चेष्टापरिहारेण नियता-शास्त्रनियमानुसारिणी या
कायचेष्टा सा द्वितीयेति । उक्तं च—

“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि कायोत्सर्गजुषो मुनेः ।

स्थिरीभावः शरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यते । १ ॥

शयनाऽऽसननिक्षेपाऽऽदानमङ्गमणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टानियमः कायगुप्तिस्तु सा परा । २ । इति,

होती है । इनमें परीपह-और उपसर्ग के आने पर भी कायोत्सर्गकरणरूप
क्रिया से शरीर को निश्चल कर देना होता है, अथवा-सर्वयोग निरोधावस्था में
सर्वथा जो काय की चेष्टा का निरोध किया जाता है वह चेष्टा निवृत्तिरूप
प्रथम कायगुप्ति है । गुरु को पूछ कर शरीर, संस्तारक, भूमि आदि की
प्रतिलेखना प्रमाजना आदि के समय में उक्त क्रियाकलाप पुरस्सर जो-शयन-
आसन आदि करना होते हैं—सो उन शयनासनादिकों के निक्षेपन रखने में, एवं-
आदान आदि कों में अपनी इच्छा से चेष्टा के परिहार से नियत(रखने में) अर्थात्
गुरु को पूछकर के शयनआदि करना—शास्त्रनियमानुसारिणी जो काय चेष्टा है
वह—यथागमचेष्टा नियमनरूप द्वितीयकायगुप्ति है । २

उक्त भी है—“उपसर्गप्रसङ्गेऽपि” इत्यादि

अर्थात्—“उपसर्ग आने पर कायोत्सर्ग में मनको

स्थिर रखना यह कायगुप्ति है । तथा.

आमा परीपह अने उपसर्गनी स्थितिमा पणु कायोत्सर्गकरणरूप क्रियाथी शरीरने
निश्चल करवामा आवे छे. अथवा सर्वयोग निरोधावस्थामा ने सर्वथा कायचेष्टानो
निरोध करवामा आवे छे. अथवा सर्वयोग निरोधावस्थामा ने सर्वथा कायचेष्टानो
निरोध करवामा आवे छे ते चेष्टा निवृत्तिरूप प्रथम कायगुप्ति छे. १, गुरुनी आज्ञा
भेणवीने शरीर संस्तारक, भूमि वगेरेनी प्रतिलेखना, प्रमाजना वगेरेना समये
उपयुक्त क्रियाकलाप पुरस्सर ने शयन आसन वगेरे विधेय डाय छे तो ते शय-
नासनादिकोना निक्षेपमा अने आदान आदिकोमा पोतानी श्वेच्छायी चेष्टाना परिहारथी
नियता-शास्त्रनियमानुसारिणी ने कायचेष्टा छे ते द्वितीय यथागम चेष्टा नियमनरूप
द्वितीय कायगुप्ति छे, २.

अथु छे—उपसर्ग प्रसङ्गेऽपि कायोत्सर्गजुषोमुनेः ।

स्थिरीभावः शरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥

तथा—गुप्तः—अशुभयोगनिग्रहरूपगुप्त्या युक्तः, गुप्तब्रह्मचारी—गुप्तं नवभिर्ब्रह्म-
चर्यगुप्तिभी रक्षितं ब्रह्म—मैथुनविरमणं चरति तच्छीलः, अममः—ममत्वरहितः,
अकिञ्चनः—धर्मोपकरणातिरिक्तवस्तुरहितः, छिन्नग्रन्थः—ग्रथाति—बध्नाति आत्मानं
कर्मणेति ग्रन्थः, स द्विविधो द्रव्यभावभेदात् द्रव्यतो—हिरण्यदि, भावतो मिथ्या-
त्वादिः, स द्विविधो ग्रन्थश्छिन्नेन येन स तथा, छिन्नस्रोताः—छिन्नसंसार-
प्रवाहः, निरुपलेपः—कर्मबन्धहेतुरुपलेपो रागादिस्तेन रहितः. निरुपलेपत्वमेव
सदृष्टान्तमाह—कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः—मुक्त—त्यक्त तोयमिव तोयं संसारबन्ध-

शयनासन इत्यादि—शयन में, आसन में, लेने में रखने में, चलने में

काय को यतना पूर्वक रखना यह कायगुप्ति है

इस प्रकार से वे दृढप्रतिज्ञ अनगार इन पूर्वोक्त समितियों का तथा—गुप्तियों
का पालन करनेवाले होंगे। तथा—वे गुप्त होंगे, अशुभ योगनिग्रहरूप गुप्ति
से युक्त बनेंगे, गुप्तब्रह्मचारी होंगे, नौ वाटिका (वाड) द्वारा मैथुन विरमणरूप
ब्रह्म की रक्षा करेगे उत्तम-ममत्व रहित होंगे, वे-अकिञ्चन होंगे, धर्मोपकरण से
अतिरिक्त अन्य वस्तुओं से विहीन होंगे। जो आत्मा को कर्म के साथ
वान्धता है, वह ग्रन्थ है, यह—ग्रन्थ द्रव्य-ग्रन्थ, और-भावग्रन्थ के भेद से दो
प्रकार का है। हिरण्य-सुवर्ण आदि बाह्यग्रन्थ है, एवं-मिथ्यात्व आदि भावग्रन्थ
है. इन दोनों प्रकार के ग्रन्थ से वे रहित होंगे। संसारप्रवाह जिनका नष्ट
हो चुका है. ऐसे होंगे, निरुपलेप होंगे, कर्मबन्धन का हेतु जो रागादिक
उपलेप हैं उससे रहित होंगे। इसी बात को सूत्रकार दृष्टान्तद्वारा पुष्ट करते

शयनासननिक्षेपादाऽऽनसकृमणेषु च ।

स्थानेषु चेष्टा नियमः कायगुप्तिस्तु सऽपरा ॥२॥

आ प्रमाणे ते दृढप्रतिज्ञ अनगार आ पूर्वोक्त समित्योऽपि तथा गुप्तियोऽपि
पालन करे. तेभ्य तेभ्यो गुप्त थये. अशुभयोग निग्रहइय गुप्तिथी युक्त अनशे.
गुप्त ब्रह्मचारी थये, नव वाटिकाद्वारा मैथुन विरमणइय ब्रह्मनी रक्षा क-रे उत्तम
ममत्वरहित थये, ते अकिञ्चन इये. धर्मोपकरणातिरिक्त वस्तुयोथी रहित थये ने
आत्माने कर्मनी साथे गाधे छे ते ग्रन्थ छे. आ अथ द्रव्यग्रन्थ अने भावग्रन्थना
इयमा ये प्रकारने छे हिरण्य-सुवर्ण वगेरे बाह्य अथ छे अने मिथ्यात्व वगेरे
भावग्रन्थ छे. आ अने प्रकारना अथोथी ते रहित थये नेभने संसारप्रवाह
नाश पाये छे जेवा तेभ्यो थये निरुपलेप थये. कर्मबन्धनना हेतुइय रागादि
उपलेपोथी तेभ्यो रहित थये जेवा वातने सूत्रकार दृष्टान्त द्वारा पुष्ट करे छे छे

हेतुत्वात् स्नेहो येन स तथा । यथा-कांस्यपात्र्यां पतितमपि जलं लिप्तं न भवति तथा संसारबन्धहेतुस्तस्मिन्नुपलिप्तो न भविष्यतीत्यर्थः, शङ्ख इव निरञ्जनः—अञ्जनमिवाञ्जनं-द्वेषादिकं तस्मान्निर्गतः—तद्रहितः, यथा—शङ्खे किमपि कज्जलादिद्रव्यं स्थितिं न लभते तथैव तस्मिन्ननगारे द्वेषादिकं न स्थायतीत्यर्थः, जीव इा अप्रतिहतगतिः—जीवो यथा अब्याहतगत्या सर्वत्र याति, तथाऽसौ देशनगरादिषु अप्रतिबन्धविहारित्वेन वादादिषु कुतीर्थिकमतनिराकरणसामर्थ्ये पेतत्वेन च अस्खलितगतिर्भविष्यतीति । जात्यकनकमिव जातरूपः—तपःसंयमादि-समुद्भूतनैर्मल्यः. यथा शोधितं सुवर्णं निर्मलं भवति तथैवासौ रागादिरहितत्वेन निर्मलो भविष्यतीति, आदर्शफलक इव प्रकटभागः—आदर्शफलको यथा प्रतिबिम्बितान् मुखाद्यवयवान् यथाऽवस्थितं प्रकटी करोति, तथा तत्कृतधर्मदेश-

है—“कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः—” कांसे के पात्र में पडा हुआ पानी जिस प्रकार पात्र में लिप्त नहीं होता है—उसी प्रकार से संसार बन्धन का हेतु राग—द्वेष इनमें—उपलिप्त नहीं होंगे । शङ्ख की तरह वे निरञ्जन होंगे, जैसे—शङ्खमें कज्जलादि द्रव्य ठहर नहीं सकता है, उसी प्रकार से इनमें राग द्वेषादिक नहीं ठहरेंगे जीव की तरह ये अप्रतिहतगतिवाले होंगे, जीव जिस प्रकार अपनी अब्या-हतगतिद्वारा सर्वत्र चला जाता है, उसी प्रकार से—देश नगरादिकों में अप्रति-बन्धविहारी होने से, एवं-वादादिकों में कुतीर्थिक मत निराकरण करने की सामर्थ्य से युक्त होने से अस्खलित गतिवाले होंगे । वे जातिमान् कनक के प्रकार होंगे, जिस प्रकार जात्यकनक—श्रेष्ठ सुवर्ण निर्मल होता है—उसी प्रकार से ये तपः संयमादि से समुत्पन्न निर्मलतावाले होंगे, । आदर्श—दर्पण जिस प्रकार अपने में प्रतिबिम्बित हुवे मुखादि अवयवों को यथाऽवस्थित प्रकट करता

“कांस्यपात्रीव मुक्ततोयः” कांस्यानां पात्रमा पडेक्षुं पाष्णी जेम तेमां लिप्तं ततु नथी. तेमञ्ज ससार बन्धन हेतु रागद्वेषमा तेञ्चो उपलिप्तं यता नथी शंखनी जेम तेञ्चो निरञ्जनं यथे जेम शंखमा कज्जल वगेरे द्रव्ये स्थिरं यता नथी तेमञ्ज तेञ्चोमां राग द्वेषादिकं स्थिरं यथे नडि. एवनी जेम तेञ्चो अप्रतिहत गतिवाणा यथे. एव जेम पोतानी अब्याहत गतिद्वारा सर्वत्र गतिशील होय छे, तेमञ्ज देशनगरादिदेशांमां अप्रतिबन्ध विहारी होवाधी अने वादादिकोंमां कुतीर्थिकमत निराकरणमा सामर्थ्ययुक्त होवाधी तेञ्चो अस्खलित गतिवाणा यथे. तेञ्चो जात्यकनकनी जेम यथे. जेम जात्यकनक—श्रेष्ठ सुवर्ण निर्मल होय छे, तेम तेञ्चो तपसंयम वगेरेथी समुत्पन्न निर्मलतायुक्त यथे आदर्श—दर्पण जेम स्वप्रतिबिम्बित मुखादि अवयवो ते यथावस्थित प्रकट करे छे तेम तेञ्चोश्रीनी धर्मदेशनाथी अनुप्ययित्तद्वय दर्पणमा एवाएवादि

नया जनानां चित्तदर्पणे जीवाजीवादिसकलपदार्थाः प्रकाशिष्यन्ते, इत्यर्थः, कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः—कूर्मः—कच्छपः. यथा कूर्मो भयकारणे समुपपागते संवृतसर्वेन्द्रियो भवति, तथैवासौ संसारभ्रमणभयाद् विषयकषायसंरक्षितसकलेन्द्रियो भविष्यतीति । पुष्करपत्रमिव निरुपलेपः—यथा कमलपत्रं जलसंयोगेऽपि जलेन लिप्तं न भवति, तथैवासौ जलतुल्यस्वजनविषये वसन्नपि तत्सम्बन्धरहितो भविष्यतीति, गगनमिव निरालम्बनः—यथाऽऽकाशो निरवलम्बस्तिष्ठति तथैवासौ कुलग्रामनगराद्यालम्बनवर्जितो भविष्यतीति, अनिल इव निरालयः पवन-इव गृहरहितः, अप्रतिबन्धविहारित्वात्, चन्द्र इव सौम्यलेश्यः—अनुपतापपरिणामसम्पन्नः, सूर इव दीप्ततेजः द्रव्यतः शरीरदीप्त्या, भावतस्तपःप्रभृतिना देदीप्यमानः, सागर इव गम्भीरः—

है. उसी प्रकार उनकी धर्मदेशना से मनुष्यों के चित्तरूप दर्पण में जीवा जीवादिरूप सकलपदार्थ प्रकाशित होंगे, । कूर्म—कच्छप जिस प्रकार भयकारणों के उपस्थित होने पर अपनी इन्द्रियों को गुप्त कर लेता है, उसी प्रकार से यह भी संसारपरिभ्रमणभयसे—विषय तापों से अपनी इन्द्रियों की रक्षा करने वाले होंगे. । जैसे—कमलपत्र जल के संयोग में भी उस से लिप्त नहीं होता है.उसी प्रकार से ये जल तुल्य स्वजनों के बीच में रहते हुवे भी उनके विषय में सम्बन्ध विहीन होंगे. । गगन की तरह ये निरालम्ब होंगे. । अनिल—वायु की तरह ये निरालय होंगे, अनिल को जैसे कोई गृह नहीं होता है, उसी प्रकार से अप्रतिबन्धविहारी होंगे. । चन्द्र के समान ये सौम्यलेश्यावाले होंगे सूर्य की तरह दीप्ततेज होंगे तेज द्रव्य—और भाव की अपेक्षा दो प्रकार का कहा गया है. इनमें शरीरादि की दीप्तिरूप द्रव्य तेज. और तप-आदि से होनेवाला तेज भावतेज है. । सागर की तरह ये गम्भीर होंगे, हर्ष—शोक

इय सकल पदार्थ प्रकाशित थशे. कूर्म—कच्छप जेम लय उपस्थित थाय त्तारे पोताना अंगोने स केन्धी वे छे तेम तेञ्जे पणु ससार—परिभ्रमणु भयथी विषयतापोथी पोतानी छन्द्रिये नी रक्षा करनार थशे. जेम कमलपत्र पाणीनी सयोगावस्थाभा पणु तेथी लिप्त थतु नथी तेम तेञ्जे पाणीनी जेम स्वजनोनी वञ्चे रहेवा छताञ्जे तेमना विषयभा सभध विहीन थशे गगननी जेम तेञ्जे निरालय थशे आकाश जेम अवलम्बन वगर छे तेम तेञ्जे कुल, ग्राम नगर वगेरे अवलम्बनी गडित थशे. अनिलवायुनी जेम तेञ्जे निरालय थशे अनिलने जेम दे छ धर नथी तेम तेञ्जे पणु अप्रतिबन्ध विहारी थशे चन्द्रनी जेम तेञ्जे सौम्य लेश्यायुक्त थशे सूर्यनी जेम तेञ्जे दीप्त तेजवाणा थशे तेज द्रव्य अने लावनी अपेक्षाञ्जे जे प्रधानु छे आभा शरीरादिनी दीप्तिरूप द्रव्यतेज अने तप प्रभृतिथी लयमान तेज लावतेज छे

हर्ष शोकादिकारणसंयोगेऽपि निर्विकारचित्तः, विहग इव सर्वतो विप्रमुक्तः—
पक्षिवत्सङ्गरहितः, परिवारपरित्यागात् नियतवासरहितत्वाच्च, मन्दर इव अप्र-
कम्पः—मेरुवत् परिपहोपसर्गपवनैरविचलितः, शारदसलिलमिव शुद्धहृदयः—यथा
शरदृतौ जलं निर्मलं भवति तथा रागद्वेषरहितत्वान्निर्मलचित्तो भविष्यतीति,
खड्गीविषाणमिव एकजातः खड्गी—आरण्यजीवः तस्य विषाणं—शृङ्गं तद्वद्
एकजातः—एकाकी रागादिसहायरहितः । तथा—भारण्डपक्षी—भारण्डश्रासौ
पक्षी च भारण्डपक्षी, अयं द्विजीवकस्त्रिचरणवान् द्वाभ्यां ग्रीवाभ्यां द्वाभ्यां मुख-
भ्यां च युक्तः, द्वयोजिवियोरेकमेवोदरं भवति, स चाप्रमत्त एव विहरति, तद्वत्

आदि कारणों के मिलने पर भी इनके चित्त में कोई क्षोभ उत्पन्न नहीं हो
सकेगा. निर्विकार चित्तवाले होंगे । पक्षी की तरह सर्वतः विप्रमुक्त होंगे,
सर्वसङ्ग से रहित रहेगे, परिवार आदि के परित्याग से और—नियत आवास
से रहित होने से इनका समत्वरूप सम्बन्ध किसी के साथ नहीं रहेगा. ।
मेरु—मन्दर की तरह ये अप्रकम्प होंगे, अर्थात् परीपह-उपसर्गरूप पवन इन्हें
विचलित नहीं कर सकेगा, शारद सलिल की तरह शुद्ध होंगे—जिस प्रकार
शारदऋतु में जल निर्मल रहता है उसी प्रकार राग-द्वेष रहित से ये निर्मल
चित्त रहेंगे. खड्गी विषाण—गेंडोंकाशृङ्ग की समान ये एकजात होंगे रागादिरूप
सहायकों से रहित होने के कारण एकाकी रहेंगे, । तथा—भारण्ड पक्षी की
तरह अप्रमत्त होंगे, भारण्डपक्षी दो जीववाला होता है, इसके चरण तीन
होते हैं—दो ग्रीवाओं से—दो मुखों से यह युक्त होता है, इन दो
जीवों का पेट एक होता है. यह अप्रमत्त होकर विचरणशील होता है, इसी

सागरनी जेम तेजो गलीर थशे. दुर्ष शोक वगेरे कारणेो होवा छतां जे तेमना
चित्तमां केधपणु जतनेो विकार उत्पन्न थशे नहिं. तेजो निर्विकार चित्तवाणा थशे,
विहगनी जेम तेजो सर्वतः विप्रमुक्त थशे तेजो सर्वसंगथी रहित थशे. परिवार
वगेरेना त्यागथी जने नियत आवासथी रहित होवाथी तेजो समत्वरूप संबंध
केधनी साथे आंधशे नहिं भेइ—मंदरनी जेम तेजो अप्रकंप थशे. अटवे के परी-
पह उपसर्गरूप पवन तेमने विचलित करी शकशे नहिं. शारद सलीलनी जेम तेजो शुद्ध
थशे. जेम शरदऋतुमां पाणु निर्मल रहे छ तेम तेजो पणु रागद्वेष रहित होवाथी
निर्मल चित्तवाणा थशे खड्गी विषाणु—गेडामेना शींगडानी जेम तेजो अक जत
थशे. रागादिरूप सहायकेथी रहित होवा जदल अकडकी रहेशे. तेमज बारंड पक्षीनी
जेम अप्रमत्त थशे, बारंडपक्षी जे एवयुक्त होय छे. जने त्रणु पग होय छे, भी
ग्रीवाजो, जे मुजोथी ते युक्त होय छे. आ जने एवोनुं पेट अकज होय छे,

अप्रमत्तः-तपःसंयमादिवसरेभ्यो प्रमादरहितः । कुञ्जर इव शौण्डीरः-हस्तीव
 शूरः-उपायादिरिपुभञ्जनशीलः । वृषभ इव जातस्थामा-उत्पन्न पराक्रमवालेः ।
 सिंह इव दुर्धर्षः-सिंहवत् परीपहादि मृगैर्दुर्गतिद्रुमः । वसुन्धरेण सर्वस्पर्शविपहः-
 वसुन्धरा-पृथ्वी यथा सर्वं सगमयति वा स्पर्शं सहते तथैवायम् अनुकूलप्रति-
 कूलपरीपहोपसर्गसहनशीलः । तथा-सुदुतदुताशन इव तेजसा ज्वलन्-यथा
 घृताघाह्निभिर्गन्तः प्रदीप्तो भवति तथैवायमपि तपःसंगमतेजसा ज्वलन्-दीप्य-
 मानोऽनगारो भविष्यतीति पुरेण सम्बन्धः । तस्य-पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टाय खलु
 भगवतोऽनगारस्य अनुत्तरेण-सर्वोत्कृष्टेन ज्ञानेन, एवम्-अनेन प्रकारेण-अनुत्तर-
 त्वादिशिष्टेन दर्शनेन 'अनुत्तर' शब्दस्य चारित्र्यादीं प्रत्येकत्र सम्बन्धः, ततश्च अनु-

प्रकार ये भी तपसंयम आदिके संश्लेषण से प्रमाद रहित होंगे । कुञ्जर-हाथी
 के समान ये शूर होंगे, अर्थात्-उप आदि रिपुपुत्रों का भजन शील होंगे ।
 वृषभ की तरह ये जातस्थामा होंगे-उत्पन्न पराक्रमवाले होंगे, सिंह की
 तरह दुर्धर्ष परीपहादिमृगों द्वारा दुर्धर्ष होंगे, पृथ्वी की तरह सर्व स्पर्श
 सह होंगे-पृथ्वी जिस प्रकार सर्वमहा एवं-असह्य स्पर्श को भी सहन
 करती है-उसी प्रकार से अनुकूल-प्रतिकूल परीपह एवं-उपसर्ग का ये सहन
 करती होंगे । सुदुत दुताशन की तरह ये तेज से रदा जाज्वल्यमान रहेंगे ।
 जिस प्रकार घृतादिक आहुति से अग्नि अधिकाधिक प्रज्वलित हो जाती है,
 उसी प्रकार ये भी तप-संयम के तेज से देदीप्यमान अनगार होंगे, इस
 प्रकार से इन पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट हुये उन अनगार भगवान् दृढप्रतिज्ञ
 के सर्वोत्कृष्ट ज्ञानसे-सर्वोत्कृष्ट दर्शन से सर्वोत्कृष्ट चारित्र्य से-सर्वोत्कृष्ट

या अप्रमत्त यद्यने विवरणशील होय छे तेम तेज्यो पण तप संयम वगेरेतुं रक्षण
 करवामा प्रमाद रहित यथे, कुञ्जर-हाथी नी जेम तेज्यो शूर हुशे. ओटले छे
 कथाय वगेरे रिपुज्योने नष्ट करवामा समर्थ यथे. वृषभानी
 जेम तेज्यो जातस्थामा यथे उत्पन्न पराक्रमवाणा यथे.
 सिंहानी जेम दुर्धर्ष-परीपहादिमृगो वडे दुर्धर्ष हुशे वसुन्धरानी जेम सर्वस्पर्श
 सह यथे, पृथ्वी जेम सर्वे सह-असह्य स्पर्शने पण सहन करे छे तेम अनुकूल-
 प्रतिकूल परीपह अने उपसर्गने तेज्यो सहन करता यथे सुदुत दुताशननी जेम तेज्यो
 तेज्यो सदा ज्वलन्वद्यमान रहेशे. जेम घृत वगेरेनी आहुतिथी अग्नि वधारे अने
 वधारे प्रज्वलित यद्य ज्य छे तेम तेज्यो पण तप संयमना तेज्यो दीप्यमान
 अनगार यथे या प्रमाणे या पूर्वोक्त विशेषणोथी विशिष्ट यथेला ते भगवान् अन-
 गार दृढप्रतिज्ञ सर्वोत्कृष्ट ज्ञानथी, सर्वोत्कृष्ट दर्शनथी, सर्वोत्कृष्ट चारित्र्यथी सर्वोत्कृष्ट

त्तरेण चारित्रेण अनुत्तरेण आलयेन—स्त्रीपशुपण्डकादिरहितवसतिसेवनेन, अनुत्तरेण विहारेण—विचरणेन, अनुत्तरेण आर्जवेन—सारल्येन, अनुत्तरेण मार्दवेन—मृदुत्वेन, अनुत्तरेण—लाघवेन द्रव्यनोऽल्पोपकरणरूपेण, भावतः—ऋषायतनुत्वरूपेण, अनुत्तरया क्षान्त्या—क्षमागुणेन, अनुत्तरया गुप्त्या—मनोवाक्कायगुप्त्या अनुत्तरया मुक्त्या निर्लोभतया, अनुत्तरेण सर्वसंयमसुचरिततपः फलनिर्वाणमार्गेण—सर्वसंयमस्य सर्वथा मनोवाक्कायानां निरोधस्य, तथा सुचरितस्य—आशंसादिदोषरहितस्य तपसो यत्फलं निर्वाणं—निर्वाणरूपं फलं तस्य मार्गेण आत्मानं भावयमानस्य अनन्तम्—निरवसानम् अनुत्तरम्—सर्वोत्कृष्टं कृत्स्नं—सकलं, प्रतिपूर्णं—निःशेषं, निराचरणम्—आचरणवर्जितम्, निर्व्याधानम्—अव्याहृतम् केवलव्यं ज्ञानदर्शनं—केवलं—सर्वोत्कृष्टत्वात् सहायवर्जितम् अतएव वरं—श्रेष्ठं यद् ज्ञानदर्शनं तत्—केवलज्ञानं केवलदर्शनं च समुपत्स्यते । ततः खलु स भगवान् अर्हन् जिनः केवली भविष्यति, तथा सोऽन्तगारः स देवमनुजासुरस्य लोकस्य पर्यायं ज्ञास्यति, तद्यथा—आगतिं—देवलोकानि

निखद्य स्थान से—पशु पण्डकादि वर्जित वसति के सेवन से—अनुत्तर विहार से अनुत्तर आर्जव से—सरलता से—अनुत्तर अल्पोपकरणरूप द्रव्य से, एवं—ऋषाय तनूकरणरूप भाव से—अनुत्तरक्षमागुण से—अनुत्तरगुप्ति से अनुत्तर निर्लोभतारूप मुक्ति से अनुत्तर सर्वसंयम के—मन वचन काय के—विरोध के तथा—सुचरित—आशंसादि दोष रहित तप के निर्वाणरूप फलके मार्ग से आत्मा को भावित करने से अनन्त निर्जरा से उभयलोक की भावना रहित मोक्षामार्ग से आत्मा को भावित करने से अनुत्तर, सर्वोत्कृष्ट, कृत्स्न—सकल, प्रतिपूर्ण, आचरण वर्जित. और—अव्याहन ऐसा सर्वोत्कृष्ट होने से सहायवर्जित, अतएव—श्रेष्ठ केवलज्ञान और—केवलदर्शन को प्राप्त करेंगे, तब—वे भगवान् अर्हन् जिन केवली हो जावेगे, तथा सदेव मनुजासुर लोककी पर्याय का ज्ञाता हो जावेगे, तथा वे आगति को—देवलोकानि से मनुष्य गति

आलापथी, पशुपण्डकादि वर्जित वसतिकाना सेवनथी, अनुत्तर विहारथी, अनुत्तर आर्जवथी, सरलताथी अनुत्तर अल्पोपकरणरूप द्रव्यथी अने ऋषाय तनूकरणरूप भावथी। अनुत्तर क्षमागुणथी अनुत्तर गुप्तिथी अनुत्तर निर्लोभताइय मुक्तिथी. अनुत्तर सर्व संयमथी. मन वचन कायना विरोधना तेमन् सुचरित—आशंसादि दोषरहित तेमना निर्वाणरूप इणना मार्गथी आत्माने भावित करवाथी अनन्त निरवसान, अनुत्तर, सर्वोत्कृष्ट, कृत्स्न सकल प्रतिपूर्ण आचरण वर्जित अने अव्याहृत अथवा सर्वोत्कृष्ट होवाथी सहाय वर्जित अथो श्रेष्ठ केवलज्ञान अने केवलदर्शनने प्राप्त करशे. त्यारे ते भगवान् अर्हन् जिन केवली ज्येष्ठ ज्येष्ठे, तथा सदेव मनुजसुरलोकनी

दिभ्यो मनुजगताबागमनं, गतिं-मनुष्यलोकाद् देवादिगतिषु गमनम्, स्थितिं-
 देवलोकादिष्ववस्थितिम्, च्यवनं-देवलोकादायुःक्षयेण पतनम्, उपपातं-देवना-
 कयोर्जन्म, तर्कं-विचारम्, कृतं विहितं, मनोमानसिकम्-मनस्येव व्यवस्थितं
 मानसिकं-मनोगतं विचारं, क्षयितं-क्षयं प्राप्तं, भुक्तं-खादितं, प्रतिसेवितं-
 भोग्यवस्तुजातसेवनम्, आविष्कर्म-प्रत्यक्षे कृतम्, रहःकर्म-एकान्ते कृतम् । एवं
 स सदेवासुरमनुजस्य सर्वान् पर्यायान् ज्ञास्यतीति । अन एव सोऽनगारः अरहा-
 नास्ति रहः-अप्रत्यक्षं किमपि यस्य स तथा-सर्वज्ञः, तथा अरहस्यभागी-सा-
 वद्याचरणवर्जितत्वेन न रहस्यम्-एभान्तं भजते यः स तथा=सुस्पष्टसकलाचारश्च
 सन् तस्मिन्स्मिन् काले मनोवाकाययोगवर्तमानानां सर्वलोके स्थितानां सर्व
 जीवानां सर्वभाषान्-समस्तान् भाषान् जानन् पश्यंश्च विहरिष्यति-विहारं
 करिष्यतीति । ॥सू० १७४॥

में आगमन को, गति को-मनुष्य लोक से देवादिगतियों में गमन को, स्थिति
 को-देवलोकादिकां में अवस्थिति को च्यवन को-देवलोक से आयुःक्षय के
 बाद चवन को, उपपात को-देवनाकों के जन्म को, तर्क को-विचार को कृत-
 किये हुवे को, मनोमानसिक को, मन में व्यवस्थित विचारधारा को, क्षपित को
 क्षयप्राप्त को, भुक्त को-खादित को, प्रतिसेवित को-भोग्यवस्तु जात के सेवन
 को, आविष्कर्म को-प्रत्यक्ष में किये हुवे को, रहःकर्म को-एकान्त में किये गये
 को-इस तरह से वे देव-मनुजाऽसुर सहित लोक की सब पर्यायों को जाने गे ।
 अतएव-वे अनगार अरहाजिन की दृष्टि में अप्रत्यक्ष कुछ भी नहीं रहेगा।
 सर्वज्ञ अरहस्यभागी-सावद्याचरणवर्जित होने के कारण सुस्पष्ट सकलाचार के
 पालक बने हुवे, उस उप काल में मनोवाकाय यग में वर्तमान इसलोक
 सम्बन्धी सर्वजनों के सर्व भावों को जानते हुवे और-देखते हुवे विहार करेंगे।सू० १७४।

पर्यायना ज्ञाता यश्चेत्यादि ते आगतिने-देव लोकादिभ्यो मनुष्य गतिमा आगमनने
 मनुष्य लोकाभाथी देवदि गतिभ्योमा गमनने स्थितिने-देवलोकान् देवलोका
 च्यवनने देवलोकथी आयुक्षय पथी पतनने. उपपातने-देवनाकोना जन्मने-तर्कने-
 विचारने कृत- कृतत्वाभ्याने. मनोमानसिकने मनमां व्यवस्थित विचारधाराने.
 क्षपितने-क्षय प्राप्तने भुक्तने-खादितने प्रतिसेवितने-भोग्यवस्तु ज्ञातना
 सेवनने आविष्कर्मने-प्रत्यक्षमा करेला कर्मने. रहःकर्मने, एकान्तमा आचरेला
 कर्मने आ प्रमाणे ते देव मनुज असुर सहित लोकनी सर्व पर्याये ते ज्ञाप्ये
 तेथी ते अनगार अरहाजिननी दृष्टिमा अप्रत्यक्ष एषु कथं गृह्ये नहि
 तेभने सर्व-प्रत्यक्ष यथं ज्ञे सर्वज्ञ अरहस्यलागी सावद्याचरण वर्जित होनाथी
 सुस्पष्ट सकलाचाराना पालक थयेला कारणमा मनोवाकाय योगमा वर्तमान ध्रुवलोका
 सम्बन्धी सर्वजनाना सर्वभावाने ज्ञाप्यता अने ज्ञेतां विहार करेथे. ॥१७४॥

मूलम्—तए णं दृढपइन्ने केवली एयाख्वेणं विहारेणं विहर-
माणे बहूइं वासाइं केवलिपरियायं पाउणिता अप्पणो आउसेसं
आभोएत्ता बहूइं भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ, बहूइं भत्ताइं अणसणाए
छेइस्सइ—जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावेकेसलोए बंभचेरवासे अणहाणगं
अदंतवणं अणुवहाणगं भूमिमेज्जाओ फलहसेज्जाओ परधरपवेसो
लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं परेसिं हीलणाओ निंदणाओ खिस-
णाओ तज्जणाओ ताडणाओ गरहणाओ उच्चावचा विरुक्खवा वावी-
सपरीसहा उवसग्गा गोमकंटगा अहियासिज्जंति तमह्ठ आराहिस्सइ,
चरिमेहिं ऊसासनीसासेहिं सिज्झहिइ, बुज्झहिइ, सुच्चिहिइ परि-
निव्वाहिइ सव्वदुक्खणसंतं करेहिइ । ॥ सू० १७५ ॥

छाया—ततः खलु दृढप्रतिज्ञः केवली एतद्रूपेण विहारेण विहमन् बहूनि
वर्षाणि केवलिपर्यायं पालयित्वा आत्मन आयुश्शेषम् आशुष्य बहूनि भक्तानि
प्रत्याग्याभ्यति बहूनि भक्तानि अनशनेन छेत्स्यति, यथार्थाय क्रियते नम-

“तए णं दृढपइण्णे केवली—” इत्यादि—

मूलार्थ—“तए णं” इसके बाद—“दृढपइन्ने केवली—” वे दृढप्रतिज्ञ केवली—
“एयाख्वेणं विहारेणं विहरमाणे—” इस प्रकार के विहार से विहार करते हुवे—
“बहूइं वासाइं केवलिपरियायं—” अनेक वर्षों तक केवलीपर्याय को—
“पाउणिता—” पालकर के—“अप्पणो आउसेसं आभोएत्ता—” एवं अपने आयु
के अन्त को जान करके—“बहूइं भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ—” अपने अनेक भक्तों
का प्रत्याग्यान करेंगे—“बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेइस्सइ—” अनेक भक्तों

“तए णं दृढपइण्णे केवली” इत्यादि ।

मूलार्थ—“तएणं” त्थार पथी ‘दृढपइन्ने केवली’ ने दृढप्रतिज्ञ केवली
‘एयाख्वेणं विहारेणं विहरमाणे’ आ प्रमाणे विहाउ इत्तां ‘बहूइं वासाइं केवलि
परियायं’ अप्पणो अप्पणी सुधी केवली पर्यायनु ‘पाउणिता’ पालन इत्थे ‘अप्पणो
आउसेसं आभोएत्ता’ अने पिताना आयुष्यना अत समयने ज्ञाणीने ‘बहूइं
भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ’ पिताना धणु लक्ष्तेनुं प्रत्याग्यानइत्थे बहूइं भत्ताइं अण-

भावः केशलोचो ब्रह्मचर्यवासः अस्नानकर्म अदन्तर्णः अनुपानत्कम् भूमिशय्याः फलकशय्याः परगृहप्रवेशः लब्धापलब्धानि मानापमानाः परेषांहीलनाः निन्दनाः खिसना तजनाः ताडनाः गर्हणाः उच्चावचाः विरूपरूपाः द्वाविंशतिः परीषहा उपसर्गाः ग्रामकण्टकाः अधिसहन्ते, तमर्थम् आराधयिष्यति, चरमैरुच्छ्वासिनः श्वासैः सेत्स्यति भोत्स्यते मोक्षयते परिनिर्वास्यति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति। सू. १७५।

का अनशन द्वारा छेदन करेगे-अर्थात् सथारा करेगे "जासट्टाए कीरइ, णग्गभावे केसलोए वंभचेरवासे-" इस प्रकार भक्तो वा प्रत्याख्यान करके, और-अनशन द्वारा उनका छेदन करके वे दृढप्रतिज्ञ केवली जिस अर्थ को सिद्ध करने के लिये साधुजनों द्वारा नग्नभाव-अचेलत्व-परिमित-वस्त्रधारणत्व-केशलुञ्चन ब्रह्मचर्य-वास-" "अण्हाणगं, अदंतवणं-अणुवहाणगं, भूमिसेज्जाओ, फलहसेज्जाओ, परघरपवेशो, लद्धावलद्धाई, माणावमाणाइ-" स्नान नहीं करना-दन्तधावन करने का त्याग करना-पग में पगखां मोझा आदि को नहीं पहनना-भूमिपर शयन करना-प्रसगवश पाट पर सोना-भिक्षादिके निमित्त पर घर में प्रवेश करना-लाभाऽलाभ-मानाऽपमान-"परेसिहीलणाओ -निन्दणाओ - खिसणाओ - तज्जणाओ - ताडणाओ - गरहणाओ-उच्चावचा - विरूपरूपा-" दूसरोंद्वाराकृत हीलना-निन्दना-खिसना तर्जना-ताडना-गर्हणा-अनुकूल प्रतिकूल नाना प्रकार के -"वावीसपरीसहा उवसग्गा गामकंटगा अहिया सिज्जंति-" वाइस परीषह, तथा-उपसर्ग एवं-इन्द्रियों के प्रतिकूल कटक के समान शब्दादिक सहन किये जाते हैं-" तमठ आराहिस्सइ, चरमेहिं ऊसासनीसासेहिं

सणाए छेइस्सइ" धण्णा लकतोतुं अनशनेो वडे छेदन करेथे. "जस्सट्टाए कीरइ णग्गभावे केसलोए, वेयचेरवासे" आ प्रभावे लकतोतु प्रत्याख्यान करीने अने अनशन द्वारा तेमहु छेदन करीने ते दृढप्रतिज्ञ केवली के अर्थनी सिद्धि माटे साधुजनों वडे नग्नभाव अचेलत्व परिमित वस्त्र धारत्व, केशलुञ्चन, ब्रह्मचर्यवास, "अण्हाणगं अदंतवणं अणुवहाणगं, भूमिसेज्जाओ फलहसेज्जाओ, परघरपवेशो. लद्धावलद्धाई, माणावमाणाइ-" स्नान रहित रहें, दन्तधावननेो त्याग करवा, पगरभाओ पहरेवा नहि, भूमिपर शयन करवु इलक पर सुवुं भिक्षादि माटे पर घरमा जवु लाल अलाल, मान अपमान-"परेसि हीलणाओ निन्दणाओ खिसणाओ तज्जणाओ ताडणाओ गरहणाओ उच्चावचा विरूपरूपा" भीनओ वडे करयेल हीलना-निन्दना, खिसना, तर्जना, ताडना. गहंण्णा अनुकूल प्रतिकूल अनेक वतनी "वावीसपरीसहा उवसग्गा गामकंटगा अहियासिज्जंति" वावीस परीषहा तेमज उपसर्ग अने इन्द्रियोना प्रतिकूल शब्द वगेरे सहन करवाभां आवे छे, 'तमहु' आराहिस्सइ, चरमेहिं, ऊसासनीसासेहिं सिज्जिहिइ, बुज्जिहिइ, मुच्चिहिइ,

टीका—“तए णं” इत्यादि-ततः खलु दृढप्रतिज्ञः केवली एतद्रूपेण-पूर्वोक्तविधेन विहारेण विहरन्-विचरन् बहूनि वर्षाणि केवलिपर्यायं पालयिवा आमनः-स्वस्य, आयुश्शेषम्-आयुषोर वसानम् आभुज्य-परिज्ञाय बहूनि भक्तानि प्रत्याख्यास्यति, ततो बहूनि भक्तानि अनशनेन छेत्स्यति । इत्थं भक्तानि प्रत्याख्याय अनशनेन छित्त्वा च स दृढप्रतिज्ञः केवली, यस्यार्थाग्र-यन्मोक्ष-निमित्तं क्रियते साधुभिः-नग्नभावः-अचेलत्वं-परिमितवस्त्रधारित्वं केशलोचः-स्वपरहस्तेन केशोत्पाटनं, ब्रह्मचर्यवासः-ब्रह्मचर्यधारित्वम्, अस्नानकम्-स्नानाभावात् अदन्तवर्णः-दन्तोच्च्चलीकरणाभावः, अनुपानस्कम्-उपानत्परिधानाभावः,

सिञ्जिह्वहिह, बुञ्जिह्वहिह, मुच्चिह्वहिह, परिनिव्वाहिह, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिह—” उस्स-मोक्षरूपी अर्थे षी आराधना करेण्णे. और-आराधना करके अन्तिमश्वासोच्छ्वास से सिद्ध हो जावेंगे, बुद्ध हो जावेंगे, मुक्त हो जावेंगे, परिनिर्वात शिथिलीभूत हो जावेंगे, एवं-समस्त दुःखों का अन्त करेंगे ।

टीकार्थ-इस प्रकार के विहार से विचरते हुवे वे दृढप्रतिज्ञ केवली अनेक वर्षों तक केवली पर्याय में विराजमान रहेंगे । जब-उनके आयुकर्मका पूर्णरूप से अन्त होने का समय आ जावेगा, तब-वे इस बात को जानकर अनेक भक्तों का प्रत्याख्यान करदेंगे, अनशन द्वारा अनेक भक्तों का छेदन कादेगे । इस प्रकार भक्त प्रत्याख्यान करके-एवं-अनशन द्वारा उसका छेदन करके, वे दृढप्रतिज्ञ केवली जिसके लिये साधुजन नग्नभाव धारण करते हैं । अर्थात्-परिमित वस्त्रों को रखते हैं-अपने हाथों से केशों का लुञ्चन करते हैं पूर्णरूप से ब्रह्मचर्यावस्था में रहते हैं. मनवचनकाय से स्नान करने का परित्याग करते हैं-दन्तधावन का सर्वथा परिहार करते हैं, पगरखे-मोजा का पहिरना

परिनिव्वाहिह, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिह” ते अर्थेनी आराधना करीने अन्तिम श्वासोच्छ्वासथी सिद्ध थध ञ्शे. पुद्ध थध ञ्शे. मुक्त थध ञ्शे. परिनिर्वाताशथली-भूत थध ञ्शे. अने समस्तदुःखेनो अंत करशे.

टीकार्थ-आ प्रमाणे विहरता दृढप्रतिज्ञ केवली धणुं वर्षो सुधी केवली पर्यायमां विराजमान रहेशे. न्यारे तेमना आयुष्यनी समाप्तिनो-समय आवशेत्यारे तेयो. आ बात न्णानीने अनेक लकतोनुं प्रत्याख्यान करशे. अनशन वडे धणु लकतोनुं छेदन करशे आ प्रमाणे लकतप्रत्याख्यान करीने अने अनशन वडे तेमनु छेदन करीने ते दृढप्रतिज्ञ केवली नेना माटे साधुजन नग्नभाव धारणु करे छे अेटले के परिमित वस्त्रो राजे छे, पोताना लुथो वडे केशलुञ्चन करे छे. पूणुंइपथी ब्रह्मचर्यावस्थाभां हे छे. मन. वचन. कायथी स्नान करवानो परित्याग करे छे. दंतधावनो सर्वथा

उपलक्षणात् शकटाश्वादि वाहनराहित्यम्, भूमिशय्याः—भूमौ शयनानि, फलकशय्याः—फलकेषु शयनानि, आहाराद्यर्थं परगृहप्रवेशश्च । ‘भूमिशय्याः—फलकशय्याः’ इति पदद्वये ‘क्रियते’ इति बहुत्वेन विपरिणमय्य समन्वेतव्यमिति । तथा—तैः साधुभिः लब्धापलब्धानि-लाभालाभाः, मानापमानाः—स्मानतिरस्काराः, तथा-परेषाम्-अन्येषाम् परकृता इत्यर्थः, हीलनाः-मर्मोद्घाटनानि, निन्दनाः—निन्दाः—जुगुप्साभाषणरूपाः, खिसना—धिक् त्वां मुण्ड !’ इत्यादिरूपाः, तर्जनाः— अङ्गुलि-प्रदर्शन-पूर्वकं ‘ज्ञायसि रे जाल्म !’ इत्यादिक्वचनरूपाः, गर्हणाः—‘चौरोज्यं लम्पटो-ज्यम्’ इत्यादिक्वचनरूपाः—तथा—उच्चावचा—अनुकूलप्रतिकूलाः, विरूपरूपाः—नाना प्रकाराः, द्वाविंशतिः—द्वाविंशतिसंख्यकाः परीषहाः—क्षुधादिरूपाः, उपसर्गाः—

छोड देते हैं । उपलक्षण से गाडी की सवारी करना, घोड़े आदि वाहन पर बैठना आदि-आदि को छोड देते हैं, भूमि पर शयन करते हैं, अथवा काठ के पट्टियो-तथा आदिपर शयन करते हैं, आहार आदि प्रयोजन से परघर प्रवेश करते हैं, लाभालाभ में जो समान भाव रखते हैं, मानापमान की जो थोड़ी सी भी अपेक्षा नहीं रखते हैं । तथा दूसरो काग कृत हीलनाओ को—मर्मोद्घाटन वचनों को—निन्दाओ को जुगुप्सा भाषणरूप वचनों को—खिसनाओ को—“हे मुण्ड-? तुझे धिकार” इत्यादिरूप वचनों को तर्जनाओं को, अङ्गुली प्रदर्शनपूर्वक “हे जाल्म ? तुझे खबर पड़ेगी—” इत्यादि रूप वचनों को—गर्हणाओं को, “यह चोर है, यह—लम्पट है—” इत्यादिरूप वचनों को तथा—अनुकूल प्रतिकूल नाना प्रकार के क्षुधादिरूप २२ वाईस—परीषहों को, तथा देवादिकृत उपसर्गों को, एवं-ग्रामकण्टकों को—ग्रामों को—इन्द्रिय समूह

त्याग करे छे पगरभा भेज्ज पहेरता नथी उपलक्षणी गडीनी सवारी करवी. घोडा वगेरे वाहन पर जेसवु वगेरेने त्यल्ल दे छे. भूमि पर शयन करे छे लाड्डाना पाटिया वगेरे पर सूवे छे. आहार आदि प्रयोजनाने लीधे ज परघरभा प्रवेश करे छे. लाभ अलाभमां. समानभाव राखे छे मान अपमाननी जे लगीरे दरकार राखता नथी तेमज्ज थीलज्जे द्वारा करयेल डीलनाज्जेने. मर्मोद्घाटक वचनाने. निन्दाने जुगुप्सा लाषणरूप वचनाने खिसनाने जे मुण्ड तने धिकार छे । “ वगेरे ज्ज वचनाने तर्जनाज्जेने अङ्गुली प्रदर्शनपूर्वक जे जाल्म ! पछी तने अज्ज अजर पडसे” वगेरे ज्ज वचनाने. गर्हणाने “आ चोर छे आ लम्पट छे” इत्यादिरूप वचनाने तेमज्ज अनुकूल प्रतिकूल नाना प्रकारनी क्षुधादिरूप २२ प्रकारना परिषहाने तथा देवादिकृत उपसर्गाने अने ग्रामकण्टकाने आमोने इन्द्रियसमूहने जे अत्यादक

देवादिकृतोपद्रवाः, ग्रामकण्टकाः—ग्रामः इन्द्रियसमूहस्तस्य कण्टका इव कण्टकाः—
इन्द्रियप्रतिकूलशब्दादयः, दुःखोत्पादकत्वान्मुक्तिमार्गे विघ्नहेतुत्वादेपां कण्टकत्वम्
क्षुद्रजनरूक्षाऽऽलापा वा यस्य कुते अधिसहते, तं-मोक्षरूपम् अर्थम्-आराधयि-
ष्यति, आराध्य चरमैः अन्तमैः उच्छ्वासनिश्वासैः सेत्स्यति, मङ्गलकार्यकारितया
सिद्धौ भविष्यति, भोत्स्यते—विमलकेवलाऽऽलोकेन सकललोकालोकं ज्ञास्यति,
मोक्षयते—पर्वकर्मभ्यो मुक्तो भविष्यति-परिनिर्वास्यति समस्त कर्मकृतावकाररहितत्वेन
स्वस्थो भविष्यति. सर्वदुःखानां—शरीरमनःसम्बन्धिसमस्तकलेशानाम् अन्तं नाशं
करिष्यति—अव्यावाधसुखभाग् भविष्यतीत्यर्थः । ॥सू० १७५॥

शास्त्रमुपसंहन् प्राह—

मूलम—सेवं भते ! सेवं भंते ! भगवं गोयमे समणं भगवं
महावीरं वन्दइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तपसा अप्पाणं
भावेमाणे विहरइ । ॥सू० १७६॥

छाया—तदेवं भदन्त ! तदेवं भदना ! इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं
महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा समयेन तपसा आत्मानं
भावयमानो विहरति ॥सू० १७६॥

को- दुःखोत्पादक होने से एवं-मुक्तिमार्ग में विघ्न के हेतुभूत होनेसे कण्टक-
रूप प्रतिकूल शब्दादिकों को, अथवा—क्षुद्रजों के रूक्षालापों को, जिसके
निमित्त सहते हैं उस मोक्षरूप अर्थ की आराधना करके फिर वे-अन्तिम
श्वासोच्छ्वास से सकल कार्य को कर चुकने से—कृतकृत्य हो जाने से सिद्ध
हो जावेगे, विमल केवल ज्ञानालोक से सकल लोकालोक का ज्ञाता बन
जावेगे, समस्त कर्मों से छूट जावेगे, स्वस्थ हो जावेगे, और—शरीरसम्बन्धी
एवं-मन सम्बन्धी समस्त कलेशों का नाश करेंगे, अर्थात्—अव्यावाधसुख का
मेक्ता बनेगे. ॥ सू० १७५ ॥

छायाथी अने मुक्तिमार्गमा विघ्नना हेतुभूत छायाथी अने कटकइय प्रतिकूल शब्दा-
दिकोने अथवा क्षुद्रजनोना इक्ष आलापोने जेना भाटे सहन करे छे ते मोक्षइय
अर्थनी आराधना करशे आराधना करीने पछी तेओ अन्तिम श्वासोच्छ्वासथी सकल
कार्योने करी देवाथी कृतकृत्य थछे जवाथी सिद्ध थछे जशे, विमल केवलज्ञानालोकाथी
सकल लोकालोकना ज्ञाता थछे जशे समस्त कर्मोथी मुक्त थछे जशे, स्वस्थ थछे जशे
अने शरीर संभन्धी अने मनसंभन्धी समस्त कलेशोना नाश करशे. अटके छे तेओ
अव्यावाध सुख लोकाता थछे जशे. ॥सू० १७५॥

टीका—“सेव भंते” इत्यादि—हे भदन्त । यद् भवद्भिरुक्तं तत् एवम्-
इत्थम्, वास्तविकमिति यावत्, तदेवं भदन्त ? इति विप्सा भगवद्वचने श्रद्धा-
तिशयं प्रकटयति, इति—अनेन प्रकारेण उक्त्वा भगवान् गौतमः श्रमणं
भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्सित्वा सद्यमेन तपसा
आत्मानं भावयमानो विहरतीति ॥सू० १७६॥

श्री

अथ राजप्रश्नीयसूत्र य प्रश्नितः—

गुर्जराभिधदेशेऽस्मिन् पुरं वीरमगामकम् ।

आरण-श्रावः श्रेणिसौधमण्डितवीथिकम् ॥ १ ॥

ग्रामाद् ग्रामांतरं पङ्क्तिः साधुभिर्विहरन्निह ।

निर्वोढुं सांघमीं यात्रां परुद्वैशाख आगमम् ॥ २ ॥

‘सेवं भंते-? सेवं भंते-?’ भगव योगसे—’इत्यादि—

मूलार्थ—‘सेव भंते-? सेव भंते-?’ हे भदन्त-? जैसा आपने कहा है
वह वैसा ही है, अर्थात्—आपने जो अपनी दिव्यध्वनि द्वारा प्रकट किया
है वह वास्तविक ही है सर्वथा सत्य ही है-। इस प्रकार कहकर—“भगव
गोयमे—” भगवान् गौतमने “समणं भगव वदइ नमंसइ—” श्रमण भगवान्
को वन्दना की गुणतुति की, और—उन्हें नमस्कार किया—“वन्दित्ता नमसित्ता
संजमेणं तपसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ—” वन्दना नमस्कार कर फिर—वे
संयम से और—तप से आत्मा को भावित करते हुवे अपने स्थान पर
विराजमान हो गये ।

टीकार्थ—स्पष्ट है—‘सेव भंते-? सेव भंते-?’ ऐसा जो दो बार कहा
गया है वह भगवद्वचन में श्रद्धातिशय प्रकट करने के लिये कहा गया है । सू० १७६

‘सेवं भंते ? सेवं भंते ? भगवं गोयसे इत्यादि ।

मूलार्थ—“सेवं भंते ! सेवं भंते !” हे भदन्त । वे प्रभाणे आपश्रीओ इधु
छे ते तेभञ्छे ओटवे डे आपश्रीओ पोतानी दिव्यध्वनिद्वारा वे उंछं इधुं छे ते
वास्तविक वे छे सर्वथा सत्य छे आ प्रभाणे इहीने “भगव गोयसे” भगवान् गौतमे
समणं भगवं वदइ नमंसइ” श्रमण भगवान् ने वदना करी, गुण तुति करी अने
तेभने नमस्कार करी “वन्दित्ता नमसित्ता संजमेणं तपसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ”
वदना तेभञ्छे नमस्कार करीने तेओ संयम अने तपश्री आत्माने भावित इत्तां
पोताना स्थाने विराजमान थरु गया

टीकार्थ स्पष्ट छे “सेवं भंते ; सेवं भंते !” आम वे जे वचन इहेवना
आओ छे ते भगवद् वचनमा अति श्रद्धा प्रकट इत्ता भाटे छे ॥ १७६ ॥

पुरे वीरमगामेऽस्मिन् सङ्घार्थनया व्यधाम् ।
 राजप्रश्नीयसूत्रस्य टीकामेतां सुबोधिनीम् ॥ ३ ॥
 वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां गुरोर्दिने ।
 त्रयोदशाधिके वर्षे द्विसहस्रे च वैक्रमे ॥ ४ ॥
 अत्रत्यः सदयो मिलत्समुदयः श्री जैनसङ्घो मिथः—
 प्रेमाऽभक्तहृदः रुदा निजकृतौ धर्मे च बद्धाऽऽदरः ॥
 शुद्धस्थानकवासिधर्ममहिमप्रोद्भावकः श्रावका-
 ऽऽचारैः ख्यातिमुपागतो विजयते सम्यक्त्वसंशोभितः ॥५॥

“ प्रशस्ति का अर्थ ”

गुजरात प्रांत में वीरमगाम नामका शहर है, यहां के मांग दूकानों एवं श्रावकजनों के सुन्दर-सुन्दर घरों से युक्त हैं। एक गाम से दूसरे गाम में विहाग करते हुवे छह मुनियों के साथ-यहां संयम यात्रा का निर्वाह करने के लिये गतवर्ष के वैशाख मास में अर्थात् वि.संवत् २०१२ के वैशाखमें आये। यहां के श्रीसंघ की यहीं पर विराजने की विनन्ती से यहां मैंने राजप्रश्नीय सूत्र की इस सुबोधिनी टीका को सम्पूर्ण किया। यह समय वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया गुरुवार विक्रम संवत् २०१३ का था। यहां का जैन श्रीसंघ शुद्ध स्थानकवासी धर्म में तत्पर है, धर्म के प्रति इसके हृदय से बहुत अधिक आदरभाव है, और यह श्रीसंघ प्रेमालु है, तथा शुद्ध स्थानकवासी धर्म का दिपाने वाला है। हृदय में इसके अति अधिक दयाभाव बना रहता है। श्रावक सम्बन्धी आचार विचार से यह प्रसिद्धि को प्राप्त कर लिया है, जैनधर्म के प्रति अधिक

प्रशस्तिनेो अर्थः—

गुजरात प्रांतमां वीरमगाम नामक एक नगर छे आ नगरनी शेरीओ आने हुकाने। श्रावकजनोना लव्य भकानेथी युक्त छे एक गामथी भीजे गाम विहार करता करता छ मुनियोनी साथे वैशाख मासमा अही संयमयात्राना निर्वाहु भाटे आव्या अहीना “श्रीसंघे” आपश्रीने अहीजे गिराभवानी विनती करी तो ते समयमां जे में त्या रहीने राजप्रश्नीय सूत्रनी आ सुबोधिनी टीका संपूर्ण करी आ समय वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया विक्रम संवत् २०१३ गुरुवारने हुतो अहीने जैन श्रीसंघ’ शुद्ध स्थानकवासी छे, धर्म प्रत्ये जेना हृदयमा पूजण आदरभाव छे आ श्रीसंघ’ प्रेमण छे तेमजे शुद्ध स्थानकवासी धर्मने दीपावनार छे जेना हृदय मां अत्यधिक दयाभाव निवास करे छे श्रावक संघधी आचारविचारोथी अजगत्मां अछे जैनधर्म प्रत्ये अधिकाधिक अनुरागी होवा गइल सम्यकवथी सुशोभित

देवाधिदेवे भुवनैकनाथे तीर्थङ्करे तत्कथिते च धर्मे ।
 श्रद्धां दधानं प्रतिवेश्म भाति सुश्राविकाश्रावकवृन्दमत्र ॥६॥
 आचारपूताः समदृष्टिभूता जैनागमाऽऽचारनिदर्शरूपाः ॥
 अस्मिन् पुरे सन्ति मृदुस्वाभावा जैनाः समस्ता गुरुभक्तिभाजः ॥७॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
 कलापालाप-प्रविशुद्रगद्यपद्यनैऋत्य-निर्माप-त्रादिमानमर्दक श्री शाह
 छत्रपति-कोल्हापुरराजपदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुर-
 राजगुरु - बालब्रह्मचारि - जैनशास्त्राचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
 घासीलालव्रतिविरचितायां सुवोधिन्व्याख्यायां व्याख्यायां
 "राजप्रश्नीयसूत्रम्" सम्पूर्णम्

अनुरागी होने के कारण यह सम्प्रत्यक्ष से सुशोभित है। भुवनैकनाथ देवाधि-
 देव तीर्थंकर के ऊपर, एवं-तीर्थङ्कर प्रतिपादित धर्म के ऊपर श्रद्धाशील श्रावक-
 एवं-श्राविकाएँ हर एक घर में यहां हैं। इन सबों का आचार-विचार जैन-
 मर्यादा के अनुरूप है दूसरों के लिये ये-इस विषय में सर्वथा अनुकरणीय हैं।
 इनका स्वभाव मृदु है, यहां के श्रावको काचित्त गुरु की धर्मभक्ति में सदा
 प्रेमयुक्त बना रहता है, इन्हीं सब कारणों से ये समदृष्टि हैं ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराजकृत
 राजप्रश्नीयसूत्र की 'सुवोधिनी' व्याख्या समाप्त ॥
 ॥ राजप्रश्नीयसूत्र समाप्त ॥

छे भुवनैकनाथ-देवाधिदेव तीर्थंकर पर अने तीर्थंकर प्रतिपादित धर्म पर श्रद्धाशील
 श्रावक अने श्राविकाओं अडी दरेंदरेक घरमा निवास करे छे आ सर्वना आचार-
 विचारो जैन मर्यादानुसूप छे भीलओना भाटे ओओ आ भाभतमा स पूर्णपणे अनु-
 करणीय छे ओमनो स्वभाव मृदु छे अडीना श्रावकानुं चित्त गुठनी धर्मलक्षितमा
 सदा प्रेमयुक्त अनी रहे छे आ अघा कारणोथी ओ अघा समदृष्टि छे "

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलालजी महाराजकृत
 राजप्रश्नीयसूत्रनी सुवोधिनी व्याख्या समाप्त

